सूचि

अध्याय-१	भाषा की उत्पत्ति	३ - ३८
अध्याय-२	लोक-साहित्य का उद्‌भव	३९ - ७७
अध्याय-३	लोक-साहित्य	७८ - २६२
अध्याय-४	लोकगाथाएँ एवं कहावती कथाएँ	२६३ - ३९२
अध्याय-५	अंधविश्वास एवं लोकमान्यताएँ	३९३ - ४३८
अध्याय-६	गुजराती और राजस्थानी लोक-साहित्य में नारी संवेदन	४३९ - ६११
अध्याय-७	उपसंहार	६१२ - ६१७
	संदर्भ संकेत	६१८ - ६२५

ऋण स्वीकार

इस महासंशोधन ग्रंथ में गुजराती और राजस्थानी लोक साहित्य में नारी-संवेदन एवं दोनों प्रदेश के लोक-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है । एक साथ दो प्रदेश का अध्ययन करना बहुत कठिन है फिर भी हमने यह कार्य करने का प्रयास किया है ।

ऐसे देखा जाय तो इस प्रारूप के लिए दो वर्ष की समयावधि बहुत कम है । गुजरात प्रदेश अकेले पर यह कार्य करना हो तो भी दो साल कम पडेंगे, यहां तो हमने गुजरात और राजस्थान जैसे दोनों विशाल प्रदेशों को चुनकर इस कार्य करने की चुनौती उठा ली है । और उसमें भी राजस्थान के लिए तो कहा जाता है कि इस प्रदेश की रेती के जितने कण है उतना लोक-साहित्य राजस्थान में भरा पडा है । पहले तो हमें लगा कि राजस्थान में इस लोक-साहित्य को कहां कहां ढूढेंगे - कहां कहां खोजेंगे । लेकिन दोनों प्रदेश के लोक-साहित्य को उजागर करना तय करके हम इस कार्य में लग गये और इस चुनौतीपूर्ण कठिन कार्य भी हमने संपन्न किया ।

इस महासंशोधन कार्य के लिए पूरे गुजरात में से मुझे पसंद किया गया वह मेरा सौभाग्य रहा । इसलिए मैं भारत सरकार के सांस्कृतिक मंत्रालय का आभारी हूँ । मेरे इस कार्य में मार्गदर्शन करनेवाले मेरे गुरुजन डॉ. कुमारपाल देसाई, डॉ. योगेन्द्र व्यास एवं डॉ. धीरुभाई परीख का आभारी हूँ । इस महासंशोधन कार्य में मुझे सहायता करने वाले मित्रगण श्री इन्द्रवदन पटेल, श्री प्रवीणसिंह चावडा, श्री स्नेहल पटेल (दासभाई), श्री वाडीभाई जोशी और सौराष्ट्र युनिवर्सिटी - राजकोट के श्री दीपकभाई पटेल का भी आभारी हूँ । इस महाग्रंथ के मुद्रणकार्य करनेवाले मेरे मित्र श्री चंद्रकान्त कांबळे एवं श्री योगेन्द्र त्रिवेदी का आभारी हूँ ।

दो वर्ष की कम अवधि में यह कार्य करना किसी भी व्यक्ति के लिए असंभव होता है । फिर भी कठिन कार्य संपन्न हुआ उसका मुझे असीमित आनंद है । यद्यपि इस महासंशोधन कार्य में कोई क्षति रही हो तो क्षमा प्रार्थी हूँ ।

संशोधकों, साहित्यकारों, पाठकों को मेरा यह महासंशोधन कार्य अवश्य पसंद आयेगा और नव-संशोधकों के लिए मेरा यह प्रयास प्रेरणास्त्रोत बनेगा ऐसी मुझे उम्मीद है ।

दिनांक : १३-१२-२०१७
स्थळ : गांधीनगर

डॉ. जशभाई एन. पटेल
ब्लोक नं. १७३/२, च-टाईप,
सेक्टर-१७,
गांधीनगर, ३८२०१७, गुजरात
मो. ९९७८४०५६७५, ७८७४४३५५३६
९४२९९०३०४४, ९७१४५९७७१८

File No. CCRT/SF-3/146/2015

गुजराती और राजस्थानी लोक-साहित्य में नारी संवेदन - तुलनात्मक अध्ययन

- डॉ. जशभाई पटेल

Women Sensation in Gujarati and Rajasthani Flok Literature - Comparative Study

- Dr. Jashbhai Patel

File No. CCRT/SF-3/146/2015

Women Sensation in Gujarati and Rajasthani Flok Literature - Comparative Study

Dr. Jashbhai N. Patel
Block No. 173/2, Ch-Type,
Sector-17, Gandhinagar,
Gujarat-382017.
(M) : 09978405675
E-mail: jashpatel1957@gmail.com

अध्याय-१

भाषा की उत्पत्ति

अनुक्रम

☞ भाषा की उत्पत्ति

☞ भारतीय आर्य भाषाओं का विकास

☞ आर्य भाषाओं के विकास में अनार्यों का योगदान

☞ भारतीय भाषाओं का प्रादुर्भाव

- प्राचीन भारतीय आर्य भाषा काल
  - वैदिक भाषा
  - संस्कृत भाषा
- मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा काल
  - ❖ पाली भाषा काल
  - ❖ प्राकृत भाषा काल
    - (१) पैशाची प्राकृत
    - (२) शौरसैनी प्राकृत
    - (३) मागधी प्राकृत
    - (४) अर्ध मागधी प्राकृत
    - (५) महाराष्ट्री प्राकृत
  - ❖ अपभ्रंश काल
- आधुनिक भारतीय आर्य भाषा काल

☞ भाषाओं का वर्गीकरण :

(B) सामी-हामी अथवा सेमेटिक-हेमेटिक वर्ग
(C) बाण्टू वर्ग
(D) फिन्नो - उग्रीय वर्ग
(E) तूर्क-मंगोल -मञ्चू वर्ग
(F) काकेशीय वर्ग
(G) द्रविड वर्ग
(H) आस्ट्रिक - वर्ग
(I) भोट - चीनी वर्ग
(J) उत्तरी - पूर्वी सीमान्त की भाषाएँ
(K) एस्किमो वर्ग
(L) अमेरिका के आदिवासियों की भाषाएँ
(A) भारोपीय अथवा भारत-योरोपीय परिवार

- भारोपीय - वर्ग की भाषाओं का संक्षिप्त परिचय
- भारत - इरानी अथवा आर्यवर्ग
- भारत में आर्यों का आगमन
- प्राचीन- भारतीय आर्य भाषा
- मध्य - भारतीय आर्य भाषा

☞ आधुनिक भाषाओं का उदय :

- क्षेत्रीय भेद का कारण
- गुजराती, मराठी और बंगला के उदय का कारण
- हिन्दी बोलियों का उदय

- मैथिली और राजस्थानी
- अवधी व्रजभाषा और खडी बोली
- हिन्दी बोलियों के उदय पर प्रकाश डालने वाली सामग्री
- हिन्दी भाषा - समुदाय :
  - ❖ उपभाषाएँ और बोलियाँ
  - ❖ प्रमुख भाषाएँ अथवा बोलियाँ

    (१) भोजपुरी (४) कौरवी

    (२) अवधी (५) राजस्थानी

    (३) व्रज (६) मैथिली

☞ गुजराती भाषा की प्रमुख बोलियाँ :

- काठियावाडी (सौराष्ट्री) बोली
- मध्य गुजराती अथवा चरोतरी बोली
- उत्तर गुजरात की पट्टणी बोली
- दक्षिण गुजराती अथवा सूरती बोली
- सरहदों पर की गुजरात की बोलियाँ :
  - ❖ कच्छी बोली
  - ❖ भीली बोली
  - ❖ खानदेशी (आहिराणी) बोली

☞ संदर्भ ग्रंथ-१

☞ संदर्भ ग्रंथ-२

भाषा की उत्पत्ति

भाषा की उत्पत्ति :

भाषा का इतिहास मानव सभ्यता के इतिहास से जुड़ा हुआ है। भाषा एक ऐसा विशिष्ट अभिव्यक्ति माध्यम हैं जो प्राणी जगत में मनुष्य के अतिरिक्त किसी के पास नहीं हैं। अदिम अवस्था में मनुष्य के पास भाषा थी अथवा नहीं, यह एक विवादास्पद प्रश्न हैं। समय-समय पर विभिन्न भाषा-वैज्ञानिकों ने इस प्रश्न को हल करने का प्रयास किया है और यह बताने की चेष्टा की है कि भाषा का क्रमशः विकास हुआ है।

इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भाषा की उत्पत्ति किसी दिन अचानक ही नहीं हो गई। भाषा के विकास का लम्बा इतिहास रहा है। यह भी सही है कि मनुष्य को जन्म के साथ ही ध्वनि भी प्राप्त हुई होगी। जब अन्य प्राणियों-चौपायों, पक्षियों आदि को भी जन्म के साथ ही बोलने की शक्ति प्राप्त होती है, तो इस आधार पर निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि आदिम युग में मनुष्य को भी अपने जन्म के साथ ही बोलने की शक्ति अथवा ध्वनि प्राप्त हुई होगी।

इससे स्पष्ट होता है कि मनुष्य को भाषा की जन्म-जात कुदरती बक्षिस (देन) है। और कुदरती यह बक्षिस को मनुष्य ने विकसित किया है, सँवारा है। विश्व में विभिन्न समयों में विभिन्न सभ्यताओं का विकास हुआ है और प्रत्येक सभ्यता ने अपने-अपने भाषा-संकेतों (ध्वनि-संकेतों) का निर्धारण किया है। यह भी एक सर्वमान्य तथ्य है कि प्रत्येक सभ्यता के विकास में विभिन्न - प्रजातियों और मानव समुदायों का योगदान रहा है। ऐसी स्थिति में विविध मानव समुदायों ने विविध भाषाओं को जन्म दिया। प्रत्येक मानव-समुदाय की अपनी कुछ भाषाएँ थीं। इन भाषा-युक्त मानव समुदायों को भाषा-परिवारों के नाम से जाना जाता है। ये भाषा-परिवारों के निम्नांकित सात प्रकार है :[१]

(१) भारत-युरोपीय
(२) सामी
(३) मलय-पालिनीशियाई
(४) द्रविड
(५) जापानी-कोरियाई
(६) यूराल-अल्ताई
(७) चीनी-तिब्बती

भारतीय आर्य-भाषाओं का विकास भारत-युरोपीय परिवार से माना जाता है। वस्तुतः भारत-युरोपीय आर्यभाषा परिवार की भाषाओं के वर्तमान स्वरूप में कोई विशिष्ट संरचनागत साम्य नहीं दिखाई देता। परन्तु प्राचीन संस्कृत और प्राचीन ग्रीक, लेटिन, अवेस्ता फारसी आदि भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने पर उनमें अद्‌भुत साम्य दिखाई दे पडता है। इससे अनुमान किया जाता है कि भारत-युरोपीय परिवार की भाषाओं के मूल में कोई जननी अवश्य ही रही होगी। भारतीय आर्य भाषाओं का विकास भारतीय परिवार से माना जाता है।

भारतीय आर्यभाषाओं का विकास :

भारतीय आर्यभाषाओं के विकास सम्बन्ध इस प्रदेश की सभ्यता-आर्य सभ्यता से माना जाता है। भारतीय आर्यभाषाओं के उद्‌गम स्रोत को खोजने के लिए हमें सर्व-प्रथम आर्य सभ्यता के उद्‌गम स्रोत को खोजना होगा। भिन्न भिन्न इतिहासकारों ने आर्य सभ्यता के इतिहास के बारे में भिन्न भिन्न मत व्यक्त किये हैं। लम्बी शोध के बाद भी अभी तक आर्यों का मूल निवास, प्रवास का समय, प्रवास का क्षेत्र आदि बिन्दु ऐतिहासिक सामग्री के अभाव में अनुमान द्वारा ही निर्धारित किये गये हैं। आर्यों के मूल स्थान का निर्धारण करते समय किसी ने इन्हें उत्तरी ध्रुव का निवासी बताया है तो किसी ने मध्य एशिया का। कई विद्वान, आर्यों का मूल स्थान दक्षिण-पूर्वी यूरोप को मानते हैं तो कुछ विद्वान इन्हें मूलतः भारत के निवासी मानते हैं। अधिकांश इतिहासकारों ने स्वीकार किया है कि आर्यो मूलतः भारत के निवासी नहीं थे, अपितु बाहर के निवासी थे और भारत में इनका आगमन विभिन्न समयों में हुआ था।

विद्वानों ने प्राचीन काल की विभिन्न भाषाओं में पाये जानेवाले संरचनागत साम्य के आधार पर यह निर्धारित करने का प्रयास किया है कि ईरान, यूरोप और भारत की प्राचीन भाषाओं में बडी समानता थीं। प्राचीन ईरानी, यूरोपीय, अवेस्ता, प्राचीन संस्कृत आदि भाषाओं के साम्य के आधार पर कहा जाने लगा कि उनका उद्‌गम एक स्थान से और एक प्रजाति से हुआ था। इसी के आधार पर यह भी कहा गया है कि आर्यों आरम्भ में एक ही स्थान पर रहते थे, बाद में विभिन्न स्थानों पर फैले थे।

भारत में आर्यों के आगमन की संभावना पर विचार करते हुए डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने कहा है कि आर्य भारत में एक साथ न आकर विभन्नि समयों में आये थे। उन्होंने लिखा है कि वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओं से पता चलता है कि आर्य लोग भारत में दो बार अवश्य आये थे। ऋग्वेद तथा बाद के संस्कृत साहित्य में भी इसके कुछ प्रमाण मिलते हैं।(२)

आज जिसे हम हिन्दी भाषा कहते हैं, उसके रूप को विकसित होने में हजारों वर्ष लगे हैं। भाषाविदों का मानना है कि विभिन्न युगों में जन बोलियों के साथ साथ साहित्यिक भाषा अथवा मानव भाषा का विकास होता है और कालान्तर में जब वह साहित्यिक भाषा 'रूढ' बन जाती है तब एक नयी भाषा का उन्मेष होता है, जो अब तक जन-बोलियों के रूप में पल रही होती है। भारतीय आर्य भाषाओं के प्राचीनतम लिखित रूप के अवशेष हमें वेदों में मिलते हैं। वेदों से पूर्व, यदि कोई भाषा यहाँ प्रचलित रही भी हो तो उसके लिखित - अवशेष अभी तक प्राप्त नहीं हुए हैं, अतः वेदों को ही सर्वसम्मति से प्राचीनतम ग्रंथ स्वीकार किया गया है, और इसी आधार पर भारतीय आर्य भाषाओं के इतिहास का आरंभ भी वैदिक भाषा से माना जाता है।

आर्य भाषाओं के विकास में अनार्यों का योगदान :

आर्यों के भारत आगमन के समय भारत में स्थानिय जातियाँ निवास कर रही थी, जिनसे आर्यों को संघर्ष करना पडता था। इसके साथ ही कुछ विदेशी जातियों का प्रभाव भी आर्यों पर पडा था। ऐसी स्थिति में कैसे कहा जा सकता है कि भारतीय आर्य भाषाओं के विकास में एक मात्र आर्य जाति का ही योगदान था। समकालीन अन्य जातियों की भाषा का प्रभाव भी आर्यों पर निश्चय ही रहा होगा। अत: भारतीय आर्य भाषाओं के विकास में अनार्यों के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। आर्यों के आगमन के समय भारत में बसने वाली जिन जातियों का उल्लेख किया जाता है, उनमें प्रमुख है - निग्रोटु, किरात, आस्ट्रिक या आग्नेय और द्रविड या दस्यु।

निग्रोटु का सम्बन्ध आफ्रिका से आये लोगों से माना जाता है। किरात जाति के लोग हिमाचल प्रदेश में बसते थे जिन्होंने आर्यों से मैत्री कर ली थी। आस्ट्रिक जाति को पूर्वी पंजाब में बसने वाली जाति माना जाता है, जिसका प्रमुख व्यवसाय कृषि था और जिसकी संस्कृति ग्रामीण थी। द्रविड अथवा दस्यु यहाँ की सर्वाधिक उन्नत जाति थी। यह सौबीर तथा सिन्धु प्रदेशों में निवास करती थी। इस जाति से आर्यों को कठिन संघर्ष करना पडा। आर्यों ने द्रविडों को दक्षिण में खदेड दिया, जहाँ आज भी इसकी भाषा और संस्कृति सुरक्षित है। द्रविड भाषाओं के साहित्य में आज भी संस्कृत तत्त्व का बाहुल्य है। इस प्रकार भारतीय आर्य भाषाओं के विकास में अनार्यों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा था।

भारतीय आर्य भाषाओं का प्रादुर्भाव :

वेदों के प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य मान लेने पर प्रश्न उठता है कि प्राचीन भारतीय आर्य भाषा का आरंभ कब से होता है? यह प्रश्न वेदों के रचनाकाल से संबद्ध है। वेदों को 'श्रोत' साहित्य भी कहा जाता है और यह माना जाता है कि वर्षों तक वेद 'श्रुति' के रूप में सुरक्षित थे। कालान्तर इन्हें लिपिबद्ध किया गया। वैदिक संहिताओं में सर्व-प्रथम रची गई संहिता 'ऋक्' है। विभिन्न इतिहासकारों ने 'ऋग्वेद' का रचनाकाल ईसा पूर्व २७५०, २५०० अथवा २००० से आरंभ कर १००० ई. पूर्व तक माना है। भारतीय आर्य भाषाओं के कालखंड के मुताबिक तीन कालखंड है।

(i) प्राचीन भारतीय आर्य भाषा काल
(ii) मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा काल
(iii) आधुनिक भारतीय आर्य भाषा काल

(i) प्राचीन भारतीय आर्य भाषा काल :

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा काल ई. पूर्व २००० से ५०० ई. पूर्व तक के समय को माना जाता है। इस समय वैदिक साहित्य की रचना हुई थी। वेद संहिता, आरण्यक, उपनिषद आदि के रूप में इस युग का साहित्य उपलब्ध होता है।

वैदिक भाषा :

इस युग में ऋषियों ने उपास्य देवताओं - इन्द्र, वरूण, अग्नि, सूर्य आदि की स्तुति हेतु ऋचाओं की रचना की। ऋचाओं के संकलित रूप को संहिता नाम दिया गया। आरंभ में ऋक् संहिता से ऋग्वेद की रचना हुई। तद्अन्तर्गत यजु:, साम और अथर्व संहिताओं से क्रमश: यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद की रचना हुई। यजुर्वेद में मुख्यत: यज्ञ सम्बन्धी मंत्र संकलित है। सामवेद गेय पदों का संकलन है तथा अथर्ववेद में वैद्य शास्त्र, तंत्र-मंत्र चिकित्सा शास्त्र आदि का संकलन है।

संस्कृत भाषा :

जिस समय वैदिक भाषा विकास के चरम शिखर पर थी, उसी समय कुरु-पांचाल प्रदेश की जन भाषा साहित्यिक भाषा के रूप में उन्नत हो रही थी। पाणिनी ने उस समय की जनपदीय भाषा को एकरूपता प्रदान कर उसे परिष्कृत कर दिया। जन-भाषा का यही परिष्कृत रूप संस्कृत कहा गया, क्योंकि पाणिनी ने जन-भाषा के रूप को ही सुसंस्कृत किया था। पाणिनी ने जन भाषा को ही परिष्कृत करके 'संस्कृत भाषा' के रूप में प्रतिष्ठित किया। और बाद में संस्कृत भाषा के संसर्ग में आकर लौकिक संस्कृत का उद्भव हुआ। इस तरह आरंभ में वैदिक भाषा में साहित्य रचना होने लगी, बाद में लौकिक संस्कृत में साहित्य रचना होने लगी। बाद में जन-भाषाओं के सहयोग से पालि एवं अन्य मध्यकालीन आर्य भाषाओं का विकास हुआ। फलत: लौकिक संस्कृत में विपुल मात्रा में साहित्य रचनाएँ हुई। वाल्मीकि रामायण, महाभारत, कालिदास रचित मेघदूत, रघुवंश, कुमार सम्भव, अभिज्ञान शाकुन्तलम् आदि संस्कृत भाषा की प्रमुख साहित्यिक कृतियाँ हैं।

(ii) मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा काल :

पाणिनी ने संस्कृत का व्याकरण लिखकर भाषा के प्रवाहमान स्वरूप को एक प्रकार से स्थिर सा कर दिया था। संस्कृत अब केवल उच्च वर्ग की एवं साहित्यिकों की भाषा बनकर रह गई थी। संस्कृत के पश्चात् जन-भाषाओं से जिन भाषाओं का विकास हुआ, उन्हें मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ कहा जाता है।

ईसा पूर्व ५०० में नवीन धार्मिक आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ। अब तक भारत में वैदिक साहित्य एवं लौकिक संस्कृत का विकास हो चुका था। ज्ञान एवं दर्शन के भंडार वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत आदि महत्त्वपूर्ण ग्रंथ वैदिक तथा लौकिक संस्कृत में लिखे जा चुके थे। जन-सामान्य में वैदिक-ब्राह्मण धर्म का बोलबाला था। धर्म में कर्म-काण्डों को बहुत अधिक महत्त्व दिया जाने लगा था। धार्मिक दृष्टि से ब्राह्मण धर्म अत्यन्त जटिल हो गया था, तथा उसमें अनेक विकृतियाँ आ गई थीं। ब्राह्मणों का ज्ञान पर एकाधिकार हो गया था। साधारण व्यक्ति के लिए धार्मिक अनुष्ठान और कर्म-काण्ड करना आसान कार्य नहीं था। ऐसे समय में सामान्य व्यक्ति को धार्मिक आश्रय प्रदान करने हेतु ईसा पूर्व छठ्ठी एवं पाँचवीं शताब्दी में महावीर और गौतम बुद्ध का प्रादुर्भाव हुआ।

इन दोनों महापुरुषों ने जन भावना के अनुरूप क्रमशः जैन धर्म एवं बौद्ध धर्म को जन्म दिया। वस्तुतः इन दोनों का प्रादुर्भाव ब्राह्मण धर्म की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ था। ये धार्मिक धरातल पर जनमानस की राहत प्रदान करना चाहते थे। जन-सामान्य में इनका खूब सम्मान हुआ। बौद्ध धर्म तो उस समय न केवल भारत में, अपितु भारत के बाहर, सुदूर पूर्व जापान, चीन, लंका आदि में फैल गया।

भारतीय भाषाओं के इतिहास में ५०० ईसा पूर्व से १००० ईसा तक के काल को मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा काल अथवा प्राकृत काल कहा जाता है। इस काल के विभिन्न प्राकृतों के विकास के आधार इस युग को क्रमशः प्रथम प्राकृत (पालि) काल, द्वितीय प्राकृत (प्राकृत) काल तथा तृतीय प्राकृत (अपभ्रंश) काल नाम से जाना जाता है।

पाली भाषा काल :

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा काल के प्रथम चरण (प्रथम प्राकृत काल) में जिस भाषा का विकास हुआ उसे 'पालि' कहा जाता है। पालि भाषा का सम्बन्ध प्रमुखतः बौद्ध धर्म के थेरवाद और हीनयान संप्रदाय से हैं। ऐसा माना जाता है कि आरंभ में 'पालि' शब्द का प्रयोग भाषा के अर्थ में न होकर बुद्धवचन के अर्थ में होता था। पं. विद्युशेखर भट्टाचार्य[३] ने बौद्ध पाठों के आधार पर पालि का अर्थ 'पंक्ति' माना है। पालि को ग्रामीण भाषा मानते हुए इसकी व्युत्पत्ति 'पल्लि' ग्राम से भी मानी जाती है। प्रसिद्ध विद्वान मैक्समूलर ने इसकी व्युत्पत्ति पाटली शब्द से मानी है।

यह भी कहा जाता है कि अशोक के पुत्र महेन्द्र ने पालि साहित्य अपने साथ सिंहल (लंका) ले जाकर वहाँ थेरवाद का प्रचार किया था, और इसी कारण सिंहल को बौद्धों ने इसे मगध की भाषा माना है। किन्तु डॉ. उदयनारायण तिवारी ने सभी मतों पर विचार करते हुए 'मध्यप्रदेश' की भाषा को ही पालि का आधार कहा है। पालि भाषा में लिखा गया साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। भगवान बुद्ध के उपदेशों का संग्रह त्रिपिटक, उन पर लिखी गई

'अटठकथा', 'दीपवंस', 'मिलिन्द', 'पन्हों', 'विसुद्धिमग्ग' आदि कृतियाँ पालि साहित्य के महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं। सम्राट अशोक ने भी पालि को राज-भाषा का पद प्रदान किया था, अत: अशोक के समय अधिकांश साहित्य की रचना पालि में ही हुई। एक ओर बौद्ध धर्म के अनुयाईयों के हाथों तो दूसरी ओर अशोक का राज्याश्रय पाकर पालि भाषा विकसित हो रही थी। अशोक के अभिलेखों में कलिंग, नेपाल की तराई, चम्पारन, दिल्ली, मेरठ, सारनाथ, राँची, इलाहाबाद, जबलपुर, रावलपिंडी, पेशावर, जूनागढ आदि स्थानों से प्राप्त अभिलेख पालि भाषा के प्रमुख हैं।

पालि को प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं तथा आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के बीच की कडी माना जाता है। संस्कृत से हिन्दी तक पहुँचने की सीढ़ी में पालि प्रथम सीढ़ी मानी जाती है।

प्राकृत भाषा काल :

१ ईसा से ५०० ईसा तक के काल को द्वितीय प्राकृत काल भी कहा जाता है। ऐसा माना जाता है कि वेदों की रचना के समय भी प्राकृतें थीं, जिनके शब्दों का प्रयोग वेदों में हुआ है।

प्रथम शती से प्राकृतों का स्वतन्त्र ईसा में विकास होने लगा। 'गाथा सप्तशति', 'वज्जागल्ला' जैसे मुक्तक तथा 'सेतुबंध', 'गौडवहो' जैसे प्रबन्ध काव्य प्राकृत भाषा के प्रमुख ग्रंथ हैं। मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं में प्राकृतों के अनेक रूप प्रचलित थे। विभिन्न विद्वानों ने प्राकृतों की संख्या अलग-अलग बताई है। प्राकृतों की कुल संख्या २७ मानी जाती है, जिनमें से ५ प्राकृतों पैशाची प्राकृत, शौरसैनी प्राकृत, मागधी, अर्ध मागधी और महाराष्ट्री को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है।

(१) **पैशाची प्राकृत :** पैशाची प्राकृत का सम्बन्ध पिशाच जाति से माना जाता है। यह जाति भारत के उत्तर-पश्चिम (पिशाच प्रदेश) में निवास करती थी। पैशाची प्राकृत का प्रभाव सिंधी, बिलोचिस्तान, पंजाब, कश्मीर आदि प्रदेशों की भाषाओं पर भी परिलक्षित होता है। राजस्थान और मध्यप्रदेश के कुछ भागों से भी पैशाची का सम्बन्ध माना जाता है।

(२) **शौरसैनी प्राकृत :** शौरसैनी प्राकृत का सम्बन्ध 'शूरसेन' से है। शूरसेन एक प्रदेश का नाम था, जिसे आजकल मथुरा कहा जाता है। इस प्रदेश में बोली जाने के कारण इसे शौरसैनी प्राकृत कहा जाता है। शौरसैनी पर संस्कृत का पर्याय प्रभाव है। शौरसैनी प्राकृत का प्रयोग संस्कृत नाटकों में स्त्रियों, विदूषकों आदि के लिए होता था। शौरसैनी प्राकृत पर संस्कृत का प्रभाव प्रचुर मात्रा में हैं।

(३) **मागधी प्राकृत :** मागधी प्राकृत का फैलाव अवध प्रदेश से लेकर बंगाल प्रदेश तक था। मगध प्रदेश में बोली जाने के कारण इसे मागधी कहा जाता है। ऐसा माना जाता है कि भगवान बुद्ध जिस भाषा में उपदेश देते थे, उसका परिष्कृत रूप मागधी प्राकृत है। संस्कृत नाटकों में दीन पात्रों के लिए मागधी प्राकृत का प्रयोग किया जाता था।

(४) **अर्ध मागधी प्राकृत :** काशी और कौशल प्रदेश की भाषा थी। अर्ध मागधी पर शौरसैनी और मागधी, दोनों का प्रभाव है। संस्कृत के नाटकों में भी अर्ध मागधी का

प्रयोग होता था। अर्ध मागधी को 'आर्षी' भी कहा जाता है।

(५) **महाराष्ट्री प्राकृत :** प्राकृतों में महाराष्ट्री प्राकृत को सर्वाधिक विकसित माना जाता है। इसका सम्बन्ध महाराष्ट्र प्रदेश से हैं। किन्तु यह महाराष्ट्र के अतिरिक्त गुजरात, पश्चिमी राजस्थान आदि प्रदेशों तक फैली हुई थी। हार्नले[४] के मत का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि 'महा' से तात्पर्य है 'महान राष्ट्र' तथा 'राष्ट्री' से तात्पर्य है 'जनपद'। अर्थात् महाराष्ट्री एक जनबोली मात्र न होकर समग्र उत्तरी भारत की भाषा थी। संस्कृत नाटकों में उच्चवर्गीय पात्रों द्वारा भी महाराष्ट्री प्राकृत का प्रयोग कराया गया है। महाराष्ट्री में विपुल मात्रा में साहित्य मिलता है। कालिदास, हर्ष आदि के नाटकों के गीतों में महाराष्ट्री प्राकृत का प्रयोग किया गया है। हाल रचित 'गाहा सतसई', प्रवरसेन रचित 'रावणवहो' आदि महाराष्ट्री प्राकृत की ही कृतियाँ हैं। महाराष्ट्री में प्रबन्ध एवं मुक्तक दोनों प्रकार का काव्य लिखा गया। जैन धर्म के श्वेताम्बर सम्प्रदाय में भी महाराष्ट्री प्राकृत का प्रयोग होता था।

अपभ्रंश काल :

मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं की अन्तिम कडी अपभ्रंश भाषा काल अथवा तृतीय प्राकृत काल कहा जाता है। ५०० ईसा से १००० ईसा के बीच पश्चिमी प्रदेश में जिस भाषा का विकास हुआ, उसे अपभ्रंश कहा जाता है। सामान्यत: भारतीय भाषाओं के इतिहास में अपभ्रंश को 'अमीरों' की भाषा माना जाता है। ऐसा भी माना जाता है, कि पाँचवीं शती के आसपास 'अमीरों' की एक जाति सिंध से होती हुई पश्चिमी भारत में प्रवेश कर रही थी। इसे गुर्जर जाति कहा जाता था। इस जाति का प्रमुख व्यवसाय पशुपालन था। इन अमीरों ने यहाँ के समाज और भाषा को प्रभावित किया। इन अमीरों की भाषा तथा शौरसैनी प्राकृत से विकसित भाषा को अपभ्रंश कहा जाने लगा, जो सिन्ध, राजस्थान, गुजरात, पंजाब, पश्चिम उत्तरप्रदेश आदि प्रदेशों में बोली जाती थी। आचार्य दण्डी ने काव्यादर्श में लिखा है कि काव्य में अमीरों की भाषा अपभ्रंश कही जाती है। अमीरों की यही अपभ्रंश कही जानेवाली ग्रामीण-भाषा राजभाषा और साहित्यिक भाषा के पद पर आसीन हुई।[५] संस्कृत के आचार्य राजशेखर ने 'काव्य मीमांसा' में अपभ्रंश कवियों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि राजभाषा में अपभ्रंश के कवियों का बैठने का स्थान पश्चिम में होता था। इस आधार पर यह भी कहा जाता है कि अपभ्रंश पश्चिमी प्रदेश की भाषा थी। डॉ. बाहरी लिखते हैं कि, ''अपभ्रंश वास्तव में आमीर, गुर्जर आदि जातियों की देश-भाषा थी। साहित्यिक भाषा बनने के बाद इसी ने देश के एक बृहत बडे भाग में मान्यता प्राप्त की थी। और इस नाते इतर प्रदेशों की प्राकृतों को प्रभावित किया, सबसे अधिक शैरसैनी को।''[६]

जो भाषा ईसा की पाँचवीं-छठ्ठीं शताब्दी में आमीरों, बनजारों और चाण्डालों की भाषा थी, वही दसवीं शताब्दी में लगभग साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई और पंजाब, राजस्थान, गुजरात, बंगाल, बुन्देलखण्ड आदि प्रदेशों की भाषा बन गई। प्रादेशिक भेदों के अनुसार अपभ्रंश के तीन भेद व्राचड, नागर तथा उपनागर किये जाते हैं। व्राचड अपभ्रंश सिंध क्षेत्र में फैली हुई थी। नागर अपभ्रंश गुजरात प्रदेश में प्रयुक्त होनेवाली भाषा थी। इनका विकास शौरसैनी अपभ्रंश के साथ माना जाता है। नागर ब्राह्मणों द्वारा बोली जाने के कारण

ही उसे नागर अपभ्रंश कहा जाता है।[७] उपनागर अपभ्रंश राजस्थान और दक्षिणी पंजाब में प्रयुक्त होनेवाली भाषा थी। डॉ. भोलानाथ तिवारी ने अपभ्रंशों के सात प्रमुख भेदों - शौरसैनी, पंजाबी, व्राचड, खस, महाराष्ट्री, अर्धमागधी तथा मागधी का उल्लेख किया है।[८]

(iii) आधुनिक भारतीय आर्य भाषा काल :

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का विकास १०वीं शताब्दी से माना जाता है। अपभ्रंश काल के मध्य भाग से (लगभग ८वीं शताब्दी से) हिन्दी के आरम्भिक स्वरूप के दर्शन होने लगते हैं। दूसरी बात यह है कि उस समय हिन्दी भाषा में बहुत कम साहित्य लिखा गया था। ९-१०वीं शती में जिस भाषा में साहित्य लिखा गया उस पर अपभ्रंश का प्रभाव मानते हुए उसे प्राचीन हिन्दी अथवा अपभ्रंश मिश्रित हिन्दी भी कहा जाता है।

भारत में आर्यों के आगमन के समय से ही भारतीय आर्य भाषाओं का जन्म एवं विकास माना जाता हैं। ऐसा माना जाता है कि आर्यो भारत में दो बार आये थे। प्रथम बार आर्यों की जो शाखा भारत आई थी, वह ईरान से होती हुई सिंधु पार करके पंजाब में बस गई। दूसरी शाखा गिलगित कश्मीर से होती हुई मध्यप्रदेश में आ बसी।

प्रथम शाखा पंजाब से सिंध, गुजरात, महाराष्ट्र, उड़ीसा, बंगाल और असम तक फैल गई तथा दूसरी शाखा सम्पूर्ण मध्यप्रदेश में फैल गई। डॉ. चटर्जी ने आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण इस प्रकार किया है।

(A) उदीच्च (उत्तरी)
- (१) सिंधी
- (२) लहँदा
- (३) पंजाबी (पूर्वी)

(B) प्रतीच्य (पश्चिमी)
- (४) गुजराती
- (५) राजस्थानी

(C) मध्यदेशीय
- (६) पश्चिमी हिन्दी

(D) प्राच्य (पूर्वी)
- (७) पूर्वी हिन्दी
- (८) बिहारी
- (९) उड़िया
- (१०) बंगला
- (११) असमी

(E) दक्षिणात्य (दक्षिणी)
- (१२) मराठी

उपर्युक्त वर्गीकरण में प्रस्तुत आधुनिक आर्य भाषाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :

(१) पंजाबी	(५) राजस्थानी	(९) उड़िया
(२) लहँदा	(६) पश्चिमी हिन्दी	(१०) बंगला
(३) सिंधी	(७) पूर्वी हिन्दी	(११) असमी
(४) गुजराती	(८) बिहारी	(१२) मराठी

(१) पंजाबी : पंजाब प्रदेश की भाषा को पंजाबी कहा जाता है। मूल रूप में यह अमृतसर के आसपास की भाषा थी किन्तु इसका क्षेत्र वर्तमान अम्बाला से लाहोर तक और जम्मू से भटिण्डा तक फैला हुआ माना जाता है। भारत विभाजन से पूर्व पंजाबी भाषा का क्षेत्र लहँदा भाषा के क्षेत्र से जुडा हुआ था, जो अब पाकिस्तान में हैं। पंजाबी को पैशाची

प्राकृत से उत्पन्न माना जाता है।[९] साथ ही इस पर शौरसैनी अपभ्रंश का प्रभाव भी माना जाता है। पंजाबी भाषा लण्डा नाम की लिपि में लिखी जाती है।

(२) लहँदा : यह पश्चिमी पंजाब में बोली जाने वाली भाषा है। इस विभाजन के पश्चात् लहँदा-प्रदेश पाकिस्तान में चला गया है। इस पर पंजाबी के साथ साथ पश्चिम की दरद तथा पिशाच भाषाओं का प्रभाव है। यह लण्डा तथा फारसी दोनों लिपियों में लिखी जाती है। लहँदा को पोढवारी, मुल्तानी, हिन्दकी, डिलाही आदि ग्रन्थ नामों से भी संबोधित किया जाता है। लहँदा को स्वतंत्र भाषा न मान कर पंजाबी की उपभाषा भी माना जाता है।[१०]

(३) सिंधी : यह सिंध प्रदेश की भाषा है। इसका विकास सिंध प्रदेश की व्राचड अपभ्रंश से माना जाता है। इसके मध्य भाग में बोली जानेवाली भाषा को 'विचोली' कहा जाता है। सिंधी-साहित्य इस विचोली भाषा में ही लिखा गया है। सिंधी की लिपि पर फारसी का पर्याप्त प्रभाव है। सिंधी को लण्डा लिपि में भी लिखा जाता है। कभी कभी इसे गुरुमुखी लिपि में भी लिखा जाता है।

(४) गुजराती : यह गुजरात प्रदेश और बम्बई नगर के लोगों की भाषा है। गुजराती का संबंध गुर्जर जाति से जोडा जाता है। आरंभ में गुर्जर जाति राजस्थान और गुजरात में आकर बसी थी। राजस्थानी और गुजराती में पाये जाने वाले साम्य का मूल कारण भी यही गुर्जर जाति है। पश्चिमी हिन्दी की व्रज भाषा से भी गुजराती का बडा साम्य है। राजस्थानी और गुजराती से पाई जाने वाली समानताओं को दृष्टिगत रखते हुए यह भी जाना जाता है कि सोलहवीं सदी से पूर्व दोनों भाषाएँ एक थी, बाद में पश्चिमी राजस्थानी से गुजराती का पृथक रूप में विकास हुआ। गुजरात के पश्चिम में बोली जानेवाली काठियावाडी इसकी एक प्रमुख बोली है। गुजराती भाषा के साहित्य को तीन कालों में विभाजित किया जाता है। **(१)** प्राचीन काल (१२०० से १५००) **(२)** मध्य काल (१५०० से १८००) **(३)** आधुनिक काल (१८०० के बाद)। गुजराती साहित्य विपुल मात्रा में समृद्ध है। गुजराती भाषा की लिपि 'कैथी' है। इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि इसके शीर्ष पर शब्दों को बाँधने हेतु शिरोरेखा नहीं होती। १७वीं शताब्दी तक गुजराती को देवनागरी लिपि में लिखा जाता था।

(५) राजस्थानी : यह राजस्थान प्रदेश की भाषा है। राजस्थान के बाहर यह सिंध के कोने तक और मध्यप्रदेश के मालवा तक बोली जाती है। इसे हिन्दी की उपभाषा मानते हुए राजस्थानी हिन्दी नाम से भी संबोधित किया जाता है। जब साहित्य जगत में व्रजभाषा प्रतिष्ठित नहीं हुई थी, तब राजस्थानी में ही साहित्य लिखा जाता था। उस समय की राजस्थानी को प्राचीन राजस्थानी अथवा डिंगल कहा जाता है। इसकी प्रमुख बोलियाँ और उप बोलियाँ ३० के लगभग मानी जाती हैं। मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाती, मालवी, मेवाड़ी आदि उसकी प्रमुख बोलियाँ हैं। राजस्थान और गुजरात की सीमा पर बोली जाने वाली 'भीली' भी इसकी एक प्रमुख बोली हैं। राजस्थानी का विकास शौरसैनी अपभ्रंश के नागर रूप से माना जाता है।

(६) पश्चिमी हिन्दी : पश्चिमी हिन्दी को ही मातृभाषा हिन्दी और राष्ट्रभाषा हिन्दी कहा जाता है। यह मध्यप्रदेश की भाषा है। उत्तरप्रदेश, राजस्थान, बिहार, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा और मध्यप्रदेश में व्यहृत होने वाली हिन्दी भाषा ही पश्चिमी हिन्दी है। पश्चिमी हिन्दी की

उत्पत्ति शौरसैनी अपभ्रंश से मानी जाती है। यह देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। पश्चिमी हिन्दी का साहित्य बडा समृद्ध साहित्य है।

(७) पूर्वी हिन्दी : यह हिन्दी पश्चिमी हिन्दी प्रदेश के पूर्व में बोली जाती है। पूर्व में उसकी सीमा बिहारी को स्पर्श करती है। यही कारण है कि इस पर बिहारी और पश्चिमी हिन्दी का प्रभाव है। यह उत्तर कौशल से दक्षिण कौशल के मध्य बोली जाती है। अत: इसे कोसली भी कहा जाता है। छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी, तथा अवधी इसकी प्रमुख बोलियाँ हैं। इसकी उत्पत्ति अर्धमागधी अपभ्रंश से मानी जाती है। पूर्वी हिन्दी की बोलियाँ अवधी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अवधी को देवनागरी लिपि में लिखा जाता है।

(८) बिहारी : इसे बिहारी हिन्दी भी कहते हैं। यह बिहार में पूर्वी हिन्दी प्रदेश से बंगला प्रदेश के मध्य बोली जाती है। बिहार के अतिरिक्त यह उत्तरप्रदेश के गाजीपुर, बलिया, वाराणसी, मिर्जापुर, आजमगढ़, बस्ती, गोरखपुर आदि जिलों में भी बोली जाती है। बिहारी हिन्दी की उत्पत्ति मागधी अपभ्रंश से मानी जाती है। मगही और मैथिली उसकी प्रमुख बोलियाँ हैं। इनमें साहित्यिक दृष्टि से मैथिली अधिक समृद्ध है। मैथिली की रचना के लिए देवनागरी लिपि का प्रयोग किया जाता है, जबकि मगही के लिए 'कैथी' लिपि का प्रयोग होता है।

(९) उडिय़ा : यह उड़ीसा प्रदेश की भाषा है। उड़ीसा का प्राचीन नाम कलिंग और उत्कल था। अत: इसे उत्कली भी कहा जाता है। उडिय़ा लिपि का विकास देवनागरी से हुआ। अत: यह देवनागरी से बहुत मिलती है। उडिय़ा की प्रमुख बोली 'भत्री' है। उडिय़ा से कृष्ण-भक्ति सम्बन्धी साहित्य विपुल मात्रा में लिखा गया।

(१०) बंगला : बंगला भारत की अत्यन्त समृद्ध भाषाओं में से एक है। यह बंगला प्रदेश की भाषा है। बंगला की दो प्रमुख भाषाएँ हैं - **(i)** पूर्वी बंगला-इसका केन्द्र ढाका है और आजकल यह बांगला देश में है। **(ii)** पश्चिमी बंगला - इसका केन्द्र कलकत्ता है। बंगला का प्रादुर्भाव मागधी अपभ्रंश से माना जाता है। बंगला की अपनी लिपि है जो देवनागरी से बहुत अधिक प्रभावित है। बंगला साहित्यिक दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है।

(११) असमी : यह बंगला से मिलती-जुलती दक्षिण असम प्रदेश की भाषा है। इसका विकास भी मागधी अपभ्रंश से माना जाता है। लम्बे समय तक बंगला से प्रभावित रहने के कारण असमी का अपने स्वतन्त्र रूप में विकास नहीं हो पाया। असमी की लिपि बंगला के ही समान है। असमी के लिए देवनागरी लिपि का प्रयोग भी किया जाता है। इस में कृष्ण-भक्ति साहित्य भी रचा गया।

(१२) मराठी : महाराष्ट्र प्रदेश में प्रयुक्त भाषा को मराठी कहा जाता है। उसका विकास महाराष्ट्री अपभ्रंश से हुआ। यह द्रविड प्रदेश की भाषाओं के निकट की भाषा है। अत: इस पर द्रविड भाषाओं का प्रभाव भी है। मराठी की अपनी 'मोडी' नामक लिपि है। इसके साथ ही मराठी देवनागरी लिपि में भी लिखी जाती है। कोंकणी, हलवी, खडी बोली मराठी आदि इसकी प्रमुख बोलियाँ हैं। मराठी में विपुल मात्रा में साहित्य लिखा गया।

भाषाओं का वर्गीकरण :

भाषाओं के बारे में दूसरा भी एक मत है वो भी देखें। उपभाषाओं अथवा बोलियाँ को छोडकर भाषाओं की संख्या दो सहस्र से लगभग है। इनमें से प्रसिद्ध तथा प्रधान भाषाओं का तो थोडा-बहुत अध्ययन हुआ है, किन्तु आज भी अमरिका, आफ्रीका तथा प्रशान्त महासागर के दुर्गम-प्रदेशों एवं द्वीपों की अनेक ऐसी भाषाएँ हैं, जिनका नाम मात्र का ही अध्ययन हुआ है। कठोर-काल के प्रहार से अतीतकाल की अनेक भाषाएँ विलुप्त हो चुकी हैं और संस्कृत-भाषाओं (Classical languages) के प्रहार तथा वैज्ञानिक अध्ययन के अभाव में अनेक बोलचाल की साधारण भाषाएँ विनष्ट होने के मार्ग में हैं।

भाषाविदों ने भाषाओं की विभिन्नता में एकता ढूंढकर उनका पारिवारिक वर्गीकरण किया है। इसके परिणाम स्वरूप परस्पर सम्बन्ध रखने वाली भाषाओं को एक परिवार के अन्तर्गत रखा गया है। यहाँ 'परस्पर सम्बन्ध' का भी स्पष्ट अर्थ जान लेना आवश्यक है। बात यह है कि प्रत्येक परिवार की विभिन्न भाषाओं का समय की प्रगति के साथ-साथ विकास हुआ है, किन्तु जब हम किसी एक परिवार के विकास क्रम का अध्ययन करते हुए अतीत अथवा प्राचीन-युग की ओर बढते हैं तो हमें एक ऐसी मूल भाषा मिलती है जिससे इस परिवार की सभी भाषाएँ उदभूत हैं। प्रत्येक परिवार की इन्हीं मूल भाषाओं को लेकर विभिन्न परिवारों की सृष्टि हुई है और एक परिवार की विभिन्न भाषाओं के पारस्परिक सम्बन्ध का भी रहस्य यही है। इस सूत्र के अनुसार अध्ययन करने से यह स्पष्ट विदित होता है कि संस्कृत, अवेस्ता की भाषा, प्राचीन-फारसी, आर्मनीय, प्राचीन-स्लाविक, प्राचीन-ग्रीक, लैटिन, प्राचीन-जर्मेनिक तथा प्राचीन-केल्तिक आदि भाषाएँ एक विशेष वर्ग अथवा परिवार की हैं। इस वर्ग की भाषाओं को 'भारोपीय' अथवा 'भारत-युरोपीय' या 'इन्दोयोरोपीय' के नाम से अभिहित किया गया है, क्योंकि भारत से लेकर योरप तक इनका प्रसार है।

इस सम्बन्ध में एक और बात उल्लेखनीय है। यथेष्ट सामग्री के अभाव अथवा सम्पर्कित भाषाओं के लुप्त हो जाने के कारण, भाषा कई प्राचीन तथा अर्वाचीन भाषाओं का वर्गीकरण नितान्त कठिन है। इन भाषाओं में मेसोपोटेमिया की प्राचीनतम-भाषा सुमेरीय (Sumerian), पश्चिम इरान के सूसा प्रान्त की भाषा एलागीय (Elamite), पूर्वी मेसोपोटेमिया की भाषा मितन्नी (Mitanni), क्रीट-द्वीप की प्राचीन-भाषा एवं इटली की प्राचीन-भाषा एत्रस्कन आदि मुख्य है। इसी प्रकार आधुनिक भाषाओं में फ्रान्स तथा स्पेन के मध्य, पिरेनिज़ पर्वतमाला के पश्चिम में बोली जाने वाली बास्क (Basque), दक्षिण-पश्चिमी, आफ्रीका की बुशमन (Bushman) एवं हॉटनटॉट (Hottentot) भाषाएँ तथा जापान, कोरिया और ओस्ट्रेलिया की प्राचीन भाषाओं का अब तक वर्गीकरण नहीं हो पाया है।

उपर की भाषाओं को छोडकर अन्य भाषाओं को निम्नलिखित वर्गों अथवा परिवारों में विभाजित किया गया है -

(A) भारोपीय अथवा भारत-योरोपीय परिवार

(B) सामी-हामी अथवा सेमेटिक-हेमेटिक वर्ग

(C) बाण्टू वर्ग

(D) फिन्नो - उग्रीय वर्ग

(E) तूर्क-मंगोल -मञ्चू वर्ग
(F) काकेशीय वर्ग
(G) द्रविड वर्ग
(H) आस्ट्रिक - वर्ग
(I) भोट - चीनी वर्ग
(J) उत्तरी - पूर्वी सीमान्त की भाषाएँ
(K) एस्किमो वर्ग
(L) अमेरिका के आदिवासियों की भाषाएँ।

(भारोपीय परिवार में से हिन्दी गुजराती का विभाजन हुआ है इसलिए हम भोरोपीय का विवरण अंत में (L) अमेरिका के आदिवासियों की भाषाएँ विभाग के बाद में देखेंगे।)

(B) सामी-हामी अथवा सेमेटिक-हेमेटिक वर्ग :

इस परिवार के अन्तर्गत सामी तथा हामी, दो प्रधान शाखाएं हैं। कई भाषाविदों इन दोनों शाखाओं को स्वतन्त्र परिवार की भाषाएँ मानते हैं। इस परिवार के नामकरण के सम्बन्ध में बाइबिल का आख्यान प्रसिद्ध है। हजरत नौह के ज्येष्ठ पुत्र 'सैम' दक्षिण-पश्चिमी एशिया के 'अरब', 'असीरिया' और 'सीरिया' के निवासियों एवं यहूदियों के आदि पुरुष माने जाते हैं। इसी प्रकार 'सैम' के छोटे भाई 'हैम' आफ्रीका के 'मिस्र', 'फोनीशिया', 'इथियोपिया' आदि के निवासियों एवं कनानीय (Cananite) लोगों के पूर्वज बतायें जाते हैं। इन्हीं 'सैम' तथा 'हैम' के नाम पर इस वर्ग का यह नाम पड़ा।

सामी भाषा की पूर्वी उपशाखा के अन्तर्गत ही आसिरीय (Assyrian), आक्कदीय (Accadian) अथवा बाबिलोनीय (Babylonian) जैसी प्राचीन भाषाएँ आती है। इन दोनों भाषाओं से कीलाक्षर (वाणमुख अक्षर) में प्रस्तर तथा मिट्टी की खपरैल पर लिखित २५०० वर्ष ई. सन् पूर्व के प्रत्न-लेख मिलते हैं। पश्चिमी उपशाखा के उत्तर वर्ग के अन्तर्गत कनानीय (Cananite), फिनिशीय (Phoenician) तथा आरामीय (Aramaic) भाषाएँ आती हैं। बाइबिल के 'ओल्डटेस्टामेण्ट' की मूल भाषा हिबू भी इस परिवार की है। पश्चिमी-उपशाखा के दक्षिण-वर्ग के अन्तर्गत अरबी तथा अबीसीनिया की बोलचाल की भाषाएँ आती हैं। इनमें अरबी तो जीवित भाषा के रूप में सम्पूर्ण उत्तरी आफ्रीका में परिव्याप्त है। इस्लाम के प्रचार तथा प्रसार के साथसाथ इसने पूर्वी एशिया की अनेक भाषाओं को दबाकर शक्तिशाली रूप धारण कर लिया है। अरबी में उपलब्ध प्राचीनतम लेख ३२८ ईस्वी का है।

हामी शाखा का एकमात्र उदाहरण है, प्राचीन-मिस्र की भाषा। ईस्वी पूर्व, चार सहस्र वर्ष के, इसके नमूने उपलब्ध हैं। मिस्र की प्राचीन-भाषा से ही काप्टिक (Coptic) की उत्पत्ति हुई है। इसमें दूसरी तीसरी शताब्दी का इसाई तथा बाद का इस्लामी-साहित्य मिलता है। इसके शब्द समूह पर ग्रीक भाषा का अत्यधिक प्रभाव है। १७वीं शताब्दी से काप्टिक भाषा विलुप्त हो गई है और तब से सम्पूर्ण मिस्र में बोलचाल की भाषा के रूप में अरबी का व्यवहार हो रहा है।

इस वर्ग की दो उपशाखाओं का उल्लेख आवश्यक है। इनमें एक है बर्बर (Berber) अथवा लीबीय (Lybian) और दूसरी है कुशीय (Kushite) अथवा एथियोपीय (Ethiopean)। बर्बर-भाषाएँ

आफ्रीका स्थित पश्चिमी सहारा, मोरक्को तथा अल्जीरिया आदि स्थानों में बोली जाती हैं। कुशीय उपशाखा के अन्तर्गत भी अनेक कथ्य - भाषाएँ हैं। इनमें सोमाली भाषा व्यापारियों के बडे काम की हैं।

(C) बाण्टू वर्ग :

इस परिवार की भाषाएँ दक्षिण और मध्य आफ्रीका में नेटाल और पाँच अंश देशान्तर के बीच बोली जाती है। 'बा-ण्टू' का अर्थ है 'मनुष्यों'। इसमें 'बा' बहुवचनार्थक उपसर्ग है। भाषाविद् इसके अन्तर्गत लगभग डेढ़ सौ विभाषाओं की गणना करते हैं, जिनमें परस्पर थोडा-बहुत अन्तर है। इन विभाषाओं को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से पूर्व, मध्यवर्ती तथा पश्चिमी वर्गों में भी विभाजित किया जाता है। इस परिवार की सबसे महत्त्वपूर्ण भाषा है जंज़ीवार की स्वाहिली। यह सम्पूर्ण पूर्वी आफ्रीका तट की राष्ट्रभाषा है। इसमें थोडा-बहुत साहित्य भी है और आजकल स्कूलों में यह पढ़ाई भी जाती है। तुर्कों की भाँति ही, यहाँ भी, अरबी लिपि के स्थान पर अब लिखने के लिए रोमन का प्रयोग होने लगा है। बाण्टू के अन्तर्गत आनेवाली गंडा, बेम्बा, ग्लोसा, जूलू आदि विभाषाओं के प्रचार तथा प्रसार के लिए दक्षिणी आफ्रीका की सरकार उद्योग कर रही है। सरकार द्वारा प्राचीन बाण्टू के ग्राम-गीतों, ग्राम-कक्षाओं तथा ग्राम-गाथाओं के जो संग्रह प्रकाशित हुए हैं उनमें जन-इतिहास तथा भाषा-विज्ञान सम्बन्धी प्रभूत सामग्री है।

(D) फिन्नो - उग्रीय वर्ग :

इसके अन्तर्गत फिनलैण्ड की फिन्नीय तथा हुंगेरी की हुंगेरीय अथवा मग्यार (Magyar) भाषाएँ आती हैं। फिन्नीय (Finish) के अन्तर्गत फिनलैण्ड तथा उत्तरी रूस से श्वेत सागर तक एस्थीनिया, लिबोनिया तथा लैपलैण्ड में बोली जानेवाली अनेक विभाषाएँ आती हैं। इनमें फिनलैण्ड की फिन्नीय अथवा सुओमी सभ्य-स्तर की भाषा है। इसमें तेरहवीं शताब्दी से अब तक का अच्छा साहित्य भी मिलता है। 'कलेवल' इस भाषा का राष्ट्रीय-महाकाव्य है। फिन्नीय तथा मग्यार भाषाओं पर जर्मन का अत्यधिक प्रभाव है। एक ओर इनमें जर्मन की शब्दावली ग्रहण कर ली गई है तो दूसरी ओर जर्मन पद रचना का भी मग्यार पर अत्यधिक प्रभाव पडा है।

(E) तूर्क - मंगोल - मञ्चू वर्ग :

इस परिवार के तीन विभाग है - तुर्क - तातार - मंगोल एवं मञ्चू। कई भाषाविदों इन तीन विभागों को तीन स्वतन्त्र परिवार मानते हैं। प्रथम विभाग की भाषाओं में तुर्क (Turkish) तातार (Tartur), किरगिज़ (Kirgiz) तथा उज्बेग आदि उल्लेखनीय हैं। अभी कुछ समय पूर्व तक तुर्की भाषाओं में अरबी-फारसी शब्दों का बाहुल्य था, किन्तु राष्ट्रीय नेता कमालपाशा के समय से भाषा और साहित्य में पुनरुज्जीवन की लहर दौड गई है। अरबी-लिपि की जगह रोमन-लिपि अपना ली गई है तथा विदेशी अरबी-फारसी शब्दों का स्थान तुर्की शब्दों ने ले लिया है।

मंगोल-शाखा की भाषाएँ केवल मंगोलिया की सीमा में ही नहीं बोली जाती, अपितु एशिया के बाहर यूरप स्थित रूस तक इनका विस्तार है।

मञ्चू के अन्तर्गत मन्चूरिया की **मञ्चू** भाषा तथा येनिस्सी नदी से पूर्व और दक्षिण दिशाओं में ओखोतस्क तथा जापान तक के भू-भाग की तुंगुज़ लोगों की तुंगुज भाषा आती है। तुंगुज

- भाषियों की संख्या वीस सहस्र के लगभग है। इन भाषाओं में साहित्य का अभाव है।

(F) काकेशीय वर्ग :

इस वर्ग की भाषाओं का क्षेत्र कृष्ण सागर से कैस्पियन सागर के बीच, काकेशस-पर्वत-शृंखला है। पर्वतीय-प्रकृति के कारण यहाँ की विभाषाओं की विविधता बहुत बढ़ गई है। अत्यन्त प्राचीन काल से ही यह प्रदेश आक्रमणकारियों से आंतकित जातियों का शरण-स्थल रहा है। इस कारण इन भाषाओं की पद-रचना बाह्य-प्रभावों के कारण क्लिष्टता एवं जटिलता आ जाना स्वभाविक है। काकेशीय-वर्ग की उल्लेखनीय भाषा जार्जिया की जार्जीय (Georgian) भाषा है।

(G) द्रविड वर्ग :

इस परिवार की भाषाओं के बोलने वाले आजकल दक्षिण भारत में निवास करते हैं। विद्वानों का मत है कि आर्यों के आगमन से पूर्व ये लोग सिन्ध तथा पंजाब तक के भू-भाग में फैले हुए थे तथा मोहन-जो-दडों एवं हडप्पा की सभ्यताओं के यही जनक थे। इस समय भारत के लगभग ७ करोड १० लाख व्यक्ति विभिन्न द्रविड-भाषाओं का व्यवहार करते हैं। द्रविड वर्ग में चार भाषाएँ उपलब्ध है (१) तेलुगु या आन्ध्र (२) कन्नड (४) तमिळ या द्रमिड या द्रविड (४) मलयालम या केरल। उसमें भी उपजातियों के मुताबिक भाषाएँ बोली जाती हैं ये हैं तुळू, कोडगू या कुर्ग, तोदा, गोंडी, कन्ध या कुई, कुंडखू या ओराँव। ये सब में तमिळ साहित्य का स्थान ऊँचा है। बाद में कन्नड साहित्य, तेलुगु साहित्य, मलयालम का स्थान आता है।

(H) आस्ट्रिक - वर्ग :

इसका दूसरा नाम निषाद भी है। इस वर्ग की दो शाखायें हैं - आस्ट्रो - एशियाटिक (Austro-asiatic) एवं आस्ट्रोनेशियन (Austro-nesian)। प्रथम शाखा की दो उपशाखायें हैं - (१) मॉनख्मेर (Mon-khmer) तथा (२) कोल या मुण्डा। मॉनख्मेर उपशाखा की भाषायें बर्मा, स्पाम तथा निकोबार द्वीप समूह में बोली जाती है। कोल या मुण्डा उपशाखा की भाषाएँ भारतवर्ष के अनेक स्थानों - पश्चिम बंग, छोटा नागपुर, मध्यप्रदेश तथा मद्रास प्रदेश के पूर्वोत्तर भाग में बोली जाती है। संथाली भाषा इसी के अन्तर्गत आती है। संथाल लोग बिहार के निवासी हैं। संथाली से ही सम्बन्ध रखने वाली मुण्डारा, हो, भूमिज, खडिया आदि भाषाएँ बिहार के कोल - भाषा - भाषियों द्वारा बोली जाती है। असम प्रान्त के खसिया पहाड की खसी बोली भी इसी के अन्तर्गत आती है। द्वितीय उपशाखा की उल्लेखनीय भाषाएँ मलय (Malay), जवद्वीपीय (Javanese), बलिद्वीपीय (Balinese) आदि हैं। इनके अतिरिक्त फिलिपाईन द्वीप -समूह, न्यूजीलैण्ड, हवाई तथा फिजी आदि प्रशान्त महासागर के द्वीपों में भी यह प्रचलित है।

(I) भोट - चीनी वर्ग :

इस वर्ग की तीन शाखाएँ है - (१) चीनी (Chinese) (२) थाई (Thai) अथवा ताई (Tai) एवं (३) भोट वर्मी (Tibeto-Burman) है। बोलने वालों की संख्या की दृष्टि से चीनी भाषा सब से बडी भाषा है। इसके प्राचीनतम नमूने ईसा पूर्व दो सहस्र वर्ष के उपलब्ध हैं। द्वितीय शाखा की भाषा स्पाम देश में बोली जाती हैं। तृतीय शाखा की तीन प्रधान उपशाखाएं हैं। ये

हैं - (i) भोट अथवा तिब्बती (ii) बर्मी एवं (iii) बोडो। बोडो की अन्य उपजातियों गारो, लुशेई तथा नागा आदि हैं।

(J) उत्तरी - पूर्वी सीमान्त की भाषाएँ :

इस वर्ग की भाषाएँ एशिया के उत्तरी पूर्वी सीमान्त में बोली जाती हैं। इनके बोलने वालों की संख्या भी अत्यल्प ही हैं। इनमें एक मात्र उल्लेखनीय भाषा है चुच्ची (Chukchee)।

(K) एस्किमो वर्ग :

इस वर्ग की भाषाएँ उत्तर सीमान्त देशों से ग्रीनलैण्ड होते हुए एलूशियन द्वीप-समूह तक के भू-भाग में बोली जाती हैं।

(L) अमेरिका के आदिवासियों की भाषाएँ :

अमेरिका के आदिवासियों के ध्वंस के साथ-साथ वहाँ की भाषाएँ भी विनष्ट हो गई हैं। और उनका स्थान योरप की अंग्रेजी, फ्रेंच तथा स्पेन की भाषाओंने ले लिया है। किन्तु आज भी कहीं कहीं ये आदिवासी बच गए हैं। इनकी भाषाओं को आठ प्रधान वर्गों में बाँटा जा सकता हैं। ये हैं (१) ऑलगंकियन् (Algonquian), (२) आथाबास्कन् (Athabascan), (३) इरोकोपीयन् (Iroquoion), (४) मुस्कोगियन् (Muskogean), (५) सियोयन् (Siouan), (६) पिमन् (Piman), (७) शोशोनियन् (Shoshonean) तथा (८) नाहुऑट्लन् (Nahuatlan) शेष वर्ग की आज्टेक (Aztec) भाषा उल्लेखनीय हैं।

अब हम भारोपीय परिवार में से हिन्दी, राजस्थानी और गुजराती का विभाजन हुआ है, यही भारोपीय परिवार का विवरण देखेंगे।

(A) भारोपीय अथवा भारत-योरोपीय परिवार :

जिस मूलभाषा से भारोपीय परिवार की विविध भाषाओं की उत्पत्ति हुई है उसके नमूने आज उपलब्ध नहीं हैं। फिर भी इस परिवार की प्राचीन-भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात् विद्वानों ने उस मूलभाषा की कल्पना अवश्य की है। इस कल्पना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अनुमानतः २७००-२६०० वर्ष, ईसा पूर्व, उस मूलभाषा से इस परिवार की प्राचीन-भाषाओं की उत्पत्ति हुई होगी और समय की प्रगति के साथ-साथ ये भाषाएँ योरप तथा एशिया के विभिन्न देशों में फैली होंगी। भारोपीय भाषा-भाषियों का आदिम अथवा मूल निवास-स्थान कहाँ था, इस सम्बन्ध में भी विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है किन्तु इस परिवार की परवर्ती भाषाओं के गहरे अध्ययन के बाद पण्डित लोग इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि यह स्थान यूरप में ही था।

भारोपीय परिवार के अन्तर्गत निम्नलिखित दस भाषाओँ की गणना की जाती है। ये हैं -

(१) केल्तिक (२) इतालिक (३) जर्मनिक अथवा ट्यूटनिक (४) ग्रीक (५) बाल्तोस्लाविक (६) आलबनीय (Albanian) (७) आर्मनीय (Armenian) (८) खत्ती अथवा हत्ती (Hittite) (९) तुखारीय (Tokharian) (१०) भारत-इरानी अथवा आर्य।

उपरोक्त भाषाओं में से खत्ती तथा तुखारीय भाषाएँ लुप्त हो चुकी हैं। शेष आठ भाषाएँ अद्यावधि प्रचलित हैं। इन भाषाओं का संक्षिप्त परिचय देखेंगे।

भारोपीय - वर्ग की भाषाओं का संक्षिप्त परिचय :

केल्तिक : यह भाषा एक समय में समग्र पश्चिमी तथा मध्य-यूरप में प्रचिलत थीं, किन्तु परवर्तीयुग में इतालिक तथा जर्मेनिक भाषाओं के प्रसार से धीरे धीरे इसका लोप हो गया। इस वर्ग की भाषाओं में आयरिश मुख्य है। इसके प्राचीनतम नमूने ईसा की पाँचवीं शती से उपलब्ध हैं। आधुनिक आयरिश का आरम्भ १७वीं शताब्दी से होता है। राष्ट्रीय-जागरण तथा स्वतंत्रता के साथ-साथ आयरिश लोग अपनी भाषा की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हो रहे हैं।

केल्तिक-वर्ग की दूसरी उल्लेखनीय भाषा किम्रिक अथवा वेल्श हैं। यह सजीव तथा सशक्त भाषा है। आज भी इसके बोलने वालों की संख्या दस लाख के लगभग है। इसमें ८०० ई. तक के पुराने कागज़-पत्र मिलते हैं। १००० ई. से १३०० ई. के बीच में इसमें सर्वोत्कृष्ट साहित्य-रचना हुई थीं।

इतालिक : इतालिक का केल्तिक के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है। प्रारम्भ में ये दोनों भाषाएँ एक थीं किन्तु बाद में इनका स्वतंत्र रूप में विकास हुआ। यही कारण है कि अनेक भाषाविद् इन दोनों को स्वतंत्र भाषाएँ न मानकर इन्हें केल्तिक - इतालिक रूप में एक साथ ही लेते हैं।

इस शाखा की दो प्राचीन भाषाएँ ओस्कन (Oscan) तथा अम्ब्रियन (Umbrian) अब विलुप्त हो चुकी हैं। इनमें ओस्कन तो दक्षिणी इताली में, प्रथम शताब्दी ईस्वी तक बोली जाती थीं। इन दोनों भाषाओं के सम्बन्ध की सामग्री अब केवल पुरालेखों में सुरक्षित हैं।

इतालिक - शाखा की सबसे प्रधान एवं उल्लेखनीय भाषा है, लैटिन। आरम्भ में यह लैटियम (Latium) प्रदेश की भाषा थी, किन्तु रोम की प्रभुत्ववृद्धि के साथ-साथ यह रोम साम्राज्य की भाषा बन गई। इसके प्राचीन लेख ३०० ई. पूर्व के उपलब्ध हैं। संस्कृत के समान ही उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य भाग तक लैटिन, यूरप के पण्डितों तथा धर्म की भाषा थी। रोम साम्राज्य के विस्तार के साथ-साथ यह यूरप के समग्र दक्षिणी-भाग में फैल गई तथा वहाँ की बोलचाल की भाषाओं को दबाकर इसने अपना एकच्छत्र - प्रभुत्व स्थापित कर लिया। लैटिन के इसी बोलचाल के रूप से आधुनिक इतालिक अथवा रोमान्स भाषाओं की उत्पत्ति हुई। इसके अन्तर्गत इताली की इतालीय (इतालिक), फ्रांस की फ्रेंच पोर्तगाल की पोर्तुगीज, स्पेन की स्पेनीय तथा रोमानी आदि भाषाएँ आती हैं।

जर्मनिक अथवा ट्यूटनिक : भारोपीय परिवार की भाषाओं में जर्मनिक अथवा ट्यूटनिक शाखा की भाषाएँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। अंग्रेजी जो वर्तमान काल में विश्व भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हैं, इसी शाखा के अन्तर्गत आती है। सम्भवत: जर्मन शब्द का प्रयोग ईस्वी पूर्व की पहली शताब्दी में केल्तिक लोगोंने 'पडोसी' के अर्थ में किया था। इस शाखा को भौगोलिक दृष्टि से तीन उपशाखाओं में विभक्त किया जा सकता हैं। ये हैं (१) पूर्व-जर्मनिक (२) उत्तर-जर्मनिक तथा (३) पश्चिम-जर्मनिक।

पूर्व-जर्मनिक उपशाखा आज लुप्त हो चुकी है। इसकी प्राचीन-भाषा गॉथिक में बाइबिल के कुछ अनुदित अंश मिलते हैं। ईसा की चौथी शताब्दी में पादरी उल्फिला (Wulfila)ने यह अनुवाद किया था। गॉथिक में अनुदित इस बाइबिल में ही जर्मनिक-शाखा

के प्राचीनतम नमूने आज उपलब्ध हैं।

उत्तर-जर्मनिक भाषाएँ डेनमार्क, नोर्वे तथा स्वेडन तक फैली हुई हैं। इनके अन्तर्गत नोर्वेजियन (नोर्वे की भाषा), स्वीडिश (स्वेडन की भाषा), डैनिश (डेनमार्क की भाषा) तथा आइसलैण्डिक (आईसलैण्ड की भाषाएँ) आती हैं। आईसलैण्ड की भाषा (प्राचीन नॉर्स) में लिखित एड्डा (Edda) साहित्य के रूप में इसके प्राचीन नमूने उपलब्ध हैं। इसकी रचना ७०० ई. के लगभग हुई थी। यह पद्य तथा गद्य दोनों में हैं तथा इसका आधार प्राचीन पौराणिक गाथाएँ हैं।

पश्चिमी-जर्मनिक उपशाखा के दो मुख्य वर्ग हैं - (१) उच्च जर्मन (२) निम्न-जर्मन। निम्न-जर्मन के अन्तर्गत ही प्राचीन निम्न-फ्रेंक तथा मध्य-फ्रेंक से होते हुए नेदरलैण्ड की विभाषाएँ विकसित हुई हैं। इनमें डच तथा फ्लेमिश मुख्य हैं। इनमें सुन्दर साहित्य उपलब्ध हैं। निम्न-जर्मन के ही एक अन्य वर्ग, आँग्लसैक्सन से अंग्रेजी भाषा विकसित हुई है। ब्रिटेन में पहले केल्तिक शाखा की भाषाएँ प्रचलित थीं, किन्तु ईसा की छठ्ठी शताब्दी में जर्मन जाति की आँग्ल, सैक्शन तथा जुट उपजातियों ने ब्रिटेन को अपना निवास स्थान बनाया। इन्हीं के द्वारा यहाँ केल्तिक के स्थान पर जर्मन शाखा की भाषा, अंग्रेजी की प्रतिस्थापना हुई। अंग्रेजी के प्राचीनतम नमूने ७०० ई. के लगभग के उपलब्ध हैं। साहित्य तथा बोलने वालों की संख्या की दृष्टि से अंग्रेजी आज विश्व की श्रेष्ठ भाषाओं में से हैं। उच्च-जर्मन के अन्तर्गत ही आधुनिक-जर्मन भाषा आती है। यह मध्य-जर्मन से होते हुए कालान्तर में विकसित हुई है।

ग्रीक : प्राचीन काल में ग्रीक भाषा, ग्रीस, एशियामाइनर के प्रदेश, साइप्रेस-द्वीप तथा एजियन-उपसागर के द्वीप-समूहों में प्रचलित थीं। इसकी अनेक उपभाषाएँ थीं जिनमें ऐटिक (Attic), आयोनिक (Ionic), एवं डोरिक (Doric) प्रधान थीं।

बाल्तो स्लाविक : इस शाखा की भाषाओं के अन्तर्गत दो उपशाखाएँ (१) बाल्तिक (२) स्लाविक आती हैं। प्रथम उपशाखा के अन्तर्गत तीन भाषाएँ (क) प्राचीन-प्रशन (ख) लिथुआनिया की भाषा लिथुआनीय तथा लाटेविया की भाषा लेटी आती हैं। इनमें प्राचीन-प्रशन सहस्रवीं शताब्दी में ही लुप्त हो गई। लिथुआनीय-भाषा भारोपीय-भाषाओं में सबसे प्राचीन हैं। इसमें वैदिक-संस्कृत तथा प्राचीन-ग्रीक की भाँति ही संगीतात्मक-स्वराधात मिलता है। लेटी लिथुआनीय से अधिक परिवर्तित हो चुकी है।

स्लाविक समूह की भाषाएँ बाल्तिक की अपेक्षा अधिक विस्तृत एवं बहुमुखी हैं। दक्षिण-स्लाविक के अन्तर्गत सर्वीय एवं बुल्गेरीय दो भाषाएँ आती हैं। पश्चिम-स्लाविक के अन्तर्गत चेक, स्लावेकीय एवं पोलिश भाषाओं की गणना है। इनमें प्रथम दो तो चेकोस्लोवेकिया की भाषाएँ हैं और तीसरी पोलैण्ड की। रूस एवं वहाँ की उपभाषाएँ पूर्व-स्लाविक के अन्तर्गत आती हैं।

आल्बनीय : एड्रियाटिक सागर के पूर्वी तट पर आल्बनीय भाषा का क्षेत्र है। सहस्रवीं शताब्दी से पूर्व की आल्बनीय भाषा का कोई साहित्य नहीं मिलता। भारोपीय भाषाओं में आल्बनीय सबसे अधिक विकृत है। इसके शब्द भंडार में लैटिन, ग्रीक, स्लाविक, इतालीय एवं तुर्की आदि प्राचीन एवं अर्वाचीन भाषाओं के अनेक शब्द आ मिले हैं।

आर्मनीय : आर्मेनिया में आर्मनीय-भाषा ईसा पूर्व सातवीं-आठवीं शताब्दी से प्रचलित

है। वर्तमान समय में यह आर्मेनिया के बाहर कहीं-कहीं बोली जाती हैं। पहले विद्वानों की यह धारणा थी कि आर्मनीया, इरानी की ही एक भाषा है, किन्तु बाद में इसकी स्वतन्त्र सत्ता सिद्ध हो गई। आर्मनीय वस्तुतः बाल्तोस्लाविक तथा आर्य भाषाओं के मध्य की एक शृंखला है। यह भारोपीय-परिवार के शतम् वर्ग की भाषा है। इस पर काकेशीय तथा सभी भाषाओं का भी पर्याप्त प्रभाव है।

खत्ती अथवा हत्ती : सन १९०६-७ में ह्यूगोविंकलर (Hugo Winkler) नामक जर्मन विद्वान ने एशिया माइनर के अन्तर्गत प्राचीन कप्यदोकिया-प्रदेश के बोगाज़कुई ग्राम में अनेक पुरालेखों को खोज निकाला। ये लेख मिट्टी की पट्टिकाओं पर कीलाक्षरों (Cunciform) में लिखे हुए हैं। बोगाज़कुई वस्तुतः ईसा पूर्व पन्द्रहवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक द्वितीय हत्ती साम्राज्य की राजधानी थी। लेख हत्ती साम्राज्य के पुराने रेकार्ड अथवा कागज़ पत्र हैं। इनमें से कतिपय दो-भाषाओं (हत्ती-आक्कदीय) तथा अन्य तीन भाषाओं (हत्ती-आक्कदीय-सुमेरीय) में लिखित हैं।

तुखारीय : हत्ती की भाँति ही तुखारीय अथवा तोरवारीय का आविष्कार भी वर्तमान शताब्दी में हुआ है। मध्य एशिया स्थित चीनी तुर्किस्तान में अंग्रेज, फ्रेन्च, रूसी तथा जर्मन विद्वानों के फलस्वरूप सन १९०४ ई. में अनेक हस्तलिखित-ग्रंथ तथा कागद-पत्र प्राप्त हुए। इन ग्रन्थों तथा लेखों की लिपि खरोष्ठी तथा ब्राह्मी थी। यह भारोपीय परिवार के कतम् (केण्टुम्) वर्ग की प्रमाणित हुई। चूंकि इस भाषा के बोलने वाले 'तुखार' अथवा 'तोखार' लोग थे, अतएव इस भाषा का नामकरण तुखारीय अथवा तोखारीय किया गया। सातवीं शताब्दी के लगभग यह भाषा लुप्त हो गई।

भारत-इरानी अथवा आर्यवर्ग :

भारत-इरानी भाषा-भाषी अपने को आर्य कहकर सम्बोधित करते थे। यही कारण है कि इस वर्ग की भाषा को भारत-इरानी अथवा आर्य नाम से अभिहित किया जाता है। भारोपीय-परिवार की भाषाओं में भारत-इरानी वर्ग में सब से प्राचीन साहित्यिक-सामग्री उपलब्ध है। इसकी दो उपशाखाएँ हैं (१) इरानीय (२) भारतीय। इरानीय के अन्तर्गत भी दो भाषाएँ आती हैं। इनमें एक है अवेस्ता की भाषा तथा दूसरी है प्राचीन फारसी भाषा। भारतीय-आर्यभाषा (संस्कृत) तथा इरानीय-आर्य-भाषा (अवेस्ता की भाषा) में अत्यधिक साम्य है।

भारत में आर्यों का आगमन :

साधारणतया यह माना जाता है कि २०००-१५०० ई. पू. भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमांत-प्रदेश में आर्यों के दल आने लगे थे। यहाँ पहिले से बसी हुई अनार्य जातियों को परास्त कर आर्यों ने सप्त-सिंधु (आधुनिक पंजाब) देश में अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। यहाँ से वे धीरे धीरे पूर्व की ओर बढते गये और मध्य देश, काशी, कौशल, मगध-विदेह, अंग-बंग तथा कामरूप में स्थानीय अनार्य जातिओं को अभिभूत कर उन्होंने अपने राज्य स्थापित कर लिये। इस प्रकार समस्त उत्तरापथ में आर्यों का आधिपत्य स्थापित हो गया। अब आर्य-संस्कृति ने दक्षिणापथ में प्रवेश किया और जब यूनानी राज-दूत मैगस्थनीज़ भारत आया तब तक आर्य-संस्कृति सुदूर दक्षिण में फैल चुकी थी।

आर्यों अपने साथ सुविकसित भाषा एवं यज्ञ-परायण संस्कृति भी लाये थे। राजनीतिक-विजय के साथ साथ उनकी भाषा एवं संस्कृति भी भारत में प्रसार पाने लगी। आर्यों के आगमन से

पूर्व सिंधु-घाटी में सभ्यता का बहुत विकास हो चुका था। अतः यह सर्वथा संभव है कि आर्यों की भाषा, संस्कृति तथा धार्मिक-विचारों पर अनार्य-जातियों के सम्पर्क का पर्याप्त प्रभाव पडा।

विकास क्रम के आधार पर भारतीय-आर्य-भाषा के तीन विभाग किये जाते हैं (१) प्राचीन-भारतीय-आर्य-भाषा (वैदिक-संस्कृत, लौकिक-संस्कृत) (२) मध्य-भारतीय आर्य-भाषा (अशोक के अभिलेखों की भाषा, पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश) (३) आधुनिक-भारतीय-आर्य-भाषा (हिन्दी, बुंदेली, गुजराती, मराठी, पंजाबी, सिन्धी आदि)।

प्राचीन - भारतीय आर्य भाषा :

भारत में आनेवाले आर्यों के दल अपने साथ यज्ञ-परायण संस्कृति लाये थे। प्राचीन-इरानी-संस्कृति के अध्ययन से विदित होता है कि भारत में प्रवेश करने से पूर्व ही आर्यों में इन्द्र, मित्र, वरूण आदि देवताओं की उपासना प्रचलित थी। भारत में बस जाने पर यज्ञों के विधि-विधान में विकास होता गया। आर्य-ऋषि-देवताओं की प्रशंसा में सूक्तों की रचना करते रहे। यह सूक्त परम्परागत रूप से ऋषि-परिवारों में सुरक्षित रखे जाने लगे। बाद में विभिन्न ऋषि-परिवारों से सूक्तों का संग्रह किया गया। यह संकलन 'ऋग्वेद-संहिता' के रूप में हुआ है। उस अविज्ञान अत्यंत प्राचीनकाल से वेदाध्ययन-परायण मनीषियोंने श्रुति-परम्परा से 'ऋषिसंहिता' को अविकलित रूप में सुरक्षित रखकर भारतीय-परिवार के प्राचीनतम-साहित्य को हम तक पहुँचाया है।

यज्ञों के विकास के साथ-साथ वैदिक-वाङ्मय में विशेष वृद्धि होती गई। वैदिक साहित्य के अन्तर्गत तीन विभाग हैं (१) संहिता (२) ब्राह्मण एवं (३) उपनिषद।

संहिता-भाग में ऋक्-संहिता के अतिरिक्त 'यजुः संहिता', 'साम-संहिता' एवं 'अथर्व-संहिता' हैं। 'यजुः-संहिता' में यज्ञों के कर्मकाण्ड में प्रयुक्त मंत्र संगृहीत हैं। यजुः संहिता, कृष्ण एवं शुक्ल, इन दो-रूपों में सुरक्षित हैं।

'सामवेद-संहिता' में सोम-यागों में गाये जाने वाले सूक्तों को गेय पदों के रूप में सजाया गया है। इसके अधिकांश सूक्त 'ऋग्वेद-संहिता' से लिये गये हैं।

'अथर्व-वेद-संहिता' में जनसाधारण में प्रचलित मंत्र-तंत्र, टोने-टोटकों का संकलन हैं। इसकी सामग्री 'ऋक्-संहिता' से कम प्राचीन नहीं है, परंतु चिरकाल तक 'वेद' के रूप में मान्यता प्राप्त न होने के कारण इसकी भाषा का प्राचीन रूप सुरक्षित न रह पाया।

ब्राह्मण-भाग में कर्म-काण्ड की व्याख्या की गई है और इसी प्रसंग में अनेक उपाख्यान दिये गये हैं। प्रत्येक वेद के अपने-अपने ब्राह्मण ग्रंथ हैं। इन ग्रंथो की रचना गद्य में हुई हैं। ऋग्वेद का प्रधान ब्राह्मण-ग्रंथ 'ऐतरेय-ब्राह्मण' है। ब्राह्मण ग्रंथो में यह सबसे प्राचीन है और इसका रचना काल अनुमानतः १००० ई. पू. है। 'साम-वेद' के ब्राह्मण ग्रंथो में 'ताण्ड्य' अथवा 'पच्चविंश ब्राह्मण' विशेष उल्लेखनीय है। 'शतपथ-ब्राह्मण' शुक्ल-यजुर्वेद का ब्राह्मण-भाग है। 'तैत्तिरीय-ब्राह्मण' आदि कृष्ण - यजुर्वेद के ब्राह्मण ग्रंथ हैं। 'अथर्ववेद' को 'वेद' के रूप में स्वीकार कर लेने पर इसके साथ भी ब्राह्मण-ग्रंथ जोडे गये।

'उपनिषद' ब्राह्मण-ग्रंथो के परिशिष्ट भाग हैं। इनके वैदिक मनीषियों के आध्यात्मिक एवं परमार्थिक चिंतन के दर्शन होते हैं। इनमें आर्यों के ज्ञानकाण्ड का उदय एवं विकास हुआ।

भारत में प्रवेश करने वाले आर्यों के विभिन्न दलों की भाषा में कुछ-कुछ भिन्नता

अवश्य थी परंतु उनमें साहित्यिक-भाषा का एक सर्वमान्य रूप विकसित हो गया था। इसी साहित्यिक-भाषा में ''ऋक्संहिता' के सूक्तों की रचना हुई।

मध्य - भारतीय आर्य भाषा :

मध्य - भारतीय आर्य भाषा को कालक्रमिक और परिवर्तन के मुताबिक तीन पर्वों में बाँटा गया है।

(१) प्रथम-पर्व, जिसमें लगभग २०० ई. पू. तक के प्रारम्भिक - परिवर्तन।

(२) २०० ई. से ६०० ई. तक द्वितीय - पर्व।

(३) ६०० ई. से १००० ई. तक, तृतीय पर्व अथवा अपभ्रंश काल।

प्रथम पर्व : प्रथम-पर्व में भाषा के विकास के अध्ययन की सामग्री पालि-साहित्य तथा अशोक के अभिलेखों में प्राप्त होती हैं।

पालि में बौद्ध धर्म के 'थेरवाद' (स्थविरवाद) अथवा 'हीनयान' सम्प्रदाय का धार्मिक साहित्य ग्रथित है। मगध-सम्राट अशोक के पुत्र राजकुमार 'महिन्द' (महेन्द्र)ने लंका में 'थेरवाद' का प्रचार किया था और लंका नरेश 'वट्टगामणि' के संरक्षण में थेरवाद का 'त्रिपिटक' (बुद्ध के उपदेशों का संग्रह) लिपिबद्ध हुआ। तब से लंका में पालि-साहित्य की सुरक्षा एवं अभिवृद्धि हुई। मूल त्रिपिटक पर 'अट्ठकथा' (अर्थकथा) लिखी गई और 'विसुद्धि-मग्ग', 'दीपवंश' एवं 'मिलिन्दपञ्हो' जैसे बौद्ध-धर्म सम्बन्धी ग्रंथों का प्रणयन हुआ। लंका से 'थेरवाद' का प्रचार बर्मा, स्पाम, हिन्द-चीन, आदि देशों में हुआ और वहाँ भी पालिग्रंथो का अध्ययन होने लगा। इन देशों में अपनी-अपनी लिपियों में पालि ग्रंथ लिखे गये।

अशोक के प्राप्त अभिलेखों को तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है। प्रथम श्रेणी में ६ शिलालेख आते हैं। शाहबाजगढ़ी, (पेशावर), मानसेरा (पंजाब) ये दोनों शिलालेख खरोष्टी लिपि में हैं। गिरनार (प्राचीन रैवतक पर्वत) गुजरात, कालसी (मसूरी), कलिंङ्ग (उड़ीसा) में धौली और जैगड में आये हैं। ये चारों शिलालेख ब्राह्मणलिपि में हैं। इन सभी शिलालेखों में अशोक के धर्म एवं शासन-सम्बन्धी-सिद्धान्तों का वर्णन है।

द्वितीय पर्व : जिस प्रकार प्राचीन-भारतीय-आर्य-भाषा को साधारणतया 'संस्कृत' कह दिया जाता है। उसी प्रकार मध्य-भारतीय-आर्य-भाषा के लिए 'प्राकृत' शब्द का व्यवहार किया जाता है। 'प्राकृत' का अर्थ हुआ जन-साधारण की भाषा। शिष्ट समाज की भाषा- संस्कृत- से भेद प्रकट करने के लिए जन-सामान्य की भाषा को 'प्राकृत' की संज्ञा दी गई। संस्कृत-नाटकों में प्रयुक्त तथा कुछ काव्य-ग्रंथों एवं जैनों के धार्मिक-ग्रंथों में व्यवहृत प्राकृत पर ही वैयाकरणों ने विचार किया। अत: 'प्राकृत' शब्द जैन-आगमों की 'आर्षी' अथवा 'अर्धमागधी' तथा अन्य साहित्यिक रचनाओं की 'मागधी', शौरसैनी, 'महाराष्ट्री' तथा 'पैशाची' बोलियों के अर्थ में रूढ हो गया। मध्य-भारतीय-आर्य-भाषा के द्वितीय-पर्व के अध्ययन की सामग्री हमें इन्हीं साहित्यिक एवं धार्मिक-ग्रंथों में उपलब्ध होती है। प्राकृत - वैयाकरणों में सबसे पहिला नाम वररूचि का नाम आता है। वररूचि ने 'प्राकृत' के चार भेद किए (१) महाराष्ट्री (२) पैशाची (३) मागधी और (४) शौरसैनी।

तृतीय पर्व : मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं की अन्तिम कडी अपभ्रंश भाषा काल

अथवा तृतीय प्राकृत काल कहा जाता है। ५०० ईसा से १००० ईसा के बीच पश्चिमी प्रदेश में जिस भाषा का विकास हुआ, उसे अपभ्रंश कहा जाता है। सामान्यत: भारतीय भाषाओं के इतिहास में अपभ्रंश को 'अमीरों' की भाषा माना जाता है। ऐसा भी माना जाता है, कि पाँचवीं शती के आसपास 'अमीरों' की एक जाति सिंध से होती हुई पश्चिमी भारत में प्रवेश कर रही थी। इसे गुर्जर जाति कहा जाता था। इस जाति का प्रमुख व्यवसाय पशुपालन था। इन अमीरों ने यहाँ के समाज और भाषा को प्रभावित किया। इन अमीरों की भाषा तथा शौरसैनी प्राकृत से विकसित भाषा को अपभ्रंश कहा जाने लगा, जो सिन्ध, राजस्थान, गुजरात, पंजाब, पश्चिम उत्तरप्रदेश आदि प्रदेशों में बोली जाती थी। आचार्य दण्डी ने काव्यादर्श में लिखा है कि काव्य में अमीरों की भाषा अपभ्रंश कही जाती है। अमीरों की यही अपभ्रंश कही जानेवाली ग्रामीण-भाषा राजभाषा और साहित्यिक भाषा के पद पर आसीन हुई। संस्कृत के आचार्य राजशेखर ने 'काव्य मीमांसा' में अपभ्रंश कवियों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि राजभाषा में अपभ्रंश के कवियों का बैठने का स्थान पश्चिम में होता था। इस आधार पर यह भी कहा जाता है कि अपभ्रंश पश्चिमी प्रदेश की भाषा थी। डॉ. बाहरी लिखते हैं कि, ''अपभ्रंश वास्तव में आमीर, गुर्जर आदि जातियों की देश-भाषा थी। साहित्यिक भाषा बनने के बाद इसी ने देश के एक बृहत बडे भाग में मान्यता प्राप्त की थी। और इस नाते इतर प्रदेशों की प्राकृतों को प्रभावित किया, सबसे अधिक शैरसैनी को।''

जो भाषा ईसा की पाँचवीं-छठ्ठीं शताब्दी में आमीरों, बनजारों और चाण्डालों की भाषा थी, वही दसवीं शताब्दी में लगभग साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई और पंजाब, राजस्थान, गुजरात, बंगाल, बुन्देलखण्ड आदि प्रदेशों की भाषा बन गई। प्रादेशिक भेदों के अनुसार अपभ्रंश के तीन भेद व्राचड, नागर तथा उपनागर किये जाते हैं। व्राचड अपभ्रंश सिंध क्षेत्र में फैली हुई थी। नागर अपभ्रंश गुजरात प्रदेश में प्रयुक्त होनेवाली भाषा थी। इनका विकास शौरसैनी अपभ्रंश के साथ माना जाता है। नागर ब्राह्मणों द्वारा बोली जाने के कारण ही उसे नागर अपभ्रंश कहा जाता है। उपनागर अपभ्रंश राजस्थान और दक्षिणी पंजाब में प्रयुक्त होनेवाली भाषा थी। डॉ. भोलानाथ तिवारी ने अपभ्रंशों के सात प्रमुख भेदों - शौरसैनी, पंजाबी, व्राचड, खस, महाराष्ट्री, अर्धमागधी तथा मागधी का उल्लेख किया है।

आधुनिक भाषाओं का उदय :

परवर्ती अपभ्रंश के बाद भारतीय आर्यभाषा में जो विशेष प्रवृत्ति दिखाई पडती है वह है अतिशय देश भेद की। अवहट्ट की जितनी भी सामग्री अब तक प्राप्त हुई उसके आधार पर कहा जा सकता है कि साहित्यिक अवहट्ट के अधिक से अधिक तीन प्रदेश - भेद थे - पश्चिमी, पूर्वी और मध्यदेशीय। किन्तु इसके बाद चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ से ही गुजराती, मराठी, बंगला आदि आधुनिक भाषाओं की स्वतन्त्र सत्ता दिखाई पडने लगती है। यही नहीं, स्वयं मध्यप्रदेश में भी राजस्थानी, व्रजभाषा, खडी बोली, अवधी और मैथिली आदि बोलियों की निजी विशेषताएँ स्पष्ट होने लग जाती हैं। भारतीय आर्यभाषा में घटित होने वाला यह क्षेत्रीय भेद प्राकृत काल के क्षेत्रीय भेद से निश्चय ही भिन्न प्रतीत होता है। वैयाकरणों द्वारा निरूपित महाराष्ट्री, शौरसैनी, मागधी, पैशाची, चूलिका पैशाची, आदि प्राकृतभेदों में मुख्य भेद उच्चारण सम्बन्धी ही हैं। व्याकरणिक भेद नाम मात्र को हैं। लेकिन यही बात गुजराती, मराठी, बँगला राजस्थानी, व्रजभाषा, खडी बोली, अवधी तथा मैथिली के विषय में नहीं कही जा सकती।

क्षेत्रीय भेद का कारण :

ऐतिहासिक घटना के कारणों का विश्लेषण करने से पता चलता है कि विभिन्न प्रदेशों में आधुनिक भाषाओं का उदय जितना आकस्मिक दिखाई पडता है, उतना आकस्मिक वस्तुत: है नहीं ! भाषा के इतिहास में आकस्मिक कुछ भी नहीं होता। बडी से बडी ऐतिहासिक क्रान्ति भी भाषा के ढाँचे में सहसा परिवर्तन नहीं ला सकती। अक्सर धीरे-धीरे होनेवाले छोटे-छोटे परिवर्तन शताब्दियों बाद जब एकत्र हो जाते हैं तो भाषा एकदम बदली हुई पडने लगती है। गुजराती, मराठी, बँगला तथा हिन्दी बोलियों के उदय के बारे में भी यही नियम लागू होता है। इन आधुनिक भाषाओं का उदय और विकास अपभ्रंश के ही गर्भ में धीरे-धीरे सैंकडों वर्षों से होता आ रहा था। एक ओर साहित्यिक अपभ्रंश के रूप में धीरे-धीरे अप्रचलित और दूसरी ओर आधुनिक भाषाओं के नये रूप प्रचलन में आते रहे। क्रमश: रूपों के ह्रास और नवीन रूपों के विकास की प्रक्रिया से ही आधुनिक भाषाओं का उदय हुआ। आधुनिक भाषाओं के ये नये रूप निश्चय ही उनकी प्रादेशिक बोलियों से आते रहे हैं, फिर भी यह बात विचारणीय रह ही जाती है कि चौदहवीं शताब्दी के आसपास इन प्रादेशिक बोलियों का संगठन भाषा के रूप में हुआ।

गुजराती, मराठी और बँगला के उदय का कारण :

जिन जनपदीय बोलियों का विकास साहित्यिक भाषा के रूप में शीघ्र हुआ उनमें गुजराती, मराठी, और बँगला मुख्य है। यदि इन प्रदेशों अथवा जनपदों के इतिहास पर विचार किया जाय तो पता चलेगा कि अनेक छोटे मोटे राजनीतिक परिवर्तनों के बावजूद इनकी भौगोलिक सीमाएँ शताब्दियों पहले से बहुत कुछ अपरिवर्तित रहती आई हैं। अपभ्रंश काल से ही ये प्रदेश आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टि के स्वतन्त्र इकाई के रूप में संगठित होने लगे थे। गुजरात के सोलंकी, देवगिरि के यादव ओर बंगाल के पाल राजाओं ने अपने-अपने भूखंडो में स्वतंत्र शासनसत्ता स्थापित करने के साथ ही, अनेक लोकप्रिय सांस्कृतिक कार्यों द्वारा जातीय इकाईयों को संगठित होने का अवसर प्रदान किया। शासन की दृष्टि से इन

जातियों की भौगोलिक सीमाओं में एकसूत्रता स्थापित हुई और राजवंशों में भी परिवर्तन कम हुआ। इसके अतिरिक्त इन प्रदेशों के राजवंशों ने संस्कृत की अपेक्षा लोकबोलियों को अधिक प्रश्रय और प्रोत्साहन दिया। इस प्रकार जातीय संगठन ने भाषा का उत्थान किया और भाषा ने जातीय संगठन का; दोनों ही परस्पर वर्धमान हुए। यहाँ तक तो गुजराती, मराठी और बँगला तीन भाषाओं के उदय के सामान्य कारण हैं। लेकिन इनमें से प्रत्येक के कुछ निजी कारण भी हैं। उदाहरण स्वरूप गुजराती और उसके साथ ही सिंधी के विकास में वाणिज्य विशेष सहायक हुआ, जबकि मराठी और बँगला के उत्थान में राजकीय और सांस्कृतिक कारण ही मुख्य थे।

उत्तर भारत में तुर्कों के आक्रमण से पश्चिमी वाणिज्य-मार्ग बन्द हो जाने के कारण दसवीं सदी तक वाणिज्य में जो ठहराव आ गया था, वह थोडे दिनों बाद जब दूर हुआ तो उससे लाभ उठाने वालों में सिंध और गुजराती अग्रणी रहे। इस नयी वाणिज्य व्यवस्था ने इन जातियों के स्वतंत्र संगठन में विशेष योग दिया। इसके विपरीत मराठी-भाषा-भाषी जाति के संगठन में राजनीतिक केन्द्र दिल्ली से उसका सतत अलगाव और भक्ति आंदोलन विशेष रूप से सहायक हुआ। केन्द्र से प्राय: स्वतंत्र रहना बँगला-भाषा-भाषी जाति के उत्थान में सहायक हुआ लेकिन इसके साथ ही धार्मिक जागरण और जहाजरानी के जरिए वाणिज्य विस्तार भी निमित्त कारण हो गया।

हिन्दी बोलियों का उदय :

इसके विपरीत मध्यप्रदेश की भाषा का विकास दूसरे ढंग से हुआ। जिस प्रकार सिंध, गुजरात, महाराष्ट्र और बंगाल में बहुत पहले ही एक साहित्यिक भाषा का उदय हो गया, उसी प्रकार मध्यप्रदेश में एक साहित्यिक भाषा का उदय न हो सका। इस विशाल भू-भाग में अनेक छोटी-छोटी साहित्यिक बोलियाँ बन गई। इन बोलियों में भी सबका विकास एक-सा और एक साथ नहीं हुआ। ऐतिहासिक दृष्टि से राजस्थानी और मैथिली बोलियों का उदय पहले हो गया, इनके बाद अवधी का उदय हुआ। व्रजभाषा और खडी बोली का उदय लगभग साथ ही हुआ। लेकिन साहित्यिक दृष्टि से व्रजभाषा खडीबोली से पहले ही लोकप्रिय तथा प्रौढ हो गई। खडीबोली उठी तो बहुत पहले ही लेकिन एक तो जन्म के साथ इसे मातृभूमि छोडकर दक्षिण में प्रवासी होना पडा, दूसरा यह शुरू में ही विदेशी भाषा-भाषियों के हाथ पड गई, तीसरा विदेशी धर्म-प्रचार का साधन बन गई और चौथा ये सामान्य जन समुदाय से दूर नगर तथा राजदरबार में बँध गई; इसलिए आरम्भ में उसका उत्थान व्रजभाषा की अपेक्षा मंद पड गया, क्योंकि खडीबोली के ठीक विपरीत व्रजभाषा का विकास उसकी ठेठ जन्मभूमि में ही हुआ; उसे संस्कृत भाषा की विशाल परम्परा का आधार प्राप्त हुआ, वैष्णव भक्ति के प्रसार का गौरव और सबसे बढकर लोक हृदय के प्रतिनिधि भक्त कवियों का सम्बल मिला। पंजाबी का उदय भी तभी हुआ, जब उसे नानक आदि सन्त कवियों की भावराशि तथा सामान्य जनसमूह के सांस्कृतिक जागरण की प्रेरणा मिली।

मैथिली और राजस्थानी :

यदि हिन्दी बोलियों में से एक-एक को लेकर उनके उदय के कारणों पर विचार किया जाय तो अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रकाशित होंगे जिनसे बहुत-सी भ्रान्त धारणाएँ निर्मूल हो सकती हैं, मैथिली का उदय इतना पहले इसलिए संभव हो सका कि मिथिला शासन की स्वतंत्र इकाई

के रूप में एक ही राजवंश के अन्तर्गत कई शताब्दियों तक स्थापित रहा। सांस्कृतिक इकाई के रूप में ज्योतिरीश्वर और विद्यापति जाति का संगठन दीर्घ परंपरा से होता आया है। भौगोलिक और राजनीतिक दोनों दृष्टियों से उन दिनों मिथिला मध्यप्रदेश से अलग और स्वतंत्र था। फलत: इस प्रदेश की बोली हिन्दी की अन्य बोलियों से बहुत कुछ भिन्न हो गई। यह ध्यान देने की बात है कि मैथिली का उदय और विकास जिस गति से हुआ, वह पीछे प्रतिकुल परिस्थितियों के कारण मंथर हो गया। लेकिन आधुनिक युग में जातीय भावना के अभ्युदय के साथ ही मैथिली फिर बढ चली और आज स्पष्ट दिखाई पड रहा है कि यह बोली परिनिष्ठित हिन्दी से अलग स्वतंत्र भाषा के रूप में विकास कर जायेगी।

राजस्थानी की स्थिति भी बहुत कुछ मैथिली जैसी ही है। पश्चिमी राजस्थान बहुत दिनों तक जातीय और प्रशासकीय रूप में गुजरात से संबंध रहा; दोनों जातियों और बोलियों का विकास साथ-साथ हुआ। पुरानी गुजराती और पुरानी पश्चिमी राजस्थानी में बहुत कुछ समानता का होना इस तथ्य का प्रमाण है। दूसरी ओर पूर्वी राजस्थान पृथ्वीराज चौहान के ही समय से दिल्ली-आगरा के शासन-सूत्र से संबद्ध रहा। फलत: उसकी भाषा (पूर्व राजस्थानी) पुरानी व्रजभाषा से मिलती जुलती है। धीरे धीरे राजस्थान का राजनीतिक और सांस्कृतिक विकास इस प्रकार हुआ कि राजस्थानी बोली - समूह की मुख्य बोली मारवाड़ी प्रधान हो गई और अब वह परिनिष्ठित हिन्दी से स्वतंत्र साहित्यिक भाषा के रूप में गठित होने लगी है।

अवधी व्रजभाषा और खडी बोली :

मैथिली और राजस्थानी के विपरित मध्यप्रदेश की शेष तीन मुख्य साहित्यिक बोलियाँ अवधी, व्रजभाषा और खडी बोली अलग-अलग होती हुई भी आरंभ से ही एक जातीय भाषा के रूप में विकसित होने के लिए प्रयत्नशील दिखाई पडती है। इतिहास साक्षी है कि अवधी ने किस प्रकार तुलसीदास के समय तक आते आते व्रजभाषा में अपना अस्तित्त्व मिलाकर एक काव्य भाषा के निर्माण में योग दिया और आगे चलकर अवधी-मिश्रित व्रजभाषा ही मध्यप्रदेश की सर्वमान्य काव्य भाषा हो गई। साहित्यिक दृष्टि से अवधी ने अपना ऐतिहासिक कार्य पूरा कर दिया। इस तरह व्रजभाषा ने भी खडी बोली के लिए मार्ग प्रशस्त करके नवीन साहित्यिक भाषा को आगे बढाया। नि:सन्देह खडी बोली व्रजभाषा के समान्तर ही ऊर्दू साहित्य में परिमार्जित होती रही लेकिन ऐतिहासिक दृष्टि से व्रजभाषा के परिनिष्ठित होने के बाद ही खडी बोली का आधुनिक रूप सामने आ सका। सौदा और मीर के ठीक पहले तक खडी बोली में व्रजभाषा का अत्यधिक मिश्रण था और मीर के समय तक भी व्रजभाषा के प्रभाव से खडी बोली सर्वथा मुक्त नहीं हो सकी थी। इस तरह व्याकरण की दृष्टि से अपभ्रंश के बाद अवधी से लेकर खडी बोली तक ही एक भाषा का निरंतर परिमार्जन और परिष्कार प्रतीत होता है। सदियों तक धिसते धिसते प्रत्ययों, विभक्तियों, परसर्गों, उपसर्गों आदि ने आधुनिक परिनिष्ठित रूप धारण किया। इस प्रवाह में कुछ प्रत्यय - परसर्ग प्रवाह पतित अथवा अप्रचलित हो गए और कुछ नए आ मिले। फिर भी व्याकरण का ढाँचा बहुत कुछ वही रहा। उच्चारण और ध्वनि-विकार संबंधी छोटे-मोटे स्थानीय भेदों के बावजूद अवधी व्रजभाषा और खडी बोली एक ही हिन्दी के विकास की विभिन्न अवस्थाएँ हैं।

लेकिन यह न भूलना चाहिए कि इन तीनों बोलियों का एक जातीय भाषा के रूप में

संगठित होने का कार्य अभी अच्छी तरह पूरा नहीं हुआ है। कारण स्पष्ट है। गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल की तरह मध्यप्रदेश का जातीय विकास नहीं हुआ, इसलिए इस क्षेत्र में एक जातीय भाषा का विकास भी यथोचित नहीं हो सका। जिस समय आधुनिक भाषाओं का उदय हो रहा था, उस समय मध्यप्रदेश अत्यंत अव्यवस्थित और अशान्त था। विदेशी आक्रमणकारियों के कारण राजनीतिक स्थिति बराबर अस्थिर रही। राजवंशों का परिवर्तन जितना जल्दी-जल्दी इस क्षेत्र में हुआ, उतना गुजरात, महाराष्ट्र और बंगाल में नहीं हुआ। छोटे-छोटे राजवंशों के शासन क्षेत्रों में विभाजित रहने के कारण समस्त प्रदेश विभिन्न जातीय इकाईयों और बोलियों में बँटा रहा।

सोलहवीं सदी के आसपास इस अव्यवस्था में थोडा परिवर्तन हुआ। मुगल बादशाह अकबर के शासनकाल में सुदृढ केन्द्र स्थापित हुआ, विकेन्द्रित मध्यप्रदेश केन्द्रोन्मुख हुआ। नये ढंग की भूमि व्यवस्था ने बिखरे हुए गाँवों में कुछ एकसूत्रता स्थापित करने की पृष्ठभूमि तैयार की। सामरिक उपयोग के लिए बडी-बडी छावनियों के रूप में नगर स्थापित हुए। इन छावनियों में परस्पर यातायात की सुविधा होने से वाणिज्य की प्रगति हुई। इस तरह उस मध्ययुग में भी जातीय भावना के लिए पृष्ठभूमि तैयार हुई।

एक ओर ये आर्थिक और राजनीतिक आधार निर्मित होते रहे और दूसरी ओर भक्ति-आंदोलन के द्वारा संपूर्ण मध्यप्रदेश में सांस्कृतिक एकता की लहर फैल रही थी। इन दुहरे प्रयत्नों ने जातीय भाषा के विकास में महत्त्वपूर्ण योग दिया। फलत: अवधी और व्रजभाषा के मिश्रण से एक सामान्य काव्य भाषा का प्रादुर्भाव हुआ और साथ ही नगरों में खडी बोली का अभ्युदय दिखाई पडा। आगे चलकर अंग्रेजों के आने के साथ रेल, तार, डाक के द्वारा जब जातीय भावना के विकास के लिए और भी सुविधा प्राप्त हुई तो व्रजभाषा और खडी बोली की सम्मिलित भाषा से आधुनिक खडी हिन्दी का रूप सामने आया। जातीय एकता का यह कार्य नगरों में तो सम्पन्न हुआ, किन्तु उस सतह से नीचे गाँवों में दुराव बहुत कुछ बना ही रहा। फलत: जो आधुनिक जातीय भाषा मध्यप्रदेश में बनी वह उपर ही उपर नगर निवासी पढे-लिखे मध्यमवर्ग तक ही सीमित रह गई, उसकी जडें गाँवों की मिट्टी में न जा सकीं। इस आधारभूत कमजोरी का कारण आज भी इस क्षेत्र की भाषा-समस्या उलझी हुई है।

हिन्दी बोलियों के उदय पर प्रकाश डालने वाली सामग्री :

जब से अपभ्रंश का प्रचुर साहित्य प्राप्त हुआ है, अपभ्रंश से आधुनिक भाषाओं का सम्बन्ध जोडने और उनका आविर्भाव दिखाने का फैशन-सा चल पडा है। जहाँ तक इस दिशा में शोधभावना से प्रयत्न करने की बात है, वहाँ तक तो ठीक है, लेकिन पहले से ही एक निश्चित धारणा के अनुसार अपर्याप्त तथ्यों को जब अनुमान के साँचे में ढालने की चेष्टा की जाती है अथवा कुछ अनुमानित अपभ्रंशों की कल्पना की जाती है तो यह कार्य वैज्ञानिक विचार की सीमा से बाहर जा पडता है। जब तक 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण', 'वर्णरत्नाकर' आदि परवर्ती अपभ्रंश के ग्रन्थ प्राप्त नहीं हुए थे तब तक पश्चिमी अपभ्रंश के साहित्य के आधार पर हिन्दी बोलियों के उदय की चर्चा करना बहुत कुछ अपमानित ही था। वस्तुत: अपभ्रंश का जो अधिकांश साहित्य प्रकाशित हुआ है, उसमें प्राय: गुजराती और कुछ कुछ राजस्थानी के ही आरम्भिक बीज अधिक है। पश्चिमी अपभ्रंश की कुछ सामग्री विशेषत: परवर्ती काल की ऐसी अवश्य है। जिससे व्रजभाषा के आविर्भाव का आभास मिल सकता है, जैसे 'संदेश रासक', 'प्राकृत

पैंगलम्' आदि। लेकिन सारी सामग्री इतनी परिपाटी-विहित और साहित्यिक है कि उससे उस समय की लोक-बोलियों का पता लगाना कठिन प्रतीत होता है।

इसकी अपेक्षा 'उक्ति-व्यक्ति' की भाषा में लोक बोली के अविकृत तत्त्व कहीं अधिक हैं। अवधी की उत्पत्ति मालूम करने में यह सामग्री जितनी अधिक उपादेय है, उतनी विश्वसनीय और समृद्ध सामग्री व्रजभाषा के लिए अभी तक सुलभ नहीं हो सकी है।

हिन्दी भाषा - समुदाय :

हिन्दी प्रदेश की बोलियों अथवा भाषाओं को कई समूहों में विभक्त किया जा सकता है। महापण्डित राहुल सांस्कृत्यायन ने भाषा विज्ञान की दृष्टि से इसके सात विभाग बताएँ हैं और प्रत्येक विभाग के अन्तर्गत उसकी प्रमुख बोलियों का भी उल्लेख किया है।[११] राहुल जी के इस विभाजन की अपनी एक विशेषता है। उन्होंने भाषा समुदाय तथा बोलियों को पूर्व से पश्चिम तक उनके बोले जाने के क्रम के अनुसार नियोजित किया है।

(१) मागधी भाषा-समुदाय,
बोलियाँ = मैथिली, मगही, भोजपुरी।

(२) अवधी भाषा - समुदाय,
बोलियाँ = अवधी, बधेली, छत्तीसगढ़ी।

(३) व्रज भाषा - समुदाय,
बोलियाँ = बुंदेली, व्रज, कनउजी।

(४) राजस्थानी भाषा - समुदाय,
बोलियाँ = राजस्थानी, मालवी।

(५) कौरवी भाषा - समुदाय,
बोलियाँ = कौरवी बोली।

(६) पंजाबी भाषा - समुदाय,
बोलियाँ = पंजाबी, डोगरी, काँगडी।

(७) पहाडी भाषा - समुदाय,
बोलियाँ = गढवाली, कुँमाऊँनी, नेपाली, कुलुई, चंबियाली।

उपभाषाएँ और बोलियाँ :

उपर्युक्त समुदायों के अन्तर्गत हिन्दी भाषा की निजी प्रकृति की दृष्टि से तीन-चार समुदाय इन भाषाओं के हैं जिन्हें हिन्दी न कहकर हिन्दी की उपभाषा कहा जाता है। ये मागधी, राजस्थानी, पंजाबी और पहाडी भाषाओं के समुदाय हैं।[१२] इनमें मागधी और राजस्थानी बोलियाँ तो किसी न किसी तरह से हिन्दी के अन्तर्गत समाविष्ट की जा सकती हैं, किन्तु पंजाबी और पहाडी समुदायों की कई बोलियाँ हिन्दी प्रदेश के लोगों की समझ से परे हैं। जो हो, इन बोलियों को भी हिन्दी भाषा की शाखाओं के रूप में अंगीकार कर लेना कई दृष्टियों से श्रेयस्कर होगा। हिन्दी का लोक-साहित्य लगभग बीस जनपदीय बोलियों का साहित्य है। उपर्युक्त समुदायों के क्रम में ये बीसों बोलियाँ इस प्रकार है -

(१) मैथिली (६) छत्तीसगढ़ी (११) मालवी (१६) गढवाली

(२) मगही	(७) बुंदेली	(१२) कौरवी	(१७) कुँमाऊँनी
(३)भोजपुरी	(८) व्रज	(१३) पंजाबी	(१८) नेपाली
(४)अवधी	(९) कनउजी	(१४) डोगरी	(१९) कुलुई
(५)बधेली	(१०) राजस्थानी	(१५) काँगडी	(२०) चंबियाली

प्रमुख भाषाएँ अथवा बोलियाँ :

हिन्दी लोक-साहित्य, उसके वास्तविक रूप तथा सीमाविस्तार की दृष्टि से इन समस्त बोलियों में से कुछ थोडी सी बोलियाँ विशेष अध्ययन की अपेक्षा रखती है। ये बोलियाँ उत्तरप्रदेश से सम्बन्धित है। हिन्दी प्रदेश अथवा मध्यप्रदेश में गंगा-जमुना के दोआब और काशी जनपद की एक विशेष स्थिति रही है। भाषा, साहित्य और संस्कृति की दृष्टि से इस विशिष्ट भू-भाग ने अन्य हिन्दी प्रदेशों और सारे देश को बहुत प्रभावित किया है। कृष्ण और राम, महाभारत और रामायण, सूर, तुलसी, कबीर और जायसी जैसे पूजनीय नाम इसी प्रदेश के इतिहास की अमूल्य निधियाँ हैं। इस दृष्टि से इस प्रदेश के लोक-जीवन और लोक-साहित्य का भी अपना विशिष्ट स्थान है। यहाँ चार बोलियाँ मुख्य रूप से बोली जाती हैं।

(१)बनारस - गोरखपुर की भोजपुरी (३) आगरा-मथुरा की व्रजभाषा

(२)लखनऊ - फैजाबाद की अवधी (४) मेरठ-बिजनौर की खडी बोली (कौरवी)

हिन्दी की ग्रामीण बोलियाँ पर विचार करते समय हमारे भाषा वैज्ञानिकों ने इन्हीं चार बोलियों को प्रधानता दी है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से हिन्दी के अन्तर्गत आनेवाली कई अन्य ग्रामीण बोलियाँ इन्ही चारों बोलियों के अधीन हैं। अवधी के अन्तर्गत बधेली, व्रज के अन्तर्गत कनौजी तथा बुंदेली और खडी बोली के अन्तर्गत हरियानी की गणना की जाती है।(१३) हिन्दी लोक-साहित्य का अध्ययन करते समय भोजपुरी, अवधी, व्रज तथा ग्रामीण खडी बोली (कौरवी) के परम्परागत मौखिक साहित्य को विशेष रूप से ध्यान में रखना चाहिए। हमारे लोकसाहित्य की विभिन्न विद्याएँ और परम्पराएँ वस्तुतः हिन्दी बोलियाँ के लौकिक व्यवहार के साथ विकसित हुई हैं। हिन्दी बोलियाँ से सम्बद्ध जनपदों में आज भी हिन्दी का लोकसाहित्य फैला बिखरा पडा है।

भोजपुरीः

भोजपुरी-बोली मागधी अथवा बिहारी भाषा समुदाय की एक प्रधान बोली है। इनके बोलने वालों की संख्या लगभग ढाई-तीन करोड हो चली है। इस बोली का प्रधान केन्द्र बिहार का आरा-शाहाबाद जनपद है जिसके भोजपुर नामक एक प्राचीन ऐतिहासिक गाँव के आधार पर इसका नामकरण हुआ है। यह बोली उत्तरप्रदेश के मिर्जापुर, बनारस, बलिया, गाज़ीपुर, आजमगढ़, जौनपुर, गोरखपुर, देवरिया तथा बस्ती नामक पूर्वी जिलों में बोली जाती है। बिहार के छपरा, शाहाबाद, चंपारन, पलामू तथा राँची नामक जिले इसके क्षेत्र में आते हैं। इन सभी जनपदों का साहित्य अपने बोलीगत वैशिष्ट्य तथा परम्परागत परिवेश के कारण भोजपुरी लोकसाहित्य में भी मिलती है। इसमें लोक-साहित्य की कथा, गीत, गाथा आदि सभी विधाएँ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होती हैं।

अवधी :

अवधी पुराने संयुक्त प्रान्त के अवध-खण्ड की बोली या भाषा के रूप में प्रतिष्ठित है।

अयोध्या - फैजाबाद इसका प्रधान केन्द्र रहा है। लखनऊ और फैजाबाद की दो पूरी कमिशनरियों के अतिरिक्त इस भाषा का व्यवहार मीरजापुर, जौनपुर, इलाहाबाद तथा फतेहपुर के कुछ भागों में भी किया जाता है। भोजपुरी की भाँति अवधी बोलने वालों की संख्या भी लगभग ढाई करोड है। अवध खण्ड की सांस्कृतिक परम्परा बडी गौरवपूर्ण रही है। यह प्रदेश प्राचीन काल में कोशल के नाम से विख्यात महान जनपद था। कहते हैं कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने इसी भू-भाग में जन्म लिया। अवध की सांस्कृतिक परम्परा के अनुरूप अवधी का साहित्य इतिहास भी कुछ कम गौरवपूर्ण नहीं हैं। इस भाषा में 'पदमावत्' तथा 'रामचरित-मानस' जैसे विख्यात चरित काव्यों की रचना हुई है। ये दोनों ही महान ग्रन्थ अवध खण्ड के लोक-जीवन तथा लोक-साहित्य की विभिन्न परम्पराओं के प्रतिनिधि हैं। इनके अतिरिक्त अवधी में परम्परागत मौखिक साहित्य की भी कोई कमी नहीं हैं। लोक-गीत और लोक-काव्य की दृष्टि से तो यह एक अत्यन्त समृद्ध भाषा है।

व्रज :

व्रजभाषा उस व्रज क्षेत्र की है जो उत्तर प्रदेश और राजस्थान के लगभग तेरह जिलों में फैला हुआ है। इसके अन्तर्गत राजस्थान के भरतपुर, धौलपुर और करौली तथा उत्तर प्रदेश के आगरा, मथुरा, अलीगढ, मैनपुरी, एटा, बदायूँ तथा बरेली नामक जनपद समाविष्ट है। उत्तर प्रदेश के रामपुर, मुरादाबाद तथा बुलंदशहर जिलों में भी यह आंशिक रूप से बोली जाती है। इस भाषा का प्रधान केन्द्र मथुरा है जो महापुरुष श्रीकृष्ण की लीला-भूमि होने के कारण प्राचीन काल से ही विख्यात है। व्रजभाषा की साहित्यिक-सांस्कृतिक परम्परा अवधी से भी अधिक सम्पन्न रही है। हिन्दी संसार में लगभग पाँच सौ वर्षों तक इसका अखण्ड राज्य रहा है। श्रीकृष्ण के अनन्य उपासक तथा गीति काव्य के अद्वितीय कवि महात्मा सूरदास ने इसी भाषा में अपना महान ग्रंथ 'सूरसागर' की रचना की थी। अवध की भाँति व्रज का लोक-जीवन भी अत्यन्त सम्पन्न है और इसमें लोक-साहित्य तथा लोक-नाट्य की विभिन्न परिपाटियों का पूर्ण विकास हुआ है।

कौरवी :

खडी बोली - कौरवी - उत्तर प्रदेश तथा पंजाब के लगभग बारह जिलों की भाषा है। इसे आधुनिक परिनिष्ठित हिन्दी की जननी तथा उसकी ग्रामीण बोली होने का गौरव प्राप्त है। उत्तर प्रदेश के देहरादून (मैदानी भाग) सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ, बिजनौर, गुडगाँव, आदि जिले इसके क्षेत्र में आते हैं। खड़ी बोली के ग्रामीण रूप को बोलने वालों की संख्या लगभग एक करोड़ हैं। व्रज अथवा अवधी की भाँति इस बोली में कोई प्राचीन साहित्यिक परम्परा नहीं मिलती। मुसलमानी शासन के प्रभाव के कारण इसने देश व्यापी विस्तार प्राप्त किया है और आधुनिक हिन्दी के साथ-साथ उर्दू भी इसी से उत्पन्न हुई मानी जाती है। हिन्दी की उपर्युक्त बोलियों की भाँति इस बोली का भी लोक-साहित्य बहुत समृद्ध है। इसके क्षेत्र में नाटक-नौटंकी का विशेष प्रचार हुआ है। हिन्दी मुहावरों की दृष्टि से भी इस बोली का स्वतंत्र अध्ययन किया जा सकता है।

राजस्थानी :

हिन्दी की उपर्युक्त प्रमुख बोलियों के अतिरिक्त इसकी उपभाषाओं के अन्तर्गत

आनेवाली राजस्थानी तथा मैथिली बोलियाँ भी हिन्दी लोक-साहित्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। राजस्थानी राजस्थान की भाषा है। इसका प्रमुख रूप मारवाड़ी बोली में दिखलाई पडता है। मारवाड़ियों के साथ साथ यह बोली सारे देश में फैली हुई है किन्तु इसके निजी क्षेत्र में राजस्थान के जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर, मेवाड़, शेखावटी, अजमेर, मेरवाड़ा, पालनपुर तथा किशनगढ (आंशिक रूप से) जिले आते हैं। राजस्थानी मारवाड़ी का सीधा सम्बन्ध अपभ्रंश भाषाओं से रहा है। इसमें अपभ्रंश की अनेक विशेषताएँ आज भी ज्यों की त्यों सुरक्षित हैं। इसका प्राचीन साहित्य गौरवपूर्ण रहा है। चारण कवियों द्वारा लिखी गई अधिकांश वीर-गाथाएँ इसी बोली में उपलब्ध होती हैं। इसका लोक-साहित्य भी प्राचीन, परम्परागत तथा भाव-सम्पन्न हैं। इसमें कथा-वार्ता, गीत-गाथा तथा लोकोक्ति आदि का विपुल भण्डार मिलता है।

मैथिली :

मैथिली प्राचीन मिथिला (तिरहुत) जनपद की बोली है। इसके अन्तर्गत दरभंगा तथा मुजफ्फरपुर के जिले आते हैं। बिहारी भाषा समुदाय की बोलियों में मैथिली का स्थान बुहत महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। कवि विद्यापति ने इसी बोली में अपने ललित पदों की रचना की थी। इसमें विद्यापति और उनसे पहले की साहित्यिक परम्पराएँ आज तक सुरक्षित हैं। इसका लोक-साहित्य गद्य और पद्य दोनों रूपों में उपलब्ध है। लोकगीतों की दृष्टि से मैथिली बोली का विशेष महत्त्व है। हिन्दी लोक-गीत के 'तिरहुति', 'सम्मरि', 'समदाउनि' तथा 'नचारी' आदि भेद मैथिली की निजी सृष्टि हैं।

गुजराती भाषा की प्रमुख बोलियाँ :

गुजरात में बोली जाने वाली प्रमुख बोलियाँ निम्नानुसार है। काठियावाडी या सौराष्ट्री बोली, उत्तर गुजराती या पट्टणी बोली, मध्य गुजराती या चरोतरी बोली और दक्षिण गुजराती या सूरती बोली प्रमुख हैं। भौगोलिक दृष्टि से काठियावाड-सौराष्ट्र, गुजरात के अन्य प्रदेश से समुद्र के कारण और उत्तर गुजरात, मध्य गुजरात और दक्षिण गुजरात प्रदेश से नदीयों के कारण अलग-अलग बोलियाँ का अस्तित्व उभर आया है।

काठियावाडी (सौराष्ट्री) बोली :

गुजरात के पश्चिम की ओर सौराष्ट्र प्रदेश सौराष्ट्री-काठियावाडी बोली का प्रदेश है। सौराष्ट्र द्वीपकल्प है। उनकी तीनों ओर समुद्र आया हुआ है। वर्तमान समय में 'सौराष्ट्र' को 'काठियावाड' नाम से पहचाना जाता है। 'मिराते अहमदी' (ई.स. १७५६) पुस्तक के लेखक ने इस समग्र प्रदेश के लिए 'सोरठ' शब्द प्रयोजित किया था। उसने लिखा है कि सोरठ पाँच जिला (हालार, काठियावाड, गोहिलवाड, बाबरियावाड और जेतवाड) में विभाजित था। बाद में अंग्रेजों के शासनकाल में 'काठी' नामक जाति के प्रभुत्व के कारण 'काठियावाडी' नाम से पहचाना गया। स्वातंत्र्य के बाद छोटे छोटे कस्बों (राज्यों-रजवाडों) के विलिनीकरण होने से 'सौराष्ट्र' नाम दिया गया। वर्तमान में यह प्रदेश जामनगर, राजकोट, भावनगर, अमरेली, जूनागढ और सुरेन्द्रनगर यह छ जिले में विस्तरित है। उसमें भी बोली भेद से निम्न बोलियाँ बोली जाती है :

(१) हालारी (जामनगर और राजकोट जिला)

(२) सोरठी (जूनागढ जिला)

(३) गोहिलवाडी (भावनगर और अमरेली जिला)

(४) झालावाडी (सुरेन्द्रनगर जिला)

मध्य गुजराती अथवा चरोतरी बोली :

मही (महीसागर) नदी की आसपास आये हुए खेडा (Kaira-Kheda) जिले के विस्तार को 'चरोतर' नाम से जाना जाता है। यहाँ की बोली को 'चरोतरी बोली' कहा जाता है। लेकिन यह चरोतरी बोली मही नदी की पूर्व और दक्षिण में आये हुए पंचमहाल जिला, बडौदा जिला और भरुच (भृगुकच्छ) जिले के कई प्रदेश में चरोतरी बोली की लाक्षणिकताएँ मिलती हैं। पंचमहाल जिले के कई विस्तार में चरोतरी एवं भीली बोली, बडौदा तथा भरुच जिले में चरोतरी एवं सूरती बोली तथा भरुच और बडौदा की उत्तर में आये हुए प्रदेश में चरोतरी बोली की लाक्षणिकताएँ मिलती हैं।

उत्तर गुजरात की पट्टणी बोली :

साबरमती (साभ्रमती) का उत्तर-पश्चिम, बनासकांठा जिला (दक्षिण में अहमदाबाद जिला) तक के विस्तार को उत्तर गुजरात नामक से पहचाना जाता है। उत्तर गुजरात की बोली को पट्टणी बोली का प्रदेश भी कहा जाता है। यह बोली खास तौर पर महेसाना जिला में, बनासकांठा जिला में और पाटण जिला में प्रमुखतः बोली जाती है।

दक्षिण गुजराती अथवा सूरती बोली :

सूरत जिले के आसपास आये हुए प्रदेश जैसे कि बडौदा जिले की दक्षिण-पूर्व (डभोई के आसपास) के विस्तार में, भरूच जिले की दक्षिण-पूर्व में, सूरत और वलसाड जिले में सूरती बोली बोली जाती है। सूरती बोली के पूर्व-दक्षिण विस्तार में डांगी और खानदेशी, पूर्व में भीली और उत्तर में चरोतरी बोली बोली जाती है। राजपीपला, डेडियापाडा एवं नेत्रंग प्रदेश की बोली अदिवासी प्रजा के सिवा की जनता का सूरती और भीली बोली का मिश्रित रूप है।

सरहदों पर की गुजरात की बोलियाँ :

गुजरात की सरहदों पर हजारों माईल के विस्तार में बोली जाने वाली तीन प्रमुख बोलियाँ हैं - (१) कच्छी बोली (२) भीली बोलियाँ (३) खानदेशी बोलियाँ।

(१) कच्छी बोली : कच्छी बोली गुजरात की उत्तर सरहद पर आये हुए कच्छ प्रदेश में बोली जाती है। यह स्वतंत्र बोली है। कच्छ प्रदेश पर से उसका नाम कच्छी पडा है। कच्छ की उत्तर और पूर्व में रण (Desert) है। दक्षिण में खाडी (Creek) है और पश्चिम में समुद्र (Sea) है। भाषाकीय दृष्टि से कच्छ की उत्तर में सिन्धी, पूर्व में गुजराती, दक्षिण में काठियावाडी और उत्तर-पूर्व में मारवाडी (राजस्थानी बोली) बोली जाती है। ग्रियर्सन ने कच्छी बोली की दो उपबोलियाँ बताई है (i) कच्छी और (ii) कायस्थी।

कच्छी बोली का उपयोग जाडेज़ा और लोहाणा ज्ञाति के लोग करते हैं जब कि कायस्थ लोग कायस्थी बोली का उपयोग करते हैं। कायस्थी; राजस्थानी, गुजराती और कच्छी मिश्रित बोली है।

(२) भीली बोली : यह बोली भील जाति के लोग बोलते हैं। मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र,

राजस्थान और गुजरात के सरहदी इलाकों में बसने वाले भील जाति के लोग यह बोली बोलते हैं। गुजरात के पूर्व पट्टी विस्तार यानि कि अंबाजी से लेकर उमरगाँव तक के हजारों माईल के विस्तार में रहने वाले आदिवासी लोग भीली बोली बोलते हैं।

अरवल्ली की गिरिमाला और सातपुडा पर्वतों के प्रदेश में भीली बोली बोली जाती है। गुजरात की सरहदों का विस्तार हजारों माईल तक विस्तारित होने के कारण भीली बोलियाँ अनेक समूह में बोली जाती है।

(३) खानदेशी (आहिराणी) बोली : खानदेशी एक बोली नहीं हैं लेकिन प्रत्येक गाँव की अलग हो ऐसी बोलियाँ का एक समूह है। ग्रियर्सन ने लिखा है कि भारत में जाति-जाति, स्थल-स्थल और एक ही वर्ग के लोगों की दूसरे वर्ग के लोगों की भाषा अलग होती है। खानदेशी बोली का आंतरिक रूप गुजराती और राजस्थानी बोली की नजदीक है। (Vol. IX, Part-III, P.I.)

Dr. T. N. Dave ने लिखा है कि, नंदुरबार और पींपलनेर में बोली जाने वाली खानदेशी बोली सूरती-गुजराती बोली का ही एक रूप है। और आगे मराठी का रूप लेती है और धूलिया तक तो खानदेशी मराठी का रूप धारण करती है। (J.G.R.S. Vol.-1, P. 8)

इसके सिवा गुजरात में पारसीयों की बोली (वलसाड, नवसारी जिले में) मुस्लिमों की बोली (ज्यादातर अहमदाबाद, सूरत, जूनागढ जिले में) नागर ब्राह्मणों की बोली, मेर लोगों की बोली ऐसी कई बोलियाँ बोली जाती हैं।

संदर्भ ग्रंथ-१

१. हिन्दी - उद्‌भव, विकास और रूप, डॉ. बाहरी, पृ. २

२. हिन्दी भाषा का इतिहास - धीरेन्द्र वर्मा, पृ. ४३

३. हिन्दी भाषा का इतिहास - वार्ष्णेय, पृ. १९

४. हिन्दी : उद्‌भव, विकास और रूप, डॉ. बाहरी, पृ. ३७

५. हिन्दी : उद्‌भव, विकास और रूप, डॉ. बाहरी, पृ. ३८

६. हिन्दी : उद्‌भव, विकास और रूप, डॉ. बाहरी, पृ. ३९

७. हिन्दी भाषा और उसका इतिहास, डॉ. दिनेश, पृ. ५४

८. भाषा विज्ञान - डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ. १५७

९. भाषा विज्ञान - डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ. १५७

१०. हिन्दी - उद्‌भव, विकास और रूप, डॉ. बाहरी, पृ. ४९

११. हिन्दी साहित्य का बृहत, इतिहास, षोडश भाग, काशी १९६० पृ. १७

१२. हिन्दी भाषा का इतिहास, प्रयाग १९४९, पृ. ६०

१३. हिन्दी भाषा का इतिहास, प्रयाग १९४९, पृ. ६४-६७

संदर्भ ग्रंथ-२

- हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास - लक्ष्मीलाल बैरागी
- हिन्दी भाषा का उद्‌गम और विकास - उदयनारायण तिवारी
- हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग - नामवर सिंह
- लोक साहित्य की भूमिका - डॉ. रवीन्द्र भ्रमर
- बोली विज्ञान अने गुजराती बोलीओ - डॉ. योगेन्द्र व्यास
- सामाजिक भाषाविज्ञान - डॉ. योगेन्द्र व्यास
- बोली विज्ञान केटलाक प्रश्नो - आचार्य डॉ. शांतिभाई
- हालारी बोली - आचार्य डॉ. शांतिभाई

अध्याय-२

लोक-साहित्य का उद्‌भव

अनुक्रम

☞ फोकलोर शब्द की उत्पत्ति
- ❖ 'फोकलोर' शब्द का अर्थ
- ❖ फोकलोर शब्द की परिभाषा
- ❖ 'लोक' शब्द का अर्थ
- ❖ 'लोक' शब्द की प्राचीनता
- ❖ 'लोक' शब्द की परिभाषा

☞ संस्कृति और अंग्रेजी का 'कल्चर' शब्द
- ❖ लोक संस्कृति की स्वतंत्र सत्ता
- ❖ लोक-साहित्य एवं लोक संस्कृति

☞ भारतीय जन-जीवन
- ❖ ग्राम समाज
- ❖ प्राचीन वाङ्मय

☞ भारतीय आख्यानक साहित्य
- ❖ बड्डुकहा और पंचतन्त्र
- ❖ गीत और गाथाएं
- ❖ नाट्यशास्त्रीय परम्परा
- ❖ लघु वार्ताओं की स्थिति

☞ लोक-साहित्य : जंगल के फूल की सृष्टि

☞ लोक-साहित्य की पहचान
- ❖ लोकवार्ता

☞ लोक-साहित्य : लोक-मानस की अभिव्यक्ति
- ❖ लोक-साहित्य का रचयिता
- ❖ अलिखित स्वरूप

☞ परम्परागत साहित्य

☞ लोक-भाषा का साहित्य
- ❖ प्रमुख विद्याएँ
  - (A) लोक-कहानी
  - (B) लोक-गीत
  - (C) लोक-गाथा
  - (D) लोक-नाट्य
  - (E) लोक-वार्ताएँ

☞ संदर्भ ग्रंथ - १

☞ संदर्भ ग्रंथ - २

फोकलोर शब्द की उत्पत्ति :

'फोकलोर' शब्द की उत्पत्ति की कथा कुछ बहुत प्राचीन नहीं है। करीब इसकी उत्पत्ति की कहानी लगभग १५० वर्ष पुरानी है। 'फोकलोर' शब्द का निर्माण विलियम थॉमस (William Thoms)ने सन् १८४६ ई. में किया था। इसके पहले इस शब्द के लिए 'लोकप्रिय पुरातत्त्व सामग्री' (Popular Antiquities) अथवा 'लोकप्रिय साहित्य' (Popular Literature) शब्दों का प्रयोग किया जाता था। सन् १८४६ ई. में विलियम थॉमस ने एम्ब्रोज मर्टन (Ambrose Merton) के' छद्मनाम से 'एथीनियम' (The Athenaeum) नामक पत्रिका में एक पत्र प्रकाशित किया जिस में उसने यह प्रस्ताव किया था कि 'फोकलोर' - जो एक ''सुन्दर सेक्सन समसित'' शब्द है - का प्रयोग ''लोकप्रिय पुरातत्त्व सामग्री'' शब्द के लिए किया जाना चाहिए। थॉमस ने फोकलोर के अन्तर्गत रीति, प्रथा, विधि-विधान, अन्ध विश्वास, लोकगाथा तथा लोकोक्ति आदि का अन्तर्भाव स्वीकार किया था।(१)

थॉमस ने अपने पत्र में फोकलोर की सामग्री के क्रमशः नष्ट होने का उल्लेख किया है। उनके द्वारा 'उपेक्षित प्रथाओं', 'मुरझाती हुई लोक कथाओं' और बिखरी हुई 'लोक गाथाओं' आदि शब्दों के प्रयोग के द्वारा उनकी मनःस्थिति का कुछ अनुमान किया जा सकता है।(२) थॉमस ने इस पत्र के सम्पादक के पास यह भी लिखा कि जिन लोगों ने प्राचीन रीत-रिवाज़ों, प्रथाओं और लोक-विश्वासों का अध्ययन किया है वे लोग दो निर्णयों पर अवश्य ही पहुँचे होंगे - (१) इस सामग्री में कितनी विशिष्टता है जो प्रायः नष्ट हो रही है या हो गई है, और (२) आज भी समय से प्रयास करने पर इस अनन्त सामग्री की रक्षा की जा सकती है। इससे पता चलता है कि थॉमस के समय में फोकलोर की अनन्त सामग्री की क्षति प्रारम्भ हो गयी थी और शेष उपादानों की रक्षा करना ही उनका परम ध्येय था।(३)

थॉमस ने फोकलोर शब्द की व्याख्या करते हुए इसे सर्वसाधारण जनता का ज्ञान (The lore of the people) बतलाया है। इस कथन से फोकलोर शब्द के निर्माण-कर्ता का इस परिभाषा के इस संबंध में क्या अभिप्राय था, इसकी ओर भी संकेत मिलता है।

यद्यपि विलियम थॉमस के कई वर्षों पहले ही 'फोकलोर' के अध्ययन का प्रारम्भ हो चुका था। परन्तु उन दिनों में इस समस्त सामग्री को 'लोकप्रिय पुरातत्व' का नाम दिया जाता था जिससे कुछ विशेष अभिप्राय स्पष्ट नहीं होता था। अतः सन् १८४६ ई. में 'फोकलोर' शब्द के निर्माण का श्रेय विलिमय थॉमस को ही प्राप्त है।

'फोकलोर' शब्द की सबसे बडी विशेषता है कि कालान्तर में यह शब्द बडा ही लोकप्रिय सिद्ध हुआ। जर्मनी को छोडकर प्रायः सभी देशों के विद्वानों ने रीत-रिवाज, लोक-विश्वास, प्रथा तथा लोक-साहित्य के अध्ययन के लिए इसी शब्द 'फोकलोर' को निःसंकोच स्वीकार कर लिया और आज प्रायः समस्त संसार में इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया जा रहा है। हाँ, जर्मन लोग आज भी 'फोकलोर' के लिए 'फोल्कस कुण्डे' (Folks Kunde) का ही प्रयोग करते हैं। परन्तु इससे इस शब्द की सार्वजनिनता में कुछ भी अन्तर नहीं आता और इसकी महत्ता दिन ब दिन बढती जा रही है।

'फोकलोर' शब्द का अर्थ :

'फोकलोर' यह शब्द समसित पद है जिसमें दो पद सम्मिलित है - (१) फोक और (२) लोर। फोक (Folk) शब्द की व्युत्पत्ति ऐंग्लो सेक्सन शब्द फोल्क (Folc) से मानी जाती है। जर्मन भाषा में इसे (Volk) कहते हैं। डॉ. बार्कर ने 'फोक' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है कि 'फोक' शब्द से सभ्यता से दूर रहने वाली किसी पूरी जाति का बोध होता है। परन्तु यदि इसका विस्तृत अर्थ किया जाय तो किसी सुसंस्कृत राष्ट्र के सभी लोग इस नाम से पुकारे जा सकते हैं। लेकिन 'फोकलोर' के सन्दर्भ में 'फोक' शब्द का अर्थ 'असंस्कृत' लोग है। अंग्रेजी 'फोक' के लिए इसी अर्थ में हिन्दी को 'लोक' शब्द का प्रयोग किया जा सकता है।

दूसरा शब्द लोर (Lore) है जो ऐंग्लो सेक्सन 'लर' (Lar) शब्द से निकला हुआ है। 'लोर' शब्द का अर्थ 'नॉलेज' (ज्ञान) अथवा लर्निंग (विद्या) होता है। अत: 'फोकलोर' का अर्थ हुआ सामान्य जनता का ज्ञान अथवा विद्या। कहने का आशय यह है कि जनता-जनार्दन का यावत् ज्ञान है, उनकी जो कुछ जानकारी है, वह सभी कुछ 'फोकलोर' के अध्ययन का विषय है। इस प्रकार जनता के रीति-रिवाज, विधि-विधान, क्रिया-कलाप, विश्वास, प्रथा, परम्परा और लोक-साहित्य - गीत, कथा, गाथा, नाट्य - ये सभी विषय 'फोकलोर' में अन्तर्मुक्त होते हैं।

फोकलोर शब्द की परिभाषा :

'फोकलोर' शब्द की परिभाषा अनेक विद्वानों ने विभिन्न रूपों से बतलायी है। किसी ने इसके साहित्यिक रूप पर बल दिया है तो किसी ने जनता की संस्कृति के अध्ययन को ही 'फोकलोर' का क्षेत्र माना है। मेरिया लीच ने ''डिक्शनरी ऑफ फोकलोर मायथोलोजी एण्ड लीजेण्ड'' नामक एक अत्यन्त उपयोगी पुस्तक का दो बृहत् भागों में सम्पादन किया है। इस ग्रंथ में विश्व के महान फोकलोर के विद्वानों के मतों का वर्णन किया है। इन विद्वानों की संख्या बीस से भी अधिक है। अत: इन्हीं में से कुछ प्रसिद्ध विद्वानों की परिभाषाओं को यहाँ संक्षेप में दिया जा रहा है।

(१) विलियम थॉमस : 'फोकलोर' शब्द के निर्माणकर्ता विलियम थॉमस ने इसकी परिभाषा बतलाते हुए इसे जनता के रीति-रिवाज, प्रथा, विधि-विधान, अन्ध विश्वास, लोक गाथा और लोकोक्ति आदि से सम्बन्धित बतलाया है जिसका उल्लेख पहिले किया जा चुका है।

(२) विलियम बास्कम : इस विद्वान ने लिखा है कि 'फोकलोर' का सम्बन्ध पुराण-गाथा, अवदान, लोक कथा, लोकोक्ति, पहेली आदि विषयों से है जिसका माध्यम मैखिक शब्द है। मानव विज्ञानशास्त्रियों के अनुसार फोकलोर का अध्ययन क्षेत्र प्रथायें, अन्ध विश्वास, कला, शिल्प, वेश-भूषा, गृह के प्रकार और भोजन की सामग्री आदि से है।[४]

(३) एरेलियो एस्पिनोजा : फोकलोर की सामग्री अधिकांश रूप में सामाजिक मानव विज्ञान शास्त्र (Social Anthorpology) की सामग्री के समान है। विशिष्ट रूप से फोकलोर के अन्तर्गत लोक विश्वास, प्रथायें, अन्ध विश्वास, लोकोक्तियाँ, पहेलियाँ, गीत, पुराण-कथा, अवदान, लोक कथा, धार्मिक संस्कार, जादू, डायन-विद्या तथा आदिवासियों एवं अशिक्षित

लोगों के क्रिया-कलाप आते हैं। फोकलोर किसी सभ्यता की पद्धति अथवा प्रकार को स्थायिता प्रदान करता है तथा इसके अध्ययन से हम किसी सभ्यता के अभिप्राय (Motif) तथा उसके वास्तविक अर्थ को समझ सकते हैं।[५]

(४) जार्ज फास्टर : इस विद्वान के अनुसार फोकलोर के अध्ययन का क्षेत्र पहेलियाँ, गीतों, लोकोक्तियों, लोक विश्वासों तथा विभिन्न प्रकार के अन्ध विश्वासों तक विस्तृत है। इसके अतिरिक्त बच्चों के खेल, पालने के गीत, संस्कार, विविध विधि-विधान तथा जादू एवं डायन शास्त्र भी आता है।[६]

(५) आर. डी. जेमसन : इस विद्वान का कथन है कि फोकलोर सांस्कृतिक जाति विज्ञान (Cultural Ethnology) का एक अंग है जिसके अन्तर्गत पुराण कथा, अवदान, परम्परा, लोक कथायें, अन्ध विश्वास, धार्मिक विधि-विधान, प्रथायें, नृत्य तथा प्रकृति और मानव की विशेषतायें आती हैं। परन्तु आधुनिक 'वैज्ञानिक' फोकलोरिस्ट उषा की कथा, ताराओं की कथा, टोटेमिजम (टोटेमवाद) और विस्तारवाद के अध्ययन में लगे रहते हैं।[७]

(६) मेकएडवर्ड लीच : अमेरिकन फोकलोर सोसायटी के अनेक वर्षों तक मंत्री के पद को सुशोभित करने वाले इस सुप्रसिद्ध विद्वान के अनुसार फोकलोर शब्द का अभिप्राय प्रथाओं, विश्वासों, परम्पराओं, लोक कथाओं, जादूगरी के व्यवहारों, लोकोक्तियों तथा लोक गीतों से समझना चाहिये। संक्षेप में फोकलोर अशिक्षित तथा 'एक समान' जनता को आपस में सामान्य नागरिक संबंधो से बांधे हुए हैं - की ज्ञान राशि है।[८]

(७) आर्चर टेलर : अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के अमेरिकन विद्वान आर्चर टेलर का मत है कि फोकलोर की परिभाषा के भीतर निम्नांकित सभी विद्याओं का अन्तर्भाव हो जाता है जो निम्नांकित है - विभिन्न प्रकार की लोक कथायें, लोक गाथायें, लोकगीत, बालकों के गीत, जादू, लोकोक्तियाँ और पहेलियाँ आदि।[९]

(८) जेरटुड कुरथ : इस विद्वान का अभिप्राय यह है कि फोकलोर वह विज्ञान है जिसमें पारम्परिक लोक विश्वास, लोक कथा, अन्धविश्वास, सूक्ति, संस्कार, प्रथा, खेल, गीत तथा नृत्य का वर्णन किया गया है।[१०]

(९) मारिस बारब्यू : इस मनिषी ने तो लोक जीवन के समस्त क्रिया कलापों में - चाहे वह बढई, लोहार, सोनार और मोची का ही व्यापार क्यों न हो - फोकलोर का दर्शन किया है। इस प्रकार मानव जीवन की क्रियाओं के जितने भी क्षेत्र हो सकते हैं वे सभी फोकलोर के अन्तर्गत आते हैं।[११]

(१०) जान मिश : इस विद्वान का कथन है कि फोकलोर के अन्तर्गत हमारे समस्त प्राचीन लोकप्रिय विश्वासों, प्रथाओं, और परम्पराओं का समावेश होता है, जो अशिक्षित जनता के बीच आज भी अवशेष रूप में सुरक्षित है। इसके साथ ही फोकलोर का क्षेत्र परी कथाओं, पुराण कथाओं, अवदानों, अन्ध विश्वासों, व्रतों, विधि विधानों, परम्परागत खेलों, लोक गीतों, जनप्रिय सूक्तियों, कला, शिल्प, लोकनृत्य तथा अन्य ऐसी वस्तुओं तक विस्तृत है।[१२]

जान मिश के अनुसार फोकलोर शास्त्र का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। मानव जीवन के समस्त क्रिया-कलापों को इन्होंने फोकलोर के अन्तर्गत स्वीकार किया है। लोक गीत तथा

लोक कथाओं से लेकर लोक कला तथा शिल्प भी इसके अन्तर्गत आता है। किम्बहुना लोक विश्वास, उत्सव, संस्कार तथा जीवन के अन्य क्रिया-कलापों का समावेश भी इसके भीतर माना जाता है।

'लोक' शब्द का अर्थ :

'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोक दर्शने' धातु से 'धञ्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है।[१३] इस धातु का अर्थ देखना है। जिसका लट् लकार के अन्य पुरुष के एक वचन का रूप 'लौकते' हैं। अतः 'लोक' शब्द का अर्थ हुआ देखने वाला। इस प्रकार वह समस्त जन-समुदाय जो इस कार्य को करता है 'लोक' कहा जा सकता है। 'लोक' शब्द से ही हिन्दी के 'लोग' शब्द की व्युत्पत्ति मानी जाती है जिसका तात्पर्य है सर्वसाधारण जनता। अतः 'लोक' शब्द का अभिप्राय उस समस्त जनसमूह से है जो किसी देश में निवास करता है।

'लोक' शब्द की प्राचीनता :

'लोक' शब्द अत्यन्त प्राचीन है। यहाँ तक कि वेदों में भी इसका उल्लेख पाया जाता है। साधारण जनता के अर्थ में इसका प्रयोग ऋग्वेद में अनेक स्थानों में किया गया है। इस वेद में लोक शब्द के लिए 'जन' शब्द का भी प्रयोग उपलब्ध होता है।[१४] वैदिक ऋषि कहता है कि विश्वामित्र के द्वारा उच्चरित यह ब्रह्म या मंत्र भारत 'जन' की रक्षा करता है।

''य इमे रोदसी उभे; अहमिन्द्रमतुष्टवम्।
विश्वामित्रस्य रक्षतिः, ब्रह्म इदं भारतंजनम्॥''

ऋग्वेद के सुप्रसिद्ध पुरुष सूक्त में 'लोक' शब्द का व्यवहार जीव तथा स्थान दोनों अर्थों में हुआ है।[१५]

''नाभ्या आसीदन्तरिक्षं
शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पदभ्यां भूमिः दिशः श्रोत्राम्,
तथा लोकानकल्पयत्॥''

संस्कृत व्याकरण के पिता महर्षि पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में 'लोक' तथा 'सर्वलोक' शब्दों का उल्लेख किया है तथा इनके ठञ् प्रत्यय करने पर 'लौकिकः' तथा 'सार्वलौकिकः' शब्दों की निष्पत्ति की है।[१६] पाणिनि ने वेद से पृथक् 'लोक' शब्द की सत्ता को स्वीकार किया है। उन्होंने अनेक शब्दों की व्युत्पत्ति को बतलाते हुए लिखा है कि वेद में अमुक शब्द का अमुक प्रकार है परन्तु लोक में इसका स्वरूप भिन्न है।[१७] वररुचि ने अपने वार्तिकों में भी 'लोक' शब्द का प्रयोग किया है। महाभाष्यकार पतंज्जलि ने भी जनसाधारण के अर्थ में 'लोक' शब्द का व्यवहार किया है[१८] तथा लोक में प्रचलित 'गौः' शब्द के अनेक अपभ्रंश रूपों का उल्लेख किया है।[१९]

महर्षि व्यास ने महाभारत की विशेषताओं का वर्णन करते हुए लिखा है कि यह ग्रंथ अन्धकार रूपी अज्ञान से व्यथित लोक (सामान्य जनता) की आँखों को ज्ञान रूपी अंजन की शलाका लगाकर खोलने वाला है।[२०]

''अज्ञान तिमिरान्धस्य;
लोकस्य तु विचेष्टतः।

ज्ञानाञ्जन शलाकाभिः
नेत्रोन्मीलन कारकम्॥''

इसी प्रकार से महाभारत में वर्णित विषयों की चर्चा करते हुए लोक यात्रा का उल्लेख किया गया है।[२१]

''पुराणानां चैव दिव्यानां;
कल्पानां युद्ध कौशलम्।
वाक्य जाति विशेषाश्च,
लोक यात्रा क्रमश्च यः॥''

भगवद् गीता में 'लोक' तथा 'लोक' संग्रह' आदि शब्दों का प्रयोग अनेक स्थानों पर पाया जाता है। गीता में लोक संग्रह पर बडा बल दिया गया है।[२२]

''कर्मणैव हिसंसिद्धमास्थिताः जनकादयः।
लोक संग्रह मेवापि संपश्यन् कतृमर्हसि॥''

इन कतिपय उल्लेखों से ज्ञात होता है कि 'लोक' शब्द अत्यन्त प्राचीन है और सामान्य जनता के अर्थ में इसका प्रयोग चिरकाल से चला आ रहा है।[२३]

'लोक' शब्द की परिभाषा :

लोक शब्द की परिभाषा के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने अपना मत अभिव्यक्त किया है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोक के सम्बन्ध में अपने विचारों को प्रकट करते हुए लिखा है कि - ''लोक शब्द का अर्थ 'जानपद' या 'ग्राम्य' नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समस्त जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है। ये लोग नगर में परिष्कृत, रूचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा, अधिक सरल तथा अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रूचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं उन्हें उत्पन्न करते हैं।[२४] भारत के, लोक-साहित्य के सुप्रसिद्ध विद्वान डॉ. कुंज विहारी दास ने 'लोक' शब्द की सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की है।[२५] इससे स्पष्ट तथा ज्ञात होता है कि जो लोग संस्कृत तथा परिष्कृत लोगों के प्रभाव से बाहर रहते हुए अपनी पुरातन परिस्थिति में वर्तमान है उन्हें ही लोक कहा जाता है।

संस्कृति और अंग्रेजी का 'कल्चर' शब्द :

आजकल का संस्कृति शब्द अंग्रेजी के कल्चर (Culture) शब्द का समान अर्थवाची है। विरुक्ति की दृष्टि से 'कल्चर' शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के (colar) धातु से निष्पन्न कुल्टुरा (Cultura) शब्द से हुई है, जो संक्षेप में पूजा करना तथा कृषि सम्बन्धी कार्य का क्रमशः बोधक है। कुछ विद्वान कल्चर (Culture) तथा कल्टीवेशन (Cultivation) अर्थात् कृषि कर्म में समानता की स्थापना करते हैं। अतः इस समता के आधार पर यह कथन कुछ असमीचीन नहीं होगा कि कृषि-विद्या (Agriclture) के सिद्धान्तों के आधार पर जिस प्रकार पेड़-पौधों को सुविकसित करके अच्छी खेती तैयार की जाती है, ठीक उसी प्रकार मनुष्यों में भी मानवता की भावना को पुष्पित और पल्लवित करने के लिए जिस पद्धति या अनुसरण किया जाता है, जो प्रक्रिया अपनायी जाती है, उसे संस्कृति कहा जा सकता है। कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार किसी देश या समाज के विभिन्न जीवन व्यापारों या सामाजिक सम्बन्धों में मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले आदर्शों को ही संस्कृति कहते हैं।

लोक संस्कृति की स्वतंत्र सत्ता :

प्राचीन भारतीय साहित्य के अवलोकन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि अत्यन्त प्राचीन काल से ही इस देश में संस्कृति की दो धारायें प्रवाहित हो रही थी। (१) शिष्ट संस्कृति (२) लोक संस्कृति।

शिष्ट संस्कृति से तात्पर्य उस अभिजात वर्ग की संस्कृति से है जो बौद्धिक विकास के पराकाष्टा पर पहुँची हुई थी। यह वर्ग अपनी प्रतिभा के कारण समाज का अग्रणी तथा पथ-प्रदर्शक था तथा जिसकी संस्कृति का स्रोत वेद और शास्त्र था। परन्तु लोक संस्कृति से हमारा अभिप्राय जन-साधारण की उस संस्कृति से है जो अपनी प्रेरणा लोक से प्राप्त करती थी। जिसकी उत्स-भूमि जनता थी। इस संस्कृति के अनुयायी बौद्धिक विकास के निम्न धरातल पर अवस्थित थे। यदि ऋग्वेद और अथर्ववेद का सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन किया जाय तो वह पार्थक्य स्पष्ट ही प्रतीत हो जाता है। संस्कृत के विद्वान पं. बलदेव उपाध्याय ने अपना मत प्रकट करते हुए कहा है कि।[२६]

''लोक संस्कृति शिष्ट संस्कृति की सहायक होती है। किसी देश के धार्मिक विश्वासों, अनुष्ठानों तथा क्रिया-कलापों के पूर्ण परिचय के लिए दोनों संस्कृतियों में परस्पर सहयोग अपेक्षित है। इस दृष्टि से अथर्ववेद, ऋग्वेद का पूरक है। ये दोनों संहितायें दो विभिन्न संस्कृतियों के स्वरूप की परिचारिकायें हैं। यदि अथर्ववेद लोक संस्कृति का परिचायक है तो ऋग्वेद शिष्ट संस्कृति का दर्पण है। अथर्ववेद के विचारों का धरातल सामान्य जन-जीवन है तो ऋग्वेद का विशिष्ट जन-जीवन है।''

ऋग्वेद में यज्ञ-यागादिक विधान पाया जाता है तो अथर्ववेद में अंध-विश्वास, टोना-टोटका, जादू और मंत्र का वर्णन उपलब्ध होता है। इस प्रकार ऋग्वेद में शिष्ट तथा संस्कृत जन के विचारों का विवरण मिलता है तो अथर्ववेद में सामान्य जनता के जीवन का चित्रण हुआ है। इस प्रकार ये दोनों वेद दो विभिन्न संस्कृतियों के प्रतीक है।

उपनिषद काल में भी ये दोनों संस्कृतियाँ पृथक रूप से दृष्टिगोचर होती है। बृहदारण्यक,

कठोपनिषद तथा अन्य उपनिषदों में जहाँ आत्मा-परमात्मा, जीव और जगत आदि का वर्णन है, वे अभिजात संस्कृति के ग्रंथ है। परन्तु जिनमें लोक जीवन का वर्णन है, जिनमें लोक विश्वास तथा लोक रीति-रिवाजों का उल्लेख है उनका संबंध निश्चय ही लोक संस्कृति से है। गृह-सूत्रों को यदि लोक संस्कृति का विश्वकोष कहें तो कुछ अत्युक्ति नहीं होगी।

लोक-साहित्य एवं लोक संस्कृति :

अंग्रेजी शब्द 'फोकलोर' का समान अर्थ वाची शब्द हिन्दी में केवल 'लोक संस्कृति' है। 'फोक लिटरेचर' के लिए हिन्दी में 'लोक-साहित्य' शब्द का प्रयोग होता है।

लोक-साहित्य को तीन श्रेणियों में विभक्त किया है। (१) लोक विश्वास (२) रीति-रिवाज और प्रथायें, और (३) लोक-साहित्य।

लोक संस्कृति पर से ज्ञात होता है कि पिछडी हुई जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों के अवशिष्ट लोक विश्वास, रीति-रिवाज, खान-पान, संस्कार, प्रथायें, रहन-सहन एवं आचार विचार आते हैं। प्रकृति के चेतन तथा जड जगत के सम्बन्ध में भूतप्रेतों की दुनिया तथा उनके साथ मनुष्यों के सम्बन्धों के विषय में जादू-टोना, संमोहन, वशीकरण, तावीज, भाग्य, शकुन, रोग तथा मृत्यु के सम्बन्ध में आदिम तथा असभ्य जातियों की अन्ध परम्परायें इसके भीतर समाविष्ट होती है। इसके साथ ही विचार, उत्तराधिकार, बाल तथा प्रौढ जीवन के रीत-रिवाज, अनुष्ठान और त्यौहार, युद्ध, आखेट, पशुपालन, मत्स्य व्यवसाय आदि विषयों के विधि-विधान इसके अन्तर्गत है। संक्षेप में लोक की मानसिक सम्पन्नता के अन्तर्गत जो भी वस्तुयें आ सकती है वे सभी लोक संस्कृति के क्षेत्र के भीतर हैं।

इसी प्रकार लोक-साहित्य की समस्त विद्यायें भी लोक संस्कृति में अन्तर्भूत होती है। लोक गीत, लोक गाथा, लोक कथा, लोक नाट्य, लोक सुभाषित अर्थात् लोकोक्तियाँ, पहेलियाँ, मुहावरे तथा सूक्तियों - आदि भी लोक-साहित्य के विषय है। किम्बहुना बच्चों के पालने के गीत, खेल के गीत, ऋतु सम्बन्धी उक्तियाँ सभी का इसमें अन्तर्भाव होता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि लोक संस्कृति का क्षेत्र-विस्तार अत्यन्त व्यापक एवं विस्तृत है। लोक संस्कृति मानव जीवन के समस्त अंगों से सम्बन्धित होने के अतिरिक्त उसके लोक साहित्य को भी आत्मसात् किये हुए हैं। यदि लोक संस्कृति को किसी विशाल वृक्ष से उपमा दी जाय तो लोक-साहित्य उसकी एक शाखा के समान है। यदि लोक संस्कृति एक विस्तृत नदी है तो लोक-साहित्य की उपमा उसकी छोटी-सी सहायक नदी से दी जा सकती है। लोक संस्कृति की तुलना यदि किसी राष्ट्र से की जाय तो लोक-साहित्य उसके सप्तांगो में से एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

स्पष्ट शब्दों में यदि लोक संस्कृति की उपमा शरीर से दी जाय तो लोक-साहित्य उसके एक अंग के तुल्य है। इस प्रकार इन दोनों में अंगी-अंग भाव स्थापित है। यदि लोक संस्कृति की अंगी अर्थात् शरीर से तुलना की जाय तो लोक-साहित्य उसका एक अंग-हाथ पैर के समान होता है।

संक्षेप में शरीर और उसके अंगो में जो सम्बन्ध है वही सम्बन्ध लोक संस्कृति और लोक-साहित्य में समझना चाहिए। पहिला अंगी है तो दूसरा अंग। लोक संस्कृति तथा लोक-

साहित्य के पार्थक्य को समझने के लिए इतना विवेचन पर्याप्त है।

''लोक संस्कृतिः अंङ्गीस्यात्,
साहित्यमङ्गमुच्यते।
इति ते संशयो मा भूत,
उभयोः अन्तरं महत्॥''

लोक-साहित्य का प्रवाह परम्परा से चला आ रहा है। जिसका प्रवाह मुहाँ-मुहीं परम्परा से प्रशान्त सरिता की तरह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में सतत चलता रहा है। ''लोक जीवन का साक्षात्कार है और लोकोत्तर जीवन की संस्कृति स्वार्थपूर्ण एवं आत्मकेन्द्रित होती है। लोक अपने प्रवाही स्वभाव से आकर्षण उत्पन्न करता है। लोक में कष्ट होने से बचाने की छटपटाहट मौजूद होती है। लोक संस्कृति किसान की संस्कृति है, गाँव और खेती-बाडी की संस्कृति है, असंगठित मजदूर की संस्कृति है, जो मन की गाता है और काटता है।''(२७)

''लोक-साहित्य एक कान से दूसरे कान तक, एक कण्ड से दूसरे कण्ड तक विभिन्न अंचलों और गाँवों की सरहदों को पार करता हुआ जीवित रहा। पहले केवल 'कहने' का महत्त्व था, आज 'लिखने' का महत्त्व है। श्रुतियों पर युग बीते, आज लिखने पर युग चल रहा है। लेकिन अदभुत बात यह है कि पहले की वचनबद्धता आज की लिपिबद्धता से कितनी अधिक शक्तिमान है।''(२८)

लोक-साहित्य की शाश्वतता के पीछे उसका मूल्यबोध है। लोक-साहित्य में दिमाग नहीं दिल बोलता है। भारतीय सभ्यता नगरीय नहीं ग्रामीण है। पूरा भारतीय साहित्य गाँव उन्मुख है। राम की जवानी के चौदह वर्ष गाँव में नहीं जंगल में बीते। भरत नंदि में रहे। कृष्ण का असली चरित्र गोकुल गाँव का है। लव-कुश, शकुन्तला सभी गाँव या अरण्य में पले। भारतीय साहित्य नगर की अपेक्षा गाँव को महत्त्व देता है। श्रीमद् भागवत और सूरदास के प्रसिद्ध भ्रमरगीत में गाँव सभ्यता मुख्य है। गाँव आज भी नगरीकरण का महत्त्वपूर्ण विकल्प है।(२९)

वास्तव में नगरीय जीवन में यह प्रकृति ही नहीं है, जिसके साथ जुडाव होता है। नगरीय जीवन में रक्तकमल पलाश नहीं खिलते, पपीहे की पीव नहीं सुनाई पडती है, नदी के बहाव की आँकी-बाँकी रेखाएँ देखने को नहीं मिलती। वैसे भी नगरीय संस्कृति में यह सब देखने का अवकाश किसके पास है ? उल्लास की संभावनाएँ कहाँ है ? खेलने की प्रवृत्ति कहाँ ? भला जुडाव कैसे हो सकता है ? अमरिका से आए एक पर्यटक से काशीवासी गोपीनाथ कविराज ने एक बार पूछा - 'आपने भारतीय नगरों को देखा है ? उसने जवाब दिया कि वह नगरों को नहीं देखना चाहता, क्योंकि ये सब पाश्चात्य नगरों के अनुकरण मात्र है, वह तो भारत के उन व्यक्तियों, उन स्थानों को देखना चाहता है, जहाँ भारतीय आत्मा बसती हो।' उसका आशय लोक और लोक संस्कृति - लोक-साहित्य से ही था, जिसके केन्द्र में 'आत्मीयता' है।(३०)

''लोक-साहित्य का रूप ही मंगलमय है। उसकी प्रकृति पावन है, तो प्रवृत्ति आरण्यक है, कला कल्याणी है तथा अभिव्यक्ति आनन्दमयी है। लोक-साहित्य सुदूर कान्तार निवासियों, पर्वतीय प्राणियों तथा सहज ग्राम निवासियों का ऐसा साहित्य है जो अनगढ है, खुरदुरा भी

है और कोमल भी है। लोक-साहित्य का संसार सत्य का संसार है। लोकमानस के सीधे, सरल, सच्चे भाव इसमें निच्छल रूप से व्यक्त हो जाते हैं। यह एक सहज स्वाभाविक लोकानुभूति है, जिसमें युग-युग से चले आ रहे समाज की मूल भावनाओं का संचयन सुरक्षित है। लोकजीवन की समस्त शक्ति लोक-साहित्य में अभिव्यक्त होकर शिव और सुन्दर बन जाती है। आरम्भ से अंत तक यह मंगलमयी है, और उसकी जडें धरा की कोख में गहरी रहती है, यह धरती से ही रस ग्रहण करती है, प्रकृति से ही उसका पोषण होता है, सामूहिकता ही उसकी विशिष्टता है। अत: यह लोक-साहित्य, लोक संस्कृति की अमूल्य संपदा है।''(३१)

लोक-साहित्य जितना मानव जीवन के लिए निखरा है उतना ही पशु-पक्षियों एवं जीव-जंतुओं के लिए भी। लोक-साहित्य में प्रकृति सहचरी की तरह रहती है क्योंकि नदी जबान खोलकर गाती है, पेड लब खोलकर बोलते हैं, हवा बाबली और मस्त होकर जिधर चाहती है उधर घूमती है, झकझोरती है, पहाडों के कंठ फूटते हैं, जंगल की वाणी 'गूंजती हैं, झिंगुर डट कर बोलता है, कौवा अतिथियों के आगमन की सूचना देता है, तितलियाँ अच्छी बरसात का पता देती है, बछडे टिटकारी पारते हैं, भैंस बीन बजाने पर मंत्रमुग्ध होकर पागुर करती हैं, केंचुआ किसान का संगी-साथी हो जाता है, और मुनारिक फटा-सुथन्न पहनकर 'बिरहा' और 'निरगुन' गाते हैं। लोक में लोकजन और पशु-पक्षियों का जीवन अन्योन्याश्रित होता है। एक की पीडा पूरे परिवेश की पीडा होती है।

यहाँ हम गुजराती और राजस्थानी दोनों लोकगीतों में एक ही व्रत, एक ही तहेवार में समान भाव और एक ही जैसे शब्दों में वर्णित किया गया है वो देखते हैं :

राजस्थानी लोकगीत :

गवर गिणगोर माता, खोल किंवाडी
बहार ऊभी थारी पूजणवाळी,
पूजे ए पूजायां बायां, आसण कासण मांगां
जळहर जामी लाबो मांगां, राता देई माय
कान्हकंवर-सो वीरो मांगां, राई-सी भोजाई
सांवळियो बहनोई मांगां, सोहरा बहन मांगा
हांडा धोलण फूको मांगां, झाडू देवण भूवा।

गुजराती लोकगीत :

गोर्य गोर्य माडी
ऊघाडो कमाडी !
हुं आवुं छुं पूजणहारी,
पूजणहारी शुं मागे ?
ढींगलियाळी घैडी मागे
पाघडियाळो पूतर मागे
देरियां जेठियांनां जोडलां मागे
दूझणियुं झोटडियुं मागे !

लोक की अभिव्यक्ति उसकी लोकोक्तियों, कहावतों एवं लोककथाओं में सदा-नीरा

रहती है। लेकिन इन सबसे आगे लोक जीवन - चेतना की अभिव्यक्ति लोकगीतों की जुबान में होती है, जिससे जनमानस सराबोर होकर विश्रान्ति पाता है। रामनरेश त्रिपाठी ने सच लिखा है - ''लोकगीत हृदय का धन है। महाकाव्य मस्तिष्क का, लोकगीतों में रस है, महाकाव्य में अलंकार।''(३२) कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि लोकगीतों की प्रकृति बंधनमुक्त होती है। जिस प्रकार गंगा की अबाधित अनाहत निर्मल धारा में स्वच्छंदता एवं मस्ती होती है, उसी प्रकार लोकगीतों की धारा एवं धुन तथा लय में सुरसंगम होता है जो जनमन को शीतलता प्रदान करने वाला होता है।

इसमें सावन की हरियाली, बसंती बयार, पपीहा की पुकार, प्रकृति का श्रृंगार, नदियों का कलरव, पक्षियों का चहचहाना, फूलों का खिलना, धरती-बादल का मिलना, अहीर का बिरहा, पीपल-बरगद छाँव, पनघट की छलछलाहट, पनिहारिनों की मटक चक्की, कोल्हू रहट की धरर-धरर, चूडियों की खनक, सूपे की फटक, हलवाहे की तुतारी, बैलों की घंटी की रूनझुन, छोटे शिशु का चलना-गिरना उठना फिर मचलना, माँ का दुलार एवं नायिका का अभिसार, मनुहार है, जो लोकमानस को रसाबोर करता रहता है।

हम यहाँ एक गुजराती लोकगीत देखेंगे :

कुंजलडी रे...

कुंजलडी रे संदेशो अमारो
जई वालमने केजो जी रे !
माणस होय तो मुखोमुख बोले
लखो अमारी पांखलडी रे
... कुंजलडी रे

सामा कांठाना अमे पंखीडा
उडी उडी आ कांठे आव्यां जी
रे... कुंजलडी रे

कुंजलडीने वा'लो मीठो मेरामण
मोरने वा'लुं चोमासुं जी रे
... कुंजलडी रे

राम लखमणने सीताजी वा'लां
गोपीउने वा'लो कानुडो जी रे
... कुंजलडी रे

प्रीतिकांठाना अमे रे पंखीडा
प्रीतमसागर विना सूनां जी
रे... कुंजलडी रे

हाथ परमाणे चूडलो रे लावजो
गुजरीमां रतन जडावजो जी
रे.. कुंजलडी रे

डोक परमाणे झरमर लावजो
तुलसीए मोतीडा बंधावजो जी
रे... कुंजलडी रे

पग परमाणे कडलां लावजो
कांबीउमां घूघरा बंधावजो
रे... कुंजडली रे

संयोग के क्षणों में यहाँ लोक की नायिका का उन्मुक्त आह्वान है वहीं वियोग के क्षणों में वह नायक को खरी-खोटी सुनाने से भी बाज नहीं आती।

यहाँ नणंद-भोजाई का गुजराती लोकगीत देखिए :

नणंद भोजाई पाणीडा नीहरे राज ! पाणीडा नीहरे - राज
सरोवर कांठे रे रूडो आंबलो रे !
त्यां कांईक ऊके छे मोरलीयो राज ! कांईक उके छे मोरलीयो - राज
भोजाई मोरने देखी बोलीया रे !
जुओ नणदी मोरलीयाना रूप राज ! मोरलीयाना रूप - राज
तमारा वीराथी मोर रळीयामणो रे !
नणदे जई वीरा ने वात कीधी राज ! वीराने वात कीधी - राज
मारा भाभीए मोर वखाणीयो रे !
भारी ते बुके वीरो ऊठो राज ! वीरो ऊठो - राज !
मोरने मारवारे सरोवर पाजळीये रे !
एक बंदूके मोरने मारो राज ! मोरने मारो - राज
मोर मारी घेर लावीया रे !
लो भाभी माने तो मोर राज ! माने तो मोर - राज
तमारो पाळेल मोरने मारीयो रे !
सोनला वाटकडीमां वरवडां कांई धोळा राज ! वरवडां कांई धोळा - राज
गटगट पीने वऊ सूई गयां रे !
नवारे नगरथी कांई वैद्य तेडावो राज ! वैद्य तेडावो - राज
वऊवारूनी नाडीयु जोवरावो रे !
ताव नथी रे भाई तरीयो ए नथी रे ! मोरना पापे प्राण काढी रे
कसुंबल चूंदडी ओढाडो राज ! वऊने ओढाडो राज !
उपर ओढाडो नवरंग ओढणी ! नवरंग ओढणी राज !

लोक में अभिव्यक्त यह जीवन-चेतना मनुष्यों में नहीं बल्कि चर-अचर सभी में देखी जा सकती है, क्योंकि लोक निर्जीव नहीं सजीव है, उसके पेड पौधे बोलते-बतियाते हैं। पशु-पक्षियों की वह भाषा समझता है और उनके दु:ख को भी वह उतनी ही शिद्दत से महूसस

करता है, जितना किसी अपने आत्मीय जन के।

मानव की आरंभिक अवस्था से लेकर आज की सभ्यावस्था तक की विकास यात्रा में मनुष्य की भावाभिव्यक्ति एवं विचाराभिव्यक्ति हेतु अनेक भाषाओं का क्रमशः विकास हुआ। इन सभी भाषाओं में कहीं कम व कहीं अधिक रूप में साहित्य - सर्जना भी हुई। परन्तु अनेक भाषाओं के साहित्य का आज कई लोगों को ज्ञान भी नहीं है। पर ''लोक-साहित्य'' संज्ञा से अभिहित किया जाने वाला साहित्य आज भी सर्वसाधारण की जिह्वा पर मौजूद है। सर्वत्र और सभी कालों में सभी प्रकार के विचारों एवं तथ्यों का वर्णन कर लोक-साहित्य ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है। इस कालजयी साहित्य की परिवर्तन धर्मा प्रकृति ने युगानुरूप आवश्यक परिवर्तनों को स्वीकार कर अपने अक्षुण्ण अस्तित्व को सदैव बनाये रखा है और भविष्य में भी बनाये रखेगा।

''भारत में आर्य-भाषाओं का आदिरूप हमें संस्कृत भाषा में मिलता है। ''लोक' शब्द हमें संस्कृत में शुद्ध तत्सम रूप में मिलता है। व्युत्पत्ति के अनुसार 'लोक' शब्द 'लोक दर्शने' धातु से 'धञ' प्रत्यय लगाने से व्युत्पन्न है।''(३३) 'लोक' का शाब्दिक अर्थ 'देखने वाला' होता है। इस दृष्टि के अनुसार वह समस्त जन-समुदाय, जो देखने के कार्य को सम्पन्न करता है, 'लोक' कहलाता है। इसके अतिरिक्त कुछ कोशों में 'लोक' शब्द के विविध अर्थ इस प्रकार है। यथा - लोक ''भुवन, जगत, जन, प्रजा, मनुष्य।''(३४)

''संसार, विश्व का विभाग, पृथ्वी, मानव जाति, प्रजा, समूह, प्रांत, दृश्य, कक्ष, सात और चौदह की संख्या।''(३५)

''लोक, मनुष्य, व्याकरण, यम, यश, नाम, कीर्ति, संतान सृष्टि के विभाग आदि।''(३६)

'लोक-साहित्य अंग्रेजी के 'फोक-लिटरेचर' के पर्याय के रूप में ग्रहण किया गया है। 'फोक' के लिए 'लोक' और 'लिटरेचर' के लिए 'साहित्य'। आंग्ल - भाषा में 'लोक' शब्द का समानार्थी शब्द 'फोक' (Folk) हैं, जिसके बारे में ''आंग्ल-भाषा के प्रसिद्ध शब्द-कोष''(३७) में इस प्रकार से विचार व्यक्त किये हैं -

(i) People in general, or any part of them without distinction, formerely alike in both singular and plural but now the plural folks is most used, as folks will talk, some folks say so,

(ii) The member's of one's family, one's relatives a calloquial use in the plural in the united states as, the folks down home on the form, his folks are Yankees,

(iii) A race of people, a nation, a community,

उपर्युक्त विविध अर्थों को देखने पर पता चलता है कि प्रायः सभी ने 'लोक' शब्द को जन, प्रजा, मानव जाति आदि के पर्याय शब्द के रूप में ग्रहण किया है।

ऋग्वेद के सुप्रसिद्ध पुरुष - सूक्त में 'लोक' शब्द का प्रयोग जीव एवं स्थान दोनों अर्थों में हुआ है -

''नाभ्या आसींदतरिक्षं शीर्णो द्यौ समवर्तत।
पदभ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकां अकल्पयन।''(३८)

इसके अलावा ऋग्वेद में ''लोक'' शब्द के लिए ''जन'' शब्द का प्रयोग हुआ है।(३९)

''यजुर्वेद में 'लोक' (समाज) की विराट कल्पना की गई है। वह पुरुष रूप ईश्वर है। उसके सहस्र मुख, सहस्र नेत्र और सहस्र पद हैं।''(४०)

''जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण'' ग्रंथ में 'लोक' की विशालता की ओर संकेत करते हुए कहा गया है कि नानाविध प्रसृत 'लोक' प्रत्येक वस्तु में परिव्याप्त है एवं प्रयत्नपूर्वक भी इसे पूरी तरह नहीं जाना जा सकता।

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में अनेक नाट्य-धर्मी तथा लोकधर्मी प्रवृत्तियों का उल्लेख कर ''लोक'' की पृथक् सत्ता को स्वीकार किया है।(४१)

महर्षि व्यास ने 'लोक' शब्द का प्रयोग जनसाधारण के अर्थ में किया है।(४२)

महाभारत में व्यासमुनि ने ''प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः'' कहकर 'लोक' के महत्त्व को स्वीकार किया है।

''लोक-शब्द का अर्थ 'जनपद' या 'ग्राम्य' नहीं है, बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत रूचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रूचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं, उनको उत्पन्न करते हैं।''(४३)

''लोक मनुष्य - समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पाण्डित्य की चेतना और पाण्डित्य के अहंकार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्त्व मिलते हैं, वे लोक तत्त्व कहलाते हैं।''(४४)

''लोक-गीत उन लोगों के जीवन की अनायास प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति है जो सुसंस्कृत तथा सुसभ्य प्रभावों से बाहर रहकर कम या अधिक रूप में आदिम अवस्था में निवास करते हैं।''(४५)

''लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान - सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है, लोक कृत्स्न ज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजापति है। लोक, लोक की धात्री सर्वभूत माता पृथ्वी और लोक का व्यक्त रूप मानव यही हमारे नये जीवन का आध्यात्मशास्त्र है। इसका कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार और निर्माण का नवीन रूप है। लोक-पृथ्वी, मानव इसी त्रिलोकी में जीवन का कल्याणतम रूप है।''(४६)

''.....लोक साधारण जन-समाज है, जिसमें भू-भाग पर फैले हुए समस्त प्रकार के मानव सम्मिलित है। यह शब्द वर्ग-भेद रहित, व्यापक एवं प्राचीन परम्पराओं की श्रेष्ठ राशि सहित अर्वाचीन सभ्यता, संस्कृति के कल्याणमय विकास का द्योतक है। भारतीय समाज में नागरिक एवं ग्रामीण दो भिन्न संस्कृतियों का प्रायः उल्लेख किया जाता है, किन्तु 'लोक' दोनों संस्कृतियों में विद्यमान है। वही समाज का गतिशील अंग है।''(४७)

लोक-साहित्य की उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि लोक-साहित्य वह रचना अथवा अभिव्यक्ति है, जिसका रचनाकार ज्ञात नहीं होता, जो मौखिक

परम्परा से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक निरन्तर चलती जाती है जो किसी जनपद के लोकजीवन और लोक संस्कृति की अभिव्यक्ति जनपदीय बोली के माध्यम से करती है, जिसे किसी शास्त्रीय सिद्धान्तों का बंधन स्वीकार्य नहीं होता और जो सहज, स्वतः स्फूर्त जनमानस की अनुभूतियों को व्यक्त करती है। इसी अर्थ में किसी भाषा के शिष्ट या परिनिष्ठित साहित्य से वह भिन्न होती है क्योंकि शिष्ट साहित्य की रचना लिखित रूप में पृथक् रूप वाली लिखित या प्रकाशित कृति होती है और उसका रचनाकार ज्ञात होता है तथा उसकी वैयक्तिक अनुभूति का ही उसमें अभिव्यंजन होता है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि लोक-साहित्य समग्र भावन-चेतना की आंशिक अभिव्यक्ति है। यह प्रायः अलिखित रूप में ही विद्यमान रहता है और इसके अन्दर एक सम्पूर्ण लोक परम्परा तथा लोक संस्कृति जीवित रहती है। यदि लोक-साहित्य अतीत का प्रतिध्वनि है तो वर्तमान की आवाज भी उसमें सम्मिलित हैं। लोक-साहित्य सनातन परम्पराओं की सांकेतिक अभिव्यक्ति का साहित्य है। जिसमें सामाजिक चेतना के संस्कार सुरक्षित रहते हैं। लोक-साहित्य मानव समाज के उन लोगों का साहित्य है जो आधुनिक सभ्यता, संस्कृति एवं नागरिक संस्कारों से दूर अपनी आदिम प्रवृत्तियों से आबद्ध सहजावस्था में जीवन व्यतीत करते हैं। इस साहित्य में उनकी समस्त भावधारा विरामहीन एवं अन्तहीन रूप में प्रवाहित होती रहती है। श्रुति और स्मृति के द्वारा यह जन-जीवन में संचित और सुरक्षित रहता है। यह साहित्य जनता के नैसर्गिक उद्‌गारों की सहज, स्वाभाविक तथा मौखिक अभिव्यक्ति का साहित्य है, जिसमें उसकी सम्पूर्ण आशा-आकांक्षा, उल्लास-अवसाद, चिन्तन-मनन तथा धारणाओं को वाणी मिलती है।

लोक-साहित्य का स्वच्छंद प्रवाह जनता जनार्दन की जीवन-सरिता के सदृश अबाध गति से निरन्तर अग्रसर होता रहता है जिसके फलस्वरूप मानव समुदाय का जीवन सदा-सर्वदा रसार्द्र और आस्वाद्य बना रहता है।

अतः लोक-साहित्य लोक मानस को प्रतिबिम्बित करने वाला साहित्य है जो अनायास निःसृत होता है, जिसमें सहजावस्था युक्त निरक्षर जनता अपनी आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, जीवन-मरण, लाभ-हानि व्यक्त करती है। एक क्षेत्र-विशेष की सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक एकता की पृष्ठभूमि पर लोक को निरन्तर अपने अधिकार और कर्तव्य के प्रति जागरूक रखने वाले बोली में रचे और गाये गये उद्देश्यपूर्ण साहित्य को लोक-साहित्य कहते हैं।

सर्वसाधारण समाज की वह मौखिक एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति, जिसकी रचना में अभ्यास और अध्ययन की अपेक्षा नहीं होती, जिसमें कर्ता का व्यक्तित्व साधारणीकृत हो जाता है और जिसमें आदिम मानस के कुछ न कुछ अवशेष विद्यमान हो और जिसे एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को सौंपती चली जाय, लोक-साहित्य कहलाती है।

लोक-साहित्य में मानव ने सभी प्रकार के गीत, कथा, गाथा, पहेली, लोकोक्ति, मुकरी आदि के माध्यम से अपने हृदय के मोतियों को - बिखेरा है, अपनी ज्ञान-गंगा प्रवाहित की है।

भारतीय जन-जीवन :

लोक-साहित्य की परम्परा हिन्दी भाषा और उसके परिनिष्ठित साहित्य की परम्पराओं की अपेक्षा कहीं अधिक प्राचीन है। इसकी पूर्व पीठिका के रूप में एक ओर तो संपूर्ण भारत के जन-जीवन, उसके आचार-विचार और रीति-रिवाज आदि को लिया जा सकता है और दूसरी ओर प्राचीन भारतीय वाङ्मय में इसकी विभिन्न शैलियों के मूल श्रोत ढूंढे जा सकते हैं। सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से भारत वर्ष दुनिया के कुछेक प्राचीन देशों में गिना जाता है। धर्म, दर्शन, ज्योतिष, गणित, साहित्य, संगीत और कला आदि नाना दृष्टियों से यह देश बहुत धनी रहा है। नाट्य, नृत्य, गीत, पर्व और उत्सव की अनेक परिपाटियाँ यहाँ एक सनातन परम्परा द्वारा प्रवर्तित होती आई है। यहाँ के लोग देवी-देवता, भूत-प्रेत, राक्षस तथा अप्सरा आदि अतिमानवीय एवं अमानवीय प्राणियों के प्रति सदैव आस्थाशील रहे हैं। लोक जीवन और उसके समानान्तर शिष्ट जीवन में भी तन्त्र-मन्त्र, टोना-टोटका, झाड-फूंक, दोरा-तावीज, जादू-बान जैसी अवैज्ञानिक समझी जानेवाली क्रिया-प्रक्रिया में विश्वास किया जाता रहा है। यह समस्त वातावरण हमारे लोक-साहित्य के लिये बहुत अनुकूल और उर्वर सिद्ध हुआ है। लोक-साहित्य इसी लौकिक वातावरण की दृष्टि है और इसमें भारतवर्ष के लोक-जीवन की बहुमुखी अभिव्यक्ति हुई है।

ग्राम समाज :

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ के अधिकांश निवासी ग्रामीण और कृषक है। अर्थात् भारतीय समाज मुख्यत: ग्राम समाज है। इस प्रकार के समाज में शिक्षा अथवा साक्षरता का प्रचार कभी तो सन्तोष-जनक रूप में नहीं हुआ है। इस समाज के लोगों के पास समय का भी कोई अभाव नहीं रहा है। फसलें कट जाने के बाद ये लोग पर्याप्त समय तक विश्राम और मनोरंजन का स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करते हैं। भारतीय समाज की यह ग्रामीण प्रकृति भी लोक-साहित्य की पोषिका रही है। गुजरात और राजस्थान क्षेत्र का साहित्य इस ग्रामीण समाज की अपनी सम्पदा है। अशिक्षित होने के कारण यहाँ के लोगों ने तर्क और विवेक को महत्त्व नहीं दिया है। इनकी कल्पना और कुतूहल-भावना मुक्त भाव से विचरण कर सकी है और इन लोगों ने अद्‌भुत प्रकार की कथा कहानियों की रचना की है। पर्वोत्सवों की प्रधानता के कारण यहाँ गीत और गाथा-साहित्य की सृष्टि भी पर्याप्त मात्रा में हुई है। निरक्षरता के कारण यह सारा का सारा साहित्य बहुधा लिखा नहीं गया है। समय की कोई कमी न होने और मनोरंजन की प्रवृत्ति की प्रधानता होने के कारण इस समस्त मौखिक साहित्य के पोषण और संरक्षण के लिए पर्याप्त सुविधा रही है। इस प्रकार लोक-साहित्य प्रदेशों की मौखिक परम्परा का साहित्य है और इसकी रचना के मूल स्रोत इन प्रदेशों के जन-जीवन और इनकी रहन-सहन में धुले-मिले हैं।

प्राचीन वाङ्मय :

लोक-साहित्य की प्रधान परम्पराएँ प्राचीन भारतीय वाङ्मय में देखी जा सकती हैं, प्राचीन भारतीय साहित्य देश के लोक-जीवन के बहुत निकट रहा है। दोनों ने एक दूसरे को बहुत अधिक मात्रा में प्रभावित किया है। जनपदों में प्रचलित शताधिक लोक-कहानियाँ

संस्कृत की धार्मिक, पौराणिक अथवा ललित और रोमांचक आख्यायिकाओं की अनुवाद सी जान पडती है। शैली-शिल्प तथा रूप-भेद की दृष्टि से लोकाख्यानक साहित्य कई अर्थों में संस्कृत साहित्य का अनुगामी कहा जा सकता है। इसका प्रधान कारण यह है कि भाषा और उसकी बोलियों की उत्पत्ति से पूर्व, संस्कृत और परवर्ती भारतीय भाषाओं में कथा-आख्यायिका का साहित्य बहुत समृद्ध रहा है। अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं की भाँति हिन्दी को भी उक्त प्राचीन कथा-साहित्य विरासत के रूप में प्राप्त हुआ है।

भारतीय आख्यानक साहित्य :

कथा-कहानी की दृष्टि से लोक-साहित्य में भारतीय आख्यानक साहित्य की अनेक धाराएँ मिली हुई सी जान पडती हैं। ये धाराएँ मुख्यत: तीन हैं। इन्हें जैन, बौद्ध और ब्राह्मण-साहित्य की संज्ञा दी जा सकती है। जैनों और बौद्धों के अधिकांश कथा-काव्य स्वयमेव लोक-कथाओं के आधार पर लिखे गये जान पडते हैं। अनेक अर्थों में इनकी प्रकृति लोक-कथात्मक है और परवर्ती लोक-साहित्य को इनसे बहुत शक्ति मिली है। उदाहरणार्थ 'जातक' की कहानियों को लिया जा सकता है, जिनमें गौतम बुद्ध के पूर्व जन्मों के वृतान्त गाथाओं के रूप में दिये गये हैं। इस देश के लोक प्रचलित (पोपुलर) कथा-साहित्य की दृष्टि से 'जातक' की कहानियाँ बडे मार्के की हैं। इनमें लोक-जीवन की सामान्य मौखिक कथा-कहानियों की अनेक शैलियाँ तथा प्रवृत्तियाँ एक साथ देखने को मिल जाती हैं। कतिपय घटनाओं अथवा नामों के रूपान्तरण के साथ 'जातक' की अनेक कहानियाँ हिन्दी के लोक-साहित्य में आज भी प्रचलित हैं। हिन्दी लोकाख्यानों को ब्राह्मण साहित्य ने अपेक्षाकृत अधिक प्रभावित किया है। इसे हम कम से कम तीन भागो में बाँट सकते हैं। पहले भाग में वेद-व्यास कृत 'महाभारत', वाल्मीकि कृत 'रामायण' और इनसे सम्बन्ध कथा-काव्यों तथा उपाख्यानों की परिगणना की जाती है। दूसरे भाग में गुणाढ्य कृत 'बड्डुकहा' (बृहत् कथा) और इस पर आधारित सोमदेव कृत 'कथा सरित् सागर' की कहानियाँ आती हैं। तीसरे भाग के अन्तर्गत विष्णु शर्मा कृत 'पंच तन्त्र' तथा नारायण पण्डित कृत, 'हितोपदेश' की कहानियाँ हैं। ब्राह्मण साहित्य की इन तीनों ही धाराओं ने हिन्दी लोक-कहानी को बहुत समृद्ध बनाया है। कतिपय विद्वान 'रामायण' अथवा 'महाभारत' पर आश्रित कथा-कहानियों को धार्मिक-पौराणिक साहित्य की संज्ञा प्रदान करते हैं किन्तु यदि ध्यानपूर्वक विश्लेषण किया जाय तो पता चलता है कि इन कहानियों में लोक-कहानी के तत्त्व सुरक्षित है। 'महाभारत'(४८) और 'रामायण'(४९) के सम्बन्ध में भी यह निश्चित किया जा चुका है कि हमारे देश और जाति के प्रतिनिधि ये दोनों ही ग्रन्थ वस्तुत: लोक-गाथाओं एवं वीर-गाथाओं के आधार पर लिखे गये हैं।

बड्डुकहा और पंचतन्त्र :

लोक कहानियों की पूर्व पीठिका के रूप में 'बड्डुकहा' और 'पंचतन्त्र' का अध्ययन अन्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। हमारे लोक-साहित्य में इन ग्रंथो की परम्परा विशेष रूप से पल्लवित हुई है। 'बड्डुकहा' पिशाच भाषा में पशुओं की खाल पर रक्त और करंक लेखनी से लिखी गई थी। दुर्भाग्यवश अब यह ग्रंथ अप्राप्य है। सोमदेव कृत 'कथा सरित् सागर' इसी 'बड्डुकहा' का अनुवाद या रूपांतरण समझा जाता है। कश्मीरी पण्डित सोमदेव ने यह महान कार्य बारहवीं शताब्दी ई. के प्रारम्भ में सम्पन्न किया था। इसकी कहानियों के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि 'बड्डुकहा' इस देश के लोकप्रिय आख्यानों का 'महाकोश' रही होगी। कथा सरित् सागर की कहानियाँ अधिकांश में 'लौकिक रोमांश' की संज्ञा के अन्तर्गत आती हैं जिनमें नाना प्रकार के अविश्वसनीय एवं अवैज्ञानिक तथ्यों एवं वृत्तांतों का समावेश हुआ है। हिन्दी प्रदेशों के जन-जीवन में बहुधा इसी जाति की कहानियाँ

प्रचलित मिलती हैं। 'पंचतन्त्र' में पशु-पक्षियों की उपदेश प्रधान कहानियाँ संकलित हैं। विष्णु शर्मा नाम के किसी पण्डित द्वारा इसकी रचना आठवीं शताब्दी ई. के आसपास हुई थी। इस ग्रंथ की कहानियों और उनके शिल्प ने दुनिया भर के लोगों को प्रभावित और प्रेरित किया है। हमारे मौखिक परम्परागत लोकाख्यानों में भी इस कोटि की कहानियों की एक धारा उपलब्ध होती है।

गीत और गाथाएं :

लोक-साहित्य का दूसरा प्रधान विभाग लोक-गीतों और लोक-गाथाओं का है। इनकी परम्परा के मूल उत्स की दृष्टि से वैदिक गाथाएँ बहुत उपयोगी हैं। ऋग्वेद में 'गाथा' शब्द का प्रयोग प्राय: गीत के अर्थ में ही किया गया है। शतपथ और ऐतरेय ब्राह्मण में इस प्रकार की अनेक गाथाएँ संगृहीत हैं। बौद्ध ग्रंथ 'ललित विस्तर' में भी अनेक सुन्दर गाथाएँ उपलब्ध हैं। तीसरी शताब्दी वि. के आसपास की रचना 'गाथा-सप्तशती' तो जैसे लोक गीतों की प्रेरणा का अक्षय भण्डार है। इसमें राजा शालिवाहन द्वारा संकलित कोई सात सौ गाथाएँ संकलित हैं, जो प्रकृति से लोकगीत जान पडती है। आठवीं-नवीं शताब्दी के बौद्ध सिद्धों एवं नाथों के चर्यापद एवं व्रज-गीत भी हिन्दी लोक-गीतों की पूर्व पीठिका के रूप में अवलोकनीय हैं। इस प्रकार की रचनाएँ तत्कालीन लोक-जीवन में बहुत प्रिय हुई थीं। तेरहवीं-सोलहवीं शताब्दी के हिन्दी सन्तों की रचनाओं पर इनकी स्पष्ट छाप है। हमारे लोक-साहित्य में भजन और निर्गुण पदों के गायन की जो परिपाटी मिलती है उसे निश्चित रूप से सिद्ध और नाथ सन्तों की रचनाओं से जोडा जा सकता है। इसी प्रकार शृंगारपरक लोक-गीतों के प्रसंग में 'कविराज राजा जयदेव' (बारहवीं शताब्दी ई.) तथा 'मैंथिल कोकिल' विद्यापति का ध्यान हो आना स्वाभाविक है। जयदेव बंगाल के राजा लक्ष्मण सेन के समसामयिक कवि थे। विद्वानों का अनुमान है कि इन्होंने अपने 'गीत गोविन्द' नामक काव्य की रचना बंगाल के जनजीवन में प्रचलित 'यात्रा' गीतों से प्रभावित होकर की थी। जो हो, जयदेव के गीत गोविन्द का उत्तर भारत में भी बहुत प्रचार हुआ है। चौदहवीं शताब्दी ई. के मैथिल कवि विद्यापति तो स्पष्ट रूप से जयदेव से प्रभावित हुए थे। इनकी पद शैली का प्रसार उत्तर भारत में बडे धूम से हुआ है। हिन्दी प्रदेशों के बहुत सारे लोक-गीत विद्यापति की देन हैं। स्थान भेद के अनुसार उनकी भाषा थोडी बहुत बदली हुई मिलती है किन्तु उनमें जयदेव या विद्यापति की परम्परा का स्वर सुनाई पडता है।

नाट्यशास्त्रीय परम्परा :

लोक नाट्य की दृष्टि से भारतीय जन-जीवन अत्यन्त समृद्ध है। हमारे देश में अत्यन्त प्राचीन काल से नाट्य कला का विकास होता आया है। विविध प्रदेशों में इसकी एक सुदीर्घ परम्परा मिलती है जिसके मूल में लोक और वेद दोनों की परिपाटियाँ समाविष्ट हैं। हमारे यहाँ नाट्य विद्या को 'नाट्य वेद' की संज्ञा दी गई है और कहा गया है कि नाना जातियों तथा वर्णों के मनोरंजन के लिए स्वयं ब्रह्मा ने इसकी सृष्टि की थी (नाट्य शास्त्र १/१७)। हिन्दी के लोक नाटकों अथवा साहित्यिक नाटकों की पूर्व पीठिका के रूप में भरत मुनि के नाट्य शास्त्र का अध्ययन बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। नाट्य रचना तथा अभिनय कला की

शास्त्रीय विवेचना करने वाले इस अमूल्य ग्रंथ की सृष्टि ई. पू. तीसरी शताब्दी के आसपास हुई थी। इससे इस बात का कुछ बोध प्राप्त किया जा सकता है कि हमारे समाज में नाटक-रचना तथा अभिनय की परिपाटी कितनी पुरानी है। संस्कृत साहित्य का एक बहुत बडा भाग नाटक-साहित्य है। जिसे 'दृश्य काव्य' कहा गया है। मध्यकाल में मुसलमानों के आगमन तथा मुसलमानी शासन की स्थापना के साथ नाट्य कला का ह्रास होता गया। मुसलमानों के यहाँ अभिनय तथा नृत्य गीत का धार्मिक दृष्टि से निषेध था। किन्तु, ये कलाएँ सौभाग्यवश जीवित रह गई। इस देश की मिट्टी से इनका सनातन सम्बन्ध था। लोक-जीवन के सांस्कृतिक तथा सामाजिक उत्सवों में इनकी अनिवार्यता बनी रही। बाद में, भक्ति तथा आन्दोलन के युग में रास-लीला तथा राम-लीला पद्धतियाँ विकसित हुई। हिन्दी लोक-साहित्य की अन्य विद्याओं की भाँति हिन्दी लोक-नाट्य की परम्परा हिन्दी बोलियों की जानपदिक परम्परा है। इसकी पूर्व पीठिका के रूप में संस्कृत का विशाल नाट्य साहित्य आता है। आधुनिक काल में इसका विकास धार्मिक लीलाओं के प्रदर्शन अथवा जनता के मनोरंजन की दृष्टि से हुआ है।

लघु वार्ताओं की स्थिति :

मुहावरे, कहावतें, पहेलियाँ तथा चुटकुले किसी भी प्रदेश की लोक-भाषाओं अथवा बोलियों में बहुत अधिक मात्रा में उपलब्ध होते हैं। इन सबकी भी अपनी अपनी परम्परा रही है। संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं के साहित्य में भी लोक प्रचलित लघु वार्ताओं के प्रयोग बराबर किये जाते रहे हैं। हिन्दी लोक-साहित्य की एक प्रमुख विद्या के रूप में इनका अध्ययन करते समय इनकी इस साहित्यिक परम्परा को ध्यान में रखना चाहिए। लोक-साहित्य और लोक-भाषा से छनकर इस प्रकार के सुभाषित बराबर उभरते स्तर के साहित्य तक पहुँचते रहे हैं। 'रामचरित मानस' की दासी मंथरा, कैकेयी को संबोधित करती हुई जब कहती है :

'रेख खँचाइ कहउँ बलु भाखी।
भामिनि भहहु दूध कह मारवी॥'

तो निश्चय ही गोस्वामी तुलसीदास लोक-भाषा और लोक-शैली का अवलम्ब ग्रहण करते हैं। लोक-जीवन में प्रचलित मुहावरों के प्रयोग द्वारा दासी मंथरा के कथन में एक अद्‌भुत सी दमक आ जाती है। लोक-साहित्य के प्रचलित मुहावरों, कहावतों अथवा पहेली आदि की पूर्व पीठिका की दृष्टि से संस्कृत साहित्य का अनुशीलन भी बडा उपयोगी सिद्ध हुआ है। उदाहरण के लिए एक ऐसे संस्कृत सुभाषित को ले रहे हैं जिसे हिन्दी के अनेक कवियों ने अपना बना लेने की चेष्टा की है। सम्भावना इस बात की भी है कि इन सभी उदाहरणों में ये उक्तियाँ सीधे लोक-जीवन से आई हों -

'शैले शैले न माणिक्यं, मौक्तिकं न गजे गजे।
साधवो नहि सर्वत्र, चन्दनं न वने वने॥'

अब इन्हीं उक्तियों का प्रयोग थोडे हेर-फेर के साथ मलिक मुहम्मद जायसी करते हैं-

'जल थल नग न होहिं जेहि जोती। जल-जल सीप न उपनहिं मोती।
बन बन बिरछ न चन्दन होई। तन-तन बिरह न अपने सोई॥'

मियाँ भंझन अपने ढंग से कहते हैं -

'रतन की सागर सागरहिं, गज़ मोती गज कोय।
चंदन कि बन-बन उपजई, बिरह की तन-तन होय।।'

हिन्दी कहावतों की पूर्व पीठिका की दृष्टि से महाकवि कालिदास द्वारा प्रयुक्त एक लोकोक्ति और उसके एक आधुनिक हिन्दी संस्करण के उदाहरण कुछ रोचक प्रतीत होंगे। 'कुमारसम्भव' का कवि कहता है -

'प्रिपेषु सौभाग्य फलाहि चारुता।'

और हिन्दी लोक-साहित्य में उसकी अनुगूंज सुनाई पडती है -

'पिपवा जेके चाहै ओकर सोहागिन नावँ।'

उपर्युक्त तुलनात्मक उद्धरणों द्वारा हमारा यह मन्तव्य नहीं है कि हिन्दी का लोक-साहित्य शिष्ट समुदाय के अभिजात साहित्य की अनुकृति है। वस्तुतः यह कहना बडा कठिन है कि किसने किसका अनुकरण किया। प्राचीन साहित्य के कथा, कहानी गीत, गाथा, पहेली, मुहावरा आदि विभिन्न रूपों द्वारा हमें उस परम्परा का बोध अवश्य होता है, जिसकी बहुरंगी रेखाएँ हिन्दी लोक-साहित्य में अंकित हैं।

हिन्दी लोक-साहित्य की पहेलियाँ हमें वैदिक युग तक ले जाती हैं। ऋग्वेद के अनेक मंत्र अपने शैली-शिल्प की दृष्टि से आधुनिक पहेलियों की प्राचीन परम्परा का निर्देश करते हैं। एक प्रसिद्ध मन्त्र इस प्रकार से हैं -

'चत्वारि शृंगा त्रयो अस्य पादाः,
द्वे शीर्षे सप्त हस्ता सो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रो र वीति
महादेवो मर्त्या अविशेष।'

(जिसके चार सींग, तीन पैर, दो सिर और सात हाथ हैं, जो तीन ओर से बंधा हुआ है, वह मनुष्यों के प्रविष्ट हुआ वृषभ शब्द करता हुआ महादेव है।)

कोष्ठांकित साधारण अर्थ के अतिरिक्त इस मंत्र के कई अन्य अभिप्राय 'यक्ष', 'सूर्य' तथा 'शब्द' कहकर लगाए गये हैं। इस प्रकार यह मन्त्र एक पहेली बन गया है। हिन्दी की 'प्रहेलिका' साहित्य कुछ इसी परम्परा की वस्तु है।

लोक-साहित्य : जंगल के फूल की सृष्टि :

आधुनिक वैज्ञानिक सभ्यता के भौतिक चमत्कार पूर्ण तार्किक संस्कारों, जीवनपद्धति की जटिलताओं, बौद्धिक तनावों, मानसिक कुण्ठाओं, शास्त्रीय ज्ञानजन्य अहंकारों, अतिवादी पाण्डित्य की चेतनाओं तथा वर्गसंघर्ष की आशंकाओं से तपती, दहकती एवं सुगलती मरूभूमि से सर्वथा दूर-एक ऐसी भी 'सृष्टि' विद्यमान रही है जो नित्य नूतन शस्य श्यामल, परम पवित्र, अकृत्रिम, सहज तथा परम्परानुमोदित संस्कारों की उर्वरता से सम्पन्न है। यह ऐसी स्वच्छंद सृष्टि है जिसकी सत्ता किन्हीं पोथियों के ज्ञान से निर्मित नहीं है। जहाँ व्याकरण के अनुशासन की शृंखला नहीं है तथा अहम् चैतन्य की व्यक्तिवादी बोधगत सत्ता का शासन भी नहीं है। इस लोक का प्राणी जीवन के विराट और विशाल महासागर की लहरों पर सनातन काल से तैरती हुई - अनुभवों की रत्नाभा से प्रेरणा ग्रहण करता रहा है। यहाँ का प्राणी गीतों की लय तथा ताल पर थिरकता है, कथाओं तथा गाथाओं की धारा में निर्बाध बहता हुआ लोकमंगल की कामना के किनारों को संस्पर्श करता है और प्रहेलिकाओं तथा लोकोक्तियों की टेढ़ी-मेढ़ी वक्रिल पगदंडियों पर संचरण करता हुआ लोक रंगमंच की अकृत्रिम अभिनय शैली की विविध नाट्य-मुद्राओं से अनुरंजित होता है। यह सृष्टिलोक देवी-देवताओं के चमत्कारपूर्ण जीवन प्रसंगों से चमत्कृत होती है तथा अनुष्ठानों, टोने-टोटकों, सुकन-अपशुकनों, तीज-त्यौहारों के बीच अपनी जीवनयात्रा को हंसते-रोते, हंसाते-गाते, नाचते-झूमते, रीझते-खीझते, खिलते-मिलते पूरी करती है। जंगल में खिलने वाले फूलों की तरह यह 'सृष्टि' भी सुन्दर, स्वाभाविक तथा सहज है। यह स्वतोद्गीर्ण उच्छवास है। इस 'सृष्टि' को लोक (Folk) की संज्ञा से सम्बोधित किया गया है। यह लोक सच्चे अर्थों में जनमानस है और उसके मूल प्रतिबिम्ब भी है।

लोक-साहित्य की महत्ता को उद्घाटित करते हुए डॉ. संसार चन्द लिखते हैं - ''भारतीय जीवन अनादि युग से काव्यमय रहा है जिसका संगीत अपनी तरल गति से सर्वप्रथम लोक-साहित्य में ही तरंगित हुआ है। हमारे आचार-विचार, विधिनिषेध, प्रथा-परम्परा, मान्यता-विश्वास, धर्म-अनुष्ठान लोक-साहित्य में ही अपने सहज व निसर्ग रूप में उभरते हैं। लोक-साहित्य ही जनता जनार्दन के अकृत्रिम रूप का यथार्थ प्रतिबिम्ब है। इसलिए कालिदास जैसे महाकवि भी साहित्य और कला के क्षेत्र में आभिजात्य प्रवृत्ति से सर्वथा तटस्थ रहे। उन्होंने वन्य लताओं के समक्ष उद्यान लताओं को नतमस्तक करके लोक सौंदर्य का डिंडिम पाटा और कृत्रिमता के कवच को तोड कर लोक संस्कृति के उत्कर्ष की विजय वैजयन्ती माला फहराई।''(५०)

डॉ. शंकरलाल यादव लिखते हैं - ''लोक-साहित्य परम्परानिधि है जिसे लेखनी ने न कभी सँवारा है, न सजाया है और न कदाचित कभी इसे लेखनी की सहायता मिली है। यह तो प्रारम्भ से समाज की जिह्वा पर ही आसीन रहा है। सभ्यता और संस्कृतियों का उत्थान-पतन हुआ, साहित्य बना और बिगड़ा, परन्तु लोक-साहित्य का स्रोत कभी शुष्क नहीं हुआ और आज भी उसकी धारा अविरल रूप में प्रवहमान है।''(५१)

भोजपुरी लोक-साहित्य के मर्मज्ञ डॉ. सत्यव्रत सिन्हा के शब्दों में - ''लोक-साहित्य वह लोकरंजनी साहित्य है, जो सर्वसाधारण समाज की मौखिक रूप में भावमय अभिव्यक्ति करता

है।''(५२)

डॉ. सत्या गुप्ता ने सत्य ही लिखा है कि - ''लोक-साहित्य में विशेषतः जीवन की भावात्मक अभिव्यक्ति ही मिलती है और इसकी सीमाएँ भावों से ही निर्मित होती है।''(५३)

तात्पर्य यह है कि लोक-साहित्य लोकाभिव्यक्ति का मनोहारी, सम्मोहक, अलंकृत, अनगढ किन्तु मधुमय तथा आनन्दमय मूर्त उदगार है जो सभ्यता के उषाकाल से अद्यतन युग तक गुंजित है। लोक-साहित्य लोकाभिव्यक्ति है और इस लोकाभिव्यक्ति का मूल आधार 'लोक' तथा 'लोकमानस' है।

लोक-साहित्य की पहचान :

लोक-साहित्य समग्र 'लोक' के राग-विराग, हर्ष-विषाद, सुख-दुःख की सहज अकृत्रिम, स्वाभाविक व सरस अभिव्यक्ति है। इसलिए यह कहना अतिरंजना नहीं होगी कि लोक-साहित्य सर्वव्याप्त है। लोक-साहित्य का बहुतांश जितना प्रादेशिक है, उससे भी अधिक वह राष्ट्रव्यापी है और जितना राष्ट्रव्यापी है उससे भी अधिक वह अन्तर्राष्ट्रीय है। यह सम्पूर्ण मानव जाति की विरासत का सभ्य रूप है। राजनीति भले ही विश्व को अनेक देशों की भौगोलिक रेखा में विभाजित करती हो, लेकिन लोकसाहित्य, क्षुद्र राजनीति की इस प्रकार की स्थूल विभाजन रेखा को कभी स्वीकार नहीं करता। वह समस्त मानव जाति की समान विरासतों में भागवत एकता के रूप में विद्यमान है।

लोक-साहित्य सार्वभौम मानव प्रकृति और प्रवृत्ति की कालातीत अभिव्यक्ति का दूसरा नाम है। वस्तुतः लोक-साहित्य का केन्द्रीय लक्षण है - सामुदायिकता। इसकी अपेक्षा में ही इसके अन्य लक्षण एक संकुल की रचना करते हैं। 'यह सामुदायिकता या लोकबद्धता केवल अनुष्ठान और क्रियामूलक गीतों, शिक्षापरक कहावतों और कथाओं या मनोरंजनात्मक पहेलियों, गाथाओं और कहानियों के रूप में ही नहीं दिखायी पडती, वरन इस बात में भी लोक रचनाएँ मौन पाठ की अपेक्षा लोक के सदस्यों द्वारा या उनके बीच मुखर पाठ और प्रदर्शन के विषय हैं।.... इस अर्थ में लोक-साहित्य एक प्रकार का नाटक है जिसका वाचक या गायक सदैव अभिनेता की भूमिका में रहता है और अपने सामाजिक दबाव का हर समय अनुभव करता है। यह दबाव ही लोक-साहित्य की निरन्तर परिवर्तशीलता की व्याख्या करता है।(५४) इसी सामाजिक दबाव के कारण लोक-साहित्य किसी व्यक्ति विशेष की रचना होते हुए भी अन्ततः 'लोक कृति' बन जाती है और उसमें कृतिकार या वैयक्तिक वैशिष्ट्य विलुप्त हो जाता है। वह रचना लोक की सामाजिक - सांस्कृतिक धरोहर बन जाती है।

हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार ''लोक-साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढी हो, पर आज जिसे सामान्य लोकसमूह अपना मानता है और जिसमें लोक की युग-युगीन वाणी के साधना समाहित रहती है, जिसमें लोक मानस प्रतिबिम्बित रहता है।''(५५)

डॉ. नामवरसिंह जनसाहित्य तथा लोक-साहित्य की विवेचना के संदर्भ में लिखते हैं - ''जनसाहित्य औद्योगिक क्रान्ति से उत्पन्न समाज व्यवस्था की भूमिका में प्रवेश करने वाले सामान्य जन का साहित्य है। इसलिए जन साहित्य लोक-साहित्य से इसी अर्थ में भिन्न हैं कि लोक-साहित्य जहाँ जनता के लिए जनता के ही द्वारा रचित साहित्य है, वहाँ जन साहित्य जनता के लिए व्यक्ति द्वारा रचित साहित्य है।''(५६)

डॉ. सत्येन्द्र के मतानुसार - ''लोक-साहित्य के अन्तर्गत वह समस्त बोली या भाषागत अभिव्यक्ति आती है जिसमें (A) आदिम मानस के अवशेष उपलब्ध हों (B) परम्परागत मौखिक क्रम से उपलब्ध बोली या भाषागत अभिव्यक्ति हो, जिसे किसी की कृति न कहा जा सके, जिसे श्रुति ही माना जाता हो और जो लोक मानस की प्रवृत्ति में समायी हुई हो। (C) कृतित्व हो किन्तु वह लोक-मानस के सामान्य तत्त्वों से युक्त हो कि उसके किसी व्यक्तित्व के साथ सम्बद्ध रहते हुए भी, लोक उसे अपने ही व्यक्तित्व की कृति स्वीकार

करे।''(५७)

डॉ. भुवनेश्वर 'अनुज' ने 'लोक-साहित्य' की व्याख्या करते हुए लिखा है - ''लोक-साहित्य लोक समूह द्वारा स्वीकृत व्यक्ति की परम्परागत मौखिक क्रम से पाई गई वह वाणी है जिसमें लोक मानस संगृहीत रहता है। आदिम मानस के मस्तिष्क की सीधी तथा सच्ची अभिव्यक्ति ही लोकवार्ता तथा लोकसाहित्य है।''(५८)

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने 'लोक-साहित्य' की अतीत और वर्तमान के सन्दर्भ में बड़ी सुन्दर व्याख्या करते हुए लिखा है-''एक समय था जब संसार के समस्त देशों में मनुष्य प्रकृति देवी का उपासक था तथा प्राकृतिक जीवन व्यतीत करता था। उस समय उसका आचार-विचार, रहन-सहन, सरल-सहज तथा स्वाभाविक था। वह आडम्बर तथा कृत्रिमता से कोसों दूर रहता था। वह स्वाभाविकता की गोद में पला हुआ जीव था। उसके समस्त क्रिया-कलाप, उठना-बैठना, हँसना-बोलना, स्वाभाविकता में आगे रहते थे। चित्त के आह्लाद के लिए, मन के अनुरंजन के लिए साहित्य की रचना उस समय भी होती थी और आज भी होती हैं। परन्तु दोनों युगों के साहित्य में जमीन-आसमान का अन्तर हैं। परन्तु जिस युग की हम चर्चा कर रहे हैं, उस युग के साहित्य का प्रधान गुण था - स्वाभाविकता, स्वच्छंदता तथा सरलता। वह आकाश में विचरने वाली चिडिया़ के समान उतना ही सरल तथा पवित्र था जितना गंगा जल की निर्मल धारा। उस समय के साहित्य का जो अंश अवशिष्ट तथा सुरक्षित रह गया है वही हमें लोक-साहित्य के रूप में उपलब्ध होता है।''(५९)

लोक-साहित्य के स्वरूप को उद्घाटित करते हुए डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी लिखते हैं - ''लोक-साहित्य की गत्यात्मक जलधारा किसी भी क्षेत्र, किसी भी समाज, किसी भी कालखण्ड की समस्त सांस्कृतिक हलचलों की साक्षी है। इसके शुभ्र दर्पण में सांस्कृतिक गतिविधियों का सारा राग-विराग अनुभव और अभिव्यक्ति के सूत्रों में बँधा हुआ प्रतिबिम्बित होता है। किसी भी इलाके का लोक-साहित्य अपने परिवेश की सधन, सरल, स्वाभाविक और विश्वसनीय छवियों का प्रस्तोता बनकर उपस्थित होता है।''(६०)

लोक-साहित्य का मतलब जनता का साहित्य - ग्रामीण जनता का साहित्य है जो एक लम्बी यात्रा तय करने के बाद आज वह एक शास्त्र के रूप में एक ऐतिहासिक विज्ञान-विधि के रूप में प्रचलित हुआ है। उसमें झाँक कर देखना ही बाकी है कि वह पूरी मानव जाति का इतिहास प्रस्तुत करने में सक्षम है। इस रूप में यह कहना ज्यादा उचित है कि लोक-साहित्य मानव जाति की सभ्यता संस्कृति का अनश्वर शिलालेख है।

डॉ. सत्यव्रत सिन्हा लिखते हैं - ''लोक-साहित्य वह लोक रंजनी साहित्य है जो सर्वसाधारण समाज की मौखिक भावमय अभिव्यक्ति करता है।''(६१)

डॉ. शंकरलाल यादव लिखते हैं - ''लोक-साहित्य एक परम्परानिधि है जिसे लेखनी ने न कभी सँवारा है, न सजाया है और न कदाचित कभी इसे लेखनी की सहायता मिली है। यह तो प्रारम्भ से समाज की जिह्वा पर ही आसीन रहा है। सभ्यता और संस्कृतियों का उत्थान- पतन हुआ, साहित्य बना और बिगड़ा परन्तु लोक-साहित्य का स्रोत कभी शुष्क नहीं हुआ और आज भी उसकी धारा प्रवहमान है''(६२)

डॉ. तेजनारायण लाल ने ठीक ही लिखा है-''साधारण जनता जिन शब्दों में गाती हैं,

हँसती हैं, रोती हैं, खेलती हैं - उन सबको लोक-साहित्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है।'[६३]

लोकवार्ता :

लोक-साहित्य क्या है ? किन विशेषताओं अथवा प्रवृत्तियों के आधार पर किसी साहित्य की लोक-साहित्य की संज्ञा प्रदान की जा सकती है ? उसके स्वरूप का निर्धारण किन मूलभूत तत्त्वों के माध्यम से किया जाय ? इन प्रश्नों के उत्तर देने अर्थात् लोक-साहित्य (फ़ोक लिटरेचर) के स्वरूप और उसकी प्रवृत्तियों को समझने से पूर्व आवश्यक यह है कि लोक-वार्ता (फॉक-लोर) के विषय को संक्षेप में समझ लिया जाय क्योंकि लोक-साहित्य लोक-वार्ता का ही एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

'लोक-वार्ता' का शाब्दिक प्रयोग हिन्दी के लिये अब नया नहीं रहा। इसका प्रचलन अंग्रेजी के 'फ़ोकलोर' के लिए पर्यायवाची शब्द के रूप में हुआ है। कतिपय विद्वानों ने इसके लिये 'लोकयान' और 'लोक संस्कृति' जैसे भिन्न शब्दों का भी व्यवहार किया है।[६४] जो हो, 'लोक' का अर्थ है सामान्य जन-जीवन और 'लोक-वार्ता' के द्वारा इस सामान्य जन के व्यष्टि तथा समष्टिगत आचरण का बोध किया जाता है। सामान्य अर्थात् अशिक्षित, असभ्य, और अनभिजात समझे जाने वाले मानव समुदाय के रीति-रिवाज़ अंध-विश्वास और मूढ़ाग्रह तथा प्रथाएँ-परम्पराएँ इसके अन्तर्गत आती है। इसकी सीमा में मौखिक परम्परा द्वारा प्रचलित उन कहानियों, गीतों और पहेलियों आदि को भी समाविष्ट किया गया है जिनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध सामान्यजन के आचरण से होता है। 'फॉकलोर' (लोकवार्ता) के विविध पक्षों को लेकर पाश्चात्य देशों में, खास तौर से ग्रेट-ब्रिटेन, अमेरिका और रूस में, बहुत अधिक मात्रा में कार्य किया गया है। इस शब्द (फ़ोकलोर) का प्रथम प्रयोग सन १८४६ ई. में श्री विलियम जान टामस ने 'पापुलर एण्टिक्विटीज' के लिये किया था। वस्तुतः श्री टामस ने ही इस शब्द की रचना की और कालान्तर में इसे असंस्कृत मानव-समुदाय के जीवन की विभिन्न परम्पराओं और उनका अनुशीलन करने वाले शास्त्र के अर्थ में सार्वजनिक रूप से अंगीकार कर लिया गया। श्रीमती शार्लट सोफिया वर्न ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'ए हैण्ड बुक आव् फ़ॉकलोर' में इस शब्द की व्याख्या इस प्रकार से की है -

'यह (फ़ॉकलोर) एक जातिबोधक शब्द की भाँति प्रतिष्ठित हो गया है जिसके अन्तर्गत पिछड़ी जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों में अवशिष्ट विश्वास, रीति-रिवाज़ कहानियाँ, गीत तथा कहावतें आती हैं। प्रकृति के चेतन तथा जड़ जगत् के सम्बन्ध में, मानव स्वभाव तथा मनुष्य कृत पदार्थों के सम्बन्ध में, भूत-प्रेतों की दुनियाँ तथा उसके साथ मनुष्यों के सम्बन्धों के विषय में, जादू, टोना, सम्मोहन, वशीकरण, तावीज, भाग्य, शकुन, रोग तथा मृत्यु के सम्बन्ध में आदिम तथा असभ्य विश्वास इसके क्षेत्र में आते हैं। और भी इसमें विवाह, उत्तराधिकार, बाल्यकाल तथा प्रौढ़-जीवन के रीति-रिवाज तथा अनुष्ठान और त्यौहार, युद्ध, आखेट, मत्स्य व्यवसाय, पशु-पालन आदि विषयों के भी रीति-रिवाज़ और अनुष्ठान इसमें आते हैं तथा धर्म-गाथाएँ अवदान (लीजेण्ड), लोक-कहानियाँ, साके (बैलेड), गीत, किंवदन्तियाँ, पहेलियाँ तथा लोरियाँ भी इसके विषय हैं। संक्षेप में लोक की मानसिक सम्पन्नता के अन्तर्गत जो भी वस्तुएँ आ सकती है वे सभी इसके क्षेत्र में हैं।

लोक-साहित्य : लोक-मानस की अभिव्यक्ति :

लोक-साहित्य को लोक-मानस की सहज-स्वाभाविक अभिव्यक्ति के रूप में लेना चाहिए। सामान्य और अकृत्रिम जीवन व्यतीत करने वाला मानव समुदाय, जो प्राय: निरक्षर और बहुधा पोथी ज्ञान से परे होता है, इस साहित्य के माध्यम से अपने सुख-दु:ख, हर्ष-विषाद और आचार-विचार की वाणी देता है। प्रकृति के बहुरंगी परिवेश में बदलती हुई ऋतुओं के साथ उसके हृदय-देश में जो अनुभूतियाँ जागृत होती हैं उन्हें वह अपने नैसर्गिक राग-बोध द्वारा गीतों के रूप में व्यक्त करता है। अपने व्यक्तिगत अथवा सामूहिक जीवन की मर्मस्पर्शी एवं प्रेरणादायक घटनाओं को भी वह गेय गाथाओं के सांचे में ढाल देता है। कालयापन, मनोरंजन अथवा पूर्व पुरुषों एवं घटनाओं के स्मरण की दृष्टि से वह कथा-कहानियों की रचना करता है। बच्चों का जी बहलाने, उन्हें शिक्षा अथवा उपदेश देने और सामान्य लोगों के विवेक को जागृत करने के लिये उसे पहेलियों और कहावतों आदि की सृष्टि करनी पड़ती है। इस प्रकार लोक-साहित्य की रचना एक सहज किन्तु उद्देश्य प्रक्रिया के द्वारा सम्पन्न होती रहती है। लोक-साहित्य की रचना प्रक्रिया सनातन है।

लोक-साहित्य का रचयिता :

लोक-साहित्य के रचयिता के सम्बन्ध में कुछ कह सकना बड़ा कठिन है। किसी लोक-गीत अथवा कथा-कहानी के रचनाकार के विषय में कोई तथ्य कठिनाई से ही उपलब्ध हो पाता है। लोक-साहित्य का स्रष्टा लोक-जीवन की भावनाओं का ध्यान रखकर अपनी सृष्टि करता है। वह लोक-कण्ठ की वाणी बोलता है और उसकी रचना कालान्तर में लोक-जीवन में धुल-मिलकर समूह की सम्पत्ति बन जाती है। लोक-साहित्य का रचयिता प्राय: निश्छल और निरभिमान व्यक्ति होता है। वह अपनी रचनाओं में अपने नाम की छाप नहीं डालता। उसने यदि ऐसा किया भी तो काल-प्रवाह में यह छाप धुल जाती है। लोक-साहित्य की कोई कृति अपने कर्ता के नाम और परिचय के आधार पर जीवित नहीं रहती। उसकी श्रेष्ठता और सार्वजनीनता उसमें अन्तर्निहित लोक-चेतना के स्पन्दन और लोक-मानस की अभिव्यक्ति से प्रमाणित होती है। लोक-साहित्य, लोक-जीवन का सच्चा प्रतिबिम्ब होता है। किन्हीं अज्ञात-अनाम व्यक्तियों की रचना होने के बावजूद उसमें किसी एक सम्पूर्ण कबीले अथवा समूजी जाति की सामूहिक चेतना-धारा का संगीत सुनाई पड़ता है।

अलिखित स्वरूप :

लोक-साहित्य मौखिक और अलिखित होता है। लोक-संस्कृति के अध्येता और लोकवार्ताकार ऐसे साहित्य का संकलन करके इसे लिपिबद्ध कर लें सो बात भिन्न है किन्तु अपने वास्तविक रूप में यह लिखा नहीं जाता। इसकी रचना कल्पना के वितान पर की जाती है और इसकी स्थिति स्मृतियों के पट पर अंकित होती है। यह साहित्य अपनी लोकप्रियता और लोक-चित्त को आकर्षित करने की सहज क्षमता के कारण एक कण्ठ से दूसरे कण्ठ और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक की यात्रा करता रहता है। और, इस क्रम में इसमें बराबर संशोधन और परिवर्तन होते रहते हैं तथा इसके रचयिता का नाम विलुप्त हो

जाता है। असंस्कृत और असभ्य कहे जाने वाले साधारण मानव समूह की मौखिक और अलिखित भाव-सृष्टि होने के कारण कोई लोक-साहित्य साहित्यशास्त्र की परिपाटियों से परे होता है। इसकी रचना में भाषा के व्याकरण, काव्य के छन्द एवं अलंकार आदि विषयों से सम्बन्ध नियमों तथा कहानी के शिल्प एवं शैलीगत विधान को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता। जो साहित्य निरक्षर लोगों की सम्पदा है, जो अलिखित और मौखिक रूप से जीवित रहता है उसके स्वरूप के सन्दर्भ में यह आशा भी नहीं करनी चाहिए कि उसमें साहित्य और काव्य-शास्त्र की बारीकियाँ मिलेंगी।

परम्परागत साहित्य :

लोक-साहित्य की अपनी एक परम्परा होती है। इसे परम्परा का साहित्य कहा जाय तो कुछ अनुचित न होगा। यह साहित्य एक ओर तो अपने भीतर लोक-जीवन की अनेक परम्पराएँ समेटे होता है और दूसरी ओर लोक-जीवन की विभिन्न परिपाटियों के बीच ही इसकी रक्षा हो पाती है। मौखिक और अलिखित होने के साथ-साथ इस साहित्य को जीवित रखने और इसे आगे बढ़ाने की भी कुछ परम्पराएँ होती हैं। अवसर निर्धारित होते हैं कि कब किस व्रत, उत्सव अथवा पर्व के दिन कौन-कौन सी कहानियाँ कही जाएँगी, किन ऋतुओं में और किन पारिवारिक अथवा सामूहिक अनुष्ठानों के अवसर पर कौन-कौन से गीत गाये जायेंगे और किस तरह के खेल-तमाशे किये जायेंगे। इस प्रकार लोक-साहित्य को परम्परा का दुहरा पोषण प्राप्त होता है। उसमें परम्पराओं की अभिव्यक्ति हुई होती है और परम्पराएँ ही उसे आगे बढ़ाती रहती है।

लोक-भाषा का साहित्य :

लोक-साहित्य में लोक-भाषा का, जनता की अपनी बोली का सहज नैसर्गिक रूप सुरक्षित होता है। किसी जाति अथवा समुदाय की बोली का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन करने की दृष्टि से उसमें प्रचलित परम्परागत लोक-साहित्य की अपेक्षा कोई अन्य प्रकार की सामग्री अधिक उपादेय नहीं हो सकती। लोक-साहित्य में लोक-जीवन के मुहावरों, कहावतों और पहेलियों आदि का अक्षय भण्डार सुरक्षित होता है। जनता की जबान पर चढ़े हुए मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग के कारण लोक-साहित्य की व्यंजना शक्ति अद्‌भुत और मर्मस्पर्शी होती है। इस साहित्य का शब्दकोश ठेठ और जानपदिक होता है। इसमें बहुधा देशज और तद्‌भव शब्दों का ही व्यवहार किया जाता है। इसकी शैलियाँ बोलचाल की स्वाभाविक भंगिमा लिये होती है। परिनिष्ठित भाषा और परिष्कृत साहित्य के संस्कार वाले लोगों को लोक-साहित्य बहुधा जंगली और गंवारू साहित्य प्रतीत होता है किन्तु इस तथ्य को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि परिष्कृत कोटि का साहित्य लोक-साहित्य से ही प्राण-शक्ति प्राप्त करता है।

प्रमुख विद्याएँ :

लोक-साहित्य की विभिन्न विद्याओं को स्थूल रूप से चार प्रधान वर्गों में विभाजित किया जा सकता है -

(१) लोक-कहानी

(२) लोक-गीत और लोक-गाथा

(३) लोक-नाट्य

(४) लघु-वार्ताएँ

इनमें से प्रत्येक वर्ग-विद्या के पुन: कई विभाग किये जाते हैं और सबकी अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं।

(A) लोक-कहानी :

लोक-कथा अथवा लोक-कहानी लोक-साहित्य के एक बहुत बड़े भाग का प्रतिनिधित्व करती है। सारी दुनियाँ में लोक-जीवन का कथा-साहित्य अत्यन्त प्राचीन और विशाल है। इसका विकास मानवता के विकास के साथ-साथ हुआ है। लोक-जीवन में प्रचलित इन कथा-कहानियों के गर्भ में आदिम मनुष्य से लेकर आधुनिक युग तक के अशिक्षित और असभ्य मनुष्य की कौतूहल भावना का रहस्य छिपा हुआ है। लोक-कहानी वस्तुत: आदिम संस्कारों से ग्रस्त परम्परा पोषक मानव-समुदाय के कल्पना विलास का द्योतक है। सृष्टि के रहस्य को समझने-समझाने अथवा मनोरंजन और कालयापन के ध्येय से इसकी रचना होती रही है। बहुत सी कहानियाँ धर्म-शिक्षा, उपदेश और रीति-नीति की दृष्टि से गढ़ी गई प्रतीत होती है। जो हो, इन कहानियों में किसी न किसी रूप में विश्व मानव के असंस्कारी मन की अभिव्यक्ति हुई है। इस दृष्टि से दुनिया भर के लोक-कथा-साहित्य में अद्‌भुत समानता पाई जाती है। इनकी विषय वस्तु और विधि में प्राय: एक जैसे जीवन बोध और एक समान रूढ़ियों तथा अभिप्रायों का उपयोग हुआ है।[६५] इनमें यथार्थ जगत् के स्थान पर एक

कल्पना-लोक की सृष्टि मिलती है जिसमें देवी, देवता, भूत, प्रेत, परी, जिन, पशु, पक्षी जैसे अतिप्राकृतिक, अप्राकृतिक तथा अमानवीय जीव-जन्तु मनष्य के सुख-दु:ख के साथी और सहायक के रूप में चित्रित हुए हैं। इन कहानियों में जादू, टोना, तन्त्र, मन्त्र तथा मारण-मोहन जैसे आदिम विश्वासों की अभिव्यक्ति समान भाव से हुई है। विषय की दृष्टि से ये कहानियाँ मुख्य रूप से या तो इतिहास पुराणाश्रित है या फिर किसी राजा अथवा रानी के प्रणय और परिणय का रोमांचक वृतान्त प्रस्तुत करती हैं। भूत, प्रेत और राक्षस तथा पशु-पक्षी जैसे विषयों से सम्बन्ध लोक-कहानियाँ भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होती हैं। हाजिर जबावी और हँसी-मजाक के चुटकुलों का अपना अलग का इतिहास है। ये सभी प्रकार की कहानियाँ अपनी मौखिक परम्परा के अतिरिक्त, लिखित रूप में भी पाई जाती है। लोक-कहानियों के लिखित साहित्य की अपनी एक अलग की परम्परा है।

प्रमुख-भेद :

पाश्चात्य विद्वानों द्वारा निर्धारित लोक-कहानी के उपर्युक्त वर्ग उसके विभिन्न प्रकारों का सही निर्देश नहीं कर पाते। वर्ण्य विषय की दृष्टि से ये कहानियाँ कम से कम छह प्रकार की हो सकती है -

(१) राजा-रानी की कहानी
(२) भूत, प्रेत, परी या अप्सरा की कहानी
(३) पशु-पक्षियों की कहानी।
(४) देवी-देवता या धार्मिक विषयों की कहानी
(५) इतिहास-पुराण की कहानी
(६) हाजिर जवाबी और व्यंग-विनोद की कहानी

इन छह प्रकारों में क्रमश: रस-रोमांच, आश्चर्य और कौतूहल, नीति-उपदेश, व्रत और पूजा, तथ्य और कल्पना के मिश्रण तथा लोक-व्यवहार की प्रवृत्ति पाई जाती है।

(B) लोक-गीत :

लोक-साहित्य में लोक-कथा के सामानान्तर दूसरा महत्त्वपूर्ण स्थान लोक-गीतों का है। लोक-गीत मानव मन की आदिम गानवृत्ति के प्रतीक हैं। इनमें चिर-परिचित विषयों और सहज अनुभूतियों की तथा व्यक्तिगत सुख-दु:ख और समष्टिगत हर्ष-विषाद की अनूठी अभिव्यक्तियाँ उपलब्ध होती है। शिल्पविधि की दृष्टि से ये गीत मनुष्य के नैसर्गिक राग-बोध और सन्तुलनबोध के परिचायक है। सारे संसार की आदिम, असंस्कृत और ग्रामीण जातियों में लोक-गीतों के गाये जाने की अपनी-अपनी परिपाटी है। पारिवारिक परिधि में ये गीत विभिन्न प्रकार के संस्कारों, पर्वोत्सवों तथा धार्मिक अनुष्ठानों के अवसर पर गाये जाते हैं। ऋतु, उत्सवों, फसल की कटाई और बोवाई, विभिन्न प्रकार के श्रम तथा खेल-तमाशों और मेलों के अवसर पर इनका गायन व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से किया जाता है। कुछ गीत विशिष्ट जातियों, समुदायों और श्रमिक वर्गों के नाम पर बँटे मिलते हैं। इनका प्रचलन सम्बद्ध जातियों और समुदायों में होता है। लोक-कथा की भाँति लोक-गीतों का साहित्य भी विशाल और परम्परा पुरानी है। इनके रचना विधान में एक जैसे अभिप्राय और एक जैसी रूढियाँ अन्तर्मुक्त मिलती है। इनके माध्यम से सम्बद्ध जाति, समुदाय अथवा भू-भाग की

परम्पराओं और रीति-रिवाजों का अध्ययन किया जा सकता है। इनमें लोक-मानस और लोक-जीवन की नाना प्रतिच्छवियाँ अंकित हुई मिलती है और इस दृष्टि से किसी साहित्यिक गीत-धारा की तुलना में इनका महत्त्व कम नहीं समझना चाहिए।

प्रमुख-भेद :

लोक-गीतों के प्रधान वर्ग दो हैं। प्रथम वर्ग के गीतों के अन्तर्गत अनुभूतियों की बहुलता मानी गई है। दूसरे वर्ग के गीत कथा-आख्यायिका प्रधान होते हैं जिन्हें लोक-गाथा की संज्ञा दी जाती है। अनुभूति प्रधान गीतों की कोटियाँ निम्नांकित हैं -

(१) संस्कार तथा उत्सवों के गीत
(२) ऋतु और पर्वों के गीत
(३) व्रत और पूजा के गीत
(४) श्रम अथवा नृत्य के गीत
(५) विभिन्न जातियों और कबीलों के गीत

(C) लोक-गाथा :

लोक-गाथा के लिये अँगरेज़ी में 'बैलेड' शब्द प्रचलित है। आधुनिक प्रयोगों में इसे कथात्मक गीत के अर्थ में लिया जाता है। अस्तु, लोक-गाथा में किसी न किसी इतिवृत्त का समावेश होता है और इसका रूपात्मक परिधान प्रबन्धात्मक होता है। सामान्य कोटि के लोक-गीतों की तुलना में लोक-गाथाएँ प्राय: लम्बी होती हैं और इनमें कोई न कोई ऐतिहासिक, सामाजिक अथवा रोमांचक कहानी गीत के रूप में प्रस्तुत की जाती है। इस प्रकार की गाथाएँ सभी देशों की लोक-संस्कृति में बहुत प्रिय रही है क्योंकि इनके पीछे किसी न किसी समुदाय अथवा जाति की आस्था कार्य करती है और इनके माध्यम से गाई जाने वाली कहानियाँ सामुदायिक अथवा जातीय जीवन का कोई मार्मिक वृत्तान्त प्रस्तुत करती हैं। लोक-गाथा को बहुधा चारण-गीत भी कहा जाता है और कुछ विद्वानों का अनुमान है कि लोक-गाथाओं की रचना अधिकतर चारण जाति (मिस्ट्रल वार्ड) के पेशेवर गायकों द्वारा हुई है।[६६] वर्तमान समय में उपलब्ध किसी लोक-गाथा के रचयिता के सम्बन्ध में कुछ ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। आज के जीवन में प्रचलित अथवा साहित्य में संकलित किसी गाथा ने निश्चय ही एक सुदीर्घ मौखिक परम्परा पार की होगी। उसका वर्तमान पाठ भी बहुत प्रामाणिक अथवा विश्वसनीय नहीं माना जाता सकता।

प्रमुख-वर्ग :

विभिन्न द्रष्टियों से लोक-गाथा के कई वर्ग किये जा सकते हैं किन्तु विषय की दृष्टि से इसके प्रधान विभाग तीन हैं -

(१) वीर-गाथा (हीराइक बैलेड)
(२) प्रेम-गाथा (लव बैलेड)
(३) रोमांचक-गाथा (रोमैंटिक बैलेड)

(D) लोक-नाट्य :

लोक-साहित्य के तीसरे विभेद के अन्तर्गत लोक-नाट्य की चर्चा आती है। लोक-जीवन

में विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानों अथवा सामाजिक उत्सवों के अवसर पर नाना प्रकार के खेल-तमाशे किये जाते हैं। इनमें से कुछ का सम्बन्ध नृत्य, गीत और अभिनय से होता है। इस प्रकार के तमाशों को लोक-नाट्य कहते हैं। लोक-जीवन में खेले जाने वाले तमाशे या नाटक जनता की सहज अनुकरण वृत्ति-नकल उतारने की प्रवृत्ति-या मनोरंजन की भावना से प्रेरित होते हैं। अभिनय की शास्त्रीय पद्धति अथवा कथोपकथन की साहित्यिक भाषा और पदावली से इनका कोई सम्बन्ध नहीं होता। इन नाटकों में जो कहानियाँ और गीत अथवा स्वांग और प्रहसन विषयक चुटकुले आदि व्यवहृत होते हैं वे सब वस्तुतः लोक-साहित्य की गद्य-पद्य विधाओं के अंग होते हैं। लोक जीवन में प्रचलित कहानियों और गीतों ही को थोड़ा सा संवादात्मक रूप देकर प्रायः लौकिक नाटकों की रचना की जाती है। किन्तु, लोक प्रचलित नाटकों को लोक कहानी अथवा गीत-गाथाओं से अलग करके देखना चाहिए। अपनी संक्षिप्त तथा सहज संवादात्मक प्रकृति एवं अभिनय के कारण लोक-नाटकों की लोक-साहित्य में एक स्वतंत्र स्थिति है।

लोक-नाटकों का अनुशीलन :

लोक-नाटकों के स्वरूप तथा अनुशीलन के दो स्तर है। एक के अन्तर्गत उनकी मंचीय तथा अभिनय सम्बन्धी और दूसरे के अन्तर्गत विषय तथा शैलीगत विशेषताएँ आती हैं। मंच प्रायः खुले होते हैं। कभी-कभी दो चार लट्ठे गाडकर दो एक पर्दे भी लगा लिये जाते हैं। अभिनय के नाम पर नाच-कूद को विशेष प्रश्रय दिया जाता है। इन नाटकों के कथानक धार्मिक, ऐतिहासिक अथवा सामाजिक सभी प्रकार के होते हैं। छोटे-मोटे प्रहसनों में हँसी-मज़ाक के चुटकुलों का व्यवहार होता है जो प्रायः अश्लील और भद्दे होते हैं। कथोपकथन की भाषा लोक-भाषा होती है और संवाद छोटे होते हैं। लोक-नाटकों में कुल मिलाकर संगीत और नृत्य की प्रधानता होती है। कभी-कभी तो प्रत्येक बात पद्य के रूप में गाकर कही जाती है और प्रत्येक प्रकार का अभिनय नाच के साथ सम्पन्न होता है। लोक प्रचलित नाटकों का पद्यात्मक या गीत प्रधान होना स्वाभाविक भी है। इस प्रकृति के कारण ये सहज स्मरणीय होते हैं।

(E) लोक-वार्ताएँ :

लोक-साहित्य की चौथी विद्या में लघु वार्ताएँ आती हैं। लोक जीवन की बोलियों में कुछ मुहावरे, कहावतें तथा पहेलियाँ आदि प्रचलित होती है। लोक समुदाय का प्राणी अपने दैनिक जीवन के वार्तालाप में इन पारम्परिक शब्द-समूहों एवं वाक्य-खण्डों का व्यवहार बहुधा करता रहता है। इनके व्यवहार से कथनोपकथन में शक्ति आती है और भावों की अभिव्यक्ति प्रभावोत्पादक तथा मार्मिक हो उठती है। पहेलियाँ प्रायः तुकपूर्ण अथवा अतुकान्त छन्दों में होती हैं। बच्चों तथा किशोरों के बीच इनका व्यवहार मनोरंजन तथा ज्ञान संवर्धन के लिये किया जाता है। मुहावरे तथा कहावतों का प्रयोग बात-चीत के अतिरिक्त गीतों एवं कहानियों में भी होता है। लोकवार्ता के ये रूप लोक-गीत अथवा लोक-कहानी की तुलना में बहुत हो छोटे हैं। इनका व्यवहार मनोरंजन प्रधान अथवा सामान्य कोटि के वार्तालाप के मध्य किया जाता है। इसलिये इन्हें लघु-वार्ता की संज्ञा दी गई है। इस प्रकार के लघु-वार्ता-साहित्य में

तरह-तरह के चुटकुले और क्रीड़ालाप भी सम्मिलित किये जा सकते हैं।

प्रमुख प्रकार :

लखु-वार्ताओं के प्रमुख चार प्रकार है :

(१) मुहावरा (२) कहावत

(३) पहेली (४) चुटकुले और क्रीड़ालाप

मुहावरे किसी भाषा की शक्ति के परिचायक होते हैं। किसी वाक्य अथवा प्रसंग में इनके प्रयोग से गागर में सागर भरने वाली उक्ति चरितार्थ हो उठती है। इनका लाक्षणिक विधान बड़ा मार्मिक होता है और वाच्यार्थ से अलग हटकर ये एक नयी भाव सृष्टि करते हैं। इनमें लोकानुभव की दीप्ति होती है और लोक व्यवहार की छोटी-मोटी झांकियाँ सुरक्षित होती हैं। मुहावरों की भाँति कहावतें भी लोक व्यवहार, लोकानुभव और लौकिक ज्ञान-राशि का प्रतिनिधित्व करती है। लोक-जीवन में अत्यधिक प्रचलित होने तथा लोकानुभव एवं ज्ञान का संवहन करने के कारण इन्हें लोकोक्ति भी कहते हैं। ये उक्तियाँ सरल भाषा-शैली में गम्भीर विचारों और अनुभूतियों की अभिव्यक्ति करती हैं। दुनिया भर की बोलियों तथा भाषाओं में इनका साहित्य विशाल है और इनके व्यवहार की परम्परा अत्यन्त प्राचीन मानी गई है। पहेली मुहावरे तथा कहावतों से भिन्न जाति की वस्तु है। इसके माध्यम से लोक जीवन के सामूहिक विवेक का कुछ बोध प्राप्त किया जा सकता है जैसे कि इसकी रचना बड़े मनोयोग पूर्वक की गई हो और किसी वस्तु के रहस्य को समझने-समझाने का कोई विधान किया गया हो। हमारे यहाँ पहेली को 'बुझौवल' भी कहते हैं जिसमें बूझने का भाव निहित है। संक्षेप में, पहेली लोक-साहित्य की वह विद्या है जिसमें किसी पदार्थ के विषय में गुप्त संकेतों अथवा अस्पष्ट भाषा में कुछ कहा जाता है और सुनने वाला उक्त पदार्थ को समझने बूझने की चेष्टा करता है। चुटकुले तथा क्रीड़ालाप बच्चों के व्यवहार की वस्तुएँ हैं। इनका उपयोग खेल-कूद अथवा विविध मनोरंजन के अवसर पर किया जाता है।

संदर्भ ग्रंथ-१

(१) In 1846 William Thomas using the name Ambrose Merton, wrote a letter to "the Athenaeum" in which he proposed that a "good Saxon Compound 'Folklore' be employed in place of such labels" as "Popular Antiquities" and popular literature. Noteworthy is Thom's conception of folklore and his essentially enumerative definition; manners, customs, observances, superstitions, proverbs and so forth.

- Alan Dundes : The study of folklore P. 4

(२) Some recollection of a new neglected custom, some fading legend, local tradition on fragmentary ballad.

- एलन डण्डी, दि स्टडी आफ फोकलोर, पृ. ५

(३) The Athenaeum No. 982, Page 862-63

(४) The term folklore has come to mean myths, legends, folktales, proverbs, riddles, verse and a variety of other forms of artistic expression. XXX Folklorists are interested in customs, beliefs, arts and crafts, dress, house - types and food recipes.

- मेरिया लीच - डिक्शनरी, भाग-१, पृ. ३६८

(५) Specifically, folklore consists of the beliefs, customs, superstitions, proverbs, riddles, songs, myths, legends, tales, ritualistic, ceremonies, magic, witchcraft etc. Folklore may be said to be a true and direct expression of the mind of the "Primitive" man. Folklore perpetuates the pattern of culture and through its study we can often explain the motifs and the meaning of culture.

- मेरिया लीच - डिक्शनरी, भाग-१, पृ. ३६६

(६) Stories, certainly, whether myths, legends, folktales or anecdotes are of primary importance. I would also add riddles, rimes, proverbs, folksongs, as well as folk - beliefs, and superstitions of almost all kind. One finds materials which may be treated in folkloristic fashion - games, cats, cradle, ceremonies, and witchcraft etc.

- मेरिया लीच - डिक्शनरी, भाग-१, पृ. ३६६

(७) Folklore is a branch of cultural ethnology. The data of folklore are the myths, legends, traditions, narratives, superstitions, religious, rituals, customs, dances and explanations of nature and man. The "Scientific" folklorists search for "Original" dawn myths, stellar myths, toterrism and diffusionism etc.

- मेरिया लीच - डिक्शनरी, भाग-१, पृ. ४०१

(८) Folklore is the generic term to designate the customs, beliefs, traditions, tales, magical practices, proverbs, songs etc. of a homogeneous, unsophisticated people.

- मेरिया लीच - डिक्शनरी, भाग-१, पृ. ४०१

(९) Folklore in the form of connected discourse includes tales of various kinds i.e. marchen, rests, legends, cumulative tales, exepla, fables, etiological tales; ballads, lyric songs, children's songs, charms, proverbs and riddles.

- मेरिया लीच - डिक्शनरी, भाग-१, पृ. ४०२-४०३

(१०) **- मेरिया लीच - डिक्शनरी, भाग-१, पृ. ४०१**

(११) Whenever a village crafts man - carpenter, carver, shoe-maker, cooper, black smith, trains his apprentice in the use of tools, then we have folklore in its own perennial domain, alive and stufting.

- मेरिया लीच - डिक्शनरी, भाग-१, पृ. ३९८

(१२) The entire body of ancient, popular beliefs, customs and traditions, which have survived among the less educated elements of civilized society until to-day. It, thus, includes fairy tales, myths, legends, superstitions, festival, rites, traditional games, folksongs, popular sayings, arts, crafts, folk dances and the like.

- मेरिया लीच - डिक्शनरी, भाग-१

(१३) सिद्धान्त कौमुदी, पृ. ४१७ (बेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई)

(१४) ऋग्वेद - ३/५३/१२

(१५) ऋग्वेद (पुरुषसूक्त) १०/९०/२४

(१६) लोक सर्वलोकाट्ठञ ५/१/४४ तत्र विदितः इत्यर्थे लौकिकः।
- अनुशतिकादित्वात् उभयपद वृद्धिः। सार्वलौकिकः।

(१७) बहुल छन्दसि २/४/३९ तथा २/४/७३ सूत्रों की व्याख्या देखिए।

(१८) अभ्यन्तरोडहे लोके न त्वहं लोकः। आ. १, पृ. २०

(१९) महाभाष्य प्रथम आह्निक।

(२०) म. भा. (आ. प.) १/८४

(२१) म. भा. (आ. प.) १/६९

(२२) गीता ३/२०

(२३) लोक शब्द की प्राचीनता के विशेष विवरण के लिए देखिए - डॉ. उपाध्याय - लोक-साहित्य की भूमिका, पृ. १०-१३.

(२४) डॉ. द्विवेदी - 'जनपद' वर्ष-१, अंक-१, पृ. ६५

(२५) The people that live is more or less primitive conditions outside the sphere of sophisticated influences.

- डॉ. दास - ए स्टडी ओफ ओरिसन फोकलोर।

(२६) समाज पत्रिका (काशी विद्यापीठ) वर्ष-४, अंक-३, (१९५८) पृ. ४४६.
(२७) डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव, डॉ. रावेन्द्र कुमार साहू - 'भारतीय संस्कृति कल, आज और कल', पैसिफिक पब्लिकेशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-२०१२, पृ. २२१.
(२८) डॉ. आर्याप्रसाद त्रिपाठी - बधेली साहित्य का इतिहास, साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद - भोपाल, पृ. ८२
(२९) परमानन्द श्रीवास्तव - 'सूरदास-मूल्यांकन/पुनर्मूल्यांकन' अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण-२०००, पृ. १४०
(३०) डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव, डॉ. रावेन्द्र कुमार साहू 'भारतीय संस्कृति कल, आज और कल', पैसिफिक पब्लिकेशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-२०१२, पृ. २२२.
(३१) शोध संक्षेपिका - 'लोकसाहित्य की प्रासंगिकता, २०, २१ जनवरी-२०१२' शासकीय विलासा कन्या स्नाकोत्तर महाविद्यालय - बिलासपुर (छ. ग.) पृ. ३०
(३२) शरीफ मोहम्मद - मध्य प्रदेश का लोक संगीत, पृ. १९६.
(३३) सिद्धान्त - कौमुदी, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, १९८९, पृ. ४१६
(३४) हलायुध - कोश, सं. जयशंकर जोशी, पृ. ५८१
(३५) The practical Sanskrit English Dictionary, V. S. Apte, P. 820.
(३६) हिन्दी शब्द - कल्पद्रुम, सं. राम नरेश त्रिपाठी, पृ. ६३४-३५
(३७) Webster's New Twentieth Century Dictionary, P. 681
(३८) ऋग्वेद - १०/९०/१४
(३९) ऋग्वेद - ३/५३/१२
(४०) सहस्त्रशर्षा पुरुषः सहस्त्राक्ष सहस्त्रपात / यजुर्वेद. ३१
(४१) नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, चौदहवाँ अध्याय
(४२) आदि-पर्व १/१०१-२
(४३) जनपद, वर्ष-१, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, अंक-१, पृ. ६५
(४४) हिन्दी-साहित्य कोश, भाग-१, सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. ७४७
(४५) "...The People that live in more or less primitive condition outside the sphere of sophisticated influences."
- Study or Orisean folklore Dr. Kunj Bihari Dass.
(४६) सम्मेलन, लोक-संस्कृति विशेषांक, २०१०, डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ. ६५
(४७) भारतीय लोक-साहित्य, डॉ. श्याम परमार, पृ. ९-१०
(४८) हारवित्ज, शार्ट हिस्ट्री ओव इण्डियन लिटरेचर, १९०७, पृ. २७
(४९) चैडविक ब्रादर्स, दि ग्रोथ ओव इण्डियन लिटरेचर, दूसरा भाग, १९३६, पृ. २५६
(५०) डॉ. बैरिष्टरसिंह-डॉ. संसारचन्द्र-उपोद्घात (हिन्दी लोक-साहित्य में हास्य और व्यंग्य) पृ. ४
(५१) डॉ. शंकरलाल यादव - हरियाणा प्रदेश का लोक-साहित्य, पृ. २०
(५२) डॉ. सत्यव्रत सिन्हा - भोजपुरी लोकगाथा पृष्ठ (भूमिका)
(५३) डॉ. सत्यव्रत सिन्हा - भोजपुरी लोकगाथा पृष्ठ (भूमिका)

(५४) डॉ. दिनेश्वर प्रसाद - लोक-साहित्य और संस्कृति, पृ. १५८
(५५) डॉ. धीरेन्द्र वर्मा (सं) हिन्दी साहित्य कोश (प्रथम खण्ड), पृ. ६८२
(५६) डॉ. जनपद (त्रैमासिक), खण्ड-१, अंक-२, पृ. ६३-६४
(५७) डॉ. सत्येन्द्र - लोक-साहित्य, विज्ञान, पृ. ५
(५८) डॉ. भुवनेश्वर 'अनुज' - नागपुरी लोक-साहित्य, पृ. ११
(५९) डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय - लोक-साहित्य की भूमिका, पृ. २१
(६०) डॉ. आई. एन. चन्द्रशेखर रेड्डी - आन्ध्रः लोक-साहित्य एवं संस्कृति (भूमिका)
(६१) डॉ. सत्यव्रत सिन्हा - भोजपुरी लोकगाथा, पृ. ३
(६२) डॉ. शंकरलाल यादव - हरियाणा प्रदेश का लोक-साहित्य, पृ. २०
(६३) डॉ. तेजनारायणलाल - मैथिली लोक गीतों का अध्ययन, उपोद्घात पृ. १४
(६४) दृष्टव्य : हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षोडश भाग प्रस्तावना पृ. ९
(६५) डिक्शनरी आव वर्ल्ड लिटरेरी टर्म्स, लंदन, १९५५, पृ. १६४
(६६) बिशप पर्सी-रेलिक्स आव एशिएण्ट इंगलिश पोएट्री, भूमिका, पृ. २४

संदर्भ ग्रंथ-२

- लोक संस्कृति की रूपरेखा - कृष्णदेव उपाध्याय
- लोक-साहित्य एवं लोक संस्कृति - परम्परा की प्रासंगिकता एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य - डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
- जैसलमैर के श्रृंगारिक लोकगीत - डॉ. भूराराम सुथार, प्रका : अंकुर प्रकाशन - उदयपुर (राजस्थान)
- हिन्दी का प्रादेशिक लोक-साहित्य शास्त्र - डॉ. नन्दलाल कल्ला
- लोक संस्कृति की रूपरेखा - कृष्णदेव उपाध्याय

अध्याय : ३

लोक साहित्य

अनुक्रम

- ☐ लोक साहित्य की विविध धाराएँ
  - ◆ लोक साहित्य के प्रमुख रूप
    - ○ लोकगाथा
    - ○ लोक कथा
    - ○ लोक नाट्य
    - ○ प्रहेलिका व लोकोक्ति
    - ○ लोक गीत
- ☐ राजस्थान प्रदेश का इतिहास
  - ◆ राजस्थान प्रदेश
  - ◆ भौगोलिक सीमाएँ
  - ◆ नामकरण
- ☐ गुजरात (गुर्जर प्रदेश का इतिहास)
  - ◆ गुजरात प्रदेश
  - ◆ भौगोलिक सीमाएँ
  - ◆ नामकरण
- ☐ राजस्थानी और गुजराती समाज
- ☐ लोकगीतों की विभिन्न परिभाषाएँ
  - ◆ पाश्चात्य दृष्टिकोण
  - ◆ पौर्वात्य दृष्टिकोण
- ☐ प्रमुख पर्वोत्सव सम्बन्धी गीत
  - ◆ राजस्थानी लोकगीतों में प्रकृति के विविध उपादान
    - ○ ऋतु वर्णन
    - ○ पशु पक्षी
      - ➢ काग
      - ➢ कुरजां
      - ➢ सूवरा
      - ➢ पपैया
      - ➢ ऊंट
      - ➢ घोडा
      - ➢ हरिण
      - ➢ पपीहा
      - ➢ कोयल
      - ➢ मोर
    - ○ सूरज, चांद, तारे
      - ➢ सूर्य

- ➢ चांद
- ➢ तारे

○ बादल – वर्षा, बिजली

- ➢ बादल– वर्षा
- ➢ बिजली

○ सांझ और दिन रात

○ नदी, तालाब, नाडा–नाडी, समुन्दर

☐ लोकगीत

- ◆ पीठी पिसना
- ◆ पीठी लगाना
- ◆ सवाग कामन
- ◆ आशीर्वाद और शिक्षा के गीत
- ◆ दुल्हन का शृंगार
- ◆ मेहंदी का गीत
- ◆ चूँदड़ का गीत
- ◆ स्तंभ रोपन
- ◆ सप्तपदी
- ◆ सात वचन
- ◆ पारिवारिक संबधों के लोकगीत
- ◆ वियोग
- ◆ करुण रस
- ◆ हास्य रस
- ◆ लोरी के गीत
- ◆ प्रान्त–प्रान्त के समान सूर
- ◆ इक समान कथा गाथाएँ
- ◆ पश्चाताप और शरणागति के भाव का संवेदन
- ◆ संतवाणी के युद्ध – सूर
- ◆ सोरठी नारी संस्कार
- ◆ सन्त परम्परा में
- ◆ स्त्री : संसार–परम्परा में मुख्य संवेदनमूर्ति
- ◆ जनेता तत्त्व पर अधिक झुकाव
- ◆ गतिमान सौन्दर्य
- ◆ उद्यम से शोभित नारी रुप
- ◆ बिफरता स्त्रीतत्व : वेजी की कथा
- ◆ विरह दशा : संवेदन का प्रबल कारण
- ◆ बैरन चाकरी

- ◆ विप्रलंम के सूर
- ◆ विरही जनों की विनोदरसिकता
- ◆ मरते सैनिक का निर्दंभ मानस
- ◆ पति के लिए तड़पति नातरिया वर्ण की नारियाँ
- ◆ पुरुष का प्रेमप्रेरक सौन्दर्य
- ◆ मृत पति का भी देह - सौंदर्य
- ◆ विरहदर्शक लोकगीत में ब्योरा नहीं होता
- ◆ बरसात में पति के साथ सैर करना लोकजीवन में संभव
- ◆ जोखिम का भय : पति-प्राण की चिंता
- ◆ गोप-जीवन पर कल्पना का आरोपण
- ◆ ग्राम्य शब्द-प्रयोग से लोकगीत नहीं बन सकता
- ◆ लोकवाणी में प्रकृति-सौन्दर्य की एक ही बूंद

☐ राजस्थान के विवाह गीत

- ◆ सगाई का गीत
- ◆ गणेशजी - विनायक गीत
- ◆ घोडी गीत
- ◆ सेवरा (मुकुट)
- ◆ सुहाग- कामण
- ◆ बन्नो - बन्नी गीत
- ◆ जागरण (बियाणा) गीत
- ◆ कांकण-दोवडा (कंगन)
- ◆ बत्तीसी
- ◆ बीरा
- ◆ पीठी हल्दी गीत
- ◆ मेंहदी गीत
- ◆ कलश गीत
- ◆ ध्याडी, माता, कुल देवी
- ◆ मायरा गीत
- ◆ मंडपा (मंडप) गीत
- ◆ फेरा गीत
- ◆ चँवरी गीत
- ◆ जवाई गीत
- ◆ बिदाई गीत

☐ गुजराती और राजस्थानी विवाह गीतों में साम्यता

☐ गुजरात के विवाह गीत

- ◆ विवाह गीत

- ◆ मंडप रोपण
- ◆ नवीन उपमाएँ
- ◆ गोद भराई के गीत
- ◆ संवेदनाओं का उर्ध्वीकरण
- ◆ लोरी
- ◆ विवाह की जटिल प्रणाली
- ◆ मृत्यु के विलाप गीत
- ◆ जनाजा का विलाप
- ◆ वेदना के आधार पर पले-बढे करुण गीत
- ◆ बाँझ की मनोवेदना
- ◆ जीवन की समीक्षा
- ◆ संवनन के सूर
- ◆ विनोदात्मक आलोचना
- ◆ गूर्जर की शौर्य गाथा

☐ संदर्भ ग्रंथ -१

☐ संदर्भ ग्रंथ -२

लोक साहित्य की विविध धाराएँ :

प्राचीन संस्कृताचार्यो ने काव्य के दो भेद किये हैं - (१) दृश्य काव्य (२) श्रव्य काव्य । प्रथम में नाटक आते हैं जबकि द्वितीय में प्रबन्ध व मुक्तक काव्य आदि आते हैं । शैली की दृष्टि से साहित्य शास्त्रियों ने गद्य-पद्य और चम्पू वर्गो में काव्य को वर्गीकृत किया है । लोक साहित्य को भी इन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है । लेकिन विश्व की सभी भाषाओं का लोक साहित्य अधिकतर पद्य में ही प्राप्य हैं । लोक साहित्य के गद्य का स्वरूप भी लयात्मक है । अतः गद्य-पद्य की अपेक्षा लयात्मक व लयहीन श्रेणियों में विभक्त किया जाय तो अधिक युक्ति संगत होगा । लोक साहित्य में प्रहेलिकाएँ व कहावतें तक लयात्मक होती है, सिवाय कुछ वार्ताएँ छोडकर । लयात्मकता का कारण बोलचाल के स्वर में संगीत व नाद सौन्दर्य उत्पन्न करना है । फिर भी लोक साहित्य को यदि लिखित रूप दिया जाय तो इसे भी गद्य-पद्य की श्रेणी में बदल सकते हैं । गद्य को पद्य के समान ही स्वर और लय के आधार पर उच्च स्वर में गाया जाता है । अस्तु, लोक साहित्य की लयात्मकता को देखकर यह कहना अनुचित प्रतीत होता है कि आरम्भिक भाषा का उद्गम ही संगीतात्मक था । बाद में गद्य-पद्य का भेद लिखित भाषा के आने पर हुआ ।(१)

लोक साहित्य की पदबद्धता पर विचार करते हुए सामान्यतः कहा जा सकता है कि मनुष्य ने अपने विचारों के व्यक्तिकरण के लिए शब्दों की भाषा स्वीकार की और उसके पश्चात् अपने मनोरंजन के लिए उसे पद्य का लययुक्त रूप दिया । इस प्रकार गद्यमय भाषा का जन्म पहले हुआ और उसके पश्चात् पद्य का आविर्भाव हुआ किन्तु उसकी भाषा का गद्य स्वरूप सुरक्षित नहीं रह सका पर संगीत के माधुर्य के कारण उसका पद्य एक कण्ठ से दूसरे कण्ठ में आता हुआ आज भी जीवित है ।(२)

उक्त दोनों कथनों से स्पष्ट है कि इनमें कुछ विरोध प्रतीत होता है । क्योंकि पहले मत के अनुसार भाषा शुरु से संगीतमय याने पद्य बद्ध थी । दूसरे मत के अनुसार भाषा का आरम्भिक रूप गद्यमय था तत्पश्चात् वह पद्यात्मक बनी । लेकिन लोक भाषा का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि उसमें समान ध्वनियों से निर्मित शब्द भिन्न-भिन्न अर्थ में प्रयुक्त होते हैं । वेदों में भी एक शब्द के अनेक अर्थ ध्वनित होते हैं । इसके लिए विशेष स्वर चिन्हों का प्रयोग किया गया है । ठीक इसी तरह लोक भाषाओं में भी एक ही शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ निकालने के लिए किया गया हो । शब्दों से लय का विशेष लगाव रहा होगा और इस प्रकार संगीत की ओर झुकाव अधिक रहा होगा । इसीलिए गद्य भी पद्यात्मक बन गये । गद्य में विशेष प्रयास अपेक्षित है । लेकिन पद्य अनायास ही संगीतमय बन जाते हैं ।

लोक साहित्य की सभी विधाएँ गीति प्रधान रही हैं, उनमें नाद सौन्दर्य व संगीतात्मकता का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता हैं । गीतमय लोक साहित्य जनता के मानस का उद्गार हैं, जिसके सुनने से मन के तार बज उठते हैं । सरलता, स्वाभाविकता और सरसता उसकी विशेषताएँ है ।(३)

लोक साहित्य के प्रमुख रूप :

लोक साहित्य में जनता की अनुभूतियों का सहज प्रकाशन होता है । यह प्रकाशन अनेक शैलियों द्वारा संभव है उन शैलियों के आधार पर लोक साहित्य को निम्न वर्गों में प्रस्तुत किया जा सकता है ।[४]

(१) लोक गाथा
(२) लोक कथा
(३) लोक नाट्य
(४) प्रहेलिका व लोकोक्ति
(५) लोक गीत

राजस्थानी भाषा में समृद्ध लोक साहित्य उपलब्ध है । लोक साहित्य की सभी विधाएँ निरन्तर विकसित होती रही है । लोक साहित्य लोक की ही भाँति विशाल एवं वैविध्यपूर्ण है । संक्षेप में इनका संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार से दिया जा सकता है :-

लोक गाथा

गाथा शब्द का अर्थ सामान्यतः कथा के अर्थ में लिया गया है । अंग्रेजी के 'बैलेड' के रूप में इसका विवेचन किया गया है । किन्तु वैदिक साहित्य में सामवेद के मंत्र के लिए गाथा और यजुर्वेद के गद्यात्मक मंत्र के लिए वाणी शब्द का प्रयोग हुआ है । गाथा शब्द का प्राचीनतम प्रयोग ऋग्वेद में पाया जाता है । उसमें सामवेद पाठी को गाथिनवः कहा गया है ।[५]

गाथा शब्द अपने मूल अर्थ में पाली व प्राकृतों में बडा ही लोकप्रिय हुआ है । गाथा शब्द कहते ही हमारा ध्यान प्राकृत की ओर आकृष्ट हो जाता है, जिनमें नीति की बातें कही गई है । बौद्ध धर्म की गीता 'घम्मपद' में ऐसी ही गाथाओं का संकलन है । घम्मपद की निम्न लिखित गाथा दृष्टव्य है-

''अभिवादन शीलस्य निच्चँ बद्धापचायिनौ ।
चतारोघम्मा वड्ढन्ति आयु वण्णो सुखम् बलम् ।।[६]

मनुस्मृति में इसका संस्कृत रूप निम्न निखित है -

''अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धौपसँविनः ।
चत्वारितस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम् ।।[७]

स्मृतियों का संकलन लोक प्रचलित विचारों को व्यक्त करने वाली गाथाओं के आधार पर किया जाता रहा होगा जिनमें वेदों का वास्तविक अर्थ सुरक्षित माना जाता था ।

गाथा केवल नीति व धर्म तक ही सीमित नहीं रही, शृंगार व करुण रस भी गाथा के विषय बन गये । संस्कृत की 'गाथा सप्तशती' में ७०० गाथाएँ संकलित है जिनका विषय शृंगारिक चेष्टाओं से सम्बद्ध है । गाथा सप्तशती की लोकप्रियता के बाद आर्यासप्तशती जैसे संस्कृत काव्य में ग्रन्थ लिखे गये । हिन्दी में बिहारी सतसई लिखी गई । विभिन्न भाषाओं के लोकगीतों में गाथाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है । राजस्थान का लोकगाथा साहित्य काव्यात्मक, सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान है । इन लोकगाथाओं में विषय वैविध्य उल्लेखनीय है । जीवन का प्रत्येक पक्ष इनमें व्यक्त हुआ है । वीर, शृंगार, हास्य, करुण और निर्वेद आदि भावों का सफल चित्रीकरण लोकगाथा में सहज सुलभ है । राजस्थानी लोकगाथाओं में पाबूजी, तेजाजी, ढोलामारु, निहालदे सुलतान,

जलालबूबना, ब्यावलो आदि प्रमुख है ।

लोक कथा

साहित्य की सभी विघाओं में मूल आधार कथा है । लोकगाथा, लोकनाटक, लोकोक्ति सभी में कथातत्त्व महत्त्वपूर्ण है, किन्तु इनमें कथा के साथ अन्य तत्त्व भी मौजूद होते हैं जबकि लोककथा में कथातत्त्व ही प्रधान हैं । विश्व साहित्य को भारत की महत्त्वपूर्ण देन कथा साहित्य है । पंचतन्त्र व हितोपदेश तो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लोकप्रिय हुई है । कथा साहित्य के दर्शन वेदों के व्याख्यान ब्राह्मण ग्रंथो में भी मिलते हैं । संस्कृत साहित्य में ही गुणाढय रचित बृहत्कथा मिलती है । राजस्थान में लोककथा का विशेष स्थान रहा है । प्राचीन परम्परा से लोककथा का कथन श्रवण यहां प्रसिद्ध है । मध्यकालीन राजघरानों में कथा वाचक रहा करते थे, जिन्हें कथक्कड कहा जाता था । ये लोककथाएँ कई दिन चलती थी । कथक्कड झूम-झूमकर आरोह-अवरोह पूर्वक कथा सुनाता था ।

सामान्यतया कथाएँ कल्पना मिश्रित ऐतिहासिक होती है । कथा का प्रवाह जीवन की ही भांति अविच्छिन्न है । अतएव इतिहास, समाज, दर्शन, शिक्षा धर्म, राजनीति, आचार-विचार, विषयक अनेक जीवन प्रसंगो का समावेश लोककथा में हो जाता है । मानव की मूलभूत प्रवृत्तियों का यथार्थ रूप में उद्घाटन करने में समर्थ होने के कारण ये कथाएँ किसी अजनबी को भी अपनी ओर आकृष्ट किये बिना नहीं रहती । लोककथाएँ आभिजात्य साहित्य की प्रेरणा है । जायसी आदि सूफी कवियों ने अपने प्रबन्ध काव्यों की कथा लोककथाओं से ही ग्रहण की है ।

राजस्थानी लोककथाओं में प्रेम सम्बन्धी कथाओं का भंडार है, वीर पुरुषों की कथाएँ भी बहुप्रचलित है । पौराणिक व धार्मिक कथाएँ व्रत महोत्सवादि से सम्बन्ध रखती है । राजस्थानी लोक कथाओं का विषयगत वर्गीकरण संक्षेप में निम्नलिखित रूप से दिया जा सकता है :-

(१) देवताओं से सम्बद्ध - व्रत विशेष पर कही जाने वाली कथाएँ । जैसे भैया दूज, शीतलाष्टमी, अनन्तचतुर्दशी आदि ।

(२) पौराणिक - श्री कृष्ण रुक्मणी व नल दमयन्ती आदि लोककथाएँ ।

(३) नीतिकाएँ - ब्राह्मण और वैश्या, सिंह और शशक ।

(४) ऐतिहासिक वीरों के सम्बद्ध - 'पाबूजी री बात' व ''राठौड अमरसिंह गजसिंहोतरी बात''।

(५) प्रेम कथाएँ - ढोलामारु, जेठवाऊजली, उमां सांखली ।

इन सभी लोक कथाओं में लोकमानसीय तत्त्व प्रमुख है । ये कथाएँ सामान्यतया सुखान्त ही होती है । यद्यपि अनेक लोक कथाएँ संग्रहित हो चुकी है, तथापि अनेक कथक्कडो के कण्ठ में ही है । अतः इनको लिपिबद्ध करके विस्मृति के गर्भ में जाने से बचाया जाना आवश्यक है ।

लोक नाट्य

लोक साहित्य का महत्त्वपूर्ण अंग है लोकनाट्य । वैसे नाटय विधा का जन्म आदिम युग में ही हो चुका था । शिकार से लौटने के बाद रात्रि में आग के सामने मांस सेकते समय दिन भर की गतिविधियों को हाव-भावों से व्यक्त करते थे । लोकनाटय की उत्पत्ति उन्हीं चेष्टाओं से हुई । नाटक के तीनों अंगो का अनायास प्रवेश होता गया । इस तरह नृत्य, अभिनय और संगीत के पुट

से सुन्दर लोक नाटय विकसित हुए । भोजपुरी का विदेसिया, गुजरात का गरबा, पंजाब का हीर रांझा आदि प्रसिद्ध लोक नाटक है ।

राजस्थानी लोक नाटक का प्रदर्शन खुले रंगमंच पर होता है । इन लोक नाटकों में संगीत, नृत्य, वेश तथा संवादों की प्रयोग पद्धतियाँ मौलिक है । जब ग्राम के खुले भाग में या कस्बों के सार्वजनिक चौराहों पर नक्कारे की गंभीर गर्जना के साथ नक्कारी की खनक गूंजती है और सुरीली बारीक आवाज में नवीन वय की युवती वेषधारी पुरुष अर्धरात्रि की शान्ति को चंचल बनाता हुआ जीवन की किसी मूल मनोवृत्ति को संगीतमय कर आलापता है तो सहस्त्रों नर-नारी जीवन के व्यस्त क्षणों को भूलाकर आनन्द विभोर हो जाते हैं । राजस्थानी लोक नाटकों में रुक्मिणी हरण, पूरन भगत, गोपीचंद, राजा रिसालू, पंचफूला रानी आदि प्रसिद्ध है ।

प्रहेलिका व लोकोक्ति

लोक नाटय का ह्रास या प्रचलन कम हो जाने के कारण प्रहेलिकाएँ मनोरंजन का साधन बनने लगी । ये सब गेय होती है । ये बुद्धि चातुर्य के प्रदर्शन का साधन तो है ही, सगे सम्बन्धियों को मूर्ख बनाने के लिए भी प्रयुक्त होती है । डॉ. फ्रेजर ने लिखा है कि ''पहेलियों की रचना उस समय हुई होगी जब कुछ कारणों से वक्ता को स्पष्ट शब्दों में किसी बात को कहने में अडचन पडती होगी ।''(८) लेकिन उससे भी पहले मनुष्य की गोपनीय प्रवृत्ति ही पहेलियों की उत्पत्ति का मूल कारण है ।'(९) बात को गोपनीय बनाने के लिए कूट पद्धति अपनाई जाना मानव स्वभाव रहा है । अतः क्षणिक मनोरंजन व बौद्धिक गहराई नापने के लिए पहेलियों से अधिक उत्तम कोई साधन नहीं हो सकता । ग्रामीणों का थका हुआ मस्तिष्क इन पहेलियों को बुझा कर अपने दिल और दिमाग को ताजा करता है ।(१०) जीवन से सम्बन्ध रखने वाली सभी बातें पहेलियों में पाई जाती है । साहित्यिक क्षेत्र में हिन्दी में अमीर खुसरो की पहेलियाँ अत्यन्त लोकप्रिय होने के साथ ही जीवन के विविध उपादानों को प्रदर्शित करने वाली है । राजस्थानी प्रहेलिकाओं में विवाह के समय पूछी जाने वाली ''गोपीचन्द पावणा'' टेक प्रमुख है । इसके अलावा खेती सम्बन्धी, भोज्य सम्बन्धी, प्राणी व शरीर सम्बन्धी आदि अनेक प्रकार की पहेलियाँ मिलती है । पहेली रचने का कार्य अब भी जारी है ।

प्रहेलिका की तरह लोकोक्ति या कहावत भी वचन वक्रता का एक साधन है । ग्रामवासियों की भाषा में शब्दों का परिष्कृत उच्चारण नहीं होता पर अभिव्यक्ति की सहजता एवं वाणी कौशल का सम्यक् विलास उसमें निश्चय ही देखा जा सकता है । उनकी भाषा में जीवन व्यावहारिक क्षेत्र से व्युत्पन्न उक्तियाँ होती है । इनमें से कुछ परम्परा से मिलती है, कुछ वे स्वयं गढते हैं । ग्रामवासियों के पास लोकोक्तियों का अटूट भण्डार है । डॉ. कन्हैयालाल सहल ने राजस्थानी ग्राम कहावतों का एकत्रीकरण एवं अध्ययन करके उनका समुचित वर्गीकरण भी किया है । ये मुख्यतः आठ प्रकार की है ।(११) इनमें ऐतिहासिक, स्थान, समाज विषयक, शिक्षा-ज्ञान, धर्म जीवन दर्शन, कृषि-वर्षा सम्बन्धी प्रमुख है । डॉ. सहल ने इस वर्गीकरण को वर्ण्यविषय के आधार पर प्रस्तुत किया है । लोकक्ति साहित्य का समाहार इसमें हो जाता है । कुछ उदाहरण निम्नलिखित है :-

(i) जीवन दर्शन सम्बन्धी -

१. ओ मन मीठो, पर भव किण दीठो ।

२. करमहीन खेती करै, कै काल पडै कै बलद मरै ।

(ii) मनोवैज्ञानिक :

१. बकरी दूध तो दे पण दे मींगणी कर कै ।

(iii) ऐतिहासिक :

१. गाँव-गाँव गोगो नै गाँव गाँव खेजडी ।

२. कठै राजा भोज कठे गांगलो तेली ।

(iv) विविध :

१. देख्यो हाडा थारो देश, रांड सुहागण एक ही भेस ।

२. तिरिया तेरे मरद अठारा ।

३. तिरिया तेल हमीर हठ चढे न दूजी बार ।

४. माथो मोटो सिरदार को अर पग मोटो गँवार को ।

५. गणगोरां नै ही घोडा न दौडे तो कद दौडे ।

उक्त उदाहरण तो राजस्थानी लोकोक्ति कोष की एक वानगी है । अनेक रत्न अभी भी अनदेखे हैं । इस तरह प्रहेलिका व लोकोक्ति साहित्य भी राजस्थान के लोक साहित्य का अटूट भण्डार है ।

लोक गीत

राजस्थान का लोक गीत विषय वैविध्यानुप्राणित है । यहाँ के जन-जीवन में जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त अनेकानेक जीवन-अवसरों तक में गीतों का सहयोग है । लोक साहित्य में लोक गीतों का प्रमुख स्थान है । इन गीतों में राजस्थानी लोकजीवन अनुस्यूत है । राजस्थानी लोक गीतों का वर्गीकरण स्वर्गीय सूर्यकरण पारीक ने किया था । किन्तु उसमें लोकगाथा व लोकनाट्य भी सम्मिलित कर लिये गये, अतः उसमें वैज्ञानिकता नहीं आ पाई । डो. कृष्णदेव उपाध्याय ने लोक गीतों का वर्गीकरण संस्कारों की दृष्टि से, रसानुभूति की प्रणाली से, ऋतुओं और व्रतों के क्रम से, जातियों के प्रकार से तथा क्रियागीत की दृष्टि से किया है ।

राजस्थान के कुछ भागों में जल की चाहे कमी रही हो पर भावों की रसधारा अजस्त्र रूप में सर्वत्र समभाव से बहती रही है । राजस्थान के पुरुष अपनी ओजस्विता के लिए और नारियाँ अपने सतीत्व व तेजस्विता के लिए विख्यात है । अतः राजस्थानी साहित्य में वीर रस का परिपाक और नारियों के उदात्त चरित्र का वर्णन अधिक पाया जाना स्वाभाविक है । ऐसे वीर एवं उदात्त चारित्रवालों के आदर एवं गुणगान जन-हृदय का भी सदा साथ रहा है । यहाँ कई वीर पुरुष लोक देवों के रूप में और नारियाँ देवियों के रूप में पूजी जाती है । उनके गीत विविध प्रसंगो में, मांगलिक कार्यों में, उत्सवों में सर्वप्रथम बडे आदर के साथ गाये जाते हैं ।

लोकगीतों की प्राचीनता तो मानव जीवन की प्राचीनता जितनी ही है । पर उपलब्ध रूप में मौखिक रहने के कारण वे अधिक प्राचीन नहीं पाये जाते हैं । जो कुछ गीत परम्परा की दृष्टि से प्राचीन है, उनमें भी देश और काल के भेद से भाषा आदि में परिवर्तन हो ही जाता है । फिर भी

यह गौरव के साथ कहा जा सकता है कि राजस्थान में प्राचीन लोकगीतों की जितनी जानकारी आज हमें प्राप्त है, उतनी भारत के किसी अन्य भू भाग के गीतों की नहीं । इसका कारण यह है कि यहाँ के जैन मुनि सदा से लोकजीवन के अधिकाधिक निकट रहे हैं । वे जहां कहीं भी गये वहाँ की लोकभाषा और लोक रुचि का आदर करते हुए अपने साहित्य सर्जन द्वारा अधिकाधिक लोगों को लाभ पहुंचा सके । १६ वीं सदी में उन्होंने लोक भाषा व उनकी तर्ज में गीतों को ढाल दिया । इस तरह हजारों गीत, रासें व ढालें रची गई । जैन साहित्य महारथी स्वर्गीय मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने जैन गुर्जर कवियों के तीसरे भाग के परिशिष्ट नं. ७ में जैन रासादि ग्रंथो में प्रयुक्त चौबीस सौ पचास देशियों (तर्जो) की अनुक्रमणिका दी है । इनमें राजस्थानी लोकगीतों की अधिकता है । इस तरह सैकडों विस्तृत लोकगीतों का प्रारम्भिक एवं मुख्य अंश जैन मुनियों की कृपा से हमें आज भी सुरक्षित मिल रहा है । १९ वीं शताब्दी में जैन यतियों के लिखे हुए कई पूरे लोकगीत भी मिलते हैं । सम्भवतः विदेशी विद्वानों के प्रयत्नों के पूर्व लोकगीतों का संग्रह जैन यतियों के अतिरिक्त किसी ने नहीं किया । जैसे उमा देवी भटियाणी का ऐतिहासिक गीत, फतमल का गीत तीन सौ व डेढ सो वर्ष पुराने हैं, जो जैन मुनियों द्वारा ही संग्रहित किये गये थे ।

लोकगीत विश्व के सभी क्षेत्रों में बहुत बडी संख्या में मिलते हैं । बहुत कुछ समानता होते हुए भी क्षेत्रीय विशेषताएँ बनी रहती है । उसी को लेकर राजस्थानी लोकगीत या गुजराती लोकगीत पृथक्-पृथक् नाम दिये जाते हैं । इन सभी लोकगीतों में संगीत की प्रधानता रहती है, पर कई गीतों का सम्बन्ध नृत्य से भी है । राजस्थान में घूमर, डण्डियाँ, रास आदि नृत्य के साथ गाये जाते हैं । इनमें वाद्य यन्त्रों का प्रयोग भी होता है । राजस्थानी लोकगीत संख्या में बहुत विशाल है । लगभग १५-२० हजार लोकगीत तो लिपिबद्ध भी किये जा चुके हैं । मौखिक गीतों की तो गणना भी सम्भव नहीं जिनमें कई तो बहुत प्रसिद्ध और लोकप्रिय है । जैसे-पनिहारी, मूमल, पीपली, कोयल, आंबो मोरियो इत्यादि ।

राजस्थान प्रदेश का इतिहास

(i) राजस्थान प्रदेश :

भारत के उत्तरी-पश्चिमी भाग को राजस्थान नाम से अभिहित किया जाता है । इतिहास में राजस्थान 'मरु प्रदेश' के नाम से प्रसिद्ध है । यहाँ के कण-कण में त्याग, बलिदान एवं शौर्य की गाथाएँ बिखरी पडी है । राजस्थान का अतीत वीरता और शौर्य का है । इसी कारण यह 'वीरभूमि' के गौरवपूर्ण अभिधान से मण्डित है । मान-मर्यादा पर सर्वस्व बलिदान करने वाले वीरों और जीवित अग्नि-स्नान करनेवाली सतियों ने राजस्थान को अमर कर दिया है । टॉड ने सत्य ही लिखा है कि 'राजस्थान में सम्भवतः कोई ऐसा नगर हो, जहाँ मातृभूमि पर मर-मिटने वाले ग्रीक-वीर लियोनिडास जैसा वीर न हुआ हो ।'(१२) 'इला न देणी आपणी' यहाँ का मूल मंत्र है ।

राजस्थान की अरावली पर्वत शृंखला ने यहाँ के निवासियों को दृढता और अचलता का सन्देश दिया है, और यहाँ के टीलों ने उसे मार्दव और शीघ्रगामिता के गुणों की शिक्षा देकर क्षण-भंगुर जीवन का सदुपयोग करने की प्रेरणा दी है । चित्रकला, संगीत, स्थापत्य तथा कविता के प्रति यहाँ के लोगों की रुचि है तथा इन विविध कलाओं में यहाँ के जन-जीवन की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है ।

(ii) भौगोलिक सीमाएँ :

राजस्थान के उत्तर-पूर्व में हरियाणा एवं पंजाब, पूर्व में उत्तरप्रदेश, दक्षिण में गुजरात और मध्य प्रदेश तथा पश्चिमोत्तर में पडोशी देश पाकिस्तान स्थित है । इसकी भौगोलिक स्थिति २३.३° से ३०.१२° उत्तर अक्षांशो तथा ६९.३०° से ७८.१७° पूर्वी देशान्तरों के मध्य है[१३]। इसका क्षेत्रफल ३,४२,२३९ वर्ग किलोमीटर है । क्षेत्रफल की दृष्टि से यह भारत का सबसे बडा राज्य है । इंग्लैण्ड से यह दुगने से भी बड़ा है[१४]। इसका आकार विषमकोण चतुर्भुज के समान है । डो. दयाकृष्ण विजय के शब्दों में - 'इसका कलेवर विषमकोण चतुर्भुज पतंग के समान है ।'[१५]

अरावली पर्वत - श्रृंखला ने राजस्थान को दो भागों में विभक्त कर रखा है - प्रथम उत्तर - पश्चिम क्षेत्र, जिसमें बीकानेर, जैसलमेर, जोधपुर, जयपुर तथा शेखावटी प्रदेश का कुछ भू-भाग आता है । यह भाग मारवाड या मरु-प्रदेश कहलाता है । प्रान्त का ३/५ भाग इसी क्षेत्र के अन्तर्गत पडता है, जो कि भौगोलिक दृष्टि से रेतीला, अनउपजाऊ, कम वर्षावाला, शुष्क एवं स्वास्थ्यप्रद जलवायु जैसी विशेषाताओं को समेटे हुए हैं । शेष २/५ भाग दक्षिण-पूर्व में स्थित है जिसके अन्तर्गत जयपुर, अलवर, भरतपुर, धौलपुर, करौली, किशनगढ, टोंक, कोटा, बूंदी, झालावाड, मेवाड, प्रतापगढ, सिरोही, डुंगरपुर, बाँसवाडा, कुशलगढ, लावा, अजमेर, मेवाडा का इलाका पडता है जो अधिक उपजाउ है ।[१६]

(iii) नामकरण :

आज हम जिस भू-भाग को 'राजस्थान' के नाम से जानते हैं, प्राचीन काल में वह अनेक राज्यों में विभाजित था और इनके भिन्न-भिन्न नाम थे । मरु भाग की प्राचीनता वाल्मीकीय रामायण और महाभारत से भी सिद्ध होती है । इस प्रदेश की उत्पत्ति के सम्बन्ध में रामायण में एक कथा है - ''भगवान श्री रामने समुद्र के मार्ग न देने पर क्रुद्ध होकर अग्नि-बाण संघान किया, तब क्षुब्ध समुद्र ने प्रकट होकर रामने क्षमा-याचना की और उस शस्त्र को अपने द्रुमकुल्य नामक उत्तरी भाग में विक्षिप्त करने की प्रार्थना की । श्री राम ने समुद्र की विनंती-याचना स्वीकार कर ली । आग्नेयास्त्र के प्रभाव स्वरूप द्रुमकुल्य का जल शुष्क होने से वहाँ मरु प्रदेश की उत्पत्ति हुई''[१७] भू-तत्त्ववेत्ता भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि मरु-प्रदेश समुद्र-गर्भ से उत्पन्न हुआ ।

आजादी से पहले राजस्थान इक्कीस[१८] देशी रजवाडों में विभक्त था । श्री जाजंटामास (सन १८००) ने इसका नामकरण 'राजपूताना' किया । इसी नामकरण का कारण यहाँ राजपूतों का निवास आधिक्य ही था । जैसे गोंड जाति के बसने के स्थान को गोंडवाना और तेलंग लोगों के निवास को तेलंगाना कहा गया है । वैसे ही राजपूतों के निवास को 'राजपूताना' नाम दिया गया ।[१९] लेकिन यह नाम प्रचलित नहीं है । सं. १८८६ से कर्नल टॉड ने अपने इतिहास ग्रंथ 'एनाल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान' में राजस्थान शब्द प्रयोग किया । इस प्रकार मरु भूमि को 'राजस्थान' संज्ञा प्रदान करने का श्रेय कर्नल जेम्स टॉड को है, जो इस प्रदेश की सर्वस्वीकृत संज्ञा है ।

यह सही है कि कर्नल टॉड ने इस प्रदेश को पहली बार राजस्थान नाम दिया । लेकिन पूर्व में यह सम्पूर्ण प्रदेश 'मरु प्रदेश' के नाम से जाना जाता था, परन्तु वर्तमान में मरु-प्रदेश बृहत् राजस्थान का एक अंचल विशेष है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अपने नाम की सांस्कृतिक विरासत से समृद्ध बत्तीस जिलों की

सम्पदा से सम्पन्न राजस्थान अपने नाम के अनुरूप ही विश्व-विख्यात है ।

गुजरात (गुर्जर प्रदेश) का इतिहास :

(i) गुजरात प्रदेश :

भारत के पश्चिमी भाग में आया हुआ गुजरात प्रदेश भारत के सबसे बडे समुद्री किनारे पर स्थित प्रदेश है । गुजरात संतों और महापुरुषों की जन्मभूमि है । यहाँ की भूमि संत सौरभ से महक रही है - स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी नारायण, संत नरसी महेता, मीराँबाई, संत जलाराम, संत सन्तराम, सरदार पटेल तथा महात्मा गांधी आदि अनेक महापुरुषों ने गुजरात की भूमि पर जन्म लिया । सर्वप्रथम आजादी की क्रान्ति का बिगुल यहीं पर बजा ।

(ii) भौगोलिक सीमाएँ :

गुजरात भारत के पश्चिम क्षेत्र में स्थित है । गुजरात का भौगोलिक क्षेत्रफल भारत के अन्य राज्यों की अपेक्षा छोटा है । इसका क्षेत्रफल १,५५,९०० वर्ग किलोमीटर है ।[२०] गुजरात के उत्तर में राजस्थान है । आबू पर्वत की गोद में स्थित तीर्थ स्थल 'अम्बाजी' गुजरात की सीमा है । उससे सटकर कच्छ की सरहद पर उत्तर-पूर्व पाकिस्तान की सीमा शुरू हो जाती है । दक्षिण में महाराष्ट्र तथा पूर्व में मध्य प्रदेश स्थित है ।

गुजरात के पश्चिम में लम्बा समुद्री किनारा होने के कारण यहाँ कंडला, ओखा, पोरबंदर, वेरावल, जामनगर और अनेक छोटे-छोटे बंदरगाह है । यहाँ बडे पर्वतों का अभाव है लेकिन छोटे-छोटे अनेक पर्वत विद्यमान है, जैसे कि - पावागढ (कालिका माता का स्थान), चोटीला (चामुंडा माता का स्थान), गिरनार पर्वत (वहाँ तेत्रीस करोड देवताओं का स्थान माना जाता है) जो हिमालय पर्वत से भी पुराना है । गब्बर पर्वत जो अम्बाजी माता का स्थानक है । तापी, मही, साबरमती, नर्मदा, यहाँ की प्रसिद्ध नदियाँ हैं । भारत के सम्पूर्ण नमक उत्पादन का लगभग सत्तर प्रतिशत केवल गुजरात में पैदा होता है ।

(iii) नामकरण :

'गुजरात' शब्द की उत्पत्ति के सन्दर्भ में विद्वानों ने विभिन्न मत स्वीकार किये हैं । एक मत के अनुसार 'गुर्जरत्रा' से 'गुजरात' शब्द की उत्पत्ति हुई है तो दूसरे के अनुसार 'गुर्जर' शब्द में 'आत' का योग होने से गुजरात बना है । गुर्जर एक जाति है, जो पंजाब को पार कर राजस्थान होते हुए पश्चिम भारत के इस प्रदेश में बस गई । समय बीतने के साथ यह प्रदेश गुर्जरों की अधिकता के कारण 'गुजरात' नाम से जाना जाने लगा । इस प्रदेश को यह नाम करीब नौ सौ से एक हजार वर्ष पूर्व मिला था ।

सन् १२९८ ई. में गुजरात के अन्तिम राजपूत राजा करण वाघेला का पतन हुआ । उसके बाद सौ वर्षों तक मुसलमान शासकों का राज्य रहा । १७५७ ई. में मराठों ने इस पर कब्जा कर लिया । इसी अरसे में ब्रिटिश सल्तनत की नींव पडी । १८५७ ई. की लडाई में गुजरात में गायकवाड तथा दूसरे अनेक राज्यों अस्तित्व में आये । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् १९४८ ई. में भिन्न भिन्न रजवाडों की टुकडियों में बंटे गुजरात-सौराष्ट्र एक हो गए और १९५६ ई. में सौराष्ट्र बम्बई में मिला दिया गया । १९६० ई. में १ मई को बम्बई की नव-रचना के कारण भारत गणराज्य के पन्द्रहवें

राज्य के रूप में गुजरात की रचना हुई ।

समुद्री तट पर स्थित होने के कारण विदेश की अनेक जातियाँ गुजरात की ओर आकर्षित हुई । ग्रीक, रोमन, ब्रेडियम, हूण, अरब, टर्क, अफगान, डच, फ्रेंच, अंग्रेज आदि अनेक जातियों को यहाँ आश्रय प्राप्त हुआ । विभिन्न जातियों के आचार-विचार संस्कृति से ही यहाँ की संस्कृति समृद्ध हुई है । यह गुजरात के लिए बडे गौरव की बात है ।

राजस्थानी और गुजराती समाज :

वैदिक आर्य संस्कृति की वैज्ञानिक व्यवस्था में रचा-ढला राजस्थानी एवं गुजराती समाज आज भी वैदिक समाज की मान्यताओं को अपने में कुछ हद तक संजोए हुए हैं । वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था आज भी अन्य प्रदेशों में बसे भारतीय समाज की अपेक्षा यहाँ अधिक आस्था तथा भावनात्मकता के साथ जमी है । चारों वर्गो की सैंकडों जातियाँ, उपजातियाँ और शाखा-उपशाखाएँ हैं । जातियों के अपने स्थान, अधिकार, कार्य बंटे हुए हैं ।

राजस्थानी तथा गुजराती लोकजीवन सादा और सरल है । यहाँ का समाज पुरुष प्रधान है । सारे अधिकार तथा शक्तियाँ पुरुष वर्ग के हाथों में केन्द्रित हैं । स्त्रियों को अर्धांगिनी अवश्य कहा जाता है किन्तु अन्तिम निर्णय पुरुषों का ही होता है । पर्दा प्रथा का यहाँ आज भी प्रचलन है । विवाहित स्त्रियाँ ससुर-जेठ के साथ-साथ सास-जेठानी आदि परिवार, यहाँ तक कि गाँव के बडे बुजुर्गों के सामने घूँघट रखती है और उनसे बात नहीं करती ।

सम्पूर्ण राजस्थानी तथा गुजराती समाज आस्तिक है । पौराणिक देवी-देवताओं में इन लोगों की दृढ आस्था है । समर्पित भाव से सामान्य जन इनका लीलागायन, कथा-कीर्तन करते हुए पुलकित रहता है । राजस्थानी एवं गुजराती समाज जन-कल्याणकारी कार्य करने वाले वीर पुरुषों एवं नारियों को लोक देवी-देवताओं के रूप में पूजता रहता है । समाज में प्रत्येक शुभ कार्य, सुख-दुःख में बडी श्रद्धा से इनका स्मरण किया जाता है । राजस्थान में प्रसाद 'सवामणी'(२१) 'रातीजोगा'(२२) तथा 'जम्मा'(२३) दिया जाता है । तो गुजरात में पूजा-अर्चना के पश्चात् 'मुवा' (एक तरह का मंत्र) इकठ्ठे होकर 'घूमे छे' (अग्नि जलाना) और भोग लगाते हैं ।

समाज में अनेक विश्वास, परम्पराएँ प्रचलित हैं । शकुन विचार में राजस्थानी तथा गुजराती दोनों ही समाजों का गहरा विश्वास है । पक्षियों में तीतर, सोन चिडियाँ, कौआ, पशुओं में बिल्ली, गधा तथा मानव अंग-प्रत्यंगों के फुरकने आदि से सम्बन्धित शुभ-अशुभ शकुनों में जन-मानस की गहरी आस्था हैं । भूत-प्रेतों, अन्धविश्वास, टोने-टोटके आदि में इन लोगों को पूर्ण विश्वास है ।

राजस्थान और गुजरात में त्यौहारों, व्रतों, मेलों तथा उत्सवों का ताँता लगा रहता है । दीपावली, होली, तीज, गणगौर, रक्षाबन्धन, नवरात्रि, अक्षय तृतीया, शीतलाष्टमी आदि मुख्य त्यौहार हैं । होली के रंगीले त्यौहार पर महिने भर तक गाँवों में धूम मची रहती है । यह आदिवासियों, भीलों तथा ग्रामीणों में विशेष लोकप्रिय है । दीपावली वैसे तो पूरे भारत का त्यौहार है, किन्तु गुजरात में व्यापारी वर्ग की अधिकता के कारण वहाँ इसे विशेष उल्लास से मनाया जाता है ।

गुजरात का एक अन्य मुख्य महोत्सव है - नवरात्रि । शक्ति-पूजा के इस अवसर पर नौ दिनों तक गरबा-रास खेला जाता है । इन त्यौहारों पर नए-नए वस्त्र, पकवान बनाये जाते हैं, महिलाएँ

मंगल गीत गाती हैं । इष्ट-मित्रों तथा सगे सम्बन्धियों से मिलते हैं । इस प्रकार इन आध्यात्मिक महत्त्व वाले त्यौहारों को हँसी-खुशी और उमंगों से मनाया जाता हैं ।

राजस्थान और गुजरात के लोक जीवन में त्यौहारों, मेलों तथा अन्य सामाजिक, पारिवारिक तथा धार्मिक अनुष्ठानों में अपने हृदय के उल्लास को प्रकट करने हेतु अनेक लोक नृत्य प्रचलित हैं । राजस्थान में जहाँ 'घूमर', 'अग्नि नृत्य', 'चरी नृत्य', 'भवाई नृत्य', 'तेराताली' तथा 'डंडिया गेर' की गिनती प्रमुख लोकनृत्यों में की जाती है, वहीं गुजरात में 'गरबा' 'गरबी'(२४) 'मटकी' 'रास', 'मंजीरा', 'कीसग'(२५) आदि प्रमुख लोक नृत्य है ।

लोकगीतों की विभिन्न परिभाषाएँ :

लोकगीत के अध्ययन कर्ताओं ने लोकगीतों के उद्‌गम एवं सृजन सम्बन्धी मान्यताओं के आधार पर उनकी विविध परिभाषाएँ दी है । व्यक्ति विशेष के मनोगत भाव जन-जीवन से प्रभावित होकर सामूहिक तत्त्वों के अनुरूप ढल जाते हैं इसलिए लोकगीतों के निर्माण का कारण व्यक्ति विशेष नहीं जन समूह है । समाज विज्ञान एवं नृतत्व शास्त्र के विद्वानों ने आदिम समाज की मानसिक व सामाजिक प्रवृत्तियों का विश्लेषण करते हुए आदिवासियों द्वारा गेय गीतों को लोकगीतों की संज्ञा दी है ।

अंग्रेजी में भी Folk Song, Folk music, Folk Dance शब्दों का प्रयोग हुआ है । 'फोक' का अर्थ आदिम जातियाँ कहा जाता है । इस तरह भद्दे, कर्कश संगीत व तारतम्यहीन नाच को इन शब्दों द्वारा अभिव्यंजित किया गया है । वस्तुतः इन अर्थों में ये शब्द अत्यन्त अप्रिय संकीर्णता व्यक्त करते हैं । लोकगीत सामूहिक चेतना के सहज उद्‌गार है, इसलिए उन्हें आदिम या परवर्ती जातियों के साथ सम्बद्ध देखना अध्ययन की अवैज्ञानिक परम्परा है । अतः ''आदिम जाति के लिए ही 'फोक सांग्स' की अर्थ सत्ता को सीमित रखना संकीर्णता एवं आभिजात्य वर्ग के अभिमान का परिचायक हो सकता है ।''(२६)

पाश्चात्य दृष्टिकोण

पाश्चात्य लोकगीतों के अध्ययनकर्ताओं ने लोकगीतों की निम्न परिभाषाएँ दी है :-

(१) ग्रिम(२७) - लोकगीत वे हैं जो स्वतः उद्‌भूत होते हैं । लोकगीत आदिम मानव का स्वतोद्‌गीर्ण संगीत है ।

(२) राल्फ विलियम्स - लोकगीत आदिम मानव का उल्लासमय संगीत है । गुफाओं में पनपते हुए मानव में जब थोडी बहुत बुद्धि आई और उसके आधार पर उसमें भावनाओं के अंकुर फूटे तो उन्हें व्यक्त करने के लिए उसने टेढे, सीधे अलाप लेना आरम्भ कर दिया ।

(३) इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका - लोकगीत मानव जाति के हृदय से, अपने अभावों द्वारा अन्य प्रकृति प्रदत्त आवाज के द्वारा अचानक घुमड कर प्रकट होने वाला संगीत है, जो हृदय को हलका करने के लिए भावों की अभिव्यक्ति के निमित्त बोलने की अपेक्षा गाकर गीतों द्वारा व्यक्त किया जाता है ।

उक्त परिभाषाओं को देखने पर ज्ञात होता है कि पश्चिम के लोकगीत अध्येताओं ने असभ्य

एवं आदिम स्थिति के लोगों के सहज स्फूर्जित संगीत को लोकगीतों की संज्ञा दी है । किन्तु यह संकुचित धारणा है । मानव हृदय की स्वयं प्रेरित संगीत लहरी को हम असभ्य, सभ्य, शहर या ग्राम के क्षेत्र में परिमित नहीं कर सकते । लोकगीत असभ्य अथवा आदिम जातियों की ही वस्तु विशेष न होकर सम्पूर्ण मानव समाज की सभी युगों की नैसर्गिक भाव उर्मियाँ है, जिन्हें मानव समय के साथ परिवर्तित करता हुआ प्रकट करता रहता है । यदि आदिम युग के लोकगीतों में स्वाभाविक सरलता व प्राकृतिक उपादान प्रमुख थे तो आधुनिक युग के लोकगीतों कुछ सभ्य समाज के कृत्रिम आवरण उनमें स्थान पा जाते हो तो वह अस्वाभाविक नहीं ।

सांस्कृतिक दम्भ व अहं से पश्चिम व अन्य देशों के लोकगीतों की भावधाराएँ कुण्ठित हो सकती है, परन्तु भारत में तो आज भी लोकगीतों का नैसर्गिक स्वर ज्ञान अवरुद्ध नहीं हुआ है । अतः पश्चिम के विद्वानों द्वारा दी गई लोकगीतों की परिभाषाएँ व भारतीय विद्वानों की अन्धानुकरणात्मक परिभाषाएँ सत्य के नजदीक कम ही है । भारत के सांस्कृतिक सामाजिक वातावरण में रहने वाले विद्वानों द्वारा दी गई कलात्मक परिभाषाओं द्वारा यहाँ के लोकगीतों की परिभाषाओं का संक्षिप्त आभास अवश्य मिल जाता है ।

पौर्वात्य दृष्टिकोण

भारतीय विद्वानों ने भारतीय संस्कृति व लोकगीतों का अध्ययन करते हुए तत्सम्बन्धी गहन विचार व्यक्त किये हैं । विभिन्न प्रान्तों के लोकगीतों का स्थानभेद की दृष्टि से स्वरूप व गायन पद्धति भिन्न हो सकती है, लेकिन उनके आन्तरिक तत्त्व व महत्त्व तो भारत व्यापी किंवा सर्व व्यापी कहे जा सकते हैं । कतिपय परिभाषाएँ निम्नलिखित है :-

(१) **श्री नरोत्तम स्वामी व स्वर्गीय सूर्यकरण पारीक** - 'आदिम मनुष्य हृदय के गानों का नाम लोकगीत है । मानव जीवन की, उसके उल्लास की, उसकी उमंगो की, उसकी करुणा की, उसके रुदन की, उसके समस्त सुख दुःख की कहानी इनमें चित्रित है :- काल का विनाशकारी प्रभाव इन पर नहीं पडता है । किसी की कलम ने इन्हें लेखबद्ध नहीं किया पर ये अमर है ।''(२८)

(२) **श्री राम नरेश त्रिपाठी** - ''ग्रामगीत प्रकृति के उद्‌गार है । इनमें अलंकार नहीं केवल रस है ! छन्द नहीं केवल लय है !! ग्रामीण मनुष्यों के स्त्री पुरुषों के मध्य में हृदय नामक स्थान पर बैठकर प्रकृति गान करती है । प्रकृति के वे ही गान ग्रामगीत है ।''(२९)

(३) **देवेन्द्र सत्यार्थी** - ''लोकगीत किसी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र है ।''(३०)

(४) **डो. सत्येन्द्र** - ''निर्माता में निर्माण के अहं चैतन्य से शून्य होने पर लोकाभिव्यक्ति होती है ।''(३१)

(५) **श्री लक्ष्मीनारायण सुधांशु** - ''ग्रामगीत संभवतः वह जातीय आशु कवित्व है जो क्रम या क्रिया के ताल पर रचा गया है । गीत का उपयोग जीवन के महत्त्वपूर्ण समाधान के अतिरिक्त मनोरंजन भी है ।''(३२)

(६) **श्री वासुदेव शरण अग्रवाल** - 'गीत मानो कभी न छीजने वाले सोते है ।''(३३)

(७) **श्री बाबू गुलाबराय** - ''लोकगीतों के निर्माता प्रायः अपना नाम अव्यक्त रखते हैं और कुछ में वह व्यक्त भी रखता है, वे लोक भावना में अपना भाव मिला लेते हैं । लोकगीतों में होता

तो निजीपन ही है किन्तु उनमें साधारणीकरण एवं सामान्यता कुछ अधिक रहती है ।''[३४]

(८) **शान्ति अवस्थी** - ''लोकजीवन में लोकगीतों की एक निरन्तर धारा अनादि काल से चली आ रही है । मेरे अपने विचार से ये लोकगीत मानव हृदय की प्रकृत भावनाओं की तन्मयता की तीव्रतम अवस्था की गति है, जो स्वर और ताल की प्रधानता न देकर लय या घुन (ध्वनि) प्रधान होते है ।''[३५]

(९) **आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी** - ''ग्रामगीत आर्येतर सभ्यता के वेद है ।''[३६]

(१०) **डॉ. सदाशिवकृष्ण फडके** - ''लोकगीत विद्यादेवी के बौद्धिक उद्यान के कृत्रिम फूल नहीं, वे मानो अकृत्रिम निसर्ग के श्वास-प्रश्वास है । सहजानन्द में से उत्पन्न होने वाली श्रुति मनोहरत्व से सच्चिदानन्द में विलीन हो जाने वाली आनन्दमयी गुफाएँ हैं ।''[३७]

(११) **श्री कुन्ज बिहारीलाल** - लोकगीत लोगों के उस जीवन की प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति है जो सुरम्य प्रवाहों से बाहर या अधिक रूप से आदिम अवस्था में हैं ।''[३८]

(१२) **कोमल कोठारी** - सामान्य लोक जीवन की पार्श्वभूमि में अचिन्त्य रूप से अनायास ही फूट पडने वाले मनोभावों की लयात्मक अभिव्यक्ति लोकगीत कहलाती है ।[३९]

(१३) **डॉ. तेजनारायणलाल शास्त्री** - लोकगीत हमारे जीवन विकास के लिये इतिहास है ।[४०]

(१४) **महात्मा गांधी** - लोकगीत समूची संस्कृति के पहरेदार है । [४१]

(१५) **झवेरचन्द मेघाणी** - आज तो एवां गीतनी वात थाय छे, के जेना रचनाकारोए कदी कागज ने लेखनी पकड्या नहीं होय ए रचनार कोण छे बीजा कोई ने खबर नहीं होय । अने प्रेमानन्द के नरसिंह मेहतानी पूर्व केटला काम वींघी ने ई स्वर चाल्या आवे छे तेनीय कोई कल्पना करी नहीं शक्युं होय एनुं नाम लोकगीत ।[४२]

अर्थात् - आज तो ऐसे गीत की बात होती है कि जिसके कर्ताओं ने कभी कागज और कलम को नहीं पकडा हो उनके कर्ता कौन है इसकी किसी को सूचना नहीं हो और प्रेमानन्द अथवा नरसिंह मेहता के पहले से कितने समय के काल को बेघन करते हुए ये स्वर चले आते हैं । इसकी कोई कल्पना नहीं कर सका हो उनका नाम लोकगीत है ।

इन विचारों के आधार पर यदि संकीर्णता द्योतक आदिम आर्येतर आदि शब्दों को छोड दिया जाय तो निम्नलिखित बातों पर हमारा ध्यान केन्द्रित हो जाता है, जो लोकगीतों की मूल विशेषताएँ कही जा सकती है :-

१. लोकगीत मानव सभ्यता व संस्कृति के विकास पर प्रकाश डालते हैं ।
२. लोकगीतों में मानव हृदय की रागात्मक प्रकृति की अभिव्यक्ति, शैली लयात्मक रूप में होती है ।
३. लोकगीतों का कर्ता कौन है इसकी जानकारी नहीं है ।
४. लोकगीतों का लालित्य नहीं केवल माधुर्य है ।
५. लोकगीतों में अलंकार नहीं केवल रस है ।
६. लोकगीतों में छन्द नहीं केवल लय है ।
७. लोकगीत प्रकृति के उद्‌गार है ।

८. लोकगीत अनादिकाल से सामूहिक भावनाओं को आधार बनाकर सहज रूप से प्रवाहित है ।

९. लोकगीतों में मानव जीवन की, उसके उल्लास की, उसकी उमंगो की, उसकी करुणा की, उसके रुदन की और उसके समस्त सुख-दुःख की कहानी चित्रित होती है ।

१०. लोकगीतों पर काल का विनाशकारी प्रभाव नहीं पडता ।

११. लोकगीतों में होता तो निजीपन ही है किन्तु उनमें साधारणीकरण एवं सामान्यता कुछ अधिक रहती है ।

१२. लोकगीत किसी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र है ।

१३. लोकजीवन में लोकगीतों की निरन्तर धारा अनादिकाल से चली आ रही है ।

१४. लोकगीत मानव हृदय एवं प्रकृत भावनाओं की तन्मयता की तीव्रतम अवस्था को व्यक्त करते है ।

१५. लोकगीतों की जाति आशुकवित्व है जो कर्म या क्रिया के ताल पर रचा गया है ।

१६. लोकगीत विद्यादेवी के बौद्धिक उद्यान के अकृत्रिम निसर्ग के श्वास निश्वास है ।

१७. लोकगीत सच्चिदानन्द में विलीन हो जाने की आनन्दमयी गुफाएँ हैं ।

१८. लोकगीत निर्माण करने वाले अहम् चैतन्य से शून्य होने वाली लोकाभिव्यक्ति है ।

१९. लोकगीत मानव हृदय में उत्पन्न प्रकृति प्रदत आवाज में व्यक्त अचानक उमडकर प्रकट होने वाला संगीत है ।

२०. लोकगीत संस्कृति के पहरेदार हैं ।

२१. लोकगीत हृदय का बोझ हल्का करने के लिए भावों की अभिव्यक्ति के रूप में किये जाने वाले गान है ।

२२. लोकगीत कभी न समाप्त होने वाले रस के झरने है जो स्वतः स्फुरण से उद्‌भुत हुए है ।

२३. लोकानुरंजन के साथ ही ये मानवीय कर्मो के प्रेरणा स्त्रोत भी रहे हैं ।

२४. लोकगीतों के रचयिता अज्ञात है । वेदों के समान इन्हें भी अपौरुषेय कहा जा सकता है । वेदों का अपौरुषेय ज्ञान लोकगीतों में अब भी जीवित है ।(४३)

२५. लोकगीत न तो पुराना होता है और न नया । वह तो जंगल के एक वृक्ष जैसा है, जिसकी जडें तो दूर तक जमीन में घँसी हुई है, परन्तु जिसमें निरन्तर नयी नयी डालियां, पल्लव और फल लगते रहते हैं ।(४४)

स्वाभाविकता और सरलता लोकगीतों की प्रमुख विशेषता रही है । इसलिए काव्य शास्त्र के कृत्रिम नियमों के बन्धनों के लिए उनमें कोई स्थान नहीं है । इसीलिए शास्त्रीय नियमों के उल्लंघन की अनिवार्यता भी लोकगीत का एक लक्षण माना गया है । रामनरेश त्रिपाठी के शब्दों में - ''ग्रामगीत तो हृदय की अनुभूतियों के शब्द चित्र हैं । वे सीधे हृदय से निकलते हैं । इसमें मस्तिष्क का उतना ही हाथ है, जितना किसी घर को सजाने में मजदूर का होता है । कविता में मस्तिष्क हृदय का मजदूर है । महाकवि मस्तिष्क का चाहे जैसा खेल दिखाये पर वे वही प्रशंसा पाते हैं, जहां हृदय की गहराई में बैठकर कुछ कहते हैं । ग्रामगीतों में मस्तिष्क का खेल बिलकुल नहीं

है । हृदय में जो भाव उत्पन्न हुए, वे आपसे आप शब्द बनकर निकल आए हैं । महादेवी वर्मा ने भी कहा है - सुख-दुःख की भावावेशमयी अवस्था विशेष को गिने चुने शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है । इस गीत में जब समूहगत चेतना जुड जाती है तो यह लोकगीत बन जाता है ।

लोक साहित्य विशेषतः 'लोकगीत' साहित्य और दर्शन की गगनचुम्बी हिमश्रेणियों के बीच में एक ऐसा सजल आलोकोज्जवल मेघखण्ड है जो न तो इनके टूट-टूट कर गिरने वाले शिलाखण्डों से दबता है और न इन श्रेणियों की सीमाओं में आबद्ध होकर ससीम बनता है, प्रत्युत इन उन्नत चोटियों का शृंगार करता है और संगीत लहरी के प्रत्येक स्पन्दन कम्पन के साथ उडकर विशालता के कौने-कौने को मादकता का सागर प्रस्तुत करता है ।(४५)

इन मान्यताओं को देखते हुए यह कहना पडता है कि लोकगीत सर्व सामान्य की बहुश्रुत परम्परा के स्वतः स्फूर्जित उद्‌गार है । उनमें सामूहिक चेतना के दर्शन होते हैं । भौतिक दृष्टि से मानव ने सभ्यता के क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति की है, परन्तु तात्त्विक दृष्टि से उसमें वही रागात्मक प्रवृत्तियाँ घर किये हुए है, जो आदिम मानव में होगी । उन्हीं का नितनूतन परिवर्तित रूप लोकगीतों में अब भी मनुष्य को प्राप्त है ।

लोकगीत का रचयिता चाहे वह ज्ञात न हो, आत्मानुभूति के स्थान पर परोक्षानुभूति से पीडित होकर अपने उद्‌गार अभिव्यक्त करने को विवश हो उठा होगा । सुखानुभूति की अपेक्षा दुःखानुभूति में यह अधिक संभव है । क्योंकि दुःख मनुष्य के संवेदनशील हृदय को सारे संसार से एक अविच्छिन्न बन्धन में बांध देता है ।(४६) दुःख पार्थिव न होकर अपार्थिव भी हो सकता है - काल और सीमा के बन्धन में पडे हुए असीम चेतन के क्रन्दन के रूप में । अतएव 'एको रसः करुण एवं निमित्तमैदात्'(४७) कथन सत्य प्रतीत होता है । पन्तजी ने भी यही उद्‌गार व्यक्त किये थे -

वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान ।
उमड कर आँखों से चुप-चाप,
कविता वही होगी अन्जान ॥

इसीलिए आदि कवि वाल्मीकि को परम कारुणिक कवि के विशेषण से बार - बार याद किया गया है । हमारे असंख्य सुख चाहे हमें मनुष्यता की पहली सीढी तक भी नहीं पहुंचा सके, परन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर बनाये बिना नहीं गिर सकता । मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है परन्तु दुःख सबको बाँटकर । विश्व जीवन में अपने जीवन को, विश्ववेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना, जिस प्रकार एक जल बिन्दु समुद्र में ही मिल जाता है, कवि का मोक्ष है ।(४८) अतः बाह्य जगत् में मानव को भौतिक अभावों, रोगों आदि से पीडित देखकर और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से आत्मा का परमात्मा से शाश्वत रूप से वियुक्त होकर परोक्षानुभूति से ग्रस्त कवि से सामूहिक भावना को अभिव्यक्ति का विषय बनाया एवं गीत फूट निकला । लोकगीत का सहज उदय इसी क्रम से हुआ है ।

प्रमुख पर्वोत्सव सम्बन्धी गीत

(१) गवर (गणगौर) के गीत

राजस्थान का रंगीलापन और लोकमानस का उल्लास गणगौर के त्यौहार से ही प्रकट होता है । अनेकानेक ऐतिहासिक परिवर्तनों के उपरान्त भी गणगौर और तीज के त्यौहारों की ये सांस्कृतिक परम्पराएँ एवं जन जीवन की झांकियाँ रंगीले कहे जाने वाले राजस्थान की रंगीनियों के ऐसे चित्र उपस्थित करती हैं जो अपनी अमिट छाप छोडे बिना नहीं रह सकते । मध्ययुगीन राजस्थानी संस्कृति में गणगौर का अत्यन्त महत्त्व रहा है, क्योंकि हमारे शास्त्रानुसार वर्ष का शुभारम्भ चैत्र मास के शुक्ल पक्ष में माना जाता रहा है । गणगौर पर्व भी इस मास के कृष्ण प्रतिपदा से चैत्र शुक्ला चतुर्थी तक अर्थात् होली के लगभग पन्द्रह दिन पश्यात् बडे ही धूमधाम व हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है ।

गणगौर राजस्थान की वरकांक्षिणी कुमारियों और सौभाग्यवती महिलाओं का एक हर्षोल्लासपूर्ण पवित्र सांस्कृतिक पर्व या त्यौहार है ।

तीज और गणगौर यद्यपि सारे राजस्थान में मनाई जाती है, पर मरुस्थल के ये प्रमुख त्यौहार है । जिस सुन्दर ढंग से यह त्यौहार जोधपुर, जयपुर, बीकानेर और शेखावटी में मनाये जाते हैं, उतने अन्यत्र नहीं ।

गौरी पूजन भारतीय संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण अंग है । किसी राष्ट्र के झण्डे की भाँति गवर का मेला बडी घूमघाम से निकलता है । इस अवसर पर सौभाग्वती स्त्रियाँ तथा अविवाहित कन्याएँ व्रत रखती है । कहानी सुनती है और केसरिया कसूमल रंगवाली गोटे-किनारी के ओरणे ओढ आभूषणों से सुसज्जित इकठ्ठी गाती हुई निकलती है । प्राचीन साहित्य में शिववरण के लिए पार्वती के कठोर तप का उल्लेख हुआ है, इस दृष्टि से यह त्यौहार पार्वती के गौने का सूचक भी माना जाता है । सती शिरोमणि पार्वती के जीवन वृत्त को दृष्टिपथ में रखकर भारतीय कन्याएँ भौतिक एषणाओं से रिक्त हो, केवल श्रेष्ठ पति की प्राप्ति एवं अमर सौभाग्य की कामनाओं से प्रेषित हो, यौवन प्रेम व मधुमय जीवन के अधिष्ठाता ऋतुराज वसन्त से सुशोभित हो सिर पर कलश रख अपने मधुर गीतों से वातावरण की गुंजायमान करती हुई जलाशयों पर जाकर माँ गौरी के चरणों में अपने श्रद्धा के पुष्प अर्पित कर अपनी मनोवांच्छित कामना की पूर्ति के लिए प्रार्थना करती है । षोडशियाँ चिर सुहाग के लिए आकांक्षा करती है एवं कहीं गौर के फुलडा बुनने और शृंगार की तैयारियों में ननद-भोजाई एवं सखी सहेलियों के पारस्परिक प्रेम का स्वरूप झलकता है । स्कन्ध पुराण में पुत्रोत्पत्ति के लिए भी गौरी पूजन का महत्त्व बताया गया है ।

गवर माता से अच्छे वर की याचना करती हुई किशोरी कन्या वर के वांछित गुणों का वर्णन करती हुई प्रार्थना करती है कि गौरी माता ! ऐसो वर दीजो एवं अयोग्य वर के दुर्गुणों का वर्णन करके वह माता से प्रार्थना करती है कि हे माता ! ऐसा वर मत दीजो ।[४९] देखिए :

मेडी बेल्या मद पीवै ए लीला रो असवार ।
खांगी बाँधे पागडी ए, मुघरी चालै चाल ।
कडया कटारी वांकडी ए सोरठडी तरवार,
कउ मोड घोडे चढें ए, चाल निरखतो जाय,
वो वर देई माता गोरले, म्हे थांने पूजण आए ।
चूल्हे केरो चान्दडो ए हांडी रो हमीर,
नौ थालियाँ पीवै राबडोए, सोला रोटी खाय,
वो वर टाली माता गोरल ए, म्हे थानै पूजण आय ।

राजस्थानी भाषा में गौरी के पर्यायवाची कई नाम है – गणगौर, गौरस, गवर और गवरजा । ये सभी नाम काव्यपूर्ण और सांस्कृतिक ध्वनि की व्यंञ्जना करते हैं । यद्यपि शिव पार्वती की पूजा समस्त भारतवर्ष में होती है, तथापि राजस्थानी महिलाओं की गणगौर पूजा की विधि में विलक्षणता है । इसका ढंग अनूठा और निराला है । गौरी पूजा का विधि विधान महिलाओं का निजित्व है । नवोदित यवांकुर (जोहारा), दूर्वा, पुष्प और जल ही पूजा की सामग्री और सम्मिलित हृदयों की श्रद्धा एवं प्रेममय ध्वनि के साथ गाये जाने वाले गीत ही अर्चना के मंच या स्त्रोत हैं । आरम्भ से अन्त तक सारी पूजा-विधि पूर्णोत्साह एवं भावनापूर्ण रसमय गीतों में ही सम्पन्न होती है, जिसमें अलौकिक चरित्र के साथ लौकिक जीवन की मधुरिमा के दर्शन होते हैं ।

राजस्थानी लोकगीतों में प्रकृति के विविध उपादान

मानव अपने आदिकाल से ही नाना दृष्यों का आनन्द अनुभव करता रहा है । वन, पर्वत, निर्झर, लता, वृक्ष, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, सरोवर, पुष्प, इन्द्रधनुष, नंदी और सागर आदि मानव को सदैव अपनी ओर आकर्षित करते रहे हैं । मानव के प्रकृति-पर्यवेक्षण का क्षेत्र हरे हरे भरे मैदान, पक्षियों का कलरव, मयूरों का नृत्य, नदियों की कल-कल ध्वनि और ऋतुओं की शोभा है । इन सभी दृश्यों से मानव में नई चेतना व नूतन उत्साह की सृष्टि होती है । प्रकृति के माध्यम से मानव ने जितना ज्ञान और शिक्षा ग्रहण की, उसकी कोई सीमा रेखा नहीं है । प्रकृति के प्रत्येक कार्य ने मानव के ज्ञान कोष में वृद्धि की है । प्रकृति के प्रत्येक उपकरण मानव के लिए प्रेरणादायक रहे हैं । दूसरे शब्दों में प्रकृति और मानव-जीवन अभिन्न है : अतः लोकगीतों में प्रकृति के सभी रूपों को यथेष्ट महत्त्व दिया जाना स्वाभाविक ही प्रतीत होता है । प्रकृति और लोकगीत का सम्बन्ध दर्शाते हुए डॉ. मनोहर शर्मा लिखते है, ''लोकगीत प्रकृति का स्वाभाविक गान है । उसमें लोक गंगा का कल-कल निनाद है । यहाँ रस है, मस्तिष्क का प्रपंच नहीं ।''(५०)

१. ऋतु वर्णन

प्रकृति मानव की भावनाओं को उद्दीप्त करने में बहुत कार्य करती हैं । फिर भले ही वह मानव की संयोग दशा हो चाहे वियोगावस्था । संयोग की अवस्था में सम्पूर्ण प्रकृति नायक नायिका को सुन्दर सुहावनी और प्रेममयी दिखाई देती है । उस समय वर्ष का प्रत्येक महिना नायक नायिका के लिए आनन्ददायक होता है, प्रकृति का कण-कण उनके लिए आनन्द कणों की वर्षा करते हैं । एक गीत में शरद ऋतु के पूर्णचन्द्र को देखकर वह अपनी सखी से पति के रूप का वर्णन करती

हुई प्रेम अभिव्यक्त करती है -

देखो ऐ सहेल्यां म्हारा सायबा रो रूप जांणूं,
एक निकस्यो चान्दो चांद की जी राज ।

वर्षा ऋतु में खेतिहर दम्पति मिल कर खेतों में कार्य करते हुए संयोग सुख का अनुभव करते है । नायिका चौमासे में गाती है -

डैरा मांय मतीरा लाग्या, भर-भर खारला लावांगा ।
चार मास चौमासे म्हे तो हिलमिल खेत कमावांगा,
घण सायब मिल खावांगा ।

परन्तु वियोगावस्था में स्थिति इसके विपरीत हो जाती है । उन्हें प्रकृति का प्रत्येक स्थल, प्रत्येक कार्य विरह को बढाने वाला लगता है । जहाँ पहले प्रकृति नायिका के आमोद प्रमोद की पुण्यस्थली है, वही विरह की अवस्था में उसकी विरह भावना को उद्दीप्त करने में सहायक होती है । यही कारण है कि प्रकृति प्रेरित भावनाओं से लोक विरह ओत-प्रोत है ।(५१)

राजस्थानी लोक गीतों में प्रत्येक ऋतु का प्रभाव नायिका पर अलग-अलग रूपों में वर्णित है । 'बारह मासा' में बारह महिनों के प्राकृतिक चित्रण के साथ ही साथ विरह की अवस्था में विरहिणी की मनोदशाओं का वर्णन भी पूरे गीत में होता है ।''

लोकजीवन की कल्पनाएँ आभिजात्य साहित्य जैसी दुःखद न होकर स्वाभाविक और रम्य होती है । चित्र उपस्थित करने की क्षमता उन गीतों में अधिक है । रंग, रूप, भावना, चेष्टा, पृष्ठभूमि और वातावरण का उपयुक्त वर्णन उन गीतों में मिलता है ।(५२)

विरहिणियों को सबसे दुःखदाई वर्षा ऋतु लगती है एक तो प्रिय की याद में विरहिणी की अवस्था दयनीय है ही, उस पर सुहावनी वर्षा ऋतु आकर विरह को और अधिक उद्दीप्त कर देती है । यथा -

भादूंबरखा झूक रही, रही घटा नभ जोर,
चम-चम चमकै बीजली, टप-टप बरसे मेंह ।
भर भादूं बिलखत तजी, भली निभायो नेह
जी सरदार चौमासे ने घर मत छोडो ।। मेरी ज्यान -

इस गीत में आगे चलकर विरहिणी प्रत्येक ऋतु की विशेषताओं का वर्णन करती हुई प्रिय से घर रहने का आग्रह करती है । जैसे आसोज में प्रिया सीप की तरह आस कर रही है कि प्रिय पास रहे, इस कामना की पूर्ति के लिए विरहिणी दुर्गामाता को सोने के छत्र की भेंट चढाने को भी कहती है । विरहिणी कार्तिक महिने में प्रिय को परदेश में रहने के कारण कठोर हृदयवाला कहती है तो मागसर महिने में कामदेव के तंग करने पर विरहिणी के हृदय की जलन को शान्त करने के लिए घर पर बुलाती है । सर्दी की ऋतु तो वर्षा ऋतु से भी कष्टप्रद है, अगहन, पौष, माघ माह विरहिणी के लिए प्रिय के बिना दुःखदाई है । एक अन्य गीत में सर्दी की ऋतु के साथ-साथ अन्य ऋतुओं का चित्रण भी मिल जाता है -

'ओ म्हारी जोडीरा, ओ मिरगा नैनीरा रतन, सीयालो राजन यूं ही गयो ।
ऊनाला रा पांच महीना, चौमासा रा चार महीना, सीयाला रा लोग थोडा ।।

ऊनाला रा पोमचा, चौमासा रा लहरिया, सीयाला रा फागणिया छपावो ।
म्हारा जोडी रा जलाल .....

और अन्त में विरहिणी विवश होकर यहां तक कह देती है कि -

''ऊनालो फेर आवेला, चौमासो फेर आवेला,
गयो तो जोबन फेर नहीं आवेला ।''

यो तो सभी ऋतुओं का अपने स्थान पर महत्त्व है, किन्तु सावन की अपनी छटा निराली है । इसका राजस्थान में महत्त्व कुछ अधिक है । मरुघर का शुष्क अन्तस्थल इन दिनों में हरियाली से भरपूर हो लहलहा उठता है । सावन का महिना सुहावना भी तो उठता है । वर्षा की हल्की - हल्की फुहारें गर्मी की तपती लूओं की झुलसन को समाप्त कर देती है । पत्नी को ऐसी ऋतु में प्रिय के विदेश जाने का आभास हो जाता है । वह रोकते हुए कहती है :-

''कुण थाने चाला चालिया, हो परनिया मारु, कुण थाने दीवी ढोला सीख
हो पिया प्यारी रा ढोला जी हां रे हाँ, सावणियो विलूंबों रे बीकानेर ''

प्रिय से बिछुडे बरस बीत गये पर वह घर नहीं आया । विरह की अवस्था में सभी आमोद-प्रमोद की चीजें अतीत की मदमाती स्मृतियों को सजग कर देती है । विरह व्यथित एक स्त्री अपने प्रिय की याद में इतनी लीन हो जाती है कि सजीव निर्जीव का भेद भी भूल जाती है । समयावधि बीतने पर वह उस महल (मेडी) से, जो उसके प्रियतम जाते समय बना गये थे, प्रश्न करती है :-

तू क्युं ए मेडी बैरण डगमगी ।

इसी गीत में वह प्रिय का आह्वान करती है और याद दिलाती है कि श्रावण में आने का वायदा था, किन्तु प्रिय नहीं लौटे । एक अन्य प्रसंग में माह गिनते-गिनते उसकी अंगुली की रेखाओं के घिस जाने का वर्णन मिलता है :-

सावण आवण कै गया, कोल कर गया अनेक ।
गिणता गिणता घिस गई, मारी आँगलिया री रेख ॥

सावण में लगी वर्षा की झडी विरहिणी की रुदन अभिव्यक्ति है । विरहिणी कहती है :-

मेरो मन मारुजी मिलवाने
जेठ असाढ आसा सूं काढया तो सावण आयो झुरवा ने
मेरो मन मारुजी मिलवा ने
पूरब दिसा सूं उठी बादली तो आयी म्हारे घरां बरसवां ने
मेरो मन मारुजी मिलवा ने

विरहिणी के लिए सावण जैसी सुहावनी पर उसकी विरह वेदना को बढाने वाली ऋतु ओर कोई नहीं है । धरती का हरा-भरा आंगन, बरसालू बादल, बाडों से लिपटी बैल सभी विरहिणी के लिए असह्य है । वह कह उठती है :-

सावण आयो सायबा रे, बांधो पाग सुरंग
घर बैण राज सिकारो कोई हरित्या चरे सुरंग
म्हारे सावण री लूमां-झूमां रे राज रे बिना

चौमासो अलूणो जाय ।
साबण आयो सायबा पगां वै लूम्बी नार
वाडा लूम्बी बेलडी कोई नरां ने लूम्बी नार ॥

प्रकृति गीतों में सावन की तरह ही फाल्गुन का चित्रण भी व्यापक रूप से मिलता है । इस माह में वसन्त ऋतु का आगमन होता है । नायिका की सब सहेलियाँ चीर रंगा रही है, पर वह कहती है : मेरा तो सब रंग बाईजी का भाई ले गया है । हे उमराव । उस रंग बिरंगे वसन्त में तुम्हारी प्रिया रंग विहीन हो गई है । सब 'पिया' की प्यारी कामनियां साजन के साथ फाग खेल रही है । हे प्रियम । केवल तुम्हारी प्रिया ही तुम्हारे वियोग में बिलखती हुई घूम रही है ।

२. पशु पक्षी

पशु पक्षी और मानव का सम्बन्ध आदिम अवस्था से है । 'आदिम-मानव शिशु की उस असहाय अवस्था में वनस्पति और पशु माँ घरती के दो स्तन समान थे, जिनसे उसे अपना जीवन मिलता रहा था । आदिम-मानव पशु-जगत में अपनी चेतना का सबसे अधिक साम्य देखता है । पशु उसके समान चलते फिरते हैं, खाते हैं, पीते हैं, आवाज करते हैं, विभिन्न मनोदशाएँ प्रकट करते हैं ।''(५३)

वस्तुतः पशु पक्षी मनुष्य के सदैव से अभिन्न सहचर रहे हैं । राजस्थानी लोकगीतों में पशु-पक्षियों का उल्लेख प्रचुरता से हुआ है । विशेषकर विरही हृदयों द्वारा संदेशों का आदान-प्रदान करने के लिए पक्षी ही मुख्य माध्यम बनाये गये हैं । अतः काग, सुवा, पपैया, मोर, कुरजां कोयल और कूकडा आदि पक्षी संदेशवाहक व हृदयगत भावों के प्रदर्शन के माध्यम रहे हैं । इनमें से काग, कुरजां, सुवा आदि स्त्रियों के प्रमुख विश्वास पात्र रहे हैं । अतः उनके सम्मुख अपने भावों का प्रदर्शन करना और संदेश भेजने का कार्य करवाना अधिक हुआ है ।

(i) काग - राजस्थानी लोक साहित्य में काग का अपना विशिष्ट स्थान है । घर की मेडी पर बैठे काग ने लोक जीवन में आज तक कितना मिठास संचित किया है, कोई पार ही नहीं, कोई लेखा-जोखा ही नहीं है । मनोदशा के संदेशवाहक इन पक्षियों को बदले में कितनी बार गुड, घी, खांड का थाल परोस कर भोजन कराया गया है, कितनी बार और कितनी तरह के घूंघरे इनके पैरों में बाँधे गये हैं, कितनी बार मिसरी की डलिया इन्हें प्यार के साथ चुगाई गई है, कितनी बार इनकी चोंचों को हिंगलू से लाल रंगा गया है और कितनी बार कितनी तरह से उसके सुन्दर पिंजरे बनवाये गये हैं, उसके काम करवाने के तरीके में भी हुक्म और आदेश का स्वर नहीं प्रार्थना, प्यार और भाई-चारे की स्नेह भरी विनय है । आपसी समानता है । मानवीय संवेदना है ।(५४)

एक लोकगीत में विरहिणी काग से प्रिय के समाचार लाने की याचना करती हुई कहती है-

उडजा रे काग, गिनग का वासी
खबर तो ल्याव म्हारे साजन की
नाम नहीं जाणु, म्हें तो गाँव नहीं जाणु
सूरत न जांणु थारे साजन की ।

तीखी-तीखी नाक फिरंगी को नौकर
चाल चले उमरावां की ।

लोकधारणा है कि जब काग बार-बार बोलता है तो वह किसी प्रियजन के आने की अग्रिम सूचना देता है । इसी धारणा के आधार पर निर्मित एक लोकगीत है । स्त्री के घर के भीतर लगे नीम पर बैठकर कौआ बोला पर कई दिनों की प्रतिक्षा के पश्चात् भी जब उस विरहिणी का प्रिय, भाई या स्वजन घर नहीं आये तो वह झुंझला उठती है और अपनी दासी से उस काग को तीर मारने को कहती है -

मारो ! ए रतनादे दासी ! काग लिया रे तीर ।
नित नित आयने कूर के, म्हारी नीमडली रै बीच ॥

एक अन्य गीत में विरहिणी घर की मुंडेर पर बोलते काग को प्रिय का नाम लेने पर उडकर शगुन बताने को कहती है । यथा -

उड उड रे म्हारा काला रे कागला
जद म्हारा पीवजी घर आवे, जद म्हारा ।
खीर खांड रा जीमण जीमाउ
सोने में चोंच मंडाऊ कागा, जद म्हारा पीवजी.....

इतने आग्रह को कौन टाल सकता है ? इसीलिए स्त्री के दुःख से दुःखी होकर काग अन्त में उसे आश्वासन देता हुआ कह देता है -

मत कर मत कर बिदरंग थारो मेष,
खुल्या रे केशा ना फिर
आग मिलेंगो थारो श्याम बिन दसने
झुर झुर ना मरे रे ॥

इस पर भी स्त्री को धैर्य नहीं है । अतः वह काग से अपने नयन निकाल कर देने को कह देती है -

कागा नैन निकाल दूं पिय पास ले जाय,
पहले दरश कराय के पीछे लीजो खाय,
कागलिया गेरो गेरो बोले रे
म्हारो परवानों गयोडो परदेश, कागलिया

इस गीत में प्रियतमा ने नयन विहीना होना स्वीकार किया है पर वह प्रिय दर्शनों के पश्चात् । प्रियदर्शन की अभिलाषा इससे बढकर क्या होगी ।

(ii) कुरजां - कुरजां लोक काव्यों का प्राण रही है । ढोला मारु में भी 'मारवणी' अपना संदेश कुरजां के माध्यम से भेजती है । लोकगीतों में भी कुरजां का वर्चस्व कम नहीं है । काग

के लिए तो विरहिणी ने केवल 'खीर खांड' का भोजन और 'सोने में चोंच' मंडाने का कहकर ही अपने विरही हृदय के उद्‌गारो को प्रकट किया है । किन्तु कुरजां के साथ तो उसका रिश्ता भी बन जाता है वह उसकी ''धरम की बहनडी'' और ''भायली'' तक बन जाती है -

तू छै कुरजां भायली ए
तू छै धरम की ए भाण
पतरी लिख दू प्रेम की ए
दीजो पियाजी ने जाय
कुरजां म्हारो भंवर मिला दीजे ।

कुरजां के समक्ष नारी अपने प्रियतम की शूरवीरता का बखान करती है - शायद पारिवारिक संकोच के कारण वह अन्य किसी से कह नहीं सकती । प्रिय पक्षी के आगे तो अपने वीर पति का गुणगान करे -

कुरजां आज भंवरजी रा डेरा डूंगरा
कुरजां मारिया मारिया सूर पचास

प्रिय की याद में कृशकाय विरहिणी कुरजां के साथ अपनी कृशकाय दशा का हाल पत्र में लिखकर भेजती है ।

ढोले ने कागद लिखूं लाल बैठ महल के जी माय,
आंगलियां से मूंदडो जी ढोला ढल आवे म्हारी बाय ।

ढोला मारु लोक काव्य में एक स्थान पर विरहिणी कुरजां से संदेश न भिजवा कर उससे पंख देने की विनय करती है -

कुरंझडिया द्यौ पांखडी, थाकउ विनउ वहेसि ।
सागर लंघी प्री मिलउ, प्री मिल पाछी देसि ॥

(iii) सूवटा - राजस्थानी लोकगीतों में सूवटा (तोता) सहानुभूति का आधार है । विरहिणी काग को प्रलोभन देती है । कुरजां से नाता जोडती है । पर फिर भी उसके प्रिय घर नहीं आते । हारकर स्त्री तोते से प्रिय मिलाने पर उसकी जन्म जन्मांतर तक दासता स्वीकार करने तक का कह देती है । इससे बडी विवशता और क्या हो सकती है कि एक स्त्री पक्षी की दासी तक बनना स्वीकार कर ले -

मेरो बिछुडयो कन्थ मिलाय,
सूवटा जन्म-जन्म की दासी ।

एक गीत में स्त्री को यह ज्ञात हो जाता है कि सूवा नरवर जा रहा है, जहाँ उसका प्रियतम भी रह रहा है । ससुराल के सब नाते-रिश्तेदारों को उचित याद के साथ प्रिय को सात सलाम

कहलाती है । वह सूवटीये को एक प्रलोभन भी देती है । जिसमें उसे गुजरी के यहाँ बसेरा लेना व दूध दही खा लेने का आग्रह करती है -

सूवा नरवर जायगो तू ही ओ
सास ससुरै जी ने कहियो पगेलागणा रे
नणदल ने याद कही ओ सूवा
परण्ये ने कहिजै, सूवा सात रे सलामी
देवर ने प्यार सही हो सूवा
घर गूजरी के सूवा वासो रे लीजौ
घालेगो दूध-दही ओ..... सूवा नरवर.....

(iv) पपैया - संयोगावस्था में पपीहा की बोली अच्छी लगती है, परन्तु वही बोली विरहिणी को वियोगावस्था में विरह को उद्दीप्त करने वाली लगने लगती है । मीराँ ने भी पपैया को सम्बोधित करके 'पिऊ पिऊ' की रट लगाने हेतु मना किया है । एक लोकगीत में विरहविदग्धा पपैये से कहती है -

पपैया बैरी ना बोलो
म्हारे घरे नहीं भरतार

राजस्थानी लोकगीतों में पशु

राजस्थानी जन-जीवन में पशुओं का अपना महत्त्व है । अतः पशुओं से आत्मीयता व्यक्त करना स्वाभाविक है । विशेषकर ऊँट, घोडा, हरिण, गाय-बैल आदि का चित्रण विविध गीतो में हुआ है ।

(v) ऊँट - मरुभूमि का ऊँट राजस्थान के लोगों के लिए कितना महत्त्व रखता है, यह यहाँ के लोग ही जानते हैं । आज यातायात के साधनों में मोटर, रेल व वायुयान का प्रभाव होते हुए भी राजस्थान में कई स्थल ऐसे है जहाँ पहुंचने के लिए लोगों को ऊंट का सहारा लेना पडता है । अतः यदि राजस्थानी लोकगीतों में ऊँट का उल्लेख आज भी गर्व के साथ किया जाता है, तो आश्चर्य की बात नहीं है ।

राजस्थानी लोकगीतों में ऊँट कहीं पर सवारी के काम आता है तो कहीं प्रिय साथी के रूप में । एक नायिका ऊंट को घर बुलाने का आग्रह करती है, ताकि उसके साथ उसका प्रियतम भी आये ।

ऊभोडी उडीकूं घर आव हांजी रे ।
महाराजा रा करहा लूंगा रो लदियोडो घर आव ॥

एक गीत में, एक नायक को दो पत्नियाँ है अतः जन नायक दूसरी पत्नी के पीहर जाता है तो पहली पत्नी ऊंट को सम्बोधित करके कहती है - ओ करहला तू मेरे पिता का दिया हुआ है । मेरी बात सुन, तू प्रिय के ससुराल मत जा, मैं तुझे खाने को नागर बेल दूंगी । उस ऊंट पर उसका अधिकार है । यह कहती है -

''करहला तू म्हारा बाप रौ, रे तू सांभल म्हारी बात''

(vi) घोडा - राजस्थान में रेगिस्तान क्षेत्र होने के कारण वैसे तो ऊँट को ही प्रधानता दी गई है किन्तु राजपूती आन मान और युद्ध की आवश्यकता को ध्यान में रखकर घोडे का महत्त्व भी कम नहीं माना है । यहाँ के लोकगीतों में घोडे का चित्रण भी मिलता है । नायिकाएं अपने प्रियतम को घोडा पर आने का निमन्त्रण देती है -

ये म्हारे आवजो पावणा मारुजी,
करने घोडा रो घमसाण म्हारा राज ।

कहीं नायिका अपने जाने वाले प्रियतम को रोककर दो घडी के लिए घोडे को थामने का आग्रह करती है -

नागजी घडी दोय घडी घुडला थाम रे ।

कुछ प्रसंगों में नायिका ने घुडला दौडने की प्रशंसा की है :

तीज्या ने घुडला दौडसी सहेली ए,
हां ए कोई होसी होसी करालां री होड ।

घोडे से सम्बन्धित कुछ गीतों के प्रसंग निम्नलिखित है :

(क) लालडी बाँधी भंवर जी ठाण में जी,
(ख) घी थारे घुडला ने पाय, गोरी ने खिदावो बाप के ।
(ग) सेल करण सायबो गयों हुय लीली असवार
(घ) घुडला सइयां दीखे य न ठाण,
ना रे पगाणे भंवरजी री मोचडी
(च) ओ लो थारां हाथी घोडा,
म्हाने सीख दिरावो राजा जी ।

(viii) हरिण - लोकगीतों में हिरण व हिरणी नायक-नायिका के लिए प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुए हैं और हिरणी के विरह दुःख में नायिका का ही दुःख व्यक्त हुआ है । कोई विरहिणी को सम्बोधित करके पूछ रही है कि हे हरिणी ! तू किस दुःख से दुःखी है और तेरा वेश बिरंगा क्यों हो रहा है ? वह उत्तर देती है कि मेरा हरिण हरिणों के साथ वन में चला गया है । उसी दुःख से मेरा वेश बिरंगा हो रहा है ।

तूंतो किस विघ, ए हिरणी दूबली
थारां के दुःख बिरंगा भेस
म्हारां हिरण गया हिरणां के खेत
ए दुख म्हारा बिरंगा भेस
पपैया बोले वाणी, म्हारे नैनां बरसे पाणी ।
म्हें उभी जोऊं बाट, पपैया बैरीना .....

(ix) पपीहा - लोकगीतों की नायिका यह भी समझती है कि श्रावण की सुरुंगी ऋतु तो पपीहे के बोलने ही ऋतु है ही अतः वह बोलेगा अवश्य । फिर भले ही उसे प्रिय वियोग के कारण कुछ भी अच्छा नहीं लगता हो ।

पपैया बारे बोलण री रितु आई रे
जेठ मास री लुआं बीती, अबै सुरंगी रितु आई रे
आसाढ उतरियो सावण लाग्यो, काली घटा घिर आई रे.....

एक अन्य गीत में नायिका पपीहे से उस स्थान पर जाकर बोलने का निवेदन करती है, जिस स्थान पर उसके मदभरे प्रिय का निवास है ।

पपैया, तू बोल रे जित म्हारे आलीजा भंवर रो मुकाम
सावन आयो सायबा, वने झिंगोरत मोर
कालिंगडो कू कू करें, म्हारे करत कोयलडी सोर
पपैया तू बोल रे जित म्हारे आलीजे भंवर रो मुकाम ॥

किन्तु कुछ लोकगीत ऐसे भी मिलते हैं जिनमें विरह व्यथित पत्नी की अपेक्षा प्रेमिका का उल्लेख मिलता है । एक परकीया अपने प्रेमी से पपीहा बोलने पर कहती है कि - हे प्रिय तुम हमारे बागों में आना । मैं बागों में अकेली घूम रही हूं और इसके साथ ही पपैया बोलकर मेरे विरह को और बढा रहा है । यथा -

भंवर बागा में आजोजी,
बागा फिरुं अकेली पपैयो बोल्योजी

इसी गीत में आगे परकीया को नायक पत्नी की दुहाई देकर आने के लिए असमर्थता प्रकट करता है । नायक के हृदय में पत्नी का महत्त्व अधिक है, जो उसका वंश बढाती है । इस तरह इस गीत में दाम्पत्यरति का निर्वाह मिलता है ।

(x) कोयल - कोयल भी संदेशवाहिका रही है । सुकोमल भावों को उद्दीप्त करने में सहायक मानी जाती है । नायिका ने कहीं कोयल के माध्यम से संदेश भेजे हैं तो कहीं पर उसकी बोली सुनकर प्रिय को स्मरण किया है । कहीं कोयल परकीया की प्रतीक बनी है । एक गीत में नायिका कहती है - हे दासी मेरा प्रियतम अभी तक नहीं आया । किसी ने उसे लुभा लिया है । यथा -

बागां में घूमण गयो म्हारो रावतियों सरदार
बागा मांयली कोयल म्हारो लियो छै भंवर बिलमाय ।

कहीं - कहीं कोयल शगुन विचार की दृष्टि से भी लोकगीतों में उल्लेखित हुई है ।

(xi) मोर - नायिका के लिए रात अकेले काटना दूभर है । तिस पर आधी रात के बाद मोर बोलने लगा । तब तो उसका चैन ही नष्ट हो गया । मानो किसी ने उसके कलेजे में दुसार (दुधारी तलवार) लगा दी हो । यथा -

मोरिया आछो बोल्यो रे ढलती रात रा
म्हारा काजलिया में बेगी रे दुलार
आछो बोल्यो रे ढलती रात रा
म्हारा हिवडा में वैगी रे करौत ।

एक अन्य गीत में नायिका मोर की 'पीऊ पीऊ' सुनकर प्रिय मिलन हेतु विह्वल हो जाती है । यथा -

पिउ पिउ बोले मोरडो, म्हारे पिउ गए परदेश ।
यो ना बोल रे मोरडा, म्हारे हिवडे ने लागे ठेस ॥
तूं के जाणे रे मोरडा म्हाने पिया मिलन री आस,
पल पल कांपे हिवडो, दोरी आवे सांस ।

कुछ गीतों में चिडिया, हंस, चकवा आदि पक्षियों का चित्रण भी मिल जाता है । राजस्थान कृषि प्रधान प्रान्त है । अतः टिड्डियों से बचाव हेतु 'टीडी' गीत भी गाया जाता है । जिसमें परिश्रमी किसान-पत्नी द्वारा खेत रक्षा की कामना व्यक्त की गई है । जैसे -

टीडी ! उडज्जा अे, खेत परायो
जेठ असाढ म्हे बलया ताबडै
पच-पच हलियो वायो
टीडी ! उडज्या अे खेत परायो

'जल्ला' नामक लोकगीत में जो होली के आसपास गाया जाता है, हिरण को नेत्रों की उपमा दी गई है ।

जलाजी मारु
म्हे तो थारां डेरा निरखण आयो हो
मिरगानैणी - रा जलाल !
म्हे तो थारां डेरा निरखण आयो हो जलाल !

एक लोकगीत में मृग (प्रिय) मृगी (प्रियतमा) को अकेली छोडकर वन में चला जाता है । मृगी उसे वन में ढूंढने निकलती है । आँसू बहाती है पर निष्ठुर हिरण (प्रिय) नहीं मिलता है । असफलता मिलने पर निराशा की घनीभूत पीडा से वह चक्कर खाकर गिर पडती है -

मिरगे बिना मिरगी एकडली
मिरगो छोड गयो वन खण्डमांय मिरगी ने एकलडी

मिरगे ने ढूंढण वन मिरगी निसरी
ढूंढ्यो ढूंढ्यो वन खण्ड छाण
मिरगे बिना मिरगी एकलडी.....
खाय तिरवालो मिरगी ढै पडी
कोई ओ दुःख सहयो भी न जाय
मिरगे बिना मिरगी एकलडी.....

पत्नी को मृगी का रूपक देकर अन्योक्ति के आधार पर लोक गीतकार ने उसकी मूर्च्छा का अति स्वाभाविक चित्रण किया है । ''ढै पडी'' पद में गहन-व्यंञ्जना है । ऐसा तभी होता है, जब उस वस्तु का कोई सहारा नहीं रहता तभी तो वह आधारहीन होकर ढै पडती है । यहाँ कितनी सारयुक्त अभिव्यक्ति मिलती है ।

३. सूरज, चाँद, तारे

प्रकृति लोकगीतों में यथास्थान तारे, सूर्य, चन्द्र, बादल, वर्षा और बिजली आदि का उल्लेख हुआ है । साथ ही दिन, रात, संध्या, नदी, तालाब, पर्वतो आदि का समावेश भी कई गीतों में हुआ है ।

(i) सूर्य - यह प्रकाश का देवता और अंधकार को नष्ट करने वाला है । वह लोकजीवन में नई चेतनता-सक्रियता लाने वाला है । सूर्य वेदों का एक विशेष देव है । सारी दुनियाँ को प्रकाश देता है वह अन्धकार का नाशक है और व्याधियों को हरने वाला है, दुःस्वप्नों को भंग करने वाला है ।

राजस्थानी लोकगीतों में भी सूर्य की महत्ता के अनुरूप ही उसका चित्रण हुआ है । सूर्य देवता किसान के लिए कितना महत्त्व रखते हैं, इस बात को यहाँ के लोकगीतकार भली प्रकार समझते हैं । वे एक गीत में कहते हैं :-

'उगतो उजास वरणों, आथमतो सिन्दूर वरणो'

इसी एक वाक्य से सूर्य की विराट सत्ता व्यक्त हो जाती है । एक गीत में सूर्यास्त के समय नायिका को प्रिय के घर पहुंचने की बात कही है :

चान्द उग्या सूरज छिपिया जी,
देस्यां थांरो मारुजी मिलाय ।

(ii) चांद - चन्द्रमा सुकोमलता और सौन्दर्य का प्रतीक माना जाता है । स्त्री के सौन्दर्य की उपमा 'चन्दा बरनी घरनार' के रूप में ही दी जाती है । चन्द्रमा जहाँ संयोग अवस्था में शीतलता प्रदान करता है वही वियोगावस्था में वह विरहिणीयों के हृदय को जलाने वाला भी है । उसकी शीतल चाँदनी नायिका के लिए कष्टदायक होती है :

चन्दा थारे चांदणे सूती पलंग बिछाय,
जद जागूं जद एकली, मरु कटारी खाय ।

चाँदनी रात में नायिका प्रिय की स्मृतियों को संजोती है । चाँद के साथ हँसी-दिल्लगी भी की है, किन्तु वियोग में वही चन्द्रमा रोष का पात्र बन जाता है । उसकी शीतलता आग बन जाती है और विरहिणी चाहती है कि यह बदली की ओट में ही रहे तो अच्छा है ।

चन्दा छिप ज्यारे बदली मांही
क्यूं रे म्हांरी देह जलावे, पापी चन्दा
मैं झूर रही म्हारे पीव ने
तूं मोय आप सताई
चन्दा, छिप ज्या रे बदली माय

इसी गीत के अन्त में चन्द्रमा को कोसते हुए कहती है अगर तू मुझे जलायेगा तो तुझे राम पहुंचेगा ।

(iii) तारे - चन्द्रमा के साथ तारों का उल्लेख होना स्वाभाविक है । लोकगीतों में उन्हें सुन्दरता का प्रतीक ही माना है । संयोग में ये तारे प्रेम के क्षणों को अधिक सौन्दर्यमय बनाते हैं । वे ही वियोग विदग्धा को चिनगारियों के समान प्रतीत होते हैं । 'तारा छाई रात' बिताना नायिका के लिए कठिन हो जाता है : कहीं नवयौवना का महत्त्व तारों भरी रात से तुलना करके की गई है :-

जोबन छाई घणमली, तारां छाई रात ।

एक घुडला गीत में भी तारों का उल्लेख मिलता है :

घुडला अे सोपारयाँ छायो, तारां छाई रात ।
डीडवाणो नारेला छायो, राज उम्मेदसिंहजी रे राज ॥

४. बादल-वर्षा, बिजली

(i) बादल - राजस्थानी लोकगीतों में प्रकृति अपने वास्तविक स्वरूप में प्रकट हुई है । राजस्थान में जहाँ एक ओर बदली किसान के लिए हर्ष का विषय होती है, वहाँ मानवी भावों का प्रतीक भी बनती है । नायिका का हृदय बदली को देखकर हाहाकार कर उठता है - और वह अपने प्रिय की याद में बदली को ही उपालम्भ देती है :

बदली ए, म्हारो चाँद छिपायो,
उठ उठ बादली म्हारे घर आई ।

एक अन्य गीत में नवयुवती कामना करती है :

बादली बरसै क्यूंनी ए, बीजली चमके क्यूं नौ ए ।
म्हारा भंवर सा रा महल में चम्पो सूखे ए ॥

एक स्थान पर पिया के देश बरसने का आग्रह करती है :

मेरे पिया के देश बरस बदली मेरे पिया के देश
कुणसी दिसा से उठी रे बादली कुण सी दिशा में जाय बरसी

बादली को अपने महलों पर मंडराते देख कहती है :

आवो किण जी रें मेंला बादली रे लाल
आतो झुक झुक झौला खाय ।

'झुक झुक झोला' खाय पद में कितनी सुन्दर व्यंञ्जना है । कुछ गीतों में बादली के बरसने पर नायिका प्रिय मिलन का अनुभव कर लेती है :

प्रीतम भेजी बादली, इण में मीन न मेख,
बरसण मिस झूरै खडी, घण बिललन्ती देख ।

(ii) बिजली - चमकती गर्जना करती बिजलियाँ भी प्रिय भावों की द्योतक बनती है । 'ढोला मारु' लोक काव्य के बादलों में चमकती बिजलियाँ मारवणी को प्रिय-प्रियतमा का मिलन सी प्रतीत होती है । बरसात के उपमान - बादल, कलायण, काठल, बिजली आदि को देखने से कालिदास की अमर कल्पना 'मेघदूत' मानव हृदयों में साकार हो उठती है । पुरुष के भीतर सोया हुआ यक्ष अपनी प्रियतमा की याद में विकल हो उठता है । नारी के भीतर सोई हुई यक्षिणी अपने प्रियतम की याद में अकुला उठती है ।

बिजली का चमकना दुःखिनी के हृदय के अन्तर्जगत में प्रवेश कर प्रिय-स्मृति की चकाचाँध उत्पन्न कर देती है ।

'ऊँची तो खीवे, ढोला बीजली,
नीची खीवै छै निवाण जी ढोला ।

एक गीत में स्त्री अपनी उपमा आकाश की बिजली से करती हुई प्रिय को सावन की वर्षा की उपमा देती है :

ढोलो सांवणियों रो मेंह,
मरवण आभा केरी बीजली रे लाल ।

इसी बिजली के क्षणिक प्रकाश में विरहिणी प्रियतम को आता हुआ देखने की कामना करती है :

बिजली रै झबके देखूं, भंवर थाने आवाता जी ।

एक अन्य लोकगीत में बिजली के गिरने को नायिका ने अपने अनुकूल माना है :

नरवर गढ पर पडज्यो बीजली जी,
कोई पडज्यो अचूके ए जी ए काल
ज्यूं डुल आवे गोरी रो सायबो जी

विरहिणी कामना करती है कि उसका प्रियतम बिजली गिरे या अकाल पडे ताकि घर लौट आवे ।

५. सांझ और दिन रात :

लोकगीतों में दिन-रात एवं संध्या का भी व्यापक चित्रण है । नायिका सांझ होते ही प्रिय की याद करती है । दिन भर तो वह खेतों में काम करती रही, संध्या होते ही पिया मिलन की हूक दिल में उठने लगी -

सारे सारे दिन में खेत नपायी जी,
शाम पडया घर आयी मेरा स्याम ।
नेणा परम बिलम रह्यो
सांझ पडी दीन आथण लागो ।

इसी तरह लोकगीतों में अंधेरी रातों का व्यापक चित्रण मिलता है । भादवे की गरजती रात में नायिका प्रिय की अनुपस्थिति में डर जाती हैं । यथा -

भादुडी री रैन अँधेरी
गरज गरज मोही डर पाते ।

६. नदी, तालाब, नाडा-नाडी, समुन्दर

प्रकृति के विभिन्न व्यापक उपकरणों में नदी तालाब, समन्दर का भी अपना महत्त्व है । लोकगीतों में कई स्थलों पर इनका उल्लेख मिलता है । भरपूर वर्षा के कारण सारे नाडे-नाडी, तालाब, समुन्दर, नदियाँ सभी भर गये हैं । राजस्थान में वैसे भी वर्षा बहुत कम होती है, अतः थोडी थोडी वर्षा होने पर भी धीरे धीरे पानी भरने लगता है । पानी से भरे जल स्त्रोतों को देखकर हृदय भी लहरे मारने लगता है । जन मानस की प्रसन्नता इन लोकगीतों में व्यक्त हुई है -

भर नाडा भर नडिया ए पणिहारी हेलो
भरियां भरियां समन्दर तलाब सैणांलो
किणजी खुणाया भीम, तालाब सैणांलो

नदियों का चित्रण विरह गीतों में मिलता है । एक गीत में विरहिणी कहती है -

ढोलो नदियाँ रो नीर,
मरवण जल मांयली माछली रे लाल.....

नदी प्रिय के मार्ग में रुकावट भी है । यथा -

आडी तो गोरी नदियाँ फिर रही
बैरन हुई है बनास.....

लोकगीत :

'वीरा' गीत में हरी डाल पर कोयल का कुहकना लोकनायिका के विरह की कूक को उत्तेजना दे जाता है ।

हरियै हरियालै डाल, काली कोयल बोले राज,
बोलै बोलावै, सैयां सबद सुणावे राज ।

विवाहोपरान्त कन्या को विदा देते समय 'कोयल' गीत गाया जाता है । यथा -

वनखण्ड री ए कोयल, वन खण्ड छोड कठे चली ।
थारी आले-दिवाले गुडिया धरी,
वन खण्ड छोड कठे चली ॥

इसी गीत में कन्या के स्नेह में वशीभूत होकर सूर्य, बादल और हवा आदि प्राकृतिक शक्तियों से प्रार्थना की गई है कि उसे ससुराल में असुविधा न होने देवे । सम्बन्धियों का हृदय चीत्कार कर उठता है -

आयो परदेशी सूवटो, लेग्यो टोली में सू टाल,
कंवर बाई सिध चाली ए ।

'ओलूं' गीत में बाग-बगीचों, फल-फूलों का स्मरण कराकर कन्या की विदाई के समय दुःख व्यक्त किया है -

थारै बाबोसा बाग लगायो ए बनडी
थारै बिना कूण सींचेगौ ?
ए म्हांरै हरियै वन री कोयली !

इस तरह संस्कारों एवं नारी संवेदना का यथा स्थान चित्रण प्रकृति गीतों में सर्वत्र मिल जाता है ।

राजस्थान और गुजरात का लोक मानस अनेक रूढियों, अन्धविश्वासों का आगार है । युगों-युगों से इन विश्वासों से हमारी जीवन भक्ति को संचालित किया है । जनपद में विश्वास प्रचलित है कि छत पर बैठकर कौआ बोलता है तो कोई पाहुना (अतिथि) आने वाला होता है । भाई की याद में बैठी हुई बहिन कौआ उडा कर वीरा आने का शकुन मना रही है -

उड उड रे म्हारा काला रे कागला, जे म्हारा वीर आये द्वार ।

कागा गीतों में विरहिणी नारी प्रियतम आने का शकुन मनाती है, उसे खीर खांड के भोजन खिलाने का आग्रह भी करती है -

उड उड रे म्हारा काला काग, जे म्हारो पिवजी धर आवै,
खीर खांड रो थने थाल परोसूं, थारी सोना चोंच मठाऊ ।

विरहिणी 'सूवा' से भी पियु मिलाने का आग्रह करती है -

सुवा सुकन विचारो प्यारो कद धर आवसी रे,
कहती रामजी की नार, ऊभी सज सोलह सिंणगार ।
सुती ए गोरा दे रंग भर मेल में
सुतोडी ने आयो रे जंजाल
सपना में म्हारा भंवर मिलिया छे आज
कुरजा ए म्हारे भंवर मिलाणे ए
धम धम मेडी नीची उतरा
गई म्हारी सासुजी ने पास
सासुजी थारो जायो रे मिल्यो अधरात
झुठी ए थारा दे झूठा सा मत बोल
थारो जायो तो बसे रे परदेश
कुरजा ए म्हाने भंवर मिलावो ए
उठ ए छोरी छोकरी थु म्हारे साथे चाल
छोरी आली कुरजा रे चाला ए
कुरजा कुरजा कुरजडिया
बायां थे हो म्हारे धरम केरी बेण
कुरजा ए म्हारो स्याम मिलावो ए
ए सोवण कुरजडिया
कुरजा ए म्हाने भंवर मिलावो ए
म्हे तो वन री कुरजडिया
किसडी सुनाणी हे थारी स्याम
सेनाणी थने राजा री बताओ ए
पीला पीताम्बर पहरिया
असल अजब री ढाल
कटारी कमर कसियां में राखे
दुनाली ढोलो खंचि हैराखे
न्याय णिवेडे सगले देसरो
कुरजा बैठे तरज बिछाव
महलां बैठो मद पिवे
कुरजा ए सगला में सिरदार
कुरजा ए म्हाने भंवर मिलावो ए ।

पीठी पिसना :

सात सुहागिने मिलकर प्रथम चक्की (घट्टी) की पूजा करती है । आज कल घट्टी (हात की चक्की) के स्थान पर घर घर में मिक्सर आ गये हैं । कहीं कहीं घट्टी के स्थान पर इस आधुनिक चक्की का पूजन करते हैं । बाद में इसमें वर या वधू के लिए सुगंधी उबटण पिसते हैं । इसमें गेहूँ, चने की दाल, जव, हलदी और सुगंधी वनस्पति जैसे चंदन, गुलाब पंखुडी, हलदी, केशर आदि डालते हैं । दुल्हन को बडे प्यार से कहते यह उबटन लगा लो, सजधज लो, तुम्हारे माँ के मन में इन सबका बड़ा शौक है ।

हलदी का गीत :

म्हारी हलदीरो रंग सुरंग, निपज माळवे
हळदी अमोल पंसारी री हाट बनडैरे सिरे चढ
मुलाव लाडलाडीरा बाबाजी, मायडर मन रळ
ब्यारी मायडर मन कोड, केसर केवट
ब्यारी काक्यार मन कोड केसर केवट
रायजादी इक स्वरुप हळदीसूं ना रंज
बनडी पीठडल्या दिन चार, मल मल मसळ्यो
बनडी काजळीओ दिन चार नैन घुळायल्यो
बनडी मेंदडल्या दिन चार हात रचायल्यो
बनडी चावलीया दिन चार रुच रुच जिमल्यो
बनडी पानडल्या दिन चार ओठ रचायल्यो
बनडी न्हाय धोय बैठी बाजोट सदा ये सुवावनी
बनडी काई मांग गळ्हार काई दात्यो चुडलो
म्हें तो परणाला सजनारा जोद बे म्हार शिगचढ
बनडो न्हाय धोय बेठयो बाजोट सदाही सुवावणो
बनडो कोई मांग शिर पाग शिर शेवरो
म्हे तो परणु सजणारी धीय बा म्हार शिगचढ
बनडो न्हाय धोय बेठयो बाजोट सदाही सुवावणो
बनडो कांई मांग शिर पाग काई शिर शेवरो
म्हे तो परणु सजणारी धीय बा म्हार शिगचढ
बनडी तोरण तारारी रात क्युं कर भानसी
म्हारा सीमरथ बाबाजी साथ बल बल भानस्यां
बनडो बनडी ईदक स्वरुप, क्युं कर निरखसी
म्हार गेणारे डाबोजी हाथ बल बल निरखश्यां ।

मेरी हलदी का रंग बडा सुरंग है । मेरे खेतों में उपजी हैं । उसे दुल्हन के पिताने तैयार किया है । माँ और काकी के मन में बहुत उत्साह है, दुल्हन का रूप इससे बड़ा सुहावना होगा । वो दुल्हन

से कहते हैं अब शादी के दो चार दिन रहे हैं, तुम हल्दी लगाओ, नैनों में काजल, हाथों में मेहंदी लगाओ, मुख में पान का बिडला चबालो, और तुम क्या चाहती हो, गले में हार और हस्तीदंत का चुडला ? बनडी कहती है वो तो मुझे मिलेगा ही क्योंकि आज मैं सजन के साथ विवाह बंधन में बंध रही हूँ । नहा धोकर दुल्हा भी बैठा बड़ा सुहावना लग रहा है । दुल्हे राजा तुम क्या चाहते हो शिर पे सेवरा और पगड्डी चाहते है ? उसका भी उत्तर वो ही है । मैं तो बस मेरी सजनी के साथ विवाहीत होना चाहता हूँ । परंतु रात में कैसे जाओगे । मेरे समर्थ पिता मेरे साथ है । दुल्हे राजा तुम बनडी का रूप कैसे निरखोगे । मेरे पास गहनों का डिबा है । उसे देकर निरखेंगे ।

पीठी लगाना :

वर या वधू को मंडप के नीचे चौरंग पर बैठाते हैं । उन्हे पीठी लगाते समय बिनायकजी के रूप में भांजा या भतीजे को साथ में बैठाते हैं । हल्दी लगने के बाद वर या वधू घर के बाहर नहीं जा सकते । इसके पीछे वैज्ञानिक कारण है - हल्दी लगाकर धूप में जाने से रंग काला होता है ।

हलदी (पीठी), उबटन में सुगंधी तेल डालकर उसे मिलाते हैं । उबटन की तरह ही अपने लाडलों के लिए माँ सुगंधी तेल बनाना चाहती है । इसीलिए वह गाँव के प्रसिद्ध तेली को बुलाती है - इस संबंधित इस प्रकार का गीत है ।

सुन सुन जोधाणारा तेली
धाणी केसरन किस्तूरजी
माय घालू जायफळ न जावंत्रीजी
माय घालू माखन मीसरीजी
वो तेल नवल बनीरे अंग चढसीजी
दमडा ब्यारा बाबाजी भर देसीजी
लेखो ब्यारा माऊजी कर लेसीजी

हे जोधाना के तेली, तुम तेल में केसर, कस्तुरी जायफळ, जावंत्री (सुगंधी वनस्पति), मक्खन, मिसरी (शक्कर) डालना । यह तेल वर वधू लगानेवाले हैं । तुम मूल्य की चिंता मत करना । वधू के पिता तुम्हारा दाम चुका देंगे । माँ उन्हें बता देगी इतने अधिक दाम क्यों लगे । सात सुहागने मिलकर पीठी लगाती है ।

सवाग कामन :

इन गीतों में वधू अपने सुहाग की कामना करती है । प्रस्तुत गीत में वधू गणेशजी को प्रार्थना कर रही है, मेरा सुहाग हमेशा अमर रहे ।

बनड़ी बैठी गजानन पास, गणपत पूरी करजो आस
म्हारा मनडारे में लागी एक आसजी म्हारो
अमर राखीजो सवागजी ।
मैं तो माँगू वर एकजी, म्हारो अमर राखीजी सवागजी ॥

म्हारी चुनरी लाल म लाल, उसपे तारों की बहार
म्हारा चुनरी रो रंग कदियन जायजी ॥ म्हारो अमर राखीजो सुवागजी
म्हारी मेंदी लालम लाल, मैंने डोरे काढे सात
म्हारा मेंदी रो रंग कदियन जायजी ॥ म्हारो अमर राखीजो सुहागजी
हाथो में कंगना की खनकार, पाँवों में पायल की झंकार
म्हारा मांगरो सिंदूर भळकदार जी ॥ म्हारो अमर राखीजो सुवागजी
जैसे राम सीता की जोडी, वैसे बना बनीकी जोड़ी ।
आ जोडी थे इबछळ राखजोजी । म्हारो अमर राखीजो सुवागजी

बनडी (वधू) गणेशजी के पास बैठकर उनसे प्रार्थना करती है, मेरा सुहाग अमर रहे । मेरी चूनर लाल है उस पर तारों की बहार है । मेरे इस चूंदड़ का रंग कभी फिका ना पडे । मेरी मेहंदी रची हुई है, मेरे हाथों से मेहंदी का रंग कभी उतरे नहीं । मेरे हाथों में सदा कंगना की खनकार रहे । और पैरों में सदा पायल की झनकार रहे । मेरे माँग का सिंदूर हमेशा चमकता रहे । जिस तरह राम और सीता की जोड़ी अमर है, उसी तरह हमारी जोडी अखंड रहे ।

वधू वर के सभी बुजुर्गों से – लोगों से वह सुहाग का आशीर्वाद लेती है । गीत इस प्रकार है ।

बनड़ी सवाग मांगन चाली अपना बाबाजी रे दरबार
माता देवो नी सवाग, भोळी भाळीनं सवाग
पियर पूरीनं सवाग, अखंड कंवारीन सवाग
ऐ माँ मैं क्या जाणूं कामण ऐसा गोड लाग्या
कामन लाग्या ओ राईभर, कामण लाग्या ओ सूरजमल
इंदली बिंदली से गुळ लाग्या, अणवट बिछिया से गुड लाग्या
मेंदी मोळी से गुड लाग्या ।
ऐ माँ मैं क्या जाणू कामण ऐसा गोड लाग्या ।

वधू सुहाग माँगने अपने पिता और काका के दरबार में जाती है । माँ, काकी, भुआ, मासी, भाभी सभी से वो सुहाग की माँग करती है और कहती है इस तुम्हारी भोली बच्ची को सुहाग का आशीर्वाद दो । मैं नहीं जानती थी सुहाग का कामण इतना मिठा होता है । बिंदी, काजल, टिकी, चुडा, चूंदड, मेहंदी, बिछीया सभी मुझे गुड के समान मिठे लगते हैं । यहाँ नारी के सौंदर्य के प्रति आकर्षण के साथ साथ सुहाग की मंगल कामना के भावों का उद्रेक होता है ।

आशीर्वाद और शिक्षा के गीत :

इन गीतों के माध्यम से माँ अपनी बेटी को विवाह के बाद उसे किस परिस्थितियों का सामना करना पड़ेगा, और इस परिस्थिति में उसका आचरण किस तरह का हो यह स्पष्ट करते हुए कहती है, अब ससुराल ही तुम्हारा घर है । वही तुम्हारे सुख दुःख का सहारा है ।

आई सासराळी पाळ झिनों घुँघटो निकाल
उड़ता पल्ला न सम्हाळ
जीवन मरण सुख दुःख रो एकन आसरो
लाज रो लजवंत आयो सासरो
सरबर बोल सुवरो ज्यू बागा बोल मोर
मधुरी बाता मोहनी थे सिखिया ओ गीणगोर
थानं खिलखिल हँसावे थाने हिरणी पाठ पढ़ावे
पगरा गुगरा सिखावये बाई धिमी धिमी चाल ॥२॥
बाबूल निरखे आँगणो कोई बीरो जीवे बाडी
जामण निरखे सुनी होसी सखियारी फुलवारी
थानं सासुजी बुलवाया थान देवर लेवण आया
था बिन सुनो राता रोज सूनो जंग जंजाळ ॥३॥
दिन भर करजो चाकरी रोज निवाजो सीस
दुधा न्हाजो पूता फळजो, शुभ लिजो आसिस
थान दिवरानी चिडासी, थाने जेठाणी लडासी
ननदल करसी मसकरी, कोई सुसराजी लेसी लडाय ॥४॥

ससुराल की चौकट आ गई है । अब झिना (थोडा) घुँघट निकालो, उड़ते हुए पल्लो को संभालो । तुम्हारा ससुराल ही अब तेरे जीवन के सुख-दुःख, जीवन-मरण का आसरा है ।

जिस प्रकार सरवर में तोता, जैसे बागों में मोर बोलते हैं उसी प्रकार हमें तुम्हारी मिठी बातें बहुत प्यारी हैं । तुम्हें हँसना सिखाया, हिरणी जैसी चाल सिखायी, परंतु अब ये पग के घूंघरु तुम्हे धीमी चाल सिखाते हैं ।

तुम्हारे पिता, भाई सभी बडे उदास है, तुम बिन सखियों की फुलवारी सूनी हो गई है । परंतु ससुराल से बुलावा आ गया, देवर लेने आये हैं । तुम्हारे बिन रातें सुनी लगती है, पूरा जग सुना लगता है ।

तुम वहाँ दिनभर काम करना । सबके सामने सर झुकाना, तुम्हें दूधो न्हाओ पूतो फलो का आशीर्वाद सबसे लेना है । कभी तुम्हारी दिवरानी तुम्हारी मस्करी करेगी परंतु जेठाणी लाड़ भी लड़ायेगी । ननंद चिड़ायेगी परंतु ससुरजी लाड़ करेंगे । तुम्हारे जीवन में सुख दुःख दोनों आएंगे परंतु ससुराल ही अब तुम्हारे जीवन का आसरा है ।

माँ अपनी बेटी को आशीर्वाद देती है और कहती है, अब नए जीवन में तुम अपने नए संसार का निर्माण करो । तुम ससुराल में सद्व्यवहार करना जिससे तुम्हारा भाग्य निश्चित ही उज्ज्वल होगा । गीत इस प्रकार है ।

अब तो बाई सासरीये जाओ, नयो संसार बसाओ
मायड देव थान आशिपडी
पाल पोस तन मोटी किनी हो गयी आज परायी
दूर देस को हंसो आयो ले गये थान उड़ाई

हंसारो सम्मान करीजे, सदा केणामं रईजे ॥१॥
सोळा बरस की इन घरमतू बिछड़ रही है आज
जीव घणो दुःख पावे पणं इनरो नहीं इलाज
बेड़ी आज पड़ी थारा पगम, आगी ह रीत जगमें ॥२॥
तनमनशु पति सेवा करना, पेलो थारो काम
नारी धर्म निभाओ बाई, राजी होसी राम
सबशुँ मिठी बात करिजे झगडाशूँ दुरी रइजे ॥३॥
सासु थारी माता है, ससुरो पिता समान
देवर जेठ, थारा भाई सरीसा राखीजो ब्याको मान,
काण कायदाशुँ तू रईजे, चोकी तू शोभा लिजे ॥४॥
दिवर जिठाण्याशूँ मती करजे बाई तू तकरार
नणंदल बाई शुँ राखिजे प्रेम को व्यवहार
खर्चो सोच समझकर करिजे, फॅशन में तू मती पडजे ॥५॥
ध्यान लगाकर काम करीजे, मनमें रखजे सबर
जबान पर लगाम राखजे, आख्यामें शरम राखजे ॥६॥
मायड देव आशिष लाडली, हो थारो अमर सुहाग
हितकी बात सुनकर चमक्या थारा भाग
बिना बात की जीद मती करिजे, सगळाशुँ राजी रईने
मायड देव थान आशीषडी ॥७॥

बनी बना के साथ घुमना चाहती है । अपने मारवाड (राजस्थान) की याद उसे आती है । यहाँ इस गीत में बनी बना को मारवाड जाकर वहाँ के रंग में रंगने का मजा लेने के लिए कहती है ।

मारवाड चालो बना मन भटके
काकडी मतीरो खावाँ खूब डटके ।
काकडी मतीरा खावाँ बाडीवाला खेत में
आपा दोनो चोपट खेल ठंडी वाळु रेत में ।
कुण हव्या कुण जीत्या पण करके ॥१॥
बाजरारो सोगरो गवार फळीरो साग
उपर घी की धार बनाजी जिमा दोनूं साथ
ब्यावर का तिली उपर मन ललचे ॥२॥
आगरारो घागरो चुंदड बिकानेर की
पाली रा पोमचा चूडी अजमेर की
जयपूर का पायल ल्यादे झटके ॥

बना मारवाड चलो । वहाँ चलकर ककड़ी और मतिरा (तरबूज) खूब खाएंगे । वहाँ की ठंडी रेती में हम खेलेंगे । बाजरी की रोटी और गँवार फली के साथ घी लेकर दोनो साथ में भोजन करेंगे ।

मेरे लिए तुम जल्दी से आगरे का घागरा और बिकानेर की चूंदड, पाली का पोमचा (ब्लाऊज) और अजमेर की चूडी लाकर देवो । मैं मारवाड जाना चाहती हूँ ।

यह लाड में पत्नी मनचली बनी अपने बने को कुछ ज्यादा ही ऐंठती है । वह उससे नई नई माँगे करती है । पर आखिर बना भी उसे कह देता है मेरे कुल में है वही माँगो । गीत इस प्रकार है ।

बनाजी अंगुरका मेल चुनाय देवो, पडदा लगाय दो दाडम दाखरा
बनीये कुल में हुवे सोई मांगा लो, पडदा नहीं लागे दाडम दाखरा
बनाजी धरतीरो घागरो सिलाय देवो, मगजी लगाय दो चलता रेल की ।
बनी ये कुल में हुवे सोई माँगलो मगजी नहीं लागे चलती रेल की ।
बनाजी अंबर को ओढणो सिलाय देवो, गोरो लगाय दो चमकत बिजली
बनी ये कुल में हुवे सोई माँग गोरो नहीं लागे चमकत बिजली
बनाजी समंदर में सेज बिछाय देवो तकिया लगाय दो मगरमच्छ का
बनी ये कुल में हुवे सोई माँग तकिया नहीं लगे मगरमच्छ का

बना मुझे अंगुर का महल बना दो, दाडम दाख (अनार के बिज) का पडदा सिलवा दो । धरती का घागरा बनाकर उस पर चलती रेल की झालर लगा दो । अंबर (आकाश) का ओढणी बनाकर उस पर बिजली का गोटा लगा दो । समुद्र में सेज बिछाकर मगरमच्छ के तकिये लगा दो । बना उसे बडे सब्र से समझाता है यह सब उसके वश की बातें नहीं है । मेरे कुल में है वही तुम माँगो तो मैं सहर्ष दे दूँगा ।

एक गीत में बनी बडी चतुराई से बने को उसके परिवारजनों की शिकायत करते हुए उसे अपने परिवार से अलग होने के लिए मनाती है । परन्तु उतनी ही चतुराई से यह राजस्थानी युवक उसे मना लेता है । और कहता है, हम इन लोगों से अलग कैसे रह सकते है ? यह संभव नहीं है ।

दुल्हन का श्रृंगार :

दुल्हन भी सजधज कर तैयार है जिसे देखकर घरके सभी लोग बहुत हर्षित हो गए हैं । इसका वर्णन इस गीत में हैं ।

बनी का सिणगार देख घर का सबजन हरख्या है ।
बिजली चमकें फूलो में क्या नजर लागे वाहवा ! नजर लागे
सिस बनी के बिंदीया सोवे, हिरा उणरा चमके है,
हिरा उनरा चमके सुसराजी नजर कढावे, वाहवा ! नजर कढावे
नाक बनी के नथणी सोवे, मोती उनरा चमके है ।
मोती उनरा चमके सासुजी मन मुळके वाहवा ! मन मुळके
हाथ बनी के मेहंदी रची है, चुडला उस पर सोवे है ।

चुडला उस पर सोवे नणंदल मन मोहे वाहवा ! मन मोहे !
बनी के पगारा पायल छुम छुम नाच नचावे है
छुम छुम नाच नचावे, साथे देवर नाचे वाहवा ! देवर नाचे
बनी की आँखो का तारा फूल गुलाबी उमल्या है
फूल गुलाबी उमल्या, बनासा मन भूल्या वाहवा ! मन भूल्या ।

दुल्हन के श्रृंगार को देखकर सब लोग मोहित हो गये । जिससे बनी को नजर लग गयी । बनी के माथे पर बिंदीया सुहानी लग रही है उसका हिरा चमक रहा है, ससुरजी उसकी नजर उतारते हैं । बनी के नाक में जो नथनी है उसके मोती चमक रहे हैं जिसे देखकर सासु मन ही मन मुस्कुराती है । बनी के हाथों में मेहंदी रची है । मेहंदी से रचे हाथों में शादी का चुडला बड़ा सुहाना लगता है जिससे ननंद का मन मोहित होता है । बनी के आँखों में लज्जा है, जिससे उसके मुख पर लालीमा आ जाती है । उसे देखकर दुल्हा सब कुछ भूल जाता है ।

भारतीय संस्कृति में सोलह श्रृंगार बताये हैं । परंतु राजस्थान के विवाह में गीतों में मेहंदी और चूंदड़ के कई गीत गाते हैं ।

मेहंदी का गीत :

१. **मेहंदी राचणीरो रुख लगावो रसिया**
जडावरो टीको म्हारा सुसराजी घडाया
सासुजी लाय पहनाया रसिया ॥१॥
जडावरी कंठी म्हारा जेठसा मुलाया
भाभीजी लाय पेराया रसिया ॥२॥
जडावरो मुठयो म्हारा नणंदोईसा मुलाया
बाईसा लाय पेराया रसिया ॥३॥
फूल गजरा म्हारा देवरसा मुलाया
दिवराणी लाय लगाया रसिया ॥४॥
ताराजडी चूंदड म्हारा माऊजी मुलाया
बिराजी लाय ओढ़ावे रसिया ॥५॥
सात सहेल्या मिल मेहंदी लगाई
राजिंद फिर फिर निरखे रसिया ॥६॥

राचणी (ज्यादा रंग चढ़नेवाली) मेहंदी का पौधा लगवा दो । मेरे ससुरजी ने मेरे लिए टिका (माथे का आभूषण बोर) बनवाया है । और सासुजी ने पहनाया है । मेरे जेठ ने गले की कंठी बनाई है जिसे जिठाणी ने पहनाया है । मुठ्या (सोने की लाल चुडियाँ) नंदोई ने बनाई है और ननंद पहनाती है । देवर गजरे बनवाते हैं । देवरानी लाकर पहनाती है । चूंदड़ माँ बनाती है, भैया ओढ़ाते है । सात सहेलियाँ मिलकर मेरे हाथों में मेहंदी लगाती है, जिसे मेरे पिया बार बार निरख रहे हैं ।

मेहंदी का एक और गीत :

अच्छी राची सवागन मेहंदी रंग राचणी
मांडया मांडया ए सवागन थारा हाथ
महेंदी रंग राचणी
मेहंदी बायी बालुडा री रेत
प्रेम रस मेहंदी राचणी
मेहंदी सींची सींची जलजमनारे तीर
मेहंदी सींची सींची काचा दूध सुं
प्रेम रस मेहंदी राचणी
मेहंदी चूंटी चूंटी कालजा री कोर
मेहंदी पीसी - पीसी चाळी के रे पाट
मेहंदी भीजे भीजे कटोरे के बीच
मेहंदी मांडी मांडी म्हारी छोटी बेन
मेहंदी निरखे निरखे ननंद बाई रा वीर
कुण मांड्या ए सुहागन थारा हाथ
थारा हाथ म्हारे हिवडे उपर राख
थारा उपर वारु पन्ना जुहार
प्रेम रस मेहंदी राचणी.

प्रेम रस के कारण सुहागन की मेहंदी बहुत रची है । यह मेहंदी हृदय से लगायी जिसे बड़े प्रेम से सिंची हैं । फिर उसके पत्ते तोड़े, उसे पीसा, छाना, भिगोया । यह मेहंदी छोटी बहन ने लगायी और पिया निरख रहे हैं । उसके रचे हुए हाथ देखकर पिया उसके हाथ अपने हृदय पर रखते हैं और उस पर से हिरे पन्ने वारते हैं ।

चूँदड़ का गीत :

चूंदड़ लाल रंग की राजस्थान की विशेष साड़ी होती है ।

राता फुला रींगणी
कोई धोळा जी जायल रा फूल रातडल्या रंग चूंदड़ी
घर आया सूरज जी पूछे गोरी ए
थाने प्यारो कुण ? रातडल्या रंग चूंदड़ी
सावागन ए थारो प्यारो कुण रातडल्या रंग चूंदड़ी
बाळपणे म्हारी मायड प्यारी,
पछेजी म्हारा जळहर बाप रातडल्या रंग चूंदड़ी
खेलतडा म्हारो बेना प्यारी,

पछे जामण जायाबीर रातडल्या रंग चूंदड़ी
चुडला चुंदड़ सोवे म्हारे, केसरियो म्हारा मांग सिन्दूर
रातडल्या रंग चूंदड़ी ।

चूंदड़ पहननेवाली सुहागन तुम्हे सबसे प्यारा कौन है ? वो कहती हैं, बचपन में मुझे माता प्यारी थी फिर जन्मदाता पिता । खेलने की उम्र में मुझे बहन प्यारी थी फिर भैया । परंतु अब मेरे माँग का सिंदूर मेरे केसरिया सायबा मुझे सबसे अधिक प्यारे लगते हैं ।

स्तंभ रोपन :

कन्यादान में सर्वप्रथम स्तंभ रोपन होता है । कन्यादान का स्थान निश्चित कर भूमि में एक गढ्ढा करते हैं । वहाँ भूमि, वराह, और अनंत (शेष भगवान) की पूजा करते हैं । उसके पश्चात् वहाँ स्तंभ रोपन होता है ।

''थंब का उपर इदुंणी रखकर थंब ने घास, आम की डाली, गुलर की डाली, मूंज की डोरी सूं बांधकर इड्डोणी या टोकरी में कलश रखनो ।'' और मूंग धने से स्तंभ का पूजन करते हैं । आज कल स्तंभ रोपन भूमि के अंदर नहीं होता । कारण आज कल विवाह घर के प्रांगण में नहीं होते । मंगल कार्यालय में होते हैं । मंगल कार्यालय में गढ्ढा बनाकर उसमें स्तंभ रोपन करने नहीं देते । इस कारण कोई बडे पात्र या डिब्बे में मिट्टी डालकर उसमें स्तंभ रोपन किया जाता है । स्तंभ रोपन का उल्लेख गीतो में भी मिलता है । गीत इस प्रकार है :

सोनेरी बाटकी में केसर धुळाओ मायडम्हारी अे ।
उडतो उड़तो हरियो सुवरीयो बेठो डाळ दे ।
सोन चिडकल्या बागा री मैना सिन गारो ये ।
शुभ घडी आई कदली थांब रुपाया ।
कुम कुम छाट म्हे तो लगन लिखवा ।
आंगण में गीत गावे भावज बेना ये ।
गज मोतीयन से चंदन चौक पुंरावा ।
सात सवागण रळ मिल मंगल गावा ।
रंग बिरंगा फूलडासे पगड्या सारे जग जाणसी ।
जीवन की रांगोळी में इंद्र धनुष्य ताणसी ।
बरसाउतो ये हिबडाने इमरत रससी धार ।
घोडी चढकर हरियाली बनो आयो द्वार ।

सोने के कटोरी में केशर मिलाया है । पोपट की उपमा वर को दी गयी है और वधू को मैना की उपमा दी गयी है । वर आया है वधू सजधज कर आयी है । कुंम कुंम के छिंटे से विवाह पत्रिका लिखी है । आंगन का चौक मोती से सजाया है । सभी सुहागन मिलकर मंगलगान कर रही है । ऐसे शुभ समय में थांबरुपाया (स्तंभ रोपन) किया है ।

सप्तपदी :

सात पग साथ चलने से मैत्री होती है ऐसा शास्त्र वचन है ।

प्राहुः सप्तपद मैत्र बुधा : तत्वार्थ दर्शिन

सात कदम साथ उठाने के कारण वर वधू को समझाता है ।

१. अन्न के लिए एक कदम उठाने वाली हो ।

२. बल के लिए दूसरा कदम उठाने वाली हो ।

३. सम्पत्ति के पोषण के लिए तीसरा कदम उठानेवाली हो ।

४. आनंदमय होने के लिए चौथा कदम उठाने वाली हो ।

५. सन्तान के लिए पाँचवा कदम उठाने वाली हो ।

६. ऋतुओं नियम पालन के लिए छठा कदम उठाने वाली हो ।

७. तू मेरी मित्र बनने के लिए सातवाँ कदम उठाने वाली हो ।

विवाह संस्कार में इसीलिए सप्तपदी का विशेष महत्त्व है । कुछ पंडित फेरे (अग्नि-यज्ञ) की परिक्रमा में ही सप्तपदी मानते हैं । कुछ पंडित फेरे और सप्तपदी अलग कराते हैं । फेरे के समय राजस्थानी महिलाएँ गीत गाती है । वह बडा मार्मिक और करुणामयी गीत है ।

अबलक छबलक पेलोजी फेरे
पेल तो फेर ए बनडी दादाजीरी पोती
दूज तो फेर ए बनडी बाबाजीरी बेटी
अबलक छबलक इगण्योजी फेरो
इंगण तो फेर ए बनडी मांमारी भाणेजी
चौथ व तो फेर ए बनडी बिराजीरी बेनड
पांचवतो फेर ए बनडी काकारी भतीजी
छठो तो फेर ए बनडी फुफारी भतीजी
जिजाजी री साळी मासाजीरी भाणेजी
सातवतो फेर ए बनडी हुई रे पराई ।

दादा, बाबा, मामा, भाई, माँसा, फूफा इन सबकी लाडली तूं आज पराई हो गयी । इस समय लड़की को तीन फेरे में आगे करते हैं । और चौथे फेरे में लड़का लड़की के आगे रहता है । गीत गाते समय सभी की आँखे सजल हो जाती हैं ।

सात वचन :

राजस्थानी समाज में वधू वर से सात वचन माँगती है - उनके पश्चात् वर वधू को एक वचन माँगता है और दोनों की संमति होने के बाद विवाह संस्कार पूर्ण होता है - वधू वर से कहती है

१. तीर्थ यात्रा, यज्ञ, अध्यापन आदि धार्मिक विधि में मुझे साथ बैठना होगा ।

२. जैसे आप अपने माता पिता और घरके बड़े लोगों का आदर करते हो उसी प्रकार मेरे माता पिता और बड़ों का आपको आदर करना पड़ेगा ।

३. आज से कुटुंब रक्षा और पालन पोषण की जिम्मेदारी और देश की संस्कृति और गौरव की रक्षा का वचन दो ।

४. मंदिर, बगीचा, कुआँ आदि परोपकार के लिए जो आप पैसे खर्च करेंगे उसमें मेरी सलाह लेने का वचन दो ।

५. घर की आमदनी और खर्च मेरी सलाह से करना घर के सभी कार्य में सहभाग से ही होंगे वचन दो ।

६. आपको किसी कारण (पढाई, व्यापार आदि) शहर से बाहर जाना है तो मुझे बताकर जाना होगा । मेरा अपमान हो ऐसा कोई कार्य आप नहीं करोंगे ।

७. पराई स्त्री को माँ या बहन मानना । और जुआ, दारु से दूर रहकर मेरे साथ हरदम प्रेम से बात करने का वचन दो ।

वर वधू से वचन माँगता है । तुम भी मेरे माता-पिता परिवार का आदर और सेवा तथा गृह कार्य और पतिव्रत निभाने का वचन दो ।

ससुराल में अपने पिया के बिना रहना किसी भी नारी के लिए बहुत कठिन होता है । इसलिए जब उसका पति उसे छोडकर परदेश जाना चाहता है, तो वो उसे रोकना चाहती है । यही भाव बडी निंबडी नामक गीत में है । इस गीत में उसका पति मातृभूमि की रक्षा हेतु निकला है । राजस्थान का नवयुवक देश की रक्षा हेतु निकला है । उसकी पत्नी उसे रोकना चाहती है । परंतु वो उसे समझाता है, मेरा जाना आवश्यक है । गीत इस प्रकार है ।

उदयापूस्सूं ढोला बीज मंगाय ठाण रुपाओं
आलीजारी लिंबडीजी म्हाका राज ।
माखनीयारो ढोला पाळ बंधाय, दुधान सिंचावो
आलीजारी लिंबडीजी म्हाका राज ।
उगी लिंबडली घेर गुमेर, कोईर मती तोडो,
आलीजारी लिंबडीजी म्हाका राज ।
नणंदबाई तोड्या लिंबडीरा पान
देवरीयो छंदग्याळो तोडी काचा कांबळीजी म्हाका राज ।
ननंदल बाईन ढोला सासूजीरो लाड,
देवरीयो छंदग्याळो माऊजीरो लाडलोजी म्हाका राज ।
बेठा छेला मारु दुकानारे माय
कागदीया लिख आया इंदरगडरी चाकरीजी म्हाका राज ।
कागज सुंदर गोरी बाचोयन जाय,
छाती भरीजो हिवडो उलटेजी म्हाका राज ।
छाती छेला मारु हिरासू जडाय
हिवडो जडावो माणीक मोत्यासूंजी म्हाका राज ।
पेली ओळग ढोला ससुराजीन मेल,
आबके उन्हाळे चांदन चोक मेजी म्हाका राज ।
ससूराजीन गोरी मेलयोयन जाय,
म्हारा न सरिसा वे डिकाजी म्हाका राज ।

आबके चोमासो रंगभर मेलामेंजी म्हाका राज ।
जेठजीरी गोरी बडका बोली नार
उठने परभाते हमसूं कळो करेजी म्हाका राज ।
इगनी ओळग ढोला देवरजीन मेल,
अबके सियाला, सुखभर सेजमेजी म्हाका राज ।
देवरजीरी गोरी बाळी भाळी नार
उथोडो कुमळावे गुलरा ऊलज्युंजी म्हाका राज ।
चोथी ओळग मारुजी नणंदोईजीन मेल
अबके तिज्यान भेवर घर बसोजी म्हाका राज ।
नणंदोयारी गोरी जात कुजात
ननंदली कहीये सावणीयारी तिजणीजी म्हाका राज ।
पांचवी ओळग ढोला हाळीकान मेल
अबके तिजाने मेळ पिंडो पासरयाजी म्हाका राज ।
हाळीकाने गोरी मेल्योयन जाय
ब्यारा बायोडा मोती निवजेजी म्हाका राज ।
छही ओळग ढोला राईकाने मेल
अबके तिजाने हिंडो खेल्यांजी म्हाका राज ।
सुता छेला मारु सुखभर निंद
रतन राईको हेलो पाडीयोजी म्हाका राज ।
मरजो राईका थारोडीजी नार
भंवर बिछवा थे धालयाजी म्हाका राज ।
मती देवो सुंदर गोरी राईकाने गाळ
थाराए सरीसी राईकारी गोरडीजी म्हाका राज ।
हंस हंस सुंदर गोरी देयो म्हान सीख
जीव चित लागी इंदरगाडी चाकरी म्हाका राज ।
खीचन वेला मारु दियोयन जाय
हिवडो भरीजे छाती उलटेजी म्हाका राज ।
छाती सुंदर मोरी रतना जडाय
हिवडो जडावा माणक मोत्यांसूंजी म्हाका राज ।

उदयपूर रे ढोला (प्रियतम) बिज मंगवा दो, और मेरे खेतो में निंबडी लगा दो । मैंने मखन्न की पाळ बंधाई और दुध से उसे सिंचा । निंबडी बडी घेर घूमेर आयी ।

ननंद ने और देवरने उसके पत्ते तोडे हैं-ननंद को उसके ससुराल भिजवा दो । देवर को इंदरगढ की चाकरी में भिजवा दो । ननंद तो सास की लाडली है और देवर माँ का दुलारा ।

जब इसके पति दुकान में बैठे हैं तो इंदरगढ से नौकरी के लिए पत्र आता है । यह पत्र पढा नहि जाता क्योंकि अब पति को चाकरी के लिए जाना होगा । पत्नी कहती है तुम ससुरजी को भेज

दो । पति कहता है वो मेरे जैसे युवक नहीं । फिर जेठजी को भेज दो । उसकी नार तो बडी झगडालु है । सबेरे होते ही वो मेरे से लढ पडेगी । ठीक है तो देवर को भेज दो । देवर की नार बहुत भोली है, उसे भेजा तो वो मुरझा जायेगी । तो ननंद को भेज दो । हम इस बार तीज पर साथ में रहेंगे । साथ में झूला खेलेंगे । ननंदोयी को कैसे भेजुं ? वो तो पराया है । आप किसान को भेज दो । उसको भेजूँगा तो खेतों में अनाज कौन उगायेगा ? तो राईका को भेज दो । दोनों आराम से सो जाते हैं । तभी राईका उसे आवाज देता है । गोरी गुस्से में आती है । राईका तेरी नार मर जाय । पति उसे समझाता है, अरे राईका को गाली मत दो । उसे भी तेरी जैसी पत्नी है । तुम मुझे ही इंदरगढ चाकरी के लिए हंसते हंसते बिदा करो । जिससे मैं वहाँ की नौकरी दिल लगाकर कर पाऊँ ।

गौरी (पार्वती) को बेटी के स्वरुप मानकर गौर पर शादी के गीत भी (झाला-वारणा) गाते हैं ।

गण गौर पूजन के समय गौर माता से प्रार्थना करते हैं -

गौर ए गणगौर माता खोल किवाडी
बायर उभी थाने पूजनवाळी
पूजो ए पूजाऱ्या बाया, कांई कांई मांगो
मांगा म्हे तो अनधन लाछर लिछमी
कान्ह कूँवर सो बीरो मांगा राई सी भोजाई
जळभर जामी बाबल मांगा, राता देई मांयड
बडो दुमालिक काको मांगा चुडला वाली काकी
फूस उडावण फूफो मांगा कूडो धोवण भूवा
काजल्यो बहनोई मांगा सदा सुहागन बहना
इतरो तो देई माता गौरज ए, इतरो सो परिवार ए
देई तो पियर सासरौ ए सात भायांरी जोड ए
परण्यां तो देई माता पातळा ए सारं मे सिरदार ए

ऐ गौर माता तुम अपना द्वार खोलो । बाहर तुम्हे पूजनेवाली खड़ी है । गौर माता उन्हें वर मांगने कहती हैं । तो यह राजस्थानी ललना अपने पूरे परिवार का सुख मांगती है । राजस्थान में परिवारिक संघटन की मजबूती के पीछे यही संस्कार महत्त्वपूर्ण है । आज भी राजस्थानी परिवार जहाँ जाते हैं वे एकत्रित रहते हैं । यहाँ इस गीत में केवल पिहर के ही लोगों का सुख मांगा नहीं तो ससुराल में भी सात भाईयों की जोड हो ऐसी कामना वो गौर माता से पहले करती है और बाद में परण्या (पति) सब में सिरदार हो ऐसी कामना करती है ।

गोर्य पूजे छे गोपी रे (गुजराती)

गोर्य गोर्य माडी, उघाडो कमाडी
तमारी पूजारी आवी रे,
गोर्य पूजे छे, गोपी रे,
ई'रे पूजारी शुं शुं रे मागे ?

दहीं मागे, दूध मागे, पूतरने परिवार,
मागे अखंड हेवातण रे,
गोर्य पूजे छे, गोपी रे,
वेळुडीनां ढगलां करीने,
पूजे छे प्रेम धरीने रे,
गोर्य पूजे छे, गोपी रे,
कंकु केसर ने अबील गलाली,
घीना दीवा लैने आवी रे,
गोर्य पूजे छे, गोपी रे
एकुं एकुं गोपी ने एकुं एकुं कान,
रास रमे भगवान रे,
गोर्य पूजे छे, गोपी रे,

प्रेमानंदे लोक साहित्य में से लिया हुआ (गुजराती लोकगीत)

'कंकावटी' (भाग-१) ना 'मोळाकत' ना व्रतसाहित्यमां गोरमानी स्तुति छे :

गोर मा गोर मा रे, ससरा देजो सवादिया
गोर मा गोर मा रे, सासु देजो भूखाळवां
गोर मा गोर मा रे, कंथ देजो कह्यागरो

ए वगेरेनी साथे घणुं खरुं मळतुं आवतुं पद प्रेमानंदना 'ओखाहरण'मांथी प्राप्य थाय छे। गौरीपूजन करतां ओखा पार्वतीजीने प्रार्थना करे छे :

गोर मा ! मागुं रे हुं तो कंथजीनां राज, कंथजीनां राज;
चांदलो, चूडो, अविचल घाटडी
गोर मा ! मागुं रे हुं तो ससरानां राज, ससरानां राज;
सासु ते मागुं भुखावडी.
गोर मा ! मागुं रे हुं तो दादानां राज, दादानां राज;
माडी रे, सदा सोहामणी,
गोर मा ! मागुं रे हुं तो जेठनां राज, जेठनां राज;
जेठाणी ते मीठा बोलणी,
गोर मा ! मागुं रे हुं तो वीराजीनां राज, वीराजीनां राज;
भाभी ते हाल हुलावती,
गोर मा ! मागुं रे हुं तो पुत्रपरिवार, पुत्रपरिवार;
वहुवर पाये रे लागती,
गोर मा ! अेटली पूरो मनडानी आश, मनडानी आश;
झाझुं तो कंईअे नथी मागती

(प्रेमानंदकृत 'ओखाहरण' सचित्र प्रत, कडवुं २६.)

गुजराती लोकगीत

जमी परवारी, पथारीअेथी ऊठी सांजे कन्याओ कमाड उघाडवा जाय, जईने मागे :

गोर्य गोर्य माडी !
उघाडो कमाडी !
हुं आवुं छुं पूजणहारी,
पूजणहारी शुं मागे ?
ढींगलियाळी घैडी मागे
पाघडियाळो पूतर मागे
देरियां जेठियांनां जोडलां मागे
दूझणियुं झोटडियुं मागे.....(१)

राजस्थानी गणगोर (राजस्थानी लोकगीत)

गुजराती लोकगीत साथे मळतुं आवतुं राजस्थानी लोकगीत :

गवर गिणगोर माता, खोल किंवाडी
बहार ऊभी थारी पूजणवाळी
पूजो अे पूजायां जाया, आसण कासण मांगां
जळहर जामी बाबो मांगां, राता देई माय
कान्हकंवर-सो वीरो मांगा, राई-सी भोजाई
सांवळियो बदनोई मांगां, सोहरा बहन मांगां
हांडा धोलण फूको मांगां, झाडू देवण भूवा

('राजस्थान के लोकगीत' प्रथम भागः पूर्वार्ध पृ-४३)

अेक ज तहेवार, अेक ज व्रत, समान भाव अने सरखा शब्दो, राजस्थानी लोकसाहित्यना भाषाभावनां नीर अेकमेकमां वहेतां हतां । पाणी अेक ज हतां, आरा ज फक्त जुदा हता ।

राजस्थान में आज भी किसी वृद्ध के मृत्यु पर समधि लोग हार और गुलाल लेकर आते हैं, गीत गाते आते हैं - गीत इस प्रकार है -

कठै सूं आई बडेरा थांने पालकी कठे सूं आया रेबीमांण
जी ओ बड़भागन आयो हलकारो, श्री भगवान रो राजा रामरो
सुरगा सू आई बडेरा पालकी दरगा सूं आया रे बीमांण
जी ओ बडभागन आयो हलकारो श्री भगवान रो
कुणजी घडावै बडेरा थारी पालकी, कुणाजी मोलावेरे वीमाण
जी ओ बडभागन हर रो हिंडोळो बडेरां थारे संग चाले
बेंटाजी घडावे बडेरा थारी पालकी पोताजी घटावे रे वीमाण
कुणजी उठावै थांरी पालकी कुणजी उठावेरे वीमाण
बेटा जी उठावे थांरी पालकी पोता जी उठावे रे वीमाण
हर हर करता बडेरा थे उठ चाल्या, तुळछारी माळ थारे हाथ

किणनै थे सूंण्या चौकी चूंतरा किणनै थै सूप्या घरबार
बेटा ने सूंप्या चौकी चूंतरा बहुआ नै घर बार
बेटा तो पोता धरां सिधाइया होज्यों थांनै बैकुन्ठारा बास
चाँवळ तो रांधा बडेरा थांनै ऊजळा असल जाळापुररी खांड
पोळी तो पोवां थांनै लडछडी कोई तीवण तीस बतीस

बडेरा घर के बडे व्यक्ति जिनकी मृत्यु हुई है, उन्हे पूछा है आपके लिए पालकी कौन बनायेगा ? विमान कौन लायेगा ? आप बडे भाग्यशाली है आपको भगवान का बुलावा आया है । स्वर्ग से पालकी आयेगी, दरगा से विमान आयेगा । बेटा पालकी बनवायेगा और पोता विमान मँगायेगा ।

तुम्हारी पालकी कौन उठायेगा ? विमान कौन उठायेगा, बेटे पालकी उठायेंगे । विमान उठायेंगे । हर हर करते बडेरे जा रहे हैं । उनके हाथों में तुलसी की माला है । आप जा रहे हो आपने चौकी चुतरा (दुकानदारी) किस के हाथ में सौंपा ? किसके हाथ में घरबार सौंपा ? बेटे को चौकी चुतरा और बहुओं को घरबार बेटे और पोते तो घर आ गये बडेरा तो वैकुंठ को जा पहुँचे । चाँवल बनाये उजले, मिठाई बनाई तीस-घरमें बडे की मृत्यु पर १२ दिन रोज मीठा भोज बनाने की प्रथा है । इसी कारण शायद बडेरे की मृत्यु में बेटे, पोते का ठाटबाट रहता है ऐसा कहा जाता है । मृत्यु अवश्य तत्व है । जो आया है उसे एक दिन जाना ही होता है । उसे स्वीकार करके ही जीवन की गति आगे बढती है । मनुष्य कितनी भी उम्र हो जाये उसको लगता है कुछ दिन और जीना है । इसी भाव का एक भावपूर्ण गीत है । गीत इस प्रकार है ।

थाने रामजी बुलावे ओ बडेरा थै माइने सूंबारे आव जावेला द्वारका
थे दस दिन भगवत धीरज धरो, म्हारा कंवरां समझाय नै लेवा
थे दस दिन भगवत धीरज धरो म्हारी माया नै लेऊ समझाय ।
थे सुनज्यो हो कंवरां अग्याकारी, म्हारो पीछे दीज्यो सुधार
थानै प्रभुजी बुलावै बडेरा थै माइनें सु बारे आव
थे दस दिन भगवत धीरज धरो म्हारी बहुवां नै देवां समझाय
सुनो थें बहुवां अग्याकारी म्हारी ताळा कूंची लेवोनी संभाळ
थाने रामजी बुलावे ओ बडेरा माइने सूं बारें आव
थे दस दिन भगवत धीरज धरों म्हारी धीवडल्यां नै देवो समझाय
सुणों थै धीवडल्या लाडकी म्हारी गुवाडी दीज्यो जगाण

प्रत्येक पंक्ति के बाद जावाला द्वारका की कडी दुहराई जाती है । बडेरा की मृत्यु होने के बाद भी उसके प्राण वहीं अटके है ऐसी कल्पना की गयी है । इसलिए बडेरे को कहा जाता है, तुम अब वहाँ से बाहर आ जावो आपका रामजी का बुलावा आ गया है । आप द्वारका जाओगे । वो कहता है तुम दस दिन धीरज धरो मैं मेरे बेटे, बेटी, बहु तुम बडे आज्ञाकारी हो तुम मेरे पीछे मेरा संसार संभालना ।

मृत्यु के तीसरे दिन तिया कहा जाता है । तीसरे दिन अस्थि संचय का रिवाज है । तीसरे दिन मृतक के कुछ नजदीकी रिश्तेदार अंत्येष्ठि के स्थान पर जाकर मृतक की हड्डियाँ चुनकर लाते

थे । हड्डियाँ चुनते समय पंडित कुछ मंत्रो का उच्चारण करते हैं । ये हड्डियाँ गंगा में विसर्जित करते हैं । घर के किसी भी बहु बेटी को हरिद्वार या गंगातट पर भेजकर अस्थियों का विसर्जन करते हैं । कई लोग नाशिक भी अस्थि विसर्जन के लिए जाते हैं ।

गुजरात में चांदोद (चाणोद) जि. वडोदरा जाकर नर्मदा मैया में अस्थि विसर्जन करते हैं ।

पारिवारिक संबधों के लोकगीत :

राजस्थान में पारिवारिक संगठन बहुत मजबूत है । परिवार में कई रिश्तेदार होते हैं । इसके आपसी संबंधो के कई लोकगीत है । सपना को अर्थ बताओसा इस गीत में इन संबंधो का नैसर्गिक उपमानों के साथ बहुत ही सांगोपांग वर्णन किया है गीत इस प्रकार है ।

सुणो जी भंवरजी म्हां ने सपनो जी आयो जी राज
सपना रो अरथ बतावोजी राज
कहो ये गोरी थांणे किण विध आयोजी राज
सपना रो अरथ बतावश्यांजी राज
हंस सरवर ढोला गाजत देख्या जी राज
मान सरोवर जळ भरिया जी राज
बागा मायला चंपल्या फूंलत देखा जी राज
फूल बीणै दो कामण्यां जी राज
पोळयां मायला हसती घूमत देख्या राज
हरी हरी दूब घोडा चरेजी राज
आंगणिये चौक पूरतो सो देख्यो जी राज
ऊपर कुंभर कळस धरियो जी राज
महला मायला दीवला लगता सा देख्या राज
दीवला री जोत सवाई जी राज
हंस सरवर गोरी पीर थांरो जी राज
मान सरोवर सासरो जी राज
बागा मायला चंपल्या वीर थांरा जी राज
फूल बीनै थांरी भावजां जी राज
पौळी मांगला हस्ती देवर जेठ थांरा जी राज
हरी हरी दूब सवासणी जी राज
आंगणिया रो चौक कंवर थांरो जी राज
कुंभ कळस थारी कुळ बहू जी राज
महला मायला दीवला कंथ थांरा जी राज
दीवला री जोत सायबणां जी
धिन धिन सुसराजी रा छावा जी राज
सुपना रो अरथ बतायो जी राज

भंवर सुनो । मुझे एक स्वप्न आया । उस स्वप्न का अर्थ बताओ । गौरी बताओ, तुम्हे क्या स्वप्न आया । मैंने स्वप्न में हंसयुक्त सरोवर देखा, मानसरोवर में जल भरा हुआ देखा । बाग में चंपा के फूल फूलते हुए देखे, दो स्त्रियाँ फूल गूँथ रही थी । द्वार पर हाथी झूम रहे थे । हरी - हरी दूब घोडे चर रहे थे । ऑगन में चौक सजाया जा रहा था, चौक के उपर कुंभ कलश रखा था । महल में दीपक जल रहा था, दीपक की ज्योति बढती जा रही थी ।

पति ने अर्थ बताया : हंस युक्त सरोवर तुम्हारा पिहर है । मान सरोवर तुम्हारा ससुराल है । बाग के चंपक तुम्हारे भाई है । फूल बीननेवाली कामिनीयाँ तुम्हारी भावजें हैं । द्वार के हाथी तुम्हारे देवर जेठ है । हरी-हरी दूब घर की बहन बेटियाँ हैं ।

ऑगन का चौक तुम्हारा कुंवर है, कुंभ कलश तुम्हारी पुत्रवधू है । महल का दीपक तुम्हारा पति है, दीपक की ज्योति तुम हो । धन्य धन्य हो ससुरजी के बेटे, आपने सपने का अर्थ बताया ।

इन गीतो में ननंद-भाभी, देवर, पति-पत्नी, बेटी, भाई-बहन, सास-बहु सभी रिश्तों से जुडे गीत मिलते हैं । ननदोई और जंवाई के गीत आज भी कई जगह गाये जाते हैं ।

बेटी अपने माता-पिता की लाडली होती है । बेटी की शादी होते ही वह ससुराल जाती है । इसलिए उसे चिड़िया की उपमा दी है । मेरी बेटी ससुराल चली जायेगी । इसलिए उसे कोई कुछ मत कहना उस पर गुस्सा मत होना, ऐसा माता पिता का कहना है । गीत इस प्रकार है ।

मत दो म्हांरी बाई नै गाळ
म्हॉरी बाई चिडोकली जी चिडोकली
आ आज अठे परभात
तडकले ठड ज्यासी जी उठ ज्यासी
सावणियेरा दिनडा चार
जॅवाईडो ले ज्यासी जी ले ज्यासी

यह लडकी जब ससुराल जाती है तो उसे अपने पिहर की याद आती है । अपने माता-पिता का लाड प्यार याद आता है । पिहर के सुख का वर्णन इस गीत में है ।

सहेल्या मन में ओळु आवे ए
मन में आवे ए सहेल्या म्हार मन में आवे
कदयक तो म्हें पीवरिया में नित उठ मौज उडाय
मायड म्हांन गले लगाती बाबोसा लाड लडाय
पोर चढया दिन माय जगाती सूती गुदडाँ माय
आँख धोय म्हारो मुखडो धोती वे पल बित्या जाय
दही मांडया करयो ए कलेवो गुडिया लीनी का
सात सहेली खेलन आयी म्हारा आँगन माय
छाक मथी माय करी रसोई दीनो थाल लगाय
जद बाबासो जीमण लाग्यो लीनो हेलो मार
सहेल्या वे दिन बीत्या ए सहेल्या ओळु आवे ए ।

सहेली मेरे मन में मेरे पिहर की बातें याद आ रही हैं । वहाँ माँ मुझे गले लगाती थी, मेरे बाबा मेरा लाड करते थे । मैं वहाँ सूरज के उगने के बाद, दिन चढने के बाद उठती थी । माँ मुझे जगाती, मुँह धोकर, दही का नाश्ता कर गुडिया को लेकर सात सहेलियों के संग आँगण में खेलती थी । मॉ छाँछ मथकर रसोई बनाती और बाबा का थाल परोसती तब बाबा मुझे भी भोजन के लिए बुलाते थे । सहेली अब वे दिन नहीं रहे, मुझे मेरे पिहर की याद आ रही है । यही लडकी ससुराल जाती है । लडकी दो कुल का उद्धार करती है । अपने माता पिता परिवार को छोडकर वह अपने पति के घर जाती है तो वहाँ के परिवार को बडे खुशी से अपनाती है । केवल अपने पति को ही नहीं, उसके परिवार के प्रति उसके गाँव के प्रति उसके मन में आदर हैं । यही भाव बंधावो नामक इस गीत में है । गीत इस प्रकार है ।

सहेल्या ए आंबो मौरियो
म्हें तो वारी हो राणाजी थांरा राज नै
जठे नीपजे हो कोडियाळी जुवार
म्हूं तो ज्यूं खांडू ज्यूं ऊजळी
वे तो उजळा हो भोळी बाईसा रा वीर
सहेल्या ए आंबो मौरियो
म्हें तो वारी हो राणाजी थांरा राज नैं
जठे नीपजे हो सांठा रो वाड
ज्यूं चूखूं ज्यूं रस भरे
वे तो रस भरिया हो बाईसा रा वीर
सहेल्या ए आंबो मौरियो
म्हें तो वारी थांरा देस ने
जठे नीपजे बाजरी रो पूंख
म्हें तो दळ दळ राधूं खीचडो
जीमावूं म्हारो सौ परवार
सहेल्या ए ऑबो मौरियो
म्हारा सुसराजी गडरा राजवी,
सासुजी ओ गिरत भंडार
म्हारा जेठ बाजूबन्द सीरखा
जेठाणी ओ बाजूबन्द री लूंब ॥
म्हारा देवरजी दाँत्यो चूडलो
देवराणी हो म्हारा चूडला री मजीठ
म्हारी नणंद कसुँबल कांचळी
नणंदोई ओ कसणारी लुंब ॥
म्हारी धियड हाथ रो मुंदडो
जंवाई हो मूंदडा रो काच

म्हारो कंवर कुळ रो दिवलो
कुळराणी हो दिवला री जोत ॥
अतरा जी गैणा उपरे
म्हारो लखपतियो ए जी सिणगार
म्हें तो वारी हो सासूजी थांरी कूंख नै
थैं तो जाया जी सैलो वाहला पूत ॥
म्हें वारी हो बवड थारी जीभ ने
बखाण्डो हो म्हारो सौ ही परवार
सहेलियाँ आम बोराया है ।

राणाजी बलिहारी जाती है आपके देश पर । धन्य है वह देश जहाँ उज्ज्वल जवार पैदा होती है । ज्यों ज्यों इस जवार को कुटती है त्यों-त्यों वह और उजली होती जाती है ।

मेरी भोली ननंद के भाई का हृदय भी इसी प्रकार उजला है । सहेलियाँ ! आम बोराया है ।

धन्य है राणाजी आपका देश । यहाँ गन्ने के खेत के खेत होते हैं । गन्ने को जितना चूसती हूँ, उतना ही उसमें रस आता है । ऐसे ही रस भरे मेरे पति है ।

धन्य है आपका देश जहाँ बाजरी उपजती है । कूट-पीटकर खीचड़ा रांधती हूँ । सारा परिवार आनंदपूर्वक उसे खाता है ।

मेरे ससुर गड के राजा है, मेरी सास तो धन का भंडार है । मेर जेठ बाजूबंद है । जेठाणी बाजूबंद की लुंब है ।

देवर हस्ती दॉत का चूड़ा है, देवराणी उस चूड़े का लाल रंग । ननंद रेशम की कंचुकी है । ननंदोई कंचुकी के कस की लुंब है ।

मेरी बेटी हाथ की अंगूठी है । दामाद उसमें जड़ा रत्न है । मेरा बेटा कुलदीपक है । तो बहु दीपक की ज्योत ।

इन सभी आभूषणों से युक्त पतिदेव मेरे सर्वश्रेष्ठ श्रृंगार है । धन्य है सासजी आपकी कोख, जिसने निश्चय ही ऐसे लोकप्रिय पुत्र को जन्म दिया है ।

बहु आपकी जिह्वा है । धन्य है जिसने परिवार के सभी व्यक्तियों की सराहना की है ।

ससुराल में सभी की सेवा करना । उनके साथ प्यार के साथ नाता जोडना, हर लडकी अपना कर्तव्य समझती है । वह यहाँ की जिम्मेदारियों को निभाती है, परंतु अपने पिता का, दादा का लाड प्यार उसे याद आता है । उसे अपने पिहर की याद सताती है । इसलिए वो काग को कहती है :

मेरे पिहर में संदेशा देना । सावन आ गया है अब मुझे बुलावो - वो अपने पिहर का पता बताकर पिहर कैसा है इसका वर्णन करती है । यह वर्णन कितना सहज और सुंदर है । गीत इस प्रकार है ।

उड रे कागा पीयर जाय
ऊँची सी मैडी लाल किवाडी

अमवारो पेड झिलोला खाय ।
चौक बुहारत भावज मिलसी
आँगण बैठ मिठासी माय
पणिया भरती बहुयड मिलसी
वीरो मिलसी झोका मांय
गाडी लयावन्ता बाबा मिलसी
मिलसी राम रमोस्यां माय
अमवा पे बैठ बोल सुनाईये
सावण आयो धीपड बुलाय

अपने बहन को लेने जब भाई आता है तो बहन को उसके लिए क्या क्या रसोई बनाऊँ ? उसकी मनुहार करु ऐसे लगता है –

एक रँधावा बीरा लापसी
दूजे रे तळा रे कंसार
तीजे रँधावा, वीरो खीचडो
चोथे चंदेले रो साग.

राजस्थानी समाज में बहु का लाडप्यार सम्मान हैं । परंतु कहीं कहीं आज भी उसे सताया जाता है । आज भी हम दहेज के लिए बहु को जलाने की घटानाएँ पढते हैं । दिन रात काम करना फिर भी उसे खाने के लिए कुछ नहीं देना ऐसे उदाहरण आज भी कहीं कहीं देखने मिलते हैं । यहीं भाव हमें कुछ गीतों में भी मिलते हैं । प्रस्तुत है गीत –

बीजोडी बीजोडी एमा झुलंण नै जाय
बाई ने दीनो सासु धानड सोवणो
सोयो सोयो मा डाल दो डाल
अधमण सोयो बाजरो
बीजोडी एमां मगरियो जाय
बाई नै दीनो सासू पीसणो
पीस्यो पीस्यो ये मा डाल दो डाल
अधमण पीस्यो बाजरो
बीजोडी बीजोडी एमां रमबा नै जाय
बाई ने दीनो सासु पोवनो
पोयी पोयी एमां जेट दो जेट
पछलो पोयो बाळु रो बाटियो
निपटया निपटया एमां देवर जेठ
निपटया ननंदा रा झुलरा
परस्या परस्या एमां मोटोडा थाळ
परस्या ननंदा रा वाटका

बीजोडा ने एमा, परस्याँ गँवारा रोट
बाई ने परस्यो बाजर बाटीयो
बीजाडाँने ए मा धोबाँ धोबाँ खाँड
बाई ने दीनी सासु चिमठी लुणरी
बीजोडा ने एमां चरी चरी धीव
बाई ने दीनो ए सासु डोरो तेल रो
ओरिये ओरिये देवर ने जेठ
पडावै ननंदा रो झुलरो
बरसे बरसे एमां गोरी मेह
भीजै भाया री बहनडी
मांज्या मांज्या एमां मोटोडा थाळ
मांज्या ननंद का बाटका

– इसी कारण शायद कहा गया है ।

ऐ सासरिये रा धोरा
मने चढती ने लागे दोरा
ए पीवरिये रा धोरा
मने चढती ने लागे सोरा

– कहीं कहीं बहु भी अपने सास को अलग रहने की धमकी देती है ।

सासु लड मती लड मती न्यारी करदे ।
थारो बेटा मती दे थारी बेटी मती दे ।
म्हारा बाप रो जँवाई म्हारे सामे रखदे ॥

यही बहु जब भाभी बनती है तो अपने साहेब से बिल्कुल साफ कहते ही ननंद को पडोसन नहीं बनाना ।

थे तो सुण सुण ओ म्हारा सीमरथ सायब
नणंद पडोसण मती राखजो
वातो सोई ओ देख सायब सोईजी मांग
उठ सवार म्हासुँ कळोकर
वातो थाका चढण रो सायब घुडलाजी मांग
म्हारा बेठणरी सुख पालखी
बा तो थार ओढणरो सायब थीरमो जी मांग
म्हारा ओढण री बोरंग चूंदडी.

राजस्थान के गीतों में लिंबडी (नीम), नथनी, खुर्ज्या, ननंद भोजाई, तम्बाखु के साथ ही झूले, चिरमी और वर्षा ऋतु का चित्रण है । इन गीतों में निसर्ग वर्णन के साथ मन के अनेकानेक भावरंग को प्रस्तुत किया है । गीत इस प्रकार है -

ओ काली बादली ओ बरसे रिमझिम धार
ओ घुंघट में मुख मुळकणो, पिनघट री पीनहार ।
सावणीया सुवटीया राज, चोमासारे चढता राज
ए बाजे बायरियो आहा के आयो सावणीयो ॥ १ ॥
ए बारामासी थारी बाता झुठी झुठी लागेजी
झुठी झुठी लागे बाता झुठी झुठी लागे
ए बिना चुंदरी लहरियारी सावण फिको लागेजी
सावण फिको लागे ओ तो सावण फिको लागेजी
गिणगोरास प्यारा तितर राज, तेजणीयारा तेजा राज
मेहंदीयारा राचणीया राज के बाजे बाजरीयो ॥ २ ॥
चेतरी चितभगी नार, कातिरी पूजारन नार
जेठरी जंजाळी नार, मिंगसररी पथवारी नार
के बाजे बायरीयो आहा के आयो सावणीयो ॥ ३ ॥
ए गडजन पूरबरी पूरवाई मुदरी मुदरी बाजेजी
ए बाजु बंदरी लुंब थारी झिणी झिणी नाचेजी
झिणी झिणी नाचे आतो झिणी झिणी नाचे
आषाढारा भरिया नाला दादर गाजेजी
पिनघट री पणिहारी नार गायारी गुवालन नार
बाग बागरी मालन नार गली गलीरी जोगन नार
के बाजे बायरीयो आहा के आयो सावणीयो ॥ ४ ॥

चारों ओर काले बादल छाये हैं । रिमझिम रिमझिम वर्षा की बौछारें हो रही हैं । ऐसे समय पानी भरने वाली पनिहारी का मुख घुँघट में चमक रहा है । सावन आया है-इन चार महिने में वर्षा का रंग चढ रहा है-बादल छाये हैं-ठंड बढ़ रही है । तेजी से बह रहे पवन की मधुर आवाज आ रही है-जिससे सावन का मजा आयेगा ।

चैत्र में चित्त में रमनेवाली नार, कार्तिक में पूजा में रमनेवाली नार, जेष्ठ में पानी से प्यासी नार, मिंगसर में बाँट जोनेवाली नार, हवा का झोंका सावन का संदेशा ला रहे हैं ।

यह नार (नारी) अपने पिया से कहती है, बारह महिने तुम्हारी बातें बड़ी झुठी लगती हैं । चुंदरी (राजस्थान की बँधेज की साडी) और लहरिया बिना सावन का मजा ही नहीं आता ! ओ प्रियतम ! तुम हँसते हुए बड़े अच्छे लगते हो । ओ मेरे गणगोर के प्यारे राजा, तीज का तेज आपका है, मेरी मेहंदी का रचा हुआ रंग भी आप ही है, तो सावन का आनंद हम साथ लें ।

यह प्रियतम भी अपनी प्रेमिका से कहता है, मेरे पूर्वजों की महिमा की गूँज हो रही है, तेरी बाजुबंद की डोर झिणी झिणी बज रही है । आषाढ में भरे हुए नाले बह रहे हैं । ए पानी भरने

जानेवाली नार, गाय का पालन करनेवाली नार, बागबगिचा तैयार करनेवाली नार, गली गली में घूमनेवाली प्यारी, पवन बह रहा है-सावन का संदेशा लाया है-सावन आया है ।

ऐसे सुंदर और सजिले वातावरण में पति परदेश है तो वो उसे संदेसा भिजवाती है । इस बार सावन के महिने में हम साथ रहेंगे-गीत इस प्रकार है :

काळी काळी काजळिया री रेख
काळी के कांठळ में चमके बीजळी
बरसो बरसो मेहा जोधांणेरे देस
जठे जामण जाया री चाकरी ॥ १ ॥
ऊभा ऊभा हो राणी छाजलिया री छोह
ऊभांडा कागद मोकळे
आजो आजो राजनामो सावणिया री तीज
पैले ओ साबन भेळे रैवस्यां ॥२ ॥
आडा आडा हो राणी समंद तळाव
आडी नदियाँ हो नीर घणों
आडी ने बाईसा रो सासरो ॥ ३ ॥
लाजो लाजो राजानामी बाई सारे बारंग चूंदडी
म्हारे ओ सोळे सिणगार ॥ ४ ॥
समंदा समंदा राजानामी जहाज तिराय
नदियां ओ तेरु रा बेटा नै मेल जो
लाया लाया रा राणी सोळे सिणगार
बाई सा रे बोरंग चूंदडी ॥ ५ ॥

काले काले बादलों में बिजली चमक रही है । मेह तुम भाई जोधाणा (जोधपूर) जाकर बरसो । जहाँ मेरे पति नौकरी के लिए गये हैं ।

छज्जे की छाँह में खडी पत्नी पत्र भेज रही है, मेरे राजा सावन की तीज पर यहां आ जाना । सावन का महिना हम साथ रहेंगे । ननंद के लिए बहुरंगी चूँदडी लेते आना । मेरे लिए सोलह शृंगार लाना !

रानी कैसे आऊँ ? मार्ग में बहुत से तालाब है, मार्ग रोके नदियाँ बह रही हैं । मार्ग में बहिन का ससुराल है ।

मेरे राजा तालाबों में जहाज डाल देना, नदियों को तैराकों की सहायता से तैर कर पार हो जाना ।

रानी, ले आया हूं तुम्हारे लिए सोलह शृंगार और बहन के लिए बहुरंग चूँदडी लाया हूँ ।

वियोग :

संयोग में प्रेम की तीव्रता होती हैं तो वियोग में उसकी गहराई । पति-पत्नी एक दूसरे से बिछुड़ना नहीं चाहते ।

झिर मिर झिर मिर मेह जिओ राजभंवरजी
हुई अंधेरी रेण ।
मति जाओ पिया चाकरी ।
डबडब भरिया नैन ।

पिया नौकरी के लिए जाते समय गौरी के नैंन भर आयें इसलिए वो कहती हैं बाहर वर्षा हो रही है अंधेरी रात है ऐसे समय आप नौकरी के लिए मत जाना ।

पति भी जब पत्नी अपने पीहर जाती है तो उसे रोकता है और कहता है तुम अपने पिता के यहाँ खुश रहोगी मैं यहाँ उदास बैठा रहुँगा ।

मति जाओ गोरी बापर जीओ राजभॅवरजी
कारण नहीं है खास
थे रेवा बढ मोज में जीओ राजभँवरजी
म्हें रेवा उदास

परन्तु संसार में कभी कभी बिछुडना तो पड़ता ही है । बिछुडने के इस क्षण को, इस भाव को बहुत ही सुंदर ढंग से चित्रित किया है ।

राजींद चाल्या चाकरी जीओ राजभँवरजी
पगम उलझी डोर
पाछा फिर कर देखिया जीओ राजभँवरजी
धन उभी गणगौर

पिया नौकरी के लिए जा रहे हैं परंतु उनके पैर में प्रेम की डोर अटकी हुयी है । वह मुड़कर पीछे देखते हैं तो उसकी पत्नी अभी भी वहीं खडी हैं । उसका भी यही हाल हैं ।

वियोग में रात दिन तड़पती हुई दुःखी नायिका अपने पिया को संदेशा देती है । आप शिघ्र आओ । नहीं तो मेरे प्राण निकल जायेंगे ।

कागद लिखु प्रेम सूं जीओ राजभँवरजी
अद बिच लिखुं प्रणाम ।
बेगा आओ सायबा जीओ राजभँवरजी
नहीं तो छोडु प्राण ।

राजस्थानी लोककथा गीत साहित्य ढोला मारु, निहाल दे, में श्रृंगार के दोनों तत्त्व संयोग-वियोग का बहुत ही सुंदर चित्रण मिलता है ।

करुण रस :

राजस्थानी लोकगीतों में ओळ्वुं और बिदाई गीतों में करुणा की धारा बहती है । कन्यादान के समय माता पिता का हृदय दहल जाता है । उनके लिए तो मानो पूरी धरती काँप उठती है । इसका चित्रण इस गीत में हैं -

धरधर धरती धूजै
हुई रे धरम री बेळा
हस्तियांरा दान बाईसा देती ।

बिदाई के समय गाये जाने वाले कोयलडी गीत में करुणामयी माँ अपनी बेटी से पूछती है तुम्हे अपने माता-पिता, काका-काकी, दादा-दादी से इतना प्यार है फिर हमको छोडकर क्यों जा रही हो । माँ खुद अपनी बेटी को बिदाई देती है परंतु अपनी बेटी की बिदाई सहने की क्षमता उसमें नहीं । गीत इस प्रकार है -

ए तो आंबाजी पाक्या आमली जिओ पाकी आमुलयारी डाळ
कोयल बाई सीध चाल्या
जी जीवो म्हे थान पुछा म्हारा कँवरबाई इतरो दादाजीरो हेत
छोड़कर बाई सीध चाल्या जीवो इतरो बाबजीरो हेत काका जीरो हेत
माऊजी रो हेत छोड़कर बाई-सीध चाल्या
जिओ आयो सगारो सुवटो जीवो ले टोळी मासूं टाळ
कोयल बाई सीध चाल्या.

हास्य रस :

हँसना जीवन की आवश्यकता है । हँसने से मनुष्य के दुःख दूर होते हैं । हँसने से मन प्रसन्न होता है ।

राजस्थानियों के लोकगीतों में हास्य रस के कई गीत मिलते हैं । होली, देवरिया, जंवाई और विवाहों के अवसर पर गाये जाने वाले गाली गीतों को इस ढंग से गाया जाता है जिसके कारण हँसी के फँवारे उड़ते हैं ।

यहाँ विवाह के समय गाया जाने वाला गीत इस प्रकार है -

ता तक थैय्या थैय्या
सास बहुसे बोली घास घोड़े को डालो
बहु अलबेली समझ बैठी वो
सास घोड़े को डालो ॥ १ ॥

लोरी के गीत :

राजस्थानी लोक गीतों में लोरी का अपना अलग स्थान है । यह गीत बहुत ही सरल है । इनमें कोई भी अलंकृत शब्द नहीं फिर भी दिल को छू जानेवाले यह गीत है -

सो जा लाला सोई
थारी माँ कर रसोई
रसोई में घी घणो
लाला पर सगळा को जीव घणो

अरे लाल तू सोजा तेरी माँ रसोई बना रही है । रसोई में घी ज्यादा है उसी तरह लाला पर सबका जी (लाडला) बहुत है ।

सो जा रे लाला हाबु आवलो
जरी की टोपी थारो काको लावेला
पगाम का पायल थारी भूवा लावली
रुम झुम करतो नानेर जावेलो

तेरा काका तेरे लिए टोपी लायेगा और भूआ पायल लायेगी । तुम यह पायल पहनकर नानी के यहाँ जायेगा । यही गीत बच्चा नानी के यहाँ होगा तो इस तरह गाते हैं –

सो जा रे लाला हाबु आवलो
जरी की टोपी थारो मामो लावेला
पगाम का पायल थारी मासी लावेली
रुम झुम करतो दादेर जावेलो

इन अंगाई गीतों में राम और कृष्ण को बालरुप में चित्रित कर उसे अपने लाल को सुलाते समय बडे प्यार से गाते हैं । यहाँ उदाहरण के लिए यह गीत प्रस्तुत है –

सो जा सो जा हारा लाल कौसल्यारा प्यारा राम घडीयक सोजा रे ।

आमो झुके आंगणो डाली दिई पसार
पूत प्रेम रो पालणो जी दशरथजी रे द्वार ॥ १ ॥
जगत प्रेम भेलो कियो काचा काचा तार
रस्सी बटकर बाँधे माता पलणे एक सार ॥ २ ॥
झोका देवे शाम ने माता गावे गीत
पल घडियारो पतो न लागे दिन सब जावे बित ॥ ३ ॥
पगल्या पटके पालणे रे पैंजणीया रही बाज
उठमणी हिंमत करे रे दूध पिवन रे काज ॥
सूतन लिनी गोद में माता दिया सुलाय
स्तन मुख माही ले लियो, अब दूध रह्यो सटकाय ॥
अरध धरम अरु काम मोक्षरी बाँधी चारु कुँट
रस्सी पकड झुलावे माता लावा ले रही लुट ॥

कौसल्या के राम की उपमा यहाँ अपने लाल को देती हुई माँ अपने लाल को सुलाती है । आंगण में आम के पेड की डाली को पालना बँधाया है । अपने लाल के लिए वो जगत के प्रेम का तार तार इकठ्ठा कर उसी तार की रस्सी बुनकर उस पालने को जोडती है । राजस्थानी लोक गीतों में परिवार, मातृभूमि, जगत के प्रति प्रेम की आस्था दिखाई देती है । यही भाव इस लोरी में हमें दिखाई देता है ।

लोरी बाई लोरी गाय ब्याई गौरी
दूध भरी कटोरी उपर शक्कर भौरी
इन राज बहिरै कारणै दो साजण आया बारणै
भूवा केवे भतीजो देस्यां पण गहणा घणा लेक्ष्या
सेर सोनो लो थारी बाई म्हाने दो

लडकी को पसंद करने दो साजन आते हैं तो (लडकी की) भूआ कहती है, भतीजी तो देंगे परंतु इसके बदले में जेवर लेंगे । साजन कहते हैं तुम सेर भर सोना लो पर मुझे लडकी दो ।

इन गीतों के अलावा वह अपने बच्चे को किसी की नजर न लग जावे इसीलिए माँ तरह तरह के मंत्र और कर्म करती है । नजर उतारने के लिए झाडु, चप्पल, चोटी, पल्लु का उपयोग होता है । कभी कभी बच्चा ज्यादा सताता है तो लाल मिर्च कपडे की चिंधी या नारियल उतारकर फेंका जाता है । नजर उतारते समय माँ कहती है-

आया की, गया की, घर का की, बारला की, तेली की तंबोली की,
पापी की दुष्ट की, माँ की, बाबा की, काका की, काकी की,

इस तरह परिवार के सभी सदस्यों का नाम लेकर झाडु आदि वस्तु लेकर बच्चे पर बार बार घुमाते हैं । अंत में तीन बार थुँ थुँ करती हैं ।

अपने बच्चे को हँसाने यह ममतामयी माँ तरह तरह के मंत्र अपनाती है - रोते हुए बालकों को चुप करने के लिए उनकी हथेली में ऊँगली फेरती हुइ माँ कहती है-

''चिट्टी मिट्टी लाग लगावनी, दाल चाँवल शिरो
पुडील गाय का गोरान भोग लगानु गाय को
गोरो कठ गयो ? गुम ग्यो - ढूँढो रे ढूँढो रे''

हाथ से अकुंणी, अकुंणी से बगल के नीचे गुदगुदी करके बालक को हँसाती है । यह तो बच्चों को बहलाने का, लाडप्यार का जादू है । यह एक आदर्श मंत्र है जिससे बच्चों का सहज विकास होता है ।

''राजस्थान में ये लोरिया या काव्य पंक्तियाँ बडी बधुर एवं मनोबल देनेवाली होती है । इनमें नीति, वीरता, दान और आश्चर्यदायक शिक्षा की बेजोड कला है ।''

जिसका उद्घोष करते हुए महाकवि सूर्यमल्ल कहते हैं

इला न देणी आपणी हालरियाँ हुलराय
पूत सिखावै पालणै मरण बडाई माय ।''

राजस्थानी माता अपने बच्चे को पालने में झुलाते हुए ही सिखाती है - अपनी भूमि कदापि किसी दूसरे को नहीं लेने देना । अपनी भूमि के लिए मरना भी बड़प्पन है । पाठशाला में जानेवाले बच्चे को पहले ही अवगत कराती है-

छडी लागे छम छम विद्या आवे धम धम

प्रान्त-प्रान्त के समान सूर

इस समय तो लोक-साहित्य की कथ्यवाणी ने हमारे समूहजीवन को खण्ड-खण्ड कर देनेवाली दीवारों को तोडना शुरू किया है । गिरिमाला के शिखर-शिखर पर बैठे मोर की तरह हमारे प्रान्त-प्रान्त के लोकगीत एक-दूसरे को समरूपता, साम्यता, सहानुभूति का गहक दे रहे हैं । हास्यास्पद बन चुका मारवाडी बोली का, 'आज मारी शाशूडी मुने साचो सपनो आयो री' यह लोकगीत अनेक बार गाया-सुना और तिरस्कार का भोग बना, यह लोकगीत आज हमारी श्रवणेंद्रिय में नए भाव का

दीपक जला रहा है । जो हमारी घृणा का कारण बना वह लोकसाहित्य की सुरुचि को व्यापक करनेवाला बन रहा है । काठियावाड़-गुजरात या सूरत-चरोतर के बीच बोली-भेद अप्रिय न रहकर प्रिय बनते गये हैं क्योंकि हमने उन प्रान्त-भाषा का ठेठ कथ्य प्रयोगों का आस्वाद पन्नालाल, उमाशंकर, धनसुखलाल और ज्योतीन्द्र आदि की कहानियों में लिया है । प्रान्त के बाहर कदम रखते हुए डरते, संकुचाते या घिन्नाते नहीं । क्योंकि कथ्यवाणी परप्रान्तों के सिवान में पुरानी होने पर भी नित नूतन साम्य के फूल बिखेरने लगी है । अजनबीपन हमारा कैसे रह सकता है ? मुझे मिला एक गुजराती ब्याह -गीत :

तो दादा माराने दूभव्या रे
तारा आछा घूंघटडाने कारण, हो लाडली ।
हजी रे समझ, मारी कोयलडी ।

बड़ों की इच्छा के विरुद्ध मनपसन्द कन्या को वरनेवाला युवक ब्याह करने के बाद पितृगृह छोड़ने से हिचकती वधू को इन शब्दों में मनाता है : इसी मनुहार को गुजरात निवासी मारवाड़ी मजदूर अपने वतन के नृत्यलय से भरपूर एक विवाहगीत इस तरह से गाता है :

में तो घारा, जीवन वनी ! कारणिये,
में तो मेल्यां बावाजीवाणा हेत
हालो ने वनी । वागां में

(चल मेरे साथ बाग में, हे बन्नी ! हे वधू ! तेरे लिए तो मैंने पिता का प्यार त्याग दिया है ।)

थराद, मारवाड़ तो हमारे सटे हुए पड़ौसी है : साम्यता है तो आश्चर्य कैसा ? चलिए, अभी आगे, जेलम और रावी के किनारे । सोरठ की लोकपुत्री का विवाह, बाद में उसका मायका-त्याग हमारे गीत में यों आलेखित हुआ :

दादाने आंगण आंबलो, आंबलो घोर गंभीर जो,
एक तो पान में तोडियुं, दादा गाळ न देजो जो,
अमे रे लीलूडा वननी चरकलडी, उड़ी जाशुं परदेश जो.
आज रे दादाजीना देशमां, काले जाशुं परदेश जो,
दादाने वाला दीकरा, अमने मेल्यां परदेश जो.

(दादा के आँगन में आम का पेड है, आम घटादार है । हे दादा, मैंने एक पत्ता तोड लिया है । गाली मत देना । हम तो हरे-भरे वन की चिडियाँ हैं, परदेश उड जाएँगी । दादा, आज तो हम इस देश में हैं, कल परदेश में जाएँगी, दादा को बेटे प्यारे हैं, हमको तो परदेश भेज दिया ।)

और अपनी गुजरात की दुखियारी अपने पिता से कहलवाती है :

इक समान कथा गाथाएँ

ऐसा कहा जा सकता है कि लोकवाणी में जगह-जगह कुछ प्रयोग, कुछ बाह्य कलेवर, उदाहरण नमूने आदि की एकरूपता प्रचलित थी । किन्तु इससे आगे जाय तो हमें कथावस्तु की समानता विलक्षण रूप से सामने मिलती है । हमारा एक शौर्यशाली कथागीत है :

सोनल रमती रे गढ़डाने गोख जो
रमतां झलाणी सोनल गरासणी;

आडो आव्यो रे सोनल दादानो देश जो
सोनले जाण्युं दादो छोडावशे,
दादे दीघां रे सोनल, धोणुडां धण जो
तोय न छूटी सोनल गरासणी.

(किले के झरोखे के पास सोनल खेल रही थी । खेलते समय सोनल गरासणी का अपहरण हो गया; रास्ते में सोनल के दादा का देश आया; सोनल ने समझा कि दादा बचा लेंगे, दादा ने सफेद गोधन दिया, फिर भी सोनल गरासणी नहीं छूटी ।)

फिर रास्ते में काका, भाई आदि का देश आता है । काका ने काली भैंसों का झुण्ड दिया तथा भाईने दूधिया बछवा दिया, तब भी सोनल गरासणी नहीं छूटी । फिर :

आडे आव्यो रे सोनल स्वामीनो देश जो,
सोनले जाण्युं जे स्वामी छोडावशे.

(रास्ते में आया सोनल के स्वामी का देश, सोनल ने समझा स्वामी छुड़ायेंगे)

स्वामी ने किसी पार्थिव मूल्य को चुकाकर नहीं किन्तु शिरसमर्पण से-युद्ध से-सोनल को अपहर्ता के पास से छुड़ाया :

स्वामीए दीधी रे एना माथा केरी मोळ्युं जो
धमके छूटी सोनल गरासणी.

(स्वामी ने अपना सिर दिया, झटके से छूट गयी सोनल गरासणी ।)

यह कथाविषय ठेठ उत्तर प्रदेश और बिहार कौन-जाने कैसे पहुँच गया होगा । मुगलों इत्यादि के परिबलवाले उस प्रदेश में अपहरण के विरुद्ध प्रकोप जागृत करनेवाले कथानक सहज ही में फूट निकलते हैं । 'ग्रामगीत' के संग्राहक श्री रामनरेश त्रिपाठी द्वारा संग्रहित 'जांत के गीत' (जांता चलाते समय के गीत) और 'निरवाही के गीत' (खेतो में सोहनी करते समय के गीत)की एक कृति है :

ओखली चावल छांटती, बाते करती बनाय
आवेला मोगल का छोकड़ा, यों डालूँगी कूट.

(ओखली में धान कूटती एक स्त्री गप मार रही है कि यदि मोगल का छोकरा यहाँ मुझे उठा ले जाने के लिए आयेगा, तो मैं धान की तरह उसे भी मूसर-मूसर कूट डालूँगी)

मोगल का छोकरा सही में आ गया, सुन्दरी को हर ले गया, सुन्दरी ने पिता, भाई, प्रिय को संदेशा भेजा :

''उड़ी उड़ी पतिया जाय तू, यह सनेस लेइ जा.
बाबा से कहिगा समुझाई, बेटी पड़ी बंदीवान !

तीनों सगे आते हैं किन्तु सम्पत्ति लेकर :

लेहु मोगल का छोकड़ा रुपिया लेहु बहुत
बेटी मेरी की छोड़ दे, जैसे कंचन थाल,

भाई मोतियों का ढ़ेर और प्रिय मोहरें देने लगते हैं । उत्तर में :

रुपिया हमारे बहुत है, अशर्फी भरा है संदुक,
सुन्दर को में ना छोडों, जैसे गले का हार.

फिर तो सुन्दर खुद ही निपटारा करने उठी :

सुन्दर बोली क्रोधकर, कमर कटारी खींच,
लेहु मोगल के छोकड़ा यह है गले का हार.

मैं इसे सोरठी कथ्यवाणी का सीमाचिह्न समझता हूँ । मुझे उत्तर प्रांत का यह गीत सोरठी गीत की ठेठ भूमिका पर आधारित रुपान्तर लगता है । इस विधान की अवश्य आज मैं चर्चा नहीं कर सकता । हमारे इस प्रयोजन के लिए पर्याप्त यह तुलना मात्र कथ्यवाणी का सीमान्त बताने के लिए है ।

पश्चाताप और शरणागति के भाव का संवेदन

इन भक्त सन्तों की परम्परा में ज्ञान की नहीं किन्तु अनुभव की चोट थी । तलवार की चोट लगे और जनेऊ का हाथ काट डाले, इस तरह से अनुभव की उत्कृष्टता की कातिल धार पड़ती और उसमें से जेसल जैसे 'जग के चोरटा' 'पल में पीर' बनते, पछताकर लुढ़क जाते, किए हुए पाप की स्मृति उन्हें रुलाती :

रोई-रोई केने संभाळावुं रे जाडेजो के' छे,
ऊंडां दुःख कोने संभाळावुं रे जेसलजी के' छे
रुदियो रुवे ने मारो भीतर जले.

(रो रो कर किसको सुनाऊँ रे, जाडेजा कहता है । अपना गहरा दर्द किसे सुनाऊँ जेसल जी कहते हैं । हृदय रोता है और मेरा अन्तर सुलगता है ।)

कच्छ का खूंखार डाकू जेसल सौराष्ट्र के एक संत काठी के घर आया । रात को जब सभी भोजन कर रहे थे तब उसने घर के पिछवाड़े में सेंघ लगायी, अस्तबल में घुसा, घोडी चुरानी थी, खोलने गया, घोड़ी ने उत्पात मचाया, आदमी दौड़ते हुए आए; उन्होंने घोड़ी की उखड़ी हुई कांटी (खूंटी) को फिर से जमीन में गाड़ दिया । वह कांटी जमीन में घुसने से पहले, घास के नीचे छीपे हुए जेसल की हथेली के आर-पार निकल गई उफ तक न करनेवाला डाकू जब बाहर आया तब काठी भक्त को लगा कि यदि ऐसा हठीला, प्रभु के प्रति झूके तो बेड़ा पार हो जाय । जेसल को काठी भक्त की पत्नी तोरल को चुरा जाना था । पति ने खुशी से पत्नी को जेसल के साथ भेजा । उस नारी ने डाकू को पिघला दिया । इस जेसल-तोरल की घटना को तो जनता ने आत्मसात् कर आद्यपर्यन्त घर-घर का संस्कार बनाया है ।

निगुरापना-नास्तिकता, और सुगुरापना-गुरुप्राप्ति, इन दोनों के बीच का भेद गाया जाता :

जा रे सुहागण, जा रे गगनमें, ज्योत जलत है, जा;
जा रे सुहागण, जा रे सुहागण, ओ घर कर ले वासा.
सुगरा होय तो भर भर पीवे, नूगरा जाय पियासा;
गगन में ज्योत जलत हे जा !

सच्चे पंथप्रदर्शक-गुरु-के बिना हृदय तड़प उठता :
ओ रे कामणियां मारे गुरुजीए कीधां,
बीजां कामण मारी नजरुमां ना'वे
देशी परदेशी भलै वैदडा तेडावो,

नाडयुंनो वैद मारी नजरुंमा ना'वे
लखी दियो रे मने कटको कागळियो,
मोहन वर मारे मोले रे आवे.
दासी जीवन के' संतो भीम केरे चरणे,
गरीब थैने, गुण तोरा गावे.

(यह कामण मेरे गुरुजी ने किया, दूसरा कामण मेरी नजर में नहीं आता । भले देशी-विदेशी वैद्य बुलाओ नाड़ी-वैद्य मेरी नजर में न आये । मुझे एक कागज के टुकड़े पर लिख दो, कृष्ण जैसा वर ही मेरे मोल में आ सकता है । दासी जीवन कहती है कि गरीब होकर गुण तेरा गाते हैं ।)

गुरु ने पिलाया प्याला कैसी मस्ती मचाता :

अमर पियालो मारे गुरुजीए पायो,
मध मध फरुं में दीवाना हो जी.

(अमर प्याला मेरे गुरुजी ने पिला दिया । मैं मदमस्त होकर दीवाना होकर घूमती हूँ ।)

और उस मस्ती में से प्रकट होती मिलन की प्रेम-लगन को प्रेमलक्षणा के अनुरागी पुरुष-भक्तों ने उत्कटता से गाया-गवाया है :

सखि ! उंचुं जोऊं तो हरि आसमानमां रे
हेरीने जोऊं तो हरि हेठा रे,
सखि ! सुईने जोऊं तो झळके सोड्यमां तखत पर बेठा रे
जागीने जोऊँ तो तखत पर बेठा रे,
सखि ! सांभळ करुं एक वातलडी.
सखि ! परणेली पियुजीने वीनवे
कुंआरी कंथमां शुं जाणे रे,
सखि ! कुआरी रमे ढींगले ने पोतिए
मेरामने शुं माणे रे ..... सखि, सांभळ.
सखि ! पंडना पियुजीनी वातडी
कोईनी आगळ नव के'यी रे,
सखि ! आपडे रे'वुं पियुना शे'रमां
लोचनिये हेरी हेरी लेयी रे..... सखि सांभळ.

(हे सखि, ऊपर देखूँ तो हरि आसमान में दिखाई देते हैं, हेर कर देखूँ तो हरि नीचे दिखाई देते हैं, सोकर देखूँ तो बगल में दिखाई देते हैं । जागकर देखूँ तो हरि तख्त पर बैठे दिखाई देते हैं । हे सखि, सुनो एक बात कहूँ, ब्याहता अपने प्रियतम से विनय करती हूँ, कि कुंआरी प्रिय के बारे में क्या जाने ? कुमारी तो गुड्डी-गुड्डों के साथ खेलती है । सखि सुन, वह प्रेम का अनुभव कैसे करेगी ? पिंड के प्रियतम की बात किसी से नहीं कहनी चाहिए । सखि, हमें तो प्रियतम के शहर में रहना है, आँखो से उन्हें ढूँढ़ लूँगी ।)

इसे नर भाणदास ने गाया । इस आखिरी अडिगता को गंगा सति नामक स्त्री ने अराधा :

मेरु रे डगे ने मारुं मन नो डगे ने रे
मर भांगी रे पडे भरमांड;
विपत पडे ने वणसे नहि
ए तो हरिजनोनां परमाण .... मेरु रे डगे ने
हरखशोकनी मुने हेडकी न आवे
आठे पो'र रे'वुं गुलतान;
शीश रे पडे ने मारुं घड तो लडे ने
शरीर कर्यां कुरबान.... मेरु रे डगे ने

(चाहे पहाड़ डगमगा जाय, चाहे पूरा ब्रह्मांड क्यों न टूट जाय, किन्तु मेरा मन नहीं डगमगा सकता । विपत्ति पड़ने पर विचलित न हों यही तो भक्त जनों का प्रमाण है....। हर्ष ओर शोक की मुझे याद नहीं आती । आठों पहर मशगूल रहती हूँ । शीश गिर जाय तो मेरा घड़ लड़ेगा । मैंने अपना शरीर कुर्बान कर दिया है ।)

संतवाणी के युद्ध - सूर

ये संत और इनके जीवन प्रसंगो में जो लड़ायक तत्त्व था उसमें से लड़ायक वाणी की भी निष्पत्ति हुई । इस्लाम की धर्मभ्रष्ट-प्रवृत्ति का सामना करनेवाले क्षत्रिय संत-वीर रामदेव पीर के भजनों में कदम-कदम पर युद्ध का स्वांग, युद्ध का आवाहन आलेखित हुआ है :

जीन झटकी बनी जाव असवार
हाकम लीलाने वे'लो हांकजो हो जी

(असबाब छाँटकर सवार हो जाइए, हाकम लीला को पहले हांकना ।)

सोरठी नारी संस्कार

मारवाड़ प्रांत के रुणेचा गाँव के राज संत रामदेव को 'पीर' की उपाधि देनेवाले और उनसे परास्त होनेवाले मुस्लिम ही थे, आदि अनेक कथाएँ कही जाती हैं । इस रामदेव का प्रभाव अंत्यज से लेकर उच्च भजनिक सम्प्रदाय तक प्रवर्तमान है । उन्होंने अपने साथ आणलदे नामक अछूत शिष्या रखी थी, इसे भी धर्मभ्रष्ट पर आक्रमण के रूप में उनकी विशिष्टता गाई जाती है । हम यहाँ सोरठ के नारी-तत्त्व पर आ पहुँचते हैं ।

सन्त परम्परा में

उपरोक्त संतपरम्परा में नारी प्रमुख पद पर थी । जेसल जैसे भयानक डाकू को वश में करनेवाली सती तोरल तो उस परम्परा में अधिष्ठात्री पद पर बिराजमान हैं । और उसकी काव्यवाणी में तरह-तरह का संवदेन बहता है । वह काठी जैसी करडी कौम की पत्नी थी; वह पति घर का त्यागकर सिंह के समान लूटेरे के घर चली, उसमें मानवता का मार्दव सिंचकर उसे पिघलाने के लिए । किन्तु उसी चतुर तोरल को धर्म-सम्मेलन का जब निमंत्रण मिला तब वह जनेता-धर्म को भूल गई, पेट के अपने कच्चे गर्भ को गिराकर उसने कुंभ में भरा और पड़ौसी के पुत्र को सौंपकर स्वयं धर्म सम्मेलन में जाने लगी । तब गुरुपद के सामने मातृपद पुकार उठा । जंगल के रास्ते छाती से चिपकाये हुए बच्चे के साथ वृक्ष-वृक्ष पर छलांग लगाती बंदरिया को देखकर तोरल उपदेश देने लगी : ओ बाई वांदरी !

उरे वळगाड्यां तारां बचणां, रखे तं भूलती चोट ।

(तुम्हारा बच्चा हृदय से चिपका हुआ है, तू उसे रखना भूल गयी ।)

बंदरिया ने उत्तर दिया :

मारां रे बाळक तो मारी आगळे
ताळी राणी, तारां ने संभाळ
कोळीडाक अन्नने कारणे
पुतर मेल्यो आंबानी डाळ
शबदुना बांध्या संतो शुं न करे !

(हे तोरल राणी मेरा बालक तो मेरे आगे है अर्थात् पासमें है, तुम अपने बच्चे को संभालो । अन्न के अभाव में अपने पुत्र को आम की डाल पर रख दिया । वचनबद्ध सन्त क्या नहीं करते ।)

यह सुनते ही तोरल का धर्मनेतृत्व टूटकर बिखर गया, सुकुमार नारीत्व पिघल गया :

पुतर साभरियो पानो चड्यो
प्राणमां वाघी छे पीड :
थान तो सती केरां थरहर्यां
पडतां छोडिया छे प्राण.

(पुत्र का नाम सुनते ही छाती में दूध भर आया । हृदय में पीड़ा उभर आयी उसका वक्ष थरथरा कर काँपने लगा और गिरते ही उसने प्राण छोड़ दिये ।)

यह मूर्छित हो गयी । उसे संतो ने सर्जनस्तोत्र जैसा भजन गाकर जीवित किया । अन्य प्रसंग में उससे अपना वियोग न सह सकनेवाले समाधिस्थ बने साथी जेसल के समक्ष :

ताल तंबूरो सतीना हाथमां हो जी
सती करे छे अलखनो अराध
जाडेजा हो... वचन संभारी वे'ला जागजो हो जी ।

(हे जाडेजा..... ताल तंबूरा सति के हाथ में है । सति अलख की अराधना करती है । वचन सुनकर जल्दी उठ जाना ।)

ऐसे भजनगान के साथ-साथ नृत्य करते-करते जेसल को पुनर्जीवित किया; और फिर दोनों जन ने मृत्यु के मंडप के नीचे विवाह किया :

जाडेजा रे कंकुकेसरनां कीधां छांटणां,
मोडियो मेल्यो सतीने हाथ, जाडेजा हो.....
वचन संभारी वे'ला जागजो हो जी ।
जाडेजा रे सहु रे वळावी पाछां वळ्यां,
नव वळ्यां एक तोणांदे नार, जाडेजा हो....
वचन संभारी वे'ला जागजो हो जी ।

(कुंमकुंम-केसर का छिटकाव किया, मौर सती के हाथ में रखा, वचन सुनकर जल्दी जागना, सब विदा कर वापस गये एक तोरल नारी नहीं आई । वचन सुनकर जल्दी जागना ।)

ऐसी आत्मरंगी तोरल लौकिक भक्तिसमुदाय की प्रेरणामूर्ति है । जीवन में तथा साहित्य में ऐसी

तो असंख्य नारियों ने संत-वाणी गाई है और पुरुषों ने ग्रहण किया है । धर्म-स्थान के अधिष्ठाता - पद पर नारियाँ बैठी है और पुरुषों ने नीचे का स्थान स्वीकार किया है ।

स्त्री : संसार-परम्परा में मुख्य संवेदनमूर्ति

स्त्री को जो स्थान सन्त-परम्परा में सौंपा गया था वही स्थान संसार-परम्परा में भी मिला था । भ्रमणशील युद्धवीर जातियों की स्त्रियाँ भ्रमणशील जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान लेती और मुक्त रूप से घूमती, यह स्वाभाविक है । मालधारी जीवन में नारी का स्थान सहकर्मचारिनी के रूप में ही हो सकता है, आज्ञाकारी दासी के रूप में नहीं । और भ्रमणवती सोरठीयानी की शारीरिक ताकत कितने ही कौतुकप्रेरक किस्साओं का केन्द्रस्थ विषय है ।

जनेता तत्त्व पर अधिक झुकाव

इसकी कोख से कैसा जन्मे (अर्थात् कैसा बहादुर बने) इस वीरजननी तत्त्व का आकर्षण पुरुषों को, सोरठी नारी के प्रति जबरदस्त रहा है । स्त्री पात्रता की प्रथम कसौटी है उसकी कोख से कैसा जन्मे । स्वस्थ और महाकाय शरीर हो तो जवांमर्द पुत्र को जन्म देती है ।

गतिमान सौन्दर्य

और ऐसी तंदुरस्ती से ही जो सौन्दर्य विकसित होता था उस सौन्दर्य की, उस चंचल, गतिशील, स्फूर्ति से भरपूर भव्य नारी-रूप की ही लोकसाहित्य ने आराधना की है । किसी भी जगह सोरठी लोकसाहित्य में ठहरा हुआ सौन्दर्य नहीं देख पायेंगे । गति, गति बस गति का ही स्पंदन :

कठियाणी कड्य पातळी, हलकती माथे हेल्य
बरडा केरी बजारमां, ढलकती आवे ढेल्य
मारुई नाई गंगजल, उभी वेण सुखाय
चंदन केरे रुखडे, (जेम) नाग झपाटा खाय
मारुई चली मोल पर, दीपक लगाडे,
जाणे हनमो हालियो लंका लगाडे

(कठियाणी की पतली कमर है, सिर पर गागर शोभित है, बरडा के बाजार में मोरनी की तरह झूमती चली आ रही है । मारवणी ने गंगा-जल से स्नान किया, वह खड़ी होकर अपनी वेणी (चोटी) सूखा रही है, ऐसा लगता है जैसे चंदन के पेड़ पर नाग झूल रहा हो । मारवणी महल में दिया जलाने चली, जैसे हनुमान लंका को आग लगाने जा रहे हो ।)

यह है गतिमान सौदर्य का नमूना । कच्छी प्रेमकथा 'होथल' में देखें तो प्रेमी अपनी प्रियतमा का प्रथम रूप-दर्शन पानी में करता है :

चडी चखासर-पार, ओढे होथल न्यारियां,
विछाई बेठी वार, पाणी मथ्थे पदमणी

होथल नामक वीरांगना, पुरुष के भेष में अपना स्त्रीत्व छुपा कर ओढा नामक वीर के साथ बहादुरी दिखा कर बिदा हुई । छः महिने में पहली बार पुरुष का भेष उतार कर चखासर नामक सरोवर में नहाने लगी । गमगीन ओढा राणा उस मित्र का वियोग सह नहीं पाया, पुनः मित्र की खोज में

निकला, उसने चखासर के किनारे आते ही होथल को पानी की सपाटी पर अपने लम्बे सुन्दर बाल को बिछाकर नहाते हुए देखा ।

लोक-साहित्य में किसी भी जगह सौराष्ट्री नारी-रूप को निष्क्रिय पड़ा हुआ नहीं देख पाएँगे । राणकदेवी के सौंदर्य पर खेंगार मोहित हुआ उसका भी गतिशील स्वरूप था :

वाया वाया रे कांई ओतर दखणा वाय रे
चूंदडीना छेडा फरुकिया
दीठो दीठो रे एनी कड्य केरो लांक रे
दीठो सवागज चोटलो

(कहीं उत्तर-दक्षिण की ओर हवा बहने लगी, चूनरी का आँचल लहराने लगा, उसकी कमर का लचीलापन दिखाई देने लगा और सवा गज की चोटी दिखाई देने लगी ।)

यह स्त्री-सौन्दर्य उद्यम का साथी था । लोकगीत में चित्र है :

छलकातुं आवे बेडलुं
मलकाती आवे नार रे,
मारी साहेलीनुं बेडलुं

(मेरी सखी की गगरी छलकती आ रही है और मुस्कुराती हुई नार आ रही है ।)

उद्यम से शोभित नारी रुप

अकेली मुस्कुराहट तो अधूरी लगती है । सिर पर गगरी छलकती आती हो और पनिहारिन मुस्कुराती हो तभी सुन्दरता बढ़ेगी । आपको लोक-साहित्य में 'मृग जैसी आँख' की उपमा नहीं मिलेगी । मिलेगी तो 'त्राठी मृगली' के जैसी नैन-डरी हुई हिरनी की आँखे : अरे परिहासयुक्त ब्याह -गीतों में अथवा कन्या की प्रौढ़ उम्र की माता का स्वरूप भी कितना गतिमान है ।

हालन्ती मालन्ती नीसरी
जाणें भादरवानी भैंस रे

(झूमती-झामती निकर रही है जैसे भादों की भैस हो ।)

क्षत्रिय विवाहगीतों में कन्या का आदर्श गाया जाता है :

तरवार सरखी उजळी रे ढोला
तरवार भेटमां विराजे रे वालीडा वीरने
एवी होय तो परणजो रे ढोला ।
नीकर फरीने परणांवुं रे वालीडा वीरने
सोपारी सरखी वांकडी रे ढोला ।
सोपारी भेंटमां बिराजे रे वाडीला वीरने
एवी रे होय तो

★

तज सरीखो तीखली रे ढोला ।

★

(तलवार के समान उजली है ढोला, मेरे प्यारे भाई को तलवार भेंट में मिले । ऐसा हो तभी व्याह करना, नहीं तो फिर से ब्याह करवाऊँगी । सुपारी की तरह टेढ़ी है, सुपारी भेंट में मिले । दालचीनी के समान तीखी है, ढोला ।)

बिफरता स्त्रीतत्व : वेजी की कथा

यह तलवार-सी उज्ज्वलता और तेजपत्ता के समान तीखापन के संस्कारों ने कई बार उत्कट संवेदनाएँ जन्माई है और यह लोकवाणी में अंकित हुआ है । अहीर भोजा कामणिया की पत्नी ने, स्वामी की गैरमौजूदगी में स्वामी का सम्मानित शूरवीर पीठात हाटी की मेहमान-नवाजी की । पति के घर आने के बाद वह सपने में 'वाह पीठात ! वाह पीठात !' ऐसा बोल पड़ी । स्वामी ने शंका कर उसे दुत्कार दिया, स्त्री की चिरौरी निष्फल हुई । स्त्री क्रोधित हुई, सिर पर गगरी रखकर पीठात के गाँव पहुँची, कहा कि पीठात, गगरी उतराव । अर्थात् मुझे अपनी स्त्री के रूप में स्वीकार कर, किन्तु मेरा स्वीकार तो भयानक है :

मरण मेवाडा ! (आवे) पीठिया, पानी खूंदतुं,
(एनी) लांवे लोकाणा । तारे मरवुं मोरी संग-धणी

(मृत्यु तो तुम्हारे कदम के पीछे वेग से चला आ रहा है । उसकी झपट में तुम्हें मरना है)

और तुम डरोगे तब भी -

मसाणथी मडां, पाछां न जाय, पीठिया !

(हे पीठिया, स्मशान से मुरदा वापस नहीं जाता)

मैं वापस नहीं जानेवाली । ऐसा कहकर स्वामी के सुबहा शत्रु की पत्नी बन गई । भोजा ने चढ़ाई की । धोखाघड़ी से पीठात को अपने सिकंजे में लिया; पीठात ने अपने घर माता के काज से आये मेहमानों को शुश्रूषा पूरी कर वापस आकर लड़ने का वचन देकर शत्रु से अनुमति माँगी । भोजा ने अनुमति दी । पीठात वचन के अनुसार वापस आया, पीछे -पीछे वेजी भी आई, दोनों शत्रुओं की वीरनीति ने पुनः मित्रता जन्माई और पराये घर बैठी वेजी की मेहमान नवाजी स्वीकार करने के लिए पहला पति, बिना वैरभाव के पीठात के घर जाकर रहा । वेजी तो पीठात की ही रही ।

एक अनोखी नीति का संस्कार ऐसी घटनाओं में अंकित हुआ है । ऐसे संघर्षण साहित्य के उत्पादक बने हैं । समस्त जनता उसे तिरस्कार से गाती है ऐसा नहीं, किन्तु भावना के रूप में गाती है । वेजी, राणकदेवी, पुरुष के भेष में वीरांगना होथल, पुरुषमात्र को न देखने का व्रत, हार कर एक युवक पर मुग्ध होनेवाली यात्रिका लोडण खंभातण आदि सभी सोरठी साहित्य के स्त्रीपात्र जनता की नजर में भावनाओं को संस्कार के रूप में समाते रहे हैं ।

विरह दशा : संवेदन का प्रबल कारण

स्त्रीजात ने सोरठी साहित्य के पोषक संस्कार के रूप में जो भूमिका अदा की है वह इतनी अधिक जबरजस्त, व्यापक और सघन है कि उसकी सीमा को माप नहीं सकते । जहाँ नजर डालो वहाँ नारी खड़ी है । इसका एक प्रबल कारण नारी की विरह-दशा है । सौराष्ट्र विशेष रूप से बाहर के आगन्तुकों की भूमि है । वे आगन्तुक पशुपालक है । यहाँ की भूमि यानी जमी हुई काले

पत्थर की ज्वालामुखी । बरसात की कमी । चारे की कमी । चतुर्मास को छोडकर तो पशुओं को हाँककर परदेश का देशनिकाला भोगना । स्त्रियाँ साथ में जांय, न भी जाय । घर बैठकर विरह में तड़पती । सौराष्ट्र के चारों ओर समुद्री किनारा । नाविकों से खदबदती बस्ती । सैलानी तो जहाज चलाकर ठेठ जावा, सुमात्रा और आफ्रिका का फेरा खींचते । तीन महिना घर पर रहते । और समुद्र की गोद तो खप्पर जैसी । वापस आये या न भी आये । बनिया सौदागर और कोळी, मुस्लिम खलासियों, सभी की नवयौवनाएँ घर बैठकर तरसतीं और तड़पतीं । सौराष्ट्र यानी क्षत्रिय, काठी, आहीर, इत्यादि लड़ायक कुलों की शरणदात्री; अपने अपने प्रदेश की रक्षा और विस्तार के लिये, रात्रि का सीमा संग्राम : पुरुषों को निरंतर 'खडियामां खापण' : 'निरन्तर मुँह में तुलसी का पत्ता' : 'तलवारों का तोरण' भाला-बरछी का अग्नि । पुरुष वापस लौटें न भी लौटें । स्वामी का साथी-मित्र चुपचाप आकर आँगन में नीम का पत्ता रख जाय तो यह मान लेना कि स्वामी युद्ध के मैदान में सदा की रात रह गया है ।

बैरन चाकरी

सौराष्ट्र अर्थात् सिपाहीगिरी की भूमि । दूर और पास के रजवाड़ों की लश्करी चाकरी पर हाजरी देने की स्थिति । छोटे राजपूत कुलों के घर-घर चाकरी का बुलावा आता । घर-घर 'वेरण चाकरी' की कंपकंपी रहती । चाकरी बारह-बारह वर्ष की होती । चाकरी पर गया हुआ नौजवान वापस आये और न भी आये । 'वेरण-चाकरी' के गीतों से सोरठी साहित्य अश्रुभीगा है । मात्र कांटिया वर्ण के ही नहीं, सवर्ण बनिया, नागर तक के पुरुष लश्करी, मुलकी या मुसद्दीगीरी की चाकरी पर अचानक चल पड़ते । नहीं तो :

नानी-शी नार ने नाकमां मोती
वालम विदेशे ने वाटडी जोती,
उडाडती काग अने गणती 'ती दाडा
ए रे एंधाणीए नागरवाडा

(छोटी-सी नार और नाक में मोती । प्रियतम विदेश में है और वह राह देखती । कौआ उड़ाती और दिन गिनती । यही नागर लोगों की पहचान है ।)

ऐसी निशानियाँ कहावत का रूप कैसे प्राप्त करतीं ?

विप्रलंभ के सूर

खलासी, क्षत्रिय, बनिया और ब्राह्मण के तमाम बने हुए समग्र लोकसमूह पर इन नारियों की वियोगिनी दशा ने एक प्रकार की काव्यरसिकता बिछा दी है । दोहाबंदी गूंथ कर कहानियों में, स्त्रियों के रास-गरबा में, खलासी नारियों के गीतों में, विप्रलंभ ने मुख्य स्थान पाया है । चारणी वर्णानुप्रास-काव्य भी विशेषकर वियोग की उपासना करता है । गरबा घूमती स्त्रियाँ चौटा में गाती है :

वा वाया ने वादळ उमट्यां
मघ दरिये डुलेरा वाण, मोरली वागे छे.
आ हालार शे' र ना हाथीडा
कांई आव्या हमारे देश,

छेलछोगाडो होय तो मूलवे
डोलरियो दरिया पार

(हवा बहने लगी और बादल उमड़ पड़े । समुद्र के बीच में प्रियतम का जहाज है, मुरली बज रही है । ये हालार देश के व्यापारी हमारे देश आये हैं । छेल-छबीले प्रियतम होते तो खरीदते, प्रियतम तो समुद्र के पार है ।)

समुद्रपार प्रियतम को कोई चिठ्ठी पहुँचाने में सक्षम नहीं, इसलिए :

कुंजलडी रे संदेशो अमारो, जईने वालमने के'जो जी रे;
प्रीतकांठानां अमे पंखीडां, प्रीतम सागर विण सूनां जी रे.

(हे कुंजडी (पक्षी) ! हमारा संदेशा प्रियतम जी से जाकर कहना, प्रीत रूपी सागर के हम पंखी हैं, सागर प्रियतम के बिना सुना है ।)

नायिका, नायक-प्रत्यागमन की एक वर्ष की अवधि के अंतिम दिन राह जोह-जोह कर सूख रही है :

वरस वळयां, बादल वळयां, धरती नीलाणी,
विजाणंदने कारणे, शेणी सूकाणी

(वर्ष लौटा, धरती हरी हो गई, विजाणंद के वियोग के कारण शेणी (नायिका) सूख गई ।)

वेरण-चाकरी की बारी आने पर सैनिक के घर में इस स्थिति का होना गाया जाता है :

उभी उभी उगमणे दरबार, कागळिया आव्या राजना रे लोल
बाळयां बाळयां बार घाणीनां तेल रे, परभाते कागळ उकल्या रे लोल
कोरे मोरे लखियुं छे सौ-सौ सलामुं रे, वचाळे वेरण चाकरी रे लोल

(पूर्व दिशा में दरबार खड़ा है, राजा का भेजा हुआ पत्र आता है । बारह घानी का तेल जलाने पर सुबह जाकर पत्र पढ़ा जाता है । किनारे पर सौ-सौ सलामी लिखी है, बीच में वेरण चाकरी लिखा है ।)

किन्तु घर के सभी मर्दो में से कौन जाय ? सभी को परदेशी राज-फौज की चाकरी से डाह है । अंत में जिसके पति को जाना तय होता है वह मझली बहु कल्पांत करती है :

चाकरीए मारा ससराजीने मेलो रे, अलबेलो नै जाय चाकरी रे लोल

(चाकरी पर मेरे ससुरजी को भेजो, मेरा अलबेला पति चाकरी पर नहीं जाएगा)

अरे, खा-पीकर फरागत हो चुकी सासु, ससुरजी को भेजने के लिए तैयार नहीं :

ससरा घेरे दरबारी छे राज रे, दरबारी पूरा नै पडे रे लोल

(ससुर के घर दरबारी चलती है, दरबारी पूरा नहीं पड़ेगा ।)

जेठ घेरे जेठाणी झीणाबोली रे, परभाते झगड़ो मांडशे रे लोल

(जेठ के घर जिठानी झगड़ालु है, सुबह झगड़ा करेगी)

देर घेर देराणी नानुं बाळ रे, मोलुमां एकल नै रहे रे लोल

(देवर के घर देवरानी को छोटा बच्चा है, महल में अकेली नहीं रहेगी ।)

और मझला पति चल पड़ा तब :

झाली झाली घोडलियानी वाध रे अलबेला क्यारे आवशो रे लोल ?

(घोड़े की लगाम पकड़कर पूछती है, प्रियतम कब आओगे ?)

वापस तो अब आने से रहा !

गणजो, गोरी पीपळडांनां पांद रे, एटले ते दा'डे आवशुं रे लोल

(हे गोरी, पीपल के पत्ते गिनना उतने दिन में वापस आऊँगा ।)

इन हृदयवेधी चाकरी-गीतों में नारी-हृदय का मार्दव सिंचित हुआ है ।

आभमां झीणी झबूके वीजळी रे

झीणा झरमर वरसे मेह,

गुलाबी ! नै जावा दउं चाकरी रे

★

तमने वा'ली दरबारी चाकरी रे

अमने वा'लो तमारो जीव.... - गुलाबी

(आकाश में मद्धिम बिजली चमकती है । झरमर झरमर झीना मेघ बरस रहा है । हे प्रियतम मैं चाकरी पर नहीं जाने दूँगी । आपको दरबारी चाकरी प्यारी है तो मुझे आपका जीव प्यारा है ।)

घासचारे के अभाव में पति को पशुधन लेकर विदेश चले जाना पड़ा उसके बाद बरसता हुआ मेघ नारी हृदय को सताता है :

खड सूक्यां गोरल बसूक्यां

वा'ला गिया विदेश :

अवसर चूक्य मेहुला ।

वरस्ये कांउ करेश ।

(घास सूख गया, पति के विदेश जाने पर पत्नी सूख गयी । हे मेघ, अब वरसने से क्या होगा ? तुम तो अवसर चूक गये हो ।)

इस तरह की दीर्घ विरह दशा के अंत में पुनर्मिलन के तो भूले-भटके से एकाध गीत है :

चारण घेरे आयो रे, मुंजो चारण घेरे आयो

लीलूडां नेणवाणो रे, मुंजो चारण घेरे आयो.

(चारण घर आया, मेरा चारण घर आया, हरी आँखो वाला मेरा चारण घर आया ।)

अथवा ऐसे विप्रलंभ के अंत में उत्कट श्रृंगार गाया गया है :

थंभा थडके घर हसे, खेलण लागी खाट

सो सजणां भल आवियां, जेनी जोतां वाट

(खंभा हिले, घर हसे, खेलने लगी खाट, हे सजना ! अच्छा हुआ आ गये जिसकी मैं राह देख रही थी ।)

ऐसे दोहे और पियामिलन की रात्रि के पहले चार प्रहर :

पहेलो पोरो रेनरो, दीवडा झाकमझोळ

पिय कंटाळो केवडो, धण कंकुनी लोळ,

बीजो पोरो रेनरो, वधिया नेह सनेह,

धण त्यां धरती हो रही, पियु अषाढो मेह

(रात्रि के प्रथम-प्रहर में दीया जगमगा रहा है, पिया कंटिला केवडा है, पत्नी कुमकुम का गुच्छा,

रात्रि के दूसरे प्रहर में प्यार-स्नेह बढा, पत्नी धरती हो गई और पति अषाढ़ी मेघ)

आदि आदि श्रृंगारोद्दीपक काव्य-सामग्री का इतना जलद रंग दीर्घकालीन विप्रलंभ की दशा को ही आभारी है । ऐसा वियोग कभी -कभार करुणान्त बनता है :

माडी ! बार बार वरसे आवियो रे
माडी ! नो दीठी पातळी परमार्य रे जाडेजा जी मा !
मोलुमाँ दीवो शग बळे रे,
नेवे ते नवरंग चूंदडी रे.

(हे माता, बारह बरस के बाद आया हूँ, कहीं पतली परमार्य (नारी) नहीं दिखाई देती, महल में दीये की लौ जल रही है और खपरैल पर उसकी नवरंगी चुनरी पड़ी है ।)

इस गरवा की कथा यह है कि सैनिक बारह वर्ष के बाद वापस आने पर घर में अपनी 'पातली परमार्य' को-पत्नी को-खोजता है । किन्तु 'नहीं दीखी' इसलिए माँ से पूछता है । माँ उसे बहाना बताती है :

दीकरा, हेठो बेसीने हथियार छोड्य, कलैया कुंवर !
दळणा दळीने हमणां आवशे रे

(बेटा हथियार छोड़कर नीचे बैठ, मेरे कनैया कुंवर, अभी दाना दर कर आयेगी ।)

★

पाणी भरीने हमणां आवशे रे

(पानी भरकर अभी आयेगी)

★

धोण्युं धोईने हमणां आवशे रे

(कपड़ा धोकर अभी आयेगी)

पुरुष तो माँ द्वारा कहे सभी जगह पर पातळी परमार्य-पत्नी-को खोज आता है :

माडी ! घंटीयुं ने रथडा जोई वळ्यो रे,
माडी ! नो दीठी पातळी परमार्य रे जोडेजी मा ! मोलुंमां.

★

माडी ! कूवा ने वाव्युं जोई वळ्यो रे,
माडी ! नो दीठी पातळी परमार्य रे जोडेजी मा ! मोलुंमां.

★

माडी ! नदीयुं ने नेरा जोई वळ्यो रे,
माडी ! नो दीठी पातळी परमार्य रे जोडेजी मा ! मोलुंमां.

(हे माता-मैं चक्की और जांता पर देख आया, कुंआ और वाव देख आया, नदी और नहर देख आया, कहीं भी मेरी 'पातळी परमार्य'-पत्नी नहीं दिखाई दी ।)

फिर भेद खुलता है : पत्नी को तो माँ ने हाल ही में मार डाला है । इसलिए स्वामी, मृत पत्नी के असबाब का निरीक्षण करता है । सौभाग्य के श्रृंगार की वे सभी वस्तुएँ 'कोरी' बिना उपभोग किए पड़ी है । अपनी अनुपस्थिति में पत्नी ने पाले विजोगण-व्रत के चिन्हों को देखकर पुरुष इस

संसार में वैराग्य का अनुभव करता है :

एनी बचकीमां कोरी बांधणी
एनी बांधणी देखीने बावो थाऊँ रे, गोझारण मा !
मोलुमां आंबो मोरियो रे.
एनी बचकीमां कोरी टीलडी;
एनी टीलडी देखीने तरसूळ ताणुं रे, गोझारण मा !
मोलुमां आंबो मोरियो रे.

(उसकी डलिया में कोरी चूनरी, चूनरी को देखकर जोगी बन जाऊँ रे पापी माँ, महल में आम मौर गया । उसकी डलियाँ में कोरी बिन्दी, उसकी बिन्दी को देखकर त्रिशुल तानूँ रे, पापी माँ, महल में आम मौर गया ।)

विरही जनों की विनोदरसिकता

किसी न किसी विधिवैषम्य के कारण रुपान्तरित होती जीवनस्थिति के चित्रों को अंकित करते ये गीत, ये गाथाएँ और ये कहानियाँ सोरठी कंठस्थ साहित्य को करुणरसिक बनाती हैं । ऐसी विरहदशा का विनोदात्मक चितार देते गीतों से भी परिहास की सपाटी के तल से पातालकूट अश्रुजल उभरता है :

मेंदी ते वावी, माळवे, अेनो रंग गियो गुजरात
मेंदी रंग लाग्यो रे
नानो दियरियो लाडको कांई लाव्यो मेंदीनो छोड - मेंदी.
वाटी घूंटीने भर्या वाटका, भाभी, रंगो तमारा हाथ - मेंदी.
हाथ रंगीने देर शुं रे करुं, एनो जोनारो परदेश - मेंदी.

(मेंहदी का पौधा बोया गया मालवा में और उसका रंग गया गुजरात में, मेंहदी का रंग लगा । छोटा लाडला देवर मेंहदी का पौधा लाया । पीस-घोटकर कटोरियां भरीं, भाभी, तुम अपना हाथ रंगो, हाथ रंगकर देवर क्या करूँगी, इसको देखनेवाला तो परदेश में हैं ।)

शृंगार किसे दिखाने के लिए सजे ? सिपाहीगिरी करने परदेश गया हुआ पति याद आने पर संदेशा कहलवाती है - झूठ-झूठ बहाना बताती है : ' तारी बहेन परणे छे, घेर आव । तारी मा मरे छे, घेर आव ('तुम्हारी' बहन ब्याह रही है घर आओ', तुम्हारी मा मर रही है, घर आओ) नहीं आता है । अन्त में 'तारी मानेतीनी उठी आँख, माटे घेर आव' (तुम्हारी प्यारी की आँख आई है, इसलिए घर आओ) तो तुरन्त -

हालो सिपाहीयो ने भाईबंधीओ;
हवे हलके बांधो रे हथियार, मेंदी रंग लाग्यो रे

(चलो सिपाहियों और दोस्तों, अब जल्दी से हथियार बांधो मेंहदी का रंग लगा है ।)

किन्तु इसी गुर्जर मेंहदी-गीत के राजस्थानी पाठ में पत्नी घर आये हुए पति का जो कान पकड़ती है उसमें विनोद के छद्मवेश में कितनी करुणता है !

चार टकारी थारी नौकरी, लाख मोहरकी म्हारी रात
नेडकी कर ल्यो, राजन, चाकरी, सांझ पड्यां घर आव

(सोदागर मेहंदी राचणी : राजस्थान के लोक गीत)

(हे स्वामी, तुम्हारी नौकरी तो चार टके की है, किन्तु मेरी रात तो लाख मोहर की मूल्यवान है । इसलिए कहीं नजदीक में नौकरी ढूँढ लो ताकि सांझ पड़ते ही रोज घर आओ)

मरते सैनिक का निर्दंभ मानस

पति को पेटगुजारा के लिए परदेश जाना पड़ता है । पत्नी यहाँ तक प्रस्ताव करती है कि मैं चरखा चलाकर अपने दोनों का पेट भरूँगी । ऐसे भाव दर्शानेवाले गीत भी हैं । चाकरी पर जानेवाले स्वामी का समरांगण में मृत्युशैया यह चारणों को बिरदाने का विषय हो सकता है, भले ही देशभक्ति और वीरता के साहित्य में कवि उसे कृत्रिम शृंगार पहनाये, लोकगीत की निर्व्याजता और सत्यनिष्ठा, तो मरते हुए सैनिक के अंतस्तल में जाकर ऐसे उद्‌गार ले आती है :

पे'लो रे जुवार मारा दादाजी ने के'जो;
होकलियानो भरनार दीकरो तारो त्यां रियो.
बीजो रे जुवार मारी माताजीने के'जो;
घडपणनो पाळनार बेटडो तारो त्यां रियो
त्रीजो रे जुवार मारी बेनीजीने के'जो;
करियावरनो वोरनार वीरो तारो त्यां रियो
चोथो रे जुवार मारी परणेतरने के'जो;
खोळामां पोढ़ाड़नार, पियु तारो त्यां रियो.
(लोकगीत, सं. रणजितराम महेता)

(पहला संदेशा मेरे दादाजी से कहना, हुक्का भरनेवाला तेरा बेटा वहीं रह गया । दूसरा संदेशा मेरी माँ से कहना, बुढ़ापे का सहारा तेरा बेटा, वहीं रह गया । तीसरा संदेशा मेरी बहन से कहना, दहेज देनेवाला तेरा भाई वहीं रह गया । चौथा संदेशा मेरी ब्याहता से कहना, गोदी में सुलानेवाला तुम्हारा पिया वहीं रह गया ।)

और सावन पूर्णिमा की दोपहर को जहाज पर चढ़नेवाले अपने नाविकों की विदाई-वेदना भुलाने के लिए शराब पिलाते-पिलाते बंदरगाह पर छोड़ने जाती खारवणों का गीत देखिए :

जोबनियां मारां आज आव्यां ने काल्य जाशे,
जोबनियां काल्य जातां रे'शे.

(मेरा यौवन आज आया और कल चला जाएगा, यौवन कल चला जाएगा ।)

ऐसे चले गये यौवन के पिछवाड़े लगभग दो सौ वर्ष पूर्व सौराष्ट्र के तीरवासी फिरंगियों ने अपनी लालसा में फंसाई नाविक-पत्नी का गीत है :

तुं तो मंबी हाल्यो, तुं तो मलबार हाल्यो,
नाणानी रे खोट, खरचीनी रे खोट.
काकाना रे काळु मामाना मूळु,
दुःखडलां रे देवे, दुःखडलां रे देवे.

(भरणपोषण के खातिर, हे पिया, तुम तो मुंबई - मलबार की फेरी में चले गये । उसके बाद मुझे काका-मामा के पुत्रों ने दुःख दिया ।)

उन्हीं दिनों में हमारे गाँव के सिवान में टोपीवाला का पड़ाव पड़ा :

जांगलो रे आव्यो, टोपीवालो आव्यो;
पीथलपरने पादर, केराणाने पादर.

(टोपीवाला जांगला आया, पीपलपर से सिवान तथा केराणा के सिवान में ।)

और मैं एकबार पानी भरने निकली । टोपीवाला पीछे-पीछे आया : मेरा रूप देखा । मसल डाला :

वंटोळो रे आव्यो, वंटोळो रे आव्यो,
चूंदडली रे उडी, पांभडली रे उडी.

★

टोपियाने घेर पोढी, जांगलाने घेर पोढी

(सौराष्ट्रनां खंडेरोमां)

(बवंडर आया रे बवंडर आया, चुनरी उड़ी रे डुपट्टा उड़ा, टोपीवाले के घर सोयी, जंगली के घर सोयी ।)

पति के लिए तड़पति नातरिया वर्ण की नारियाँ

युद्ध के प्रति नफरत, परदेश की चाकरी के प्रति वैर-भाव, पेट गुजारने के प्रश्न की दुविधा, परदेशी पिया के लिए झंखना, पीछे से हवसखोरों के हाथों फंसना, इन सभी विषयों में सोरठी नारियों के आत्मनितार के समान गीत कंठस्थ साहित्य की गोदी में रखे हैं । और लोकसाहित्य निखालस है । इसलिए जो-जो कहना है उसे बिना छिपाये-बिना तिरस्कार से कह डालती है । पति की मृत्यु के बाद पुनर्विवाह की छूट मिलने, एक संसार में न रुचे तो उसे तोड़कर नया संसार सजाने के लिए उसके समाज ने उसे मुक्त रखा है, फिर भी ये सोरठी नातरिया वर्ण की नारियाँ यदि पति-स्नेह की खातिर रोती-तड़पती रही हैं तो उनमें संस्कार होना चाहिए । वह संस्कार-'कल्चर'-सवर्णों का निरा अनुकरण होता तो इसमें से साहित्य नहीं पैदा होता ।

पुरुष का प्रेमप्रेरक सौन्दर्य

स्त्रियों के नयनों में तथा हृदयों में प्रेमांजन आंजता जीवनतत्त्व, पुरुष में भी था । मजदूर और सैनिक सोरठी मर्द सुन्दर थे : पत्नियों की नजर में वे थे :

बाईजी सरीखो फूटरो मुंजा वालम लो !
नणंदी सरीखी अणियार वणजारा वालम लो !

(सास की तरह मेरा बालम सुन्दर है और ननद की तरह पैनी नाक है मेरे बनजारा बालम की ।)

★★★

मृत पति का भी देह - सौंदर्य

अरे ! प्रेम और पुरुषातन के लिए समर में पड़े शब को भी सोरठियाणी ने गर्व से बिरदाया - सोरठ की सौंदर्यमूर्ति राणकदेवी ने :

वाये फरके मूछडी, रयण झबुके दंत;
जुओ पटोळांवाळीओ, लोबडियाळीनो कंथ.

(उनकी (मरा होने पर भी) पवन में मूंछ फरकती है, रत्न जैसे उनके दांत चमकते हैं । हे पाटण-गुजरात की, सुन्दर मुलायम पटोळां (साड़ी) पहननेवाली स्त्रियों, यह मोटी ऊन का दुशाला ओढ़नेवाली बथ्थड़ सोरठियानी के पति को तो देखो । मृत्यु की गोद में भी छैला कैसा सुशोभित हो रहा है !)

देह -सौंदर्य, यह कहीं साहित्य की सर्जकता में उपेक्षित करने जैसा बल नहीं है । गति और स्फूर्ति को उस सौन्दर्य का प्राणतत्त्व मानी जाती दृष्टि को उपर्युक्त उदाहरण में बताया गया है । इसी प्रकार मृत्यु के अधीन मनुष्य की भी मूंछें फरकते और दाँत चमकते हुए बताया गया है ।

विरहदर्शक लोकगीत में ब्योरा नहीं होता

ऐसे ब्योरे का वर्णन और विरह के संवेदन का गतिशील लोकजीवन में स्थान नहीं है । ऐसे ब्योरे का वर्णन करते एक प्रमत्त, मुक्त सौन्दर्य से लहराते लोकगीत की जाँच करें :

बरवाळा गामनो भरवाडियो, ओली टींबलानी भरवाडी;
असोरण भरवाडी रे रंगमां लेवाणी जाय,
भरवाड्यने ओढवा धाबणो रे एनी सांगर लटकती जाय
असोरण भरवाडी रे रंगमां लेवाणी जाय.
भरवाड्यने पे'रण कुबेला रे एनां हुलर हींचोळा खाय....
असोरण भरवाडी रे रंगमां लेवाणी जाय,
भरवाड्यनी आंख्यमां सोयरो रे, एनां नेणां झबकतां जाय
असोरण भरवाडी रे रंगमां लेवाणी जाय,
काळी अटलसनुं कापडुं रे, एना काच झबकता जाय.
असोरण भरवाडी रे रंगमां लेवाणी जाय

(बरवाडा गाँव का गड़रीया है, टींबला गाँव की गड़रियारिन । असोरण गडरियारिन उसके रंग में खिंची चली जाय । गड़रिया के पास ओढ़ने के लिए कोमल कंबल है, उसके साथ बरछी लटकती जाती है । गड़रिये की आँखों में सूरमा है, उसकी आँखें झबकती जाती हैं । काले रेशम का कपड़ा है, उसका शीशा चमकता जाता है ।)

इस तरह का वर्णन केवल ठाठ-बाट ही बताता है । मुख्य भाव 'रंगमां लेवाणी जाय' (रंगमें खिंची चली जाय) यह है । बाकी का ब्योरा रंगमस्ती को बहाने वाला है ।

बरसात में पति के साथ सैर करना लोकजीवन में संभव नहीं

नर्मद के साथ रासडा में गड़रियारिन को अपनी धरती, शिवान और भेड़-बकरियों का बाड़ा

छोड़कर पहाडों पर घूमने का, दूध निकालने का, ढाँकने का, सृष्टि-सौन्दर्य का आस्वाद लेने का दिल करता है यह चाहत लोकसाहित्य के लिए अवास्तविक है । बरसात तो लोकसमूह के मनुष्यों के लिए सैर करने की नहीं बल्कि घर रहने की कठिन ऋतु है । लोकगीत की नारी बरसात में परदेश जाते हुए पिया को रोकती है :

आभमां झीणी झबूके बीजळी रे
झीणा झरमर वरसे मेघ, गुलाबी !
केम करी जाशो चाकरी रे !
भींजाय हाथी ने भींजाय घोडलां रे
भींजाय हाथीनो बेसतल सूबो, गुलाबी !
केम करी जाशो चाकरी रे !

(आकाश में झीनी झीनी बिजली चमक रही है और झीना झरमर गुलाबी मेह बरस रहा है । हे पिया, कैसे चाकरी पर जाओगे ? हाथी-घोड़ा भीग रहे हैं और हाथी पर बैठनेवाला प्रदेश का सूबा भी भीग रहा है, तो हे पिया, कैसे चाकरी पर जाओगे ?)

जोखिम का भय : पति-प्राण की चिंता

पति के प्रवास की ऐसी विषमता उसे सालती है । इसके उपरांत उसकी भावना पति के साथ जाने की नहीं बल्कि पति को घर पर रोकने की है । उसका मन पहाड़ों पर मौज करने के बजाय पति के जीव को जोखिम से बचाना होता है :

तमने वा'ली दरबारी चाकरी रे
अमने वा'लो तमारो जीव, गुलाबी !
नै जावा दउं चाकरी रे.

(हे पिया, आपको तो दरबारी चाकरी प्यारी है । मुझे प्यारा है आपका जीव । मैं चाकरी पर नहीं जाने दूँगी)

गोप-जीवन पर कल्पना का आरोपण

कविकाव्य और लोककाव्य के बीच जो भेद भावनात्मकता और वास्तविकता के बीच जो है, सो है । कवि गोपजीवन पर अपनी कल्पना का रसानंद आरोपित करता है, उसे गोपियों के संसार प्रश्नों का पता होगा कि नहीं, उसने तो यहाँ शहरी स्त्रियों की संवेदनाओं के अतिरेक को गाया है, ब्योरे की रंगोली और अवास्तविकता का अतिरेक, इन दोनों का अभाव लोकवाणी की सही पहचान है ।

ब्याहता गोपियों का संसार, जो सैरगाह का अवकाश रहने ही नहीं देता, उस सैरगाह का भाव एक भगोड़े गड़रिया-गड़रियारिन के लोकगीत में देखें । दोनों प्रणयावस्था में हैं । दोनों को भाग जाना है । प्रणयी पुरुष कैसे सुख का प्रलोभन देता है !

वेळुमां वींरडा गाळशुं रे, सोमल !
वेळुमां वीरडा गाळशुं;

गाळशुं रे, मारी सोमलडी रे, हजारण !
अरधाना, लाडवा लेशुं रे, सोमल
अरधाना लाडवा लेशुं;
आरे बेसीने आपण जमशुं रे, मारी सोमलडी रे हजारण !
पहलीए पाणीडां पीशुं रे, सोमल
पहलीए पाणीडां पीशुं;
पीशुं रे मारी सोमलडी रे हजारण !

(बालू में गड्ढा खोदकर पानी निकालेंगे सोमल, बालू में गड्ढा खोदेंगे । मेरी सोमल तू हजारों में एक हैं । उड़द के लड्डू लेंगे रे सोमल उड़द के लड्डू लेंगे । किनारे पर बैठ के खायेंगे सोमल, तू हजारों में एक है । अंजूरी से पानी पीयेंगे रे सोमल, अंजूरी से पानी पीयेंगे)

ग्राम्य शब्द-प्रयोग से लोकगीत नहीं बन सकता

इस गीत में प्रकृति-सौंदर्य का नहीं किन्तु साथ बैठकर मिठाई खाने और गिलास के बदले अंजलि से-अंजूरी से पीने का 'फूड एण्ड सेक्स' का रस देख सकते हैं । प्रकृति-सौन्दर्य से तो वनवासी त्राहि त्राहि पुकार उठते हैं । इसलिए शहरी संसार में फँसे हुए रंगदर्शी और कौतुक-प्रेमी की मनोभूमि पर ग्रामीण लोगों का काव्य रुपायित है, वह भले ही वालीडा, नाहोलिया आदि ग्राम्य शब्दों के द्वारा और ग्रामीण लोगों के बाह्य वर्णन के द्वारा सजाया जाय, वह काव्य लोककाव्य नहीं बन सकता ।

लोकवाणी में प्रकृति -सौन्दर्य की एक ही बूंद

लोकवाणी का प्रकृतिदर्शन कितना ? चित्रकार की कूची का एक हल्का लपेड़ा जितना । वह वाणी अधिक भार सह नहीं सकती । रंग-रेखा का प्रचुर मिश्रण लोकवाणी के लिए विघातक बन सकता है । ब्याह-गीतों में एक प्रभातिया गीत है :

सूरज उग्यो रे केवडियानी फणशे
के वाणेलां भले वायां रे.

(सूरज उगा है केवड़े की पँखुरी के पास कि हवा भली बह रही है ।)

केवडियानी फणशे, केवड़े की फूल की पँखुरी के पास, सूरज उगा । उगते सूर्य का एक पुष्पवृक्ष की डालियों के द्वारा हुआ दर्शन लोकगीत में तीव्रगति से किसी तस्वीर के जैसी कैद हो गयी है । किन्तु उसके बाद प्रभातशोभा पर रुकने के लिए लोक-कवि के पास अवकाश हो ही नहीं सकता । 'वाणेलां भले वायां ।' (सुन्दर बयार भले बही) सुन्दर सबेरा हुआ, इसलिए अब तो :

सूता जागो रे... ... बाईना कंथ के
वाणेलां भले वायां रे.
दातण करजो रे तुळशी केरे क्यारे के
वाणेलां भले वायां रे.
मुख लूजो रे पाभरीउंने छेडे के

वाणेलां भले वायां रे.
लेजो लेजो रे श्री रामनां नाम के
वाणेलां भले वायां रे.

(सोते से जगो बाई के कंथ कि सुन्दर प्रभात हुआ है । दतुअन करो तुलसी की क्यारे के पास कि सुन्दर प्रभात हुआ है । मुख पोंछो पिछौरी के छोर से कि सुन्दर प्रभात हुआ । भगवान श्री राम का नाम लो कि सुन्दर प्रभात हुआ ।)

इसी गीत को नर्मद ने पुनः गाया :

जुओ-जुओ रे मेदानोमां आवी के वाणेलां केवां वायां रे.
धोळा धोळा निरमल नीर ज के वाणेलां केवां वायां रे.
सुणो-सुणो रे छेटेना आवाज के वाणेलां केवां वायां रे.
छूपां-छूपां रे झरणां करे छणछणाट के वाणेलां केवां वायां रे,
उग्यो-उग्यो रे, पेली गम सूरज के वाणेलां केवां वायां रे,
दीपे-दीपे रे तडके तरु लीला के वाणेलां केवां वायां रे,
वागे वागे रे देहरामां घंट के वाणेलां केवां वायां रे,

(देखो देखो मैदान में आकर कि कैसा सुन्दर प्रभात हुआ, उजला निर्मल नीर कि कैसा सुन्दर प्रभात हुआ, सुनो-सुनो पास की आवाज कि कैसा सुन्दर प्रभात हुआ । झर-झर झरना बहे चुप-चाप कि कैसा सुन्दर प्रभात हुआ । उस पार सूरज उगा कि जैसा सुन्दर प्रभात हुआ, धूप में हरे वृक्ष चमक रहे हैं कि कैसा सुन्दर प्रभात हुआ । मंदिर में घंटा बज रहा है कि कैसा सुन्दर प्रभात हुआ !)

★★★

राजस्थान के विवाह गीत

राजस्थान में लोक - साहित्य का भंडार भरा पडा हुआ है । इसलिए गुजराती लेखक श्री पुष्कर चंदरवाकर ने कहा है कि, ''रेगिस्तान की धरती पर जितने रेत के कण बिखरे हुए पडे हैं इतने ही लोकगीत के कण बिखरे हुए पडे हैं । किस को बीने और किस का संग्रह करें यह एक बडा प्रश्न है ।''

विवाह कार्य की शुरूआत कन्या पक्ष की ओर से होती है । 'विवाह-पत्रिका' वर पक्ष के घर पंडित लेकर जाता है । सभी परिवारजनों और मेहमानों के सामने वर को कुम-कुम तिलक करके विवाह-पत्रिका उनकी गोद में रखी जाती है । इस पत्रिका को वर पक्ष का पंडित खोलता है उनके पर कुम कुम तिलक करके सब के सामने पढता है । विवाह के दिन स्त्रियाँ देवी-देवताओं के गीत गाती है । इसी तरह विवाह-पत्रिका आने से विवाह के श्रीगणेश (शुरूआत) होते हैं । इस वक्त सगाई (संबंध) का गीत गाया जाता है ।

सगाई का गीत

हो रै कूणी जी रा मोतीडो रो थाल
हो रै कूणी जी रा रतन कचोला
हो रै कूणी जी रा मोतीडो रो थाल
सुपारी रुडी बोकडी.....
हो रै कूणी जी रा परणै लो, अखन कंवारो
सुपारी रुडी बोकडी.....
हो रै नन्दकिशोर जी रो परणै लो पूत
हो रै वो तो परणै लो डेढाजी री अखन कंवारी
सुपारी रुडी बोकडी.....
हो रे वो तो ल्यायो, ल्यायो ढोल गुढाय
सुपारी रुडी बोकडी.....(५५)

यह गीत वर पक्ष की ओर से सगाई में गाया जाता है । गीत में स्त्रियाँ पूछ रही हैं कि ये मोतियों का थाल और रत्नों किसके हैं ? कौन कँवारा है और विवाह कर रहा है ? उसके उत्तर में वर के पिता का नाम और कन्या के पिता का नाम दर्शाया जाता है । इसी तरह वर और कन्या के घरवालों का परिचय होता है । विवाह लिख जाने से विवाह निश्चित हो जाता है । ये खुशियाँ स्त्रियों द्वारा व्यक्त की जाती है । पंडित ने मुहूर्त देखकर विवाह लिखा है इससे बहन, फूफी, फूफा, नाना, मामा, चाचा सारे परिवार को निमंत्रित किया जाता है ।

पीला चावल होय रह्या
म्हारे डावडा रो मंड्यो छे ब्याव
जोसी रै पतडो देखियो, छारंडी रै लगन लिखाय

नाई को आयो म्हारी पोळ, मंगल लगन लिखाय
नाई कै नै देस्या दोवडा रूपयो सा
भातीडा नै न्यूत बुलास्यां, नाना, नानी माम्यां रै साथ,
भाण लुआ नै बुलास्यां, जीजा फूफा रै साथ,
सारो कुडमो न्यूतर्स्यां, म्हारी मेल जिमास्यां सारो गांव
सो टोडा रो चुडलो चढ जासी म्हारी जान.(५६)

प्रस्तुत गीत में विवाह लिख जाने से वाळंद (नाई) द्वारा पूरे गाँव में पूरे परिवार और संबंधीओं को निमंत्रण दिया जाता है । पीले अक्षत (चावल) ये विवाह संस्कृति का मांगल्य वक्त करता है । इस वक्त विवाह गीत गाया जाता है ।

विवाह गीत

थांका सासरिये सूंजी बनासा कागजा आया राज,
थे तो बांचो कयूंनी जी बनासा काई हट लाग्या राज
म्हारी सांकली रो डोरो -राइवर बिंदली को रमकोडो
थोंका सासरिया सूंजी बनासा पेचा आया राज,
थे तो बांधो कयूनी जी बनासा कांई हट लाग्या राज.(५७)

इस प्रकार वर के आभूषण जैसे कि, वेढ, वींटी, दोरा (चेईन) यह सभी चीजों का बखान किया जाता है । इस गीत में स्त्रियाँ वर को कहती है कि अपने सासरवास से कागज आया है वो आप क्यों नहीं पढते ? आप की जिद क्या है ? आपकी श्वसुरगृह से दूसरी भेंट-सोगाद भी आई है । उसको आप देखते क्यों नहीं ? आप ये भेंट-सोगाद की उपेक्षा क्यों करते हो ? इस लोकगीत में वस्त्रों और आभूषणों का विशेष वर्णन किया गया है । जिसे पहनकर वर एकदम राजा जैसा लगता है ।

विवाह का आरंभ गणेश स्थापन से होता है । हिन्दू समाज में गणेशजी को रिद्धि-सिद्धि के स्वामी माने गये हैं । किसी भी प्रकार के विघ्न या विपत्ति रहित कार्य संपन्न हो जाय इसलिए सबसे पहले गणेशजी को निमंत्रित किये जाते हैं और उनकी पूजा की जाती है । यहाँ गणेशजी का गीत गाया जाता है । देखिए :

गणेशजी

छोटो सो विन्दायक रग-मग चाले पांच लाडू खाबा नै
अेक लाडू दियो बिन्दायक लाडला का बाबा नै
छोटो-सो बिन्दायक रग-मग चाले, पांच लाडू खाबा नै
अेक लाडू दियो बिन्दायक लाडका का चाचा नै.....(५८)

इसी तरह सभी परिवारजनों के नाम लेकर गीत को बढावा दिया जाता है । गीत में गणेशजी

को प्रिय लडडु (मोदक) का उल्लेख करके उनको निमंत्रण दिया जाता है । गणेशजी की स्थापना जो घर विवाह हो उनकी श्रद्धा के अनुसार पाँच-छ या नौ दिन का समय निश्चित होता है । इस वक्त स्त्रियाँ विनायक गणेशजी का गीत गाती है ।

विनायक

आज गजानन्द बाबासा कै नूत्या जी,
आज गजानन्द दादासा कै नूत्या जी
दाद्र्या माम्यां नूत जिमाया हो गजानन्द
आज गजानन्द काकासा कै नूत्या जी
काकीसा नै नूत जिमाया हो गजानन्द
किल्ला कै छाजे नौबत बाजै
नौबत बाजै नगाडा भी बाजै जी
रणत भँवर गरणायो हो विनायक.(५९)

उपरोक्त गीत में गजानन्द को सभी परिवारजनों निमंत्रण देते हैं । विवाह के अवसर पर गजानन्द को निमंत्रण देने की खुशी में ढोल-नगाडे बजते हैं ।

विनायक गीत

छाजे रे छाजे नोपत बाजे,
म्हारे घर आनन्द बधावा, छाजे रे .....
कंवर लाडलै री बिडद उपाई,
रणत भंवर सूं आवो विनायक.
आज विनायक कुण थाने नूत्या,
कुण थाने नित जिमाया विनायक.
आज विनायक दादाजी रै नूत्या,
दादाजी नूत जिमाया ओ विनायक.
आज विनायक बाबाजी रै नूत्या,
मायक नूत जिमाया ओ विनायक..... (६०)

इसी तरह सभी परिवारजनों के नाम लेकर गीत को आगे बढाया जाता है ।

विवाहोत्सव पर गणेशजी को पूछा जाता है कि, आपको न्यौता किसने दिया है और कौन आपको भोजन करानेवाला है ? जिस के घर से न्यौता आया है वहाँ आनंद और उमंग से गणेशजी को सत्कारने की तैयारियाँ शुरू हो गई है । घर की छत पर नगाडे बज रहे हैं । घर के सभी परिवारजनों ने गणेशजी को न्यौता दिया है । गणेशजी रणभंभोर से आये हैं । (रणभंभोर राजस्थान का एक प्रदेश है) । उसी वक्त स्त्रियाँ गाती है ।

विनायक

धोकै घोडे चढो विनायक कर धोळो शणगार
थे तो म्हारे भला ही पधारो जी विनायक थे थांके आयां रिद होय.
हरिये घोडे चढो जी विनायक कर हरियो सणगार. थे तो.....
राते घोडे चढो जी विनायक कर रातो सणगार. थे तो.....
पीळे घोडे चडो जी विनायक कर पीळो सणगार. थे तो.....
ये पांच लाडु चोढुं जी विनायक लाडुवाँ का पडग्या ढेर. थे तो....
ये पांच पतासा चोढुं जी विनायक रुपयाँ रा हो गया ढेर. थे तो....(६१)

इस लोकगीत में गणेशजी की आराधना की जाती है और कहा जाता है कि हे गणेशजी आप सफेद, नीला, पीला, लाल सभी रंगो के घोडे पर असवार होकर आओगे तो हम सब को आनन्द होगा । आपको जो लोग प्रसाद अर्पण करते हैं उनका घर समृद्धि से भर जाता है ।

विवाह जैसे शुभ और आनंददायक अवसर पर घर में व्यवस्थाएँ ज्यादातर की जाती है । उसमें से कई चीज-वस्तु बिखेर जाती है । जैसे कि मुँग । और किसी का ध्यान भी नहीं रहता इससे उसके पर से चलने से पैर फिसल जाता है और गिर पडता है । उसका भी लोक गीत देखिए :

विवाह का गीत

असर्‌या पसर्‌या ई मूंग ढूल्या थे आवतां ओ भाटी जी
रपट पड्या थां क्यू रपट्या म्हारा
लाला रे ब्याह रो हरक घणो
असर्‌या पसर्‌या ई मूंग ढूल्या आवतां ओ उदेलाल
जी रपट पडया थां क्यूं रपट्या म्हारा
लालारो ब्याव रा हरक घणो
असर्‌या पसर्‌या ई मूंग ढूल्या आवतां ओ माता बाई
रपट पडया बेटा थारा ब्याव रो हरक घणो
मूँतो रोटी खाणो भूल गई
असर्‌या पसर्‌या ई मूंग ढूल्या आवतां ओ बेणा बाई
रपट पडया वीरा थारा ब्याव रो हरक घणो
मूँ तो कपडा पैरणो भूल गई
असर्‌या पसर्‌या ई मूंग ढूल्या आवतां ओ काकीसा
रपट पड्या लाला थारा ब्याव रो हरक घणो
मूँ तो कपडा पैरणो भूल गई
असर्‌या पसर्‌या ई मूंग ढूल्या आवतां ओ भुवाजीसा
रपट पडया म्हारा लाला रा ब्याव रो हरक घणो
मूँ तो कांचली पैरणो भूल गई
मूँ तो घागरो पैरणो भूल गई (६२)

उपरोक्त गीत में घर की सफाई करने में तल्लीन परिवार को मुँग बिखरे हुए हैं उसकी भी खबर नहीं हैं । मुँग पर चलने से माता-भाई, बहन, चाचा-चाची, फूफी-फूफा सभी गिर जाते हैं तब वर या कन्या पूछते हैं, आप क्यों गिर पडी ? तब उत्तर मिलता है कि तेरे विवाह का उत्साह इतना है कि जमीन पर क्या पडा है उसका भी ध्यान नहीं रहता ।

गणेश स्थापना के दिन से ही स्त्रियाँ घोडी या मुकुट और सुहाग के गीत गाने लगते हैं । घोडी के गीत वर के घर पर और सुहाग के गीत कन्या के घर पर गाये जाते हैं । यहाँ दिया गया घोडी का लोकगीत देखें :

घोडी गीत

थां कारण वसुदेवजी रा छावा, री घोडी ईन्द्र पठाई,
सवा लाख री सोहे कलंगी मोर्त्यां लूम लाई
रै आ घोडी नाचणी अेजी अे बना री घोडी कूदणी,
तेजण नाचै नव नवताळ, बछेरी कूदै नव नवताळ.
रुपै रे कुंडे दाल खवाडूँ रै नागरबेल चराउं
घोडी चमके, किसनजी डरपै, सखियां मंगल गावै
रै आ घोडी नाचणी अेजी अेजी अे बना री घोडी कूदणी.(६३)

बारात में जाने के लिए वर सज-धज कर तैयार हो गये हैं । घोडे पर असवार होते हैं तब स्त्रियाँ गीत गाती हैं । उस गीत में घर की घोडी की प्रशंसा की गई है ।

विवाह के वक्त घोडी का मान और महत्त्व बढ जाता है । घोडी को विवाह के प्रत्येक घर लाड लडाये जाते हैं । यहाँ घोडी का लोकगीत देखिए :

घोडी गीत

थूँ तो चाल घोडी चाल, म्हारा दादोसा आगै चाल
मैं तो नहीं चलूं महाराज, म्हारा धर्रां धर्रां छे लाड
घोडी चाबै चिणा की दाळ, राईबर जीमै बूरा भात
राईबर रथ बैल्या सिणगार, बनडी ऊभी जोवे बाट
थूँ तो चाल घोडी चाल, थूँ तो मंदरी मंदरी चाल.(६४)

घोडी चलने में बडे नखरे करती है, और चलने की मना करती है तब वर घोडी को बिनती करता है कि तेरी दादी के आगे चलना । मेरी बहन खडी खडी राह देख रही है वहाँ चलना ।

घोडी के लोकगीत के साथ साथ सेवरा-सेहरा-मुकुट के गीत भी लोकगीत में है वो भी देखिए :

सेवरा (मुकुट)

सेवरो म्हारा रंगीला बना रै सर सोहे
आछ्यो गूंथ लाई रै हो, रायजादी रा पालण सेवरो हा
आज म्हारी आंखडली नै फरूके सत अेक जाणो रै
ये रायजादी रा ये कांकण आविया हो रा
हो कांकड करिया नै झुकाया सत एक जाणो रै
हो रायजादी रा ये मालण सेवरो हो रा
आज म्हारो हथलैवो रे फरूके सत अेक जाणो रै
हो रायजादी रा वे तोरण आईया हो रा
तोरण आरती नै संजोया सत अेक जाणो रै
हो रायजादी रा ये, मालण सेवरो हो रा.
आज म्हारी बांयलडी नै फरूके सत अेक जाणो रे
हो रायजादी रा ये माया में आयो रा,
ये माया मैं मंगल गाया सत अेक जाणो रै
हो रायजादी रा ये मालण सेवरो हो रा
आज म्हारो घर हर जीवडो कांपे सत अेक जाणो रै.
हो रायजादी रा ये चंवर्‌या में आईवा हो रा
ये चंवर्‌या मैं चंवर नै ढूलाया सत अेक जाणो रै.
हो रायजादी रा मालण सेवरो हो रा
आज म्हारी जांघलडी नै फरूके सत अेक जाणो रै,
हो रायजादी रा ये परण आईवा हो रा
ये जीर्त्या रा ये ढोल नै घोराया सत अेक जाणो रै
हो रायजादी रा ये मालण सेवरो हो रा.(६५)

प्रस्तुत लोकगीत में वर के कुटुंब-परिवार की प्रशंसा की जाती है । मालिन (मालण) वर के लिए फूल का सेहरा-मुकुट बनाकर लाती है । कन्या के घर पर सुहाग-कामण के गीत गाये जाते हैं ।

सुहाग - कामण

लाडी की दादी माँ दाळ दळो ने उडदा की
थै उडद मूँग सा दळ ल्यो
सुहाग कामण करल्यो,
सुहाग लाग्या अल्ल ये कामण लाग्या पल्ल(६६)

कन्या की चाची, मामी, बहनें, फूफी, भाभज, नानी इत्यादि के नाम लेकर गीत आगे बढाया जाता है । प्रस्तुत गीत में कामण यानीकि सम्मोहन (वश करना) का गीत है । दुल्हन के परिवारजनों और सगे-संबंधी स्त्रियाँ प्रार्थना करती है कि दुल्हन उनके होनेवाले पति (दुल्हा) को सम्मोहित (वश) करने में सफलता प्राप्त करें ।

प्रकृति स्वरूप स्त्री प्रेम की आधी शक्ति है । स्त्री प्रेम से पुरुष को वश करती है । यही जादू और यही कामण किये जाते हैं ।

वर को राजस्थान में ''बन्ना'' या ''बींदराजा'' तथा वधू को ''बन्नी'' या ''बींदणी'' कहा जाता है । विवाह के पावन अवसर पर स्त्रियाँ वर-वधू के सेंकडों गीत गाती है । वर के घर से विवाह प्रारंभ से विवाह संपन्न तक गीत गाये जाते हैं और वधू के घर फेरे लिये जाय तब तक गीत गाये जाते हैं ।

यहाँ हम ''बन्नो'' के घर गाये जाने वाले लोकगीत देखें ।

बन्नो

बनासा हसती तो कजली देख रा भल लाई जो
हो म्हारा दशरथ राजकुमार म्हारा नंदजी रा राजकुमार
बनडी आपरी चढ चोबरर्यां में झांके हो बना
बनासा घोडला तो काठियावाड रा भल लाई जो. हो म्हारा....
बनासा सेवरा तो चम्पाबाग रा भल लाई जो. हो म्हारा.....
बनासा पडला तो पूरब देस रा भल लाई जो. हो म्हारा.....
बनासा चुडला तो हस्ती दांत रा भल लाई जो. हो म्हारा.....
बनासा गैणला तो रतन जडाव रा भल लाई जो. हो म्हारा.....
बनासा बनडी तो पूरब देसरा भल लाई जो. हो म्हारा.....(६७)

प्रस्तुत गीत में वर को कहा जाता है कि हाथी तो काजली देश का लाना । घोडा काठियावाड से लाना । सुवरा-सेहरा-मुकुट चम्पाबाग का बनाना । पडले पूरब देशमें से लाना । चूडले हाथी-दांत के और उसमें रत्न जडित लाना । और कन्या पूरब देश की लाना । उस तरह स्त्रियाँ गीत में श्रेष्ठ वस्तुएँ लाने के लिए कह रही है ।

इसी तरह दूसरा गीत भी देखिए :

बन्ना

ईक बार खोल दिखाय, तेरी रुमाली नै
बना सीस तुम्हारे पेचा
बना कान तुम्हारे मोती
जुल्फी पर किसन मुरार की ईंदिरा गांधी नै
बना सीसराम तेरी दादी
दुनियाँ की छुडा दी गादी ईंदिरा गांधी नै
बना सीसराम तेरी ताई
दुनियाँ की छूटा दई दाई.
ईक बार खोल दिखाय, तेरी रुमाली नै

बना सीसराम तेरी माता
दुनिया का छूटा दिया जापा
अेक बार खोल दिखाय....
बना सीसराम तेरी काकी
दुनिया की छूटा दी चाकी ईंदिरा गांधी नै
ईक बार खोल दिखाय, तेरी रुमाली नै
बना सीसराम तेरी भाभी
दुनिया की छूटा दी चाबी ईंदिरा गांधी नै
ईक बार खोल दिखाय, तेरी रुमाली नै
बना सीसराम तेरी बुआ
खेतां में खुदा दिया कुआं ईंदिरा गांधी नै
ईक बार खोल दिखाय, तेरी रुमाली नै
बना सीसराम तेरी बैणा
पीतल का चला दिवा गैणा ईंदिरा गांधी नै
ईक बार खोल दिखाय, तेरी रुमाली नै
बना गळै तुम्हारे डोरा
बना हाथ तुम्हारे घडिया
गर्दन पर किसन मुरार की ईंदिरा गांधी नै
ईक बार खोल दिखाय, तेरी रुमाली नै
बना पाँव तुम्हारे जूता
चलगत पर किसान मुरार की ईंदिरा गांधी नै
ईक बार खोल दिखाय, तेरी रुमाली नै
बना अंग तुम्हारे सूट
टाई पर किसन मुरार की ईंदिरा गांधी नै
बना संग तुम्हारे बनडी
जोडी पर किसन मुरार की ईंदिरा गांधी नै
ईक बार खोल दिखाय, तेरी रुमाली नै (६८)

प्रस्तुत गीतमें स्व. श्रीमती इन्दिरा गाँधी को एक सशक्त व्यक्तित्व के रूप में आलेखित किया गया है । वर्तमान युग में वर जैसी टाई-सूट-रुमाल-घडी इत्यादि वस्तुओं से शोभित है । ये सभी चीजें इस युग की ही देन है ।

इसी तरह बन्नी का एक गीत और भी देखिए :

बन्नी

बनी नो से कलिया नथ पर झोला खाय रही
झोला खाय रही ओ झोला खाय रही. बनी....
मेवा लाय रही ओ गोद भराय रही
पडला लाय रही ओ कोर देवाय रही
चुडला लाय रही ओ बांय पेराय रही
गैणला लाय रही ओ लाल जडाय रही
बनडो लाय रही ओ जोड बणाय रही. (६९)

विवाह की सभी रसमें हर्षोल्लास में की गई है । गीत में वर्णन किया गया है कि दुल्हन की गोद मेवा से भरी जाती है । चूडियाँ-गहने ये सभी दुल्हन को पहनाने की चीजें वर लेकर आता है । देखिए :

बन्नी

हो बनी मोहे मंडप के बीच मिलना
पहनाउ तुम्हे सोने की मुंदरिया, को बनी.....
शीश बनी के सेहरा सोवे
हो बनी तोरा टीका संभाल रखना, हो बनी....
कान बनी कैं अेरिंग सोहे
बनी तोरी बाली संभाल रखना, हो बनी .....
गले बनी के कंठला सोहे
बनी तोरी कंठी संभाल रखना, हो बनी.....
हाथ बनी के कंगन सोहे
बनी तोरी घडिया संभाल रखना, हो बनी.....
जोड बनी के बनडा सोहे
बनी तोरी जोडी संभाल रखना. हो बनी..... (७०)

लोकगीत में वर द्वारा कन्या को कहा जाता हे कि मंडप के बीच ये सभी आभूषण पहन के आयें । स्त्रियाँ गीत गाती हुई कन्या को कहती हैं कि ये तेरे आभूषण और तेरे पतिदेव को संभाल के रखना । देखिए :

बन्नी

धूप पडै छै लाडी गिरद उडे छै
गोरो गोरो मुखडो कुमलावै.
जोरावर लाडी धूप पडे दरवाजे
अणी दरवाजे लाडी नोपत बाजै, गोरो गोरो.....
मार्थां नै मेंमद लाडी अजब बण्यो छै. गोरो गोरो.....
कानाँ नै झालज अजब बण्यो छै. गोरो गोरो.....
हिवडा ने हांसज लाडी अजब बण्यो छै. गोरो गोरो.... (७१)

इस गीत में काल्पनिक वार्तालाप किया गया हैं । उसमें वर, कन्या के श्रृंगार की प्रशंसा करते हुए कहता है कि बाहर कडी धूप है, धूल (रज) उड रही है । उनसे तुं बचकर रहना और बाहर निकलना मत । इससे तेरा सौंदर्य अप्रतिम बना रहेगा ।

विनायक यानीकि गणेश स्थापना के बाद सांकडी गणेश होता है । उसमें कांकण-दोरा बनाया जाता है । डोरे लाल रेशमी वस्त्र या लच्छा से तैयार किया जाता है । उसमें एक कोडी, लोखंड की वींटी, लाख की वींटी और लाल कपडे में नमक और राई बांधी जाती है । उसी तरह कांकण -डोरा (कंगन) तैयार किये जाते हैं । वर के हाथ और पैर में ये कंगन बांधे जाते हैं, और कन्या के हाथ में ही बांधे जाते हैं । ऐसा बांधने से किसी की नजर नहीं लगती । वर और कन्या के शरीर पर हल्दी लगाने से आकर्षक लगते हैं । वर और कन्या को ये मांगलिक अवसर पर कोई विघ्न न आये और किसी की कुदृष्टि न पडे या कोई अनिष्ट न हो जाय इसलिए ये कंगन वर-कन्या की सलामती -सुरक्षा के लिए बाँधे जाते हैं ।

जिस दिन से वर-कन्या को कंगन बाँधे जाय उस दिन से खट्टा और तेज खाना बंद हो जाता है । उसी दिन से जागरण गीत शुरू हो जाते हैं, जो विवाह तक चलता है । गणपति की पूजा के बाद जागरण गीत बंद किये जाते हैं ।

कंगन बंध जाने के बाद वर-कन्या के वहाँ प्रीतिभोजन का कार्यक्रम होता है । राजस्थानी में उसे 'बन्दोली' कहा जाता है । बन्दोली में संबंधीओं को निमंत्रित किये जाते हैं । वर उनके गाँव में और कन्या उनके गाँव में संबंधीओं को निमंत्रित करके बन्दोली रखा जाता है । उसी वक्त जागरण (बियाणा) गीत गाये जाते हैं । सुबह सूर्योदय के पहले ये गीत का आरंभ हो जाता है और वर-कन्या को घी-पतासा खिलाये जाते हैं ।

जागरण (बियाणा) गीत

उठ गौरी उठ सांवरि
थे तो उठो जी गपणतघर नार वियाणा
हो राजा राम का
थें तो उठो जी रामचन्द्रजी घर नार वियाणा
हो राजा राम का
थाने सूतां ना सरे
थांके घर छे जी सेवक रो ब्याव वियाणा
हो राजा राम का
थें तो उठो जी नन्दकिशोरजी नार वियाणा
हो राजा राम का
थांके घर छे जी बेटा रो ब्याव वियाणा
हो राजा राम का
घडिये ये घोड सगळा फिरे
बतलावो जी अशोक जी माय वियाणा

हो राजा राम का
दूध पिओ जी भतीया रो गोत बियाणा
मूत पियो जी सवासणा रो गोत बियाणा
हो राजा राम का.(७२)

वर के घर स्त्रियाँ सबसे पहले गणेशजी को ये गीत के माध्यम से जागरण के लिए आह्वान करती हैं बाद में वर के पिता, माता और अन्य सम्बन्धीओं को जागने को कहा जाता है ।

विवाह के पहले कंगन बाँधे जाते हैं और उनकी पूजा सम्बन्धी सामग्री लायी जाती है तब ये डोवडा (कंगन) गीत गाया जाता है ।

डोवडा (कंगन) गीत
पांच सोपारी ने पान राओ बिडला
जणी घर नूत्यो गजानंद जी वारे
बेगा आवजो .....
पांच सोपारी ने पान राओ बिडला
जणी घर नूत्यो वारे ब्रह्माजी
बेगा आवजो .....
पांच सोपारी ने पान राओ बिडला
जणी घर नूत्यो शिवजीने वारे
बेगा आवजो .....
पांच सोपारी ने पान राओ बिडला
जणी घर नूत्यो देवीलालजी वारे
बेगा आवजो .....
पांच सोपारी ने पान राओ बिडला
जणी घर नूत्यो रामचन्द्रजी वारे
बेगा आवजो .....(७३)

प्रस्तुत गीत में विवाह वाले घर पे सुपारी और पान के बीडले द्वारा विभिन्न देवताओं को न्यौता दिया जाता है और उनको वायुवेगे पधारने के लिए निमंत्रण दिया जाता है ।

विवाह के मुहूर्त के बाद जब वर और कन्या के हाथ में कांकण-दोवडा (कंगन) बांधे जाते हैं तब स्त्रियाँ गीत गाती है । विवाह के मुहूर्त पर बाँधे गये कांकण-दोवडा (कंगन) और उनके बनावट की प्रकिया का वर्णन किया गया है ।

कांकण-दोवडा (कंगन)
ई तो सूरजजी ओ कात्यो नान्हो सूत
ई तो राणादे ओ कात्यो नान्हो सूत

ओ रायजादा थे बांधोनी हटीला लाडा दोवडा
ई तो गजानंद जी ओ नानण वण वाविया
अणा हीदी सीधी ओ कात्यो नान्हो सूत
ओ रायजादा थे बांधोनी हटीला लाडा दोवडा
ई तो महादेवजी नानण वण वाविया
न्यारा पारवती जी कात्यो नान्हो सूत
ओ रायजादा थे बांधोनी हटीला लाडा दोवडा
ई तो सूरज जी नानण वण वाविया
यां रा राणादे जी ओ कात्यो नान्हो सूत
ओ रायजादा थे बांधोनी हटीला लाडा दोवडा
ई तो कूणीजी ओ कात्यो नान्हो सूत
ओ रायजादा थे बांधोनी हटीला लाडा दोवडा (७४)

वर और कन्या दोनों गणेश स्थापना के दिन कांकण डोर बाँधते हैं । वह बहुत रंगीन होते हैं । वर-कन्या के ये कांकण-सूत्र में कोडी, लोखंड की वींटी, लाख की वींटी और सुपारी आकार का फल इत्यादि वस्तुएँ बांधी जाती है ।

विवाह के शुभ अवसर पर वर की माँ अपने पियर (मायके) में न्यौता देने जाती है और कहती है कि विवाह में उनको सहकार दे । उस वक्त बत्तीसी (पियर न्यौता) के गीत गाये जाते हैं ।

बत्तीसी (पियर नोतरु)

या तो आई रे बत्तीसी म्हारा वीरा रे घर
दीज्यो म्हारी सैया जामण रो जायो वीर रा
या तो आई रे बत्तीसी म्हारे मामा रे घर, दीज्यो म्हारी....
या तो आई रे बत्तीसी म्हारे फूंफासा रे घर, दीज्यो म्हारी....
या तो आई रे बत्तीसी म्हारा जीजोसा रे घर, दीज्यो म्हारी.... (७५)

बहन द्वारा भाई को सब से पहले न्यौता दिया जाता है । बहन अपने साथ बत्तीस भात के पकवान (मीठाई) लेकर जाती है और कहती है कि तूं मामेरा (मायरा) लेकर जल्द आना । उस वक्त बीरा (वीरा-भाई) के लिए बहन गीत गाती हुई बिनती करती है ।

बीरा

बीरा, अेक बडलोरे दूजी पीपळी
ज्यारी अेक सरी सी छांव, बीरा, जावण
ज्याईसे कैको रुसणो.....
बीरा, अेक कुओ दूजी बावडी, ज्यारो अेक
सरीलो नीर.....

बीरा, अेक पीलो दूजी चूंदडी, ज्यारे अेक
सरीलो पोत.....
बीरा, अेक भाई री बेनडी, घोडे
तो बेडी जाय.....
बीरा, सात भाया री बेनडी
पगा उबाणी जाय.....(७६)

यहाँ बीरा नामक लोकगीत में भाई की ओर बहन की करुणा और स्नेह की मनोभावना को बोध के रूप में गीतबद्ध और स्वरबद्ध किया गया है । प्रस्तुत गीत में रूठे हुए भाई को बहन कहती है कि हे बीरा एक बरगद का वृक्ष है और एक पीपल का वृक्ष है लेकिन दोनों वृक्षों की छाया तो एक जैसी ही होती है । दोनों वृक्षों की छाया एक जैसी है तो हम दोनों भी एक ही माता-पिता के संतान है तो फिर तुं मुझ से नाराज क्यूं है ? उसी तरह बहन भाई को और अपने मायके वालों को न्यौता देती है ।

वर और कन्या को हररोज हल्दी का लेप लगाकर स्नान कराया जाता है । ये मांगलिक स्नान है । वर को बारात नीकले तब तक और कन्या को विवाह हो जाय तब तक पीठी यानीकि हल्दी लगायी जाती है । हल्दी का प्रयोग शरीर का वर्ण और सौंदर्य को निखारने के लिए होता है । ये काम सुहागिन महिलाएँ करती हैं । बाद में वर -कन्या को पाट (बाजोठ) पर बिठाये जाते हैं । बाद में मिट्टी के बरतन में तेल, हलदी, जव का आटा मिलाकर हलदी मिश्रित तेल को वर-कन्या की पाट (बाजोठ) के पास रख दिया जाता है । बाद में सुहागिन महिलाएँ ये तेल वर-कन्या के मस्तक, खभा, घूंटन और पैर पर लगाया जाता है । इस वक्त स्त्रियाँ पीठी गीत हलदी-गीत गाती है ।

पीठी गीत

सुंदा गुढा रो सोगटडो राव चम्पेली रो तेल
हो हरियाले बनडा करलो नी सोगटडो
थाणा माताबाई संजोयो सोगटडो
जाण्या थारा काकासा रा लाड हो
नादानी बनडा करलो नी सोगटडो
थाणा भाभीसा संजोयो सोगटडो
जाण्या थारा दादासा रा हेत हो.... नादानी बनडा.....
थाणा बेन्या बाई संजोयो सोगटडो
जाण्या थाणा जीजोसा रा लाड हो.... नादानी बनडा
थाणा मामीसा संजोयो सोगटडो
जाण्या थाणा मामा सारा लाड हो.... नादानी बनडा
थाणा नानी मा संजोयो सोगटडो
जाण्या जाणा नानासा रा लाड हो.... नादानी बनडा (७७)

प्रस्तुत गीत में वर को आग्रह किया जाता है कि अपने प्रिय संबंधीओं ने अपने लिए (उबटन) (लेप) बनाया हैं, जिसे लगाने से आपकी त्वचा निखर उठेगी । इस वक्त महिलाएँ उबटन (पीठी) गीत गाती है । देखिए :

उबटन (पीठी)

गेहूं अे चणा को उबटणो
आओ म्हारी दाद्या मायां देखल्यो
आओ म्हारी काकी भाभी देखल्यो
या देख्यां सुख होय
आछ्यो लाडो बेठ्यो उबटणो (७८)

गेहूँ और चने के मिश्रण से उबटन तैयार किया जाता है । वर की दादी, माँ और चाची सभी वर को उबटन लगाते हैं तब सब को देखने को बुलाते हैं क्योंकि ऐसा करने से उनको सुख की प्राप्ति होती है । उसी वक्त स्त्रियाँ हलदी गीत गाती है ।

हल्दी

म्हारी हल्दी रो रंग सुरंग निपजै मालवै
लगा अे सायजादी उबटणो थारा उबटणा में बास घणी
यो तो तेल चंपेल चम्पा की काळी, थारी माता संजोयो उबटणो
थारा पितासा रो हेत घणो थारी बैणा संजोयो उबटणो
थारा जीजोसा रो हेत घणो थारी मामीसा संजोयो उबटणो
थारा मामासा रो हेत घणो थारी मामीसा संजोयो उबटणो
थारा दादोसा रो हेत घणो थारी भुजाईसा संजोयो उबटणो
खळहळ खळहळ नदिया जोवै सायजादी लाडी मलमल न्हावसी
केवर उतरेला समंदी री पोल्यां के पचरंगी पल्या जी
राईवर उतरेला बागा में ये ब्याई समंधीजी री पोल्या जी(७९)

प्रस्तुत गीत में कहा गया है कि हमारी हलदी मालवा प्रदेश से लायी गई है । उसका रंग काफी तेज है । उसमें से बना हुआ उबटन में चंपा का सुवासित तेल डाला है । इसीलिए उबटन महक उठा है । ये उबटन कन्या के सभी घरवालों ने स्नेहपूर्वक तैयार किया गया है । उसको लगाने से कन्या के तन (शरीर) और मन महक उठेगा । गीत में पिताजी, जीजाजी, मामाजी, दादाजी सब को कन्या वहाली लगती है ।

राजस्थान में विवाह के समय बहन या फूफी उनके भाई और भतीजे की आरती उतारती है । आरती एक मांगलिक लोकगीत है ।

आरती

कोठा जी उपर कांगरो, दूधां उपर दई ओ
नणदबाई करो रा कंवर री आरती ओ
म्हे कूंकर करां आरती रे बाई बसे परदेस, नणदबाई.....
लूलजी मूंगो मालवे रे, बेन बसे परदेस, नणदबाई.....
गाया देस्यां डोठ से रे, भेस्या की छे न पार, नणदबाई.....
डांवे जल री आरती रे जीवणे उतारो लूण, नणदबाई..... (८०)

बहन को कहा जाता है कि तेरे भाई (वीरा) का विवाह है इसलिए उसकी आरती तुझे ही उतारनी है । लेकिन बहन बहुत दूर रहती है इसलिए वो आ सकती नहीं हैं । इसलिए भाई बहन को कहता है कि मैं तुझे देढसो गायें और अनगिनत भेंसो की भेंट दूंगा लेकिन तूं जरूर आरती उतारने को आ जाना ।

विवाह और जन्म के समय गणेशजी को निमंत्रित किये जाते हैं तब से लेकर के विवाह की रसम पूरी हो जाय तब तक वर या कन्या आरती उतारते हैं तब ये गीत गाया जाता है ।

दोये आना पाना ये म्हारो फूल खंडेर को
किस्तूरी परमल ये, म्हारो आगण रच्यो
मोत्यां चौक पुरावो ये सिंहासण बेठ च्यो
जंडे आछ्वो लाडो बेठ्यो ये बुआ करे आरत्यो (८१)

प्रस्तुत गीत में सभी स्त्रियाँ बहन को कह रही है कि तेरे भाई के घर का आँगन कस्तूरी सुगंध से सुवासित किया गया है । घर का चौक मोतियों से सिंगारा है और आपके भाई सिंहासन पर बैठे हैं । फूफी उनकी आरती उतार रही है ।

महेंदी, हलदी, कंकु ये सभी चीजों को मांगलिक मानी जाती हैं । विवाह की अगली रात को महेंदी रात कहते हैं । क्योंकि रात को वर-कन्या को महेंदी लगायी जाती है । महेंदी सुहाग का प्रतीक है । विवाह के अवसर पर भाभज, चाची, बहन और सहेलियाँ महेंदी लगाती है और महेंदी गीत गाती है ।

मेंहदी गीत

मेहंदी दीज्यो रे सवागण थारा हाथ प्रेमरस मेंहदी राचणी,
मेहंदी दीज्यो रे भेरूलाल जी वाली रै हाथ
म्हारा हिवडा उपर मलै प्रेमरस मेंहदी राचणी
कणी मांड्या ओ सवागण थारा हाथ, प्रेमरस मेंहदी राचणी
मेहंदी दीज्यो प्रणावल जी, वाळी रे हाथ
म्हारा हिवडा उपर मले प्रेमरस मेंहदी राचणी. (८२)

महेंदी ये राजस्थान के सभी प्रसंगों में लगाई जाती है । विवाह की महेंदी की मान्यता है कि कन्या के हाथ में महेंदी का रंग घाटा आये तो उनका पति उनको ज्यादा प्यार करता है ऐसा कहा

जाता है । यही अभिव्यक्ति स्त्रियों ने उपरोक्त गीत में की है ।

बनोला - बनोली
कठै चाल्या ओ बना कठै चाल्या
ओ लूळ लूळ ती दुपैरी मे कठे चाल्या ओ
थारै आयो अे बनी थारै आयो अे
थारा बाप बुलायो बनी थारै आयो अे
धीरा बोलो रा बना धीरा बोलो रा
म्हारो बाप सुणैला तो डंड लेस्या अे
डंड देस्या अे बनी डंड देस्या अे
थारी मांय बुलायो बनी मुंई आयो अे (८३)

प्रस्तुत गीत में बन्नी-बन्ना को (राजस्थान में वर-कन्या को बन्नी-बन्ना कहा जाता है) पूछ रही है कि ऐसी कडी धूप में कहाँ जाते हो ? तब बन्ना उत्तर देता है कि तेरे पिताजी ने मुझे बुलाया है इसलिए मैं आया हूँ । बन्नी कहती है कि धीरे से बोलो मेरे पिताजी सुन लेगे तो दंड देंगे । तब बन्ना कहता है कि मैं दंड भरने को तैयार हूं लेकिन तेरी माँ ने बुलाया है इसलिए मैं आया हूं ।

बनोली का गीत
म्हारा नवल बना रो ब्याव,
रोशनी बिजळी की चाहिये
पेचां पैरो नवल बना सा,
देखो ईस बनडे की सेखी
दिल पर जरा नहीं है सेखी.... म्हारा.....
बाजा अंग्रेजी चाहिये,
घूमना मोटर का चाहिये,
जीमणा लाडू का चाहिये,
रण्ड्या जयपुर की चाहिये. म्हारा.....
चेरा पैरो नवल बना सा
देखो ईस बनडे की सेखी. म्हारा.....
घडिया पैरो नवल बनासा,
देखी ईस बनडे की सेखी
दिल पर जरा नहीं है सेखी, म्हारा.... (८४)

विवाह से पहले वर को ढोल-नगाडा के साथ सडक या रास्ते पर फिराया जाता है । उसी समय महिलाएँ वर की चाहत के गीत गाती है । अपने विवाह के लिए अन्य सभी को आनंद-हर्ष है इसलिए वर को विशेष सेंकडो बन्नी-बन्ना बनाये हैं ।

चाक पूजन

कुम्हार के वहाँ महिलाएँ ढोल-नगाडा बजाते -बजाते चाक-पूजन और मिट्टी के बरतन लेने के लिए जाती हैं । स्त्रियाँ कुम्हार के चाक को अक्षत (चावल) और मोतियों से पूजन करती है और चाक-पूजन का गीत गाती है ।

कुम्हार का जी बासण घडबो छोड द्यो
कुम्हार का जी आडा तो ढेढा ओबरा
कुम्हार का जी बासण घडबो छोड द्यो
देण कह्यो छे खोपरा रै देण लग्यो ठीकरी को टूक
कुम्हार का जी बासण घडबो छोड दे
कुम्हार का रे बासण घडबो छोड दे, देण कह्यो छ नारंगी डेरे
देण लग्यो अमरुद को टूक
कुम्हार का जी बासण घडबो छोड द्यो. (८५)

चाक पूजन के बाद कुम्हार के घर से कलश और मिट्टी के बरतन लिये जाते हैं । महिलाएँ सिर पर कलश रखकर ढोल-नगाडे बजाते बजाते घर आती हैं । उस वक्त कलश गीत गाया जाता है ।

कलश गीत

कुमार्‌या रो बेटो संदेश
कसर्सा रा जतन कराओ
शरणाई बाजे गोद में
माळीडा रो बेटो संदेस
बीडला रा जतन कराओ, शरणाई.....
बजाजी रो बेटो संदेश
पडळा रा जतन कराओ. शरणाई .....
जोसीडा रो बेटो संदेश
लगना रा जतन कराओ, शरणाई.....
सोनीडा रो बेटो संदेश
गैणला रा जतन कराओ. शरणाई..... (८६)

घर में विवाह प्रसंग होने के कारण सभी कारीगरों (गुजराती में सभी वसवायां) को संदेश भेजा जाता है । जैसे कि कुम्हार, माली, जोषी, सोनी (सुनार) सभी को निमंत्रण दिया जाता है । क्योंकि विवाह संबंधी तैयारियाँ में सभी का अलग-अलग योगदान रहा है ।

घर में किसी भी मंगलकार्य का आरंभ करने से पहले घर पूर्वज (पुरखों) देवताओं को निमंत्रण दिया जाता है । निमंत्रण देने के लिए सारी रात गीत गाये जाते हैं । पहले दिन दीप प्रागट्य का गीत गाया जाता है । देखिए :

बाई ने बेणा मेली ओ दिवळे वाट
नंदकिशोर लालजी री राण्यां घी पूरयो
जी बलमा रा दिवला चार पोयर री रात,
जी आज पूरवर्जां रो रातीजगो
बाई जस बाईसा मेली ओ दिवळे वाट
डांगीलालजी रो गण्या घी पूरयो
बल मारा दिवला चार पोयर री रात
आज सती पूरवर्जां री रातीजगो
बाई कलावती बाई मेली ओ दिवळे वाट
सूर्यानारायणजी री राण्यां घी पूरयो जी,
बाई मन्नूबाई मेली ओ दिवळे वाट.
सत्यनारायणजी री राण्यां घी पूरयो जी,
बल म्हारा दिवला माजल सी रात,
परभाते ओ दिवळे सग चढे (८७)

प्रस्तुत गीत में घर की सभी बहन-दीकरी द्वारा दीप में वाट (बाती) रखी जाती है । बहुएँ उसमें घी पूरती है और दीप को कहती है कि आज जागरण की रात है इसलिए चारों प्रहर तक अखंड रहना । क्योंकि आज हमारे घर पर पूर्वज (पुरखे) देवता पधारने वाले हैं । इस वक्त गीत गाया जाता है ।

घ्याडी माता कुलनी देवी
माता देर नगारो चढ गई
माता झालर कै झणकार
माता घ्याडी ने अगड गढावस्या
माता राखेला हिवडा रे माय
माता घ्याडी ने अगड गढावस्या
माता अगड गढास्या पाट पुवास्यां
माता ये कुण जाति थारे आपसी
माता ये कुण ल्यावे थारे भेट
माता ध्याडीने.....
माता सत्यनारायणजी जाति थारे आय,
माता सूरजनारायणजी ल्यावे थारे भेट
माता ध्याडीने.....
माता पुवा ये चढावा थारे पापडी

माता लापसी को छे थारे भोग
माता ध्याडीने.....
माता रुपया चढावा थारे रोकडी
माता नारियल की छे थारे भेट
माता ध्याडी ने अगड गढावस्या (८८)

प्रस्तुत गीत में कुल की देवी ध्याडी माता का आह्वान किया जाता है और उनको चडाने वाली भेंट और भोग का उल्लेख किया गया है ।

विवाह के अवसर पर मोसाळ की ओर से आयी हुई भेंट को मामेरा (राजस्थान में 'मायरा') कहा जाता है । विवाह में वर या कन्या के मामा ये कार्य करते हैं । उनको अक्षत (चावल) खिलाये जाते हैं । विवाह पर मामा उनकी बहन को चूंदडी और बालकों को वस्त्र देते हैं । महिलाओं के लिए यह अवसर बहुत भावुकता पूर्ण होता है । इस वक्त महिलाएँ 'मायरा' का गीत गाती है ।

मायरा का गीत

वीरा घणी छबी सूं म्हारे आज्यो
वीरा आप आज्यो ने भावज लाजो,
सिरदार भतीजा लारे ल्योज्यो री
म्हारा घणी झबी सूं म्हारे आज्यो
वीरा माथा ने मैमद लाजो जी
म्हारी रखडी रतन जडाज्यो जी. वीरा घणी....
वीरा मुखडा ने वेसर ल्याज्यो
म्हारी टोलडी रतन जडाज्यो जी, वीरा घणी....
वीरा काना ने झाळज लाजो
म्हारे जुटणा जोड देवाज्यो जी, वीरा घणी.....
वीरा हिवडाने हांसज ल्याज्यो
म्हारे बैया जूडलो ल्याज्यो
म्हारे गजरे मुजर लगाज्यो, वीरा घणी.....
वीरा पगल्या ने पायल लाजो,
म्हारे घुंघरी धमक लगाज्यो जी, वीरा घणी..... (८९)

विवाह के अवसर पर भाई बहन के घर मायरा (मामेरा) लेकर आता है । बहन भाई को कहती है कि समग्र परिवार सज-धज के विवाह में आना और मेरे लिए वस्त्र (कपडे) और गहनें अवश्य लेकर आना ।

इस तरह बहन अपने भाई को मामेरा- मायरा लेकर आने को कहती है ।

बधावो

सोना रे रुपारी घडी आज रे हगामी ढोला पामणा रेलो
हो राज म्हारे किरपा कीदी छे रघुनाथ रे
हगामी ढोला पामणा रे लो
हो राज म्हारे गेंद गला रो रुडो हार रे हगामी ढोला.....
हो राज म्हारे ठीक बण्यो छे रुडो हार रे हगामी ढोला..... (९०)

प्रस्तुत गीत जमाई (दामाद) के स्वागत के लिए गाया जाता है । जमाई के आगमन से महिलाएँ बहुत प्रसन्न है और कहती है कि हमारे शुभ अवसर पर आप यहाँ आकर हम पर कृपा की है ।

मांडपा (मंडप) गीत

आला लीला बांस कटावो मांडपो छैवायो रा
हो मोरा बाबुल जायी छोटी सी परणाई रा
हो मारा बाबुल रा.
दूरी दीनी दूरी दीनी, दीनी कोस पचास रा
वेगी तो म्हारी खबर लीज्यो, कापडा में सिर रा
हो मोरा बाबुल जायी मांडपो छैवायो रा,
हो मारा बाबुल रा.
नाना से म्हाने मोटा कीना काचा दूध पिलाय रा
आया साजन ले गया म्हारी माता रा थाण छुडाय रा
हो मारा बाबुल रा.
थाळी दीनी लोटो दीनो, दीनी सोवन थाल रा
अेक न दीनो बाटको म्हाने सासुजी मोसा बोले रा
हो मारा बाबुल रा.
चांदी दीनी सोनो दीनो दीनो रतनो रा भंडार रा
अेक न दीनी कांगसी म्हारा ससुराजी बोले बोल रा
हो मारा बाबुल रा. (९१)

प्रस्तुत गीत में विवाह के लिए मंडप बनाने और कन्या की भावनाओं का चित्रण किया गया है ।

बन्ना

हो बना हालो मंडप मे लग रई बिजळी गेस
बिजळी गेस की अजब रोशनी रा
उड रया अत्तर अभीर, हो बना.....
नवल बनाजी ने पागा भी सोवे रा

उड रया अत्तर अभीर, हो बना.....
नवल बनाजी ने बनडी भी सोवे
उड रया अत्तर अभीर, हो बना.... (९२)

प्रस्तुत गीत मांडवा (मंडप) के वक्त पर गाया जाता है । गीत में (बन्ना) वर को सुशोभित आभूषण और कन्या का उल्लेख किया जाता है । साथ साथ मंडप में मोजूद आधुनिक व्यवस्था जैसे कि, रोशनी, सुवासित द्रव्यों की महक और उडता हुआ गुलाल का वर्णन किया गया है ।

मंडप गीत :

हो म्हारा माणीगर, घण ने रंगाय दीज्यो पोमचो
हो म्हारा साईनाजी गोरीने रंगाय दीज्यो पोमचो, हो म्हारा.....
ई पोमचिया, रो राणी भटियाणी ने सौरवे रे
म्हारा मोतीयावाळा, हो रे म्हारा माणीगर
घण ने रंगाय दीज्यो पोमचो, हो म्हारा.....
उदियापुर अवधपुरी जनकपुरी जोधाणे
मोतियावाळा जी हो रे म्हारा माणीगर
घणने रंगाय दीज्यो पोमचो, हो म्हारा.....
ई पोमचिया ने देख्या दांतण तोडू म्हारा उगता सूरज
म्हारा दखणी रा दिवळा, ओ म्हारा उजळदंती रा बालम
घण ने रंगाय दीज्यो पोमचो. हो म्हारा..... (९३)

प्रस्तुत गीत वर (बन्ना) जब मंडप में आता है तब गाया जाता है । गीत में बन्ने को क्या क्या चाहिए उसका वर्णन किया गया है ।

फेरा गीत :

पेलो तो फेरो फरजे लाडी
दादोसा री प्यारी
दमडा रा लोभी ओ दादासा
कीदी री पराई
दूजो फेरो फरजे लाडी
मामासा री प्यारी
दमडा रा लोभी ओ मामासा
कीदी री पराई
तीजो फेरो फरजे लाडी
काकासा री प्यारी
दमडा रा लोभी ओ काकासा
कीदी री पराई
चोथो फेरो फरजे लाडी

वीरासा री प्यारी
दमडा रा लोभी ओ वीरासा
कीदी री पराई (९४)

प्रस्तुत गीत में कहा गया है कि धन के लालची परिवारजनों ने सात फेरे लगाकर कन्या (दीकरी) को पराई कर दी गई ।

विवाह संस्कार के लिए जो मंडप तैयार किया जाता है उसे चंवरी (चँवरी) कहते हैं । इस चँवरी गीत को देखिए :

चँवरी गीत

स्थाई - धरम करो म्हारा धरमियो काका सा
याही धरम री वेला ओ राज
लेणो देणो चमर्‌या में काकासा
पछे झूंटियो बाता रा
धरम करो म्हारा मामासा
याही धरम री वेला ओ राज
लेणो देणो चमर्‌या में मामासा
पछे झूंटियो बाता रा
धरम करो म्हारा धरतियो ओ बीरा जी
याही धरम री वेला ओ राज
लेणो देणो चमर्‌या में वीरा जी
पछे झूंटियो बाता रा (९५)

प्रस्तुत गीत में जब कन्या का विवाह होता है तब वर और कन्या के सामने मंडप में ही कन्यादान दिया जाता है । कन्यादान का समय शुभ माना जाता है । कन्यादान के शुभ अवसर पर चाचा, मामा, और वीरा (भाई) को दान करने को कहा जाता है ।

फेरे सम्पन्न होने के बाद वर-कन्या जुआ-जुई खेलते हैं । उनका हेतु किस में कितना है दम देखने का है ।

जमाई जब भोजन के लिए बैठते हैं तब स्त्रियाँ यह गीत गाती है ।

जवाई गीत

हा रे बाला, ईन सरवारियां री पाळ
जुवाई धोवे धोतिया जी म्हारा राज
हा रे बाला, न्हाय धोय कराया असनान
जुवाई जासी सासरे जी म्हारा राज (९६)

प्रस्तुत गीत में जमाई को कहा गया है कि जब आप अपनी सासरी में जाओ तब व्यवस्थित स्नान कर के और धूले हुए कपडे पहन के जाने को कहा गया है ।

जब कन्या-दीकरी को बिदाई देने का समय होता है तब सभी के हृदय कांपते हैं । क्योंकि जो कन्या-दीकरी बीस-बीस वरस अपने घर रहकर बडी हुई है जो आज परायों को अपना करने जा रही है तब कैसी करुण वेला होगी !

बिदाई गीत

थारा बापा नुं काम कुण करहे रे हो लाडी रे बीना
थारा बापा नुं काम कुण करहे रे हो लाडी रे बीना
थारा माता जई जोई ने झुरहे रे हो लाडी रे बीना
थारा माता तो वाईदो कोण का रे हो लाडी रे बीना
थारा माता ले जाई जोई झुरहे रे हो लाडी रे बीना
थारा बापा नुं काम कुण करहे रे हो लाडी रे बीना
थारा माता नुं रोटला कुण करहे रे हो लाडी रे बीना
थारा बीनानुं नुं पाणी कुण भरहे रे हो लाडी रे बीना
थारी खेत में काम कुण करहे रे हो लाडी रे बीना (९७)

ग्रामीण बहनें कन्या (दुल्हन) को बिदाई देती हुई कहती है कि बहन ! तेरे पिताजी का काम कौन करेगी ? तेरे माता-पिता ऐसा सोचकर मनोमन दुःखी होंगे । तेरी माँ को रोटियाँ बनाने में कौन मदद करेगी ? तेरी बहन को कुएँ से पानी भरने में कौन मदद करेगी ? खेत में काम करने कौन जायेगा ? इसी तरह कन्या को कहा जाता है कि तुं सासरी में चली जायेगी तो फिर इस घर का ध्यान कौन रखेगा ?

बिदाई बन्नी की

बनी छोडो दादासा री आंगळी
बनी छोडो माताजी रो हेत कुंवर म्हारी उड जासी
बनी आयो परदेशी दावडो
हाथ पकड ले जाय कुंवर म्हारी उड जासी
बनी छोडो मामासा री आंगळी
बनी छोडो मामीसा रो हेत कुंवर म्हारी उड जासी
बनी छोडो जीजासा री आंगळी
बनी छोडो बेणा रो कुंवर म्हारी उड जासी
बनी छोडो फूफासा री आंगळी
बनी छोडो भुवासा रो हेत कुंवर म्हारी उड जासी (९८)

प्रस्तुत गीत में कन्या को कहा गया है कि अब दादा, मामा, जीजाजी, फूफा की ऊँगली छोडकर और माता, मामी, बहन, फूफी के हेत को छोडकर कन्या अब पराई हो जायेगी ।

विदाई गीत

हा रे नन्दकिशोर जी साळ सम्भाळ
कन्हैयो लाडी ले गयो

हा रे सत्यनारायणजी साळ सम्भाळ
कन्हैयो लाडी ले गयो
हा रे गोपाळजी रो जायो छे पूत
कन्हैयो लाडी ले गयो
हा रे गयो गयो सम्बन्धी री पोल
कन्हैयो लाडी ले गयो (९९)

प्रस्तुत गीत में कन्हैया यानीकि जमाई अपनी दीकरी को लेकर चला गया इसलिए नन्दकिशोर, सत्यनारायण, गोपालजी ऐसे सभी भगवान और देव-देवियों को उनकी सार-संभाल लेने को कहा जाता है । क्योंकि उनकी दीकरी को कन्हैया ले गया है । यानीकि दीकरी विवाह करके सासरे चली गई है इसीलिए परिवारजनों दुःख में डूब गये हैं ।

गुजराती और राजस्थानी विवाह गीतों में साम्यता

एक काल में 'मारु गुर्जर' प्रांत के नाम से पहचाना जाता और तेस्सितोरी ने जिस को 'पश्चिम प्रांत' के नाम से जिस की पहचान की गई है वो प्रदेश आज 'राजस्थान' और 'गुजरात प्रदेश' के नाम से जाना जाता है । एक काल में दोनों ही प्रांत एक होने के नाते से दोनों की संस्कृति में कई साम्य दिखाई पडता है । कालक्रम में ऐतिहासिक और भौगोलिक कारणोसर एवं भाषा के कारण दोनों प्रांत अलग होने से नामकरण भी अलग हुआ लेकिन परंपरित संस्कृति के कारण आज भी दोनों प्रांत में उतनी ही साम्यता दिखाई पडती है जैसे कि पहले थी । लोकगीतों के माध्यम से हम उनको समज पायेंगे ।

गुजराती और राजस्थानी लोकगीतों की तुलना करनी हो तो गुजराती लोक साहित्यकार श्री झवेरचंद मेघाणी के 'रढियाळी रात' की उक्ति का संदर्भ लेना आवश्यक है ।

''मानवहृदय एनुं एज छे. ए ज कारणे संसारभरना लोक-साहित्यमां सर्वत्र एकज अंतर्धारा वहेती रही छे. एमां केवळ भाषानी ज भिन्नता छे.'' (१००)

टूंक में कहा जाय तो गुजरात और राजस्थान सीमा प्रदेश से जुडा हुआ है इसलिए सांस्कृतिक क्षेत्र में बडी साम्यता दिखाई देती है ।

लोकगीतों को मनोरम कहे गये हैं इसीलिए वो मनोहर भी हैं । स्त्रियों में गाये जाने वाले लोकगीतों का अविरत विकास होता रहा है । उनका प्रमुख कारण गुजराती लोक साहित्यकार झवेरचंद मेघाणी ने ''रढियाळी रात'' में कहा है कि :

''नारी हृदयमां ज्यारे ज्यारे सुख-दुःख आशा-निराशा के उमंग-आघातनी प्रबळ लहरी उठी त्यारे ए गीतना रूपमां व्यक्त थई । ए पोताना सारा या बुरा कोईपण भावने निष्कपटपणे शब्दरुप कर्या एमां सरल छलहीनता छे । भाव गोपननी वृत्ति क्यांय नथी मळती ।''(१०१)

विवाह गीत गुजरात का सीमाडा पार करके पालनपुर से भी आगे नानी मारवाड में बसे हुए हैं । दूसरी ओर हकीकत यह है कि सौराष्ट्र की कई कोम-ज्ञाति मारवाड से गुजरात में आकर बसी हुई है इसलिए वहाँ के गीत भी यहाँ गाये जाते हैं । कई गीत तो वैसे ही वैसे हैं, सिर्फ मारवाडी

बोली की सामान्य छांट (अंश) है और सूर अलग हैं ।

गुजरात और राजस्थान में विवाह के वक्त सबसे पहले गणेश स्थापन किया जाता है । उसी वक्त गुजरात में गाये जाने वाले गणेश स्थापन के गीत के साथ राजस्थानी विनायक गीत के साथ साम्यता दर्शाता है ।

गुजराती विवाहगीत :

''वागे रे वागे नोबत वागे
मारे घेर आनंद वधारो विनायक.''

राजस्थानी विवाहगीत :

''छाजे रे छाजे नोपत बाजे;
म्हारे घर आनन्द बधावा, छाजे रे.''(१०२)

प्रस्तुत गीत में जो घर वर विवाह हैं वहाँ नोबत (शहनाई) बज रही है । क्योंकि आज उनके घर विवाह है इसलिए गणेशजी को पधारने को कहा जाता है । और उनके हर्ष-आनंद में बढावा करने को कहा जाता है ।

उसके बाद के गीत में मायरा और मांडवडा की बात की गई है ।

गुजराती विवाहगीत :

''सूडला कोयलडीने विनवे रे;
आवी रूडी आंबलिया डाळ
सरोवरीआनी पाळ
मेलीने कोयल क्यां ग्या'ता रे
शीळा निरवभाईना मायरां रे
तीयां रूडा मांडवा नखाय
रूडी कन्या परणाय
जोवाने अमे त्यां ग्या'ता रे''(१०३)

राजस्थानी विवाहगीत :

''सूडलो पूछे रे कोयलडी,
आवी रूडी आंबलिया डाळ
मेली रे शीद चाल्या :
नीलभाईअे विवा आदर्या
कंकुडारो हुवो रे सकाळ
जोवा रे अमे सांचर्या.
नाळियेर रो हुवो रे सकाळ,
जोवा रे अमे सांचर्या.''(१०४)

इसके अलावा कन्या बिदाई के गीतों में भी करुणा और प्रेम का समन्वय देखने को मिलता

है ।

गुजराती विवाहगीत :

(१) ''आछेरुं कंकुडुं धोळये रे लाडी
आछली पीळये कढावुं
तारी माताना खोळा मेल्य रे लाडी
कंचनबा सासु देखाडु
(२) में तो डुंगर कोरीने घर क्र्या रे
में तो काचना जडिया कमाड रे हो लाडडी !
हजी रे समज मारी कोयलडी !''(१०५)

राजस्थानी विवाहगीत :

(१) ''झाली रे राणी ! हावोने आपणे देश के
आंबा रे पाका रस फळे !
सोडा रे राणा ! में केम हालु मारे देश के
बावाजी वोणुं नहि गमे
बावोजी रे थारा आळ जंजाळ के
साचो सगपण होय जणां ?
(२) बनडी ! थारे सासरेजी डोलर बांधीओ
बनडी ! हींडा रे उमाटे वेली आव रे
मारी दरिया वनरी कोयलडी !

उपर्युक्त विवाह गीतों - लोक-गीतों से स्पष्ट दिखाई पडता है कि गुजरात और राजस्थान प्रदेश के लोकगीतों में सामान्य भिन्नता है ।

★★★

गुजरात के विवाह गीत

मनुष्य जीवन के तीन महत्त्वपूर्ण प्रसंग है । जन्म, विवाह, मृत्यु । जन्म मानव जीवन की शुरुआत है । विवाह मानव जीवन का मध्य भाग है, जब मृत्यु मानव जीवन का अंत है । जन्म और मृत्यु ये दोनों घटनाएँ सभी जीवों के लिए एक सी है जबकि विवाह मानव जीवन में ही शक्य है । इसलिए विवाह प्रसंग में ही समग्र समाज ओतप्रोत होता है । जन्म और मृत्यु का संवेदन जन्म लेनेवाला या मृत्यु होनेवाला मनुष्य स्वयं आनंद नहीं ले सकता, जबकि विवाह ही मानवजीवन का एक ऐसा प्रसंग है जिसे विवाह करनेवाला व्यक्ति स्वयं आनंद पा सकता है । मनुष्य जीवन का केन्द्र बिन्दु गृहस्थाश्रम है और गृहस्थाश्रम का मध्यबिन्दु विवाह है । हिंदू धर्म में विवाह को दो आत्मा और दो शरीर का एकत्व होना है ।

विवाह मानव जीवन की एक ऐसी निश्चित क्रिया बनी हुई है कि विवाह का अर्थ नहि समजने वाला मनुष्य का भी विवाह हो जाता है । विवाह में कई लोग आंतर संस्कारों से ज्यादा बहिरंग को अधिक महत्त्व देते हैं । ऐसे विवाह में प्रेम से अधिक वासना होती है । दिल से ज्यादा दृष्टि को अधिक महत्त्व दिया जाता है । "Love at First Sight" उनका सूत्र बनता है ।

विवाह करने लायक वही मनुष्य है जिस में प्रेम करने की ताकत है । प्रेम का दूसरा नाम है सहनशीलता । एक-दूसरे के गुण-दोष को सहन कर लेने की वृत्ति ही सफल विवाह की चाबी है । "With all thy fauits I Love thee" यह दोनों का जीवनमंत्र होना चाहिए । "Life is nothing but an adjustment" जीवन में योग्य तरह से एडजस्ट हो जाने की कला ही सफल जीवन की चाबी है ।

जब जब विवाह गीत की बात होती है तब गुजरात के विवाह गीतों प्रथम नंबर पर रहे हैं । विवाह गीतों की यह व्यापकता गुजरात की सीमाओं के बाहर भारत की अन्य भाषाओं में व्याप्त है । विवाह गीत उत्साह के साथ गूंज उठते हैं । विवाह के उमंग सागर में विवाह गीत सागर जल की लहरों की तरह उछल-कूद करते हैं ।

विवाह गीतों की और विवाह संस्कार की मीमांसा करते हुए लोकतत्त्वविद् श्री झवेरचंद मेघाणी ने लिखा है :

"एमांथी ज कविता उठी छे, ने कविता लग्नमांथी न जागे तो पछी बीजे क्यांथी जागे ? सर्व काव्योनुं महाकाव्य ते लग्न; सर्व रसनुं साचुं झरण ने जीवनना सर्व रुधिरनी घोरी नस ते आ लग्न; एमांथी कविता जागी पण ए तो सरिता जेवी जागी । कोई एकाद बगीचाना नाना नळ जेवी ए नहोती । एकाद कोई भणेल, गणेल के प्रेमनी पोपटिया वाणी गोखेल युगलने संतोषवा अथवा देखाडो करवा ए 'रस' शब्दना अतिरेके ऊभराती कविता नहोती । ए तो नानांमोटां के ऊंचानीचां तमाम खेतरोमां रेली जनारी सर्वस्पर्शी कविता रुपे ज रेली हती । "(१०६)

मंगल गीत भी विवाह विधि जितने ही प्राचीन है या संभव है कि आदिम काल में जब मनुष्य विधिविधानों में ज्यादा समजता नहीं था तब दो जीवों के मिलन के प्रसंग गीतों द्वारा ही मनाया जाता होगा ऐसा माना जाता है ।

विवाह का महत्त्व पुरुष से ज्यादा ओरत के मन अधिक हो यह स्वाभाविक है । उनके अनेक

कारण है । विवाह के परिणाम स्वरूप नारी महिला को एक घर-परिवार को छोडकर दूसरे परिवार में हिल-मिल जाना है । पराये घर का दीया, पराये घर की लक्ष्मी, ये घर की गृहिणी और माता बन कर रहना है । एक माता जिसने अपनी लडकी को पाल-पोषकर बही की हो, ऐसी सखियाँ जो बचपन से ही उनके साथ खेल रही हो, एक पिता जो उनकी लाडली हो, ऐसा भाई जो उनकी लाडली बहन हो ये सबने इस लडकी को सदा के लिए परायी की जाती है । कैसा यह अद्‌भुत प्रसंग है । जिस परिवार में कन्या का विवाह हो वहाँ स्त्रियाँ उमंग और कन्या के बिदाई के दुःख के साथ साथ मिश्रित भावनाओं का मंगल गीत गाये जाते हैं । ऐसी भावनाओं सागर में से पैदा हुए मोती यानीकि विवाह गीत ।

जीवन की मस्ती, रोमांच, रसिकता, रंगदर्शिता, मार्मिकता, आनंद-प्रमोद इत्यादि के साथ खान-पान और गान-तान भी प्रसंग के आसपास तानेबाने की तरह गूंथे गये हैं । परिणामतः विवाह लिखा जाय उससे पहले ही परिवार के सभी लोग घर को सजाते हैं, आसपास महिलाओं को वडी, पापड, सुंवाळी बेलने के लिए उमंगभेर बुलाते हैं, मंडप बांधा जाता है, विघ्नहर्ता देव गणपति को पाट पर बिठाये जाते हैं, ढोल-शहनाईयाँ बजती है, परिवार वालों को मानभेर बुलाये जाते हैं, पंडित को मानभेर बुलाया जाता है, मुहूर्त निकाला जाता है, और फिर बारात-बारातियों का आगमन होता है, पोंखना, उतारा, जिमणवार, हस्तमेळाप, मंगलफेरे ऐसे कई छोटे-मोटे प्रसंगों के बाद कन्या की करुण बिदाई होती है । ये सभी को लोकजीवन के इस प्रसंग को कविता में अपने नारीवृंद ने दर्शाया है - चित्रित किया है ।

आधुनिक युग में लोक-साहित्य को जिवीत रखने वाला कोई सक्षम प्रकार हो तो वह 'विवाहगीत' है । जो कि समयांतर उस में बदलाव आया है, इस बात को अलग की नहीं जा सकती । आधुनिक प्रसंगों-प्रतीकों के भाव हर जगह देखने को मिलते हैं । ऐसा होना आवश्यक नहि अनिवार्य भी है । क्योंकि लोकवाणी का प्रवाह सतत बहता रहता है । फिर भी विवाह गीत का भाव आदि-अनादि काल से चला आया हुआ है वो आज आधुनिक युग में भी दिखाई देता है ।

'विवाह' अपनी लोक-संस्कृति का अभिन्न अंग है एवं समाज जीवन का एक मांगल्यमय प्रसंग है । इस प्रसंग में कला, साहित्य, संगीत के उपरांत शृंगारस, वीररस, हास्यरस और करुणरस समाविष्ट है ।

विवाह के समय गाये जाते विवाह गीत :

विवाह प्रसंग में गणेशजी की स्थापना से शुरु करके कन्या बिदाई तक की विविध विधिओं के संदर्भ में जो विवाह गीत गाये जाते हैं, उस में से मानव जीवन के कई संदर्भ प्रकट होते हैं ।

कन्या ने अपने मन में अपने पति की छबी तैयार की गई है । सब से पहले विवाह का महिमा दर्शाने वाला गीत गाया जाता है । सर्जनहार-भगवान की सृष्टि में महिमा दर्शाने वाली शक्तियों का यश वर्णित यह गीत है । बारिस आती है । आकाश अपनी सहचरी - धरती के अंग भीगोती है और अपने पतिदेव की यह प्रेमधारा झीलकर धन-धान्य-अनाज-वनस्पति को जन्म देती धरती कई कितने ही गर्भ भार की वेदना झेल रही है : **धावापृथिव्यो** नी स्नेह-बेलडी वाला शास्त्रो में गाया

हुआ स्तवन लोकवाणी में सरल बनकर उतरा है :

धरतीमां बळ सरज्या बे जणां
अेक धरती बीजो आभः वधावो रे आवियो.
आभे मेहुला वरसाविया,
धरतीअे झील्या छे भार! वधावो रे आवियो.(१०७)

यह तो सृष्टि की उत्पत्ति करने वाला भव्य - शक्ति - युगल : अब सृष्टि के अपने पोषाक और साहसप्रेरक दो बल (शक्ति) गिने जाते है :

धरतीमां बळ सरज्या बे जणां
अेक धरती बीजो गायः वधारो रे आवियो.
गायनो जायो रे हळे जूत्यो,
घोडीनो जायो परदेश ! वधावो रे आवियो.

सर्जन, पोषण, देश-परदेश के साहस इत्यादि के बीच मानवशक्ति किसने पैदा की ? जगत्पिता भगवाने मानवी में सौंदर्य सींचने के लिए और कौन कौन से सौंदर्य सींचने के लिए किसको भेजे ?

धरतीमां बळ सरज्या बे जणां
अेक सासु बीजी मातः वधावो रे आवियो.
माताअे जनम ज आपियो,
सासुअे आप्यो भरथार ! वधावो रे आवियो.

कन्या को पति, दोनों को जन्म देनेवाला विधाता (भगवान) खुश हुआ है लेकिन अभी संपूर्ण सफलता बाकी है । कन्या को कुलवधू बनाने के लिए दो संस्कारों की जरुरत है : प्रेम भरे पिता के लालन-पालन और गौरवान्वित ससुरजी की मर्यादा ।

धरतीमां बळ सरज्या बे जणां
एक ससरो बीजो बापः वधावो रे आवियो.
बापे ते लाड लडावियो,
ससराअे आपी लाज ! वधावो रे आवियो.(१०८)

मोती जैसी झगझगाहट, दूध जैसे मीठे जल के सरोवर के किनारे युवक-युवती का पहला मिलन होने की कल्पना की जाती है । भोलेनाथ और पार्वती का परिशुद्ध भाव अखंडित रखकर यहां वर-कन्या के आचरण की मर्यादा की गई है । आकस्मिक विनोद हुआ और बैशाख माह की ऋतु में विवाह के वचन दिये गये :

दूधे ते भरी रे तळावडी, मोतीडे बांधी पाळ,
ईशवर घोवे धोतियां ! पारवती पाणीनी हार,
हळवां ते घोजो, ईशवर, धोतियां ! छंटाशे मारां चीर,
अम घेर दादोजी रिसाळवा, माता मारी देशे गाळ.
नहि तारो दादोजी रिसाळवा, नहि देशे माता तारी गाळ,
आपण बेय मळी परणशुं वैशाख महिना मांय. (१०९)

फिर दूसरी बार फूलवाडी में मिलने का अवसर मिलता है । वर (युवक) ने फूलवाडी की डाली नीचे की ओर की तो कन्या (युवती) ने फूल चूंट कर छाब भर ली और मालण ने दोनों के लिए छोगुं (सेरवा) गूंथकर दोनों को फूल के सिंगार किये । मन से तो वह पुरुष (युवक) को कन्या चाहती है । क्योंकि अंतरात्मा से प्रतिज्ञा की गई है कि ब्याह करुं तो उसके साथ ही करुं या तो आजीवन कंवारी रहुं । :

मारा खेतरने शेढडे (छेडे) राय करमलडी रे
फाली छे लचका लोळ राय करमलडी रे
वाळो..... भाई डाळखी ! राय करमलडी रे
वीणो, वहु फूलडां राय करमलडी रे
वीणीचूंटीने गोरीए छाब भरी राय करमलडी रे
तेनो गूंथे मालण मोडियो राय करमलडी रे
मोडियो ..... वहुने माथडे राय करमलडी रे
तेनो गूंथे मालण छोगलो राय करमलडी रे
छोगलो देखीने राणी रव चड्या राय करमलडी रे
परणुं.... भाईना मोभीने राय करमलडी रे
नीकर ऊभी तप करुं राय करमलडी रे

कन्या मन से ये पुरुष को अपना पतिदेव मान चूकी है इससे उसको कहीं भी मन नहीं लगता । दिन-रात उनको इस पुरुष स्मरण आता है । सदा उनका चेहरा मुस्कराता रहता था लेकिन यकायक कहां खो गई है । लेकिन अब उनकी मुस्कान चली गई हैं ।

अंतरहृदय का संकल्प अब स्पष्ट हो गया है । हररोज खुश मिजाज से-आनंदित चेहरे से खेलनेवाली बच्ची के शरीर पर पिता ने दुर्बलता देखी, आँखों में आँसु देखे, पूछ-ताछ हुई । कन्या ने उदासी का कारण बताया । अभी तक तो स्पष्ट नहीं कहती लेकिन इतना कहती है कि मैंने पुरुष-वर चुन लिया है । पिताजी आप ये बात मत भूलना । मेरे लिये मध्यम परिवार का वर ढूंढना । क्योंकि शायद उनको अपनी उच्चता का मिथ्था आडंबर न रहे ।

अेक तो राज द्वारमां रमतां
बेनीबा दादे ते हंसीने बोलावियां;
कां कां रे दीकरी तमारी देह ज दूबळी !
आंखलडी रे जळे भरी !

नथी नथी रे दादा मारी देह ज दूबळी,
नथी रे आंखलडी जळे भरी !
अेक ऊंचो ते वर नो जोशो रे दादा,
ऊंचो ते नत्य नेवां भांगशे !
अेक नीचो ते वर नो जोशो रे दादा,
नीचो ते नत्य ठेबे आवशे !
अेक धोळो ते वर नो जोशो रे दादा,
धोळो ते आप (पोताने) वखाणशे !
अेक काळो ते वर नो जोशो रे दादा,
काळो ते कटंब लजावशे !
अेक कडय रे पातळियो ने मुख रे शामळियो
ते मारी सैयरे वखाणियो
अेक पाणी भरती ते पाणीआरीअे वखाण्यो,
भलो रे वखाण्यो मारी भाभीअे.(११०)

सहियर ने बखाना, भाभीने, बखाना, पनिहारी ने पसंद किया फिर मुरतिया (वर) में क्या कमी है ? ये तीनों के जैसी रसिक और विवेक दृष्टि दूसरे किसी की हो सकती है ? कन्या मनोमन अपने पिताजी से कहती है कि, पिताजी मेरी मोहवश आँखे तो शायद गलती कर सकती है इसीलिए मैंने दूसरे स्वजनों से मेरी पसंद की कसौटी कराई गई है ।

इस से अलग काव्यमय बानी में कन्या ने वर के गुणों का वर्णन किया है और विश्व की उत्तम युगलों की जोडी को गिनी बताई है ;

पति देरा मायलो ने पोते पूतळी
पति वाडी मायलो मोरलो ने पोते ढळकती ढेलडी,
पति अषाढीलो मेघ अने पोते झबूकती वीजळी
पति चंपाफूलनो छोड ने पोते चंपा-पुष्पनी पांखडी

इसी तरह

कन्या दादाजीने खोळे बेठां अेम भणे रे,
दादा ! वर जोजो कांई देरा मायलो देव रे
कन्या देरासर पूतळी रे.
कन्या काकाजीने खोळे बेठां अेम भणे रे,
काका ! वर जोजो कांई वाडी मायलो मोर रे
कन्या ढळकती ढेलडी रे.
कन्या मामाजीने खोळे बेठां अेम भणे रे,
मामा ! वर जोजो कांई अषाढीलो मेघ रे
कन्या झबूकण वीजळी रे.

कन्या वीराजीने खोळे बेठां अेम भणे रे,
वीरा ! वर जोजो कांई चांपलियानो छोड रे
कन्या चंपासर पांखडी रे.
दादा ! दरशण लाग्यो देरा मायलो देव रे,
दरशामण लागी पूतळी रे.
काका ! खेलण लाग्यो वाडी मायलो मोर रे,
खेलामण लागी ढेलडी रे.
मामा ! वरसण लाग्यो अषाढीयो मेघ रे,
झबूकण लागी वीजळी रे,
वीरा ! सौरम लाग्यो चांपलियानो छोड रे,
सोरभे लागी पांखडी रे.''(१११)

बाद में परिवारजनों ने पूछा : बहन तेरा दिल कहीं लग गया है ? तूने जो वर्णन किया है ऐसा कोई वर कहीं देखा है ?

कन्या अपने स्वामी पसंद करने के लिए कमरे से बाहर खडी खडी देख रही है । उसने जो पहचाना था वोही देखा । 'वहेवारिया' यानीकि प्रवीण वर की बातें चलाई; किस में प्रवीण । खेलकूद में प्रवीण : 'स्पोर्टसमेन' अटपटी बाजार में से भी गेडी द्वारा दडा निकाल के ले जाय । अभ्यास में प्रवीण : सुंदर और मोती जैसे अक्षर लिखने वाला; खाने में प्रवीण ज्यादा खानेवाला नहि; प्रियदर्शी : सरोवर में स्नान करते हुए जिन के मस्तक की काली शिखा (चोटी) वाला और लक्ष्मी के बखान करने में प्रवीण, व्यापारी ऐसे सुलक्षण वाले स्वामी के साथ मेरा ब्याह किया जाय ।

कुंवारी चडी रे कमाड सुंदर वरने नीरखवा रे !
दादा मोरा, अे वर परणाव, अे वर छे वेवारियो रे !
घीडी (दीकरी) मोरी, क्यां तमे दीठांने क्यां तमारां मन मोह्या रे !
रमतो'तो बवळी बजार, दडुले मारां मन मोह्यां रे !
कुंवारी चडी रे कमाड, सुंदर वरने नीरखवा रे !
वीरा मोरा, अे वर जोजो, अे वर छे वेवारियो रे !
बेनी मोरी, क्यां तमे दीठां, ने क्यां तमारां मन मोह्यां रे !
भणतो'तो भटनी निशाळे, अक्षरे मारा मन मोह्यां रे !
कुंवारी चडी रे कमाड, सुंदर वरने नीरखवा रे !
काका मोरा, अे वर जोजो, अे वर छे वेवारियो रे !
भत्रीजी मोरी क्यां तमे दीठां ? ने क्यां तमारा मन मोह्यां रे !
जमतो'तो सोनाने थाळे, कोळीडे मारां मन मोह्यां रे !(११२)

सरोवर की पाल से कोल देकर घर पर पहुँचे हुए वर ने अपने पिता के पास जाकर हठ की कि सरोवर पाल से प्राप्त हुए मनोहर मोती यानीकि सरोवर पाल पर मिली हुई कन्या के साथ

ही मेरा ब्याह तय किया जाय । और ये सच्चे मोती के लाख-दो लाख रूपये खर्च करने को भी वर के दादाजी तैयार हो गये ।

लांबी ते लांबी सरोवरियानी पाळ
आ-हे ! अे रे पाळे रे मोती नीपजे.
मोती ते लाग्युं दीपकभाई वर हाथ,
आ-हे ! घेर रे आवीने झघडो मांडियो.
दादा ते मोरा मुजने परणाव,
आ-हे ! मुजने परण्यानी, दादा, होंश घणी
खरचुं ते खरचुं लाख- बे लाख
आ-हे ! मोभीने परणावुं घणी होंशथी.(११३)

फिर दोनों के परिवारजनों ने बातचीत चलायी होगी, अपने दोनों बालक (वर और कन्या) की पसंद पर मा-बाप की मंजूरी की मुहर लगी होगी । ब्याह के वक्त गुड भी बाँटा होगा ।

गळिया गोळ वहेंचाय रे
दूधमां साकर भळाय रे
आगळ हुता बे भाई रे
हवे थया छे वेवाई रे
आगळ लडवडता शेरीअे
हवे वळग्या छे वेलडीअे

और वर- कन्या दोनों के परिवारजनों ने संतोष का विनोद गीत गाया होगा कि,

में तो वार्या रे दिपकभाई लेरखडा !
तारा ससरानी शेरीअे रमवा न जईश !
तारा कानमां कारेला (काननां घरेणां) देखशे !
तारा ससराने रढ लागशे !
घर पूछीने मागां आवशे !
में तो वार्या रे कई बा लाडकडां !
तारा ससरानी शेरीमां रमवा न जईश !
तारो जडाव अंबोडो देखशे !
तारी सासुने रढ लागशे !
घर पूछीने मागां आवशे ! (११४)

लग्न तय हो जाने की साबिती के रूप में सगाई-चांदलो किया जाता है तब गीत गाये जाते हैं :

मग वीणता मोती रे जडिया,
मोतीमांना हीरला रे जडिया,
हीरला सरीखा मारा चमनभाई रे,
चमनभाई तो मारा मेडीअे बेठा, मग वीणता .....
अडद वीणता मोती रे जडिया,
पेरो पेला मणीदा वेवाई रे,
मणीदा वेवाई तो छापरे रे बेठां,
चमनभाई तो ईमनं तांणी रे लीधा, मग वीणता.....
आवो वेवाईओ सगा रे थईअे.
सगा रे थईअे ने सगपण करीअे
दळ खाजांनी जानो जमाडीअे
पंचमा पूछाता रे थईअे, मग वीणता.....
अमारा चमनभाईने सौ लोक जोणे
मणीदा वेवाईने कोई जन्म्या न जोंणी, मग वीणा.....(११५)

गीत में एक समधि मोती जैसा है दूसरा मुहर जैसा । मुंग बीनते (खोजते) वक्त मोती मिले, उडद बीनते (खोजते) वक्त मुहर मिले । यह गीत कृषि काम का है । बारात को खाजां (दलखाजो) खिलाने की बात है ।

सबसे पहले कंकोतरी पर कंकु के छींटे-साथिया करके परिवार के इष्ट देव को लिखी जाती है बाद में कन्या के मामा और दूसरे संबंधीओं को कंकोतरी लिखी जाती है । वडी-पापड बनाते वक्त स्त्रियाँ के मुख से विवाहगीतों का प्रवाह चलता रहता है । जैसे कि :

सोना खडिया मंगावो, रूपा लेखन मंगावो,
बेनना मांडवळा हेठ कंकुतरीओ लखावो.
बेनना दादाने लखजो, बेननी माताने लखजो
बेननां लोभनंता फैबाने, घणुं घणुं लखजो.
बेनना दादा ते आव्या, बेननी माता रे आव्या,
बेननां लोभनंता फैबा तो हजुअे न आव्या,
सोना खडिया मंगावो.....
बेनना काकाने लखजो, बेननी काकीने लखजो,
बेननां लोभनंता फैबाने, घणुं घणुं लखजो.
बेनना काका ते आव्या, बेनना काकी ते आव्या,
बेननां लोभनंता फैबा तो हजुअे न आव्या,
सोना खडिया मंगावो.....(११६)

'सोना खडिया मंगावो.....' यह पंक्ति लग्न की मंगलता और भव्यता को प्रदर्शित करती

है । यह पंक्ति बार-बार पुनरावर्तित होने से मांगलिकता के भावों को दोहराकर वातावरण को सजीव एवं आह्लादक बनाती है ।

कंकु छांटी, कंकोतरी मोकलो,
मांय लखजो माडी जाया वीर रे;
में महाजग मांडीओ.....
ईमना दादा आया ने दादी आवशे
मारा ना आया माडी जाया वीर रे
में महाजग मांडीओ.....
ईमना काका आयाने काकी आवशे
मारा ना आया माडी जाया वीर रे
में महाजग मांडीओ.....
ईमना मामा आयाने मामी आवशे
मारा ना आया माडी जाया वीर रे
में महाजग मांडीओ.....(११७)

कन्या के मुख में लग्न समारंभ के लिए 'महाजग' शब्द रखा गया है । यह 'महाजग' में 'माडी जाया' (भाई) की गैर हाजिरी सब को खटकती है । 'वीरा' को यह प्रसंग पर उपस्थित रहने के लिए 'कंकु छांटी कंकोतरी भेजी है', फिर भी वो (वीरा-भाई) नहीं आया इससे बहन राह देख रही है ।

धन्य धन्य दिन रळियामणो, धन्य धन्य अवसर आज रे !
लग्न लाडीली मोकले रे, वे'ला आवो महाराज रे.....
वालाजी विलंब न कीजिये रे, दीजे दरशन दान रे;
भूधर तमने भेटतां रे, वळे तमारा वान रे.....
सर्वे अंगे स्वामी तमने, स्परशी पावन करुं रे;
पियुजी वे'लेरा पधारज्यो, आवो अंकज भरुं रे.....
अवगुण मारा अनेक छे, रखे ते सामुं जोता रे;
अधम ओद्धारण बिरुद छे, रखे तमे ते खोता रे.....
थोडे लख्ये घणुं जाणज्यो रे, दया करज्यो ओ दयाळु रे;
जेम जाणो तेम जाणज्यो रे, बांय ग्रह्यानी लाज रे.....
छोडतां छेक छूटो नहि रे, ते केम छांडो महाराज रे;
निष्कुळानंदना नाथजी रे, बांय ग्रह्यानी लाज रे.....(११८)

कन्या वर को कंकोतरी भेजती है लेकिन यहाँ गीत में कन्या भगवान को कंकोतरी भेजती है और कहती है कि आज प्रसंग (अवसर) आंगन में आया है, जिससे दरशन देने के लिए आप जल्द से जल्द आईये । मेरे में कई अवगुण है इसके सामने मत देखना । आप लग्न में जरुर आईयेगा ।

लगन बाजोठी ने मोतीडे जडियां,
कुंवारी कन्याअे कागळ लखी रे मोकलिया,
वेगे वेला आवे, चोराशीना जाया !
हुं केम आवुं, दासीनी जाई !
आडा छे दरिया ने पाणीडे भरिया
ते वच्चे व्हाण छिपावो वरराजा !
चैतर वैशाखना तडका रे पडशे
धोरी बळदना पग रे तळवाशे
गोरा जानैया रजे भराशे !
गोरी जानडीओ शामळी थाशे
भाई रे कमलभाईनां फूलडां करमाशे.(११९)

पुनः संदेश जाता है, 'वेगे वहेलो आव' ऐसा आग्रह करते हैं, लेकिन वरराजा को नये नये प्रश्न उठते हैं । गोरे गोरे बारातियों को, धूल की रज चोंटती हैं, गोरी गोरी महिलाएँ श्यामली हो जाती है, उनकी माला के फूल सुकुड जाते हैं ये सभी बातों की फिक्र होती है ।

वर पक्ष के आँगन में भी उल्लास दिखाई दे रहा है । सुबह सुबह वर के घर पर मालिन पुष्पों का थाल लेकर आती है तब गीत गाया जाता है ।

छाब भरी फूलडे मालण आवे रे,
घर रे पूछे रे वीवा क्यां हवा रे
ऊंचली खडकी ने नवलां कमाड रे,
गोखे जाळियां मंदिर माळियां रे

ऐसे सुशोभित और सुनहरे अवसर पर वर को अपनी परदेश में रहती हुई बहन आने का इन्तजार है ।

आवशे बेनड बेनी बाई, बेसशे मांडवा हेठे रे
वरराजानां नयणां शणगारशे रे

इसलिए माता ने कंकोतरी लिखने की कलम और शाही नई बनाकर निर्मल अक्षरों में लिखाया :

लीलुडी लेखण वापरी, मश मारवो ने मांही कपूर रे
दोत (खडियो) मगावो देशावरी, अक्षर लखशे मोटा वहुना कंथ रे
अक्षर लखजो निर्मळा, वांची जोशे बेनीबानो कंथ रे
वांचीने वे'ला पधारजो, आपणे घेर छे वरध ने वीवा रे

आवी शको तो आवजो, नहितर बेनीबाने मोकलजो रे
नहि रे आवो तो रुसणां, आपणां सगपणनो शो रे स्वाद रे (१२०)

कंकोतरी लेकर बडा भाई घोडे पर असवार होकर चले; और अपने विवाह के वक्त छोटी आयु का भाई को अब बहन पहचान सकती नहीं है ।

मांडवडे रे कांई ढाळोने बाजोठी
के फरती मेलोने कंकावटी
तेडावो रे मारे जाणापरना जोशी
के आजे मारे लखवी कंकोतरी
बंधावो रे मारे विमलभाईने छेडे
के जाय बेन विमलाबा घेर नोतरे
बेनी रे तमे सूतां छो के जागो ?
तमारे मैयर पगरण आदर्या
वीरा रे तमे किया शे'रथी आव्या
के किये शे'र तमारा बेसणां
बेनी रे हुं तो सुरत शे'रथी आव्यो
के महुवा शे'र अमारां बेसणां
वीरा रे तमे केसर केरा बेटा
के कई बाई माता उदर वस्या !
बेनी रे हुं तो मुकेशभाईनो बेटो
के क्रिष्नाबाई माता उदर वस्यो
बेनी रे मारी गरथलियानी घेली
के आंगणे आव्यो रे वीर नो ओळख्यो !
वीरा रे मने छोरूडे हरवाळी रे
वाछरुं वाळता वीर नो ओळख्यो.
वीरा रे में तो घोडिये ने पारणे दीठा
के रथघोडलीअे वीर नो ओळख्यो.
वीरा रे में तो झबले ने टोपीअे दीठा,
के पाघडी पोशाके वीर नो ओळख्यो.
आगळ रे मारा विमलभाईना घोडा
के पडघी वागे ने धरती धमधमे.
वच्चे रे मारे बेनडबाना माफा
के ईंडां झळके रे सोना तणां
वांसे रे मारे जमाई कामठियो
के कामठ ताणे ते कोषो खडखडे (१२१)

इस गीत में झूलतो-डोलतो नया राग माँ के मुँह से गाया जाता है । बाजोठी ढळावी, चोमेर कंकावटी मेलावी, पंडित के पास अपनी दीकरी (कन्या) की कंकोतरी लिखाती हुई माँ गा रही है । कई साल बाद पहली बार भाई बडा होकर बहन के ससुर-गृह जाता है । बहन उनको पहचान भी नहीं सकती :

सवाशेर सुतरनो पटो वणावो, पटो वणावो,
झाझा हीरे जडावो.
केडोमां ईन बांधे रे महेशभाई, बांधे रे महेशभाई,
कमरनां दल रीझे,
करम वातमार्राणा, हेरी भेरी जोसं, हेरी भेरी जोसं,
दादानां दल रीझे,
दादो वेरशीभा, हेरी भेरी जोसं, हेरी भेरी जोसं,
मातानां दल रीझे,
माता झेबरमां, हेरी भेरी जोसं, हेरी भेरी जोसं,
काकाना दल रीझे.(१२२)

सवाशेर शब्द मँगलता सूचक है । सवाशेर सूत में से बुना हुआ और हीरों से जडा हुआ पट्टा वरराजा की कमर पर बंधा हुआ देखकर दादा, माँ, पिता, चाचा के हृदय में आनंद उछलता है । विवाह को स्वीकार के वक्त वरराजा की गोद में लग्न-पडा रखा जाता है । और पाँच स्त्रियाँ अबील, गुलाल, दर्भ, धरो, फूल और कंकु तिलक करके स्वीकार करती है । सभी स्त्रियों को गुड बाँटा जाता है ।

विवाह का दिन आये उसके पहले हररोज विवाहगीतों - मंगलगीतों से घर गूंज उठता है । सांझी के गीतों में जमाई और कुटुंब की बहुओं की मश्करी भी गीतों में की जाती है । जैसे कि,

सोनानी सांजीने रूपाना मोर वस्या रे,
उडे रे पांखाळा सुडला नोतरे
गाम न जाणुं ने नाम न जाणुं रे,
के रस घेर जाउं रे सुडला नोतरे
गाम छे नवुं गाम ने नाम छे बेनीबाई,
भटजी घेर जाओ सुडला नोतरे
उठा गोरां बेनीबाई करो शणगार रे,
पेरो पटोळां ओढो चुंदडी रे,
थाळ भर्यो फूलडे, छीप भरी शरखंडे,
वचमां मेलो श्रीफळ बीजोरडां रे
छाब भरी फूलडे मालण आवे रे,

घर रे पूछे रे वीवा क्यां हवा रे,
उचली खडकी ने नवलां कमाड रे,
गोखे जाळियां मंदिर माळियां रे,
आवशे बेनर बेनीबाई, बेसशे मांडवा हेठ रे,
वरराजानां नयणां शणगारशे. (१२३)

सांझी को सोने की और मोर को रुपा का दिखाया है ।

साव रे सोनानुं पोपट पांजरुं जाय रे राधाजीने भेट,
अजवाळो वहुअर दीवडो
दीवडीयो मेलीश मान्य साजन घेर आवशे
साजनीयां माहरे वरराजाना दादा घेर कीया देव पधारशे
आवशे बेसशे पाट घेर मुरतीयां पूछावशे
साव रे सोनानुं पोपट पांजरुं जाय रे सोरठ सरकारने भेट
अजवाळो सैयर दीवडो
दीवडीयो मेलीश, मान्य साजन घेर आवशे
साजनीयां मारे वरराजाना काका, घेर कीया देव पधारशे
आवशे बेसशे पाट घेर भत्रीजो परणावशे
साव रे सोनानुं पोपट पांजरुं जाय रे राजाजीने भेट
अजवाळो वहुअर दीवडो
दीवडीयो मेलीश, मान्य साजन घेर आवशे
साजनीयां मारे वरराजाना मामा, घेर कीया देव पधारशे
आवशे बेसशे पाट घेर, मोसाळां लई आवशे
साव रे सोनानुं पोपट पांजरुं जाय रे राणाजीने भेट
अजवाळो वहुअर दीवडो
दीवडीयो मेलीश, मान्य साजन घेर आवशे
साजनीयां मारे वरराजाना वीरा घेर कीयो भाई पधारशे
आवशे बेसशे पाट घेर, वांजीत्रो लई आवशे. (१२४)

सोने के पिंजर द्वारा भेट भेजी जाती है

मालण तारी वाडीये, रसभीनी हो मालण
कीया कीया रोप रोपाय, साहेबजीनी मालण
डमरोने मरवो केवडो, रसभीनी हो मालण
जाई ने जावंतरीनो छोड, साहेबजीनी मालण

कये भाईअे जोशी तेडावीया, रसभीनी हो मालण
कीया भाईनां लग्न जोवाय, साहेबजीनी मालण
कीया भाईअे साळवी तेडावीया, रसभीनी हो मालण
कीया भाईनां वाघा वणाय, साहेबजीनी मालण
कीया भाईअे दोशी तेडावीया, रसभीनी हो मालण
कीया भाईनां वाघा वेत्राय, साहेबजीनी मालण
कीया भाईअेय दरजी बेसारीया, रसभीनी हो मालण
कीया भाईनां वाघा वेत्राय, साहेबजीनी मालण
कीया भटे केसर घोळीया, रसभीनी हो मालण
कीया भाईना वाघा छंटाय, साहेबजीनी मालण
कई वहुअे अमीरस घोळीया, रसभीनी हो मालण
दादाजीअे जोशी तेडावीया, साहेबजीनी मालण
वरराजानां लग्न लेवाय, रसभीनी हो मालण
काकाजीअे साळवी तेडावीया, साहेबजीनी मालण
वरराजाना वाघा वणाय, साहेबजीनी मालण
वीराजीअे दरजी बेसारीया, रसभीनी हो मालण
वरराजाना वाघा सीवाय, साहेबजीनी मालण
भट्टजीअे केसर घोळीयां, रसभीनी हो मालण
वरराजाना वाघा छंटाय, साहेबजीनी मालण
वरमाअे अमीरस घोळीयां, रसभीनी हो मालण
वरराजाअे अमीरस पीधां, साहेबजीनी मालण. (१२५)

वरराजा के कपडे कौन सीलता है, कैसे सीलता है । उनमें अत्तर का छींटा है या नहीं उनका भी उल्लेख किया जाता है ।

ऊंचा ऊंचा रे दादे गढ रे चणाव्या,
गढ रे सरीखा गोख मेलिया,
त्यां चडीने बाईने दादाजीये जोयुं,
कन्या गोरांने रायवर शामळा
तेना ओरतडा म करशो दादा,
द्वारकामां रणछोडराय शामळा
ऊंचा ऊंचा रे काके गढ रे चणाव्या,
गढ रे सरीखा गोख मेलिया,
गढ रे चडीने बाईने काकाजीये जोयुं,
कन्या गोरांने रायवर शामळा

तेना ओरतडा म करशो काका,
काशीमां विश्वनाथ छे शामळा
ऊंचा ऊंचा रे मामे गढ रे चणाव्या,
गढ रे सरीखा गोख मेलिया,
त्यां चडीने बाईने मामाजीये जोयुं,
कन्या गोरांने रायवर शामळा
तेना ओरतडा म करशो मामा,
नगरमां नागेश्वर बेठा शामळा
ऊंचा ऊंचा रे भाईअे गढ रे चणाव्या,
गढ रे सरीखा गोख मेलिया,
त्यां चडीने बाईने वीराजीये जोयुं,
कन्या गोरांने रायवर शामळा
तेना ओरतडा म करशो वीरा,
लक्ष्मीजीना श्रीकृष्ण वर शामळा.(१२६)

दादाजी ने बडे बडे ऊँचे गढ चुनवाये हैं । वहाँ जाकर कन्या के दादा, चाचा, मामा और भाई (वीरा) ऐसा सोचते हैं कि, कन्या तो गोरी है, परंतु वर श्याम है तब कन्या श्रीकृष्ण रणछोडराय इत्यादि के साथ वर की तुलना करती है ।

घोडी अगनगगन पण मांड के चाल उतावळी रे
घोडी अजले चाले ने मजले डग भरे
घोडी जई ऊभी गामने चोक, वीवा आव्या ढुकडा
बेनड ऊठो कई बा पातळां
बेनड सोळ करो शणगार, वीवा आव्या ढुकडा
वीरा हुं केम आवुं अेकली,
मारे ईश्वर सरखा भरथार, वीवा आव्या ढुकडा
तारा ईश्वरने चडवा घोडला
मारी बेनडने माफानी वेल, वीवा आव्या ढुकडा.(१२७)

भाई का विवाह है और भाई (वीरा) उनको (बहन को) आमंत्रित करने को जाता है । भाई घोडी को उतावली चलने को कहता है, क्योंकि लग्न (ब्याह) नजदीक है लेकिन बहन अकेली आने को ना बोलती है । क्योंकि उनके साथ ईश्वर जैसा पति (बहनोई) भी है । भाई उनके लिए घोडा लेकर आता है और बहन के लिए वेल लेकर आता है ।

मंडप रोपण - माणेकस्तंभ रोपती वक्त के विवाह गीत :

विवाह के पहले एक या तीन दिन पहले मंडप रोपण या माणेकस्तंभ स्थापना के वक्त विवाहगीत गाये जाते हैं । सबसे पहले गणेशजी की स्थापना होती है और उनके गीत गाये जाते हैं ।

गणेश दुंदाळा ने फांदे फांदाळा
गणेशने पाटे बेसाडो रे मारा गणेश दुंदाळा

गणेशजी दुंदाळा और फांदे फांदाळा है । उनको पाट पर स्थापित किये जाते हैं । भारतवर्ष में हिन्दुओं में कोई भी शुभ कार्य में गणेशजी की सब से पहले पूजा की जाती है ।

गणपत उपर चोपडेला सिंदुर आजे,
गणपति पूजा कोणे करी ?
आव्या हता विमलभाईना कुंवर आजे
गणपति पूजा अेणे करी..(१२८)

'गणेश दुंदाळा ने फांदे फांदाळा
कंठे रोपी वरमाळा रे मारा गणेश दुंदाळा;
तेत्रीस करोड देवता सीमाडे आव्या,
हरख्या गोवाळीयाना मन रे मारा गणेश दुंदाळा (१२९)

इसी पर दादा, चाचा, मामा, भाई सब के नाम लेकर गीत आगे चलता रहता है ।

विवाह प्रसंग पर मंडप बाँधने से पहले पंडित शास्त्रोक्त पूजन कराता है बाद में मंडपमुहूर्त और माणेकस्तंभ का स्थापन किया जाता है । मंडप के एक कोने पर खड्डा बनाकर उसमें कंकु, सुपारी, दूध, दहीं, तांबा का पैसा, शिमला वृक्ष का एक टुकडा आदि रखा जाता है । शास्त्र के अनुसार शिमला का वृक्ष पवित्र और सकुनवाला होता है । कहा जाता है कि शिमला के वृक्ष को काटने से बार बार कुंपित होता है । इसलिए उनका अंत नहीं होता । उसी कारण से ही मानव जीवन के अनंत विकास के प्रतीक रूप शिमला के वृक्ष का पूजन होता है । विवाह मंडप के वक्त इकठ्ठी हुई महिलाएँ गीत गाती है । मंडप में आई हुई महिलाओं और सभी लोगों को पतासां, गुड बाँटा जाता है ।

मांडव लीली आडी रे पीळी थांभली
मांडव उपर चंदरवा बेचार रे
रूडो सोहे मांडवो
मांडव बेसे राणाने बेसे राजिया
मांडव बेसे दादाजी देहोत रे
मोभीजीनो मांडवो

मांडव म्हाले राणाने बेसे राजिया
मांडव म्हाले काकाजी देहोत रे
भत्रीजानो मांडवो
मांडव हरखे राणाने हरखे राजिया
मांडव हरखे मामाजी देहोत रे
भाणेजुंनो मांडवो
मांडव सोये राणाने सोये राजिया
मांडव सोये वेवायुं देहोत रे
रूडो सोये मांडवो.(१३०)

अपने आँगन का मंडप समधि के मंडप से विशिष्ट है ऐसे भी गीत गाये जाते हैं ।

ऊंचो ऊंचो दादाजीनो मांडवो
अेथी ऊंचेरा परहर बेचार रे
दादाजीनो मांडवो
मांडव बेसे राणा ने बेसे राजिया
मांडव बेसे मोभीडा बेचार रे
दादाजीनो मांडवो
मांडव लीली आडी रे राती थांभली
मांडव ऊंची चडी रे नागरवेल रे
दादाजीनो मांडवो
नीचो नीचो रे वेवायुंनो मांडवो
मांडव नीचेरा परहर बेचार रे
वेवायुंनो मांडवो
मांडव बेसे गोलाने बेसे गांडिया रे
मांडव बेसे काळुभाई कजात रे
वेवायुंनो मांडवो
मांडव फाटी आडीने तूटी थांभली
मांडव उपर चडी रे कडवी वेल्य रे,
वेवायुंनो मांडवो.(१३१)

विवाह मंडप के नीचे वर या कन्या को हलदी (पीठी) भी लगायी जाती है और पाट (बाजठ) पर से उठाये भी जाते हैं ।

पीठी भर्या बेठा छे पाट
हवे जुअे दादाजीनी वाट

कनुभाई दादा वेगे वेला आवो
हर्षदभाईने पाटेथी उठाडो
जाणे दादा देशे रे तेजीघोडो
ई अमारे हर्षदभाईने मन थोडो
पीठी चोळे पीडी रे वरनी फईबा
मोंघी फईबा वेगे वेला आवो
फईबाने फुमकियाळी साडी
तोय फईनी अरधी फांद उघाडी.(१३२)

वर को हलदी (पीठी) लगायी जाती है क्योंकि वर साँवला है उसकी त्वचा गोरी करने के लिए और उनके देह को सुगंधित करने के लिए पीठी लगाई जाती है ।

पीठी चोळे पितराणी,
आ तो छे अक्षरातीत अेम जाणी
मुख चोळी जोयुं मनोहर जेणे,
नक्की क्र्युं हरी धामे जावा तेणे
हाथ चोळी हाथ चोळी जोया हरि,
तेने परमधाम प्राप्ति करे
छाती चोळी माननी मंगळ गाय,
तेने ब्रह्मधाम आव्युं भाग्यमांय
पडखां चोळी जुवे छे जुवती जेह
तेनां थयां अमृतधाममां गेह
पेटे चोळे प्रेमे प्रेमदा वळी,
तेने ब्रह्ममोहोले बोलाव्युं मळी,
वांसो चोळे विनता वारंवार,
तेना वर अक्षरधामे त्यार
चरण चोळी छाट्यां छातीअे जे दास,
वास वस्या अखंडानंद हरि पास.(१३३)

सिर्फ मनुष्यों के साथ ही नहीं बल्कि पशु, पक्षी, और कीटकों के साथ निमंत्रण भेजने की प्रेरणा होती है । रंगबेरंगी फूलों का भोगी और गूंज करने वाले भौरे को निमंत्रण देते हुए काल्पनिक चित्र खडा किया है ।

लीली पीळी पांखनो भमरलो रे,
भमरा जाजे परदेश
भमरा ऊडजे परदेश
जाजे रे पांखाळा भमरा नोतरे रे

आवशे ते आवशे मोभीडा सौ
ने बेहशे मांडवा हेठ रे
ऊडे रे पांखाळा भमरा नोंतरे रे.(१३४)

जीवन के इस अवसर पर हर्ष-आनंद ही होता है । यहाँ कोई न आये तो कैसे चल सकता है ? सभी स्व-जनों को हृदयपूर्वक आमंत्रित किये जाते हैं ।

मारो मांडव सउ रढियाळो
लीलुडे नाळियेर छाया जो
मारे मांडव सउ लोक आवे
लोभी काका ना'वे जो.
लोभी काका लोभ न करजो
अवसर आव्या जोशो जो.
अवसरिया तो काल वया जाशे
भवना मेणां रे'शे जो.(१३५)

उसी तरह मामा, वीरा, बहन सब को उत्साह से गाकर निमंत्रित किये जाते हैं ।

मंडप स्थापना के बाद ग्रहशान्ति की महत्त्वपूर्ण विधि आती है । ग्रहशान्ति के वक्त स्त्रियाँ गीत गाती है । जैसे कि :

''दुवारकामां पडघम वाजा वाग्या रे,
परणे - परणे सीता ने श्रीराम.''

लोक-समाज की विशेषता है कि प्रकृति के साथ अभिन्न रूप से जुडे हुए वर्णनों में प्रकृति का कलात्मक विनियोग हुआ है । वर और कन्या के लिए नागरवेल एवं केवडो बोने की बात ही कई और है ।

''वाडीमां ववरावो नागरवेल (२)
क्यारामां छंटावो धनरो केवडोजी मणाराज,
दूधे रे सिंचावो नागरवेल (२)
दहींअे सिंचावो धनरो केवडो जी माणाराज.''

कल्पना वैभव की प्रतीति कराने वाली यह रचना के साथ सूर का सुभग समन्वय होता है तब अविस्मरणीय अनुभूति का अहसास होता है ।

थोडा थोडां अत्तर देने गांधीडा,
अत्तर करुं छंटकाव;
वनीनो वनशा अंतरभीनो.....(१३६)

गुजरात और राजस्थान के चारण जाति के लोग एक-दूसरे से जुडे हुए हैं, उनके बीच विवाह व्यवहार भी होते हैं । इससे चारणी विवाह गीतों में राजस्थानी भाषा और रीति-रिवाज के अंश देखने को मिलते हैं ।

सुबह सुबह गाये जाने वाले विवाह गीतों को प्रभातियाँ कहा जाता है । मंडप स्थापन के बाद सुबह गाये जाते हैं । उसमें विविध भाव-संवेदना व्यक्त होती है । जैसे कि :

लागु पाय परब्रह्मने, सोये सद्गुरु श्याम;
संत वेषे श्रीहरि, अेक रूप ने द्रय नाम.
मंगळ ईच्छे जो मनमां, तो सोंपे शरणे शीश;
अखंड सुखने पामवा, गाउ गुण हरिना हमीश.
विवा, ते नामे वधामणुं, मांहि वरकन्यानी वात;
वृत्ति ते नाम वनितानुं, वर श्री हरि साक्षात्.
वेरे वर्यानी ईच्छा करी, सोंप्युं श्रीफळ बृहद् वैराग्य;
ओढी छे अवल घाटडी, मारा स्वामी तणो जे सुवाग
स्वागण थई छे सुंदरी, पामी अखंड अेवातण;
आवे सखी सरवे मळी, गाईअे गोविंदजीना गण.
धन्य धन्य जन्म माहेरो, थयुं सगपण श्यामनी साथ;
इच्छा ते वर मुजने मळ्यो, निष्कुळानंदनो नाथ.(१३७)

विवाह दौरान सुबह सुबह प्रभातियाँ के मंगल सूर गूँजते हैं । जैसे कि प्रत्येक पंक्ति में मंगल भावनाओं का धूप-दीप होते रहते हैं । घर में शब्दों से देव-आरती-अर्चन का डंका बजता है । सूर्योदय के तेज किरणों से रांदल-आदित्य की प्रेमलीला के और विवाह जीवन के आदर्शों के स्तवन (मंत्रों) से एक ओर से प्रभात (सुबह) का स्वागत किया जाता है । जैसे कि -

लीलुडो वांस ढळुकडे ढळियो
ई रे वांसलियानो वींझणो घडियो
हरतो ने फरतो हीरले जडियो
माणुं मोती ने पाली परवाळे जडियो
ई रे वींझलणो रांदल-वरसुं जडियो
ऊठो, रांदलना वर, सपनां निहाळो !
ल्यो रे लोटी ने सींचो तुळसीनो क्यारो !
जेम जेम तुळसी लेरडे जाय रे
तेम रे रांदलना वर नींदरे घेराय रे !
जेम जेम तुळसी फाले ने फूले
तेम रे रांदलना वरने नींदरडी ऊडे !(१३८)

वर-कन्या का नाम देकर बार-बार गीत गाया जाता है । सूर्य का उदय होता है । पूर्व दिशा में मंगलमय देव के कंकु-पगले दिखाई देते हैं । आसमान से चले आते हुए देव-युगल कौन है ? ये तो उद्यम और लक्ष्मी है । उद्यम और संपत्ति ये दोनों क्या बातें करते हैं ? आपस में कहते हैं कि हम किसके घर जायेंगे ? किसके घर के आँगन में पग रखने जैसी पुनित भूमि है ? गीत गानेवाली ये देव-बेलडी की बातें अपने गीतों में कहती है ।

ऊठोने भोळी, वींछळोने गोळी;
महीडां वलोवो झोटयुं तणा रे
महीडां वलोवशे मारी हर्षभाईनी माडी रे
पेरण पटोळी ओढण चूंदडी रे
लाश भणे रे लखमी किया भाई घेर जाशुं रे
जे भाई घेर परभाते पाणी गळे.
लाश भणे रे लखमी किया भाई घेर जाशुं रे
जे घर सासु वहु सुवासणा.
लाश भणे रे लखमी किया भाई घेर जाशुं रे
जे घर बाप दीकरो लेखां करे
लाश भणे रे लखमी किया भाई घेर जाशुं रे
जे घेर पुतर केरां पारणां
लाश भणे रे लखमी किया भाई घेर जाशुं रे
जे घेर वरध उतावळी
लाश भणे रे लखमी किया भाई घेर जाशुं रे
जे घेर समी सांज दीवो बळे.
लाश भणे रे लखमी किया भाई घेर जाशुं रे
जे घेर सामी भींते साथिया.
लाश भणे रे लखमी किया भाई घेर जाशुं रे
जे घेर पोपट केरां पांजरा.(१३९)

मामेरा (मोसाळुं) भरने का समय हो चुका है । वर या कन्या की माता राह देख रही है कि अपने मायके (पिहर) से भाई कब आयेगा ? यानीकि भाई आयेगा ऐसी चेष्टाएँ शरीर में होती है ।

मारी आंखलडी भींजाय रे मारो नख नमे रे
मारो फरके छे डाबा पगनो लांक रे
घेरे कोण साजनियां आवशे रे
मारे किया भाई आव्या किया भाई आवशे रे
हुं तो जोई रही छुं दिनेशभाईनी वाट रे
अमृतभाई आव्ये रंग रे'शे रे !(१४०)

लेकिन बहुत इन्तजार करने के बाद भी भाई नहीं आता है । ननदी ताने देने लगी । बहन अकुलाई सी घर (डेली) के बाहर दौडी जाती है । दूर दूर तक रास्ते पर नजर दौडाती है । शरीर पर पसीना होता है तब किसीने कहा कि आपका भाई आ रहा है ।

बाई रे साव रे सोनानो सारो दीवडो
अेने दीवडीअे रंग रूपाना मोर
सोहन दांडीनो दीवडो
बाई रे दीवडो मेलावो मोटे मांडवे रे
त्यां चडी बेसजे मारो देर ने जेठ,
सोहन दांडीनो दीवडो
नणदी मचको करीने बोल्यां रे
भाभी ! ना आव्यो तारो लोभी वीर.
सोहन दांडीनो दीवडो. (१४१)

ऐसे ताने सुनने वाली स्त्री की दशा (वेदना) यहाँ की गई है । कमखा (कब्जा) की दोरी तूट गई है, बाल का अंबोडा बिखरा हुआ है और मुँह पर से पसीने की बूंद छाती तक फैले हुए है ।

बाई रे कसुं रे छूटीने वेणु मोकळी
मारे हैडे रे कांई ऊतर्यो तंबोळ.
सोहन दांडीनो दीवडो
देर वधामणी लावे
भाभी ! आव्यो रे तारो माडी जायो वीर
सोहन दांडीनो दीवडो
बाई कसु रे बांधी ने वेणुं ठांसियुं
जी रे मारे हैडे हरख न माय
सोहन दांडीनो दीवडो

भाई (वीरा) को देर होने से बहन पूछती है कि, अरेरे वीरा ! इतनी देर क्यों हो गई ? तब वीरा उत्तर देता है कि :

वीरा ! चांदलियो ऊग्यो ने हरण्युं आथमी रे
वीरा ! क्यां लगण जोउं तमारी वाट रे
मामेरा वेळा वही जशे रे !
बेनी ! पाटण ग्यो'तो पटोळां वोरवा रे

बेनी ! पाटणमां पडी'ती हडताळ
अमदावाद ग्यो'तो वोरवा रे !
वीरा ! चांदलियो ऊग्यो ने हरण्युं आथमी रे
वीरा ! कयां लगण जोउं तमारी वाट रे
मामेरा वेळा वही जशे रे !
बेनी ! चीतळ ग्यो'तो चूंदडी वोरवा रे
बेनी ! चीतळमां पडी'ती हडताळ
अमदावाद ग्यो'तो वोरवा रे ! (१४२)

माँ अपने बेटे को कहती है कि बहन के घर मामेरा (मोसाळुं) है उसमें किसी भी प्रकार की कमी न रहनी चाहिए । गहनें-कपडें सब कुछ देना ।

जीवणजीने जीवो लैने मोसाळुं, मोहनजीने जावो लैने मोसाळुं;
के'छे पुत्रने तरवाडी काळु..... जीवण.
छाब सोनेरी वस्त्रेशुं भरजो, घणां घरेणां छाबमां धरजो;
बेनी बाळाने बहु राजी करजो,.... जीवण.
सासु ससराने चितवी चित्ते, देजो वस्त्र रूडां करी प्रीते;
न्यून राखशोमां कोई रीते ..... जीवण.
वस्त्र घरेणां घनश्याम तणां, पाघ दुशाल धर्मना घणां;
लई जाजो म राखशो मणा..... जीवण.
बेनी बाळा सारस घडशाळी, बीजा वस्त्र ते देजो संभाळी;
कोई रीते न रहे अेशियाळी..... जीवण.
देजो मोती माळानी झूडी, कोटे कंठेसरी लागु रूडी;
मोहनमाळा हाथे हेम चूडी..... जीवण
लेजो अखंड मणि जड्यो मोड, सगां बधु जाजो जोड जोड;
बेनी बाळानी जई पूरो कोड..... जीवण.(१४३)

बहन को मामेरा (मोसाळुं) में कौनसी कौनसी चीजें देनी है उनका वर्णन गीत में किया है ।

विवाह का उत्सव यह लोकजीवन का-हर्षोल्लास का प्रसंग है । मंडप स्थापन उत्सव का आवश्यक अंग है । उसी तरह चाक (कुम्हार का चाक) भी विवाह का एक अंग है । कुम्हार जो चाक पर मिट्टी के बरतन बनाता है उनकी भी पूजा होती है । जैसे कि :

में तो थाळ भर्यो शग मोतीडे रे
हुं तो वरघ वधाववा जईश रे
मारो सोना सरीखो सूरज ऊगियो रे

में तो थाळ भर्यो शग मोतीडे रे
हुं तो धवलभाई तमने विनवुं रे
तमारा साथीदारोने लेजो साथ रे
मारो सोना सरीखो सूरज ऊगियो रे
में तो थाळ भर्यो शग मोतीडे रे
हुं तो जल्पावहु तमने विनवुं रे
तमारी सैयरोने लेजो साथ रे
मारो सोना सरीखो सूरज ऊगियो रे
में तो थाळ भर्यो शग मोतीडे रे (१४४)

कई कोमल परिवर्तन की रीति से यह गीत युवा पतिराज को आने वाले नये दिनों-नये भाव विश्व में ले जाते हैं । हंसराज का यह संबोधन अर्थपूर्ण है ।

गागर उपर बेठो लीलो रे, आ हंस केणे उडाडियो रे ?
कहो, हंस राणा ! कियां तमारा वास रे, आ कियां तमारा बेसणां रे ?
आंबा डाळे हुवा अमारा वास रे, आ सरोवर पाळे बेसणां रे
कहो, हंस राणा ! केम जाशो परदेश रे, आ केम करी दरियो डोळशो रे ?
पांखे ऊडी जाशुं रे परदेश रे, आ चांचे दरियो डोळ्युं रे
गागर उपर बेठो लीलो हंस रे, आ हंस केणे उडाडियो रे ?
कहो हर्षिलभाई कियां तमारा वास रे, आ कियां तमारा बेसणां रे ?
मेवासा शहेरमां हुवा अमारा वास रे, चंदुभाई घेर बेसणां रे ?
कहो हर्षिलभाई केम जाशो परदेश रे, आ केम करी लाडली लावाशो रे ?
रूपियानी थेलीअे जाशुं परदेश रे, आ गरथे लाडली लावशुं रे !(१४५)

नव-वधू को लेने जाने के लिए सिंगार होने लगे हैं । नये नये वस्त्राभूषण पहनने से मन आनंदित हो उठता है शरीर के अंग मद से खिल उठते है उसका चितार देखिए ।

झल रे मगियानो, झल रे सिवडावो,
झल रे सिवडावो,
दोरंगी वेतरावो
केड मरडीने पे'रो रे पूजाबाई
पे'रो रे पूजाबाई
वीरना मन मोशे
वीर नीरवभाई आनी कोर जोशे !
ओली कोर जोशे !
लळी लळी मोढा सामुं जोशे !(१४६)

वरराजा सिंगार करके वरघोडो निकाल ने के लिए घोडे पर सवार होते हैं । घोडे सवार भाई कैसा लगता है ? उसको देखने के लिए सारा गाँव निकल पडता है ।

कुंवर घोडे चड्या ने जोवा जग मळ्युं
मारी शेरीमां हाट नो माय, कुंवर घोडे चड्या.
वीरा मेरे दोशीडा तने वारियो
रूडी पामरीउं लई आव. कुंवर घोडे चड्या.
जी रे विवेकभाई ते सोनलबेनने वीनवे
मारा लाल गुलालने काज. कुंवर घोडे चड्या.(१४७)

वरघोडा निकलता है तब उनका स्वागत होता है । वर की बहनें, चारों ओर से समग्र सीम या समग्र वातावरण गूंज उठे, ऐसे शहनाई के सूरों की गूंज से श्वसुर पक्ष के गाँव तक संदेश भेजने हैं और संदेश ले जाने वाला दूत देवपंखी मोरला यानीकि मोर होता है । इस गीत में देखिए :

मोर, तारी सोनानी चांच
मोर, तारी रूपानी पांख
सोनानी चांचे रे मोरलो मोती चणवा जाय
मोर, जाजे उगमणे देश
मोर, जाजे आथमणे देश
वळता जाजे रे वेवायुने मांडवे हो राज !
वेवाई मारा, सूता छो के जाग
वेवाई मारा, सूता छो के जाग
चमनभाई वरराजे सीमडी घेरी, माणाराज !
सीमडीअे कांई चमर ढोळाव
सीमडीअे कांई चमर ढोळाव
चमरनो होंशी वीरो मारो आव्यो, माणाराज !
मोर, तारी .....
वेवाई मारा सूता छो के जाग
वेवाई मारा सूता छो के जाग
चमनभाई वरराजे झांपला घेर्या, माणाराज !
झांपलीअे कांई छांटणा छंटाव
झांपलीअे कांई पाणीडां छंटाव
ठंडकुनो होंशी वीरो मारो आवे, माणाराज !
मोर, तारी.....
वेवाई मारा सूता छो के जाग

वेवाई मारा सूता छो के जाग
चमनभाई वरराजे शेरीउं घेरी, माणाराज!
शेरीअे कंई फूलडां पथराव
शेरीअे कंई फूलडां पथराव
सुगंधीनो होंशी वीरो मारो आवे, माणाराज !
मोर, तारी .....
वेवाई मारा, सूता छो के जाग
वेवाई मारा, सूता छो के जाग
चमनभाई वरराजे मांडवडा घेर्या, माणाराज !
मांडवडे कांई लाडकी पधराव
मांडवडे कांई लाडकी पधराव
लाडकीनो होंशी वीरो मारो आवे, माणाराज !
मोर तारी..... (१४८)

जिस के लिए खडी खडी तपश्चर्या करती थी उनको आज आते हुए देखकर कन्या अनिमेष नजरे देख रही है । उसने भी पंद्रह दिन तक प्रेम भरे प्रभातियाँ सूने हैं । पीठी लगाई है । मांगलिक तैल लगाये हैं । सुगंधित पदार्थो से स्नान किया है ऐसे सुनहरे बदन पर चाचा, मामा और वीरा (भाई) ने मोतियों से गूंथी हुई चुंदडी पहन ली है । कैसी लगती है यह चुंदडी । देखिए :

नवेनगरथी चोळ चूंदडी वावरी,
आवी रे अमारणे देश रे, वोरो रे दादा चूंदडी !
चूंदडियुंने चारे छेडे घुघरी
वचमां ते आळेख्या झीणा मोर रे, वोरो रे दादा चूंदडी !
संकेलुं तो धमके रूडी घुघरी
ऊखेळुं त्यां टीके झीणा मोर रे, वोरो रे दादा चूंदडी !
अमदावादी चोळ चूंदडी वावरी,
आवी रे अमारले देश रे, वोरो रे काका चूंदडी !
चूंदडियुंने चारे छेडे घुघरी
वचमां ते आळेख्या झीणा मोर रे, वोरो रे काका चूंदडी !
संकेलुं तो धमके रूडी घुघरी
ऊखेळुं त्यां जगमोहननी भात रे, वोरो रे काका चूंदडी !
सूरत शे'रथी चोळ चूंदडी वावरी,
आवी रे अमारणे देश रे, वोरो रे मामा चूंदडी !
चूंदडियुंने चारे छेडे घुघरी
वचमां ते आळेखी पोपटवेल रे, वोरो रे मामा चूंदडी !

संकेलुं तो चमके रूडी घुघरी
ऊखेळुं त्यां पोपट बोले वेण रे, वोरो रे मामा चूंदडी !
जूनागढथी चोळ चूंदडी वावरी,
आवी रे अमारी देश रे, वोरो रे वीरा चूंदडी !
चूंदडियुंने चारे छेडे घुघरी
वचमां ते चोखलियाळी भात्य रे, वोरो रे वीरा चूंदडी !
संकेलुं तो धमके रूडी घुघरी
ऊखेळुं त्यां टौके झीणा मोर रे, वोरो रे वीरा चूंदडी !(१४९)

कन्या के पिताजी ने सामैया की तैयारी की है । फिर भी कन्या तो अभी भी गढ यानीकि गाँव की पहाडी पर चढकर देख रही है । बारातियों के - घोडे सवारों के जूथ के घोडे के डाबले बज रहे हैं ।

ऊंचा ऊंचा मोल मारे घर रे वीवाता
अेथी ऊंचेरा गढना कांगरा रे
कांगरे चडीने बेनी अंबाबेन जोशे
केटलेक आवे वरराजिया रे !
पांचसे पाळा रे, दादा छसे छडियाता
घोडानी घुमण वरराजिया रे.
शां शां सामैया दादा वरना जानैया
शां शां सामैयां वरराजिया रे.
ढोल शरणायुं घेडी वरना जानैया
नगारानी जोडय वरराजिया रे
शा शा उतारा दादा वरना जानैया
शा शा उतारा वरराजिया रे !
ओरडा ओसरी रे घेडी वरना जानैया
मेडीना मोल वरराजिया रे(१५०)

ढोल-नगाडे बजते हैं, शहेनाईयाँ बजती है, बंदूके गूंजती है, मशाले जलती हुई गाँव की ओर बारात धीरे धीरे आती है । घोडे पर असवार अपने पति को नजदीक से देखकर अकेली कन्या मंजिल पर बैठी हुई अपने आत्मा (हृदय) को कुछ कह रही है । ये कह रही है कि आप सब से मेरी दृष्टि अलग है । आप सबने उनके रूप, तेज, लाड सब कुछ देखे हैं, लेकिन मैं तो सिर्फ एक ही बात देख रही हूँ । वो कहती है :

कन्या चड्या रे दादाजीनी मेडीअे
रायवर आव्या दादाजीनी शेरीअे

दादा, तमे रे जोया वर राजिया
दादा, अमे जोया चतुर सुजाण, छत्रीस वाजां जागिया
कन्या चड्या रे काकाजीनी मेडीअे
रायवर आव्या काकाजीनी शेरीअे
काका, तमे रे जोया वर लाडका
काका, अमे जोया चतुर सुजाण छत्रीस वाजां वागियां
कन्या चड्या रे मामाजीनी मेडीअे,
रायवर आव्या मामाजीनी शेरीअे
मामा, तमे रे जोया वर रूपला
मामा अमे जोया चतुर सुजाण, छत्रीस वाजा वागियां
कन्या चड्या रे वीराजीनी मेडीअे
रायवर आव्या वीराजीनी डेलीअे
वीरा, तमे रे जोया वर होंसीला
वीरा, अमे जोया चतुर सुजाण, छत्रीस वाजा वागियां !(१५१)

उनकी आँखों में तो सिर्फ एक ही गुण बसा हुआ है । उनकी पसंद सिर्फ चातुरी पर है, उनकी माल-मिलकत पर नहीं है या नहीं है उनके रूप पर । बार बार वो कहती है कि मैं तो उनकी चातुरी पर मोह पडी हूं दूसरे कुछ पर नहीं । ये अपने पति को देखती ही रहती है । गली-गली जाकर, छाने-छपने, ऊँची ऊँची मंजिलो से देखती है । यह कन्या अपने पति का सौंदर्य मीठी नजरों से झाँक-झाँक कर देखती रहती है ।

वर राजा भी अपनी होनेवाली बहू को देखने के लिए उत्कट हो रहा है । जैसे कि रावणकथा में सीताजी के मिलने की उत्कंठा रामचंद्रजी को थी उसी तरह । शीतल आम्र के वृक्ष की छाँव में बैठा हुआ (पति) वर इच्छता है :

आंबलियो सखी शीळो ने मोतीडे निरमळो,
पांदडे पोथीनो रंग, डाळखीअे दीवा बळे !
तेना थडे बेठा श्री राम, लंका लंका झंखी रिया,
कोई अमने लंका देखाडो सीताजी मेळवो !
कोण तारु सगुंने सागवी
कोण तारो माडीजायो वीर सीताजीने मेळवो !
बळभद्र सगुं ने सागवी
लखमण मारो माडी जायो वीर, सीताजीने मेळवो !(१५२)

उसी तरह वरराजा और उनके भाई के नाम लेकर गीत को आगे बढाया जाता है ।

कन्या के आँगन वर आ पहुँचता है । कन्या की माँ रवैया, त्राक, धूंसरी और पींडी से उनको पोंखती है । और कहती है कि, हे कुमार । तेरे गृह संसार में ये चारों चीजें - दूध, घी, खादी

के वस्त्र, कृषि-धान्य सब कुछ तूझे प्राप्त हो । वर की पवित्रता को उजागर करने के लिए यहाँ सीता-राम का ही उद्‌बोधन किया है ।

सीताने तोरण राम पधार्या
लेजे पनोती पे'लुं पोंखणुं !
पोंखतां रे वरनी भ्रमर फरकी
आंखलडी रतने जडी
रवाईअे अे वर पोंखो पनोता
रवाईअे गोळी सोहामणांय
सीताने तोरण राम पधार्या
लेजे पनोती बीजुं पोंखणुं !
धोंसरीअे अे वर पोंखो पनोतां
धोंसरीअे धोरी सोहामणा
सीताने तोरण राम पधार्या
लेजे पनोती त्रीजुं पोंखणुं !
तराके अे वर पोंखो पनोतां
तराके रेंटीडा सोहामणा.
सीताने तोरण राम पधार्या
लेजे पनोती चोथुं पोंखणुं !
पींडींअे अे वर पोंखो पनोती
पींडीअे हाथ सोहामणा !(१५३)

वरराजा मंडप में आते हैं । कन्या तो दोपहर की तैयार होकर बैठी है । दोनों हाथ की हथेलियों और दोनों पाँव की पानिओं में कंकु और चाँदले लगाये हुए हैं । पंद्रह दिनों से लगाई हुई पीठी से खिले हुए देह (शरीर) पर श्वेत सुंदर कोई संसारी बाल-जोगन को शोभा दे ऐसा पानेतर पहनाया गया है । माथे की रूपेरी लहें पति की दी हुई नवरंग चूंदडी शोभा दे रही है । लेकिन ये चूंदडी वरराजाने कन्या को पहनने को दी गई थी लेकिन कन्या चूंदडी पहनने को हिचकिचाती है । उनको डर है कि शायद यह चूंदडी देखकर स्व-जनों पूछताछ करेंगे तो ? गुप्त रीते भेजी हुई चूंदडी सब के सामने कैसे पहनी जाती है ? तब वरराजा कहता हे कि, हे प्रिये ! मैं गुप्त रीते भेंट नहीं करता, सब के सामने आया हूं, इसलिए तूं बिना भय-निर्भित बनकर पहन ।

मारा नखना परवाळा जेवी चूंदडी
मारी चूंदडीनो रंग रातो हो लाडडी
ओढोने, साहेबजादी, चूंदडी.
हुं तो केम करी ओढुं रे, सायबा, चूंदडी

मारो दादोजी देखे, माताजी देखे.
केम रे ओढुं रे सोरंग चूंदडी !
तमारा दादाना तेड्या अमे आवशुं.
तमारी माताना मन मो'शे, हो लाडडी
ओढोने लाडकवायी चूंदडी !
हुं तो केम करी ओढुं रे, सायबा, चूंदडी,
मारो वीरोजी देखे, भाभीजी देखे
केम रे ओढुं रे सोरंग चूंदडी!
तमारा वीरांना तेड्या अमे आवशुं.
तमारी भाभीना गुण गाशुं हो लाडडी
ओढोने, साहेबजादी, चूंदडी!(१५४)

साजन-महाजन मंडप में बैठे हैं । और बाराती स्त्रियाँ गाती है ।

नाणांवटी रे साजन बेठुं मांडवे
लाखोपति रे साजन बेठुं मांडवे.....
जेवा भरी सभाना राजा, अेवा हर्षिलभाईना दादा.
जेवा अतलसना ताका, अेवा हर्षिलभाईना काका
जेवा चैतरवैशाखना आंबा, अेवा हर्षिलभाईना मामा
जेवा हारमांयला हीरा, अेवा हर्षिलभाईना वीरा
जेवी आंबलियानी वाडी, अेवां हर्षिलभाईनां माडी
जेवी फूलडियानी वेणी, अेवां हर्षिलभाईनां बेनी
नाणांवटी रे साजन बेठुं मांडवे.(१५५)

वर पक्ष की स्त्रियाँ कन्या को देने के लिए विविध चीजें (वस्तुएँ) लेकर आती है उनको 'छाब' बोलते हैं । बारात में आई हुई स्त्रियाँ गाती है कि :

ऊंचो आंबलियो घेरो गंभीर जो, फूलडे ते दीसे रे रळियामणो.
ऊठोने गोपीनाथ डाळ खंखेरो, पातळा राधाजी वीणे फूलडां,
वीणी चूंटीने छाब भरावो, मोकलोने मोटी बाने ओरडे.
ऊठो मोटीबा छाब वधावो, भक्तिने जाये भेट मोकली.
झीबा चोखा ने हाथमां कंकावटी, छाब वधावे मोटीबा पातळा.
घणुं जीवो मा भक्तिना जाया, मोक्षना द्वार उघाडिया.
मंदिर करजो व्हाला मूर्ति पधरावजो, सत्संग वधजो रे मारा नाथनो.(१५६)

पहले मस्तक पर मोडियो यानीकि मुकुट, उसके पर गोल चूंदडी जैसे सिंगार सजा कर कन्या

मंडप में आती है । लोगों के बीच कन्या आती है और अग्नि की साक्षी में बिना लज्जा-शर्म से कन्या का हस्त वर के कर कमल में रखा जाता है ।

माधवपुरनो मांडवो, आवे जादवकुळनी जान !
परणे ते राणी रुकमणि, वर वांछित श्री भगवान.
जादव जानैया थया, मांडविया पण सोय;
विधि सहित विवा रच्यो, कसर न राखी कोय.
माणेक स्थंभ मंडप रच्यो, मध्ये चोरी बांधी सार;
मोहन आव्या मांय रे, कोटि भुवनना करतार.
माथे ते मुगट जडावनो, काने कुंडळ मकराकार;
बांये बाजुबंध बेरखा, कोटे कौस्तुभ मणिनो हार.
शोभे घणा शणगारमां, पीतांबर अति उदार;
हेमकडा बेउ हाथमां, पाये झांझरनो झणकार.
व्हालानुं वदन सोहामणुं, जाण्युं उग्यो पूनमचंद;
मुक्तानंद कहे मनोहरने, जोई थयो आनंद !(१५७)

चोरी (मंडप) में बैठकर कन्या और वरराजा एक दूसरे को साथ रहने का प्रति मंगल कोल यानीकि वचन देते हैं ।

चोरी बांधी ते चारे ठाम रे, धर्म अर्थ मोक्ष ने काम रे;
योग अग्नि प्रगट कर्यो जाणी रे, हुत होम वंदे वेद वाणी रे,
पे'लुं मंगळ वरतियुं ज्यारे रे, वर्तमान कर्या दृढ त्यारे रे,
बीजुं मंगळ वरतियुं उमंगे रे, कीधी भक्ति नवे दृढ अंग रे.
त्रीजुं मंगळ वरतियुं ज्यारे रे, जोग सिद्ध थई भवपार रे,
चोथुं मंगळ वरतवाने काज रे, वेदविधिनी जोडी मा'राज रे.
चोथुं मंगळ वरताव्युं स्वामी रे, महाज्ञानना पारने पामी रे;
हुं तो पूरण ब्रह्मने परणी रे, कहे वैष्णवानंद अे करणी रे.(१५८)

चार मंगल फेरे लिये जाते हैं । अग्नि में जव-तल का होम किया जाता है । कन्या के सगे-संबंधियों के हाथ कन्यादान दिया जाता है । एक ही थाली में वर-कन्या आमने-सामने निवाला देकर कंसार खाते हैं ।

वरकन्यानी जोड बिराजे रे, जोतां कोटि काम छबी लाजे रे,
वाजे देवनां वाजां अपार रे, परणे अखिल भुवनना आधार रे
ब्रह्मा उचरे वेद वचन रे, जय जयकार थयो त्रिभुवन रे,
चारे फेरा हरिसंग फरिया रे, नारी जगना जीवणजीने वरिया रे,

शोभे अखंड अलौकिक जोड रे, माथे बत्रीस भमरीनो मोड रे,
लाडो लाडी जमे रे कंसार रे, जेनो निगम न पामे पार रे,
मुक्तानंद कहे महासुखकारी रे, अेवां चरित्र करे गिरधारी रे.(१५९)

गोत्रज के सामने दूध से भरी हुई थाली में वर-कन्या (दंपती) कोडी के खेल खेलते हैं । बाद में सहभोजन, सहक्रीडा और रमूज और मस्तीभरा चित्रांकन किया गया है ।

कण कण कांकणियाळी चूडी रे
लाडा पासे लाडडी दीसे रूडी रे
कहोने लाडी अेवडां ते तप शां कीधां रे
गढडामां गोपीनाथ पूजवा ग्या'ता रे
तेने तपे चंपकभाई ससरो पाम्यां रे
कहोने लाडी अेवडां ते तप शां कीधां रे
मूळीमां मांडवराय पूजवा ग्या'ता रे
तेने तपे वनिताबाई सासु पाम्यां रे.(१६०)

और कैसी ये विवाह की रात ? कैसे मंडप और मायरे ? कैसी कन्या और कैसे परणेतर ? सुबह तक ये सब मीठी मीठी बातें चल रही हैं । सूडा राणा और कोयल राणी विस्मित होते हैं । ऐसी आम्र वृक्ष की डाली से भी ज्यादा सुंदर क्या मिला कि तुम वहाँ रात रुक गई ।

सूडला कोयलडीने वीनवे रे
आवी रूडी सरोवरनी पाळ
आंबा केरी डाळ
मूकीने कोयल क्यां ग्यां'ता रे !
शीळा रे हर्षभाईनां मांडवा रे
तियां रूडा मांडवा नखाय
रूडा गीत गवाय
जोवाने अमे त्यां ग्या'ता रे ! सूडला .....
शीळा रे हर्षभाईना मायरां रे
तियां रूडी कन्या परणाय
रूडा फेरा फराय
जोवाने अमे त्यां ग्या'ता रे ! सूडला.....
शीळा रे हर्षभाईनां मायरां रे
घोडीला बांध्या छे बार
हाथी झूले दरबार
जोवाने अमे त्यां ग्यां'ता रे ! सूडला.....(१६१)

विवाह की रात्रि का उल्लास-आनंद पूरा हो जाने के बाद कन्या को आनेवाली कल की बिदाई की याद आती है । और मीठे गीतों का प्रवाह करुणता में परिवर्तित हो जाता है । पिताजी के पास वस्त्राभूषण की पहेरामणी (दायजा) मांगती हुई पुत्री दु:ख भरे स्वर में कहती है ।

चोरीमां चरकलडी रे बोले दादाजी अरथ उकेलो !
अमारा दादाने हाथी ने घोडला ते बाने सासरे देजो !
संपत होय तो देजो, दादा मोरा हाथ जोडी ऊभा रे'जो !
हाथ जोडी ऊभा रे'जो, दादा मोरा जीभडीअे जरा लेजो !
चोरीमां चरकलडी रे बोले दादाजी अरथ उकेलो !
अमारा वीराने नवली रे गायो रे बाने सासरे देजो !
संपत होय तो देजो, वीरा मोरा हाथ जोडी ऊभा रे'जो !
हाथ जोडी ऊभा रे'जो वीरा मोरा जीभडीअे जश लेजो !(१६२)

अंत में बिदाई का दिन आ जाता है और कन्या को अपने पुराने स्नेह-संबंध छोडकर नये संबंध जोडने के लिए शीख देते हुए वरराजा कहता है ।

आछेरुं कंकूडु धोळये रे लाडी
आछेरी पीळय कढावुं !
तारा बापनां झूंपडां मेल्य रे लाडी
सागरभाईना म्हेल देखाडुं !
तारी मातानो खोळलो मेल्य रे लाडी
हंसावहु ते सासु देखाडुं !
तारा वीरानो केडलो मेल्य रे लाडी
मिलनभाई देर देखाडुं !
तारी बेनीनो छेडलो मेल्य रे लाडी
गीताबेन नणदी देखाडुं!(१६३)

अपने पिताजी के आँगन का वृक्ष को छोडने की घडी आ पहुँची है और पंखिणी जैसी दीकरी (कन्या) पिता की क्षमा माँगती है ।

दादाने आंगण आंबलो, आंबलो घोर गंभीर जो,
अेक ते पान में चूंटियुं दादा, गाळ नां देजो जो,
अमे रे लीला वननी चरकलडी, ऊडी जाशुं परदेश जो,
आज रे दादाजीना देशमां, काले जाशुं परदेश जो,
दादाने वा'ला दीकरा, अमने दीधा परदेश जो !(१६४)

कन्या अपने पिताजी को कहती है कि, पिताजी ! अब तो वापस जाओ आप कितने दूर आओगे ? आपने तो मेरा ब्याह बहुत दूर किया है ।

परशाळेथी केसर ऊडे,
घोडवेल्युं आवे रे उतावळी.
घोडवेल्ये बेसी बेनीबा चाल्या,
दादा ते छगनभाई वळामणे,
वळो वळो रे मारा समरथ दादा,
अमने दीधां तमे वेगळा !(१६५)

वहेल (वेलडी) के पैडां के तले नारियल कुचाला गया और सभी स्वजन कन्या को बिदाई देने के लिए गये । सभी ने कन्या को करुण शीख दी । पिता अपनी भावनाओं को नहीं रोक सकता इसलिए वो शेरी से ही वापस चला जाता है और कन्या का भाई गाँव की सीम तक उसको बिदाई करने के लिए जाता है । बिदाई हुई बहन सीम में अपने पिता के खेत की ओर अनिमेष देखती है और भावुक होकर मनोमन कहती है :

आ दृश्य आ दृश्य पीपळो, आ दृश्य दादानां खेतर,
डेली वळामण बानो दादोजी, दीकरी, डायलां थाजो !
हैडे ते जडजो सोना सांकळा, मनडां वाळीने रे'जो !
ससरानो सरडक घूमटो, सासुने पाये ते पडजो !
जेठ देखी झीणां बोलजो, जेठाणी वाद न वदजो !
नानो देरीडो लाडको, अेनां हस्यां रे खमजो !
नानी नणंद जाशे सासरे, अेनां माथडां गूंथजो !
माथां गूंथी सेंथा पूरजो, बेनने सासरे वळावजो !(१६६)

सभी लोगोंने बारातियों के प्रति का कर्तव्य निभाया है । रोती हुई दीकरी और वहेल के पीछे दौडती हुई माँ यानीकि पति (स्वामी) हरण करके लेकर चला जाता हो ऐसा कठोर बनता है । कन्या कहती है कि थोडी देर रुक जाओ, मेरे पिताजी को एक बार फिर मिल लूं, भाई (वीरा) की रजा मांग लूं । लेकिन नहि..... नहि.....।

ढोलीडा धडूक्या लाडी, चालो आपणे घेर रे !
ऊभा रो'तो मागुं मारा दादाजीनी शीख रे !
हवे केवी शीख रे, लाडी, हवे केवा बोल रे !
परण्यां अेटले प्यारा लाडी, चालो आपणे घेर रे !
ऊभा रो'तो मागुं मारा वीराजीनी शीख रे !(१६७)

ऐसे पुकार करती हुई कन्या को लेकर वहेल चली जाती है । कन्या के पिताने घर जाकर देखा तो मंडप निःस्तेज लगने लगा ।

वळी वळी दादा पूछे वात
आज मांडव केम अणोहरो रे
दीवडो तो हतो बेनीबाने हाथ
मेलीने चाल्या सासरे रे (१६८)

पिताजी के घर का दीप-घर का तेज चला गया । जाने कोई ठगाई करने वाला अपनी दीकरी (कन्या) को ठगाई करके ले गया ऐसी कल्पना की गई है ।

अेक आव्यो'तो परदेशी पोपटो;
बेनी रमतां'ता मांडव हेठ; धुतारो धूती गयो !
बेने मेल्यां ढींगल मेल्यां पोतियां,
बेने मेल्यां सैयरीओनो साथ; धुतारो धूती गयो !(१६९)

माता अफसोस कर रही है कि मेरी लाडली बेटी को अमृत पिलाकर बडी की थी वो आज पराई हो गई है ।

पीठी चोळी लाडकडी ! चूंदडी ओढी लाडकडी !
चूंदडीअे धबकारा ढांक्या ने करमां कर सोंप्यां लाडकडी !
मीठी आवो लाडकडी ! केम कहुं जाओ लाडकडी !
तुं शानी सापनो भारो ? तुं तुलसीनो क्यारो लाडकडी !
चरकलडी चाली लाडकडी ! रहेशे ना झाली लाडकडी !
आछेरी शीमळानी छाया अेवी तारी माया लाडकडी !
सोडमां लीधां लाडकडी ! आंख भरी पीधां लाडकडी !
हीबकीने हैयामां रुंदया ! ने पारकां कीधां लाडकडी !(१७०)

वर पक्ष को तो जाने कि आनंद-उल्लास के सरोवर छलक रहे हैं ।

कन्या परणी चाल्यो केसरियो रे, आनंद वदयो.....
वर सर्वेने माथे वरियो रे, आनंद वदयो .....
काळ मायाना कतथी जीत्या रे, आनंद वदयो.....
अमे अक्षर गढपति जीत्यां रे, आनंद वदयो.....
पाम्या अविचळ पदवी अनंत रे, आनंद वदयो.....
जेने सेवे मोटा मूनि संत रे, आनंद वदयो .....

हुं तो आनंद उदधिने पामी रे, आनंद वदयो.....
मळ्या वैष्णवानंदनो स्वामी रे, आनंद वदयो.....(१७१)

बारात वापस घर पहुँचती है । वर-कन्या को गणेश के सामने बिठाये जाते हैं । और छेडा-छेडी छोडी जाती है । कई परिवारों में अपने इष्टदेव के सामने छेडा-छेडी छोडी जाती है ।

छबीला वा'ला छोडो देवाधिदेव दोरडो, दीसे दोरडीये दस गांठ रे.....
गांठ अनेक जनमनी आवरी, तेने लागशे लगारेक वार रे.....
कळे कळे करीने छोडज्यो, नहि तो तूटी जशे निरधार रे.....
अहं देह अभिमान दोरडो, महा विकट छे विपरीत रे .....
तमे तोडवाने तो तैयार छो, कांई राखज्यो छोडवानी रीत रे.....
वा'ला आकळे अरथ सरे नहि, धरी धीरज करो विचार रे.....
वा'ला गांठ छोड्ये तमे छूटशो, आंटी काढी जोईशे आणी वार रे.....
ते तो तमारे हाथ हरि छूटशे, अेमां नथी अमारो कांई दोष रे.....
दया करीने छोडज्यो दोरडो, रखे रांक जाणी करो रोष रे.....
तमे अनेक जुगति आदरी, विदये विदये करो छो विचार रे.....
स्वामी निष्कुळानंदना समर्थ छो, जो छोडो तो सई छे वार रे....(१७२)

सूर्यास्त के बाद थोडी सी कालिमा सभी जुदाई करुण में थम गई । बिदाई की पीडा कम हो गई, आंसु पोछे गये । पुत्री (दीकरी) मीट कर आज पत्नी बन गई है ऐसा भान हुआ । नये घर का दीप बनकर आई हुई कन्या आज आदरपात्र बनी है । नयी बहू को सभी ने आशीर्वाद दिये । छोटा देवर और ननद उनके गले लग गये । और जीवन में एक बार आती है-और आकर सदा के लिए चली जाती है-ऐसी मिलन की पहली रात आ पहुँची । यह अवर्णनीय है । उनके शब्दप्रयोग नहीं होते । यह गोपनीयता-पवित्रता अति मंगलकारी होती है ।

हां हां रे हमली लीली दांडीनो झमरख दीवडो
हां हां रे हमली रमझम करतां आशावहु आव्यां.
हां हां रे हमली वगर तेड्यां गोरी शीद आव्यां ?
हां हां रे हमली आछी पछेडी ओढवा आव्यां.
हां हां रे हमली पातळिया ! पग चांपवा आव्यां
हां हां रे हमली मोतैया लाडु जमवाने आव्यां.(१७३)

पति-प्रेम की पछेडी में सो गई और सुख की निंद में उसने कैसे कैसे स्वप्न देखे । पत्नी खुद उनका अर्थ बताती हुई कहती है ।

हुं सूती रे मारा रंग रे मोलमां
सूतां ते सपनां लागियां जी रे !
ऊंडा झळहळ रे में तो सपनामां दीठा
मानसरोवर भर्या दीठां जी रे !
आंगणे हस्ती रे में सपनामां दीठा
कुंभ कळश त्यां भर्या दीठा जी रे !
आंगणे आंबलो रे में तो सपनामां दीठो
जाय जावंत्री ढुंगे ढुंगे जी रे !
मोतीना चोक रे में तो सपनामां दीठा
लीली हरियाळी त्यां बहु फळी जी रे !
मेडीअे दीवडो रे में तो सपनामां दीठो
कंकु केसर केरां छांटणां रे जी रे !
सूता जागो रे मारी नणंदीना वीरा
सपनाना अरथ उकेलजो जी रे !
ऊंडा झळहळ रे, गोरी, मैयर तमारुं
मानसरोवर तारुं सासरुं जी रे !
आंगणे हस्ती रे, गोरी, वीरो तमारो
कुंभ कळश तारा कुळनां जी रे !
आंगणे आंबलो रे, गोरी, ससरो तमारो
जाय जावंत्री सासु तारी जी रे !
मोतीना चोक रे गोरी, कंथ तमारो
लीली हरियाळी नणंद तमारी जी रे !
मेडीअे दीवठो रे, गोरी, कुंवर तमारो
कंकु केसरियां ववारुं तमारा जी रे !
घणुं जीवजो रे, मारी नणंदीना वीरा
सपनानां अरथ भला क्र्या जी रे !(१७४)

जैसे सुंदर सपने, ऐसे ही उनके सुंदर अर्थ । अनजान जीवन साथी ने कई ऐसी मीठाश ये सहचरी (पत्नी) के हृदय में रख दी है कि निंद में भी उनको रुपेरी स्वप्ने मिले । दोनों परिवारजनों ने स्वामी के यही स्वप्न सृष्टि को महोर दी गई । यहाँ से ही उनके दाम्पत्य जीवन का नया रूप दिखाई देता है ।

लोक ब्याहगीत

दूधे ते भरी रे तळावडी
मोतीडे बांधी पाळ;
इसवर धोवे धोतियां

पारवती पाणीडां जाय.
हणवां ते धोजो इसवर धोतियां
छंटाशे मारां चीर,
अम घेर दादोजी रीसाळवा
देशे माता मोरी गाळ,
नहि तारो दादोजी रीसाळवा
नहि देशे मात तोरी गाळ,
आपण वेउ मळी परणशुं
वैशाख महिना मांय

['चूंदडी']

(लोक-ब्याहगीत - तलैया दूध से भरी है ओर मोती से उसकी पारी बनाई गई है । वहाँ शंकर अपनी धोती धोते हैं और पार्वती पानी भरने जाती हैं । हे भोलेनाथ । धोती धीरे -धीरे धोओ, मेरी चुनरी में छींटा लग जाएगा । मेरे घर दादाजी बड़े गुस्सेल है ओर मेरी माँ मुझे गाली देगी । न तो तुम्हारे दादाजी गुस्सा होंगे, न मैया देगी गाली, हम दोनों वैशाख के महिने में ब्याह करेंगे ।

लोकगीत

कुंवरी चडी रे कमाड
सुन्दर वरने नीरखवा रे
दादा मोरा ! ए वर जोजो
ए वर छे वेवारियो रे.
घीडी मोरी क्यां तमे दीठा
ने क्यां तमारां मन मोह्यां रे
झीलतो' तो सरोवरनी पाळे
चोटले मारां मन मोह्यां रे.

★

रमतो' तो बवणी बजारे
दडूले मारां मन मोह्यां रे.

★

भणतो' तो भटनी निशाळे
अक्षरे मारां मन मोह्यां रे.

★

जमतो' तो सोनाने थाळे
कोळीडे मारां मन मोह्यां रे.

['चूंदडी']

लोकगीत : कन्या किवाड पर सुन्दर वर को देखने के लिए चढती है । अपने पिता से कहती है कि हे दादा, यही वर मेरे लिए देखना । यह वर अत्यंत व्यवहार- कुशल है । दादा पूछते है बेटी, तुमने उसे कहाँ देखा और कहाँ उसने तुम्हारा मन मोह लिया ? तब कन्या कहती है वह तालाब के किनारे नहा रहा था उसकी शिखा ने मेरा मन मोह लिया । वह बवणी बाजार में खेल रहा था, उसकी गेंद ने मेरा मन मोह लिया । वह ब्राह्मण की पाठशाला में पढ़ रहा था, उसके अक्षरों ने मेरा मन मोह लिया । वह सोने की थाली में जेवन करता था, उसके नेवाले ने मेरा मन मोह लिया ।

एक मुख रे शामळियो ने केड्य रे पातळियो
ते मारी सैयरुंए वखाणियो,
एक पाणी भरती पनियारीए बखाण्यो
भलो रे वखाण्यो मारी भाभीए.

['चूंदडी']

[एक तो वह सांवले मुख का है और उसकी कमर अत्यंत पतली है । उसका मेरी सभी सखियों ने बखान किया । एक तो पानी भरनेवाली पनिहारिन ने बखान किया और यह तो बडा भला हुआ कि मेरी भाभी ने उसका बखान किया ।]

चूनरी ओढाने का मूल लोकगीत कहता है कि :

नवे नगरथी चोळ चूंदड वापरी;
आवी रे अमारले देशे, वोरो रे दादा चूंदडी
चूंदडीने चारे छेडे घूघरी
वचमां ते आलेख्या झीणा मोर रे - वोरो रे दादा चूंदडी
संकेलुं तो धमके रुडी घूघरी
ऊखेळुं त्यां टहुके झीणा मोर रे - वोरो रे दादा चूंदडी

['चूंदडी']

[नये नगर से आई चूनरी हमारे देश, दादा जी चूनरी ओढाओ । चूनरी के चारों ओर घूँघरू लगा है और बीच में झीना मोर चित्रित है । चूनरी समेटूँ तो घूंघरू बजे और खोलूँ तो झीना मोर गहके ।]

लोकगीत में घूँघटा बहू को प्यारा लगता है, ब्याहता पति, पितृगृह का त्याग करते समय गमगीन हुई पत्नी को इस प्रकार से मनाता है कि :

में तो डुंगर कोरीने घर कर्या रे
में तो काचनां जडियां कमाड रे हो लाडडी
हजी रे समझ मारी कोयलडी
में तो दादा माराने दूभव्या रे
तारा आछा घूंघटडाने कारण हो लाडडी
हजी रे समझ मारी कोयलडी

['चूंदडी']

[हे मेरी प्यारी, अभी भी समझ, मैंने तेरे लिए पहाड कोरकर घर बनाया, उसमें शीशे का दरवाजा लगवाया है । मैंने तो अपने दादा को काफी दुःख पहुँचाया है तुम्हारे झीने घूंघट के कारण । अभी भी समझो मेरी प्यारी]

वहीं दलपत :

तारा घूंघटमां छे रचना घणी
जाणे मन पकड्यानी जाल
हो लाडणी, तारो घूंघट छे सुघड घणो.

[तेरे घूंघट में बहुत रचना है, मानो मन को पकड लेनेवाली जाल है लाडली तेरा घूंघट बहुत ही सुघड है ।]

साहित्य में सदाचार और शील खुशबू की तरह हो यही उचित है

विवाह का प्रसंग अनेक भावनाओं के संघर्ष से भरा हुआ है । लोकवाणी ने इस संघर्ष से काव्य निचोडना जान लिया था । जीवन का सर्वविध सुवास उन गीतों में उतर आया है । ये गीत सीधे - सीधे नीतिपरायण के नहीं होने पर भी उसमें से सदाचार तो अपने आप स्वाभाविक रूप से निष्पन्न होता है । शील और सदाचार तो जीवनपुष्प की खुशबू के रूप में मिलना चाहिये । यह तो अन्तरंग की बात हुई । कविता के बहिरंग को गणना में लें तो लोकगीतों की रसपूर्ण माधुरी अनुकरण में नहीं मिलेगी । उसका लाघव ही उसका सबसे बडा गुण है । विवाह के उद्देश्य को लेकर गाया जाता गीत :

धरतीमां बळ सरज्यां बे जणां :
एक धरती ने बीजो आभ
वधावो आवियो.
आभे मेहुला वरसाविया
धरती ए झील्या छे भार - वधावो.
★★★
माताए जनम ज आपियो
सासुए आप्यो भरथार - वधावो.
बापे ते लाड लडावियां
ससराए दीधी छे लाज - वधावो.
['चूंदडी']

[धरती में बल दो जनों ने पैदा किया, एक धरती और दूसरा आकाश । खुशखबरी आई । आकाश ने बादल बरसाया, धरती ने उसके भार को सहन किया । माता ने तो केवल जन्म दिया । सास ने भरणपोषण करनेवाला पति दिया । पिता ने लाड दिया और ससुरजी ने दी लाज । खुशखबरी आई ।]

कन्या -विदाई के गीत :

वह नीति-सदाचार की परवाह किए बगैर सन्दर्भ में श्रेष्ठ कन्या - धर्म का बोध-पाठ देता है । विवाह का उल्लास करुण यथार्थ को ढक नहीं सकता । वर पक्ष के लोग कहते हैं,

'परण्यां एटले प्यारां लाडी चालो आपणे घेर रे

(ब्याह हुआ इसलिए प्यारी दुल्हन चलो अपने घर) तब उस गीत में कन्या का चिरौरी-स्वर सुनाई देता है कि,

'उभा रो' तो मागुं मारां माताजीनी शीख रे'

(खडे रहो, मैं अपनी माता की सीख मांग लूँ) इस पर यथार्थसूचक प्रबल आज्ञा-प्रहार पडता है कि,

''हवे केवी शीख रे लाडडी, हवे केवा बोल रे!''

(अब कैसी सीख बन्नी अब कैसा बोल)

[''चूंदडी'']

वस्तुस्थिति तो लोकगीतों ने बगैर दंभ से गायी है, वही है । मायकेवाले गाते है कि बहन, यहाँ अंतिम बार खा लो :

ल्योने बेनी कचोळडां, जमजो वार बे वार रे
पछी तो जमशो सासरे, जमशो उच्छिष्ट भात रे
कूर जमशो दीवालडी, रोटली आदितवार रे
एक जमशो बपोरले, बीजलुं माझम रात रे.

[''चूंदडी'']

[लो बहन कचोलां, खाओ एक दो बार रे, फिर तो ससुराल में खाओगी उच्छिष्ठ भात रे, चूरमा खाओगी दिवाली पर और रोटी इतवार को, एक बार दुपहर को आखोगी तो दूसरी बार आधी रात को ।]

ससुराल में समय से खाने को नहीं मिलेगा; और वहाँ जाकर कैसी गरजू और पराधीन स्थिति में रहना पडेगा ।

आ दश आ दश पीपळो, आ दश दादानां खेतर;
डेली वळामणा बानो दादोजी, दीकरी डायलां थाजो !
हैडे ते जडजो सोना सांकणां, मनडां वाळीने रे'जो.

[''चूंदडी'']

[ये दस (दिशा) पीपल के पेड हैं, ये दस (दिशा) दादा के खेत हैं । दादाजी डेली तक छोडने आते हैं, बेटी सयानी बनना, अपने हृदय को सोने की जंजीर से बाँध लेना, और मन मार कर रहना ।]

यथार्थ का इससे भी अधिक धारदार और सघन आक्रंद, काव्यरसिकता के उच्च स्तर से लोकवाणी ने पुत्री को बिदा करती जनेता के मुख में रखा है :

में तो हरखेथी चांपलियो वावियो
मारो उछेरतां भव जाय
फुलनी वेळाए माळी लई गया रे.
में तो हरखेथी लाडवई मोटां कर्यां रे
मारो उछेरतां भव जाय
कामनी वेळाए जमाई लई गया रे.

[''चूंदडी'']

[मैंने बडे हर्ष से चंपा को बोया । उसको पालते - पोषते मेरा जीवन बीता गया । जब उसमें फूल आने लगे तो उसे माली उठा ले गया । मैंने हर्ष से अपनी लाडली बेटी को बडा किया । उसको पालते-पोषते जीवन बीता गया । जब वह काम करने लायक हुई तो उसे दामाद ले गये ।]

और लोकवाणी ने ब्याहता पुरुष की जनेता के हृदय को भी स्पर्शहीन नहीं रहने दिया । अन्त में उसकी भी तो यही दशा है :

में तो हरखेथी जीयावर मोटा कर्या रे
मारो उछेरतां भव जाय,
कमाई वेळाए बहुए वश कर्या रे.

[''चूंदडी'']

[मैंने बडे हर्ष से दुल्हेराजा को बडा किया । उसके लालन-पालन में मेरा जीवन बीत गया । जब वह कमाने लायक हुआ तो बहू ने उसे अपने बस में कर लिया ।]

विरहरस : प्रेमानंद की निरुपण-पद्धति

अब, प्रेमानंद कैसे शब्दों में अपनी नायिका की विरह -ज्वाला सुलगाते हैं उसे देखें :

शुकदेवजी वाणी वदे, ओखा भरी छे पूरण मदे;
वैशाख सुदी द्वादशी हती, स्वामी-स्वामी करती सूती.
व्रेहनी ज्वालानो ताप न शमे, घणा दोह्यल दिवस निर्गमे;
समय-संजोग सूर्यने अस्ते, कुच मर्दन करे छे स्वहस्ते.
अधर करडे चुंबन दे घेली, बेउ चरण हृदे पर मेहेली;
लडथडती आवे हींडी, चित्रलेहाने पाडे भुज भीडी.

[''काव्यदोहन'' भाग-१]

[शुकदेव जी कहते हैं ओखा पूर्ण मद से भरी है, वैशाख सुद द्वादशी को स्वामी-स्वामी करते सो गई, विरह रूपी ज्वाला का ताप शमित नहीं होता, दिन बडी बेताबी से बीतता है, सूर्य के अन्त होने के बाद वह अपने स्तन को अपने ही हाथों से मसलती है, अधर को काटती है चुंबन देती है, दोनों पैरों को हृदय पर रखकर, अपनी सखी चित्रलेखा को बाँहों में भरकर भहराते हुए आती है ।]

ओखा पर काम इतना व्याप्त है कि वह अपने हीं स्तनों को अपने हाथों से मसलती है, इतना ही नहीं वह अपनी चित्रलेखा को बाहों में भरकर शैया में एकसाथ सोती है, सभी चेष्टायें करती हैं । और स्वप्न में मिले नाथ के साथ :

रति -संग्राम करे छे निःशंक ग्रही अधरे देती डंख
टूटयो हार, वछूटी मेखला, रमे रतिसुख - आसन-कळा;
स्वप्ने नारी ते मळियो नृप, कन्या खलित थई कंद्रप

[वह निःसंकोच रति-संग्राम करती है । आग्रह से गालों पर काट लेती है, हार टूट जाता है, मेखला खुल गई । रतिसुख के लिए आसन-कळा खेलती है । स्वप्न में नारी को उसका स्वामी मिला और कन्दर्प से कन्या छली गई ।]

यथार्थ के साथ इतनी अधिक छूट मुझे लोकसाहित्य में कहीं भी नहीं मिली । कारण कि यह संघसाहित्य है । व्यक्तिगत उपभोग की नहीं किन्तु जाहिर में समूह के बीच मजा लूटने की सामग्री है । इसके कारण उसके भीतर सलज्जता का अंग सुरक्षित रहता है ।

विरहोद्दीपन की लोकरचनाएँ लीजिए । प्रियतमा संदेशा कहलवाती है :

पंथी एक संदेशडो, ढोला लग ले जाव;
जोबन-आंबो मोरियो, रस चाखण क्युं न आव ?

[हे पथिक, एक संदेशा मेरे पिया तक ले जाओ, यौवन रूपी आम्र बौरा गया है, रस चखने क्यों नहीं आते ?]

दूसरी विरहिणी अपने मत्त यौवन को पकी फसल का रूपक पहना कर प्रेमिक से कहलवाती है ।

खेतर पाक्युं, कण गळे, मन बेठुं माळे;
वे'लो वळये वीजाणंदा, (मने) रोझडां रंजाडे.

[खेत की फसल पक गयी है, दाने आ गये हैं, हे वीजाणंद, तू जल्दी आ जा । मेरा मन ऊपर की माल में चढ बैठा है, विरह सता रहा है ।]

तीसरी विरहिणी बारमासी गाती है :

फागण महिने फेर फरे छे होली रे, वा'ला जी !
आ पेली ने पाडोशण रंगमां रोळी मारा वा'ला जी !

[हे मेरे बालम, फागुन के महिने में फिर होली आई । उसने और मेरी पडोसिन ने मुझे रंग में रंग डाला ।]

अब रात्रि-मिलन का शृंगार लें । ब्याह-गीतों में नारीवृंद मिलन की पहली रात में खुले रूप से यों गाती है - युगल का सबसे पहला वार्तालाप :

हां हां रे हमली लीली दांडीनो जमरख दीवडो;
हां हां रे हमली रुमझूमतां मेडीए चड्यां,
हां हां रे हमली वगर तेड्यां गोरी शीद आव्यां ?
हां हां रे हमली आछी पछेडी ओढवा आव्यां;
हां हां रे हमली पातळिया ! पग चांपवा आव्यां.

[हां हां रे हमली हरी लाली का अमरूदरुपी दिया, हमली झूमते हुए अटारी पर चढी, हमली गोरी बिना बुलाये क्यों आयी ? अपने साजन का पैर दबाने के लिए आयी ।]

यहाँ आलेखित कामोद्दीपन जलद सुरापान के समय नहीं किन्तु प्रफुल्लितकर उष्मा के समान है । ओखा के स्वप्न के सामने लोकनारी को रखें :

आज रे स्वप्नामां में तो गुलाबी गोटो दीठो जो;
फूलडियांनी फोर्युं साहेली मारा स्वप्नामां रे.
गुलाबी गोटो ई तो अमारो परण्यो जो;
फूलडियांनी फोर्युं साहेली मारी चूंदडीमां रे.

[हे सखी, आज स्वप्न में मैंने गुलाब के फूलों का गुच्छा देखा, उस फूल की खुशबू स्वप्न में थी । वह गुलाब का फूल तो मेरा ब्याहता है । हे सखी, फूल की खुशबू मेरी चुनरी में है ।]

इसकी अपेक्षा तीव्र शृंगार दोहा-साहित्य में है : प्रथम मिलन की रात्रि में प्रहर-प्रहर उद्दीपन, प्रणय, रसोपभोग सघन बनता है :

पहेलो पहोरो रेनरो, दीवडा झाकमझोळ :
पियु कंटाणो केवडो, धण्य कंकुनी लोळ्य.
बीजो पहोरो रेनरो, वधिया नेह-सनेह;
धाळ्य त्यां धरती हो रही, पियु अषाढो मेह.
त्रीजो पहोरो रेनरो दीवडा साख भरे;
धण्य जीती पियु हारियो, राख्यो हार करे.
चोथो पहोरो रेनरो, बोल्या कूकड काग;
धण्य संभाणे कंचवो, पियु संभाणे पाघ.
आठमों पहोरो दिवसरो, चडी दीवडले वाट;
धण मरके ने पियु हसे, फेर बिछावो खाट.

['शूरवीरनी पहेली मिलन-रात सौराष्ट्रनी रसधार']

[रात्रि के प्रथम प्रहर में दीया जगमगा रहा है, पिया कंटीला केवडा है और पत्नी कंकुवर्ण का गुच्छ है । रात्रि के दूसरे प्रहर में दोनों के बीच प्यार-स्नेह बढा, पिया अषाढी मेघ की तरह बरसने लगा और पत्नी धरती हो रही । रात्रि के तीसरे प्रहर में दीपक गवाही देता है कि पत्नी जीत गई और पति हार गया । रात्रि के चौथे प्रहर में कौअे और मुर्गे बोलने लगे । पत्नी ने अपनी चोली संभाली और पति ने अपनी पगडी । दिन का आठवाँ प्रहर है दीये की राह देखी जाने लगी । पत्नी मुस्कुराई और पिया हँसा, फिर बिछाओ खाट ।]

इससे भी अधिक उत्कट शृंगार के दोहे लें : ढोला-मारु की कथा में नायिका शयनमंदिर जाती है :

मारु सूती अटारीए, रतडो पलंग बिछाय;
तारा तरवरियुं करे, चंद्र रियो ललचाय.
नवा मोल ने धण्य नवी, नवी जवानी नेह;
ठाकर घेर पधारिया मोती वरस्या मेह.
कोरी गागर मदभरी, हेम कटोरो हाथ;

लडथडती प्याला भरे, धन्य आजूनी रात.
कड्य लळके कोहां ढळे लळके लाल कबान;
ढोला ! चड्यनी ढोलिए मारु नानी म जाण.

['ढोला-मारु', सोरठी गीतकथाओ']

[मारु रात्रि को अटारी पर पलंग बिछाकर सो रही है । तारे उसे अधीर बना रहे हैं और चाँद ललचाता है । नया पिया और नई पत्नी है और नया-नया यौवन-प्रेम फला है । ठाकुर रूपी पति घर पधारे और स्नेह रूपी मोतियों की वर्षा की । कोरी गागर यौवन रूपी मध से भरी है और सोने का कटोरा हाथ में है । लडखडाते हुए प्याला भरती है, आज की रात्रि धन्य हो गई । कमर लचक रही है, उसकी चोली में स्तन थिरक रहे हैं, हे ढोला तुम पलंग पर चढो, मारवणी को छोटी मत जानो ।]

नवीन उपमाएँ :

मृगीनी है, किन्तु त्राठी (त्रासी हुई, डरकर भागी हुई) मृगीनी के जैसे नयन : कमर सिंहनी के जैसी है, किन्तु भूखी सिंहनी के जैसी, यहाँ तक तो ठीक है, किन्तु स्त्री-सौंदर्य को बागियों की बरछी के साथ, होली की लपटों के साथ, पुरानी बाड का भडका या भादों का तडका के साथ तुलना करने की वृत्ति तो एकदम अनोखी ही है । भावी ब्याह-जीवन का दीवास्वप्न देखती कन्या को लोकगीत में अपने सास-ससुर की कल्पना इस तरह से करते हुए बताया है :

डोलतो डुंगर इ तो अमारा ससरा जो;
खळखळती नदीए रे सासुजी मारां नातां'तां रे.

यह कल्पना एकदम नवीन है । पहाड और वह भी डोलता हुआ ! जंगम पहाड के समान हट्टा-कट्टा देहवाला प्रतापी उसका ससुर है और उसके

स्नेहनी नदीमां स्नान करती सास

[उसके स्नेह की नदी में स्नान करती सास है]

लोकवाणी में बेटी को पिता 'घर का दीया' कहता है :

दादीराजनो दीवडो हाल्यो सासरे

[दाजीराज का दीपक चला अपने ससुराल]

पुत्रवधू को ससुर घर का तेज कहता है;

मारा घरनां तेज! घरे आवो
के मा'देव ग्यां'तां रे.

[मेरे घर का तेज, घर आओ, कि महादेव गये थे]

गोद भराई के गीत (अघरणी गीत)

लोक साहित्य तो संघ-साहित्य है । परिवार इस संघ का बलवान घटक (युनिट) था । परिवार-जीवन के कडवे पानी को मधुर करने की आवश्यकता सर्वोपरि थी । कुटुम्ब-संसार की सामाजिक, आर्थिक तथा पारलौकिक जीवन-दृष्टि से भी प्रथम आवश्यकता संतान-प्राप्ति की थी । खेती, व्यापार

या मजूरी जैसे रोजी-रोटी के व्यवसाय में बडा परिवार चाहिए, युद्ध के मैदान में चढ सके ऐसा हट्टा-कट्टा बेटा चाहिए । उस प्रजोत्पत्ति की वेदना-भरा भार, परिवार की नारी को वहन करना था । इसलिए उस नारी, उसकी पुत्रहीनता, उसका सर्वप्रथम गर्भाधान इत्यादि अति पीडक, संवेदनात्मक अवस्थाएँ साहित्योत्पादक बनीं । ये देखिए पुराने गोद-भराई के गीत ।

पहला गर्भ-भार वहन कर रही गृहिणी को 'रन्नादे' नाम की सूर्य की पत्नी की प्रतिमा के समक्ष बैठाकर कुटुम्ब -वनिताएँ जो गीत गाती थीं वे ही ये अघरणी गीत हैं । उन गीतों के द्वारा बेटे के लिए प्रार्थना होती थी, उनमें का :

लींप्युं ने गूंप्युं मारुं आंगणुं
पगलीनो पाडनार द्योने, रन्नादे !
वांझियां-मेणां, माडी ! दोह्यलां.

[हे रन्नादे, मेरा आँगन लीपा-पोता है । पद-चिन्ह छोडने वाला एक बेटा दो । हे माँ बांझपन का ताना असहनीय है ।]

घोयो घफोयो मारो साडलो
खोळानो खूंदनार द्योने, रन्नादे !
वांझियां-मेणां, माता ! दोह्यलां.

[हे रन्नादे, मेरी साडी एकदम साफ-सूफ है । गोदी में खेलनेवाला बेटा दो । बाँझपन का ताना असहनीय है ।]

यह गीत है । इसमें नर्मद-संग्रह में से एक सुन्दर पंक्ति को जोड दी है :

वार्या ने बूर्या मारा ओरडा
कचरानो पाडनार द्योने, रन्नादे
वांझियां-मेणां, माडी ! दोह्यलां.

[हे रन्नादे मेरा कमरा झारा-बहारा है । कचरा करनेवाला एक बेटा दो न । बाँझपन का ताना सहन नहीं होता ।]

बाँझ स्त्री को जो ताना सुनना पडता है वह कितना असहनीय है उसका वर्णन करनेवाला भी गीत है :

त्यांथी ते दडवड चालियां धन्य रमतां रे;
जइ पड्यां ससराने पाय के मा'देव जातां रे;
ससरो ते मेणां बोलिया धन्य रमतां रे;
वाझियां - मों कोण जोशे के मा'देव जातां रे.

महादेव के पास बेटा माँगने जाती पुत्रवधू ससुर का पैर छूती है, बदले में ससुर उसका मुँह देखने के काबिल भी नहीं समझता है । वह तो कहता ही है, सास भी कहती है; किन्तु माता-पिता की निष्ठुरता भी देखने का समय आया ।

दादो के' नै मारी दीकरी धन्य रमतां रे;
माता के' नै मारुं पेट के मा'देव ग्यां'तां रे.

[पिता कहता है कि यह मेरी बेटी नहीं है, माँ कहती है कि यह मेरे पेट की नहीं है ।]

अरे, कृपानिधि प्रकृति के जड-चेतन सभी सत्त्व उस बाँझ की छाया को विनाशक मानते है :

लीलूडा आंबा सुकाई गिया..... धन्य.
कोयलडी करे रे कल्पांत के मा'देव.
भर्या रे सरोवर सुकाई गयां..... धन्य.
माछलडी करे रे कल्पांत के मा'देव.

[हरा-भरा आम का पेड सुख गया, कोयल कल्पांत करती है । भरा हुआ तालाब सुख गया, मछली कल्पांत करती है ।]

किन्तु महादेव का वरदान पाकर वापस लौटती उसी वधू के लिए प्रकृति किल्लोल कर उठती है और ससुर चिठ्ठी भेजता है कि :

मारा घरना दीवा ! घेरे आवो के मा'देव ग्यां'तां रे

[मेरे घर का दीपक, अपने घर वापस आओ]

माता-पिता सत्कार करते हैं और अपमानदाता पति बुलाता है :

परण्यो लखी कागळ मोकले धन्य रमतां रे;
मारा घरनां तेज ! घेर आवो ! के मा'देव ग्यां'तां रे.

['वांझियां' : 'रढियाळी रात']

[ब्याहता पति चिठ्ठी भेज कर बुलवाता है कि मेरे घर का उजाला अपने घर आओ ।]

संवेदनाओं का ऊर्ध्वीकरण

दूसरे गीत में अपने को बाँझ-बाँझ कहकर ताना मारनेवाले परिवार-जनों को बहू का उत्तर मिलता है । असंतुष्ट संवेदन के उन्नतीकरण (सब्लिमेशन) का यह नमूना है :

ससरा ! वांझियां वांझियां शुं करो रे;
मारा जेठनां ते मारा पेटनां रे,
मारा देरनां ते मारा वीरनां रे;
मारी नणदीनां ते मारा धरमनां रे.
मारी शोक्यनां ते अरधा अंगनां रे.

['रढियाळी रात']

[ससुर बाँझ-बाँझ क्या करते हो, जो मेरे जेठ के हैं वे मेरे पेट के हैं, जो मेरे देवर के हैं वे मेरे वीर के हैं, जो मेरी ननद के हैं वे मेरे धर्म के हैं, जो मेरी सौत के हैं वे मेरे आधे अंग (पति) के हैं ।]

नर्मद ने 'रन्या देवीनां गीत' का संग्रह किया, उसमें 'बालक की झंखना का ऐसा लाक्षणिक चित्र बाँझ स्त्री के मुँह में रखा है :

आंबुडा जांबुडा हेठ रंनादेव, बांझ पोकारे प्रभु एकली रे;
आघेरी जाउं तो रान रंनादेव, पाछी फरुं तो प्रभु एकली रे.
ससराने बारणे ढोल ना ढडूक्या बापे वधामणी ना मोकली रे,

पीळडां पेरी पाटे न बेठां, लीलडां पे'री जळ ना भर्या रे;
सासु सोवासणे खोळा ना भरिया, माडी सोवासणे ना विसाम्या रे,
बोचलो बांधी सुवावड ना सूती, अजमो ना खाधो तीखो तमतमो रे,
सूंठ पीपेर लै मारी सासु ना आव्यां, माडीए ते सुवावड ना केळवी रे.
सांगामाचीए बेसी पूतर ना धवराव्या, थाने ना भींजी जादर कांचळी रे.
लांबी परसाळे पारणां न बांध्यां, हाला करी ना हींचोळ्या रे,
पाणीडां जातां छेडा नव साह्या, वछ करी ना वछोडिया रे;
निसाळे जातां राडा न लीधा, गजुए ना घाली सुन्दर सुखडी रे.

[नागर स्त्रीयोमां गवातां गीत - ५४]

[आम, जामुन के पेड के नीचे एक बाँझ रन्नादे को पुकार रही है । हे प्रभु, अगर मैं दूर जाऊँ तो लोक मुझे रांण कहेंगे, वापस जाने पर अकेली हो जाऊँगी । ससुर के दरवाजे पर ढोल नहीं बजा । बाप ने बधावा नहीं भेजा । पीला वस्त्र पहनकर पाट पर नहीं बैठी । सुहागिन सास ने गोदी नहीं भरी, माँ ने सुहागिनों को नहीं बुलाया, सिर पर कपडा बाँधकर सौरी में नहीं सोई, तीखा तीखा अजवाईन नहीं खाया, सोंठ, पीपर लेकर मेरी सास न आई, माँ ने सोहर के लिए नहीं बुलाया । खाट पर बैठकर पुत्र को दूध नहीं पिलाया । दूध चुवाकर चोली भी नहीं भीगी । लम्बे दालान में पलना नहीं बंधा । लोरी गाकर झूला नहीं झुलाया, पानी भरने जाते समय किसी ने मेरा पल्लू नहीं पकडा और मुश्किल से उसको छुडाया नहीं । शाला जाते समय चिल्ला-चोट नहीं की, और जेब में सुन्दर सुखडी नहीं डाली ।]

इस चित्र में रंग-रेखा परिपूर्ण है । बाँझ पुकार करती है उसमें सगर्भा स्त्री की किस तरह से देखभाल होती है, किस तरह से उसका शृंगार किया जाता है, सौरी में क्या-क्या ओढा, पहना, और खाया जाता है । पुत्र को दूध पिलाते समय निरोगी और स्नेही स्त्री का दूध चूकर चोली कितनी भीग जाती है, पानी भरने जाते समय बालक साडी का पल्लू पकडता है, उसे छुडा कर माँ पानी भरने जाती और स्कूल जाने से आनाकानी करते बालक की जेब में मिठाई रखती, ऐसे आनंद से वंचित नारी किस शून्यता का अनुभव करती है । कोई भी कवि लिख ही नहीं सकता, अति पार्थिव, शुष्क, हास्यास्पद लगे, अशिष्ट भी भासे, ऐसे निरे ब्योरे के ताने बाने से लोककाव्य बुना गया और उसमें बाँझ की छटपटाहट का बेलबूटा पडा । भावनाओं का उर्ध्वीकरण यह यदि साहित्य का उद्देश्य है तो यहाँ वही हुआ है । लोकवाणी में यह हमेशा होता रहा है ।

लोरी गीत तो माता की सगर्भा अवस्था के प्रथम मास से घटित परिस्थिति को काव्य में अंकित करता है :

पे'ले मासे ते जाण्युं अजाण्युं रे हरने हालरडुं,
बीजे मासे ते हैडामां जाण्युं रे गोविंदजीनुं हालरडुं,
त्रीजे मासे सैयरने संभळावियां रे हरनुं हालरडुं;
चौथे मासे ते चूरमाना अभावा रे गोविंदजीनुं हालडुं;

[हालरडां]

[पहले मास में जानी-अनजानी रही हरि का लोरी-गीत । दूसरे मास में उसने मन ही मन जान

लिया कृष्ण का लोरी-गीत । तीसरे महिने में उसने अपने पिया को सुनाया हरि का लोरी गीत । चौथे महिने उसे चूरमा का लड्डु नहीं भाता था ।]

इस प्रकार महिने-महिने सगर्भा स्त्री को होती सुख-वेदना और उसके लिए होती विधियों का वर्णन होता है ।

लोरी

बालक को पालने में सुलाने का ही मुख्य उद्देश्य और बालनिद्रा तो संगीत से सुसाध्य है, किन्तु उस संगीत में नशा पैदा करे ऐसे अल्पाक्षरी स्वरों की आवश्यकता है : The best lullaby would seem to be that sung naturally by peasant mothers with but two or three words and sung on into notes. A sort of soothing drone, corresponding exactly to the sound of a rocking cradle and having apparently the same effect on the nerves of the child.(175)

एक गोरी बाई के विधान के अनुसार 'हां... हां... हालां' के ध्रुवपदवाली असंख्य लोरी माता गाती है :

हालो रे हालो, भाईने हालो रे बहु वा'लो;
भाईने गोरीडां रे गाजो, भाई ने रमवा तेडी जाजो.
गोरी, गायनां दूध, भाई पीशे उगमते सूर;
हां... हां हालो.
भाई भाई हुं रे करुं, भाईनी वासे भूली फरुं;
भाईने कोइए दीठो, फूलवाडीमां पेठो.
फूलवाडी वेडावो, माईने घेर रे तेडावो;
हां... हां हालो.
['हालरडां']

[भैया को लोरी बहुत पसन्द है । गोरी भैया के लिए लोरी गाओ और उसे खेलने ले जाओ । भैया उठेगा तो गोरी गाय का दूध पीएगा । मैं भैया भैया कर उसी के पीछे घूमती फिरुँ । भैया को किसी ने बगीचे में बैठे देखा । बगीचे से भैया को घर बुलाओ ।]

मात्र बालक को सुलाने के लिए ही नहीं किन्तु माता के वात्सल्य, माँ के अन्य उरसंवेदन, ऊब और दूध पिलाने के त्रास को, पति के उत्पीडन को, आशिक की दोगलेबाजी, कृष्ण-क्राइस्ट की बालविपदों और पराक्रमों और अनेकविध भावों को इस पालना-डोरी पर बहाने की तुतली वाणी हैं । उन्नत भाव भी जनेता लोरी में गाती हैं -

तमे मारा देवना दीधेल छो, तमे मारा मांगी लीधेल छो;
आव्या त्यारे अमर थैने रो' !
तमे मारुं नगद नाणुं छो, तमे मारुं फूलवसाणुं छो;
आव्या त्यारे अमर थैने रो' !

[तुम मेरे भगवान के दिए हुए हो, मैंने तुम्हे भगवान से माँग लिया है । तुम मेरे नगद रुपये हो, तुम मेरे फूल का बगीचा हो, आये हो तो अमर होकर रहो ।]

बालक का सौन्दर्य, चालबाजी मस्ती आदि लोकगीत में गाया जाता है

विश्व की ढेर सारी प्रजाओं में लोरी गीत है । उनके साथ हमारी लोक-लोरियों की रचनाओं और भावनाओं में काफी साम्य है । बालक का सौंदर्य वर्णन है, बालक की खुशामद है, बालक की खुराफात भी गाई जाती है :

सुवराव्यां सूवे नहि
आ शां कळगज रूप, बाळा पोढोने !

[सुलाने से सोता नहीं है, यह कैसा कलयुगी रूप है, बालक सोओ न !]

हाउ का भय दिखाना

और हमारे यहाँ की :

सूओ सूओ रे बाळा, घोघर आव्या;
बारणे बैठुं छे हाऊं ?

[सोओ, सोओ मेरे बच्चे, बावा आया है और बाहर बडा सा हाउ बैठा है ?]

ऐसी भयावह लोरी ग्रीक लोरी में भी है । सिसिली के लोरी गीत में जनेता मौत का भय भी दिखाती है । किन्तु अपने लोरी गीत में और यह युरोपीय लोक-लोरी-गीत में मौत की तथा आगामी दुःखमय जीवन की जो भविष्यवाणी होती है उसी तरह -

पिता की बदी हमारे लोरी-गीत में नहीं है

Hush poor child, hush thee to sleep;
Oh shame of it, and the sin
Home at midnight he will fare;
Drunk with strong wine of naverre.

इस तरह पिता के नशे में द्यूत के समय का जो चित्रण होता है, अथवा तो :

Come little babe, come silly soul;
Thy father's shame, thy mother's grief.
But come to mother, babe and play;
The father false has fled away.

इस व्रत-साहित्य का केन्द्र भी संघ-जीवन था । बारहों मास फैले हुए लोकव्रतों की क्यारी वर्षाऋतु थी, क्योंकि यह वर्षा ही इस सौराष्ट्र-गुजरात की रम्यतम लोकऋतु है और लोकवाणी की परम पोषक है । इस साहित्य में स्त्री के शील, सौन्दर्य और संस्कार की शिक्षा प्रधानपद पर है । लोकवाणी में पशु, पक्षी तथा प्रकृतिसौन्दर्य का अध्ययन करनेवालों से इस प्रदेश की जांच करवाये बगैर नहीं रह सकते ।

विवाह की जटिल प्रणाली

विवाह के लोकगीतों में भी शास्त्रोक्त प्रदेश और लोकोक्त प्रदेश, दो परस्पर भिन्न और एक दूसरे से स्वतंत्र प्रदेश दिखाई पडते हैं । हमारे भारतवर्ष में विवाह सबसे अधिक जटिल प्रणाली है । आज जो प्रवर्तमान है उस विवाह-प्रणाली पर शास्त्र और पुरोहित का आधिपत्य है । शास्त्रोक्त विधियों की जटिल जाली को देखने पर ऐसा ही लगेगा कि उस जाले में विवाह-गीतों के पुष्प कभी खिल ही नहीं सकते । विवाहगीत स्वयं ही एक-एक क्रिया या विधि के रूप में प्रवर्तित है । किन्तु

उस विधि या क्रिया का शास्त्रोक्त विधि या क्रिया के साथ कोई मेलजोल नहीं है । इन गीतों को स्पर्श करती क्रिया और नियमप्रणालियाँ एकदम न्यारी-निराली हैं । उदाहरण के तौर पर, वाग्दान करते समय का गीत :

नै तारो दादोजी रीसाळवा, नै देशे माता तारी गाळ;
आपण बेय मळी परणशुं, वैशाख महिना मांय.

[न तो तुम्हारे दादाजी गुस्सा होंगे न ही तुम्हारी माँ गाली देंगी, हम दोनों मिलकर बैशाख महिने में ब्याह करेंगे ।]

ऐसी संवनन की क्रिया का सूचन करता गीत, अथवा तो :

लांबी ते लांबी सरवरियानी पाळ, ए रे पाळे ते मोती नीपजे;
मोती ते लाग्युं.... भाई वरने हाथ घेरे रे आवीने झघडो मांडियो.
दादा ते मोरा.... वहु परणाव्य, नहि तो रहीश हुं कुंवारडो.

[सरोवर का किनारा बहुत लम्बा है, उस किनारे पर मोती निकलता है । दुल्हे के हाथ वह मोती लग गया, घर आकर उसने झगडा किया, हे दादा, जल्दी मेरा ब्याह करो, नहीं तो मैं जीवन भर कुंआरा रहूँगा ।]

स्वयंवर के स्वर

इस जवान-पुत्र ने अपनी मनचाही कन्या से विवाह करने का अधिकार प्राप्त करने के लिए पिता से झगडा करने का वर्णन करता गीत किस शास्त्रोक्त वाग्दान विधि के साथ मेल खायेगा ? कन्या और पिता के बीच दुल्हे की पसन्दगी संबंध में वार्तालाप करते इस गीत को -

एक ऊंचो ते वर नो जोजो रे, दादा,
ऊंचो ते नत्य नेवां भांगशे;
एक नीचो ते वर नो जोजो रे, दादा !
नीचो ते नत्य ठेबे आवशे.

[हे दादा, एक लम्बा वर मत देखना, लम्बा वर तो नित्य नरिया तोडेगा । हे दादा, एक ठींगना वर मत ढूँढना, ठींगना वर नित्य पैरों की ठोकर में आयेगा ।]

इसे किस शास्त्रक्रिया के साथ जोडेंगे ? विवाह-पत्रिका कन्या लिखती है इस भाववाले, घडीए घडीए लाडणवहू कागळ मोकले (घडी-घडी पत्र भेजने वाली लाडली बहू) वाले गीत के साथ या -

एक आव्यो'तो परदेशी पोपटो
बेनी रमतां'तां मांडवडा हेठ, धुतारो धूती गयो.

[एक आया परदेशी शुग्गा, बन्नी खेलती थी मंडप के नीचे, ठगी ठग गया ।]

आज अमे ईडरियो गढ जीत्यां, रे आनंद भर्यां

[आज हमने इडर गढ जीत लिया है, खुशी की बात है ।]

जीत्यां जीत्यां मारा ससरानी बेटी
बीजुं ते जीत्यां सायर-सासरुं रे, वर लाडडा !

[हे प्यारे दूल्हे राजा, हमने अपने ससुर की बेटी को जीत लिया और दूसरा ससुराल का सागर

जीत लिया ।]

मारे.... भाईनां वाजिंत्र वागियां
पेला वेवाईनां पडियां निशान, साहेलीनो आंबो मोरियो.

[मेरे भैया के घर बाजा बजा । उस समधि के निशान औंधे हो गये, मेरी सहेली का आम बौरा गया ।]

भेंट, रिश्वत चुका कर कन्या उठा ले जाने के जमाने का अवशेष

...Armenian nuptial songs, like all other folk epithalamiums, so far as I am aware, seem to point to an early state of society when a girl was simply carried of by her marauding lower by fraud or force. Exulting in what relates to the bride-groom, the favourite song on this subject is profoundly melancholy as concerns the bride. The mother was cajoled with a pack of linen, the father with a cup of wine, the brother with a pair of boots, the little sister with a finger of antionong. So complains the dismal ditty of a new bride. There is a great pathos in words in which she begs her mother not to sweep the sand off the plank, so that the slight trace of her girl's footsteps may not be effaced".(176)

इसी प्रकार हमारे गीत में :

सीमडीए केम जाशो वरराजा, सीमडीए गोवाळीडो रोकशे,
गोवळीडाने रूडी रीत ज देशुं, पछी रे धिंगानी छोडी परणशुं.
वाडीए केम जाशो वरराजा, वाडीए माळीडो रोकशे;
माळीडाने.....

[हे दुल्हे राजा, शिवान में कैसे जाओगे, शिवान में ग्वाला रोकेगा ग्वाले को रीत के मुताबिक भेंट अच्छा ही दूँगा, फिर मैं धिंगा की मस्तानी कन्या से विवाह करूँगा । बगीचे में कैसे जाओगे दुल्हे राजा, बगीचे में माली रोकेगा, माली को.....]

इसी प्रकार फाटक रोककर खडा रहनेवाला ढोलकिया आदि सभी को भेंट सौगात देकर खुश कर कन्या को उठा ले जाने की कारामात आलेखित हुई है । हमारे विवाह-गीतों में ''विदाई'' नामक विभाग को 'चूंदडी' नामक संग्रह में स्थान दिया है उसे देखिए : अपहरण के बारे में ऊपर कहे गये आर्मीनियन परंपरा का ही उसमें प्रतिबिम्ब है । दूल्हा कहता है : 'परण्या एटले प्यारां लाडी, चालो आपणे देश रे' (ब्याह हो गया इसलिए प्यारी बन्नो चलो अपने देश) कन्या कहती है: 'उभा रो' (खडे रहो) तो मांगुं मारा दादाजीनी शीख रे.' (मैं अपने दादाजी से सीख ले लूं) वर कहता है 'अब कैसी सीख बन्नो, अब कैसा प्यार रे !'

दूसरे गीत में माँ पुकारती है :

में तो हरखेथी लाडवई मोटां कर्या रे
मारो उछेरतां भव जाय, कामनी वेळाए जमाई लै गया !

[मैंने बडे हर्ष से बेटी को पाला-पोसा । पालते-पोसते मेरा जीवन चला जाय रे, काम के समय दामाद ले गये]

पुत्री पुकारती है :

वळो रे वळो रे मारा समरथ माता;
तमे दीधां अमने वेगळां.

[लौट जाओ, लौट जाओ मेरी समर्थ माता, तुमने मुझे जुदा कर दिया ।]

इसमें गूंजता है अपहरण के किसी अवशेष का गीत । वेनिस के लोगों के पास विवाह-संसार की विषमता को सूचित करनेवाले लोकगीत हैं । स्टडी ऑफ को सोंग्स की लेखिका लिखती हैं :

"Warning voices are not, however, wanting to tell the maiden that wedded life is not all roses : ' you would never want to be married, my dear, if you knew what it was like.' Sings one such; while another mutters, Reflect girls, reflect before you wed these gallants. On the ponte de Rialto birdcages are sold."

गुजरात की लोकमाता विवाह-गीत में इसी दुःख का चित्रण करती है । बेटी भरपेट खाने को नहीं मिलेगा :

ल्योने बहेनी कचोळडां, जमजो वार बे वार रे,
पछी तो जमशो सासरे, जमशो उच्छिष्ठ भात रे,
एक जमशो बपोरले, बीजुं माझम रात रे,
चूर जमशो दिवालडी, रोटली आदितवार रे.

[लो बेटी कचोडां, खाओ एक-दो बार रे । फिर तो खाओगी ससुराल में, खाओगी उच्छिष्ठ भात । एक बार दुपहर को खाओगी तो, दूसरी बार आधी रात को, चूरमा दिपावली को खाओगी और रोटी इतवार को]

पारसी ब्याह-गीतों में तो माँ कन्या के दुःख की इससे भी अधिक तीव्र संभावना को गाती हुई, बेटी की सास से विनती करती है :

वेवाण, हैया करजो भोळां रे, जरबाईने ना पीरसतां थोडा रे,
वेवाण, हैया करजो घाडां रे, जरबाईने ना पीरसतां टाढां रे,
वेवाण, चमटो रखे तोडतां रे, चमटो चमचमशे ने रोशे रे.

[हे समधिन, अपना हृदय उदार रखना, जरबाई को थोडा खाना न परोसना, हृदय को उदार रखना, जरबाई को बासी खाना न देना । चिमटे को पछाडना नहीं, उसकी चमक से वह रोने लगेगी ।]

इच्छित विवाह करनेवाली किसी जाति का प्रभाव पडा होगा ।

यह जो दुःख का आंचल है, यह तो विवाह के लोकगीतों में दूसरा सूर, जैसे कि पहले स्वयंवर का है, संवनन का है, बुजुर्गो की इच्छा का विरोध कर के भी इच्छित पात्र के साथ ब्याह करने का है, दूल्हा कहता है :

में तो दादा माराने दूभव्या रे,
तारा आछा घूंघटडाने कारण हो लाडली,
हजी रे समझ मारी कोयलडी.

[हे मेरी प्यारी, मैंने अपने दादा को दुःखी किया तुम्हारे झीने घूँघट के कारण, अभी भी समझो

मेरी कोयल ।]

इसी प्रकार दूल्हे को काला देखकर बडे-बुजुर्ग निःश्वास छोडते हैं कि :

गढडे चडीने बाईने दादे ते जोयुं, कन्या गोरां ने वर शामळा.

[गढ पर चढकर बाई के दादा ने देखा, कन्या गोरी और दुल्हा सांवला ।]

तब कन्या कहती है कि :

एना ओरतडा न करजो रे दादा ! द्वारकामां रणछोडराय शामळा ।

[हे दादा, इसका दुःख मत करना, द्वारका में भी तो रणछोडराय साँवले हैं ।]

मृत्यु के विलाप-गीत

नारी-गीत का अंतिम प्रकार ऐसा है कि जिसका स्पर्श करते हुए आप सभी घृणा का अनुभव करेंगे । यह प्रकार छाजियां-राजिया (मरसिया) नाम से जाना जाता मृत्यु-गीत है । किन्तु अधीर मत होइए । यहाँ हिन्दुस्तान में हमारी ऐसी स्त्रियों को चौकाचौखट पर मृत्यु के बाद रोते-कूटते देखकर, मजाक उडानेवाले तथा हिन्दुस्तान के प्रति घृणा करनेवाले विदेशियों को तथा खुद शिष्ट हिन्दुओं को यह बात बता देना चाहिए कि, हमारा यह अनुमरण का सामूहिक आक्रंद और छाती पीटना शास्त्रोक्त नहीं है । इस प्रथा की सगी बहनें तो युरोप के देश-देशों के इतिहास से खोजी गई है ।

['The custom of hymning the dead prevailed over most, if not all, parts of Europe: Study of folk songs, Folk-dirges.]

युरोप में मरसिया गवानेवाली व्यवसायी कौमें थीं

सरकारी प्रतिबंध और धर्मगुरुओं का आदेश उस रिवाज को रोक नहीं पाये थे, मरसिया गानेवाली तो वहाँ भी, हमारे रजवाडों की मृत्यु को विलाप से सजनेवाली खवासिनें और रुदाली की तरह whole choirs of lay dirge-singers थीं ।

स्फोटिश हाईलेण्ड प्रदेशों के coronachs और आयरिशों के keeners. रशियन voplenitsa (the sobbing one) और प्रोवेन्कल प्रजा के व्यावसायिक praefical (public wailers)थे । शेक्सपियर का 'सिम्बेलीन' नाटक साक्षी देता है कि इग्लेंण्ड में भी रुदालियाँ थीं । विशेष रूप से पैसा देकर बुलाये जाते विलाप-गायक थे । ऐसे व्यवसायी विलाप-गायकों में से कभार-कभी कोई सच्चा कविजन भी निकल जाता और वह तीव्र संवेदनशील कविप्राण रचनाकौशल भी भरपूर बताकर नाट्य-शिल्प के नमूना के समान मरसिया का सर्जन करता । इसका उदाहरण नवानगर के राजा के साथ ब्याही गयी भावनगर की राजकुमारी बाकुंवरबा को ससुराल जाने की पहली ही रात्री को सौतें जहर देकर मार डालती हैं । इस संबंध में रास साक्षी देता हैं ।

('नगर सासरे', रढियाणी रात):

नवला से सोनीडा तेडाविया,
घडये घडये मारे बा कुवरना हार रे दाजीराजनी कुंवर्य,
बाने जावां ते नगर सासरे.

[सोनी को बुलवाया, दाजीराज की राजकुमारी कुंवरबा के लिए हार गढो । राजकुमारी को अपने नगर ससुराल जाना है ।]

इस प्रकार प्यार भरे पहनावे के सजावट का वर्णन करने के बाद :

काका बापु ते आव्या मळवाः
के'जो बा कांई करियावरनी खोट रे दाजीराजनी कुंवर्य,
बाने जावां नगर सासरे,
घणी खम्मा काका बापु तमने;
आजने समे मारा बापु होय रे दाजीराजनी कुंवर्य.

[चाचा और पिता मिलने आये । हे दाजीराज की राजकुंवरी, अगर दहेज में कोई कमी हो तो कहना । चाचा, पिताजी को भगवान क्षेम-कुशल रखें । इससे बढकर क्या हो सकता है कि आज मेरे सामने मेरे पिता है ।]

ऐसी परितृप्ति से भरपूर राजकुमारी के हृदय का दर्शन कराने के बाद :

माने मळीने रोयां धूसके,
नथी मारे माडीजायो वीर रे दाजीराजनी कुंवर्य,
दाजीराजनो दीवडो हाल्यो सासरे.

[माँ से मिलकर फूट-फूटकर रोने लगी । दाजीराज की कुंवरी को माँ-जाया कोई भाई नहीं है, दाजीराज का दीपक तो चला ससुराल ।]

इस प्रकार पितागृह के दीपक जैसी पुत्री की विदाई का वर्णन करते हैं, और उसके बाद ससुराल-द्वार पर जाती राजकुंवरी की सासु, ससुर और पति ने अपनी-अपनी लाक्षणिक रसदृष्टि से स्वागत किया । पराकाष्ठा पर पहुँचे हुए इस नाटक के अंदर, सौत ने आकर प्यारभरी चूनरी ओढाई, उसके अंदर से राजकुमारी के शरीर में विषप्रवेश होते ही :

ओढाडीने काळी पाडी चीस रे

[ओढाई और भयंकर चीख मारी]

इस तरह की परिवर्तन-पटुता दिखाकर मरसिया रचनेवाली, इसके बाद चितारोहण तक के दृश्यों का चित्रण करके काव्य में समतुला बनाए रखती है ।

मृतकों की माताएँ, पत्नियाँ, बहनें, पुत्रियाँ भी परम्परागत मरसिया के कल्पांत गातीं, नये शब्द भरकर शीघ्र रचनाएँ भी करतीं, छाती पीटतीं, पछाड खातीं, अरे बालों को भी खींचतीं और तोडतीं, विधवा कोने में बैठी रहती, बाल मुंडवाती । मृत्यु के बाद दुःख प्रदर्शन की ऐसी जटिल क्रियाएँ, प्रगट शोक प्रदर्शित करने में नामर्दगी का अनुभव करनेवाले पुरुषों ने धीरे-धीरे नारीवर्ग पर ही ढोल दिया होगा, ऐसा भी एक विधान है ।

हिन्दुओं में प्रवर्तमान यह विलाप-परम्परा शास्त्राधार विहीन, अर्थात् शुद्ध लोकोक्त तो है ही, इसके उपरान्त यह बतानेवाली है कि हम कौन जाने कितने युगों पूर्व की अपनी मूलनिवास की भूमि और बंधुप्रजाओं के साथ जोडती यह एक कडी ले आयें होंगें ।

यहाँ की चारणी विधवा अपने पति के मरने के बाद, मुँह ढँककर बैठी-बैठी रुदन-स्वर में बोलती थी कि :

तारां ढांकणीनां ढांकेल छे, मोळा मावळानां !
आपणे माणहनी माठप छे,

मोळा भीमना जेवी भुजाउंवाळा रे मावळानां !
ए.... मुंने चाकरीचोर करेने जा मा रे !

[हे मेरे स्वामी ! ये सब बच्चे आप रूपी ढक्कन से ढके हुए हैं अब वे खुले हो जाएँगे । अपने परिवार में निर्वाह करनेवाले आदमियों की कमी है । फिर मैं आपकी लम्बी बिमारी में देखभाल करते हुए ऊब गयी थी ऐसा ताना चढा कर चले मत जाओ ।]

तो कोर्सिका की विधवा का Vocers मुँह मोड लेने के विलाप (गीत) में ये शब्द है :

"You were my flower, my thomless rose, my stalwart one, my column, my brother, my hope, my prop, my eastern gem, my most beautiful treasure."

(Study of Folksongs)

फ्रांस की स्त्रियाँ छाती पीटते -पीटते तालबद्ध स्वर में गाती थीं उसका ध्रुवपद :

Ah !
Ah ! Ah ! Ah !
Ah ! Praube !
Ah ! Praube !
Monn dieu,
Monn dieu ! Monn dieu.

ऐसा था तो यहाँ की हिन्दु नारी :

हाय लाडडा हाय हाय रे !

[हाय लाडला हाय हाय रे]

यह ध्रुवपद बोलते-बोलते मृतक को विशेषण द्वारा सम्मानित करती है । गाये जाने की ये रुदनरसिक कृतियाँ ही थीं । सोरठ की अनेक कौमों में स्त्रियाँ साहित्य में से पुराने प्रचलित दोहे - सुभाषितों को उठा-उठाकर, या किसी पुरानी लोक-कथा का दोहा ले-लेकर अपने फूटे भाग्य और अत्यंत दुःखी हृदय का वर्णन करती ।

भाणुं भांग्युं होय, (तो) रेवण दईने राखीएं,
(पण) करम फूट्युं होय, (तेने) सांधो न मळे सूरना ।

[बरतन टूट गया हो तो उसको रेण देकर ठीक कर सकते हैं लेकिन जब भाग्य फूट गया हो तो उसको जोड नहीं सकते ।]

कापड फाट्युं होय (तो) ताणो लईने तूनीएं,
(पण) काळज फाट्युं होय (तो) सांधो न मळे सूरना !

[कपडा फट जाय तो ताना लेकर बिनते किन्तु हृदय के फटने पर उसे जोडने के लिए कोई धागा नहीं मिलता ।]

इसी तरह से बालक की मृत्यु पर विलाप-बोल हृदयबेधक और काव्यमय होता है :

एवो उगेने अवठाई गियो,
मारा घरमां बाळा सादनी ताण पडी ।

[अभी तो जन्मा ही था कि कुम्हला गया । मेरे घर में बच्चे की किलकारी की कमी पड गई ।]

नन्हीं बालाएँ अषाढ मास में (देदो) कूटती हैं । देदा नामक वीर राजपूत की मृत्यु को ही निमित्त बनाकर इस मृत्युविलाप का गीत गाती हैं । बालबच्चेवाली किशोरी की मृत्यु विषयक गीत-बोल इस प्रकार होते है :

हाय हाय रे कूवामां ढेल वियाणी,
हाय हाय रे ढेलने चार बचळां,
हाय हाय रे बचळां कोण धवरावशे ।

[हाय रे हाय एक कुँए में मोरनी बियाई । मोरनी के चार-चार बच्चे, उन बच्चों को कौन दूध पिलायेगा ।]

हम है कोई अति प्राचीन जग में भ्रमण करती प्रजा

ऐसे ऐसे तो बहुत से हैं । उसमें भी हमारे और पश्चिम के बीच साम्य है । To play at funerals was probably a very ancient amusement (study of folksongs.) [रणजित राम का संग्रह 'लोकगीत' में १२४ से १३३ तक ऐसे मृत्युगीत शोकगीत के नाम से दिये गये हैं । पंजाबियों के लोकगीत में 'छाती दी अलाणी' नामक जो प्रकार है वही अपना छाजियाँ (मरसिया) हैं, फिर वही का वही प्रश्न उठता है कि हमारे गुर्जर और सौराष्ट्री यहाँ कब आये ? कहाँ से आये ? कौन हैं ? आर्य हैं ? सिथियन हैं ? ग्रीक हैं ? हम जो भी हों, किन्तु है, कोई अति प्राचीन, काफी भ्रमणप्रेमी और युग के परिभ्रमण से प्राप्त हुई कितनी ही वस्तुओं को नूतन बल के प्रभाव तले भी संभालकर लोकवाणी द्वारा जतन करनेवाले गजब के समन्वयकार !

जनाजा का विलाप

मृत्यु के विलाप-गीतों में मुस्लिम विभाग की भी उपेक्षा नहीं करेंगे । करबला के शहीद इमाम हुसेन की प्रत्येक संवत्सरी को मनाने के रूप में मोहर्रम में औरतें मातम कूटती-कूटती जो विलाप गाती हैं वे भी तालबद्ध काव्यमय गीत है :

गुल-छडियाँ रे गुल-छडियाँ रे,
रणमें खेले इमाम गुल-छडियाँ ।

★

हाय वोय रे लीला रंगा दे कपडा,
हाय वोय रे पानी के प्यासे जंगल में ।

★

हाय रे बना कासम गहेरनमें मारे,
मेंदी जोगे मारे - हाय रे बना.
दुलदुल जोगे मारे - हाय रे बना.

इस प्रकार के मातम के विलापगीतो में मोहर्रम की रात्रियों में जाकर चौक में बैठी-बैठी कूटती

और गाती मुस्लिम गुजरातिन के कंठ से गीत को ग्रहण किया है । वह गुर्जर लोकवाणी ही है । उसका प्रारंभ, ढाँचा, पुनरुक्तिप्रधान शैली लोकगीतों की ही हैं ।

वेदना के आधार पर पले-बढे करुण गीत

'मृत्यु, मुर्दा और स्मशान से संबंधित क्रियाएँ तथा विलापवाणी का यह विषय एक अति पुनित मनोवेदना, कई बार तो घातकीपना और बिभत्सता की हद पर पहुँचा है जो उच्चारण की हास्यास्पदता बताता है । किन्तु इन सभी को घटा देने के बाद, अन्ततः और आम तौर पर मृत्यु जीव को दी हुई एक स्नेहांजलि है ऐसा तो हर कोई स्वीकार करता है । यह मजाक की चीज नहीं ।' एक पाश्चात्य स्त्री-समीक्षक के इस विधान के साथ हम भी सहमत होंगे । मृत्यु और प्रीति, इन दोनों के बीच जहाँ अनवधि द्वन्द्व चल रहा हो, वहाँ लोककवि हमें ले जाता है । युगान्तर से सुनाई देता इस प्रेम-मृत्यु के बीच के विग्रह का प्रधान स्वर साहित्य है । यहाँ तक कहा गया है कि प्रेम और बुलबुल के गीत थे, उससे भी पहले से मृत्यु के गीत थे । प्रेम के कवि को जल्दी ही यह प्रतीति हो गई कि मृत्यु के तार के बिना उसकी वीणा अधूरी है । कविता का मुख्य आहार ही वेदना और ग्लानि है । ग्रीक लोकगायक का यह बोल है कि 'सोंग्स आर द वर्ड स्पोकन बाय दोज हु सफर' । सच्चा गीत तो वेदना सहनेवाले घायल ही सर्जित कर सकते हैं । लोक-कविता यह तो चीरे हुए दिल की ही वाणी है । इसीलिए लोकवाणी ने गद्यात्मक कहानियों में सुखद समाप्ति की है, किन्तु पद्यात्मक गाथाओं में मृत्यु की ही उपासना की है । कोई भी गाथा 'बॅलड' लीजिए : अपना 'जलदेवता को बलिदान' इसका सचोट उदाहरण है । बारह-बारह वर्षों से निर्जला रहे गाँव के जलाशय को पानी तो मिलता है, किन्तु बेटा और बहू, दोनों का सच्चा बलिदान देने के बाद ही । उस वर-बहू को देवी-देवता सजीव नहीं करते ।

जलाशय की सीढियाँ वर-बहू जैसे-जैसे उतरते हैं, त्यों-त्यों पानी निकलता है, चढता है और अन्त में :

छेल्ले पगथियए जई पग दीधो,
माथा समाणां नीर आव्यां जी रे.

[अंतिम सीढी पर पैर धरते ही सिर तक पानी आया]

गाँव की जनता को जल मिलता है, किन्तु बलि बने दंपती के माता-पिता तो किनारे खडे होकर डूबे हुए को पुकारते है :

एक होंकारो द्यो रे वशराम वीर,
गोझारां नीर कोण पीशे जी रे ।
एक होंकारो द्यो रे वाघेली वउ,
गोझारां नीर कोण पीशे जी रे ।

['जलदेवताने बलिदान' : रढियाळी रात]

[हे वशराम वीर और वाघेली बहू, एक हुंकार तो दो, पापी जल कौन पीएगा ।]

बाँझ की मनोवेदना :

इन गानेवालियों के वृंद में से कुछ की गहरी मनोवेदना नहीं थी क्या ? सन्तान-भूख की मनोवेदना ! उनमें से अनेक को क्या यह धिक्कार नहीं सहना पडता था ?

गंगा ते माटी चीकणी धन्य रमतां रे
एना चूला नखावोने चार मा'वेद जावां रे

[गंगा की मिट्टी, चिकनी है उसके चूल्हे डलवाओ चार कि महादेव जाना है ।]

बना-खाकर बाँझ चली :

त्यांथी ते दडवड चालियां धन्य रमतां रे
जई पड्यां ससराने पाय मा'देव जावां रे
ससरो ते मेणां बोलिया, - धन्य.
वांझियां मों कोण जोशे के - मा'देव.

पिता के पास जाकर पैर छूने पर :

दादो के' नै मारी दीकरी - धन्य.
माता के' नै मारुं पेट के - मा'देव.

[दादा कहता है कि मेरी बेटी नहीं है, मां कहती है कि मेरे पेट की जायी नहीं है ।]

अरे, प्रकृति ने भी मुँह फेर लिया -

लीलुडा आंबा सुकाई गिया - धन्य.
कोयलडी करे कल्पांत के - मा'देव.

[हरा-भरा आम का पेड सूख गया, कोयल कल्पांत करती है, कि महादेव के मंदिर गये थे ।]

भरा सरोवर सूख गया, मछली ने श्राप दिया, किन्तु एक महादेव ने -

मा'देवे दीधो दीकरो - धन्य.
भवनां ते भांगेल मेणां के - मा'देव.
सुकायल आंबा लीला थिया - धन्य.
कोयलडी करे रे टौकार के - मा'देव.
दादा के' मारी दीकरी - धन्य.
माता के नै मारलुं पेट के - मा'देव.
ससरो लखी कागळ मोकले - धन्य.
मारा घरना दीवा घरे आवो के - मा'देव.
परण्यो लखी कागळ मोकले - धन्य.
मारां घरनां तेज घरे आवो के - मा'देव.

['रढियाळी रात']

[महादेव ने बेटा दिया, जन्मभर का ताना टूट गया । सूखा आम हरा हो गया, कोयल किल्लोल उठती है । दादा कहता है मेरी बेटी है, माँ कहती है कि मेरे पेट की जनी है, ससुर पत्र लिखकर भेजता है कि मेरे घर का दीपक अपने घर वापस आओ । ब्याहता पत्र लिखकर भेजता है कि मेरे घर का तेज घर आओ ।]

जीवन की समीक्षा

जीवन का निदर्शन निर्व्याज और निखालस : उस कल्पना की लीला मात्र आवश्यकता भर चाहिए । अन्तराल में जीवन की समीक्षा : स्त्री तो वही की वही है, फिर भी विधि की विषमता के परिणामस्वरूप स्वजनों के व्यवहार का वैषम्य ।

विष का सागर मथा, बिलोया जीवनामृत : वंध्या के हृदय में उदार आत्मीयता को सींचकर कविता ने परम आश्वासक का काम किया :

धण्यने खोळे चोखा ने खंभे चूंदडी रे
धण्य तो चाल्यां रांदलमाने ओरडे रे
धण्यनो ससरो ते मे'णां बोलिया रे
मारां वांझियां वउ तमे क्यां चाल्यां रे ।
ससरा वांझियां वांझियां शुं करो रे !
मारा जेठनां ते मारा पेटनां रे,
मारा देरनां ते मारा वरनां रे,
मारी नणदीनां ते मारा घरमनां रे,
मारी शोक्यनां ते अरधा अंगनां रे.

['रढियाळी रात']

[पत्नी की गोद में अक्षत और कंधे पर चूनरी । पत्नी तो चली रांदल माता के मंदिर में । पत्नी का ससुर ताना मारता है, बाँझ बहू तुम कहाँ चली । ससुर, बाँझ-बाँझ क्या करते हो, जो मेरे जेठ के हैं वे मेरे पेट के हैं । जो मेरे देवर के हैं वे मेरे पति के हैं । जो मेरी ननद के हैं वे मेरे धरम के हैं और जो मेरी सौत के हैं वे मेरे आधे अंग (पति) के हैं ।]

सामाजिक अन्याय की झडियाँ सहने का ज्ञानोपदेश यहाँ साहित्य स्वरूप धारण कर गंभीर रसानंद सींचता है, संतापित समाजवधू के सच्चे स्वानुभवों का कलात्मक संवेदन है । वह कलात्मक संवेदन 'लीप्युं ने गूंप्युं मारुं आंगणुं' (देखिए हालरडां) (लीपा और पोता हुआ मेरा आँगन) में पराकाष्ठा पर पहुंचता है । ऐसे संताप-गीतों का स्थान चौटा के गरबा में नहीं किन्तु सीमन्त के अवसर पर रांदल माता के दीपक के सन्मुख था यह भी सूचक है । सगर्भा के उत्साहवर्धन के अवसर पर वंध्याओं का दुर्भाग्य गाया जाता था ।

संवनन के सूर

'किन्तु तुम अकेले स्वप्न किस काम के ।' ऐसा कहते हुए ब्याह-गीत पगडंडी पर चल रही हमारी गोष्ठि में आ मिला और कहने लगा कि, ऐसी हजारों नवयौवनाओं को 'हमने तो तालाव के किनारे पियामिलन करवाया है' :

दूधे ते भरी रे तलावडी, मोतीडे बांधी पाळ,
इसवर धोवे धोतियां, पारवती पाणीडां जाय.
हळवा ते धोजो इसवर धोतीआं, छंटाशे मारा चीर,
अम घेर दादोजी रीसाळवा, देशे माता मोरी गाळ.

नहि तारो दादोजी रीसाळवा, नै देशे माता मोरी गाळ,
आपण बेऊ मळी परणशुं, वैशाख महिना मांय.

(चूंदडी)

[दूध से तालाब भरा है, मोती से पारी बनाई गई है । शंकर धोती धोते हैं, पार्वती पानी भरने जाय । धीरे से धोना शंकर धोती, मेरी चूनरी में दाग लग जाएगा । घर पर मेरे दादा गुस्सैल स्वभाव के हैं, मेरी माँ मुझे गाली देंगी । न तो तुम्हारे दादा गाली देंगे, न ही माता तुम्हारी गाली देंगी । वैशाख के महिने में हम दोनों मिलकर ब्याह करेंगे ।]

'किन्तु ब्याहने का इकरार करने से क्या मिला ? उन नादान जवानों के माता-पिता के पास जाकर हृदय की बात किसने की ।' ऐसा कहता हुआ दूसरा ब्याह-गीत पगडंडी के किनारे के वृक्ष पर के ओसबिन्दुओं में से जगा और बोला, देखो, मैंने तो नवयौवना के बौराये, जंजाल में डूबे पिता के हृदय में सुकुमार भाव बोया :

एक ते राज द्वारमां रमतां
बेनीबा ! दादे ते हसीने बोलावियां
कां कां रे दीकरी तमारी देह ज दूबळी ।
कां रे आँखलडी जळे भरी.

[एक समय राजद्वार में खेलते समय बेटी को दादा ने हँसकर बुलाया, हे बेटी, क्यों तुम्हारी देह दूबली हो गई है, क्यों तुम्हारी आँखे जल से भरी हैं ।]

'किन्तु बेटी की लज्जाशीलता को यदि काव्यरूप नहीं दिया होता तो शुष्क-फीका निर्लज्ज गद्य थोडी उसमें ऐसा बोलने का साहस करवा सकता था -

एक ऊंचो ते वर नो जोजो रे दादा,
ऊंचो ते नत्य नेवां भांगशे.
एक नीचो ते वर नो जोजो रे दादा,
नीचो ते नत्य ठेबे आवशे.
एक गोरो ते वर नो जोजो रे दादा,
गोरो ते आप वखाणशे.
एक काळो ते वर नो जोजो रे दादा,
काळो ते कुटुम्ब लजावशे.
एक कड्य रे पातळियो ने मुख रे शामळियो,
ते मारी सैयरुं ए वखाणियो.
एक पाणी भरती पनियारीए वखाण्यो,
भलो रे वखाण्यो मारी भाभीए.

('चूंदडी')

[एक लम्बा वर न देखना दादा, लम्बा नित्य नरिया तोडेगा । एक ठींगना वर मत ढूँढना दादा, ठींगना नित्य पैरों की ठोकर में आयेगा । एक गोरा वर मत ढूँढना दादा, गोरा तो अपना ही बखान करेगा । एक काला वर मत ढूँढना दादा, काला कुटुम्ब को लज्जित करेगा । एक कमर से पतला तथा मुख से साँवला है उसका मेरी सहेलियों ने बखान किया, पानी भरती पनिहारिन ने बखान किया

तथा अच्छा हुआ मेरी भाभी ने बखान किया ।]

फिर तो सैकडों ब्याह-गीत पृथ्वी की धूल में लौटकर उस पगडंडी पर खडे हुए और सारा जंगल गूंजित कर दिया । पिता भी बेटी को इच्छित वर प्राप्त करने में सहायता करता था, वे अपना कलेजा खोलकर यह बात मन पर ठूंसने लगी, 'और यह तो धर्मरूढियों की जडों ने ही हमारे किये-कराये को धूल में मिला दिया है, पिताजी ।' उनका ऐसा बोल सुनने के साथ ही पीपल के पत्ते पगडंडी के किनारे से पुकार उठे : 'धर्म पर क्यों तोहमत लगाते हो ? हमने उन पंडितों और धर्मगुरुओं के स्वार्थजालिम रुढि-आचार की जडों के बीच भी क्या संसारी जनों की - कुमारिकाओं की ही नहीं किन्तु वृद्धों की भी-हृदय की सुकुमार उदारता की रक्षा नहीं कर रहे हैं ।''

हल्का फूल तपस्वी

'आप कौन है ?' मैंने उन सौ एक पत्तों के प्रकट हो चुके हल्के फूल और गंभीर मृदुभाषी तपस्वियों से पूछा :

'हम कंकावटी की संतान है- लोकसाहित्य के व्रत । पूछिए तो सही इन गणगौर व्रतों को ! उसने प्रत्येक चैत महिना की उजली त्रीज को सैंकडों कुमारिकाओं के पास कैसा स्तोत्र रटाया है ।'

ऐसा कहते हुए एक नन्हा-सा गीत रट उठा :

आगरीए घूघरीए गोर शणगारी
बापे बेटी खोळे बेसाडी,
कियो वर कियो वर कियो वर गमशे ?
..... भाई वर ..... भाई वर .... भाई वर गमशे.

('गणगोर व्रत' कंकावटी)

[बेटी को पंडिताइन ने घुँघरु से संवारा, पिता ने बेटी को गोदी में बैठाया और पूछा, कैसा वर भायेगा ? भाई जैसा.... भाई जैसा .... भाई जैसा वर भायेगा ।]

'मुझे भी कुछ कहना है,' ऐसा कहते हुए दूसरा एक व्रत बोला :

'मैंने दंभ नहीं सिखाया है । मैंने तो किशोरियों को उनके मनोव्यापार की गहराई में जाकर पहचाना है । उसका विवाह -जीवन यह कोई सांसारिक जीवन में कदम रखने की ही बात नहीं थी ।'

'हाँ, हाँ',' एक ब्याह-गीत ने बीच में कहा : देखिए न, पुत्री को बिदा करती माँ की सच्ची मनोव्यथा को मैंने नहीं गवाया : बेटी को अंतिम बार भोजन कराते हुए क्या कहा ?

ल्योने बेनी कचोळडां, जमजो वार बे वार रे
पछी रे जमशो तमे सासरे, जमशो एठला भात रे
कूर जमशो दिवाळडी, रोटली आदितवार रे
एक जमशो ते बपोर, बीजुं माझम रात रे

('चूंदडी')

[लो बहन कचोळ्यां, खाओ एक दो बार, फिर खाओगी ससुराल में, खाओगी जूठा भात । चूरमा खाओगी दीपावली पर, रोटी इतवार को । एक बार खाओगी दुपहर को, दूसरी बार आधी रात को ।]

ऐसी घटनेवाली वास्तविक दशा की कल्पना करके कुमारिका को चेता दिया था कि गोरमा की पूजा करते-करते सभी बडों को सुना देना बहन, कि तुम्हारी सही जरूरत तो पेट भरना और मिष्टान खाना है, साथ ही सर्वगुण-सम्पन्न आदर्श स्वामी की बजाय तुम्हारा जो कहना माने ऐसे पति की है । ऐसा कहकर गौरमा (गौरी)का व्रत बडबडाने लगा -

गोर मा गोर मा ससरो देजो सवादीआ
तमे मारी गोर मा छो
गोर मा गोर मा रे सासु देजो भुखाळवां.
तमे मारी गोर मा छो
गोर मा गोर मा रे कंथ दजो कह्यागरो.
तमे मारी गोर मा छो

('मोळाकत' : कंकावटी)

[हे गौरी माँ, ससुर देना सवादिया, तुम मेरी गौरी माँ हो । गौरी माँ, सासु देना भुक्खड, तुम मेरी गौरी माँ हो । गौरी माँ पति ऐसा देना जो कहना माने, तुम मेरी गौरी माँ हो ।]

सोरठी दोहा

''बस ! महिन पिछोड़ा ओढ़ाकर ही तुम रुक गये ''

यह कहनेवाला कोई नवीन ही लगा । भरा हुगा गलफडा, घूमते पारेवा की तरह फूला हुआ गला : कुसुंभी आँखे : घोर मेघ-गर्जना सा कंठ : चौड़ी छाती : हाथी की सूंड-सी भुजाएँ ।

'आप कौन है, भाई ?' मैंने पहाडों की गोद से उतर आये रुआबदार भाई से पूछा । 'मैं सोरठिया दोहा' -

'सोरठियो दोहो भलो, भली मरवणरी बात,
जोबन छाई धण भली, तारे छाई रात ।'

[संसार में चार चीजें सुन्दर हैं, सोरठी दोहा, मारवाड की कथा, यौवन से भी नार और तारों से आच्छादित रात ।]

अपनी ऐसी पहचान कराते हुए उसने घनगर्जना की, और हम सब स्तब्ध हो गये । पगडंडी का पंथ प्रतिघोष करने लगा, और पृथ्वी बोल उठी : बहुत-बहुत खम्मा, बापू- मेरे शूरवीर ।

दोहे का दावा

'तुम्हारी जमात कितनी बडी है ?' मैंने पूछा । उसने उत्तर दिया :

'मैंने उसके घातकी हृदय में शत्रुओं के प्रति भी करुणा का सींचन किया -

कट कट भांगे चूडियुं, रोवे झांपा बा'र,
(लाखो के') अेने न मारजो, जे घर नानी नार.

[लाखा फुलाणी नामक कच्छ के राजा ने जब स्वयं ध्वस्त किए गाँव के सिवान में जवान वीरबहुओं को चूडी फोडते हुए देखा तब उसने अपने सैनिकों को संबोधित करते हुए करुणार्द्र हृदय

से कहा कि भाइयों, ये चुडियाँ कड़र-कड़र टूट रही है, ये युवतियाँ विधवा बनकर दरवाजे के बाहर रो रही हैं, यह देखा नहीं जाता । जिसके घर में कम उम्र की बहुएँ हों ऐसे युवकों को तुम कभी भी युद्ध में मारना नहीं ।]

मैंने उसकी नजर स्मशान की ओर भी डलवाई -

'आंऊ वींजो जीराणमें, कोरो घडो मसाण,
जेडी थई वई उनजी, एडी वेंधी पाण ।'

[मैं (आंऊ) स्मशान में गया, वहाँ मैंने चिता की राख पर कोरा घडा देखा । अहो ! जैसी गति उसकी हुई, वैसी ही हमारी भी होगी ।]

शाश्वत भाव

एक ब्याह-गीत ने उत्तर दिया : 'हमारी आलोचना नहीं हुई । उत्तुंग शिखरों के समान स्पर्श का हमारा दावा नहीं है । किन्तु ससुराल भेजी-जाती एवं परकीय बनती पुत्री के लिए कालिदास द्वारा सर्जित कण्व नामक तपस्वी ने कुछ गाया था । उसे यदि आप उत्तुंग शृँग कहते हों तो मैंने भी तलहटी में खड़े खड़े जनेता का जो दिल आलेखित किया है तुम उसकी उपेक्षा नहीं कर सकते ।' ऐसा कहकर उसने गाया :

में तो हरखे चांपलियो मोटो कर्यो रे
मारो उछेरतां भव जाय, फूलनी वेळाए माळी लई गियो रे.
में तो हरखेथी लाडवई मोटां कर्या रे
मारो उछेरतां भव जाय, कामनी वेळाए जमाई लई गिया रे.

(चूंदडी)

[मैंने तो बड़े हर्ष से चंपा का पौधा बोया, उसको पालते-पोषते मेरा जीवन बीत रहा था, जब उसमें फूल आने लगे तो उसे माली उठा ले गया । मैंने बड़े हर्ष से अपनी लाडली बेटी को बड़ा किया, उसको पालते-पोषते मेरा जीवन बीत रहा था, काम करने के योग्य वह हुई उस समय उसे दामाद उठा ले गये ।]

'तो क्या दुल्हे की माता का मनोभाव काव्य का अधिकारी नहीं था ?' मैंने मर्दानगी जताई ।

'अधीर मत होइए ।' ऐसा कहकर उस ब्याह -गीत ने अपनी पंक्ति गाई -

में तो हरखेथी जियावर मोटा क्र्या रे
मारो उछेरतां भव जाय, कमाई वेळाए वहुए वश कर्या रे.

[मैंने बड़े हर्ष से लड़के को बड़ा किया पालते-पोषते मेरा जीवन बीत गया, कमाई के समय बहू ने वश में कर लिया ।]

विनोदात्मक आलोचना

'तापी माता ! करुण गीत तो ढेर सारे गाये गये । जीवन की विनोदात्मक आलोचना क्या पगडंडी पर गाई ही नहीं गई ? मैंने थकान का अनुभव किया ।

मेरे इस प्रश्न के प्रति-उत्तर में नदी के नीर पर मछलियाँ उछल-उछल कर नाचते हुए गाने लगीं -

जळनी माछलडीने जळ वा'लां रे
हाँ रे माछलीने जळ वा'लां रे
पुरुषने वा'ली पाघडी रे, पाघडीने वा'लां फूल
माछलडीने जळ वा'लां रे
अस्त्रीने वा'लो कंचवो रे, कंचवाने वा'लो हार
माछलडीने जळ वा'लां रे
घरने वा'लु घोडियुं रे, घोडियाने वा'लां बाळ
माछलडीने जळ वा'लां रे
('रढियाळी रात')

[जल की मछली को जल प्यारा है । पुरुष को अपनी पगड़ी प्यारी है और पगड़ी को फूल ! स्त्री को चोली प्यारी है और चोली को प्यारा है हार । घर को प्यारा है झूला और झूले को प्यारा है बालक ।]

अरे, इतने में तो तापी-तीर की एक अर्ध-बुझी चिता से आवाज आई किसी चूनरीवाली बहूबेटी की -

दरियाना बेटमां रे'ती, साहेबनुं नाम लेती,
हुं दरियानी माछली.
मने बारणे काढवी नो'ती हुं दरियानी माछली.
बार काढी तो हवे भले काढी;
मने सूंडले नाखवी नो'ती -
हुं दरियानी माछली.
सूंडले नाखी तो हवे भले नाखी,
मने घर घर वेचवी नो'ती -
हुं दरियानी माछली.
घर घर वेची तो हवे भले वेची,
मने छरीए छोलवी नो'ती -
हुं दरियानी माछली.
छरीए छोली तो हवे भले छोली,
मने मरचे भूँजवी नो'ती -
हुं दरियानी माछली.
मरचे भूँजी तो हवे भले भूँजी
मने तावडे तळवी नो'ती -
हुं दरियानी माछली.
तावडे तळी तो हवे भले तळी,
मने चप चप चाववी नो'ती -
हुं दरियानी माछली.

चप चप चावी तो हवे भले चावी,
मने कागडाने नाखवी नो'ती -
हुं दरियानी माछली.

['रढियाळी रात']

[मैं समुद्र में रहनेवाली मछली हूँ और साहब का नाम लेती हूँ । मैं समुद्र की मछली, मुझे समुद्र के बाहर निकालना नहीं था । बाहर निकाला तो भले निकाला मुझे टोपली में डालना नहीं था । टोपली में डाला तो अब भले डाला, मुझे घर-घर बेचना नहीं था । घर-घर बेचा तो अब भले बेचा, मुझे छूरी से छीलना नहीं था । छूरी से छीला तो भले छीला मुझे मिर्च डालकर भूँजना नहीं था । मिर्च डालकर भूँजा तो भले भूँजा, मुझे तवे पर तलना नहीं था । मुझे तवे पर तला तो भले तला, मुझे चप-चप चबाना नहीं था । चप-चप चबाया तो भले चबाया मुझे कौए को डालना नहीं था ।]

'मैं समझ गया । यह तो किसी गृहबहू पर बीती-घटना का वर्णन है । किन्तु कर्कशा बहुबेटियों ने सास के उपर क्या कुछ नहीं गुजारा, हे तापी माँ ? इसका विवेचन हुआ है ?'

'हाँ भाई हा' ! पगडंडी का पथ इस विवेचन से लबालब भरा हुआ है । मेरे रणजितराम ने संग्रहित किया है यह नारी गीत :

मेंदी लेशुं मेंदी लेशुं मेंदी मोटुं झाड,
एक हलावुं डाळ त्यां तो डाळां हले चार. सैयर मेंदी लेशुं रे.
मारी सासुए एम कह्युं के पाणीडां भरी मेल,
में भोळीए एम जाण्युं के बेडलां फोडी मेल. सैयर मेंदी लेशुं रे.
मारी सासुए एम कह्युं के रोटला घडी मेल,
में भोळीए एम जाण्युं के चूला खोदी मेल. सैयर मेंदी लेशुं रे.
मारी सासुए एम कह्युं के डोबाने पूळो नीर,
में भोळीए एम जाण्युं के डोसाने पूळो नीर, सैयर मेंदी लेशुं रे.
मारी सासुए एम कह्युं के कोढमां दीवो मेल,
में भोळीए एम जाण्युं के सोडमां दीवो मेल. सैयर मेंदी लेशुं रे.

[मेंहदी लूँगी, मेंहदी लूँगी, मेंहदी का बडा वृक्ष है, जहाँ एक डाल हिलाऊँ तो वहाँ डाली हिले दो-चार, सैंया मेंहदी लूँगी । मेरी सास ने ऐसा कहा कि पानी भर दो, मैं भोली ने यों समझा की गागर फोड़ डाल । मेरी सास ने ऐसा कहा कि रोटला बना डाल, मैं भोली ने ऐसा समझा कि चूल्हा खोद डाल । मेरी सास ने ऐसा कहा कि भैंस को पानी दे, मैं भोली ने ऐसा समझा कि बूढ़े को पानी दे । मेरी सास ने ऐसा कहा कि बाड़े में दीया रख, मैं भोली ने ऐसा समझा कि बगल में दिया रख । सैंया मेंहदी लूँगी ।]

गूर्जर की शौर्य - गाथा

'किन्तु तापी माँ ! आपके तीर कोई नारी - शौर्य नजर में चढ़ा है ?'

'गूजरात ने तो, बेटा', तापीने निःश्वास छोड़ा : 'वीर-वीरांगनाओं के पराक्रम ज्यादा नहीं गाया है ।'

'तापी माँ ! इतना बड़ा स्मृति भ्रंश !' ऐसा कहती हुई उत्तर भारत की सुविशाल सरिताएँ उस पगडंडी की बगल से उछल पड़ी : आपकी गुर्जर- गलियों को गुंजित करते गुर्जरी-गीत क्या भूल गयीं ? गुजरात की अपनी कुल-नामक मुद्रा की धाक जमानेवाले नौ लाख गुर्जर हमारे तीर से जिस दिन दिल्ली पर चढ़ बैठे थे उस दिन को तो आपकी लोकवाणी ने तो गुर्जर वधुओं के हृदय में न जाने कितने काल से काव्यांकित किया है -

के काबुल से बादशा चडे ने सारी दिल्ली का दीवान रे
के बादशा ऊतरे बागमें, में के मस जोवा जाऊं रे !

'गुजरात की आद्य जगदंबा वह जवान ग्वालिन मेना गुर्जरी हमारे तीर खड़ी हुई और बात सुना कि पड़ौस में ही बदाशाही पड़ाव पड़ा है । प्यारी गुर्जरी को बादशाही ठाठबाठ देखने का मन हुआ । उसने भव्य ग्वालिन-स्वांग रचा, और -

महियर लो कोई महियर लो, कोई लो मटकी का दूध रे

ऐसा कहते हुए वह बादशाह के पड़ाव में घूमने लगी ।

बादशाह उसकी सुन्दरता पर फिदा होकर उसे ललचाया :

के बादशा केहेवे सुण गुजरी, तुम सुणो हमेरी बात रे,
मेरी मूछुं तो अजब बनी, मेरी मूछुं देखन आव रे.

इसका उत्तर गुर्जरी ने यह दिया :

तेरी मूछुं में क्या देखना, मेरा बकराकुं ऐसा पूंछ रे.

बादशाह चिढ़ गया और चिल्ला पड़ा :

हिंदवाणी तुं हरामजादी, बादशाकुं देवे जवाब रे !

उसे पकड़ कर, बंद कर दिया, जंजीर में जकड़ दिया, फिर भी गुर्जरी क्या बोली :

मने न जाणीश एकली, मारा गुजर चड़े नव लाख रे !

और सचमुच में संदेशा पहुँचते ही नव लाख गुर्जर -

केसरिया भाई वाघा पहेरो ने हो जवा लाल गुलाल रे !

ऐसा युद्ध ललकार करते हुए चढ़ आये । बादशाह ने गुर्जर सैन्य और बादशाही फौज दोनों के बीच मैना गुर्जरी को बैठाते हुए कहा कि -

बीचमें राखो गुजरी ने जे जीते ते लई जाय रे ।

गुर्जरों ने घसामान युद्ध कर विजय प्राप्त की, तब बादशाह ने कबूल किया कि -

तमारी गुजरी तमने मुबारक, गुजरी हमेरी बेन रे !

('रढियाळी रात')

'ऐसी राष्ट्रगाथा क्या याद नहीं रही, तापी माँ ! पगडंडी के पथ पर वीरत्व गुर्जरियों ने गाया है; राजमार्ग पर जिन्हें चलने का अधिकार ही नहीं था उन प्राकृत लोगों का आत्मगौरव और जातिगौरव दूसरे किस प्रकार से जीवित रह पाता !' ऐसा कहते हुए गुर्जरों की आद्य-अन्नपूर्णा पंजाबी महानदियाँ शांत हुई ।

'यही गुर्जरी-गर्व हमने अपने छोटे -से किनारे पर गुंजित रखा है, ऐसा कहते हुए सौराष्ट्र की मच्छु नदी ने अपने तीरवासी मोरबी नगर की वाणियण और राजा जीवाजी ठाकोर की कथा गाकर बताने लगी -

मोरबीनी वाणियाण मच्छु पाणी जाय.
आगळ रे जीवोजी ठाकोर
वांसे रे मोरबीनो राजा,
घोडां पावा जाय.
के'जे रे वाणियाणी तारा अंबोडानां मूल !
जावा दो जीवाजी ठाकोर, रे'वा दो मोरबीना राजा, नथी करवां मूल.
मारा अंबोडामां तारुं माथुं थाशे डूल.

['रढियाळी रात']

[मोरबी की बनियाईन मच्छु नदी में पानी भरने जाती है । उसके आगे जीवोजी ठाकोर और पीछे मोरबी का राजा है घोड़े को पानी पिलाने जाता है । कहो तो बनिआइन अपने जूड़े का मूल्य । रहने दो जीवाजी ठाकोर और मोरबी के राजा, मेरे जूड़े में तुम्हारा सिर खप जाएगा ।]

★★★

संदर्भ ग्रंथ -१

१. लोक साहित्य की भूमिका - डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय । पृष्ठ - ७ पर डॉ. धीरेन्द्र वर्मा द्वारा भूमिका में प्रस्तुत विचार ।

२. निमाडी और उसका साहित्य - डॉ. कृष्णलाल हंस । पृष्ठ ३०२

३. काश्मीर का लोक साहित्य - मोहन कृष्ण दर । पृष्ठ १

४. लोक साहित्य की भूमिका - डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय । पृष्ठ २७

५. ऋग्वेद १/७/१

६. घाम्मपद - ब्राह्मणवग्ग ३९/११

७. मनुस्मृति ।

८. डॉ. फ्रेजर - दि गोल्डन बाऊ भाग ३ पृ. १२१

९. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय - लोक साहित्य की भूमिका पृ. १५९

१०. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय - लोक साहित्य की भूमिका पृ. १५९

११. राजस्थानी कहावतों का अध्ययन - डॉ. कन्हैयालाल सहल पृ. ५८-५९

१२. टॉड कृत - राजस्थान, भाग-१ भूमिका -१

१३. द इम्पीरियल गजटियर ऑफ इन्डिया, १०९८ वोल्मूम-XXI

१४. राजस्थान का सामान्य ज्ञान- डॉ. एल. आर. भल्ला, पृ. १

१५. राजस्थान काव्य में शृंगार भावना - डॉ. दयाकृष्ण विजय, पृ. ४

१६. राजस्थान का पिंगल साहित्य : डॉ. मोतीलाल मेनारिया, पृ. २

१७. तेन तन्मरु कांतारं पृथिव्यां किल विश्रुतम ।
निपातितः शरो यत्र वज्राशनिसम प्रभ : ॥३३॥
- वाल्मीकीय रामायण, युद्ध काण्ड, सर्ग २२

१८. कोटा, बूंदी, झालावाड, उदयपुर, डुंगरपुर, बाँसवाडा, प्रतापगढ, शाहपुरा, करौली, बीकानेर, सिरोही, जैसलमेर, जयपुर, अलवर, जोधपुर, किशनगढ, दांता, भरतपुर, धौलपुर, पालनपुर एवं टोंक- राजस्थानी काव्य में शृंगार भावना, पृ. १

१९. राजपूताने का इतिहास : श्री जगदीशसिंह गहलोत, पृ. १

२०. गुजरात की लोक-संस्कृति की झलक : सुभाषिनी कपूर, पृ. ३१

२१. सवामणी - सवामन (५० किलो) प्रसाद का चढावा । घी, शक्कर, अनाज मिलाकर चूरमा तथा लापसी आदि व्यंजन बनाकर देवताओं को भोग लगाया जाता है तथा प्रसाद बाँटा जाता है, इसे सवामणी कहते हैं ।

२२. रातीजोगा - रात्रि जागरण । किसी बांछित फल की प्राप्ति होने पर अथवा विवाह पूर्व की रात महिलाओं द्वारा देवताओं, लोक देवी-देवताओं के गीत गाये जाते हैं । कलावन्त भी गाते हैं, इसे रातीजोगा देना कहते हैं ।

२३. जम्मा - रामदेवजी के भजनों, कीर्ति कथा का गायन । पेशेवर मेघवाल आदि जाति के लोग इकतारे पर भजन गाते हैं, जिसे जम्मा कहते हैं ।

२४. गरबी - स्त्रियों के नृत्य 'गरबा' की तरह ही पुरुषों का नृत्य 'गरबी' है ।

२५. कीसग- गुजरात के नाविकों का नृत्य, जिसमें नाव चलाने के भाव दर्शाये जाते हैं ।
२६. लोकायन पृ. १०- डॉ. चिंतामणि उपाध्याय ।
२७. Grimme Encyclopedia of Britanica - "A Folk Song composes itself. Primitive Spontaneous music has been called folk song." -Vol. IX Page 447-448.
२८. राजस्थान के लोकगीत (पूर्वार्ध) प्रस्तावना पृ. १२
२९. कविता कौमुदी, भाग. ५, ग्रामीण गीतों का प्रकरण-परिचय, प्रस्तावना पृ. १, २
३०. आजकल (दिल्ली) संख्या ७ नवम्बर १९५१ अंक
३१. साहित्य संदेश में प्रकाशित लेख के उद्दघृत, जून १९५६
३२. जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धान्त - पृ. १७५
३३. धीरे बहो गंगा, भूमिका पृ. ९ - देवन्द्रसत्यार्थी ।
३४. काव्य के रुप पृ. १२३
३५. हिन्दी साहित्य सम्मेलन पत्रिका अंक-लोक संस्कृति सं. २०१० पृ. ३७
३६. छत्तीसगढी लोकगीतों का परिचय, भूमिका पृ. ५
३७. सम्मेलन पत्रिका - लोक संस्कृति अंक पृ. २५०-२५१
३८. 'ए स्टडी ऑफ उरिसन फोकलोर' पृ. १
३९. लोकगीत और संगीत : परम्परा (जोघपुर) चैत्र संवत २०१३
४०. मैथिली लोक साहित्य का अध्ययन पृ. १६
४१. धरती गाती है - आमुख देवेन्द्र सत्यार्थी
४२. रढियाली रात - भूमिका पृ. ६ (गुजराती)
४३. 'श्रुतिगरिमा' शीर्षक निबन्ध - नवभारती वर्ष ६ अंक. १, पृ. ५६ - बद्रीप्रसाद पंचोली
४४. Encyclopedia of Britanica (Volum IX Page 448) - Ralph V. Willams
४५. लोकायन की भूमिका पृ.'क' - डॉ. देवराज उपाध्याय
४६. रश्मि की भूमिका - महादेवी वर्मा
४७. उत्तर रामचरित - भवभूति ।
४८. रश्मि की भूमिका - महादेवी वर्मा
४९. राजस्थानी लोकगीत - डॉ. स्वर्णलता अग्रवाल (भाग-२- ग गीत सं. ९६)
५०. वरदा, राजस्थानी लोक साहित्य विशेषांक (पूर्वार्ध) पृ. २-१२
५१. राजस्थानी लोकगीत - स्वर्णलता अग्रवाल पृ. १६९
५२. राजस्थानी लोकगीत - स्वर्णलता अग्रवाल पृ. १६८
५३. साहित्य और समाज - विजयदान देथा पृ. ६९-७०
५४. साहित्य और समाज - विजयदान देथा पृ. ७१-७२
५५. डॉ. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. ७३
५६. डॉ. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. ७३
५७. डॉ. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. ७४
५८. डॉ. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. ७४

५९. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. ७५
६०. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. ७६
६१. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. ७७
६२. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. ७८
६३. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. ७९
६४. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. ८०
६५. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. ८०
६६. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. ८१
६७. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. ८४
६८. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. ८६
६९. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. ८८
७०. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. ९०
७१. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. ९१
७२. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. ९३
७३. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. ९४
७४. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. ९५
७५. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. ९६
७६. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. ९८
७७. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. ९९
७८. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. १००
७९. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. १००
८०. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. १०१
८१. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. १०२
८२. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. १०२
८३. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. १०३
८४. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. १०५
८५. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. १०६
८६. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. १०६
८७. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. १०७
८८. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. १११
८९. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. ११३
९० डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. ११४
९१. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. ११५
९२. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. ११६
९३. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. ११७

९४. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. ११९
९५. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. १२०
९६. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. १२३
९७. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. १२६
९८. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. १२६
९९. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. १२७
१००. संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'रढियाळी रात' पृ. ७३, बृहद, आवृत्ति : १९९७
१०१. संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'रढियाळी रात' पृ. ७३, बृहद, आवृत्ति : १९९७
१०२. डो. योजना शर्मा : राजस्थानी लोकगीतों की संरचना, पृ.७६, प्रथम संस्करण :२०००
१०३. संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, पृ. ८१, संयुक्त संस्करण :१९९१
१०४. झवेरचंद मेघाणी : लोक साहित्य, पृ. १५२, प्रथम संस्करण अक्टूबर :२०००
१०५. संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, पृ. ८३, संयुक्त संस्करण :१९९१
१०६ लोक साहित्य - भाग-१ पृ.१००
१०७ संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ६
१०८ संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. १०
१०९ संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ११
११० संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. १३
१११ संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. १४
११२ संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. १५
११३ संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. १६
११४ अमृत पटेल : 'झमरख दीवडो', पृ. ४३
११५ अमृत पटेल : 'झमरख दीवडो', पृ. ४८
११६ अमृत पटेल : 'झमरख दीवडो', पृ. ५०
११७ किर्तन मुकतावली - भाग-२, बीजी आवृत्ति- १९९५ पृ.११५
११८ संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. २०
११९ संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. २४
१२० संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. २६
१२१ अमृत पटेल : 'झमरख दीवडो', पृ. ६४
१२२ संपादक : विनायक रावल : 'गुजरातनां लग्नगीतो', प्रथम आवृत्ति-२००४, पृ. ९८
१२३ संपादक : विनायक रावल : 'गुजरातनां लग्नगीतो', प्रथम आवृत्ति-२००४, पृ. ९९
१२४ संपादक : विनायक रावल : 'गुजरातनां लग्नगीतो', प्रथम आवृत्ति-२००४, पृ. १०४
१२५ संपादक : विनायक रावल : 'गुजरातनां लग्नगीतो', प्रथम आवृत्ति-२००४, पृ. १०६
१२६ संपादक : विनायक रावल : 'गुजरातनां लग्नगीतो', प्रथम आवृत्ति-२००४, पृ. १०६
१२७ रंजनबेन सावलिया
१२८ संपादक : विनायक रावल : 'गुजरातनां लग्नगीतो', प्रथम आवृत्ति-२००४, पृ. १४५र्
१२९ संपादक : विनायक रावल : 'गुजरातनां लग्नगीतो', प्रथम आवृत्ति-२००४, पृ. १७८

१३० संपादक : विनायक रावल : 'गुजरातनां लग्नगीतो', प्रथम आवृत्ति-२००४, पृ. १७८
१३१ संपादक : विनायक रावल : 'गुजरातनां लग्नगीतो', प्रथम आवृत्ति-२००४, पृ. १७९
१३२ कीर्तन मुक्तावली-भाग-२, द्वितीय आवृत्ति-१९९५, पृ. ११५
१३३ संपादक : विनायक रावल : 'गुजरातनां लग्नगीतो', प्रथम आवृत्ति-२००४, पृ. १७९
१३४ संपादक : विनायक रावल : 'गुजरातनां लग्नगीतो', प्रथम आवृत्ति-२००४, पृ. १८०
१३५ संपादक : विनायक रावल : 'गुजरातनां लग्नगीतो', प्रथम आवृत्ति-२००४, पृ. १४८
१३६ कीर्तन मुक्तावली-भाग-२, द्वितीय आवृत्ति-१९९५, पृ. ११४
१३७ कीर्तन मुक्तावली-भाग-२, द्वितीय आवृत्ति-१९९५, पृ. ११५
१३८ संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ३७
१३९ संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ४३
१४० संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ४९
१४१ संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ५०
१४२ संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ५१
१४३ कीर्तन मुक्तावली-भाग-२, द्वितीय आवृत्ति-१९९५, पृ. ११६
१४४ जीवती बरवाडिया
१४५ संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ५२
१४६ संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ५४
१४७ संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ५५
१४८ संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ६१
१४९ संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ६६
१५० संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ६९
१५१ संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ७०
१५२ संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ८२
१५३ संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ७३
१५४ संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ७५
१५५ संपादक : विनायक रावल : 'गुजरातनां लग्नगीतो', प्रथम आवृत्ति-२००४, पृ. १८२
१५६ कीर्तन मुक्तावली-भाग-२, द्वितीय आवृत्ति-१९९५, पृ. १२०
१५७ कीर्तन मुक्तावली-भाग-२, द्वितीय आवृत्ति-१९९५, पृ. १२०
१५८ कीर्तन मुक्तावली-भाग-२, द्वितीय आवृत्ति-१९९५, पृ. १२१
१५९ कीर्तन मुक्तावली-भाग-२, द्वितीय आवृत्ति-१९९५, पृ. १२२
१६० संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ८०
१६१ संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ८१
१६२ संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ८२
१६३ संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ८३
१६४ संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ८४
१६५ संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ६०

१६६ संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ६१
१६७ संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ६२
१६८ संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ६३
१६९ संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ६४
१७० कीर्तन मुक्तावली-भाग-२, द्वितीय आवृत्ति-१९९५, पृ. १२२
१७१ कीर्तन मुक्तावली-भाग-२, द्वितीय आवृत्ति-१९९५, पृ. १२३
१७२ कीर्तन मुक्तावली-भाग-२, द्वितीय आवृत्ति-१९९५, पृ. १२३
१७३ संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ९३
१७४ संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ९४
१७५. Cradle Songs and Nursery Rhymes Edited by Grace Rhys.
१७६ 'स्टडी ऑफ फोकसोंग्स; पृ. ७८-७९

संदर्भ ग्रंथ - २

१) झवेरचंद मेघाणी : 'रढीयाळी रात'
२) अमृत पटेल : 'झमरख दीवडो'
३) जयमल्ल परमार : 'आपणां लोकगीतो'
४) मकरन्द दवे : 'दाम्पत्य-योग अने नवां लग्नगीतो'
५) लक्ष्मण पिंगळशी गढवी : 'सौराष्ट्रनो सांस्कृतिक वैभव'
६) सं. झवेरचंद मेघाणी : 'चूंदडी' - गुर्जर लग्नगीतो
७) सं. विनायक रावल : 'गुजरातनां लग्नगीतो'
८) सं. बळवंत जानी : 'लोकगुर्जरी' (अंक-सत्तर)
९) सं. अमृत पटेल : 'पुष्कर चंदरवाकर अने लोकसाहित्य'
१०) डॉ. चिन्तामणि उपाध्याय : 'मालवी लोकगीतो : एक विवेचनात्मक अध्ययन'
११) श्री विजयदान देथा : 'क्युं दीनी परदेश'
१२) श्री विजयदान देथा : 'दोरो घीया ने सासरो'
१३) डॉ. रामप्रसाद दाधीच : 'राजस्थान के लोकगीत'
१४) डॉ. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना'
१५) रानी लक्ष्मीकुमारी चुण्डावत : 'रजवाडी लोकगीत'
१६) सं. श्री विजयदान देथा : 'गीतो की फुलवाडी'
१७) डॉ. मदनलाल शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन'
१८) झवेरचन्द मेघाणी : 'गुजराती लोक साहित्य की समालोचना'
१९) मारवाडी समाज
२०) राजस्थान का सामाजिक इतिहास
२१) राजस्थानी लोक साहित्य
२२) आपणां गीत अपनी रीत
२३) राजस्थानी लोक साहित्य एवं संस्कृति
२४) राजस्थानी काव्य में श्रृंगार भावना
२५) राजस्थानी साहित्य का इतिहास

अध्याय-४

लोकगाथाएँ एवं कहावती कथाएँ

अनुक्रमणिका

- ☐ लोकगाथा (गुजराती एवं राजस्थानी)
  - ◆ कुमारी अने रसियो वालम
  - ◆ भेरियो गारुडी अने सगई संगार
  - ◆ पडियेल हिरलानी गांठ
  - ◆ ढोला - मारु
  - ◆ शेणी-विजाणंद
  - ◆ बात सयणी चारणी री
  - ◆ चारणी देवी - आवडमाता
  - ◆ चारणी देवी - आवडमाता (नडेश्वरी माता)
  - ◆ लोकदेवता
    - ○ गोगाजी
    - ○ पाबूजी
    - ○ तेजाजी
  - ◆ वीर भाथीजी महाराज : गोगाबापा
  - ◆ जैसल जाडेचा
  - ◆ जेसल जाडेजा अने सती तोरल
  - ◆ जसमा ओडण
  - ◆ मेह-उजली की कथा
  - ◆ खीमरा की त्रिया और रणशी राजा
  - ◆ तेजमल - सजना
  - ◆ तेजमल वरणागियो
  - ◆ सोनलनुं गीत
- ☐ दोहा साहित्य (गुजराती एवं राजस्थानी)
  - ◆ ढोला मारु रा दूहा
  - ◆ ढोला मारु रा दूहा - डॉ महावीरसिंह गहलौत
  - ◆ ढोला मारू रा दूहा - कल्लोल कवि
- ☐ ऋतुनुं दोहासाहित्य (गुजराती एवं राजस्थानी)
  - ◆ मेह-उजळीनी बारमासी
  - ◆ ओढा होथलना दोहा
  - ◆ प्रास्ताविक दोहा - अन्य कई दोहे
- ☐ कहावती कथाएँ (गुजराती एवं राजस्थानी)
- ☐ सन्दर्भ ग्रन्थ - १
- ☐ सन्दर्भ ग्रन्थ - २

लोकगाथाएँ

कुमारी अने रसियो वालम[१] (गुजराती)

आबुराज (आबु पर्वत) की पुत्री कुमारी देवी माता अर्बुदा देवी की आरती करने के बाद अपनी सहेलियों के साथ वापस राजमहल लौटती है । तब उसने बांसुरी के मधुर सूर सुने ।

एक युवान पर्वत पर बैठकर बाँसुरी बजा रहा था । इस बाँसुरी के सूर से कुमारी का हृदय पीघल गया । कुमारी ने अपनी सहेली को कहा : अली कौन है वो अलबेला । मारग के बीच बैठकर बाँसुरी बजा रहा है ?

'जो होगा वो । चल जल्द से राजमहल चलें ।' सहेली ने कहा ।

तो कुमारी ने कहा : 'चल तो सही । उनका ठाम - ठिकाना तो पूछें ?'

अंत में कुमारी और सहेली बाँसुरी बजाने वाले के पास पहुँचती है ।

कुमारी जुवान के पास जाकर खडी रहती है, जुवान संगीत की सृष्टि में खो गया है । उनकी आँखें बंद है । थोडी देर बाद कुमारी कहती है : 'एय बाँसुरी वाला, तेरा नाम क्या है ?'

युवान धीरे से बोलता है : 'लोग मुझे रसियो वालम कहते हैं ।'

'लेकिन रसिया तेरे माँ-बाप तो होंगे । उनका कंई ठाम-ठिकाना ?'

'माँ-बाप तो मर चुके हैं । इस दुनिया में मेरा कोई नहीं है ।'

'तो तुने बडा किसने किया ?'

'गोरखनाथ की गुफा में रहते हुए मेरे गुरुदेव ने । उन्होंने ही मुझे संगीत की शिक्षा दी और साधना करते हुए सीखाया ।'

कुमारी राजमहल पहुँच जाती है लेकिन उनके मन में रसिया की मूरत बस गई ।

फिर तो हर रोज कुमारी पर्वत पर चली जाती । रसियो वालम बाँसुरी बजाता और कुमारी नृत्य करती रहती । और यह बात राजरानी तक पहुँच गई । रानी ने राजा को बात कही । राजा ने प्रधान की सलाह के मुताबिक कुमारी का विवाह करने की तैयारियाँ शुरू हो गई ।

कुमारी ने अपनी सहेली के साथ रसिया को संदेश भेजा कि रसिया तनमन से मैं तेरी हो गई हूँ । मैं तेरे प्रेम की पूजारण हो गई हूँ । मेरे विवाह की बात चल रही है । अब एक ही रास्ता है । चल यहाँ से कहीं दूर भाग चलें । मैं पूर्णिमा की रात को नखी तालाब के किनारे पर तेरा इन्तजार करूँगी । मैं जीऊँगी तो भी तेरे साथ और मरूँगी तो भी तेरे साथ ।

रानी ने कुमारी को बहुत समजाई और कहा कि, 'बेटी ! तूं राजकुल घराना की है । तेरे नसीब में सोलह सुख लिखे हैं और तूं इस गोपालक को कहाँ दिल दे बैठी ? तुझे राजकुल का तो खयाल रखना चाहिए ?'

'माताजी ! अब दूसरा विचार नहीं हो सकता । अब मानिये कि अपनी कुमारी मर चुकी है । मैं रसिया को हृदय दे चूकी हूँ ।'

रानी ने राजा को बात की । राजा ने प्रधान की सलाह ली । प्रधान ने सलाह दी कि, बल से नहीं लेकिन कळ से काम लेना चाहिए । रसिया को राज दरबार में बुलाया जाय और उसके प्रेम की परीक्षा (इम्तहान) ली जाय ।

दूसरे दिन रसिया वालम को राज दरबार में हाजिर किया गया । प्रधान ने उनको प्रश्न किया : 'रसिया ! तुझे कुमारी के साथ विवाह करना है ?'

रसिया चूपचाप जमीन की ओर देख रहा ।

प्रधान ने कहा : 'गभराना मत । कुमारी तुम्हारी पत्नी बन सकती है, लेकिन एक शर्त पर ।'

'कौन सी शर्त ?' रसिया यकायक बोल उठा ।

'कुमारी को पत्नी के रूप में स्वीकार करना हो तो आबु की तलहटी से लेकर आबु पर्वत तक की सडक बना दे, और वो भी एक ही रात में । और एक रात में सडक न बनी तो कुमारी को भूल जाना ।'

'मुझे मंजूर है ।' रसिया ने कहा ।

'तो काम शुरू कर दे । कल सुबह सूरज उगते ही पहले सडक तैयार हो जानी चाहिए । यदि सडक तैयार हो गई तो कुमारी सदा के लिए तेरी हो जायेगी ।'

रसिया राज दरबार से बिदाई लेकर गया ।

घर आकर गुरुजी का ध्यान किया । साधना से भूतनाथ प्रसन्न हुए । भूतनाथ ने रसिया को डुंगर खोदकर सडक बनाने के लिए भूतावल भेज दी और थोडी ही देर में आबु पर्वत भूत नगरी बन गया । रसिया भी भूतों के साथ सडक के काम में लग गया ।

आधी रात में तो सडक का बडा काम पूर्ण हो गया । इस बात की रानी अनंता को खबर हो गई । उसने कपट रचा । सुबह हो गई हो ऐसे मुरघे की आवाज से सारा वातावरण गूँज उठा । सुबह होने के कारण सब भूत चले गये ।

रसिया को कुछ समझ में नहीं आया । अभी काम तो बाकी था । भूतावल क्यों चली गई ? मुरघे किसने बुलाये ? निश्चय ही मेरे साथ षड्यंत्र रचा है । रसिया हार गया । रसिया का मन व्याकुल हो गया ।

दूसरे दिन अर्ध पागल बना हुआ रसिया ने कुमारी और रानी अनंता को मंदिर आते हुए देखे । उनके मन में वेदना हो उठी । उनके साथ छल हुआ था । रसिया ने भूतनाथ को याद किया ।

भूतनाथ हाजर हुआ । रसिया ने जोर से कहा : 'उन दोनों माँ - बेटी को पत्थर के पूतले बना दे । जिस से धरती पर प्रेमियों के साथ कोई कपट न करें ।'

थोडी ही देर में कुमारी और रानी अनंता पूतले बन गये । रसिया जोर जोर से हँसने लगा । और बोला : 'मेरे साथ वैर बांधने वाले का क्या हाल होता है, देखा न ।' और गुस्से में आकर रानी अनंता का पूतला तोड डाला । थोडी देर बाद हृदयेश्वरी जैसी कुमारी को पत्थर के पूतले के रूप में देखकर रसिया का हृदय काँप उठा । और उसकी आँखो में से आँसु बह गये । और बोल उठा :

'कुमारी ! कुमारी ! तूं मुझे अकेला छोडकर नहीं जा सकती । मैं आ रहा हूँ । अपने सपनों के महल को स्वर्ग बनायेंगे । कुमारी, तेरे वियोग की वेदना मैं अब नहीं सह सकता । और ये अहमी दुनिया को अलविदा करता हूँ । कुमारी मैं आया, मैं आया ।'

ऐसा कहता हुआ रसिया जहर भरा कटोरा पी गया । पल भर में उसके प्राण नीकल गये । कुमारी और रसिया बालम की याद इस पृथ्वी पर रह गई ।

आज भी आबु पर्वत पर देलवाडे के दहेरे के पीछे रसिया वालम और कुमारी की प्रतिमाएँ बनी हुई हैं । कुमारी सौभाग्य की देवी के रूप में पूजी जाती है ।

भेरियो गारुडी अने सगई संगार(२) (गुजराती)

महुवर के मधुर स्वर पर फणीधर नाग को नचाने वाला गारुडी (सपेरा) भेरिया गारुडी के वंशज होते हैं, लेकिन यह भेरियो गारुडी सपेरा नहीं था, पर वह था जेसलमेर के भट्टी कुल का राजकुमार ।

भट्टी वंश के देपाळ वंशज में मूरु नाम का राजा था । वो अपुत्र था इसलिए कोई उसका सुकुन नहीं लेता था ।

एक दिन मूरु राजा के दरबार में एक संन्यासी आया । राजा ने उनका सम्मान किया । राजा ने योगी-संन्यासी को अपने मन की बात बतायी और प्रणाम किया ।

संन्यासी ने राजा की बात सुनकर धूणा धखा कर जप, तप किये और मंत्र किये :

'सामी डीनी चीपटी,
भभूता भरे;
पूतर ईघे मूरवा
पण गारुडी धरे;'

फिर धूणा में से भस्म की चपटी लेकर राजा को देते हुए संन्यासी ने कहा : 'यह भभूत तेरी रानी को खिलाना, यह भभूत खिलाने से तेरे यहाँ पुत्र का जन्म होगा, लेकिन वो गारुडी बन जायेगा । वो राज गद्दी के काम में नहीं आयेगा ।'

यह सुनकर राजा का चेहरा नाराज हो गया । संन्यासी ने धूणा में से भस्म की दूसरी चपटी लेकर राजा को दी और राजा को कहा : 'राजा ! नाराज मत हो । यह भस्म तूं तेरी दूसरी रानी को खिलाना । उसको देव रूप जैसा पुत्र होगा । तेरा ये दूसरा पुत्र राज गद्दी का वारसदार होगा ।' ऐसा आशीर्वाद देकर योगी महाराज ने बिदाई ली ।

मूरु राजा की पहली रानी को पुत्र हुआ वो भेरिया गारुडी के नाम से पहचाना गया और दूसरी रानी को पुत्र हुआ वो जेसलमेर का राजा बना ।

राजकुंवर भेरिया में बचपन से ही गारुडी के लक्षण थे । उसने गारुडिओं का एक संघ (मंडली) तैयार किया ।

(एक-दूसरे को भेट कर सभी गारुडी बन गये । उनकी महुवर ने सभी राजाओं को मोहित कर दिये ।)

एक दिन जेसलमेर का राजकुमार भेरियो गारुडी अपने संघ (मंडली) को लेकर पच्छमाई के डुंगर के पास आ पहुँचा ।

यह डुंगर पर महायोगी निवास करते थे । यह लखगरु के नाम से जाने जाते थे । लखगुरु ने भेरिया को अपना शिष्य बनाया और गूढ विद्या सिखाई ।

भेरियो अपने गुरु का आशीर्वाद लेकर वहाँ से अपना संघ लेकर निकल पडा और कच्छ की उत्तर में आया हुआ पच्छम बेट (शेषापट्टण बेट के पास) आ पहुँचा । यहाँ आकर भेरिया ने चार

जूथ बनाकर चारों दिशाओं में भेज दिये । एक टोली पच्छम बेट पर रह गई ।

पच्छम बेट पर रानी सगई संगार का वर्चस था । नागजाति के साथ उनको पुराना वैर हो इसी तरह विषयी नाग को देखते ही उसे मार डालती ।

एक दिन सगई संगार ने गारुडिओं का संघ देखा । भेरिया गारुडी की विद्या और उनके चमत्कारों की अद्‌भुत बात उसने सुनी थी । अपनी विद्या भेरिया गारुडी से उत्तम प्रकार की है या नहीं उसकी इम्तहान लेने की इनकी इच्छा हुई । एक दिन सगई संगार के सभी गारुडिओं को बुलाकर उनकी टोपली में से नाग बताने को कहा :

'केआं अचो गारुडिआ
केओ आंजो डे !
सगई पूछे से, नाग
देखाड्यो नांगडा.'

(हे गारुडी जी तुम कहाँ से आते हो ? कौन सा तुम्हारा देस । सगई कहती है कि छोटे-बडे नाग हो ये सब तुम मुझे दिखाओ ।)

गारुडिओं अपनी टोपली लेकर आये । सगई ने अपनी मंत्रविद्या से सभी नाग को गुम कर दिये और टोपली में बुगई के बच्चे रख दिये ।

गारुडिओंने अपनी टोपली बताई तो अंदर से बुगई के बच्चे नीकले । सगई को नाग के बहाने भेरिया गारुडी को देखना था, लेकिन भेरिया नहीं आया था । गुस्से होकर सगई ने गारुडिओं को कैद किये । दो गारुडिओं को अर्धनग्न हालत में भेज दिये ।

दोनों गारुडिओंने आकर अपनी कहानी भेरिया गारुडी को बताई । शिष्यों की बात सुनकर भेरिया को बुहत दु:ख हुआ । भेरिया ने सगई के पास जाकर अपनी विद्या बताकर अपने शिष्यों को रिहा कराने का दृढ संकल्प किया ।

भेरियो गारुडी अपने संघ के साथ झोली-टोपली लेकर सगई संगार के पच्छम बेट के पादर में आये हुए गाँव में पहुँच गया ।

सगई संगार ने अपनी विद्या भेरिया गारुडी पर आजमाई लेकिन भेरिया की विद्या के आगे वो निष्फल रही । राजकुमारी भेरिया पर आफरिन हो गई और अपना दिल दे बैठी ।

भेरिया को बुलाकर उसने विवाह का प्रस्ताव रखा । भेरिया सहमत हुआ तब सगई ने कहा : 'विवाह करने से पहले तुम्हे मेरी एक शर्त माननी पडेगी ।'

रूपसुंदरी सगई पर आफरिन भेरिया बोला : 'एक क्या हजार शर्ते मैं मानूंगा । लेकिन तुम्हारा हाथ ग्रहण किये बिना नहीं जाऊँगा । तुम्हारी शर्ते मुझे बताओ ।'

सगई ने शर्त बताते हुए कहा : 'भेरिया जी । अभी तक मैंने नवसौ नव्वाणु नाग को वश किये हैं । मुझ से मारवाड का नाग वश नहीं हुआ । तुम उनको वश करके बताओ तो मैं तुम्हारी रानी बनूंगी ।'

भेरिया ने आनंद के साथ शर्त मान ली । भेरिया मारवाडी नाग को वश करने के लिये अपने संघ के साथ मारवाड की ओर चल पडा ।

भेरिया घूमता-फिरता मारवाड में आ पहुँचा और नागदेव का स्थान ढूंढ निकाला ।

नाग को भेरिया गारुडी की गंध आने से भाग निकला । भेरिया भी उसके पीछे पीछे भागा ।

नाग अपने प्राण बचाने के लिए अपने गुरु के पास आ पहुँचा । भेरिया और नागदेव एक ही गुरु के शिष्य थे । नागदेव भेरिया की शक्ति (विद्या) को जानता था । उसने गुरुजी को आकर कहा : 'गुरुजी ! भेरिया मुझे परेशान कर रहा है, सगई संगार के साथ विवाह करने हेतु मुझे पकडना चाहता है ।'

नागदेव की बात सुनकर गुरुजी क्रोधित हो गये । उन्होंने कहा : 'समंदर पार करने के बाद भेरिया की शक्ति नष्ट हो जायेगी । और जहाँ उनकी दृष्टि न पहुँच सके ऐसी शरीर की जगह पर दंश देने से जहर की असर जरुर होगी ।'

गुरु की आज्ञा सुनकर नागदेव समंदर की ओर भागा । भेरिया ने भी नाग का पीछा किया । भागते भागते नागदेव ने समंदर पार करके कच्छ में प्रवेश किया । भेरिया भी कच्छ में आ गया । समंदर पार करने से भेरिये की शक्तियाँ क्षीण होने लगी ।

नागदेव ने लकडी का रूप धारण कर लिया और रास्ते के बीच पडा रहा । भेरिया ने सुंदर लकडी पडी हुई देखकर उसको उठा ली और खंभे पे रख दी । खंभे पर रखते ही लकडी नागदेव के रूप में आ गई और भेरिया गारुडी को गरदन के पीछे की ओर डस लिया ।

सर्पदंश पर दृष्टि पडते ही नाग का जहर उतारने वाला भेरिया गारुडी को गरदन के पीछे दंश देने से उनकी नजर वहाँ नहीं पहुँच सकी । भेरिया जहर उतारने के लिये अशक्त बन गया । उनके शरीर में जहर फैल गया और मूर्च्छित होकर गिर पडा । उनको गुरुजी के बचन याद आये । बचने की कोई उम्मीद न रहने से उसने शिष्यों को एकत्रित होने की आज्ञा दी :

'मेरे मृत्यु के बाद मेरे देह का अग्निसंस्कार मत करना । मेरे मांस को पकाकर खाना । जिससे आप सब मेरे जैसे शक्तिशाली और विद्या के पारंगत बन जाओगे ।'

सभी शिष्यों ने इकठ्ठे होकर भेरिया गारुडी का मांस पकाने लगे । इस बात की जानकारी नागदेव को हो गई । नागदेव ने सोचा कि 'भेरिया के शिष्यों को मांस खाते हुए नहीं रोका जाय तो वे सब शक्तिशाली बन जायेंगे और फिर नागजाति का नाश हो जायेगा ।'

इसी डर से नागराज ने ब्राह्मण का वेश लिया : भेरिया के शिष्यों जहाँ मांस पकाते थे वहाँ पहुँचा और कहा : 'गुरु का मांस खाना घोर पाप है ।'

नागदेव (ब्राह्मण) ने शिष्यों को यह बात समझायी । शिष्यों ने भी मांस नहीं खाया और मटके में भरकर समंदर में फैंक दिया ।

मटका समंदर में तैरता तैरता ब्रह्मदेश पहुँचा । वहाँ के कई माछीमारों ने मांस खाया । वो सब भेरिया गारुडी जैसे शक्तिशाली और नागविद्या के जानकार हो गये ।

इसी ओर सगई संगार ने भेरिया गारुडी के मृत्यु की खबर मिलते ही भुजिया डुंगर पर आ पहुँची । वहाँ आकर अपने माने हुए स्वामी भेरिया गारुडी के पीछे सती हो गई ।

यह नागदेव भुजिया नाग के नाम से प्रसिद्ध हो गये । कच्छ में आये हुए भुजिया डुंगर में भुजिया नाग का स्थानक आज भी मौजूद है । वहाँ नागपंचमी के दिन मेला लगता है । इस मेले में दूर दूर से गारुडी आते हैं और सगई संगार एवं भेरिया गारुडी की कथा को याद करते हैं ।

पडियेल हिरलानी गांठ(३) (गुजराती)

संध्या समय समढियाळा (गुजरात) के पादर में एक मारवाडी ऊँट पर सवार होकर दो युवान व्यक्ति शंकर के मंदिर के पास ऊँट को खडा करके मंदिर में शंकर के दर्शनार्थ गई ।

गले में रुद्राक्ष की माला और भाल पर भभूत थी । पुरुष का व्यक्तित्व प्रभावित था और स्त्री का व्यक्तित्व मृदु और शान्त था ! दोनों पिनाकपानी की स्तुति में मग्न हो गये और भगवान शंकर का स्तवन करने लगे । धूप-दीप से वातावरण पवित्र बन गया ।

महाराज ने आसन ग्रहण करके एक सोनामुहर देकर दूध लाने को कहा और साध्वी ने चूल्हा बनाकर दूध गरम करने की तैयारी शुरू की । लोगों ने महाराज को प्रश्न किये :

'कहाँ से आते हो ?'

'दूर से ।'

'कैसे हो ?'

'साधु ।'

'ऊँट तो मारवाडी लगता है ?'

'जी हा ।'

प्रथम परिचय से ही लोगों को विश्वास बैठ गया और दोनों को भोजन का निमंत्रण भी दे दिया । 'रात को भोजन नहीं करते' ऐसा उत्तर देकर दूध की प्रसादी सबको दी ।

साधु ने तंबूर हाथ में लिया और भजन शुरू हुए । संत बेलडी के सूर से सब प्रभावित हो गये और सब के सब डोलने लगे । आधी रात को हाथ जोड कर साधु ने बिनती की तब लोग अपने घर गये ।

सुबह होते ही छोटे-बडे सब कोई संत बेलडी के दर्शन करने आये । हिरागर महाराज और हिरलबाई के प्रेम से समढियाळा गाँव और आसपास के गाँव के लोग प्रभावित हो गये ।

आठ-दस दिनों के बाद साधु महाराज ने गाँव के नागरिकों के सामने हाथ जोडकर बिनती करते हुए कहा : 'हम तो परदेशी लोग है - आपके प्रेम से हम रुके थे अब हमे जाने की इजाजत दिजीये ।'

सब की आँखो में आंसु आ गये और सब कहने लगे : 'बापु अब हम तुम्हारे हो गये हैं । आप जाने की बात मत कीजिये ।'

सब का प्रेम देखकर साधु मौन हो गये ।

अब तो हिरागर बापु की वाणी सुनकर और हिरल माता की भक्ति में सब एकाकार हो गये । गाँव वाले सभी लोग उनके प्रेम से प्रभावित हो गये थे ।

समढियाळा गाँव के सभी लोगों के मुँह में एक ही बात थी - 'जगत के नाथ ने यह परदेशी की जोडी बहुत युक्ति से जुडी है ।' यह साधु बेलडी जहाँ रुके वहाँ की जगह पवित्र हो जाती । रात को भजन - प्रवचन होने लगे हैं । गाँव को सुसंस्कारो से सुवासित कर दिया ।

एक दिन हिरागर बापु ने हर वक्त की तरह गाँव लोगों के समक्ष हाथ जोडकर जाने की बिनती की । 'अब हमको छह छह माह बीत गये, जाने दो । फिर कभी मिलेंगे । खुशी से आज्ञा दो तो अच्छा ।'

साधु हिरागर जब गाँव लोगों से बिनती करते थे उसी वक्त यकायक भगवान को बिनती करते हो ऐसे उनके मुँह से 'राम' शब्द निकल गया । महाराज के मुँह से जोर जोर से 'राम' शब्द निकल ने लगा, जानी कि महाराज समाधिस्थ होने को जा रहे हो । अंत में 'राम' शब्द गूंजता बंद हो गया । उनकी आँखे बंद हो गई । संत शान्त हो गये । कई लोगों ने हिरल माँ को खबर दी कि, 'बापु देव हो गये ।'

हिरलबाई ने सिर हिलाकर 'ना' बोल दी । 'ऐसा नहीं हो सकता । हीर की गांठ कभी खुल नहीं सकती । उसका एक भाग मेरे हाथ में है और दूसरा भाग उनके हाथ में था, तो कहाँ से खुले ।'

सब एक साथ बोल उठे : 'माँ गलत नहीं है । आप वहाँ आकर देखो, खातरी कर लो ।'

हिरलबाई जोर जोर से हँसने लगी और पूछा कि, 'मुझे महाराज ने बुलायी है ?'

लोगों ने कहा, 'अब वे आपको कहाँ से बुलायें ?'

'तो मुझे नहीं आना है ।'

सब एक दूसरे को देखने लगे । और इशारों से कहने लगे कि, साध्वी पागल हो गई है ।

महाराज की अंतिमक्रिया के लिये और समाधि देने की जगह तय करने लगे ।

संत बेलडी ने जो जगह पर ऊँट को रोक दिया था उसी जगह शिवालय के पास समाधि देने का तय किया ।

एक ओर गाँव के लोग व्याकुल और दुःखी थे तब हिरलबाई शान्त और स्वस्थ बैठी थी ।

जब पालखी में बिठाकर समाधि स्थल पर साधु के शब को ले गये तब सब की आँखों में आंसु थे लेकिन हिरलबाई अकेली ही जैसे कुछ नहीं हुआ हो ऐसे बैठी थी ।

एक आदमी ने जाकर हिरलबाई को कहा कि, 'अब तुम्हारे पति का देह समाधि में लीन हो जायेगा और जमीं में ढंक दिया जायेगा । तुम को अंतिम बार इनका मुँह देखना हो तो चलो ।'

हिरलबाई खडी होकर हाथ में मंजीरा लेकर चली । उनकी चाल में बिलकुल गभराहट या शोक नहीं था । वह स्वस्थ चली जाती थी ।

साधु की समाधि के पास आकर हिरागर महाराज के शब को हिरलबाई देख रही और धीरे से बोली, 'बावाजी । अकेले क्यों चल पडे ? हम दोनों के बीच क्या बात हुई थी ?'

'प्रेम के तंतु से बंधे हुए आप गांठ को खोले बिना तोडने में बहुत उस्ताद नीकले, लो रखो अब ।'

लेकिन उत्तर कौन दे ? हिरागर तो वहाँ थे भी नहीं । सिर्फ उनका शब था ।

गाँव के लोगों की आँखो से अश्रु प्रवाह से समाधि गीली हो गई थी ।

हिरलमाँ ने ताना मारने का शुरू कर दिया : 'महाराज, तुम तो मेरे लिए संन्यासी बनने को नीकल पडे थे । लोगों ने अपने प्रेम के बीच दिवारें खडी कर दी थी । मैंने तुमको कहा था कि, तुमको जो भगवा रंग लगाना हो तो मेरे लहू से रंगो, और शरीर पर भस्म लगाने का शोख हो तो मेरी भस्म लगा लो । महाराज तुम मेरी नगरी छोडकर कहाँ चले गये ? महाराज तुमने ही स्मशान में वास किया । तुम्हारे जैसे बावाओं का वास तो स्मशान में ही हो सकता है न !'

'और आज तुम अकेले चल पडे ! मैं तुम्हारे पीछे साध्वी बनी, मेरा मारवाड मैंने छोड दिया । देखो ये ऊँट हमको इस गाँव में ले आया और अब तुमने दोस्ती तोड दी !'

ऊँट ने दंपति के सामने देखा । लोगों की अश्रु भीनी आँखें ऊँट की ओर टीकी ।

ऊँट ने अपना मुँह मारवाड की ओर किया और साध्वी ने साद दिया : 'महाराज ।' लेकिन उत्तर नहीं मिला ।

तीसरी बार हिरलबाई का आवाज कठोर बना । वो जोर से बोल उठी : 'बावा, कहाँ चला ! अकेला अकेला ! अरे ऐसे भागकर कहाँ जायेगा मेरे स्वामी ।'

ऐसा कहते हुए सती के मुख से - 'हिरा' शब्द निकल पडा । 'र' और 'रा' एक हो गये । हिरलबाई के मुख से हिरागर और राम सब एकाकार को गया ।

हिरा.... शब्द के 'रा' शब्द के साथ ही उनका प्राण निकल गया । महाराज के आत्मा के साथ ओतप्रोत हो गया । 'हिरनी गांठे' बंधा गया ।

यह मारवाडी संत बेलडी के दिव्य प्रेम की याद में आज चारसो से ज्यादा वर्ष हो गये फिर भी समढियाळा गाँव में लोग दूर दूर से उनकी समाधि पर फूल चढाने आते हैं ।

ढोला - मारु(४) (गुजराती)

मारवाड की कन्या मारवणी (मारु) का बचपन के स्नेह का पुष्प खील रहा है । अपने हृदय कमल में स्थित ढोला एक रात मारु को स्वप्न में आता है ।

इतने में एक पक्षी की चहचहाहट से मारवणी की नींद तूट जाती है और ढोला के विचारों में खो जाती है । मारु ढोला के आगमन की राह देखकर अटारी (अगाशी) में व्याकुल होकर घूम रही है । इसी वक्त उनकी सहेलियाँ कहती है, ''आधी रात में क्यों घूम रही है । हमारे भी स्वामी है लेकिन तूं तो बहुत स्वामी घेली हो गई है ।'' फिर सहेलियाँ ने कहा, 'अरे पगली, तूं ने तो अपने स्वामी को देखा ही नहीं फिर इतना स्नेह क्यों ?'

तब मारवणी कहती है, 'माँ के स्तन में अमृत जैसा दूध भरा होता है लेकिन बालक यह दूध को कभी देखता नहीं है फिर भी माँ का दूध पीता है । मैंने भी अपने प्रियतम ढोला को नहीं देखा फिर भी मेरे मन मंदिर में ढोला बचपन से ही आसन जमा कर बैठ गया है । वो मुझे भर पेट खाना भी नहीं खाने देता और चेन से सोने ही नहीं देता । मेरा मन उनके पास ही रहता है ।'

इतने में चंपा के वृक्ष पर बैठा हुआ बपैया (एक पक्षी) बोल रहा : 'पियाव... पियाव...।' (पक्षी की बोली)

बपैया के टहुकार सुनकर मारवणी कहने लगी : 'ओ नीली पंख वाले बपैया । बर्षा ऋतु (बारिस की मौसम) में 'पियुआव' 'पियुआव' ऐसा कह कर तूं क्यों मेरा कलेजा काट रहा है । पियु तो मेरा है । मेरे पियु का नाम लेनेवाला तूं कौन है ? अब जो फिर बोलेगा तो मैं तेरी चाँच काट डालूँगी ।'

सुबह मोर खजूरी की डाल पर बैठा बैठा 'मेआव..... मेआव.....' करता हुआ मधुर टहुकार करता है तब मारवणी मोर के सामने अपना हृदय खोलकर अंतर की बात कहती है :

'मत तूं बोल मोरला,
ऊडी मत बेस खजूर :
तारे जळथाळ ढूंकडो
मारो वालम दूर.'

[(रोया) मोरला तूं खजूरी के वृक्ष पर बैठकर क्यों टहुका कर रहा है ? तूझे तो जल का स्थल नजदीक है, अभी बारिस आयेगी । लेकिन मेरा प्रियतम तो दूर -देशावर है । तेरी आवाज (टहुका) मेरे प्रियतम की याद को बहुत गहरी बनाता है । अब तूं बोलने का बंद कर ।]

यह सुनकर मोर उत्तर देता है :

'असां गिरिवरा मोरला,
कांकर पेटभरां;
मारी ऋतु आये न बोलसां
तो हैयाफाट मरां.'

(अरेरे मारवणी ! मैं तो पर्वतों में बसनेवाला तुच्छ मोरला हूँ । पृथ्वी (धरती) पर से कंकर खोजकर पेट भरता हूँ । बारिस (वर्षा) तो मेरी प्रिय ऋतु है । यह मौसम में जो मैं हृदय खुला न कर सकुं तो मेरा हृदय तूट जायेगा और मैं बिना मौत (कमोत) मर जाऊंगा ।)

विरह से व्याकुल मारवणी अपनी सहेली को कहती है : 'अली, यह मोर और बपैया की आवाज नहीं है । मुझे तो उसमें कामदेव के नगाडे की आवाज सुनाई देती है । बीजली के रूप में तलवारें चमकती दिखाई देती हैं । यह ऋतु (मौसम) में मैं स्वामी (प्रियतम) के बिना अकेली हो गई हूँ.... हे देव । मैं दुःखी हूँ । मैं मरी हुई को क्यों मार रहे हो ?'

मारवणी की सहेली मारवणी का मन हलका करने के लिए सरोवर के किनारे ले गई । सरोवर में (कुंजडियाँ) पक्षियों के जूथ खेलते हुए उछल-कूद कर रहे थे । यह पक्षिओं के वृंद के सामने मारवणी कहने लगी :

'कुंजो द्यो ने पांखलडी,
मागुं तमारो वेश,
सागर ओळंगी स्वामीने मळुं,
पछी तमने पाछी दे'श.'

'अरे (कुंजडियों) पक्षिओं । आप मुझे अपनी पंख दो । मेरा प्रियतम जहाँ रहता है वहाँ बडे बडे पर्वत है, बडे बडे समुद्र भरे पडे हैं । एक बार प्रियतम का मुँह देखकर वापस लौट जाऊँगी और आपकी पँखे आपको वापस लौटा दूँगी ।'

तब पक्षियाँ (कुंजों) कहने लगी : 'अरे पगली ! हमारी पक्षी की पंखों तुझे क्या काम में आयेगी ? दूसरों की पंखों से भला कैसे उड सकते हैं । हम तो पानी के साथ महोब्बत करने वाले हैं । जल भरा हुआ सरोवर देखें तो रुक जाते हैं और सूखा सरोवर देखें तो दूसरी जगह पर चलें जाते हैं ।'

मारवणी कहती है : 'पक्षियों (कुंजों) ! तुम मुझे पंखों न दो तो फिर तुम (उगमणी-आथमणी) पूरब और पश्चिम दिशा में जाते हो तो दक्षिण दिशा में नहीं जाओगे ? यदि दक्षिण दिशा की ओर जाओ तो मेरे प्रियतम ढोला के लिए यह संदेश ले जाना' :

'पंखी एक संदेशडो,
ढोला लग लै जाव,
जोबन कळीयुं मोरियुं,
भमर बैठो न आंय.....!'

('हे पक्षी ! जाकर मेरे ढोला को इतना कहना कि मेरी जोबन फूल की कली खील उठी है । तूं भ्रमर बनकर उनके पर आकर क्यों नहीं बैठता ?')

'पंखी एक संदेशडो,
ढोला लग लै जाव
जोबन हस्ती जागियो,
अंकुश लई घेर आव.'

('हे पंखी ! तुम ढोला के पास जाकर कहना कि, मारु का जोबन रूपी हाथी अब मदोन्मत बन गया है । तूं महावत बनकर अंकुश लेकर जल्दी से घर आ जा ।')

पक्षियों के साथ संदेश भेजकर मारवणी अपने महल में वापस लौटती है तब प्रियजन के आने का संकेत हो इसी तरह कौआ बोलता है । कौआ की आवाज सुनकर मारवणी कहती है :

'कगवा दऊं वधाइयाँ
प्रितम मिलव मुज,
काढी कलेजो अपना
भोजन दऊँगी तुज...'

('हे कौआ । जो तूं आज मेरे प्रियतम का मिलन करा देगा तो मैं तुझे मेरे कलेजा का मांस खाने दूंगी अर्थात् मेरा सर्वस्व तुझे दे दूंगी । अरे कौआ ! कलेजा ही क्यूं ? मेरी अणियाळी आंखे भी तेरे भोजन के लिए निकाल दूंगी, लेकिन एक शर्त पर :')

'कागा नयन निकाल दूं,
पियु पास ले जाव,
पहले दरस दिखाय के
पीछुं लीजो खाय.'

★★★

ढोला-मारु की गुजराती में दूसरी भी एक लोक -कथा है यह भी देखिए : राजस्थान में आये हुए पुगलनगर में पिंगळराव और नरवरनगर में नळराजा की बहुत ख्याति थी । पुगलदेश में एक बार अकाल पडा । भूख से प्रजा हार बैठी ।

'आकरा दिन आविया,
काळे खोल्युं मुख कराळ,
धरतीमांथी नीर चळ्यां,
मावतरे छांड्यां बाळ.
शियळ वेचे नारीयुं,
पिता बेचे बाळ,
भाई भाई जुदा पडे,
वर्त्यो हाहाकार.'

अकाल के वक्त सहाय के लिए पिंगळ राजा परिवार के साथ नरवरनगर में पहुँचे । नळराजा ने उनका योग्य सम्मान किया । और दोनों राजाओं के हृदय हेत-प्रित से जुड गये । पिंगळ राजा को मारवणी नामक सुंदर कन्या थी और नळ राजा को ढोला नामक सुंदर पुत्र था ।

पिंगळ राजा की राणी के हृदय में राजकुमार ढोला बस जाता है और पिंगळ राजा को समझाकर अपनी लाडली बेटी मारवणी का ब्याह ढोला के साथ कर दिया । उसी वक्त ढोला की उम्र तीन साल और मारु की उम्र देढ साल की थी । ढोला और मारु साथ खेलते थे । दोनों को साथ खेलते हुए राजा-राणी आनंदित होते थे । अच्छी बारिश होने से - वर्ष अच्छा होने से पिंगळ राजा अपने परिवार के साथ पुगलनगर वापस लौट गये । उनके साथ अपनी छोटी सी बेटी मारवणी भी चली गई । ढोला उनको देखता रहा । उनको बीस साल हो गये ।

नळ राजा ने अपने युवा पुत्र ढोला का मालवणी नामक कन्या के साथ ब्याह करा दिया । बचपन में मारवणी के साथ किये गये ब्याह की बात ढोला को नहीं की । नये नये ब्याही मालवणी और ढोलो मोज-मस्ती में रहने लगे ।

दूसरी ओर मारवणी भर-जोबन में विरह से व्याकुल होने लगी । प्रियतम की याद में तडपने लगी । मारवणी की सहियर ने यह बात पिंगळराजा को की । पिंगळ राजा ने ढोला के समाचार पाने के लिए उनको बुलाने के लिए कई दूत भेजे ।

ढोला की नई पत्नी मालवणी बडी चतुर थी । उसको इस बात की खबर हो गई थी । घर में शोक्य (अपने जी ते जी पति की दूसरी पत्नी) के कारण उनका हृदय जल रहा था - वो बहुत दुःखी थी । इसलिए उसने पुगलनगर के रास्ते में अपने सागरितों को बिठा दिये और जो कोई आता उसकी कत्ल कर दी जाती । इसलिए एक भी आदमी नरवरनगर पहुँच नहीं पाया ।

एक दिन नरवरगढ का रहनेवाला घोडे का एक सौदागर अपना घोडा बेचने के लिए पुगलनगर में आ पहुँचा । उनकी खबर मिलते ही पिंगळराजा ने सौदागर को महल में बुलाया गया । तब सौदागर ने कहा कि ढोला अभी जीवित हैं, ब्याह भी किया है लेकिन उनको सच्चा संसार सुख नहीं मिला ।

पिंगळराजा ने राजपुरोहितों को बुलाया और नरवरगढ जाकर ढोला को सभी बात बताने का हुक्म किया । तब राणी ने कहा, 'राजाजी ! कुल पुरोहित को मत भेजो । कोई भी दूत अभी तक वापस नहीं लौटा है । कुल पुरोहित को भेजकर हमको ब्रह्महत्या का पाप नहीं करना है । उस के लिए ढाढी लोगों को भेज दिया जाय । इससे किसी को शंका भी नहीं होगी और ढोला को संदेश पहुँच जायेगा । ढाढी लोग संगीत से खुश करके ढोला को यहाँ ले आयेंगे ।'

राणी की बात सुनकर राजा ने ढाढिओं को नरवरगढ भेजे । उसी वक्त मारवणी ने एक ढाढी के साथ अपनी व्यथा भरा संदेश भेज दिया ।

नरवरगढ पहुँच कर रात को ढाढिओं ने रावणहथ्था पर मारु का प्रेम संदेश सुनाया गया :

'ढाढी, एक संदेशडो,
ढोलाने कही आव,
मारु बळी कोलसो थई
भसम ढूंढने को आव.'

('हे ढाढी ! तुम जाकर ढोला को संदेश देना कि तुम्हारी प्रियतमा मारु तुम्हारे विरह में जलकर कोयला हो गई है । अब इस कोयले की राख को ढूंढने को तो आओ ।')

'ढाढी, एक संदेशडो
ढोला लग ले जाव,
जोबन फाटी तळावडी
पाळ बांधन कुं आव.'

('हे ढाढी ! तुम जाकर ढोला को कहना कि, मेरे यौवन रूपी तालाब की पाल तूट गई है । तूं उनकी पाल बांधने को आओ ।')

'ढोला, तूं थी ढोर भलां,
चरे जंगल रो घास,
दन ऊगी दन आथमे,
करे घरारी आश.'

('हे ढोला । तुझ से तो पशु अच्छे नहीं ? जंगल में जाकर सारा दिन घास खाते हैं, फिर भी शाम को घर आ जाते हैं । उनको भी अपने बच्चे याद आते हैं ।')

'फागण मासि वसंतऋतु,
आय ऊ जई न सणेसि,
आचरी कई मिस खेलती
होली झंपावेसि.'

('हे प्रियतम । वसंतऋतु के फागुन मास में तूं आया है ऐसा नहीं सूनुंगी तो चर्चरी नृत्य करती हुई होली की ज्वालाओं में मेरे शरीर को जला दूंगी ।')

'राती ज सुनी निसह भरी,
सुणी महाजनी लोई;
हाथाली छालां पड्यां,
चीर निचोई निचोई.'

('कल रात प्रियतम की याद में बहुत रोई । बहुत निःसासा डाला । मेरा रोना गुरुजनों ने भी सुना । अखियों से बरसते आँसु के कारण भीगा हुआ ओढणी के पल्लु को निचोड निचोड कर मेरे हाथों में छाले पड गये ।')

'ढोला मलिसि म,
बिआरिसी नवी आविसिना,
लेसि मारु तणाई
करंकडई वापस उडावेसि.'

('हे ढोला ! तूं आता नहीं है, याद करता नहीं है, मुझे यहाँ से ले जाता भी नहीं है । ऐसी

स्थिति में तुम्हारी प्रियतमा अब ज्यादा वक्त जी नहीं सकेगी । और जब तूं आयेगा तब मेरे अस्थिपिंजर (हाडपिंजर) पर उडनेवाले कौआ के सिवा तुझे दूसरा कुछ नहीं मिलेगा ।')

ढाढिओं ने मारु का संदेश सुनाया । ढोला सारी रात जागता रहा और मारवणी का संदेश सुनता रहा । उनके हृदय में मारवणी की बचपन की प्रीत याद आ गई ।

सुबह होते ही ढोला ने ढाढिओं को अपने महल में बुलाया और ढाढिओं के पास से सभी हकीकत सुनी ।

ढाढिओं ने रसपूर्वक मारु की मन:स्थिति का बयान किया : 'कुमुदिनी जल में बसती है फिर भी आकाश के चंद्र को प्रणय करती है । उनके हृदय में जो बसता है वह सदा उनके पास रहता है । तुमको स्वप्न में देखने के लिए मारु मिलन की आश में जी रही है और विरह के अधबुझे अंगारे पर अपनी इच्छाओं को जला रही है ।'

यह सुनकर ढोला बोल उठा : 'मैंने तो उनको बचपन में ही भांखुडिये भरती हई देखी थी । मेरी मारु अब तो बहुत बडी हो गई होगी । मारु के रूपरंग का तो वर्णन करो । मैं वहाँ जाऊँ तो मारु को मैं कैसे पिछाण सकुं ?'

ढाढिओं ने उत्तर दिया :

'मारु ऐसी पातळी,
खोबो धान न खाय;
उछाळी आभे अडे,
संकेली नखमां समाय'

('मारु बेचारी कुछ खाती ही नहीं । साग की लकडी की तरह पतली हो गई है । उनको पकडकर उछालो तो आकाश को छू कर वापस आ जाय इतनी पतली है । और सुकड जाय तो नाखून में भी समा जाय इतनी नाजुक है ।')

ढोला ने कहा : 'जुवान होने से जोबन भी तो खीला होगा न ?'

ढाढिओं ने मारु के रूप को लेकर कहा :

'चंदन री मारु घडी,
(तेनो) छोडो रहियो पास;
(ते) छोडारो चांदो घड्यो,
चोड्यो लई आकाश.'

('सर्जनहार ने पहले तो चंदन की लकडी से मारु को बनाया बाद में जो टुकडे बचे उसमें से चंद्र को बनाया और उनको आकाश में जड दिया ।')

'पिंगळहुंडी पदमणी,
गोखेथी काढे गात्र,
देवी संघा मन डगे
तो मानव के' तो मात्र ?'

('पिंगळ राजा की पदमणी जैसी कन्या मारु जब जरुखे में दिखाई देती है तब देवों का भी हृदय हिल जाते हैं तो मानवी की क्या विसात ?')

'चंदो चंदाने घेर गयो,
वणचंदे अ'जवास,
मारु उघाडे कंचवे,
जाणे घोडाने नीरे घास.'

('चंद्र का अस्त हो गया फिर भी ये उजास कैसा ? क्योंकि मारु खूले शरीर अपने घोडाओं को घास दे रही है उसका उजास है ।')

यह सुनकर ढोला का हृदय काँप रहा । ढोला का मन मारु को मिलने आतुर हो गया, और महल में घूमने लगा तब मालवणी ने पूछा :

'स्वामी अणोदरा का थया,
नखे कां खोतरो भींत,
अमथी भलेरी गोरियां
कोई चडी तमारे चित्त ?'

('स्वामी ! आज तुम क्यों अस्वस्थ लगते हो ? और नाखून से दिवाल को कोचते हो ? या कोई दूसरी स्त्री अपने मनमंदिर में बस गई है उसकी अस्वस्थता तो नहीं है ?')

मालवणी के बहुत पूछने के बाद ढोला ने अपनी प्रियतमा मारु को ले आने की बात की । यह बात सुनकर मालवणी नाराज होकर एक कमरे में जाकर सो गई ।

'ढोलो हालु हालु करे,
धण हालण नव देह;
झब झब झुंबे पाघडे,
टम टम नीर भरेह.'

('ढोला बारबार जाने को कहता है लेकिन मालवणी उनको जाने नहीं देती, ढोला ऊँट पर सवार होता है तब मालवणी रोती है ।')

'ढोलो बांधे धोतिया,
मालवण धान न खाय,
खोडो था ने के हलिया
ढोलो गाम न जाय.'

('मारवणी के देश जाने के लिए ढोलो धोतिया (पघडी) बाँध रहा है तब मालवणी को खाना भी पसंद नहीं है । मालवणी ऊँट को कहती है : 'हे ऊँट तूं लंगडा हो जा, तो मेरा ढोला मारवणी के देश न पहुँचे ।')

तब ऊँट कहता है :

'खोडो था तो डभ खां,
बांधो भूख मरां,
जाऊं ढोलारे सासरे,
हरिया मुंग चरां.'

('मैं लंगडा हो जाऊँ तो गरम लोहे के डाम खाने पडे और चल भी न पाऊँ । उससे तो बेहतर है कि ढोला की सासर में जाऊँ और वहाँ हरे हरे मुंग का चारा (घास) तो मिले ।')

ऊँट की बात सुनकर मालवणी कहने लगी :

'डांभु झीणे डाभडे,
तांतां सींचुं तेल,
बांधुं ऊँडा भोंयरे
नीरु नागरवेल.'

('वीरा ऊँट । तूं लंगडा हो जायेगा और ढोला तुझे डाम देने को कहेगा तो मैं बारीक सूई से डाम दूँगी (गरम लोहे का नहि) और मैं तेल की मालिस करुंगी । कोई तुझे देख न पाये इसलिए मैं तुझे भोंयरे में बंद कर दूंगी और खाने को हररोज हरी हरी नागरवेल चारे में दूंगी लेकिन तूं लंगडा हो जा ।')

लेकिन ये ऊँट ऐसे नहि मानेगा ऐसा सोचकर मालवणी ने गरम लोहे के डाम दे दिये । और फिर बोली : 'अब तूं कैसे जाता है ढोला के सासर वो मैं भी देखती हूँ ।'

लेकिन ढोला आधी रात को ऊँट पर सवार होकर मारवणी के देश की ओर निकल पडा । मालवणी ने जब पलंग पर ढोला को नहीं देखा तो अपने पोपट को ढोला को ढूंढ ने भेज दिया । सुबह होते हुए चंदेरी और बूंदी के बीच तालाब के किनारे जब ढोलाजी को दातून करते हुए पोपट ने देखा तो कहा कि, 'ढोलाजी । ढोलाजी । वापस चलो । मालवणी आपके विरह में सिर पटककर मर रही हैं ।'

ढोला पोपट की चाल समझ गया और बोला कि, 'तूं वापस जा । और मालवणी मर गई हो तो चंदन और अत्तर की लकडियाँ ला कर अग्निसंस्कार कर देना ।'

ढोला आगे बढता है । ऊँट चल नहीं रहा तब ढोला कहता है :

'देव पहोंच्यो डुंगरे,
हरण्युं पहोंची हालार,
फट लाखेणा के हलिया,
मने राख्यो रणमोजार.'

('सूर्य अस्ताचल में हैं । हरणी नक्षत्र हालार की ओर चला गया । मारु को मिलने की मेरी प्रतिज्ञा आज पूरी नहीं हो पायेगी । हे ऊँट आज तूझे धिक्कार है । तूने मुझे रण के बीच रख दिया ।')

स्वामी (ढोला) के हृदय को समझ गया हो ऐसे ऊँट जवाब देता है :

'भीडो लेने गातडी,
ताणी लेने तंग,
काढ तूं पगनी कांकरी,
पोगाडुं मारु पलंग.'

('हे ढोला । तेरी कमर की पछेडी को मजबूत बांध ले, मेरे पर बांधे हुए काठे को तूं मजबूत बांध दे । मेरे बाये पाँव में कंकर धूस गया है वो निकाल दे । फिर देख ले । मैं आज ही रात में तूझे मारु के पलंग तक पहुँचा दूंगा ।')

और उसी रात ऊँट ने ढोला को पुगलनगर पहुँचा दिया । पुगलनगर में उत्सव मनाया गया । मारवण के हृदय में आनंद-आनंद हो गया । उनके हृदय में (हरख) आनंद समाता ही नहीं । पंद्रह दिन के बाद ढोला मारु को लेकर नरवरगढ जाने को निकला ।

दुष्ट उमर सुमरा को खबर मिलते ही उसने षड्यंत्र रचा । ढोला को अपने घर आमंत्रित किया । मेहमान बनाया और नशे की रंगत जम गई । इतने में एक गायिका (डूमणी) ने मारु को षड्यंत्र की जानकारी दे दी कि ढोला की हत्या करने ये दुष्ट उमर आपको उठा ले जाना चाहता है ।

चतुर मारवणी समझ गई । मारवणी ने ऊँट को भडकाया । ऊँट खडा हो गया और दौडा । ढोला ऊँट को पकडने दौडा । मारवणी ने इशारे में ढोला को समझा दिया । और दोनों (ढोला-मारवणी) ऊँट पर सवार होकर भाग नीकले ।

ढोला और मारु संकटों से बचकर नरवरगढ पहुँच गये ।

'मांडव छायो मोतीए,
तारे ढाई भात;
ढोलो ने मारु परणियाँ,
धन्य आजुनी रात.'

('मोतियों के सिंगार से विवाह मंडप रचा गया है, आकाश (आभ) में तारों की भात (डिझाईन) छाई गई है । ढोला और मारु ने विवाह कर लिया हैं । और आज की रात धन्य बन गई है ।')

'कड्य कटारा वंकडा,
माथे मशरु मोड,
ढोलो राते लूगडे,
मारु नेणांचोर.'

('ढोला की कमर में कटारी शोभती है, सिर पर पघडी बाँधी है, ढोला लाल वस्त्रों में सुहाना लग रहा है । मारु (शर्म की मारी) अपने नयन को छूपा रही है, तब बहुत सुंदर दिख रही हैं ।')

आज मारु की सुहागरात थी । मारु गंगा स्नान करके पवित्र हो गई ।

'मारु नाही गंगाजळ,
ऊभी कोश सुकाय,
चंदन केरे रूखडे,
नाग झपेटा खाय.'

('मारु गंगाजल से नहाकर पवित्र हो जाती है और अपने बाल को सूखाने के लिए खडी है तब उसके मस्तक पर झुलते हुए केश चंदन वृक्ष पर नाग लटक रहा हो ऐसा दिखाई देता है ।')

ग्रीष्म ऋतु की चांदनी रात है । राजमहल के झरुखे (अगाशी) में पलंग बिछाया गया है । प्रियतम ढोला की राह देखती हुई मारु पलंग में सो रही है :

'मारु सूती अटारिये,
रतडो पलंग बिछाय,
तारा तरवरियुं करे,
चंद रियो ललचाय.'

('झरुखे (अटारी) में लाल (राता) रंग का ढोलिया (पलंग) बिछाया गया है । मारु उसमें सो रही है । उसे देखकर आकाश के तारले मारवणी को मिलने के लिए टमक टमक चमक रहे हैं । मारवणी का रूप देखकर चंद्र भी (मारवणी को मिलने की अपनी लालच रोक नहीं पाता) लुभा रहा है ।')

विरह में झूरते हुए दो प्रेमीओं ढोला और मारु का मिलन हो गया । यह रात भी धन्य हो गई :

'नवा मो'ल ने धण्य नवी,
नवी जवानी नेह,
ठाकर धेर पधारिया,
मोती वरस्या मेह.'

('नया राजमहल, नई परणेतर (पत्नी), नई जुवानी और नया स्नेह-प्रेम और स्वामी (पति) घर आये तब तो आनंद रूपी (मेह-वरसाद) बारिस हो रही ।')

शेणी-विजाणंद[५] (गुजराती)

गिरनार के डुंगरों में एक बालक बचपन से ही अनाथ था । उसका पालनपोषण करने वाला, देखभाल रखने वाला कोई नहीं था । उसके माता-पिता कौन है किसीको पता नहीं था । बडे होते ही वह लडका गाँव की भेंस-पशु चराता था और अपना गुजारा कर लेता था । उसने तूंबडे और बांस से एक बिन (जंतर नाम का वाजिंत्र) बनाया । उस जंतर को बजाकर सारा दिन पसार कर लेता । जंतर पर उनके हाथ की ऊँगलिया ऐसे फिरने लगी और उसको छत्तीस राग-रागिणीयाँ हस्तगत हो गई ।

जंतर मोटे तूंबडे बत्रीसे गमे,
छत्रीस लवण रमे, विजाणंद ने टेरवे ।

गिरनार से नजदीक आये हुए गोरवियाळी गाँव वो भेंस चराने को जाता था । जब पहली बार वो भेंस चराने आया तो गाँव के पादर में आये हुए कुएँ के पास जाकर पनिहारी को कहा : 'पानी पिलाओगी ?'

दो पनिहारी में से एक कँवारी थी । उसने दूसरी को कहा, 'बहन तूं उसको पानी पिला । मैं तो उसके गंदे और कुरूप देखकर मर जाऊँगी ।' और चली गई ।

दूसरी पनिहारी के हाथ से पानी पीकर विजाणंद गाँव में जाता है । गाँव में वेदो गोरवियाळो (वेदो चारण) के घर जाता है । वेदा चारण बालक को मान-सम्मान देकर भोजन कराता है । भोजन परोसने एक कन्या आती है । वो कन्या दूसरी कोई नहीं लेकिन कुएँ से पानी नहीं पिलाने वाली और कुरूप-गंदा-गोबरा कहने वाली शेणी थी ।

शीतल रात को विजाणंद ने जंतर बजाना शुरू किया । उसको सुनने वाले सब कोई मंत्रमुग्ध हो गये । लेकिन इस वेदना के सूर में वेदा चारण के घर से एक निःश्वास नीकल गया ।

'जंतर झाल्युं हाथ, भांचळिये भांगती रात्यनुं
साथ ले संगाथ, वाढेल सढ विजाणंदे ।'

वेदा चारण विजाणंद पर खुश हो जाता है और कहता है कि, भानजा । तुझे जो कुछ चाहिए वो माँग ले मैं तेरे पर आज प्रसन्न हो गया हूँ । तब विजाणंद शेणी का हाथ माँगता है ।

वेदा चारण का मुँह निस्तेज हो जाता है । विजाणंद जैसे भटकते रखडु-कुरूप को मेरी रूपवंती शेणी कैसे दे सकता हूँ । उसके पास कुछ है ही नहीं । तो दूसरा कुछ माँगने को कहता है । लेकिन विजाणंद को कुछ नहीं चाहिए ऐसा कहकर जंतर लेकर चल पडता है ।

गाँव के पादर से विजाणंद को वापस बुलाया जाता है । और वेदा चारण कहता है कि, 'भले विजाणंद । शेणी का हाथ चाहिए तो एक वर्ष में एकसौ ने एक नवचंदरी भेंस लेकर आना और शेणी को विवाह करके ले जाना ।'

विजाणंद वेदा चारण की शर्त कबूल करके चला जाता है ।

विरह से व्यग्र शेणी पशु-पक्षी सब को संदेश भेजती है :

विजाणंद हाली नीकळ्यो, पोठीडा पलाणे,
डाबे थाने गणेश, विजाणंद पाछो वळे ।

विरही शेणी जंगल के तेतर पंछी को बिनती करती हुई कहती है कि, तूं मेरे पीयु की बायीं ओर से निकलना जिससे अपशुकन समझकर वापस घर लौटे ।

हरणा तारी डोकमां, घडावुं घूघरमाळ,
सोने मढावुं शींगडी, विजाणंद पाछो वळय ।

'हे हरण जो तूं विजाणंद की बायीं ओर से निकल कर उनको अपशुकन देगा तो मैं तुम्हारे गले में घूघरमाळ पहनाऊँगी, तेर शिंग सोने से मढाऊँगी ।'

विजाणंद नवचंदरी भेंस इकठ्ठी करने के लिए गाँव गाँव भटकता फिरता है । वेदा चारण ने दी हुई समयावधि पूर्ण होने को है । शेणी की यौवन कलियाँ खील ऊठी है । उनका मन विजाणंद को मिलने को तलस रहा है ।

'खेतर पाक्युं कण झरे, मन बेठुं माळे,
वळय वेलो विजाणंदा, (मने) रोझडां रंजाडे ।'

('हे विजाणंद, मेरा जीवन खेत पक गया है । यौवन रूपी दाने गिर जाते हैं । मेरा हृदय तेरे नाम की माला जपता बैठा है । अब तूं वापस लौट जा । क्योंकि चारण उम्मीदवार (परणने वाले उम्मीदवार) रोझडां (नील गाय) मेरे जीवन - खेत को परेशान कर रहे हैं - विवाह करने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं ।')

'खेतर पाक्युं पोंक थियो, मन बेठुं माळे,
अधवच मेल्यां एकलां, हाल्य हैडा हेमाळे ।'

('जीवन का खेत पक गया है । यौवन रूपी पोंक (लीला दाणा) पका कर खाने के लिए तैयार हो गये हैं । मेरा मन माळा पर बैठ कर (खेत में सोने के लिए बनाया हुए माला) राह देख रहा है । विजाणंद ने मुझे अधबीच छोड दी । इसलिए हे हृदय चल हिमालय गलने के लिए ।') (ठंड में पीघलकर मर जाने के लिए)

आज विजाणंद को आने का अंतिम दिन है । आषाढ महिने की शुरुआत हो गई है । जगत (पृथ्वी) पर वर्षा का आगमन हो गया है ।

'वरस वळयां वादळ वळयां, धरती नीलाणी,
(पण) एक विजाणंद ने कारणे, शेणी सुकाणी ।'

('वर्ष आ गया । बादल भी एक साल के बाद वापस लौटे । पृथ्वी भी बारिस से हरी हरी होकर प्रफुल्लित हो गई । सभीने मिलन का सुख पाया लेकिन एक शेणी ही विजाणंद के कारण सूख रही है विरह की वेदना में जल रही है ।')

विजाणंद के वियोग में शेणी ओझत नदी को कहती है :

'चड टींबा चड टींबडी, चड गुंदाळी धार,
ओझत, उछाळो लई, विजाणंद पाछो वाळ ।'

('बहन ओझत, तूं ऊँची ऊँची पर्वत टेकरियाँ चडनेवाली है । तूं विजाणंद को कहीं देखती होंगी । तूं ऐसी उछल और विजाणंद का मार्ग रोक दे और उसको वापस लौटा ।')

अंतिम दिन की रात हो गई फिर भी विजाणंद नहीं आया इसलिए शेणी का पिता वेदा चारण बहुत खुश है । इसलिए शेणी को लापसी बनाने को कहता है ।

लापसी बनाकर शेणी अपने पिता वेदा चारण को खिलाती है और सुबह उठकर अपने पिता को हाथ जोडकर हिमाळे गळ्वा (हिमालय में जाने के लिए) बिनती करती है । और कहती है कि :

'विजाणंदनी वरमाळ, बीजानी बांधु नहि,
चारण होय लख चार, (एने) बांधव कही बोलावीए ।'

उसी दिन वेदा चारण को पता चलता है कि शेणी तो विजाणंद के नाम की ही माला रटती है ।

अठारह साल की शेणी चली जाती है । कई गाँव-प्रदेश की सीमाएँ पार करती है और अपने पीयु विजाणंद के वियोग में कहती है :

'मारग कांठे मढी करुं, लऊँ जोगणना वेश,
गोतूं देशविदेश, (कोई) वावड द्यो, विजाणंदना ।'

('रास्ते की धार पर मैं एक मढूली (झोंपडी) बाँधकर जोगन का वेश लेकर बैठ जाऊँगी । दशोदेश (दशे दिशाओं में) मैं विजाणंद की खोज करुंगी । कोई मुझे विजाणंद का संदेश (समाचार) दो ।')

शेणी व्याकुल होकर विजाणंद को ढूंढने चली जाती है, ओर लोगों को कहती है :

'(कोई) जंतरवाळो जुवान, भालमां भूलो पड्यो,
(हुं) सगडे पाडुं साद, (मने) वावड द्यो विजाणंदना ।'

कई लोग कहते हैं कि, हा हा बाई कई दिनों के पहले यहाँ से एक जुवान नीकला था और नवचंदरी भेंस का समाचार पूछता पूछता यहाँ से चला गया ।

शेणी, विजाणंद की खोज में चली जाती है लेकिन कहीं भी उनका ठिकाना - पता नहीं मिलता । आखिर में शेणी हिमालय पहुँच जाती है । चारों ओर बर्फीले डुंगर । पानी भी बर्फ हो गया है । ऐसे हिमालय पर्वत पर अठारह साल की चारण कन्या शेणी हिमाळे गलने के लिए आ बैठी । लेकिन उनका शरीर गलता नहीं है - पीघलता नहीं है । इसलिए शेणी हिमालय को कहती है :

'हे बाप हेमाळा । हे मोक्षपुरी के द्वारपाळ । हे सती पार्वती के पिता । मैं भी आपकी पुत्री हूँ और तेरे पास आई हूँ । तो तूं मुझे जल्द से जल्द अपने में समाविष्ट कर ले ।'

तब हिमालय कहता है : 'बेटा तूं बाळ कँवारी है । इसलिए तूं नहीं गल सकती । तेरे हृदय में कोई बैठा है । तूं विवाह करके दोनों साथ में आना ।'

शेणी दर्भ का पूतला बनाकर विजाणंद के साथ विवाह करने का संकल्प लेती है । और पूतले को अपनी गोद में लेकर बैठ गई ।

थोडी ही देर में शेणी का शरीर गलने लगा तब पर्वत में से 'शेणी । शेणी । शेणी ।' की आवाज आती है ।

शेणी, विजाणंद की आवाज सुनकर बोली : 'चारण आ पहुँचे ?'

तब विजाणंद कहता है : 'तेरे पिताजी को एकसौ एक नवचंदरी भेंस दे दी है । अब चलो ओझत के किनारे पर अपना घर (झोंपडी) बनायें ।'

शेणी कहती है :

'हाडा हेमाळे, गळियां जे गूडा लगे
विजाणंद वळे, घणमूला जाने घरे ।'

('हे विजाणंद मेरे अस्थि अब तो गोठण तक हिमालय में पीघल गये हैं । हे वहाला अब तूं वापस घर लौट जा ।')

'वळवळ वेदानी, (तुं) पांगळी होय तोय पाळशुं,
कांधे कावड करी, (तने) जात्रा बधी जुवारशुं ।'

('शेणी तूं खडी हो जा । वापस लौट आ । ओ वेदा चारण की पुत्री, तूं लंगडी होगी तो भी मैं तुझे कावड (खभे टोकरी में बिठाकर) में बिठाकर मैं तुझे अडसठ तीर्थ की यात्रा कराऊँगा । तूं वापस लौट जा ।')

'ना विजाणंद । अब वापस नहीं लौटूंगी ।
वळुं तो रहुं वांझणी, मूवा न पामुं आग,
आलु को अवतार वणसाड्यो विजाणंदा ।'

('अब जो मैं वापस आऊँ तो मेरे साथ तेरा शरीर संबंध नहीं हो सकेगा । और पुत्र के बिना मैं मर जाऊँगी तो अग्निसंस्कार कौन करेगा ? यह जन्म तो बिगडा लेकिन आनेवाला जन्म न बिगडे इसलिए मैं वापस नहीं लौट सकूंगी ।')

फिर भी विजाणंद वापस लौट.... वापस लौट.... ऐसा पुकार करता है तब शेणी कहती है :

'गळियुं अरधुं गात्र, अरधामां अरधुं रियुं,
हवे मसळता हाथ, विजाणंद, पाछा वळो ।'

('हे विजाणंद अब तो मेरा पौना भाग (७५ प्रतिशत) का शरीर पीघल गया है - गल गया है । अब तूं मिथ्या (फोगट) मेहनत किये बिना वापस लौट जा ।')

लेकिन शेणी एक बिनती करती है, 'चारण मेरी अंतिम इच्छा रह गई है । मरते मरते भी एक बार तेरा जंतर सुनना है ।'

'विजाणंद, जंतर वगाड, हेमाळो हलकु दिये,
मोह्या माछलमार, माछलियुं टोळे वळे ।'

विजाणंद जंतर बजाने लगा । बरफ में से "राम । राम ! राम ! राम ।" की आवाज आती है । अंत में राम नाम के उच्चार बंद हो जाते हैं । विजाणंद के हाथों में से जंतर नीचे पटकाता है ।

'जंतर भांग्युं तड पडी, त्रूटयो मोभी त्राग,
वेदानी शेणी हल गई, जंत्री काढे न राग ।'

('जंतर पटकाता है । जंतर में तिराड पड गई । जंतर का प्रधान सूर नीकलता था वो तार तूट गया । वेदा चारण की पुत्री शेणी के प्राण निकल गये । जंतर का बजाने वाला (विजाणंद) सूर भी बंद हो गया ।')

और

'भूखे खाधुं भात, पेट भरी पामर जीं,
शेणी जेवो संगाथ, मेलीने विजाणंद वळ्यो ।'

(शेणी जैसे संगाथ को हिमालय को सौंप कर विजाणंद चारण खाली हाथ वापस लौटता है । और जब तक जिन्दा रहा तब तक पागल आदमी की तरह पेट भरता रहा ।')

★ ★ ★

राजस्थान में शैणी विजानंद की एक दूसरी कथा भी है वो भी हम देखते हैं । लेकिन यह कथा सच है या नहीं वो तो विद्वज्जनों अनुसंधान (संशोधन) कर रहे होंगे । लेकिन यह कथा अभी तक विश्वासपात्र नहीं हैं । तो देखें ये भी कथा :

बात सयणी चारणी री[६] - (राजस्थान)

बेकरे गाँव में वेदा नाम का चारण रहता था । उसकी पुत्री का नाम सयणी था । एक दिन सयणी ने कच्छ के वीजाणंद का वीणा-वादन सुना और मुग्ध हो गई तथा उसको कुछ माँगने के लिए कहा । वीजाणंद ने स्वयं सयणी को माँग लिया, तब उसने शर्त रखी कि - 'यदि तुम भीख माँगना छोड दो और छः माह की अवधि में सवा नौ करोड रूपए ला दो तो मैं तुमसे विवाह कर लूंगी ।' वीजाणंद ने शर्त स्वीकार कर ली । वह वीणा-वादन द्वारा राजाओं को प्रसन्न कर धन एकत्र करने लगा, लेकिन यह वांछित धन राशि एकत्र नहीं कर पाया । तब वह जल-प्रदेश के राजा मुगल के पास गया और धन प्राप्त कर सयणी के पास पहुँचा । लेकिन समयावधि समाप्त होने के कारण सयणी निराश होकर हिमालय में गलने के लिए चली गई । वीजाणंद भी यह सुनकर हिमालय में गलने के लिए चला गया ।

चारणी देवी - आवडमाता (राजस्थान)

आवडमाता का मरुभूमि में शुभागमन वि. सं. ८८८ के आसपास हुआ था । उन्होंने लूणराज भाटी को अपने धारण करने की एक स्वर्ण की चूड प्रदान कर यह वर दिया कि इस चूड को दाहिने हाथ में पहिन कर तू युद्ध में अकेला खडक प्रहार करता हुआ भी शत्रुओं को पराजित कर सकेगा ।[७] आवड देवी अपने पिता और बहिनों को साथ लेकर तेमडा जा रही थी । मार्ग में आवड ने 'हाकडा समन्दर' को पार करने के लिए तीन चूल्लू में उसका पानी पी डाला और 'हाकडा' मरुभूमि में पलट गया ।[८] हाकडा सुखा कर आवड माता तेमडा पर्वत पर पहुँची । यहीं नर-भक्षी राक्षस था, जिसने उन बहिनों पर हमला किया । छोटी बहिनोंने कहा कि, 'बाई, आई राक्षस है' यानी यहाँ राक्षस है । इस पर आवड देवी ने कहा कि 'तेमडी छै अर्थात् वह तो मुर्दा है । देवी ने राक्षस का पैर पकड कर नीचे फैंक दिया और वह तत्काल मर गया । उस दिन से 'तेमडी' मिलकर उस पहाडी का नाम तेमडी हो गया[९] ।

चारणी देवी - आवडमाता (नडेश्वरी माता - वरेवडी माता - वरुडी माता) गुजरात

गुजरात में आये हुए बनासकांठा जिले के सूईगाम तहसील से करीब २० कि.मी. और पालनपुर से करीब ४० कि.मी. की दूरी पर नडाबेट नामक स्थल ८ से १० कि.मी. के विस्तार में फैला हुआ बेट (द्वीप) आया हुआ है । पाकिस्तान की सरहद पर यह द्वीप (बेट) रण विस्तार में आया हुआ है । यहाँ नडाबेट में नडेश्वरी माता- आवडमाता - वरेवडी माता - वरुडीमाता के विविध नामधारी नडेश्वरी माता के मंदिर का इतिहास हजारो साल पुराना है ।

इतिहास और किंवदन्ती के मुताबिक जूनागढ के राजा रा'नवघण की धर्म की मानी हुई बहन (धर्मनी बहेन) जाहल को सिंध का बादशाह हमीर सुमरा उठा के ले गया था । रा'नवघण अपनी धर्म की बहन को सिंध के बादशाह हमीर सुमरा की कैद से छुडाने के लिए अपने लश्कर के साथ सिंध पर आक्रमण (चढाई) करता है और विरमगाम, राधनपुर और सूईगाम की समुद्र की छोटी खाडी पार करके समुद्र के बीच में आया हुआ नडाबेट आता है ।

जब रा'नवघण नडाबेट आते हैं तब नडाबेट में बरगद के एक वृक्ष के नीचे कई चारण कन्याएँ खेल रही थीं । रा'नवघण को आते हुए देखकर बाल स्वरूप माता नडेश्वरी-आवडमाता-वरुडी माताने अपना हाथ को लंबा करके घोडे पर सवार रा'नवघण के भाल में कुमकुम तिलक किया । बाद में बालिका स्वरूप आवडमाता (नडेश्वरीमाता - वरेवडी माता - वरुडीमाता) ने कुल्लड में खीर बनाकर सारे लश्कर को भोजन कराया ।

रा'नवघण नडेश्वरी माता के चमत्कार को पहचान गये । रा'नवघण घोडे से नीचे उतरे और माताजी के चरणों में मथ्था टेककर, माताजी की पूजा-अर्चना की और माताजी को प्रार्थना करते हुए कहा कि सिंध का बादशाह हमीर सुमरा हमारी धर्म की बहन जाहल को उठा ले गया है । सिंध पर आक्रमण करके, विजय प्राप्त करके हमारी धर्मकी बहन जाहल को छुडाना है । लेकिन समय बहुत कम है । सामने समंदर है । इसलिए सिंघ पहुँचने का मार्ग दिखाने के लिए तथा शक्ति देने के लिए रा'नवघण माता नडेश्वरी को प्रार्थना करता है ।

तब नडेश्वरी (आवडमाता) माता ने आशीर्वाद देते हुए कहा कि "तेरे भाले (हथियार) पर काली चीडियाँ (देवचकली) बैठे तब तू अपने घोडे को लेकर समंदर में चला जाना । मैं तेरे साथे सिंध में आऊँगी ।"

रा'नवघण ने नडाबेट से समुद्र के किनारे पर जाकर माता नडेश्वरी (वरेवडी-आवडमाता) और हिंगलाज माता का स्मरण किया तब काली चीडियाँ (देवचकली) आकर रा'नवघण के भाले (हथियार) पर बैठ जाती है । काली चीडियाँ को अपने भाले पर बैठी हुई देखकर और उनको शुभ चिन्ह मानकर रा'नवघण अपने घोडे के साथ समुद्र में छलाँग लगाता है । माता नडेश्वरी की कृपा से समंदर सूख जाता है और रा'नवघण को सिंघ में जाने का रास्ता आसान हो जाता है । रा'नवघण के पीछ पीछे उनका सारा लश्कर सिंघ में पहुँच जाता है ।

रा'नवघण सिंघ में जाकर सिंघ के बादशाह हमीर सुमरा को मार डालता है, और सिंघ पर विजय प्राप्त करता है । और सिंध के बादशाह की कैद से अपनी धर्म की बहन जाहल को छुडाकर जूनागढ वापस लौटता है ।

हमीर सुमरा को हराकर सिंध पर विजय प्राप्त करने के बाद वापस लौटते वक्त रा'नवघण ने नडाबेट में नडेश्वरी माता (आवडमाता-वरेवडी माता-वरुडी माता) के मंदिर का निर्माण किया था । हजारो वर्षों से नडाबेट में आये हुए नडेश्वरी माता का मंदिर आज भी लाखों - करोडो माई-भक्तों की आस्था का केन्द्र बन चुका है - गुजरात का पवित्र धाम है ।

वर्तमान में नडेश्वरी माता का मंदिर समंदर के बीच बेट (द्वीप) में आया हुआ है । भारत-पाकिस्तान सरहद से बिलकुल नजदीक होने से अब भारत के बीएसएफ के नौ-जवान उनकी पूजाविधि करते हैं । सालभर में मार्च महिने में माता नडेश्वरी के प्रागट्य दिन के अवसर पर राम-नवमी के आसपास करीब १५ दिनों के लिए आमजनता के दर्शनार्थ यह मंदिर खुला रहता है । सारे भारत वर्ष में से आये हुए भक्तजन आवडमाता-नडेश्वरीमाता के दर्शन करके धन्य होते हैं ।

लोकदेवता

गोगाजी या गूगाजी - (राजस्थान)

राजस्थान में पंच पीरों में गोगाजी का नाम बडी श्रद्धा से स्मरण किया जाता है । राजस्थान ही नहीं बल्कि गुजरात से लेकर हिमाचल, पंजाब, उत्तर प्रदेश एवं कुमाऊँ तक के सारे भारतीय भूखण्ड में गोगाजी लोकदेवता के रूप में प्रख्यात हैं और पूजे जाते हैं । लोकमानस ने इस महान देशभक्त एवं धर्म - रक्षक को सैंकडो वर्षों से अपनी परम्परागत कथाओं और गीतों में जीवित रखा है ।

श्री ओझाजी ने राजस्थान स्थित सांभर राज्य के चौहाण राजाओं में गोपेन्द्र नामक राजा का भी उल्लेख किया है । श्री लल्लूभाई भीमभाई देसाई इसी गोपेन्द्रराज को गोगादेव मानते हैं । उन्होंने लिखा है कि गोगाराव वि. सं. ७५२ में गद्दी पर बैठा । सांभर के चौहानों ने मुसलमानों के हमले में हर समय अपना बलिदान दिया है । बगदाद के खलीफा महमूद बिन कासिम के साथ गोपेन्द्रराज उपनाम गोगाराव ने ११ लडाई लडीं और १२ वीं लडाई में गौओं के रक्षार्थ अपने ४३ पुत्रों के साथ मारा गया । उनकी राणी मेणलदे राठोड कन्या महासती थी । गोगाराव के पीछे उनकी ३५ रानियाँ सती हुई । गोगाराव ने वि. सं. ७८२ में गढ सांभर में समर किया था । वर्तमान समय में इसकी गोगादेव के नाम से पूजा होती है । इसी में आगे गोगा के ४३ पुत्रों के विषय में 'निशानी' दी गई है जो युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए थे ।[१०]

डॉ. दशरथ शर्मा ने गोगाजी को महमूद गजनवी का समकालीन मानते हुए तीन आधारों का उल्लेल किया है :

१. क्यामखाँ रासा में वर्णित ददरेवे के चौहानों की वंशावली में गूगोजी का स्थान ।

२. ददरेवे में राणक जैतसी का वि. सं. १२७० का शिलालेख[११]

३. सन १४०१ ई. रचित 'श्रावक व्रतादि अतिचार' में ब्रह्मा, विष्णु आदि अजैन देवों के साथ-साथ गूगाजी का पूजा वर्णन ।[१२]

श्रावक व्रतादि अतिचार का उल्लेख करते हुए डॉ. दशरथ शर्मा ने उचित ही कहा है कि उतर पूर्वी राजस्थान ही नहीं बल्कि गुजरात में जैनाचार्योंने गोगा जैसे एक स्थानीय देवता की पूजा को ब्रह्मा, विष्णु, शिव और दूसरे लोक प्रसिद्ध देवताओं के समान स्तर पर रखकर उसे जो एक अतिचार माना है, ऐसी प्रसिद्धि प्राप्त करने में केवल २५ वर्ष ही काफी नहीं बल्कि सदियों की आवश्यकता है ।[१३]

★★★

(१) गोगाजी : लोकदेवता गोगाजी चौहान का जन्म चूरु जिले के ददरेवा में राजा झेंवर के यहाँ हुआ था । इनकी माता का नाम बाछळ था । बाछळ गुरु गोरखनाथ की सेवा करती थी । एक दिन बाछळ की बहिन काछळ गुरु गोरखनाथ की सेवा

करने चली गई । गुरु ने उसे ही बाछळ समझ कर दो पुत्रों के होने का वरदान दे दिया । बाद में जब पता चला कि बाछळ ने प्रतिदिन सेवा की है और यह काछळ तो उसकी बहिन है, तब गुरु ने बाछळ को एक महावीर पुत्र होने का वरदान दिया । समय आने पर काछळ को दो पुत्र अरजन - सरजन हुए तथा उसके पश्चात् बाछळ को पुत्र गोगाजी का जन्म हुआ । गोगाजी का विवाह पाबूजी की भतीजी और बुडौजी की बेटी केळमदे से हुआ । विवाह के पूर्व केळमदे को साँप ने डस लिया किन्तु गोगाजी के नाम से तांती बाँधने और गोगाजी के स्मरण से साँप का जहर उतर गया । केळमदे ठीक हो गई । लोकसमाज में गोगाजी चमत्कारों के लिये प्रसिद्ध रहे हैं । इनके मौसेरे भाई अरजन-सरजन इनसे द्वेषभाव रखते थे । परिणामस्वरूप गोगाजी और इनसे युद्ध हुआ । गोगाजी ने दोनों भाइयों को मार दिया । तब क्रोधित माता बाछळ ने गोगाजी को देश से निष्कासित कर दिया । गोगाजी गुरु गोरखनाथ के पास चले गये । गुरु की आज्ञा से वे रात में अपनी रानी से मिलने आते । एक दिन माता बाछळ को पता चल गया । उसने अपने पुत्र को ताना मारा । गोगाजी अपने नीले घोडे सहित धरती में समा गये । वह स्थान ''गोगामेडी'' के नाम से प्रसिद्ध है । यहाँ हर वर्ष गोगानवमी को विशाल मेला लगता है ।

★★★

(२) पाबूजी : गोरक्षक लोकदेवता पाबूजी का जन्म जोधपुर जिले की फलौदी तहसील के 'कोळू' ठिकाने में हुआ । बचपन से ही वे निडर, साहसी एवं वीर पाबूजी शरणागतवत्सल भी थे । एक शक्तिशाली शासक आना बघेला के भय से भागते थोरी जाति के सात भाईयों को किसी ने आश्रय नहीं दिया, तब राठौड पाबू ने इन्हें शरण दी । इनको मित्र का दरजा दिया । भील सरदार चांदा व डाया तो इनके परम मित्र एवं दायां-बायां हाथ थे । इस प्रकार ऊंचनीच का भेदभाव न मानते हुए सामाजिक समानता को महत्त्व देने वाले पाबू राठौड से उनका बहनोई जायल खींची बहुत द्वेष रखता था । पाबूजी ने अपने विवाह के समय बहन को बुला लिया किन्तु बहनोई को नहीं बुलाया । इसलिए वह और भी अधिक जल भून गया । दूल्हे बने पाबूजी देवल चारणी की 'केसर घोडी' पर सवार हो गये । बारात प्रस्थान के समय पाबूजी ने देवल चारणी को वचन दिया कि संकट आने पर वे केसर घोडी पर बैठकर तुरन्त दौडे आयेंगे । बारात अमरकोट सोढा राणा के यहाँ पहुँची । केसर घोडी ने अपने करतब दिखाये तथा किले के कंगूरे पर टंगे तोरण को मरवाने में पाबूजी को सहयोग दिया । ठाठ-बाठ से पाबूजी व बारात का स्वागत किया । उधर मौका देख जायल खींची देवल चारणी की गायों को ले भागा । पता चलने पर पाबूजी चंवरी (चोरी) में से ही गठबन्धन छुडाकर उठ गये । तीसरा फेरा भी पूरा नहीं किया और अर्ध्यब्याहता को छोड गायों की रक्षार्थ चल पडे । पाबूजी ने गायों को तो छुडा लिया किन्तु इस युद्ध में वे स्वयं वीरगति को प्राप्त हो गये । उनकी अर्ध्यब्याहता सोढी भी पाबूजी के साथ सती हो गई । इस प्रकार साहसी, पराक्रमी पाबूजी ने सामाजिक

समानता एवं गोरक्षण में अपने जीवन का बलिदान कर दिया । जन-जनने उन्हें लोकदेवता के रूप में पूजकर अपनी आस्था प्रकट की ।

★★★

(३) तेजाजी : वीरवर तेजाजी भी गोरक्षक थे । वे पराक्रमी और योद्धा होने के साथ साथ उच्च कोटि के साधक थे । उन्होंने अपनी साधना से प्राप्त सिद्धियों से जन-कल्याण का कार्य किया । साँप का जहर उतारने में गोमूत्र व राख का प्रयोग इन्होंने ही किया । वचनबद्ध तेजाजी साँप के पास गये तो साँपने उन्हें डस लिया किन्तु उनकी वचनबद्धता से प्रसन्न होकर साँपने यह वरदान दिया कि संसार के लोग सर्प के देवता के रूप में तुम्हारी पूजा करेंगे तथा सर्प दंश से पीडित व्यक्ति को तुम्हारे नाम की तांत (धागा) बाँधेंगे तो उसका जहर उतर जायेगा । तभी से गाँव -गाँव में तेजाजी लोकदेवता के रूप में पूजे जाते हैं । तेजाजी के चबूतरे पर भोपे सर्पदंश से पीडित व्यक्ति का जहर तेजाजी की कृपा से ही उतारते हैं । भाद्रपद की शुकला दशमी को तेजाजी के थान पर मेला लगता है ।

लोकदेवता तेजाजी का जन्म नागौर जिले के खरनाल्यां ग्राम में धोळ्या जाट के यहाँ हुआ । बचपन में ही इनका विवाह पनेर के पटेल की लडकी पैंमल से हुआ किन्तु अल्पायु के कारण गौना नहीं हुआ । तेजाजी जब युवा हुए तो एकदिन भाभी के कटु वचन सुनकर अपनी पत्नी को लाने हेतु पनेर की ओर चल पडे । मार्ग में अपशुकन हुए किन्तु तेजाजी ने उनकी परवाह नहीं की । ससुराल पहुँचने पर सास ने भी बिना सोचे समझे कह दिया कि 'कुण नाग रो कोटियोडो आयो है जिको म्हारी गायां भिडकाय दी ।' ऐसे कटु वचनों को सुनकर तेजाजी बाहर से ही चले गये । पत्नी के आग्रह पर वे हीरा के घर ठहरे । रात में मीणा लोग हीरा की गायें ले गये तो तेजाजी ने उनका पीछा किया और युद्ध करके गायें छुडा लाये । लेकिन एक बछडा कम होने की वजह से उन्हें दुबारा जाना पडा । मार्ग में आग में जलते हुए साँप को देखकर दयालु तेजाजी ने उसे भाले से बाहर निकाला । लेकिन साँपने कहा कि मैं तुम्हें डसूंगा । तुमने मुझे बचाकर अपराध किया है । मैं अपनी नागिन के साथ जल रहा था । अब वह तो जल गई और मैं बच गया । तेजाजी को अपनी गलती पर पश्चाताप हुआ । उन्होंने सर्प को वचन दिया कि वे गुजरी को उसका बछडा सौंप कर उसके पास आ जायेंगे । तेजाजी ने वही किया । वे हीरा गुजरी को बछडा सौंप कर वापस साँप के पास लौट गये । साँप ने घायल तेजा को कहा कि तुम्हारा शरीर क्षत-विक्षत है अतः कहाँ डसूँ । तब तेजाजी ने जीभ निकाली और साँप ने उन्हें डस लिया । तेजाजी का तेजस्वी शरीर निर्जीव हो गया । उनकी पत्नी उनके साथ सती हो गयी । तभी से तेजाजी की मूर्ति घोडे पर बैठे हुए हाथ में भाला लिये हुए तथा साँप द्वारा काटते हुए की बनाई जाती है ।

★★★

वीर भाथीजी महाराज : गोगा महाराज : घोघा बापा, गोगा बापा, वाच्छडा दादा[१४] (गुजरात)

लीली लीली लेमडीओनी छाय महाराज, हालो ने फागवेल धाम जईअे ।
धोळी धोळी धजायुं लहेराय महाराज, हालोने फागवेल धाम जईअे ॥

गुजरात के खेडा जिले में कपडवणज से करीब ३० कि. मी. की दूरी पर फागवेल गाँव आया हुआ है । फागवेल के ठाकोर श्री तखतसिंह और अक्कलबा के यहाँ ई. स. १६०० में कारतक सुदी एकम के दिन वीर भाथीजी का जन्म हुआ था । जन्म के वक्त भाथीजी के भाल प्रदेश में नागफणी का चिह्न था ।

भाथीजी को गायों और साँप के प्रति अगाध प्रेम था । सात साल की उम्र में जब भाथीजी अपने साथीयों के साथ गायें चराते वक्त दोपहर को नीम के वृक्ष के नीचे आश्रय ले रहे थे तब बिल में से एक फणीधर नागने बाहर आकर अपनी फेण निकाली । सब साथी डर से गभराकर दौडने लगे और भाथीजी को वहाँ से निकल जाने को जोर जोर से कहने लगे । लेकिन भाथीजी वहाँ से नहीं हटे । फणीधर नाग और भाथीजी की एक नजर (दृष्टि) होने से भाथीजी ने नाग देवता को कहा कि, ''नागदेवता अपने स्थान पर चले जाओ ।'' नागदेवता भाथीजी को शीश नमाकर अपनी फेण वापस लेकर अपने बिल में चला गया ।

जब अक्कलबा ने यह सुना तो भाथीजी को वहाँ गायें चराने के लिए नहीं जाने को कहा । तब भाथीजी ने कहा कि, ''मुझे नाग देखने को बहुत मजा आता है और मैं हररोज नाग को दूध पीलाने के लिए जाऊँगा ।'' माता अक्कलबा और पिता तखतसिंह ने भाथीजी को बहुत मना किया लेकिन भाथीजी नहीं माने और खुद ने भी दूध पीना छोड दिया । कई दिनों के बाद नाग को दूध पीलाने के लिए भाथीजी को भेजे । जैसे दूध का कटोरा भाथीजी ने बिल के पास रखा तब नाग बिल में से बाहर आकर दूध पीकर वापस अपने बिल में चला गया । फिर यह हररोज का नियम बन गया । और यह सारी बातें आपस में फैल गई । गौभक्त होने के कारण गौसेवक, गौभक्त ऐसे नाम से भाथीजी को लोग पहचानने लगे । और जब अक्कलबा भाथीजी को जंगल में नहीं जाने को कहते तब भाथीजी कहते हैं कि, ''नाग पूजा, गौसेवा, गरीबों का दुःख जानने को जंगल में घूमना मुझे बहुत पसंद है । मुझे मेरा काम करने दो और जगह जगह पर मुझे घूमने दो ।''

जंगल में और आसपास के गाँव वालों को जब साँप डसता है (दंश देता है) तब भाथीजी वहाँ पहुँच जाते हैं और गाँववालों को बचा लेते हैं । भाथीजी ने गाँव गाँव में गायों के लिए घासचारा और पानी पीने के लिए सवलतें कर दी गई ।

फागवेल के आसपास के प्रदेश को खाखरिया जंगल से भी जाना जाता है । क्योंकि यहाँ खाखरा यानी कि पलाश के वृक्ष बहुत होते हैं । यह जंगल में नाग के कई बिल होने के कारण नाग पकडने के लिए शेरु और फेरु नामक दो वादी लोग फागवेल प्रदेश में आये । गायें चराते भाथीजी ने यही देखा तो उन्होंने पूछताछ की ।

यहाँ सैंकडों नाग मिलेंगे ऐसी जानकारी मिलने से हम नाग को पकडने आये

हैं, ऐसा सुनकर भाथीजी ने उनको यहाँ से चले जाने को कहा । लेकिन हम नाग को पकडे बिना नहीं जायेंगे ऐसा शेरु और फेरु ने कहा । भाथीजी गुस्से हो गये और पकडे हुए नाग को छुडा दिये, साँप रखने की टोकरी जला दी और शेरु-फेरु को मार-पीट कर खदेड दिये ।

शेरु और फेरु आतरसुंबा गाँव में आकर कासम नामके मुस्लिम को कहा कि, ''फागवेल गाँव के भाथीजी ने हमारे साँप-नाग को भगा दिया और साँप को रखने की टोकरी भी जला दी और हमको मार-पीट कर हमारे पर त्रास - सितम गुजारा है ।

यह सुनकर कासम गुस्से हो गया और सिंधी, पठाण, मुगल और चाउस (आरब) सभी को बात बताई । ये सब कासम की तरह गुस्से हो गये और सब कासम की अगुवाई में सब मलेच्छों फागवेल-तखतसिंह के दरबार में आये । उस वक्त मलेच्छों को पडकारते हुए भाथीजी ने कहा कि, ''ऐसे अधम काम करने वाले पापीओं के पक्ष लेकर आये हुए पापीओं । खबरदार यहाँ से कोई भागा तो मारा जायेगा ।'' और भाथीजी ने म्यानमें से तलवार खींची ।

''ये हमारी भूमि है । जंगल के रखवाला करने वाले नागदेवता और इस भूमि के पशु-पक्षी को मारने की या उनकी चोरी करनेवाले को हम जिन्दा नहीं रखेंगे । लेकिन आज तुम सब बिना हथियार आये हो इसलिए वापस जाने देते हैं ।''

ऐसा सुनकर सब मलेच्छ लोग वापस चले गये लेकिन उनके मनमें वैर के बीज का निर्माण हो गया ।

भाथीजी के वीरत्व की बात चारों ओर फैल गई और उनकी वाहवाही होने लगी । गोपालक लोग भाथीजी को देव मानने लगे । कई लोगों नागदेव का अवतार कहकर प्रशंसा करने लगे ।

दूधातेल राज के राजा भूपतसंग और राणी सज्जन बा की कुंवरी कंकुबा के साथ भाथीजी का विवाह तय हुआ । भाथीजी की बारात बाहरगाम दूधातेल जानेवाली है ऐसी जानकारी मिलने से कासम, शेरु और फेरु, सिंधी, मुगल, पठाण, आरब, कसाई सब एकत्रित हुए और जब भाथीजी विवाह करने को दूधातेल गये उस दिन मलेच्छों फागवेल गाँव की गायों को भगा कर खाखरिया जंगल में ले गये । और गोपालकों को मारपीट की ।

भाथीजी विवाह के मंडप में बैठे हैं । मंगल फेरे की विधि हो रही है वहाँ घायल हुए कई गोपालक आते हैं और कहते हैं कि, '' महाराज अपनी गायों को मलेच्छ लोग चुरा ले गये हैं और हम सब को मारपीट करते हुए कहते थे कि वादी के समय का वैर खतम हुआ ।''

वीर भाथीजी चौथा मंगल फेरा अधूरा रखकर विवाह मंडप में से खडे हो गये । वरमाला तोडकर मंडप में से घोडे पर सवार होकर खाखरिया के जंगल की ओर निकल पडे । विवाह मंडप में छुपकर बैठा हुआ एक नाग भी भाथीजी के साथ घोडे के आगे आगे दौडने लगा ।

खाखरिया जंगल में आकर भाथीजी ने पडकार किया और कहा कि, ''खबरदार चोरटाओ । कोई भागेगा तो तीर (बाण) से मौत हो जायेगी ।''

मलेच्छों भाथीजी के सामने आये तो तीर छोडकर कई मलेच्छों को मौत के घाट उतार दिये । और दोनों हाथों से तलवार घुमाते हुए भाथीजी मलेच्छों को मारते हुए चले जाते थे । दूसरी ओर नागदेव भी दुश्मनों को गले, हाथ, पग, मुँह पे उछल उछल कर काटने (डंशने) लगे ।

इस युद्ध में एक संधी वृक्ष के पीछे छीपा रहा था उसने भाथीजी को गरदन पर जोर से तलवार का घा किया । तलवार के घा से भाथीजी का मस्तक धड से अलग हो गया । संधी को भी नाग ने डस लिया और संधी की भी मौत हो गई ।

भाथीजी का धड दोनों हाथों में तलवार लेकर झूझ रहा था । जमीं पे गिरता नहीं था । शत्रुओं के शब यहाँ तहाँ पडे थे । नागदेवता भाथीजी के शीश (मस्तक) पर अपनी फणा (फेण) फैला कर बैठे थे ।

भाथीजी की पत्नी कंकुबा आई और नागदेवता को कहा कि, ''घोघा बापजी । शूरा के शीश की रखवाली करने वाले देव । मेरे पतिदेव का शिर लेने दो, और आप अपने स्थानक पर चले जाओ ।'' तब नागदेवता अपने स्थानक पर चले गये ।

माता अक्कलबा भी खाखरिया के जंगल में आ गये और रोते हुए तलवार घुमाते हुए अपने बेटे को कहा कि, ''धन्य है क्षत्रियवीर । धन्य है गौरक्षक को । अब शांत हो जाओ । खमैया करो बेटा । विवाह का आनंद मनमें रह गया मेरे लाडकवाया लाल । अब शांत हो जाओ ।'' और भाथीजी का धड जमी पे गिर गया ।

उसी वक्त भाथीजी ने अपने बडे भाई हाथीजी के शरीर में प्रवेश किया और कहा कि, ''मैं भाथीजी हूं । सभी जगह पर मेरे स्थानक स्थापित किया जाय । स्थानक पर सफेद (धोळी) धजा फहराना, घी का दिया जलाना और गूगळ का धूप करना । कारतक सुद एकम के दिन मेला लगाना । किसी को भी जहरीला जंतु या सर्प डंसे (काटे) तो मेरे नाम का भजन (धून) करना । मैं भूवा-ओझा के अंग में प्रवेश कर के नागदंश का जहर निकालूंगा । कई जगह नाग दिखाई दे तो मेरे नाम के सोगंद देने से वहाँ से चला जायेगा, यही मेरा वचन है ।''

इसके बाद भाथीजी की पत्नी कंकुबा के शरीर में प्रवेश किया । कंकुबा बोली, ''स्वामी । नाथ । वीरात्मा भाथीजी । शूरा देव मैं आप के साथ आ रही हूँ ।'' ऐसा कहकर कंकुबा भाथीजी की जलती हुई चिता में प्रवेश कर सती हो गई ।''

सब को रोते हुए देखकर और चिता पे चढते वक्त कंकुबा ने कहा कि :

ए रोशो मा कोई जण, जान जाय अमरापरे ।
जुग जुगना सगपण, कंकु ने भाथी तणा ॥

★★★

ए ..... भले मळ्या आ मांडवे, जानमां आवेल जण ।
चांदलो, चूडलो, चूंदडी मारा अखंड एवातण ॥

★★★

आज भी गुजरात के छोटे छोटे गाँवों में भी वीर भाथीजी महाराज के स्थानक दिखाई पडते हैं । गुजरात के कई प्रदेश में भाथीजी को भाथीजी महाराज, घोघाबापा, गोगाबापा, गोगाजी महाराज, वाच्छडा दादा, नारसंग दादा ऐसे कई नामाभिधान से पुकारे जाते हैं । फागवेल में आज भी कारतक सुद एकम से पंचमी तक - पाँच दिन का मेला लगता है । भाथीजी के घोडे के आगे नागदेवता भी सदैव रहते हैं । कहते हैं कि आज भी इस खाखरिया वन में जो भी खाखरा (पलाश) के वृक्ष उगते हैं उसमें से एक डाली पर लहू के छींटे वाले पान होते हैं ।

गुजरात में भाथीजी महाराज-गोगा महाराज के मंदिर - (स्थानक) देवडा, पोरबंदर, पाटण, गोधरा, भाणवड, खंभालिया, द्वारका, मांडवी और अंजार में प्रमुखतः स्थापित है । भाथीजी महाराज सोलंकी वंश के कुलदेवता माने जाते हैं । फागवेल गाँव कपडवणज और प्रसिद्ध यात्राधाम डाकोर से करीब ३० कि. मी. की दूरी पर आया हुआ है ।

गोगाजी या गोगा महाराज या घोघा बापा - गुजरात

कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'जय सोमनाथ' में घोघा बापा का अत्यन्त प्रभावशाली शब्दों में वर्णन किया है । और उसकी महमूद गजनवी के साथ युद्ध करते हुए वीरगति प्राप्त करता बताया है । पुस्तक की भूमिका में उन्होंने स्पष्ट किया है कि घोघा बापा के पराक्रम कल्पित नहीं हैं ।[१५] मुंशीजी ने अपनी एक अन्य पुस्तक में लिखते हुए बताया है कि गोगा चौहान को गूजर अपना पूर्व पुरुष मानते हैं । गुजरात में प्रतिवर्ष - घोघाराव का जुलूस निकाला जाता था जो पिछले तीस वर्षों से बन्द हो गया है ।[१६]

जैसल जाडेचा - (राजस्थान)

राजस्थान में दोहा प्रचलित है :

''पाबू हरभू रामदेव, माँगलिया मेहा
पाँचो पीर पधारज्यो जाडेचा जेहा ।''

उपर्युक्त पद में जैसल जाडेचा ही को जहाँ जाडेचा कह उसका पंच पीरों में स्मरण किया गया है । रामदेवजी के पूजारी कामडियाँ 'तोळांदे' जन काव्य गाते हैं । जैसल बडा क्रूर प्रकृति का था व डाके डाला करता था । जैसल ने अपने जीवन में भयंकर पाप कर्म किये थे । विपत्ति पडने पर उसकी आत्मा हिल उठी और कुकर्म उसके सामने चमकने लगे । तोळांदे ने उसे सान्त्वना दी और अपने समस्त पाप प्रकट कर देने को कहा । जैसल ने ऐसा ही किया और सती के प्रताप से उसका हृदय शुद्ध हो गया । इसी के बाद वह पीर-पद का अधिकारी हुआ ।(१७)

राजस्थान के पंच पीरों में जैसल जाडेचा का भी स्मरण किया जाता है । राजस्थान में प्रचलित तोळांदे की गाथा में जैसल जाडेचा के जीवन पर भी प्रकाश डाला है । सारांश में उसकी कथा इस प्रकार है :

सुवारथ नामक एक खाती था । उसको कोई सन्तान न थी, इससे उसकी स्त्री अत्यन्त दु:खी रहती थी । एक दिन सुवारथ ने लकडी की दो घोडियाँ एक एक लडकी बनायी और उन्हें अपनी पत्नी को मनोविनोद के लिए सौंप दिया । एक दिन एक साधु उनके घर में भिक्षा के लिए आया । जब सुवारथ की स्त्री उसके लिए भोजन तैयार करने के लिए रसोई में गई तो साधु ने काठ की बनी हुई दोनों घोडियों तथा उस लडकी को सप्राण कर दिया । भोजन लेकर खाती की स्त्री रसोई में से आई तो देखा कि साधु वहाँ नहीं था और लडकी तथा घोडियाँ जीवित रूप में थी । पति-पत्नी दोनों साधु के पीछे चले परन्तु वह नहीं मिला । एक पत्र मिला जिसमें लिखा था कि इन घोडियाँ एक लडकी को एक निश्चित समय पर गुरुजी को भेंट चढा देना । लडकी का नाम तोळांदे था ।

समय आने पर सुवारथ अपनी पत्नी के साथ घोडियाँ एवं तोळांदे गुरुजी को भेंट चढाने के लिए ले चला । उन्हीं दिनों जैसल नामक एक भयंकर डाकू था । वह डाका डालकर अपने घर पहुँचा तो संयोग से उसके भोजन में एक बाल निकला । इस पर जैसल नाराज हुआ । उसकी भावज ने ताना मारा कि देखूं ऐसी कौन-सी स्त्री लाओगे, जो मुझ पर नाराज हो रहे हो । जैसल ने कहा कि तुम कहो वही स्त्री में ला सकता हूं । उसकी भावज ने तोळांदे का नाम बतलाया । जैसल उसी समय उसका पता लगाकर उसे लाने के लिए चल पडा । सुवारथ खाती गुरुजी की सेवा में पहुँचा एवं घोडियाँ व तोळांदे उनकी भेंट चढा दी । रात के समय जग्मा हुआ । जैसल घास में छिपकर बैठ गया । उसके डर से घोडियों ने रस्सी तुडवा डाली । गुरुजी ने घोडियाँ बाँधने के लिए अपने चेलों को आज्ञा दी । खूंटा गाडकर घोडी बाँधी गयीं । संयोग से घास में छिपे रहने के कारण जैसल का हाथ खूँटे के

बीच में ही आ गया । परन्तु वह समस्त पीडा सह गया । अन्त में गुरुजी ने भेद प्रकट किया और जैसल उनके सम्मुख खडा हुआ । वह गुरुजी का शिष्य बनने के लिए तैयार हुआ । परन्तु उसने तोळांदे व दोनों घोडियों को गुरुजी से मांगा । गुरुजी ने उनको उसे सौंप दिया । जैसल उनको लेकर अपने घर पहुँचा और अपनी भाभी के सामने उन्हें प्रस्तुत किया । उसके बाद वह अपना घर छोडकर संन्यासी के रूप में तोळांदे के साथ निकल गया ।[१८]

मीरा की ही भांति तोळांदे भी राजस्थान में भक्त रमणी रत्न के रूप में प्रसिद्ध हुई है । इनके गीत 'रातिजगा' और 'जग्मी' में गाये जाते हैं । क्रूरकर्मा डाकू जैसल जाडेचा भी इन्हीं के सम्पर्क से, अपनी दुष्टता छोडकर ईश्वर-भक्त हुआ और जनमानस को सम्पूर्ण और असम्भाव्य परिवर्तन से प्रभावित कर पीर कहलाया । इसलिए प्रसिद्ध है - ''जैसल जगनो चौरटो, जैसल जगनो पीर ।''

जेसल जाडेजा अने सती तोरल[१९] (गुजरात)

ई. स. १३८० में कच्छ में कावोजी नामक राजवी थे उनके दो पुत्र नारणजी और चांदोजी थे । कावोजी की शाख (ज्ञाति-कुल) जेसलजी होने के नाते जेसल जाडेजा कहा जाता है । कावोजी के दोनों पुत्र में नारणजी बडे और चांदोजी छोटे थे । नारणजी शांत स्वभाव के थे जब कि चांदोजी उद्धत, बलवान, स्वच्छंदी और क्रूर स्वभाव वाला था । चांदोजी बडा होता गया तो उनके कुकर्म बढते गये । वह शिकार खेलता, लूंट-फाट करता और लोगों को हेरान-परेशान करता था । चांदोजी की शाख जेसल होने के नाते उनको सब कोई जेसल के नाम से ही पुकारते थे ।

जब बडे भाई नारणजी ने उनको सलाह-सूचन किये तो जेसल जंगल में चला गया और एक टोली-जूथ बनाकर लूंटफाट करने लगा । बाद में जेसल भादली गाँव में रहने चला गया । जेसल की क्रूरता-अनीति बढती गई, उनके पाप बढते गये ।

बचपन से ही वो चोरी-लूंट करता, प्राणीओं का वध करता । उनके हृदय में दया का अंश भी नहीं था । जेसल ने मछलियाँ पकडने के लिए सरोवर की पाली तोड डाली । बगल वाले राजा का खजाना लूंटने के लिये गढ के पास इमली का वृक्ष था उसके पर चढकर चंदन घो की मदद से खजाने में पहुँच गया और राजा का खजाना लूंट लिया ।

एक बार जेसल सौराष्ट्र में चोरी करने के उद्देश से भिखारी का वेश लेकर आया । और जहाँ दो घोडियाँ बंधी हुई थी उनको चुरा ले जाने का विचार आया । रात के समय जब लोग सो गये थे तब मकान के पीछे से घुडहार के पीछे जा कर मकान पर चढ गया और नलिये उखाडकर मकान में घूस गया और एक घोडी को बाहर निकाल कर फिर वापस अंदर से ताला बंद करके जहाँ से घूसा था वही रास्ते से बाहर निकल कर घोडी को लेकर भाग गया । और गाँव से दूर घोडी को बांधकर सुबह वापस आया ।

गाँव के लोग विचार करते थे कि ताला भी अंदर से बंद है घुडहार खुला नहीं है फिर भी कैसे चोरी हो गई । लोगों को अजायब सा लगता था । तो जेसल ने कहा कि चोर बडा चालाक है । वो कैसे घोडी को चुरा के ले गया होगा वो मैं बताता हूँ । ऐसा कह कर मकान बंद कर दिया । फिर रात की तरह उपर से घूसकर ताला खोल कर दूसरी घोडी को बाहर निकाली । फिर मकान-ताला सबकुछ बंद करके वैसा ही कर दिया । बाद में बाहर आकर दूसरी घोडी पर बैठकर दूसरी घोडी भी ले गया । और दिन-दहाड दूसरी घोडी भी चुरा ले गया ।

एक बार बगल के गाँव में शाहुकार ढोलिया पर सोता है वो ढोलिया चुराने की मित्रों में शर्त लगी तो जेसल तैयार हो गया । जेसल रात को शाहुकार के घर पर पहुँचा । शाहुकार सोता था उनके ढोलिये के नीचे कपासिया (रुई के बीज) भर दिया और चारों ओर से पाटी काट डाली । शाहुकार तो कपासिया के ढग पर सोता रहा और जेसल ढोलिया लेकर चला गया ।

एक दिन जेसल अपनी बहन के वहाँ गया और बहन भाणेज को समझाकर गहने ले के चला गया । कई दिन बीत गये लेकिन गहने वापस दिये नहीं । और बहन को कहा कि, शाहुकार के वहाँ गिरवी रखे हैं, अगर चाहिए तो पैसे देकर छूडा कर ले आओ । ऐसे बहन के गहने भी चुरा लिये ।

बिना कारण पशुओं का शिकार करता । कई गायों की चोरी की । कई मोर को मार दिये । मकानों को आग लगा देना, लोगों को मारना, पशु-पक्षीओं को मारना उनका नित्यक्रम हो गया था । उनके दिल में दया-अनुकम्पा का नामोनिशान नहीं था ।

हरण हर्यां लख चार तोळांदे हरण हर्यां लख चार रे ।
वनना मोरला मारिया तोळांदे रे एम जेसल कहे छे जी रे ॥

एक बार जेसल सौराष्ट्र के सलडी-बांसवड गाँव के संत राजवी सांसतिया काठी के यहाँ तोरल घोडी और तलवार चुराने आया । लेकिन रास्ते में गिरनार पर्वत में एक महात्मा योगी मिल गये । उन्होंने कहा, ''तुम कौन हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? तुम बडे बदमाश लग रहे हो ? तुम्हारे कार्य से जगत असंतुष्ट है । तेरा जन्म उच्च कुल में हुआ है लेकिन तेरा कर्तव्य बडा भारी नीच मालूम आता है ।''

योगी महात्मा की बानी सुनकर जेसल को लगा कि मैं मनुष्य मिटकर राक्षस बना हूँ । लेकिन पारस का स्पर्श होने से ही लोहा स्वर्ण बन जाता है, उसी तरह मनुष्य भी राक्षस में से देव बन जाता है ।

जेसल ने योगीजी को कहा मैं ये सब डकैती - चोरी - लूंटफाट छोड दूंगा लेकिन आज जो मैं छेल्ली बार - अंतिम बार कार्य करने जा रहा हूं उसमें सफलता मिले ऐसे आशीर्वाद दिजीए । योगीजी ने कहा ये काम आसान नहीं है । फिर भी थोडा सा कष्ट सहन करने से ये तेरा काम होगा । लेकिन बाद में तूं अच्छा प्रभु भक्त हो ऐसा मेरा आशीर्वाद है ।

जेसल का हृदय परिवर्तन होने लगा । और उसने यह एक चोरी के बाद चोरी-डकैती नहीं करने का निश्चय किया । जेसल संत सांसतिया के घर पहुँचा । सांसतिया के यहाँ प्रभु भजन चल रहा था । पूजा पाठ - भजन पूर्ण होने के बाद घोडी चुराकर चला जाऊँ उसी नियत से घुडहार में छूप गया । लेकिन तोरल घोडीने तूफान मचा दिया । और खीले से बंधी हुई घोडी खीला के साथ बाहर आ गई । किसीने फिर से खीले को जमीन में गाड दिया और जो खीला था वो अंधकार में सोते हुए जेसल की हथेली में गाड दिया । जेसल के हाथ में वेदना होने लगी । जेसल थर थर काँपने लगा । मुझे इतनी वेदना होती है तो दूसरों को कितनी होती होगी । जेसल काँपने लगा और ईश्वर को याद करने लगा ।

सांसतिया के यहाँ पूजा-पाठ का कार्य संपन्न हो गया । भगवान का प्रसाद भी बांट दिया लेकिन एक आदमी का प्रसाद बचा । यह देखकर सांसतिया ने कहा यहाँ कोई नहीं है तो प्रसाद कैसे बचा ? यहाँ कोई छूपा तो नहीं है ? सांसतिया ने दो हाथ जोडकर बिनती की कि, ''भाई तू चोर हो या मित्र, हमारा अच्छा करने आया

हो या बुरा । तेरे सब गुना माफ किये जायेंगे । तुझे जो कुछ चाहिए वो मिलेगा लेकिन तू प्रकट हो ।'' सांसतिया की बिनती सुनकर जेसल बोला, ''मैं यहाँ घोडी के पास हूं । मेरे हाथमें खीला भोंक दिया गया है ।'' ऐसा सुनकर सांसतिया घोडी के पास गया और जेसल को निकाला ।

भाई तू कौन है ? कहाँ रहता है ? यहाँ क्यों आया है ?

तो जेसल ने कहा कि मैं कच्छ में भादली गाँव में रहता हूं, जाडेजा राजपूत हूं, तोरल घोडी और तलवार चुराने आया हूं । मेरा नाम चंदाजी है लेकिन मुझे जेसल के नाम से पहचाना जाता है ।

सांसतिया जेसल को अपनी पुत्री तोरल के पास ले गया । तोरल ने जेसल को प्रसाद दिया । बाद में सांसतिया ने कहा कि ये तोरल, तोरल घोडी और तलवार ले जाओ ।

लेकिन जेसल ने कहा कि मैं तोरल स्त्री को नहीं तोरल नाम की घोडी लेने आया हूं ।

सांसतिया ने कहा मेरी प्रतिज्ञा है कि तूं जो कुछ भी लेने आया है वो प्रतिज्ञा मैं पूरी करूंगा । तूने कहा था कि, तोरल, घोडी और तलवार लेने आया हूं तो, ये तोरल (स्त्री), तोरल (घोडी) और तलवार ले जा ।

जेसल सुंदर स्त्री, तोरल घोडी और तलवार लेकर घोडी पर सवार होकर चला जाता है ।

जाडेजा रे तोळी घोडी तलवार
त्रीजी आयी तोरल नार
जाडेजा रे तमे सरोवर अमे पाळ
एक रे आरामां बेना झीलणा
जाडेजा रे तमे चंपो अमे केळ
एक क्यारामां आपणां दोनुं रोपीयां
जाडेजा रे तमे हीरो ने अमे लाल्य
एक रे दोरामां आपणे परोवीयां

जेसल कुछ बोलता ही नहीं । जूनागढ के पास दो बैल देखे तो उसको चुरा के ले जाने की इच्छा हुई । उसने तोरल के ना कहने पर भी बैल चुरा लिये । जेसल के पीछे कई लोग पडे थे । यह देखकर तोरल ने ईश्वर से बिनती की, 'हे प्रभु मुझे सहायता करो । मैं जाडेजा को सुधारने जा रही हूं, मेरी सहाय करो ।'

तोरल की प्रार्थना सुनते ही जेसल ने बैल को छोड दिये और जो लोग जेसल के पीछे पडे थे वो तोरल के पास आ गये । सब लोग बोले कि बाई तू कौन है ? हमारा चोर यहाँ आया है ? तब तोरल ने कहा मैं मनुष्य हूं और तुम्हारा चोर बैठा बैठा ईश्वर का भजन कर रहा है लेकिन उन सबको जेसल दिखाई नहीं दिया । और सब लोग वापस चले गये ।

बाद में जेसल ने तोरल को कहा कि आज आपने मुझे नया जन्म दिया है ।

आप जो कहोगी वैसा ही मैं करूंगा । तब तोरल ने कहा कि आपने सच्चे मन से भगवान की प्रार्थना की है । भगवान पे विश्वास रखो और भजन करो, सब कुछ अच्छा होगा ।

कच्छ और सौराष्ट्र के बीच समुद्र के जल प्रवाह में नाव में बैठकर जेसल और तोरल आते हैं तब समुद्र में तूफान आ जाता है । नाव हिलने लगती है, उछल-कूद होती है, बचने की कोई उम्मीद नहीं है तब जेसल गभरा जाता है लेकिन तोरल शांति से सब कुछ देखती है । जेसल जब तोरल से कहता है कि, आपको डर नहीं लगता ? आपको गभराहट नहीं होती जब मृत्यु सामने है तो ? तब तोरल ने कहा कि, आप तो पुरुष हो । मर्द होने से भी आप डरते हो ? डर तो सभी को होता है फिर भी मैं तो नहीं डरती और याद दिलाती हुई तोरल कहती है कि, आप भूल गये कि जब बैल चुराये थे तब ईश्वर ने आपको बचाये थे । आप वहाँ बैठे थे तो भी आप दिखाई नहीं दिये थे । सच्चे मन से की गई ईश्वर प्रार्थना से प्रभु अवश्य मदद करता है । आप प्रभु का भजन करो और अपने पापों का प्रायश्चित करो ।

यहाँ लोकगीत के माध्यम से तोरल प्रश्न करती है और जेसल जवाब देता है :

तोरल : पाप तारुं परकाश जाडेजा धरम तारो संभाळ रे,
तारी बेडली ने बुडवा नहीं दऊं जाडेजा रे एम तोरल कहे छे जी ॥

जेसल : घणा कर्या अपराध तोरलदे घणा कर्या अपराध रे,
मारी बेडली हवे नहि तरे तोरलदे रे एम जेसल कहे छे जी ॥

तोरल : धरम तारो संभाळ जाडेजा धरम तारो संभाळ रे,
तारी बेडलीने बुडवा नहीं दऊं जाडेजा रे एम तोरल कहे छे जी ॥

जेसल : हरण हण्या लख चार तोरलदे हरण हण्या लख चार रे,
वनना मोरला मारिया तोरलदे रे एम जेसल कहे छे जी ॥
लूंटी कुंवारी जान तोरलदे रे लूंटी कुंवारी जान रे,
सात वीसु मोडबंधा मारिया तोरलदे रे एम जेसल कहे छे जी ॥
गोंदरेथी वाळी गाय तोरलदे रे गोंदरेथी बाळी गाय रे,
गौंधण तरस्या वाळीया तोरलदे रे एम जेसल कहे छे जी ॥
बेन भाणेज दुभावीया तोरलदे रे बेन भाणेज दुभाविया रे,
तोडी सरोवर पाळ तोरलदे रे एम जेसल कहे छे जी ॥
जेटला माथाना वाळ सतिराणी जेटला माथाना वाळ रे,
तेटला कुकरम तो में क्यां तोरलदे रे एम जेसल कहे छे जी ॥
बोल्या जेसल राय तोरलदे रे बोल्या जेसल राय रे
संत अमरापुरमां वसे तोरलदे रे एम जेसल कहे छे जी ॥

तोरल : धरम तारो संभाळ जाडेजा धरम तारो संभाळ रे,
तारी बेडली ने बुडवा नहीं दऊं जाडेजा रे एम तोरल कहे छे जी ॥

इस तरह जेसल जाडेजा सति तोरल के सम्मुख अपने किये कुकर्मों का पश्चाताप करता है अपने कर्मों का स्वीकार करने से प्रभु प्रसन्न होते हैं । समुद्री तूफान बंद

हो जाता है । और जेसल और तोरल समुद्र पार करके सही सलामत कच्छ में अपने गाँव भादली पहुँच जाते हैं । और जेसल ईश्वरमग्न होकर प्रभुभक्त बन जाता है । जेसल को ज्ञानप्राप्ति होती है । जेसल के यहाँ साधु आने लगे और जेसल भक्त बनकर प्रसिद्ध हो गया । बाद में जेसल भादली गाँव छोडकर अंजार में आ जाता है ।

जेसल रात-दिन भजन करता रहता था इसलिए उसके पास भरणपोषण करने के लिए कुछ था ही नहीं । फिर भी जो कोई अपने आंगन आये उसको भोजन किये बिना जाने नहीं देता । एक दिन जेसल को अपने गाँव भादली जाने को हुआ तो तोरल को कहा कि अपने आंगन आये हुए किसी को भूखा मत जाने देना । ऐसा कहकर जेसल भादली गया ।

जेसल के जाने के बाद एक साधु आया । तोरल ने उसको बडे आदर से घर में बिठाया । लेकिन साधु को भोजन कराने के लिए कुछ था ही नहीं । तोरल सुधीर नायक बनिये के वहाँ गई । लेकिन सुधीर बनिया मोहांध था । उसने तोरल के पास अभद्र मांग की । तोरल संकट में आ गई । भोजन किये बिना साधु चला जाय वो उसे मंजूर नहीं था और अभद्र मांग से उनका सतीत्व लूट जाता था । साधु को जल्दी थी । इसलिए तोरल ने हां भर दी और रात को आने का वचन देकर रसोई का माल सामान लेकर चली गई । रसोई बनाकर साधु को भोजन कराया । साधु विदा हुए । साम को जब जेसल घर पर आये तो तोरल ने सबकुछ बता दिया । सुधीर बनिया कुदृष्टि वाला है उसका उद्धार करना चाहिए । उसका अज्ञान दूर करना चाहिए । ऐसा कहकर तोरल को लेकर जेसल रात को सुधीर के घर पहुँचे । बारिश शुरु हो गई थी । बीजलियाँ चमकती थी । जेसल ने तोरल को सुधीर के घर छोड दी और नीचे बैठा । तोरल प्रथम मंजिले पर गई तो सुधीर ने कहा कि, ''आप के पाँव कादव से बिगडे होंगे धो डालो ।'' तब तोरल ने कहा कि, ''मेरे पाँव नहीं बिगडे हैं ।'' तब सुधीर ने कहा कि ''इतनी बारिश हो रही है फिर भी आपके पाँव नहीं बिगडे है ?'' तब तोरल ने कहा कि, ''जेसलजी मुझे कंधे पे बिठा के लाये हैं तो मेरे पाँव कैसे बिगडेंगे !''

जेसल का नाम सुनकर सुधीर थरथर कांपने लगा । और बोला कि, ''माताजी मैं अधम हूं । नीच हूं । मुझे क्षमा करें । मैं अपने शरण हूं ।'' तब तोरल ने कहा सुधीर शांत हो जाओ । ईश्वर का भजन करो । सुधीर जेसलजी के पाँव में पडा और गिडगिडाने लगा । बाद में सुधीर ईश्वर भक्त बन गया । सुधीर का हृदय परिवर्तन हो गया । इसी तरह तोरल ने तीन नर का उद्धार किया ।

तोरले त्रण नर तार्या, सांसतियो ने सुधीर ।
जेसल जगनो चोरटो, पलमां कीधो पीर ॥

मेवाड (राजस्थान) में आये हुए मेवासागर गाँव में मालदे बडा जागीरदार था । उनकी रानी रूपांदे थी । मालदे और रूपांदे ने कच्छ के जेसल-तोरल की प्रशंसा सुनी थी । वो दोनों जेसल-तोरल को मिलने के लिए कच्छ आने को निकले । दूसरी ओर

जेसल-तोरल ने मेवाड के मालदे और रुपांदे की प्रशंसा सुनकर अभिभूत हुए थे । वो भी मालदे-रूपांदे को मिलने के लिए कच्छ से मेवाड जाने को निकल पडे । रास्ते में चारों एक-दूसरे को मिले लेकिन पहचान नहीं पाये । बातबात में पहचान हुई और चारों आश्चर्य में पड गये । चारों ने ज्ञान और उपदेश की बातें की । सुबह मालदेजी और जेसलजी दातून करने के लिए बैठे तो तोरल ने कहा कि, 'यह पानी तो नमक वाला है पीने लायक नहीं है ।' तब रूपांदे ने कहा कि, 'तोरलदे आप तो सती है । आपकी इच्छा हो तो समुद्र भी आप मीठा अमृत समान कर सकती हो, तो यह कूआं आपके लिए क्या चीज है ?' तोरलदे ने विचार किया कि रूपांदे मेरी कसौटी करना चाहती है इसलिए कटाक्ष में बोली है ऐसा सोचकर ईश्वर की आराधना की । तोरल की प्रार्थना से कुएँ का पानी मीठा हो गया ।

घरे भूल्या धोरी नमे कुवे कडवा पाणी
आधारे अमृत हुवा ए तोरल काठी राणी ॥

फिर मालदे और रूपांदे के आग्रह को वश होकर मेवाड जाते हैं । कई दिनों रहकर तोरलदे और जेसल जी वापस कच्छ अंजार आते हैं ।

वर्षो के बाद मेवाड से मालदे और रूपांदे का पाठपूजा और भजन का निमंत्रण आता है । निमंत्रण का अपमान नहीं किया जा सकता और दोनों साथ में जा नहीं सकते इसलिए जेसल जी की आज्ञा से तोरलदे अकेली मेवाड जाने की तैयारियाँ करती है । तब जेसलजी अपनी व्यथा व्यक्त करते हुए कहते हैं :

रुदियो रुवे मायलो भीतर जले रे जी,
आ दुःख कोने रे संभळावुं जेसल कहे छे जी ॥
रोई रोई कोने रे बतावुं रे जाडेजो कहे छे जी,
अमे रे हतां, तोळी राणी उडे जल बेडला जी ॥

तोरलदे मेवाड जाने को तैयार हुई लेकिन उनका मन नहीं था । फिर मिलेंगे या नहीं ऐसे विचार आने लगे । फिर भी जल्दी वापस आने को कहकर तोरलदे मेवाड जाने को निकल पडी । जेसलजी ने कहा, ''मेरी ओर से दर्शन किजीयेगा और सोनैया पाट रखना ।''

तोरलदे को अकेली आई हुई देखकर मालदे और रूपांदे ने कहा कि जेसल जी क्यों न आये ? जेसलजी का स्वर्गवास तो नहीं हो गया ? दीये की बाती कम होने से शंका सच लगती है । तोरल सोनामुहर पाट पर रखकर दर्शन करके वापस अंजार आने को निकल पडती है । जैसे जैसे कच्छ नजदीक आता है तो जेसलजी के समाचार सुनने को मन व्याकुल होता है । अंजार की सरहद में आये तो ग्वालों को पूछा तो उन्होंने बताया कि जेसलजी ने समाधि ले ली है । जेसलजी ने समाधि लिये कितने दिन हुए ? तो ग्वालों ने बताया कि आज तीन दिन हुए हैं । जेसल पीर की जाने की खब्र सुनते ही तोरल का संसार सूना हो गया । मैं अकेली रहकर - जीवित रहकर क्या करुं ऐसी हृदयद्रावक और शोकार्द वाणी से पृथ्वी माता को अपने को भी आश्रय देने की बिनती की ।

पीर कहेवाणा रे जेसल ने तोळी बाई,
साधु कहेवाणा रे जेसल ने तोळी राणी ।
जोने दिलडे भ्रांत कदी नाणी रे,
अला हो जगमा सिद्धा पीर जेसल ने तोळी ॥

जेसलजी के स्वर्गवास से मालदे-रूपांदे, सांसतिया सब आते हैं और तोरलदे को उपदेश देते हैं ।

तोरलदे को मेवाड जाने के बाद सुधीर को समाधि तैयार करने की जेसलजी ने जिद की थी । अंजार नगर के सब लोग इकठ्ठे हुए और जेसलजी समाधि में बैठ गये । ऐसा सुनकर तोरलदे ने भी जेसलजी की समाधि के पास अपनी समाधि तैयार करने को कहा । समाधि तैयार होने के बाद सब को राम राम कहकर तोरलदे ने भी तीसरे दिन समाधि ले ली ।

जाडेजा तारो तंबूरो सतीना हाथमां जी,
सती करे छे अलखनो आराध
जेवा मोकल्यांतां मेवाडमां ।
तेहुरा बोल संभाळ
जाडेजा रे वचन सांभळी वहेला जागजो रे जी
जाडेजा रे मेवाडथी मालो रूपां आवीयां रे जी
त्रण दिवस ने त्रण घडी ।

कच्छ में आये हुए अंजार शहर में जेसलपीर और तोरलदे की समाधि आई हुई है । जो जेसल पीर और सती तोरलदे से जानी जाती है । गुजरात में उसकी बडी महिमा है । और आज भी जेसल पीर से पूजा जाता है ।

गुजरात और राजस्थान का पहले से नाता रहा है । राजस्थान में भाटी उगमशी के शिष्य संत मालदे-राव मल्लीनाथ और रूपांदे ने भी (ई. स. १३९९ में) जीवित समाधि ली थी ऐसा माना जाता है । जेसल-तोरल ने अंजार-कच्छ में ई. स. १३५१ में समाधि ली थी, ऐसा माना जाता है ।

जसमा ओडण(२०)

(राजस्थान और गुजरात में प्रचलित 'जसमा ओडण' की संवेदना की कथा)

गुजरात के पाटन के राव खेंगार ने सोचा कि पाटन में एक ऐसा सरोवर बनाया जाय जो दुनिया में सबसे बडा हो और भविष्य में भी कोई उसकी होड न कर सके । इस कार्य में गुजरात, मारवाड, मालवा, मेवाड सब जगह से ओड परिवारों गुजरात आ पहुँचे । और देखते देखते में गुजरात में पहुँचते ही अपनी अपनी झोंपडियों बनाने लगे । और देखते-देखते एक भरी-पूरी बस्ती बस गयी ।

जसमा ओडण की खूबसूरती के सामने इन्द्रलोक की अप्सराएँ भी पानी भरती थीं । मानो हजार स्त्रियों का रूप एक ही देह में समा गया हो ।

कुछ दिन बाद राव खेंगार घोडे पर सवार होकर सरोवर की खुदाई देखने के लिए वहाँ आया । यकायक उसकी नजर जसमा ओडण पर पडी । जसमा को देखते ही राव खेंगार मूर्छित हो गया । मूर्छा टूटने पर ही राव खेंगार आँखे मूंदकर बडबडाने लगा, ''ओडण.... ओडण.....।''

दूसरे दिन राव खेंगार घोडे पर सवार होकर सरोवर की पाल पर गया । और बोलने लगा, ''मैं पाटन का सिरमौर राव खेंगार हूं .... राव खेंगार और वह एक अदनी ओडण ! गधों की पीठ पर भर-भर गूणतियाँ माटी ढोने वाली । पाली पर माटी का ढेर लगाने वाली । धूल से अटी हुई । राजा के मन की बात सुनकर अपना भाग्य सराहेगी । घोडे पर सवार राजाने सरोवर की तीन बार परिक्रमा लगायी । तमाम ओड-ओडणियों ने 'खम्मा घणी, खम्मा घणी' की जय-जयकारों से अतसयान उपर उठा लिया, मगर जसमा तो जैसे निपट अन्धी और बहरी हो । अपने गधे को हाँकने के उन्माद में उसके घोडे की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा । आखिर राव खेंगार घोडे से उतरकर वह जसमा के पास आया और हकलाते पूछा, ''रूपसी, तेरा नाम.... ?''

एक बार तो जसमा ने सुनी-अनसुनी कर दी ! काफी दूर तक उसके पीछे चलते-चलते बमुश्किल वही सवाल फिर दुहराया, ''रूपसी, तेरा नाम तो बता....?''

जसमा मीठे सुर में बोली, ''मेरा नाम, भगवान का नाम तो नहीं है, सो उसकी माला जपोगे !''

''एक बार तेरा नाम बता तो सही, मैं उसे आठों पहर जपूँगा.....।''

''मेरा नाम क्यों जपोगे.... और वह भी आठों पहर, तुम्हारी अक्ल भाँग तो नहीं चरने लगी ?''

राव खेंगार ने कहा, ''मेरा नाम राव खेंगार है.... राव खेंगार । पाटन का राजा हूं । तुम लोगों को काम पर लगाने की खातिर यह सरोवर खुदवाने की इच्छा हुई । तू कहे तो मैं हर रोज तुझे सोने की मोहर मजूरी में दूँ...।''

जसमा को यह बात काफी बुरी लगी । गम्भीर भाव से जवाब दिया, ''मेरा नाम जसमा ओडण है... जसमा ओडण । मजूरी से एक कौडी भी अधिक लेना गाय का लहू समझती हूँ । तुम जैसे अनेक ठाकुरों ने, सेठ-साहूकारों ने मुझे बहुतेरे लालच दिये,

पर मैंने उधर कान तक नहीं दिया । मेरे गधे भले, लकडी का ढाँचा भला और यह माटी भली ! काम, काम और काम ही मेरा इष्ट है । मेरी आस्था है । लोभ-लालच के मारे इधर-उधर झाँकती भी नहीं । रही सुख-दुःख की बात, अपने से सुखी मैं ईश्वर को भी नहीं मानती ! मैं बामन-पण्डितों की तरह पढ़ी-लिखी भी नहीं हूं । पर तुम्हारी बातें सुनकर मुझे लगा कि जानना चाहो तो तुम्हें बहुत-कुछ बता सकती हूं । समझ नहीं पडती कि तुम जैसा ठोठ राजा क्योंकर राज चलाता है ? कैसा न्याय करता होगा... ?''

ऐसे अकल्पनीय रूप की महारानी और इतनी भोली । उसने बिना किसी हील-हुज्जत के उसी क्षण हामी भरी, ''तू जो सिखाए, सीखने को तैयार हूं । किन्तु यहाँ जंगल में नहीं, महलो में स्वर्ण - निकेतन में । उसके सुनहरे चित्र देखकर तू बौरा जाएगी । यदि तूने मुझे पारंगत कर दिया तो अमोलक हीरे-मोतियों से तेरी टोकरी भर दूँगा । तेरी इच्छा होगी तो आधा राज्य सौंप दूँगा । मुझे ऐसी-ऐसी विद्या सीखा, जिसे अब तक कोई सीख नहीं सका ।''

''लेकिन अपना काम छोडकर मैं तो स्वर्ग में भी नहीं जाना चाहती । काम करते-करते ही काफी-कुछ सिखाती चलूँगी । सबसे पहले धरती को बाँचने का हुनर बताऊँगी । बस, आँखे खुली रखने की जरूरत है । इस सरोवर के बहाने हम इसका कलेजा खोदते हैं, अनगिनत घाव करते हैं, फिर भी वह मुस्कराती है ! जब जरूरत के हिसाब से इसका कलेजा खोदना बन्द करेंगे और इसी चौमासे में वह छिलाछिल भर जाएगी, तब हजारों पंछी-जानवर, ढोर-डंगर और बटोही इसका पानी पीकर अपनी प्यास बुझाएँगे । पनिहारिनें पायल झनकातीं पानी भरेंगी । कुओं के बहाने गहरे घाव खोदेंगे, तब भी वह लहू की बजाय ऐसा अमृत सौंपेंगी, जिसके सहारे हम सबकी काया टिकती है । हल की तीखी नोक से उसकी देह उघाडकर जब उस में बीज गेरते हैं तो एक दाने के बदले अनेक दाने लुटाती है । धरती पर चलने वाले प्राणियों को बाँचो, हवा में उडते पंछियों को बाँचो, झाड-बिच्छ और फूलों को बाँचो, चाँदनी और उजाले को बाँचो । रात के अँधेरे में टिमटिमते असंख्य तारों को बाँचो तो सुख और आनन्द का पार नहीं रहेगा । एक बात पूछती हूँ । सच बताना कि तुमने बादल बिजली और बरखा को कभी भूल-चूक से भी बाँचा है । बरसती बूँद-बूँद में तो अथाह ज्ञान भरा है....।''

राव खेंगार तो जसमा की वाणी सुनकर ही तुष्ट हो गया, मगर उसकी बातों का झीना मर्म तो कुछ पल्ले ही नहीं पडा । फिर भी उसके अज्ञान का आभास कराने की मंशा से गुमान के लहजे में कहने लगा, ''ये भी कोई बाँचने की चीजें हैं...! मेरे गुरुजी की सीख के अनुसार महाभारत बाँचो, गीता-रामायण बाँचो, पंचतन्त्र बाँचो तो बुद्धि पर ऐसी चमक आये कि क्या कहना ..... ।

जसमा के दमकते ललाट में त्रिशूल-सा उभर आया और धीरज के स्वर में बोली, ''तुमने पोथियों के नाम बताए उन्हें अच्छी तरह समझने के बाद ही कह सकती हूँ कि कुदरत के कण-कण में उनसे ज्यादा ज्ञान भरा है ! हाँ, अलबत्ता उन्हें लिखने वाले बहुत अनुभवी और ऊँचे ज्ञानी थे । लेकिन अब तोते की नाईं बिना समझे रटने से उस मरम को नहीं समझा जा सकता । तुम्हारे सुनहरे महल और उनकी चमकती पच्चीकारी को देखने

पर भी मेरे मन में रती भर भी ईर्ष्या नहीं होगी । उलटे मेरी झोंपडी ज्यादा सुन्दर लगेगी । मनुष्य बाहर की सम्पत्ति से मालदार नहीं बनता, भीतर की पूँजी से बडा बनता है । रात को समय मिले तो जरूर आना, अपने पति से मिलाऊँगी । वह सचमुच मुझ से अधिक गुणवान है । दो नन्हे-मुन्ने बच्चे हैं मेरे । एक बेटा और एक बेटी । मेरा वश चला तो उन्हें खरा मनुष्य बनाऊँगी, जो भीतर से भी धनवान हों । उनके अन्तस् में चाँद जैसी चाँदनी धुली रहे । हमारी तरह काम ही उनका धर्म और ईश्वर हो और वे उसी की पूजा करें ! काम करते-करते ही बात करने का मन हो तो दिन के समय चाहे जब आ जाना ।'' कुछ सोचकर थोडी देर बाद कहा, ''जो राजा भीतर से इतना कंगाल हो उसे राज करने का कोई अधिकार नहीं है ।''

एक गँवार ओडण के मुँह से ऐसी बातें सुनकर राजा हतप्रभ-सा हो गया । अचरज और हताशा के लहजे में कहने लगा, ''मैं तो तुम्हें अक्षत युवती मान रहा था । दो बच्चों की माँ का शरीर ऐसा गठा हुआ नहीं होता । तेरा पति कितना भाग्यशाली है कि उसे तुझ जैसी बहू मिली । सच बताना, दोनों एक ही खाट पर सोते हो....?''

जसमा ने मुस्कराते प्रतिवाद किया, ''खाट पर तो हम अब तक नहीं सोये । साफ-सुथरा आँगन ही हमारी सेज है । सहवास की वेला में एक एक तारे को बीनकर अपने हृदय में जडती हूँ । तुम कभी इस तरह के आनन्द को बरतकर तो आजमाओ ! जब दो बार मेरी कोख में आशा का संचार हुआ तो पहले तेरस का चाँद कोख में जडा और दूसरी बार पूनम का ! मेरे कहने से ही रानीजी को पूछना कि उन्होंने कोख में किस चाँद या सितारे को धारण किया ? इस में संकोच जैसी कोई बात नहीं । यदि तुम नहीं पूछ सको तो रानीजी को यहाँ ले आना, मैं पूछ लूँगी । यही तो बातें हैं पूछने की....। ''

राव खेंगार आकबाक-सा मुँह फाडे ओडण की आँखों में घूरने लगा । कुछ होश आते ही आश्चर्य-चकित होकर पूछा, ''पाटण की रानियों को यहाँ लाऊँ, ओडों की बस्ती में.... तेरी अकल तो नहीं मारी गयी... ?''

जसमा ने हँसते-हँसते ही कहा, ''मेरे खयाल से राजा तो रानियों से बढकर ही होता है । जब वह एक भिखारी के उनमान मुझ जैसी ओडण के पीछे-पीछे लार टपकाता है, तब उसकी शान नहीं घटती ? फिर रानियों के यहाँ आने पर उनका मान क्योंकर घटेगा ? ऐसी दोगली मर्यादा से राजा का काम चल सकता है, हम ओडों का नहीं चलता । कल मेरी पीठ देखने से ही तुम बेहोश हो गये थे, तभी मुझे अनुमान हो गया कि पाटण के राजा को मेरे तलवे चाटने में कतई आनाकानी नहीं होगी .....।''

राव खेंगार को झटका लगते ही उसके चेहरे पर खीझ उभर आयी । कडकते सुर में पूछा, '' क्या कहा... मैं तेरे तलवे चाटूँगा.... ?''

जसमा ने मुस्कराते हुए धीमे से कहा, '' मैं चाटने दूँ तब ना....।''

राजा अपने ही जाल में फँसता गया । हकलाते पूछा, ''क्या मैं इतना गया-गुजरा हूँ कि तू मुझे अपने तलवे भी नहीं चाटने देगी ? एक अदनी ओडण का इतना गुमान.....! याद रखना मैं तेरे तलवे चाटकर ही रहूँगा । सच्ची मुहब्बत गाल, होठ, हथेली और तलवों

में भेद नहीं करती । अभेद की पवित्र भावना ही प्यार की सही पहचान है !''

जसमा ने खुशी का अभिनय करते गम्भीर स्वर में पूछा, ''क्या सचमुच आप मुझ से सच्ची प्रीत करते हैं...?''

''हाँ सच्ची प्रीत.... सोलह आने सच्ची प्रीत....।''

होठों तक उछली मुस्कान को दबाने की व्यर्थ चेष्टा करते जसमा ने फिर पूछा, ''मुझ से पहले कितनी रानियों और बाँदियों से सोलह आने सच्ची प्रीत कर चूके हैं.. ?''

राव खेंगार कुछ देर तक असमंजस में उलझा रहा । फिर यह सोचकर कि राजा पर कैसा अंकुश । गर्व के साथ कहने लगा, ''रानियाँ तो केवल तीन... पर बाँदियों का कोई हिसाब ही नहीं । राजा तो जितनी औरतों से प्रीत करें, उसकी उतनी ही शान बढती हैं । उसकी सत्ता और शक्ति की यही पहचान है । वह तो भगवान का अवतार होता है । तेरा रूप देखकर मुझे पहली बार महसूस हुआ कि पहले वाली प्रीत सच्ची नहीं थी, प्रीत का वहम था, फक्त वहम.....! ''

राव खेंगार को जसमा ने कहा, ''मानती हूँ, आपकी बात एकदम सही मानती हूँ । यदि मुझ से बेशी रूप वाली कोई अप्सरा मिल गयी तो मेरे प्रति जो आपकी खरी मुहब्बत है, वह वहम की धुँध मात्र रह जाएगी । और तुम्हें नयी अप्सरा से सच्ची प्रीत हो जाएगी– सोलह आने सच्ची प्रीत.....।''

राजा ने चुनौती के लहजे में कहा, ''ऐसी बात सपने में भी नहीं हो सकती.... तुझ से अधिक रूपवती अप्सरा सारी दुनिया में नहीं मिल सकती, मेरे कहे पर विश्वास कर....।''

''कैसे विश्वास करुँ....?'' जसमा ने मजबूरी के आशय से जवाब दिया, ''यह दुनिया बुहत लम्बी–चौडी है । सभी सुन्दर औरतों की तलाश करने में हजार जनम भी थोडे हैं । मेरे हिसाब से तो पहुँच के परे की औरत सबसे ज्यादा खूबसूरत होती है...।''

उस मन–पसन्द बातचीत के बीच जसमा के पति ने दोनों की पीठ पीछे बाधा उपस्थित कर दी, ''बातचीत भले ही करो, पर काम में नुकसान नहीं होना चाहिए । अपने लिए काम ही राम है....।''

दोनों ने चौंक कर पीछे देखा । जसमा ने बेहिचक परिचय कराया – ये मेरे पति है, मेरे बच्चों के पिता । इनके अलावा दूसरा पुरुष मुझे नजर ही नहीं आता.....।

थोडी देर बाद जसमा ने राव खेंगार की ओर हाथ का इशारा करते हुए अपने पति से कहा, ''ये पाटण के राजा है, मुझे सच्ची प्रीत करते हैं.....।''

''कोई बात नहीं, प्रीत करना बुरा नहीं है.....।''

''लेकिन प्रीत के बदले आधा राज्य देना चाहते हैं.....।''

''यह बूरी बात है । प्रीत के बदले भाव–ताल तो वेश्याओं से किया जाता है । प्रेम तो बदले में निखालिस प्रेम की ही माँग करता है । तू इनसे प्रेम करे तो मुझे एतराज नहीं होना चाहिए । यह बहुत बेजा बात है....।''

''ऐसे लिजलिजे आदमी की प्रीत फक्त रानियों और बाँदियों के भाग्य में ही लिखी होती है ।'' फिर हँसते हँसते कहने लगी, ''इस तरह के राजा या महाराजा से प्रीत करने

की खातिर तेरी गंध भी तीन बार सोचेगी... तीन बार । दुनिया की किसी औरत को मँगते वाली प्रीत सपने में भी नहीं सुहाती । प्रीत करे तो रिरियाने की दरकार ही कहाँ है । भले ही वह राजा हो चाहे अखूट मायापति । सच पूछिए तो मुझे बेचारी रानियों और बाँदियों पर तरस आता है कि उन्हें एक ढुलमुल राव-उमरावों से मुहब्बत करनी पडती है.... ।''

जसमा की बात सुनकर राव खेंगार उलझन में पड गया । और गुस्से में आकर समसमा गया । लेकिन करे क्या ? युद्ध में बिना लडे ऐसी बुरी हार तो कभी नहीं हुई । क्या करने से कब्जे में आ सकती है ? सत्ता, माया और तलवार की शक्ति को तो ये शक्ति ही नहीं मानती । आया तो था राज्य सिंहासन का रुतबा जताने, पर जसमा ने तो उसे इल्ली से भी गया-गुजरा साबित कर दिया । राव खेंगार ऐसी उलझन में पडा था तब पास आकर जसमा ने पूछा, ''ऐसी क्या बात हो गयी ? किस गुत्थी में उलझे हो ?''

राव खेंगार की सारी ख्याति डगमगाने लगी, फिर भी उसने झुकना नही चाहा । तनिक रूआब से जवाब दिया, ''बात तो हुई जैसी ही हुई है । पर अभी बताना नहीं चाहता । तीन बरस बाद सरोवर पूरा खुदने पर मन की बात दरसाने की योग्यता मुझ में हुई तो अवश्य बताऊँगा । मगर उस से पहले एक छोटी-सी बात अभी बताना चाहता हूँ, मान लो तो मैं जीवन भर तेरा एहसान मानूँगा । पहले वचन दे....।''

''पहले वचन कैसे दूँ..। कितनी बचकानी बात करते हैं ?

मानने जैसी बात होगी तो पल भर की भी देरी नहीं करूँगी और न मानने जैसी होती तो उम्र भर नहीं मानूँगी ।''

''बात तो मानने जैसी ही है, पर कहने में संकोच होता है...।''

''ठहरो मत, चलते रहो.... मेहनत और पसीने की नियामत ही मेरे लिए सबकुछ है । इसका नुकसान मैं झेल नहीं सकती । पूरा काम न करूँ तो मुझे नींद नहीं आती । निशंक बताओ ....।''

''बिना बताए मुझे चैन नहीं पडेगा । मगर बताना आसान भी नहीं है । तू वचन देती तो मेरा हौसला बढ जाता । फिर भी बताना जरूरी है कि जब से तुम लोग काम पर लगे हो, उस दिन से मैं मजदूरी तिगुनी करना चाहता हूँ । प्रत्यक्ष देखने पर ही मुझे पता चला कि तुम लोगों का काम बहुत कठिन और कल्याणकारी है....।''

जसमा सहज भाव से बोली, ''यदि शुरुआत से ही यह मजदूरी खुल जाती तो किसे भी एतराज नहीं होता । लेकिन अब यह बात मानने पर हर व्यक्ति वही सोचेगा कि मेरी प्रीत की वजह से ही यह दक्षिणा मिली है । दूसरों की बात तो दरकिनार, मुझे और मेरे पति को भी यह इनायत मंजूर नहीं होगी । हम ओड हैं, बामन नहीं । बेबात की यह दक्षिणा हमें पचेगी नहीं । फिर भी इतनी जल्दबाजी करने की जरूरत ही क्या है ? तीन बरस बाद जब यह तालाब हिलोरें लेने लगेगा तब अपने पसीने का उचित प्राप्य हम राजी-खुशी कबूल कर लेंगे । परन्तु होना चाहिए प्रीत की बजाय मेहनत और पसीने का मोल । आपको मंजूर हो तो मैं अभी वचन देने को तैयार हूँ ।''

पाटण के राव खेंगार को तत्काल कुछ उत्तर नहीं सूझा । तब जसमा ओडण का धीरज छूटने लगा । तकाजा करते बोली, ''कुछ जवाब तो दो... यों चुप रहने से क्या पता चलेगा ।''

राव खेंगार का हृदय होठों की राह प्रकट हुआ, '' आज जवाब देने का कुछ मतलब नहीं है । जिस शुभ घडी में यह तालाब छिलाछल भर उठेगा, तब तट पर खडे रहकर जो भी जवाब सूझेगा वही सच्चा जवाब होगा....।''

राव खेंगार के ये खरे बोल सुनकर जसमा ओडण विचलित तो जरुर हुई, पर उसके कदम डगमगाये नहीं । उतावली दरसाते कहने लगी, ''चलते चलो, रूको मत.... ।''

उसने मुस्कराते हुए अदेर जवाब दिया, ''अब साथ चलने की शक्ति नहीं है । रुकना ही पडेगा । मगर याद रखने की सार बात यही है कि हम सात कदम से अधिक साथ चले हैं...।'' इतना मन्त्र सुनकर पाटण का राव खेंगार तत्काल मुडकर तेज कदमों से चलने लगा । जसमा ओडण थोडी देर ठहरकर तब तक देखती रही जब तक वह ढलान से उतरकर अदीठ नहीं हो गया । उम्र के इस पडाव पर पहली बार वह तनिक उहापोह में उलझ गयी थीं ।

मेह - उजली की कथा[२१] (गुजराती)

'तेर तांसळ्यिुं' इस शब्द से जानी जाती तेरेक तरवारधारी गुजरात की सौराष्ट्रीय जातियाँ आपस में विवाह संबंध करती है यह तो ठीक है किन्तु विवाह किस्सों की चमक अपने अन्तर में संग्रहित करतीं हैं । मूल भावना तो धार्मिक माने जाते प्रतिबंध के प्रति भी अप्रियता का अनुभव करता था । इतना ही नहीं किन्तु उस रुढिगत प्रतिबंध ने धूल में रगड डाले एक प्रेम - विवाह की घटना तो शकुंतला-दुष्यंत की कहानी का स्मरण कराती है, जो ऐसे करुण भावों के साथ एक लोकगाथा में उतरी है । और उस गाथा के आद्यपर्यन्त सत्तर जितने दोहों का गुच्छा सिवानों, खेतों और पहाडों-टीलों पर सोरठ के श्रमजीवियों के कंठ तथा नयनों को अश्रूभीगा बनाता है ।

वह है मेह-उजली की शोकान्त प्रेम-कथा । एक नगरवासी राजपुत्र था और दूसरी वनवासिनी चारण कन्या थी । इन दोनों कौम के बीच भाई-बहन का संबंधधर्म चलता है । यदि इसका उल्लंघन हो तो गौ-हत्या के बराबर माना जाता है । नगरवासी राजकुमार और वनवासी गोपकन्या के बीच प्रेम उत्कटता की परिसीमा पर पहुँच गया था । किन्तु मेहकुमार आखिर में रूढिधर्म की धमकी का भोग बना, और किसी भी रूढिधर्म को नहीं माने इतना तीव्र प्रेम गोपकन्या उजली को सामाजिक अपवाद के विरुद्ध तथा पिता की चाहत के विरुद्ध बागी बनाकर राजनगर में खींच ले गया । वहाँ वह मेहकुमार के महल की छत के नीचे खडी होकर पहले तो चिरौरी करने लगी :

मेनी मेडी हेठ, उजळी अरदासुं करे,
मोढ देखाड मे ? अमे भोठां पडिये भाणना ।

(महल के नीचे खडी होकर उजली चिरौरी करती है, मुँह दिखाओ मेह नहीं तो हम शर्मिंदा होंगे ।)

उत्तर में कुमार ने निषेध बताया :

चारण एटलां देव (अमे) जोगमाया करी जाणीए,
लोहीनां खपर खपे, तो बूडे बरडानो धणी,

(तुम चारण पुत्री-पूजनीय हो : तुम तो खून का खप्पर हो, उसे पीऊँगा तो मैं बरडा का राजकुमार निर्वंश हो जाऊँगा ।)

उजली ने ताना मारा :

साकरने सादे बोलावतो, बरडानो धणी
(आज) कूंचा कांऊ काढे, जाते दा-डे जेठवा ।

(हे बरडा प्रदेश के स्वामी तुम तो मुझे मधुर आवाज से बुलाते थे, तो आज क्यों मुँह में से कूचा जैसे शब्दों को निकालते हो !)

इतना ही नहीं, गोपकन्या के उदर में गर्भ होगा । या स्वयं अपने शरीर को कभी का भोगे जाने की दशा का निर्देश करती होगी ।

नळीयुं हतीयुं नकोर, ते दी बोलावतो, बरडाना धणी,
जांगे भांग्यां जोर, जातां कीधां जेठवा ।

(जब मेरे पैर की नलियां मजबूत थीं तब तू मुझे बुलाता था किन्तु आज मेरी जांघ का जोर टूट गया है इसलिए क्या तुम मुझे छोड रहे हो ?)

कुमार – ने कृपानिधि बताई :

कण ने दाणा कापे, भण्य तो दउं गाडां भरी,
हैये भूखुं हो, (तो) आभपरे आवे उजली ।

(तुझे अनाज के बिना नहीं रहने दूँगा, जितना कहेगी उतना दूँगा । भूख से पीडित नहीं होने दूँगा । मेरे आभपरा की राजधानी में सुख से अन्नवस्त्र लेने आना । ब्याह तो नहीं कर सकूँगा । उजली के हृदय में गहरी चोट पहुँची ।)

आवडली अमे, जेठीराण जाणेल ने,
(नीकर) पीयर पग ढाँके, बेसत बरडाना धणी ।

(तेरे इस नीतिधर्म का पता होता तो मैं अपने मायके पैर ढंककर कुमारिका अवस्था में ही बैठी रहती ।)

काचो घडो कुंभार, अणजाण्यो में उपाडियो,
भवनो भांगणहार जेठीराण जाणेल ने ।

(अपने संसार-सागर को तैरने के लिए अनजाने में मैंने इस कच्ची मिट्टी के घडे को उठा लिया । वह ते फूटा हुआ निकला ।)

अन्त में उजली श्राप देती है :

कण कण करशे काग धुमलगढ भेळाशे धणो,
अंगडे लागो आग (तने) भडकावणी भाणना ।

लोककथा कहती है कि उस जेठवा के अंग में रक्तपित्त की आग लगी थी, धुमलीनगर का विनाश हो गया था और मेर के मरने पर उसे गोदी में लेकर मरने के लिए उजली आखिर में आ पहुँची थीं ।

खीमरा की त्रिया और रणशी राजा (गुजराती)

ऐसी ही चारणी 'देवी' जानबाई के हाथों से बनाई गई वाव है । उस सती की समाधि देरडी गाँव में हैं । वहाँ पर अछूतों को पानी पीने या भरने की मनाई नहीं है । और एक किस्सा तो ऐसा कहा जाता है कि इस एकाकार के प्रति तिरस्कार करनेवाले धर्माचार्य की गरदन भी झुक गई थी । गाँव गाँव भजन गानेवाले लोग खेमरा-रणशी का भजन गाते है :

गढ्ढेलडी भोजार खीमरानी तरियाँ पाणीडां सांचर्या हो जी,
रणशी घोडां पावा जाय, अवळा बवळा रेवत रेलवे हो जी ।

(गढ्ढेलडी नाम से पहचाने जाते वर्तमान मोरबी शहर में खीमरा नायक अछूत प्रभुभक्त की सुन्दर पत्नी पानी भरने जाती है । उसके पीछे गढ्ढेलडी का राजा रावत रणशी घोडे को पानी पिलाने के बहाने बूरी नजर डालता है । संकरी गली में उसे रोककर पूछता है :

कोना घरनी तुं नार, किया रे राजानी तुं णे कुंवरी हो जी ।

(किस घर की तुम नारी हो, कौन से राजा की तुम राजकुमारी हो ।)

बाई उत्तर देती है :

अमे छीए जातना चमार, वेचीए गायुनां अमे चामडां हो जी ।

(हम जाति के चमार है, और गाय की चमडी बेचते हैं ।)

राजा ने कुचेष्टा की । रुमाल उडाया । उडता हुआ रुमाल बाई की साडी के छोर से छू गया । बाई ने घर आकर पति से कहा :

खीमरा ! समाधुं गणाव, नूगरा माणसनो छेडो अड्यो हो जी ।

(हे खीमरा, तुम समाधि खोदवाओ, बुरे आदमी का छोर छू गया है ।)

तेजमल - सजना[२२] (गुजराती - राजस्थानी)

ठाकुर की एक छोटी सी लडकी ने पुरुष का वेश धारण करके दुश्मनों का संहार किया था, लेकिन दुश्मनों का संहार करने से भी ज्यादा पराक्रम उसने अपने नारी-स्वभाव को छुपाने से किया था । ठाकुर का लडका बनकर तेजमल ठाकुर ने अपनी जन्मभूमि की रक्षा की थी । गुजराती में 'तेजमल' का नाम है उसी प्रकार प्रेरक और प्रोत्साहक नाम राजस्थानी में 'सजना' का है

गुजराती साहित्य में शुरुआत की 'तेजमल' की यह पंक्तियाँ देखें :

उगमणी धरतीना, दादा ! कोरा कागळ आव्या रे
ए रे कागळ दादे डेलीए वंचाव्या रे
काको वांचे ने दादो रह रह रोवे रे ।

राजस्थानी साहित्य में शुरुआत की 'सजना' की यह पंक्तियाँ देखें :

बैठ्या बाबोजी तखत बिछाय
कागदिया तो आया तो बाबाजी रे हाडेराव रा ।

तब सजना लडकी पूछती है :

कागद, बाबाजी म्हाने बांच सुणाय,
कांई रे हे लिख्यो वे बाबाजी कोरे कांगदां ?

उसी तरह गुजराती में तेजमल दादा को पूछती है :

शीदने रूवो छो, दादा ! अमने संभाळावो रे ।

सजना को उनके बाबा उत्तर देते हैं :

कागद वांच्या ए न जाय
छाती तो फाटे, ए बाई सजना, हिवडो उजळे ।

(हे बाई ! कागज पढा जाय ऐसा नहीं है । मेरी छाती फट रही है और हृदय व्याकुल हो रहा है ।)

सजना के पिता पर बडे राजा हाडेरावजी जयमल ने कागज में क्या लिखा है ?

एवडछेवड लिखि छे सात सिलाम
बीचमें तो लिखियो, ए बाई सजना, वेग पधारणा ।

गुजराती साहित्य में भी यही पंक्तियाँ लिखी गई है :

कोरे मोरे लखियुं छे सात सलामुं रे
वचाळे लखी चाकरी रे लोल ।

और तेजमल के दादा को कागज लिखा है :

दळकटक आव्युं, दीकरी, वारे कोण चडशे रे ।

सजना के पिताजी छोटे ठाकुर है, और बडे राजा हाडेराव कानून के मुताबिक बारह साल की नौकरी पर हाजीर होने को बुलाते हैं । जागीर (मिलकत) के बदले में जागीरदार ने स्वयं या अपने पुत्र को बडे राज की फौज में नौकरी (उठानी) करनी पडती है ।

'बारह साल' शब्द का लोकगीत में बडा स्थान है । उनका अर्थ लंबी समयावधि है ।

तेजमल के पिता भी छोटे ठाकुर है, उनके राज (रियासत) पर शत्रुओं ने डेरा डाला है, लेकिन उनके सामने सैन्य ले के कौन रणभूमि में जा सकता है ? दादाजी वृद्ध है और :

सात सात दीकरीए दादो बांझिया के'वाणा रे ।

सात-सात लडकियाँ है, एक भी लडका नहीं है । ऐसी ही स्थिति सजना के बाबा (पिता) की है ।

तेजमल क्या हल (रास्ता) निकालती है ?

हैये हिमत राखो दादा । अमे वारे चडशुं रे ।

सजना क्या हल (उकेल) बताती है ?-

थे मारा बाबाजी, बेदिल मत होय,
बारे तो वरसां लग करसां चाकरी ।

(तुं, हे मेरे पिता, बेदिल मत बन (चिंता मत करो) मैं जाकर बारह साल तक हाडेराव की नौकरी (चाकरी) करुंगी)

बाद में तुरंत सजना मरद-वेश (पुरुष वेश) पहन कर ढलती रात को ऊँट पर सवार होकर नीकल पडती है :-

करिया सजना मरदाना-भेस
करला ललकार्या ए बाई सजना ढळती रातरा ।

लेकिन गुजराती साहित्य में तेजमल के दादा इतनी जल्द समझे ऐसे नहीं है और तेजमल को अपना नारी स्वरुप कैसे छुपायेगी और राजपूतों के सामने कैसे लडेगी - युद्ध करेगी यही प्रश्न उनके पिताजी को सताते हैं । उसके बारे में तेजमल और पिता के बीच संवाद होता है वही राजस्थानी साहित्य में नहीं है । फिर भी यह प्रश्नोत्तरी यहाँ पेश करने की मैं चेष्टा करता हूं ।

तेजमल और अपने पिता के बीच गुजराती में जो संवाद (सवाल-जवाब) होते हैं वे यही हैं देखिये :

प्रश्न : माथानो अंबोडो, तेजमल, अछतो केम रे'शे रे ?
उत्तर : माथानो अंबोडो, दादा, मोळीडामां रे'शे रे ।

(हे पिता । अंबोडे को तो दादा मैं मेरी पघडी में लपेट लूंगी ।)

प्रश्न : कानना आकोटा, तेजमल, अछता केम रे'शे रे ?
उत्तर : कानना आकोटा, दादा, बुकानीमां रे'शे रे ।
प्रश्न : हाथना त्राजवडां, तेजमल, अछतां केम रे'शे रे ?
उत्तर : हाथनां त्राजवडां, दादा, बांहोडलीमां रे'शे रे ।

(योद्धा के अंगरखे की बाँय हमेशा लम्बी होती है, इसलिए उसमें छूंदणां (त्रोफा) छूपा सकते हैं ।)

फिर भी मुश्केलियाँ आगे बढती है :

प्रश्न : दांत रंगावेल, तेजमल अछता केम रे'शे रे ?

इस प्रश्न का उत्तर सरल नहीं है । लाल रंग में रंगे हुए दांत को छुपाने का कोई स्थल या साधन तो है ही नहीं फिर भी तेजमल में उनको छुपाने की बौद्धिक कुशलता है । वो अपने उत्तर में कहती है :

उत्तर : नाना हता ते दी मोसाळे ग्या'तां रे
खांतीली मामीए दांत रंगाव्या रे ।

(हे पिता । वहेम (शंका) करने वाले को मैं ऐसा जवाब (खुलासो) दूंगी कि जब मैं बचपन में मोसाल (ननीहाल) में गई थी तब मेरी उत्साही मामीने वहाल करके मेरे दांत रंग दिये थे ।)

फिर भी पिताजी की गभराहट बढती जाती है :

प्रश्न : नाक वींधावेल तेजमल अछतां केम रे'शे रे ?
उत्तर : अमारा दादाने अमे खोटना हता रे,
खोटना हता तेथी नाक वींधाव्यां रे ।

सात-सात बहनों के बाद आया हुआ भाई गुजरात में खोट का कहा जाता है । (लाडकवायो) लेकिन छठ्ठी के दिन (जन्म के बाद छठे दिन की रात को) भाग्य लेख लिखने विधाता देवी आती है तब लडका देखकर कदाच जल्द मृत्यु लिख दे, इसलिए विधाता को छेतरने के लिए (छेतरपिंडी करने के लिए) नाक वींधाया है, जिससे विधाता देवी ''यह तो लडकी है'' ऐसा जानकर वींधे हुए नाक से कुछ अमंगल (अशुभ) लिखे बिना चली जाय । ऐसा वेसा मैं प्रश्न करनेवाले को बता दूंगी पिताजी । ऐसा तेजमल कहती है ।

एक ओर राजस्थानी साहित्य में ऊँट पर सवार होकर मरदाना-वेश धारण करके सजना पूछती पूछती हाडा राजा जेमल के महल पर जाकर अपना नाम गायडमल हैं ऐसा कहकर खडी रहती है । तो दूसरी ओर अपनी बुकानी मुँह पर बाँधकर तेजमल अंगरखे की लम्बी चोली में छूंदणां (त्रोफां) छुपाकर मरद वेश (पुरुष वेश) में अपने दादा को लडके की तरह गाँव गाँव के योद्धाओं को हाकल करती हुई दुश्मनों पर हमला करने के लिए तत्पर खडी है ।

इसी लोकगीत में अपने पिताजी की तो वेदना है ही साथ में अपने पिताजी को मुश्किल के समय में एक नारी - एक लडकी, एक लडका बनकर कैसे सहायरूप हो सके उसका संवेदन यहाँ निरूपण किया गया है यह हम समझ सकते हैं । एक नारी को अपने पिता की कितनी चिंता है नारी की यही वेदना को यहाँ चित्रित किया गया है ।

अभी भी वेदना कम हो उसी तरह तेजमल और सजना की कसौटी की शुरुआत होती है ।

तेजमल स्त्री है या पुरुष उसकी कसौटी सैनिक कर रहे हैं । और सजना की कसौटी स्वयं हाडेराव कर रहे हैं । उस में भी हाडेराव की सहाय में उनकी भाभी (भोजाई) है इसलिए कसौटी बहुत तेजदार और मजेदार बनती है ।

यहाँ कल्पना की जाती हे कि हाडेराव एक युवान राजकुमार है, और उसने सजना को अपनी तहेनात में राजमहल में उनकी नौकरी दी गई है । कारण स्पष्ट है कि मरदाना वेश में सजना पर युवान राजकुमार का मन मोहित हो चुका हो । बहुत प्रयत्नों के बाद भी हाडेराव सजना को पहचान सकता नहीं है । नयन नारी (लडकी) के हैं लेकिन आवाज मरद की है ऐसी असमंजस (मूझवण) हाडेराव अपनी भाभी को बताता है । :

भाभी म्हांने अचरज होय,
नैणा नारीरा ऐ, आ बोली छोले मरदरी ।

हाडेराव की भाभी मार्ग बताती हुई कहती है :

एक बार, देवर, बागों में ले चाल,
वेरो तो पाडां, ओ देवरिया, नारी-मरदरो ।

(हे देरजी एक बार ये तेरे सैनिकों को बाग-बगीचे में ले जा, वहाँ ये नारी है या मरद उनकी पहचान हो जायेगी ।)

वहाँ क्या होगा ?

नारी होय तो पडयां-रिड्यां फल खाय
मरद हुवे तो तोड फूल गुलाबरो ।

(नारी होगी तो नीचे जमीं पर पडे हुए फल खाने लगेगी, और मरद होगा तो गुलाब का फूल तोडेगा ।)

हाडेराव ने ऐसा किया और सजना को पहचान ने की कोशिश की, लेकिन सजना ने गलती नहीं की, वो सावध हो गई थी ।)

राणा जैमल पड्यां रिड्यां फल खाय,
गायडमलरी सजना ओ तोडे फूल गुलाबरो ।

समयांतरे राजा जयमल हाडेराव असमंजस का अनुभव करता है इसलिए अपनी भाभी को सहायता के लिए बुलाता है । भाभी तीन उपाय बताती है :

एक बार, देवर, ले चलो, समंद-तळाव,
वेरो तो पाडां, ओ देवरिया, नारी मरदरो,
नारी होय तो हरां-तीरां न्हाय
मरद मूछालो ओ न्हावे समंद झकोळ कै ।
राजा जैमल हरां-तीरां न्हाय
गायडमल री सजना तो पान्हाबे समंद झकोळ कै ।

समुद्र जैसे तालाब में ले जा । जो स्त्री होंगी तो पाली (कांठा) पर बैठ के नहायेगी और पुरुष होगा तो सरोवर के जल में कूद पडेगा और ऊँडे जल में जाकर नहायेगा । जयमल राजा सजना गलती करेगी ऐसे अहसास से पाली पर बैठ कर स्नान किया लेकिन गायडमल सजना तो पुरुष-मरद लक्षण से पूरी सभान थी और सजना ने सरोवर के गहरे जल में कूद पडी और स्नान करने लगी ।

तीसरी कसौटी :

एक बार, देवर, साथ रसोई ले चाल,

★★★

नारी होय तो धीरे धीरे खाय

मरद मूछालो तो झट दे जीम चळु करै ।

(साथ में खाना खाने को ले जा । जो स्त्री होंगी तो धीरे धीरे खायेगी और पुरुष होगा तो जल्दी-जल्दी खाना खाकर खडा हो जायेगा ।)

ये कसौटी में भी सजना पार उतर गई । और अंतिम कसौटी भी हो जाती है :

एक बार, देवर सेजां में ले चाल,

★★★

नारी होय तो फूल जावे मुरझाय

मरद मूंछालो री सेजां, ओ देवर, सळवट ना पडे ।

(अपने साथ सजना को एक सेज (पथारी) में सोने की बात आई । स्त्री होती तो फूल की तरह मुरझा जायेगी और पुरुष होगा तो मन में संकोच नहीं रखेगा ।)

और इसी तरह सजना की नौकरी (चाकरी) के बारह साल (नियत किया गया समय) खत्म होता है । बाद में उसको यहाँ ठहरने का बंधन नहीं था ।) और

हो गई सजना घुडले असवार

दिन तो उगायो ए बाई सजना बाबाजी रे देश में

उळंगी सजना समंद-तळाव

चूडलो तो दिखायो बाई सजना बांये हाथ रो ।

उठ ओ बाबाजी, ढकियो फळसो खोल

बारे बरसां ही ओ बाई सजना कर आयी चाकरी ।

(यह कटोकटी की रात को सजना तुरंत घोडे पर असवार होकर नीकल पडी । रातभर सवारी करके वो अपने वतन में पिताजी के पास पहुँच गई) और अपना चूडला बताकर (मैं अभी भी कंवारी हूं, परिशुद्ध और अणिशुद्ध हूं उसकी निशानी रूप) जोर से आवाज देकर बोली, ''जागो पिताजी, दरवाजा खोलो, बारह साल की नौकरी (चाकरी) पूरी करके मैं वापस आ गई हूं ।'')

गुजराती साहित्य में तेजमल की कसौटी सजना से अलग प्रकार की है । शंकाशील साथीयों व्यवस्था करते हैं कि :-

चालो मारा साथी, आपण दोशीडा हाट जईए रे

दोशीडा हाट जईए ने असतरी पारखीए रे

पुरुष हशे तो एनां पाघडीए मन मो'शे रे

असतरी हशे तो एनां चूंदडीए मन मो'शे रे

संधा साथीडाए चूंदडीयुं मूलवियुं रे

तेजमल ठाकोरियाए पाघलडी मूलवियुं रे

उसी तरह दूसरी खरीदारी करने को ले गये लेकिन तेजमल ने तो पुरुषोंचित (पुरुषों की) वस्तुओं का आग्रह रखा । बाद में अंतिम कसौटी नदी में नहाने की आती है । उनके शब्द बराबर सजना के गीत को मिलते-झुलते आते हैं :-

चालो मारा साथी, आपण नदीए ना'वा जईए रे ।
नदीए ना'वा जईए ने असतरी पारखीए रे ।
असतरी हशे तो ए कांठे बेसी ना'शे रे,
पुरुष हशे तो ए दरियो डोळी ना'शे रे ।
सघळा साथीडा तो कांठे बेसी ना'या रे
तेजमल ठाकोरियो तो दरियो डोळी ना'यो रे ।

तेजमल की कसौटी और सजना की कसौटी भिन्न होने के बावजूद भी लोकविधा की दृष्टि से एक ही है । दोनों में गलतियाँ की तरक्की एक ही प्रकार की है । सजना में अंतिम कसौटी है वो तेजमल में नहीं हैं । कारण स्पष्ट है । सजना और तेजमल को अलग अलग क्षेत्र पार करने के थे । सजना को चाकरी पूरी करके वापस चले जाना था । तेजमल को दुश्मनों पर विजय पाकर वापस जाने का था । सजना की लीलाभूमि युवान राजकुमार जयमल के महल में अंगत जीवन में थी, तेजमल की लीलाभूमि रणमैदान था । सजना ज्यादा रहस्यमयी और कौतुकभरी है । तेजमल ज्यादा तेजस्विनी है । गुजराती और राजस्थानी दोनों गीतों में कला-कसब न्यारा है । दोनों में साम्यता दिखाई पडती है । दोनों में अपने पिता को सहायभूत होने की और सहायभूत होने में जो भी मुश्किलियाँ आएँ उसको पार करने की-सहन करने की दोनों नारियाँ-तेजमल और सजना - में भरपूर संवेदना दिखाई देती है ।

तेजमल वरणागियो (गुजराती)

ऊगमणी देशोना कागळ आया रे !
चोरे बेसीने दादे कागळ वांच्या.

कागळ वांचीने दादो ढस ढस रोया;
ऊपरवाडे रहीने तेजुडीए जोयुं.

को' मारा दादा ! च्यम तमे रोया;
सात सात दीकरीए दादो वांझियो के'वाणा.

आवतां लश्कर दीचरी झूझवा कोण जाशे ?
आवतां लश्कर दादा, अमे झूझवा जईशुं रे !

पगनां कडलां दीचरी ढांच्यां च्यम रे'शे ?
पगनां कडलां दादा ! सूंथणामां रे'शे !

हैयानुं हुर दीचरी ! ढांच्युं च्यम रे'शे ?
हैयानुं हुर दादा ! डगलामां रे'शे !

हाथना चूडीला दीचरी ढांच्यां च्यम रे'शे ?
हाथना चूडीला दादा ! सोडियामां रे'शे !

मांथानी मोळ दीचरी ! ढांची च्यम रे'शे ?
मांथानी मोळ दादा ! फेंटामां रे'शे !

नाक वेंधायां दीचरी ! ढांच्यां च्यम रे'शे ?
अमारा दादाजीने छोरु न जीवतां,
नाक वेंधायी नाम नाथुजी पाड्यां.

दांत रंगाया दीचरी ! ढांच्या च्यम रे'शे ?
नानां हतां त्यारे मोसाळे रे'तां
खांतीली मामीए दांत रंगाया.

चालो एना साथीडो, हाटे जईए,
स्त्री-पुरुषनां पारखां रे ! लईए.

स्त्री हशे तो कडलां मुलवावशे,
सर्व साथीडे कडलां मुलवायां,
तेजमल वरणागिये कंदोरा मुलवाया.

चालो एना साथीडो, दोशीडा हाटे जईए,
स्त्री-पुरुषनां पारखां रे ! लईए.

स्त्री हशे तो मोळिया मुलवाव शे,
सर्व साथीडे मोळिया मुलवायां,
तेजमल वरणागीये सोगठां मुलवायां.

चालो एना साथीडा, मोचीडा हाटे जईए,
स्त्री-पुरुषनां पारखां रे ! लईए.

स्त्री हशे तो मोजडी मुलवावशे,
सर्व साथीडे मोजडी मुलवायी,
तेजमल वरणागिये अख्तर जोडा होर्या.

चालो एना साथीडा, सरवर झीलवा जईए,
स्त्री-पुरुषनां पारखां रे ! लईए.

स्त्री हशे तो आरे बेसी न्हाशे,
सर्व साथीडा आरे बेसी न्हाया,
तेजमल वरणागियो चारे कांठे झील्या.

फट रे ! भूंडी तेजुडी, तुं छेतरी शुं गई ?
आवी जाणी होत तो नार कही बोलावत.

सोनलनुं गीत

एक ठाकुर की राजपूत कन्या गढ पर खेलती है :

सोनल रमती रे
गढडाने गोख जो
गढडाने गोख जो
रमतां झलाणी सोनल गरासणी ।

गोख खेलती हुई कन्या का अपहरण हो जाता है । सिंधी जत सुमराओ उनका अपहरण करते हैं ।

आडो आव्यो रे
सोनल, दादानो देश जो
दादानो देश जो
सोनले जाण्युं जे दादो छोडावशे ।

दादा यानीकि पिता : सोनल ने अपने दादा को खबर भेजी कि दादा हमको छुडा कर ले जाओ । तब

दादे दीधा रे
सोनल, धोळुडां धण रे
कांई धोळुडां धण रे
तोये न छूटी सोनल गरासणी !

पिताने गाय के जूथ देने को कहा लेकिन अपहरणकर्ताओंने ज्यादा माँग करने से सोनल नहीं छूट पाई ।

बीच में मामा का देश आया । सोनल ने अपने मामा को खबर दी । मामाने काळुडां खांडुं – काली भेंस देने को कहा :

मामे दीधां रे
सोनल, काळुडां खांडुं रे
कांई काळुडां खांडुं रे
तो ये न छूटी सोनल गरासणी ।

फिर भी चोरों ने नहीं माना । आगे भाई का देश आता है । भाई जरूर छुडायेगा । इसलिये सोनल अपने भाई को खबर भेजती है । भाई महामूला 'धमळा वछेरु' – सफेद बाछडा (गाय के बच्चे) लेकर आता है :

भाईए दीधां रे
सोनल, धमळा वछेरु रे
धमळा वछेरु रे
तोये न छूटी सोनल गरासणी !

लेकिन लूटेरों को ज्यादा धन चाहिए था । इसलिए सोनल को नहीं छोडा । बीच

में अपने पति – स्वामी का देश आता है 'आडो आव्यो स्वामीनो देश जो'। अपना पति कुछ भी धन लेकर नहीं आता है लेकिन पति तलवार खींच कर युद्ध करने को तैयार हो जाता है ।

आडो आव्यो
स्वामीनो देश जो
स्वामीए दीधी रे
एना माथा केरी मोळ्युं जो
घमके रे छूटी सोनल गरासणी ।

अंत में पति युद्ध करके अपनी पत्नी सोनल को चोरों – अपहरण कर्ताओं – लूंटेरों के हाथों से छुडाता है । यहाँ अपहरण हुई नारी का संवेदन प्रस्तुत किया गया है ।

ढोला मारू रा दूहा[२३]

लोक – काव्य ढोला – मारू–रा–दूहा (१५ वीं शताब्दी ईस्वी) है जो 'संदेश रास' और 'वीसल देव रास' की तरह मूलतः विरहगीत ही है; परन्तु समय – समय पर उसमें दाँव पेच भरी हुई कथाओं की चिप्पियाँ लगाकर उसे मुक्तक से आख्यानक काव्य बना देने के प्रयत्न हुए हैं । मुख्य काव्य इतना ही है कि सयानी होने पर मारवणी अपने बचपन के पति ढोला की चर्चा सुनती है और विरह में व्याकुल हो जाती है । वह अपने पति का पता लगाने के लिए कई संदेश वाहक भेजती है लेकिन कोई वापस लौटने नहीं पाता; सभी संदेशवाहकों को उसकी सौत मालवणी मरवा देती है और ढोला के पास मारवणी का सन्देश तक नहीं पहुँचने देती । अंत में मारवणी लोक–गीत के गायक एक ढाढी को यह जिम्मेदारी सौंपती है और ढाढी को इस उदेश्य में सफलता मिलती है । ढाढी के प्रयत्न से ढोला और मारवणी दोनों में पुनर्मिलन होता है । संग्रह में संग्रहीत अधिकांश गीतों की पृष्ठभूमि यही है । इसके बाद कुछ और रस पैदा करने के लिए मारवणी की मृत्यु करा दी गई और उसे किसी तरह जला देने के बाद फिर उमरा – सूमरा जैसे शत्रु की बाधा खडी की गई है और अंत में उस बाधा को भी दूर करके ढोला को उसकी दोनों पत्नियों को इकठ्ठा मिला दिया गया है । इस तरह वर्तमान कथा प्रसंग में ''रुकावट दौड'' का साहस उत्पन्न करने की चेष्टा दिखाई पडती है जब कि मुख्य प्रसंग ढोला के प्रति मारवणी के विरह – निवेदन और संदेशप्रेषण तक ही सीमित है । 'ढोला' काव्य का यह मुख्य अंश वस्तुतः गीतात्मक ही है; इतने कथा–प्रसंग का अध्याहार तो कितने मुक्तक सवैयों और धनाक्षरियों में रहा करता है ।

'ढोला' के काव्य–पठन में 'संदेश रास' और 'वीसलदेव रास' से यह नवीनता है कि इसमें षड्ऋतुवर्णन या 'बारहमाहा' जैसी कोई चीज नहीं है; ऋतुओं में केवल पावस का वर्णन है और वह भी विस्तार से । ऐसा शायद इसलिए हुआ है कि मारु देश में सबसे मनोहर पावस ऋतु ही होती है, जैसा कि 'ढोला' में कहा भी गया है ।

॥ 'मारू देस सुहावणा सावण साँजी बेर' ॥

'ढोला' के इस पावस–वर्णन की दूसरी विशेषता यह है कि इस में स्थानीय रंगत सबसे अधिक है, 'वीसलदेव रास' से भी अधिक । ढोला के पावस–वर्णन में परंपरा–मुक्त कुछ भी नहीं है । 'ढोला' में प्रसंगात् मारू देश का ही वर्णन है लेकिन यह वर्णन 'संदेश रास' के 'सामोर' की तरह परिपाटी–विहित नहीं है, उसमें काव्य–रूढ गिनी चुनी वस्तुओं और पेडों के नाम गिनाने का शौक नहीं है । यहाँ भी मारवाड का वास्तविक जीवन प्रतिबिम्बित हो उठा है ।

'ढोला' के संदेश–कथन में भी विशेषता है । 'संदेश रास' में संदेशा सर्वथा अपरिचित एक पथिक से कहा गया है; 'वीसलदेव रास' ने अपने राज्य के ही एक पंडित को बुलाकर कहा गया है लेकिन 'ढोला' में क्रोंच पक्षी से लेकर ढाढियों तक से अपनी विरह –वेदना कही गयी है । यहाँ संदेश–वाहक भी सहृदय हैं । क्रोंच पक्षी से बढकर विरह–विदग्ध और कौन होगा; दूसरी ओर गायक ढाढी भी पथिक और पंडित की तरह मात्र

श्रोता नहीं है बल्कि संदेश को अपनी रचना-शक्ति से अधिक मार्मिक बनाकर कहने वाला जीव है । ऐसी दशा में ढोला के संदेश-कथन में मार्मिकता कहीं अधिक है ।

शैली की दृष्टि से 'ढोला' लोक-गीत के निकट सबसे अधिक है । एक ही पंक्ति की अनेक आवृत्तियों में प्रायः लोकगीतों की विशेषता दिखाई पडती है । इससे उनमें सरलता के साथ मार्मिकता भी बढ जाती है । 'ढोला' के दोहों में - विशेषतः विरह निवेदन में इस प्रवृत्ति की बहुलता है ।

मारवणी के संदेश-कथन का आरंभ इस प्रकार होता है कि एक रात घर के पीछे वाले सरोवर में रात भर कुंझ पक्षियों का करुण-रव होता रहा । मारवणी को नींद नहीं आयी । सुबह होते ही वह सखियों सहित सरोवर के पास गयी और कुंझों से बोले बिना न रह सकी । मारवणी और कुंझों का सवाल-जवाब थोडी देर तक होता रहा और अंत में किसी गँवार को शर संधान करते देखा कुँझणियाँ उड गयीं । पक्षी और स्त्री की ज्ञानी मार्मिक बातचीत हिन्दी में 'पदमावत' को छोडकर और कहीं नहीं है । यह प्रश्नो के दस प्रकार है :-

''कुंझाँ, द्यउ नह पडखडी, थांकउ विनउ वहेसि ।
सागर लंघी प्री मिलउँ प्री मिलि पाछी देसी ॥''
''म्हे कुरझाँ सरवर-तणा, पाँखाँ किणहिं न देश ।
भरिया सर देखी रहाँ, उड़ आधेरि वहेस ॥''
''उत्तर दिसि उपराठियाँ, दक्षिण साँमहियाँह ।
कुरझाँ, एक संदेशमऽउ ढोलानइ कहियाँह ॥
''माणस हवाँ त मुख चर्वां, म्हे छाँ कुझडियाँह ।
प्रिय संदेसउ पाठविसु लिखि दे पंखडियाँह ॥''
''पांखे पाणीं थाहरइ, जलि काजल गहिलाइ ।
सयणाँ तणाँ, संदेसडा, मुख-वचने कहिबाइ ॥''

कुंज चाहे जो हों, लेकिन है तो आखिर पक्षी ही । वे भला इतनी समझदारी से भला उत्तर कैसे दे सकते हैं ? लेकिन विदग्ध चित की गति विचित्र होती है । यदी कुंझें नहीं बोल रही हैं तो यह चित्त उनकी ओर से स्वयं ही जवाब दे देता है । इस मनःस्थिति को इस बात-चीत में कितनी मार्मिकता के साथ व्यक्त किया गया है ।

यदि कुंझों ने अपनी पांखो पर संदेशा लिखवाने से इनकार कर दिया और यदी उन्होंने प्रियतम के पास जाने के लिए अपनी पांखें उधार न दीं तो क्या हुआ । ढाढी तो हैं ही । मारवणी उन्हीं में से एक को बुलाकर अपना संदेश कहती है । इस संदेश में कोई लम्बी - चौडी बात नहीं, बनावट नहीं । स्त्रियों का संदेश दिल पर जितनी सीधी चोट करने वाला होता है, वैसा ही है । हर एक भाव, और हर एक वाक्य कैसे रह-रह कर उठती हुई एक-एक लहर है - इन सबका ऐसा लम्बा सिलसिला है कि कभी खत्म ही होता न दीखे ।

''ढाढी, एक सदेसडउ प्रीतम कहिया जाई ।
सा घण बलि कहलाभई, भसम ढँढोलिसि आइ ॥
ढाढी, जे प्रीतम मिलइ, यूँ कहि दाखवियाह ।
पंजर नहिं छह प्राणियउ, थाँ दिस झल रहियाह ॥''

धनिया जलकर कोयला हो गई, अब आकर उसकी भस्म ढँढोलना और पंजर में प्राण नहीं है, केवल उसकी लौ तुम्हारी और झुक कर जल रही है – ये दोनों ही चित्र कितने प्रभावशाली हैं । करुणा मूर्तिमती हो गयी है । आखिर कौन इतना निष्ठुर होगा कि ऐसा संदेशा पाने पर घर न चला आये । इसके बाद तो कभी वह उस 'भलेमानस' से संदेशा कहने को कहती है तो कभी उस 'राज्यँद' से, कभी अपने 'साहिब' से निवेदन करती है, तो कभी सीधे अपने 'ढोला' से । जैसा भाव वैसा संबोधन ।

मारवणी के मन की स्थिति का एक और चित्र है जब ढोला के आने की खबर उसे मिलती है । खबर सुना नहीं कि हृदय हर्षोद्रेक से हेमगिरि जितना विशाल हो गया । वह अनुभव करती है कि अब वह तन-पंजर में समाएगा ही नहीं ।

''हियडा हेमाँगिरि भयउ, तन-पंजरे न माह''

वह अपने मंदिर में इस तरह कुदकती हुई चली जैसे कोई फौव्वारा छूट रहा हो –

''मारू चाली मंदिरे, जाणि छुटो छंछाल ।''

वह 'धम्म धम्मन्त घाघरे' में एक घर से दूसरे घर में चलती हुई ऐसी मालूम हो रही है जैसे 'झीणे बादल चंद' । और अपने हर्षातिरेक में देखती है कि घर के खंभे तक नाच रहे हैं, सारा घर हँस रहा है और सबसे बढकर तो वह खाट है जो उठकर खेल रही है –

''सोई साजण आविया, जाहँ की जोती बाट ।
थाँमा नाचइ, घर हँसह, खेलण लागी खाट ॥''

इस प्रकार मारवाड देश में लिखे हुए ये दोनों लोक-काव्य चारणों की राजस्तुतियों के परिपार्श्व में सामान्य लोक-जीवन की स्वस्थ और सरस भावनाओं को प्रकट करते हैं । ये लोक-काव्य उच्च स्वर से घोषणा करते हैं कि बडी से बडी विषम स्थिति में जनता गाना बन्द नहीं करती और यदि राजदरबार अपने मिथ्या अभिमान, वैभव और गौरव का विष्प्राण तथा आडंबरपूर्ण साहित्य कुछ स्वर्ण-मुद्राओं और रजत-खण्डों के बल पर लिखवाते हैं तो जनसाधारण के कवि अपनी उमंग से ही अपने जीवन का रस सहज ही काव्य में उँडेला करते हैं । यह आकस्मिक बात नहीं है कि 'संदेश रास' मुलतान में लिखा गया और 'वीसलदेव रास' तथा 'ढोला काव्य' भी उसके पास ही मारवाड देश में । ये पश्चिमी भारत के जीवंत लोक-जीवन के प्रमाण है ।

ढोला-मारु रा दूहा(२४)

म्हें ने ढोलो झूँबिया, लूँगे -लंक्कड़ियेह ।
म्हाँने प्रिउजी मारिया, चंपारै कळियेह ॥ ५९॥

डॉ. हरिवल्लभ भायाणी ने (त्रैमासिक पत्रिका 'वरदा' वर्ष-७ अंक-१ के पृ. ५३ पर) स्पष्ट किया है कि, लवंग की छड़ी से प्रेमी के प्रहार करने पर प्रेमिका फूल की गेंद से प्रहार कर प्रतिरोध करती है ।

मारुवणी की विरह व्यथा :

मारुवणी भगताविया मारु रण निपाइ ।
दूहा संदेशाँ तणाँ दिया तियाँ सिखाइ ॥ १०९ ॥

मारवणी की विरह दशा का वर्णन और मालवणी की विरह व्यथा का वर्णन किया गया है । मारवणी ने मारु राग में दोहों में संदेश भेजा था उसका वर्णन इस दोहे में किया गया है ।

फागुण मासि वसंत रूप आपउ जइ न सुणेसि ।
चाचरिकह मिस खेलती, होळी झंपावेसि ॥ १४५ ॥
जउ तूँ साहिब, नावियउ साबण पहिली तीज ।
बीजळ-तणइ झबूकड़इ मूंध जरेसी खीज ॥ १४९ ॥
जइ तूं ढोला, नावियउ काजळियारी तीज ।
चमक मरेसी मारवी, देख खिवंताँ बीज ॥१५०॥
आवी सवरत आँमळी, त्रिया करह सिणगार ।
जिका हिया न फाटही, दूर गया भरतार ॥ ३०३ ॥

लोक धारणा है कि परदेशी पति को वसन्त ऋतु में घर लौट आना चाहिए । विरहिणी पत्नी भी ऐसी आशा संजोये रहती है । मारवणी भी कहती है कि हे प्रिय ! यदि तुम फाल्गुन मास के वसन्त में नहीं आए तो मैं गोल गोल नृत्य (चर्चरी) करने के बहाने, जलती होली में झपट कर कूद पड़ूँगी । इस आत्मदाह की धमकी इन शब्दो में हैं ।

कौआ उडना भी शकुन बताता है । जो कहने पर कौआ उड जावे अथवा घर पर जाकर बोले तो अतिथि के आगमन का सूचक होता है । यह लोक धारणा गुजरात-राजस्थान और कई प्रदेशों में व्यक्त हुई है जिनकी दो पंक्तियाँ उदाहरण के तौर पर यहां दी गई है -

कउआ दिऊँ बधाइयाँ, प्रीतम मेळइ मुज्झ ॥ ७५ ॥
मारु-तणइ करंकडइ, वाइस उडावेसि ॥ ५७॥

इस तरह विरहिणी नारी का संवेदन इन दो पंक्तियों में भरा पडा दिखाई देता है ।

राजस्थानी परम्परा में ही नहीं गुजरात की वाचिक परम्परा में भी ढोला-मारु के सुख विलास का प्रसंग कुछ ऐसे ही रंग के साथ प्रवाहित होता रहा है । गुजराती लोक साहित्य का वह प्रसंग उसका एक अंग है । पूरा अवतरण यहाँ नहीं देकर यहाँ पर झवेरचन्द मेघाणी के संग्रह ग्रन्थ 'सोरठी गीत-कथाओं' से केवल तीन दोहे प्रस्तुत कर रहे हैं जो

वानगी रूप पर्याप्त होंगे । अन्तिम पंक्ति तो सारा रहस्य स्पष्ट कर देती है ।

मारु सूती अटारीए, रतडो पलंग बिछाय ।
तारा तरवरियुं करे, चन्द्र रियो ललचाय ॥
नवा मोल ने धण्य नवी, नवी जवानी नेह ।
ठाकर घेर पधारिया, मोती वरस्या मेह ॥
कड्य ललके कोहां ढले, ललके लाल कबान ।
ढोला ! वड्यनी ढोलिये, मारु नानी म जाण ॥

मारवणी अपनी मनःस्थिति को पपीहा, कुंज्ज, दादुर, मोर, काग, वायु आदि को सम्बोधित कर प्रकट करती है । पंथी को सम्बोधित करते कई दोहे मिलते हैं जो वास्तव में सम्बोधन की परिपाटी को निभाते हैं क्योंकि कोई पंथी उसका संदेश ले जाने उपस्थित अथवा दृष्टिगोचर हुआ जान नहीं पडता है । मारवणी के विरह में लौकिक भाव ही प्रबल है । मारवणी अंकुरित यौवना है । मदन की ज्वाला उसमें उठती है । (दोहा सं. २५) और यह ताप (दोहा सं. २६) शरीर को निरन्तर तपाता रहता है । मारवणी अपने संदेश में अपनी इस यौवन व्याधि (संवेदना) को मूल आधार बनाती है । कुछ पंक्तियाँ यहाँ दृष्टव्य है वह देखें –

जोबन – हस्ती मद चढयउ, अंकुस लइ धरि आइ ॥११५॥
जोबन – आंबउ फळि रह्यउ, साख न खाअउ आइ ॥११७॥
जोबन – छत्र उपाडियउ, राज न बहसउ काइ ॥११८॥
जोबन – कमल विकासियउ, भमर न बइसइ आइ ॥११९॥
जोबन चांपउ मउरियउ, कळी न चुट्टइ आइ ॥१२०॥
जोबन फट्टि तलावडी, पालि न बंधउ काँइ ॥१२२॥
जोबन बंधन तोडसइ, बंधण धातउ आप ॥१२४॥
जोबन जायइ पाहुणउ, बेगइरउ घर आय ॥१३४॥

इस पक्तियों में मारवणी का विरह संवेदन भरा पडा दिखाई पडता है ।

ढोला मारू रा दूहा[२५] कल्लोल कवि

आदिकाल के लौकिक काव्यकारों में कल्लोल कवि को प्रेम – कथानक के रचयिता के रूप में जाना जाता है । कल्लोल कवि के नाम के प्रश्न पर विभिन्न विद्वानों में पर्याप्त मतभेद रहा है, फिर भी यह स्वीकार किया जाता है कि ११ वीं से १३ वीं सदी के मध्य कल्लोल नाम का कोई कवि हुआ था, जिसने 'ढोला मारू रा दूहा' के मूल रूप की रचना की थी । ऐसा भी माना जाता है कि १५-१६ वीं शताब्दी के जैसलमेर निवासी कुशललाभ नामक जैन कवि ने 'ढोला मारू रा दूहा' के उपलब्ध दोहों का संकलन कर उनमें कथा-सूत्रों को जोडने के लिए चौपाईयों की रचना कर इसे नये रूप में प्रस्तुत किया । यह एक सर्वमान्य मत है कि कुशललाभ से पूर्व राजस्थान प्रदेश में ढोला-मारू विषयक लोक-काव्य जन-सामान्य में प्रचलित था । चूंकि यह काव्य लम्बे समय तक श्रुति रूप में ही प्रचलित था, अतः समय समय पर इसके स्वरूप और भाषा में परिवर्तन होते रहे ।

ढोला-मारू रा दूहा एक लोक-काव्य है । इसमें कछवाहा वंश के राजा नल के पुत्र ढोला और पूगल नरेश पिंगल की पुत्री मारवणी की प्रेम-कथा का वर्णन है । कथानक का सारांश इस प्रकार है – एक बार पूगल में भयंकर अकाल पडा, फलतः पूगल नरेश अपनी पुत्री मारवणी को लेकर राजा नल के यहाँ चले गये । वहीं पर राजा नल के पुत्र ढोला से मारवणी का विवाह कर दिया । इस समय ढोला और मारवणी की आयु क्रमशः तीन और देढ वर्ष की थी । बाद में जब ढोला बडा हुआ तो उसका विवाह मालवा के राजा की पुत्री मालवणी से कर दिया गया । ढोला (मारवणी को भूलकर) मालवणी के प्रेम में लिप्त हो गया । उधर मारवणी अपने प्रियतम ढोला के विरह में जलने लगी । मारवणी ने प्रेम और वियोग की व्यथा से दग्ध होकर ढाढियों के माध्यम से ढोला के पास अनेक संदेशे भेजे । संदेशा भेजने के साथ-साथ लोक कवि ने प्रेम और विरह के अनेक मार्मिक भावों को अभिव्यक्ति दी है । कवि ने मारवणी के संदेश-वर्णन द्वारा हृदय की प्रेम-मूलक कोमल संवेदनाओं को बडी गहराई के साथ व्यक्त किया है । विरह वर्णन के साथ-साथ षट्ऋतु वर्णन करके कविने प्रकृति और मानव-मनोभावों में एकात्मय स्थापित करने का प्रयास किया है । वियोग की क्षणों में प्रकृति की सरसता भी विषय बन जाती है । ऐसे में बिजलियों का बादल से मिलकर – अठखेलियाँ करता मारवणी को अच्छा नहीं लगता :-

''बिजुलियाँ जालउमिल्यां ढोला हूं द सहेसि ।
जउ आसाढि आवियउ सात्रण समकि मरेसि ॥''

विरह-प्रसंग में ऋतु वर्णन के साथ ही सौंदर्य-वर्णन भी हुआ है । कविने मारवणी के यौवन और रूप का विभिन्न उपमानों के माध्यम से अत्यन्त ही सरस और मादक के रूप में वर्णन किया है । कभी कवि मारवणी के यौवन को क्षीर-सागर कहता हुआ ढोला से अपेक्षा करता है कि वह उसे मथ कर उसमें से रत्न निकाले, तो कभी यौवन को प्राहुणउ (मेहमान) मानता हुआ कहता है कि यह शीघ्र ही चला जाएगा, अतः ढोला

शीध्रातिशीध्र आकर मारवणी से मिले । प्रेम में मारवणी 'ताता भात' इसलिए नहीं खाती कि हृदय में बसा हुआ उनका प्रियतम कहीं दग्ध नहीं हो जाए ? यौवन और रूप का वर्णन करते हुए कवि लिखता है –

जीवन हस्ती मय चढवउ, अंकुस लइ धरि आह ।
आँख्याँ सीप विकासिया, स्वात ज वरसउ आई ।
जोवन कमल विकासियउ, भ्रमर न बहसइ आह ।
जंधा केलिनि फलि गइ, स्वात जु वरसउ आई ।

मारवणी कहती है कि अब ढोला संदेश अथवा पत्र नहीं भेजे अपितु स्वयं आकर मिले । वह ढोला को निमंत्रित करती हुई कहती है –

'संदेशा मति मोकलउ, प्रीतम तू आवेस ।
आंगुलडी ही गलिं गयां, नयण न बाँचण देस ।''

कवि ने विरह–वर्णन के प्रसंग में ही प्रेम के अकथ्य और गूढ स्वरुप की ओर इंगित करते हुए लिखा है :–

''अकथ कहाणी प्रेम की, किंणसूं कही न जाइ,
गूंगा का सुपना भया, सुमर सुमर पछताइ ।''

यद्यपि मालवणी अनेक प्रयत्न करती है कि कहीं मारवणी के संदेश ढोला तक न पहुँच पाएँ किन्तु अन्त में मारवणी के संदेश ढोला तक पहुँच जाता है । मालवणी को अपने कृत्य की सजा मिलती है तथा ढोला–मारवणी का पुनर्मिलन हो जाता है ।

इस संक्षिप्त कथानक में लोक–जीवन के अनेक पक्षों का सुन्दर रूप में उद्घाटन हुआ है । भावात्मक दृष्टि से यह एक प्रेम–मूलक काव्य है । इसमें अलंकारों का निरुपण सहज रूप में हुआ है । कवि ने राजस्थान के लोकजीवन से उपमानों का चयन किया है । रूप–वर्णन के लिए चन्द्रमा को तो उपमान के रूप में अनेक कवियों ने चुना है, किन्तु इस काव्य में राजस्थानी नारी के रूप–सौंदर्य के लिए सूर्य को उपमान के रूप में चुना गया है । ऊँट के अभाव में लोक–जीवन की झाँकी संभवतः अपने पूर्ण रूप में मुखरित नहीं हो सकती थी, यही कारण है कि इस काव्य में ऊँट का वर्णन हुआ है । वर्षाऋतु राजस्थान के जन–जीवन का प्राण है, और ढोला – मारु रा दूहा में वर्षाऋतु के विविध पक्षों का विशद् वर्णन हैं । भाषा की दृष्टि से इसे जन–भाषा का काव्य माना जाता है । इतना ही नहीं कथानक–रूढियों का प्रयोग भी इस काव्य में प्रचुर मात्रा में हुआ है । निश्चय ही ढोला–मारु रा दूहा आदिकाल के लौकिक काव्य का एक श्रेष्ठ उदाहरण है । जिसमें प्रेम–वर्णन के साथ–साथ लोकजीवन के अनेक पक्षों का सुन्दर रूप में वर्णन हुआ है ।

ऋतुनुं दोहासाहित्य (गुजराती)

मेह - ऊजळीनी बारमासी[२६]

मेह जेठवो छूमली नगर का राजकुमार था और ऊजळी पांचाल के डुंगर पर रहने वाली चारण कन्या थी । ऊजळी के पिता का निवास (तंबू बांधकर) वर्षाऋतु में बरडा डुंगर (पोरबंदर के पास आया हुआ बरडा डुंगर) था । उसी वक्त मेह जेठवो अतिवृष्टि से भीगा हुआ विश्वेतन अवस्था में ऊजळी के तंबू के पास पडा था उनकी शर्दी (ठंड) दूर करने के लिए और गर्मी देने के लिए सभी उपाय निष्फल होने से ऊजळी ने मेह को अपने बिस्तर पर सुलाकर गर्मी (हूंक) दी थी । बाद में दोनों के बीच प्रीति हुई थी लेकिन अंत में मेह - जेठवा को उनके माता-पिता ने चारण कन्या के साथ विवाह करने को मना किया । मेह जेठवा ने ऊजळी का जीवन धूल में मिला दिया । उनके सपने चकनाचूर हो गये । ऊजळी बिनती के स्वर में यह दोहे गाती है । यह बारहमासी दोहे में ऊजळी ने मेह जेठवा को मे (वर्षा) का रूपक दिया है । ऊजळी अपने विरही दोहे गाती हुई कहती है :

कारतक महिना मांय, सौने शियाळो सांभरे,
टाढडियुं तन मांय, ओढण दे आभपरा-धणी ।

(कार्तिक मास में सभी को शर्दी की ऋतु (शियाळो) याद आती है । शरीर पर ठंड लगती है । इसलिए हे आभपरा के स्वामी मेह जेठवा । तुं मुझे तेरा (स्नेहरूपी) ओढण दे ।)

मागशरमां मानव तणा सहुना एक ज श्वास
(ई) वातुंनो विशवास, जाण्युं करशे जेठवो !

(मागशर मास में तो सभी मानव एक श्वास हो जाते हैं । (प्रियजन अलग नहीं रह सकते ।) मैंने तो माना था कि इस बात पर विश्वास करके मेह जेठवा मेरे पास आयेगा ।)

पोष महिनानी प्रीत, जाण्युं करशे जेठवो;
राणा ! राखो रीत, बोल दई बरडा-धणी ।

(मैंने तो जाना था कि अंत में पोष मास में तो जेठवा-पुत्र प्रीति करेगा । हे बरडा डुंगर के राजा । वचन देने के बाद अब तो सज्जन बनें ।)

माह महिना मांय ढोल त्रंबाकु ध्रुशके;
लगन चोखां लै आव । वधावुं वेणुवा धणी ।

(माह महिने में विवाह की ऋतु होने के कारण ढोल-नगाडे बजते हैं । इसलिए हे वेणु डुंगर के मालिक मेह ! तुं भी शुभ तिथि (शुभ दिन) की (लग्न की आमंत्रण पत्रिका) कंकोतरी भेज तो मैं उनका स्वीकार कर लूं ।)

फागण महिने फूल, केशूडां कोळ्यां घणां;
(एनां) मोघां करजो मूल, आवीने आभपरा-धणी !

(फाल्गुन मास में केसूडां इत्यादि के कई फूल खीले हैं । लेकिन हे आभपरा के राजा । तुम आकर ये महँगे फूलों की किमत कीजिए । (अभी तो ये सब मेरे लिए निकम्मे हैं ।)

चैतरमां चत मांय कोळामण वळ कारमी
(एनी) ऊलट घणी अंग मांय, आयो आभपरा-धणी !

(चैत्र मास में बाहर की वनस्पति की तरह मेरे चित्त (हृदय) की अंदर भी नई ऊर्मिओं के अंकुर फूटते हैं । ये ऋतु का उल्लास मेरे मन में (शरीर में) उभराता है । इसलिए हे आभपरा के स्वामी । तुम आओ ।)

वैशाखे वनमांय आंबे साखुं ऊतरे,
तम व्होणी करमाय विजोगे वेणुना धणी ।
जेठ वसम्मो जाय, धर सूकी धोरी तणी,
पूंछल पोरा खाय जीवन विनानां जेठवा ।

(जेठ महिना इतना कठिन होता है कि बैल की कांध सूख जाती है । निश्चेतन और बिना जीवन के पशु आराम करते करते हल खींचते है ।)

अषाढ कोराडो उतर्यो, मैयण पतळ्यो मे,
दलने टाढक दे । जीव नांभे रे जेठवा ।

(अषाढ भी बिना बारिश पूरा हो गया । मे (वरसाद या मेह जेठवो) ने भी विश्वासघात किया । हे जेठवा ! थोडा भी बरसकर मेरे दिल (हृदय) को ठंडक दे, तो मेरा जी नाभि में टिक रहे ।)

श्रावण महिनो साबदो जेम तेम काढयो जे,
तम वण मरशु मे ! भेळां राखो भाणना !

(श्रावण मास भी बारिस बिना जैसे तैसे निकला । अब तो हम तुम्हारे बिना मर जायेंगे । हे भाण जेठवा के पुत्र ! मुझे तुम्हारी साथ रखना !)

हाथी पूछल्यो होय, (एने) केम करी उठाडीए ।
जेठवा विचारी जोय ! भादरवो जाय भाणना ।

(ये तो भादरवा महिना भी बारिस के बिना जाता है । हे जेठवा ! अन्य छोटे छोटे पशु पूछल्यां (चेतनहीन) हो तो उसे किसी भी उपाय से उठा सकते हैं, लेकिन हाथी जैसे बडे पशु जब अनावृष्टि से चेतनहीन होकर बैठ जाते हैं तो उसे कैसे उठा सकते हैं ? कहने का मतलब है कि हाथी जैसी लाचार गति मेरे प्रेम की हो गई है ।)

आसो महिनानी अमे राणा ! लालच राखीएँ,
त्रोडियुं सर्युं तमे, जीव्युं नो जाय जेठवा ।

(हे मेह । हमने आसो मास में भी तेरी आशा रखी है । लेकिन तुमने यह स्नेह की सरवाणी तोड डाली है । अब मैं जी नहीं सकूंगी ।)

ओढा-होथलना दोहा[२७] (गुजराती)

उत्तर शेड्युं काढिढयुं, डुंगर डम्मरिया,
हैडो तलके मच्छ जीं, (मुजां) सजण संभरिया,

(उत्तर दिशा में मेघ (वर्षा) ने अपनी कालिमा छायी है । डुंगर पर काले डिबांग बादलों को देखकर ओढा का हृदय जल के बाहर की मीन (मछली) की तरह छटपटाने लगा । क्योंकि उनको अपने स्वजनों (वतन के लोगों) की याद सता रही थी ।)

मत लव्य, मत लव्य मोरला, लवतो आघो जा !
एक तो ओढो अणोहरो, मथ्ये तोंजी धा ।

(होथल कहती है : हे मोरला ! तुं बक बक मत कर ! तुं दूर जाकर टहुका कर ! क्योंकि एक तो मेरा स्वामी ओढा उदास है ही, उसमें तेरी (वाणी) घा से ये ज्यादा शोकातुर हो जाता है । क्योंकि उनको स्वजन याद आ रहे हैं ।)

मारीश तोंके मोर ! सींगणजां चडावे करे,
अयें चितजा चोर ! आढेके उदासी कियो ।

(हे मोर ! मैं तुझे कामठी पर तीर चडा के मारुंगी । ओ मानवी के चितडा के चोर ! तुने मेरे ओढा को आज उदास कर दिया ।)

असीं गिरिवरजा मोरला, कांकर पेट भरां,
रत आव्ये न बोलां, (त) हैडो फाट मरां !

(मोर कहता है : हे होथल ! मैं तो डुंगर में रहने वाला गरीब मोर हूं । मैं तो पृथ्वी पट पर से कंकर खा कर पेट भरता हूं । लेकिन जब मेरी पसंद की ऋतु आये तब हृदय खोलकर न बोलुं तो मेरा हृदय फट जाय और में मर जाऊँ !)

करायलके न मारी जेंजां रत्तां नेण,
तड विठा टौका करे, नित संभारे सेण ।

(ओढा कहता है : हे होथल ! जिसके नयन (आँखे) लाल है । जो पर्वत की (भेखडें) टोच पर बैठे बैठे टहुका करता है, और जो प्रतिदिन अपनी प्रिया (स्वजन) को याद करता है, ऐसे मोरले को नहीं मारा जा सकता ।)

रेलमछेला डुंगरा, चावो लगो चकोर;
विसर्या संभारी डिपे, से न मारीजें मोर !

(डुंगर पानी से तरबतर हो गये हैं । चकोर पक्षी को चाह याद । ऐसी ऋतु में अपने को भूल गये (विस्मृत) स्वजनों, स्वदेश बांधवों का स्मरण (याद) कराने वाला मोर को नहीं मारा जा सकता ।)

छीपर भींजाणी, छक हुवो; त्रंबक हुई व्यां नेण,
अमसे उत्तर गोरियां पडी तोजें चित्त सेण ।

(मेरा दर्शन से वतन की याद आने से ओढा इतना रो पडा कि स्वयं जहाँ बैठा वह शिला आँसुओं से भीग गई । नयन (आँखे) लाल हो गई । तब होथल ने पूछा : ''हे प्यारे स्वजन (सेण) क्या तेरे हृदय में मेरे से भी ज्यादा कोई सुंदर स्त्री याद आ रही है ?)

प्रास्ताविक दोहा (गुजराती)

अन्य कई दोहे

खड खूट्यां गोरल बसूक्यां, वालां गियां वदेश,
अवसर चूक्या मेहुला ! वरस्ये कांऊ करेश ?

(देरी से आई हुई बारिस को छोटे गाँव (नेसडा) की वियोगी चारण स्त्री कहती है : हे तक चूक जाने वाला मेहुला । अब बिना अर्थ क्यों बरस रहा है ? घास चारा कम हो गया, मेरी गायें वसूक गई (गायों ने दूध देना बंद कर दिया) और मेरा प्रियजन (मेरा पति) पशुओं को लेकर कब का परदेश चला गया ।)

शियाळ टाढयुं सोपटे, हाले हेमाळा,
वसता घर वसियो नहि के दी कुचाळा ।

(शर्दी की ऋतु में ठंड लगती है, ठंडा, ठंडा पवन लगता है; फिर भी हे कुचाळा ! हे स्वामी ! तुं भी शर्दी की ऋतु में घर नहीं आया !)

ऊनाळे अग्नि झरे, करवा, पंथ काळा,
वसता घर वसियो नहि, के दी कुचाळा ।

(गर्मियों के दिन में अग्नि बरसती है, प्रवास करने का कठिन हो गया है । ऐसी मौसम में हे स्वामी । तुं घर पर नहीं ठहरा !)

चोमासे ठोंडी चुवे पाणी परनाळां;
वसता घर वसीओ नहि, के दी कुचाळा ।

(बारिस की ऋतु में पाघडी टपकती है । पानी बरस रहा है फिर भी हे स्वामी ! तुं घर पर नहीं ठहरा !)

रात अंधारी मेह झड, शेरी सांकडियां,
हाथ वछूटी सायबा । खवजो वीजळियां ।

(रात्रि गहरी अंधकारमय है, धोधमार मेह बरस रहा है, और ये छोटी गली है ! हे पति ! आप से मैं अलग हो गई हूं – खो गई हूं । तो मुझे बीजली के चमकार से ढूंढ निकालना ।)

बीजळी ! तुं वेरण थई, मेहुला ! तुं य न लाज,
मारो ठाकर घर नहि, मधरो मधरो गाज ।

(हे बीजली ! तुं मेरी वेरण हो गई है । मेहुला ! तुझे भी शर्म नहीं हैं ! तुं आज धीरे धीरे गाज ! क्योंकि मेरा पति घर पर नहीं हैं । तेरी गर्जना से मेरी वेदना बढ जाती है ।)

मोर मारे मदई थियो, वहरां काढे वेण,
जेनी गहके गरवो गाजे; सूतां जगाड सेण;
सूतां जगाडे सेण ते मोरलो ऊडी गियो;
वालां साजणनो संदेशो अधवच रियो;

पांखुं पीळी पोपटनी ने कोयल राते नेण;
मोर मारे मदई थियो ने वहरां काढे वेण,

(मोर मेरा दुश्मन बना है, क्योंकि यह वर्षाऋतु में ये टहुका कर रहा है । उनके टहुकार से गिरनार (पर्वत) हिल रहा है और मेरे हृदय में से विस्मृत हुए स्वजन ये टहुकार से जागृत कर रहा है । यह विस्मृत स्वजनों की स्मृति जगाकर मोरला तो उड गया, लेकिन मेरे प्रिय स्वजन (प्रियतम) को संदेश भेजना था वो तो आध रास्ते में ही रह गया ।)

अषाढ वरसे एलीए, गाजवीज घमघोर,
तेजी बांध्या तरुवरे मधुरा बोले मोर,
मधुरा बोले मोर ते मीठा,
धणमूलां साजण सपनामां दीठा,
के' तमाची सूमरो, रीसाणी ढेल ने मनावे मोर
आषाढ वरसे एलीए गाजवीज घमघोर,

(आषाढ मास अनराधार बरस रहा है । गाजवीज हो रही है । घनघोर बादल छाया हुआ है । मोर धीरे धीरे बोल रहा है । ऐसी रात्रि में मैंने प्रियजन को स्वप्न में देखा । तमाची सूमरो नायक कवि कहता है कि, मोरलो अपनी (रिसाई हुई) नाराज ढेलडी को मनाता है । आषाढ अनराधार बरस रहा है ।)

कहावती कथाएँ

(गुजराती एवं राजस्थानी)

कहावती कथाएँ (२८) (राजस्थानी एवं गुजराती)

हठीला, हठ छोड दे (राजस्थानी)

एक शेरनी को जब भूख लगी तो उसने शेर से कहा कि भूख लगी है, जाकर शिकार कर लाओ । तब शेर उठा उसने एक झटके के साथ अपने शरीर को झाडा, उसकी पूँछ खडी हो गई और आँखें लाल हो गई । उसने एक दहाड़ लगाई तथा एक ओर को दौड गया । थोडी ही देर में वह एक जँगली भैंसे को मार कर ले आया । एक गीदड़ ने यह सब देखा तो उसने सोचा कि अब शिकार करने की अटकल मुझे भी आ गई है । वह दौड़ा-दौड़ा अपनी घरवाली के पास गया और बोला कि क्यों भूख लगी है क्या ? यदि भूख लगी हो तो मुझसे कहो, मैं आज शिकार करने की विद्या सीखकर आया हूँ । उसने हाँ करने पर गीदड़ ने कहा कि देखो मेरी पूँछ हवा में सीधी खड़ी हो गई है न ? और मेरी आँखे लाल हो गई है न ? तब सियारी ने कहा कि अभी तो पूँछ नीचे लटक रही है और आँखो की पुतलियाँ सफेद पड़ी है, तब गीदड़ ने उसे फटकारा और कहा कि तुम्हें इतनी भी तमीज नहीं । तब सियारी ने कहा कि नाराज क्यों होते हो ? तुम जैसा कहोगे मैं हाँ भर लूँगी । तब गीदड़ शिकार की खोज में दौड़ा । थोड़ी ही दूर पर एक ऊँट चर रहा था, गीदड़ ने झाड़ में घुसकर उसके मुँह पर अपना पंजा जमाया । ऊँट ने अपनी गर्दन ऊपर को उठाई तो गीदड़सिंहजी जमीन से पाँच हाथ उपर हवा में लटक गये । तब सियारी ने अपने पति से शिकार का हठ छोडने के लिए कहा, ''हठीला हठ छोड दे''। तब सियार ने कहा कि मैं हठ तो छोड दूँ, लेकिन कमबख्त ने तो मुझे जमीन से पाँच हाथ ऊपर उठा रखा है, कहीं जमीन पर पैर भी तो टिके :

सुन्दर का बोल मेरै मन भावै ।
पण धरती पर पग मँडण भी पावै ॥

(सुन्दरी के बोल मेरे मन को बड़े अच्छे लग रहे हैं लेकिन धरती पर पैर टिकने पाएँ तब तो शिकार करने का हठ छोडूं ।)

रढियाळा मूके छे पण सूंढाळा क्यां मूके छे ? (गुजराती)

वादळ साथे वातो करता गिरनारना डुंगरनी छायामां नानकडो नेस । नेस नजीक नानकडुं तळाव । तळावना कादवमां देडकांनो लांबो-पहोळो परिवार रहे । सवार-सांज आ परिवारनी महेफिल जामे, महेफिलमां संगीत रजू करवानी हरीफाई चाले । डरांउ डरांउना अवाजथी टाढा पहोरे वगडो आखो गुंजवा मांडे ।

आ तळावने कांठे रबारी, भरवाड अने चारणोना नाना मोटा नेस । अेनी पडखे खाखी बावानो अेक धूणो । धूणो धखावीने बावो तप करे । धूणानी पडखे हाथी बांध्यो रहे । महावत आ हाथीने सवार सांज पाणी पावा माटे तळावे लई जाय ।

हाथीने तळावमां आवतो जोई मेडक परिवारोनी संगीत सभाना रंगमां भंग पडतो । हाथी पाणी डहोळीने जतो रहे पछी संगीतनी रंगत जामती नहि । आथी एक दिवस बधा देडकां भेगां थयां अने पोताना राजा मेडकराज पासे पहोंच्यां । जईने फरियाद करी :

'राजाजी ! राजाजी ! आ जाडियो पाडियो हाथी दररोज आवीने देडकांना दरबारी रंगमां भंग पाडे छे । आपणी संगीतसभा मांड जामे छे त्यां अेने वेरणछेरण करी नाखे छे । लोकशाहीना जमानामां आवी सरमुखत्यारशाही शी रीते सही लेवाय ? तमे रजा आपो तो आपणा तळाव साम्राज्यमांथी डाह्या देडकाओनुं अेक प्रतिनिधि मंडळ मोकली हाथीने जणावी दईअे के हवे पछी जो अमारा तळावनी हदमां आवीने अडपलां करवानुं बंध नहीं करे तो अेनुं गंभीर परिणाम तारे भोगववुं पडशे ।

नक्की क्र्या मुजब बीजा दिवसे पांच दोढ डाह्या देडकाओनुं प्रतिनिधि मंडळ तळावना कांठे जई पाणीमांथी अर्धां मोढां बहार काढी, हाथी क्यारे आवे छे अेनी राह जोतुं बेठुं । बपोर सुधी हाथी देखायो नहीं अेटले तेओ अंदरोअंदर वातोअे वळग्यां :

'आ हाथीडाने आज तो स्पष्ट कही ज देवुं छे के कालथी अमारा तळाव तरफ ऊंची आंख करी छे तो आंख फोडी नाखीशुं । ऊंची सूंढ करी छे तो सूंढ तोडी नाखीशुं, अने जो पाणी पीधुं छे तो तारुं पेट फोडी नाखीशुं । तुं तारा मनमां समजे छे शुं ? तुं जाडो होय तो तारे घेर, अमे ताराथी बी नई जईअे ।'

आम बोले छे त्यां तो हाथीने सामे आवतो जोयो, हाथी तळावमां पाणी पीवा लाग्यो त्यारे पांचेय देडकां अेक वांढा देडकाने आगळ करतां कहेवा लाग्यां ।

'तुं आगळ जा । तुं वांढो छे अेटले पाछळ कोई वाट जोवे अेवुं नथी । अमारी देडकीओ अमने न जुअे ने तो ऊंडा कादवमां जईने डूबी मरे अेनी तने खबर छे ?'

आम प्रतिनिधि मंडळ वातोना वडां करतुं रह्युं त्यां तो हाथी पाणी पीने पाछो वळतो हतो त्यारे वांढो देडको छलांग मारीने पाणीमांथी बहार आव्यो ने बोल्यो :

'अे तारा माना हाथीडा ! ऊभो रहे । कालथी जो तळावमां पग मूकीशने तो तारो टांटियो ज भागी नाखीश । तारुं माथुं तोडी नाखीश, ने मारी मारीने चामडुं उतारी नाखीश ।'

आम देडको बोलतो रह्यो ने हाथी अेनी मस्तीमां चाली नीकळ्यो । बीजा देडका कहेवा लाग्या के हवे तो राजा पासे ज फरियाद करवी पडशे । अकळायेला बधा देडका खरा बपोरे मेडक राजाना महेले पहोंच्या, त्यारे मेडक राजानी मानीती राणी मेडकी नाक चढावीने बोली:

'स्वामी अत्यारे शयनगृहमां पोढ्या छे । अत्यारे केम अहीं आव्या छो ?'

'राणी साहेबा ! आ हाथी दररोज तळावमां पाणी पीवा आवे छे अने आपणा देडकांनी दरबारी संगीतसभामां भंग पाडे छे । मेडकराजा सिवाय अेने कोई मारी शके अेम नथी ।'

'ओह ! अेम वात छे ?'

अेम बोलीने मानीती मेडकी राणीअे मेडक राजाने जगाड्या ।

'स्वामी ! जागोने केटला बधा देडका आपणे आंगणे आव्या छे ।

आ सांभळीने मेडक राजा ऊंघमांथी जाग्या । देडकाओअे हाथीनी फरियाद करी । मेडक राजा ताडूक्या :

'क्यां छे अे हाथीडो ?'

'बापु तळावनी पाळ उपर ऊभो ऊभो पीपरनां पांदडां तोडीने खाय छे । आज तो अेने छठ्ठीनुं धावण ओकावी दो ।'

मेडक राजाअे बधां देडकांने बोलावीने हुकम क्र्यो :

'चालो, हाथी उपर चडाई करवी छे ।'

सांजे हाथी पाणी पीवा आवे त्यारे अेना पगमां गाळियो भरावी, ऊंडा पाणीमां खेंची जई डुबाडीने मारी नाखवानी योजना बनावी ।

संध्या समये देडकाओ तैयार थईने हाथीनी राह जोवा लाग्यां, मेडकी राणी अने अन्य देडकीओ मेडकराजानुं पराक्रम जोवा बेसी गई अने कहेवा लागी :

'रढियाळा राजा ! आज हाथीडाने तमारी भूजाबळनुं पाणी बतावी देजो ।'

त्यारे मेडकराजे गजगज छाती फुलावीने कह्युं :

'मेडकी राणी ! मूंझाईश नहि ! आज हाथीने तळावमां डुबाडी ना दउं तो मारुं नाम मेडक राजा नहीं ।

सांज पडी ने हाथी तळावमां पाणी पीवा आव्यो त्यारे मेडकराजाअे बनावेल गाळियो हाथीना पगे बांध्यो अने बीजो छेडो पोतानी कमरे बांध्यो ।

देडकाओअे मेडक राजानी जय बोलावी, त्यारे मेडकी राणी बोली :

'हवे जोजो अमारा राजाना पराक्रम ।'

हाथीने तो आ मेडक पराक्रमनी कंई खबर ज न हती । अे तो पाणी पीने पाछो वन तरफ वळी गयो । मेडकराजा पाछळ पाछळ खेंचावा मांड्या ने बूमो पाडवा मांड्या ।

'हाथीडा ! आज तारा भुक्का काढी नाखुं.' मेडकराजा भूंडा हाले हाथी पाछळ खेंचाय छे । मेडकी राणी मेडक राजाने पोरस चडावे छे ।

'स्वामी ! तमे तळावमांथी हाथीने खेंचीने छेक वगडामां लई गया । तमे घणुं जोर कर्युं छे । हाथीने बिचाराने क्यां सुधी खेंची जशो । मारा रढियाळा राजा हवे तो हाथीने छोडो !'

ढसडाता अथडाता – कुटाता मेडकराजा ढीलाढस थईने बोल्या : 'रढियाळा तो हमणां मूके, पण सूंढाळा क्यां छोडे छे ?'

आ कहेवत मोटी मोटी डंफाशो मारनार फूलणजीओ क्यारेक भराई जाय छे त्यारे अेना माटे वपराय छे ।

लोभी पंडित (राजस्थानी)

एक पंडित बडा लोभी था । एक दिन उसकी स्त्री ने बाजार से एक नारियल लाने के लिए उसे कहा । पंडित ने बाजार में जाकर दुकानदार से पूछा तो उसने एक नारियल की कीमत चार पैसे बताई । पंडित ने कहा कि चार पैसे तो बहुत हैं, तीन पैसे में देना हो तो दे दो । दुकानदार ने कहा कि तीन पैसे में आगे मिलते हैं । पंडितजी आगे चले । अगले दुकानदार ने नारियल की कीमत तीन पैसे बताई तो पंडितजी ने पूछा कि कहीं दो पैसे में नारियल मिल सकता है क्या ? दुकानदार ने कहा कि आगे मिलेगा । पंडितजी फिर आगे गये तो वहाँ उन्होंने एक पैसे में नारियल मिलने का स्थान पूछा । दुकानदार ने कहा कि आगे नारियल का वृक्ष हैं, उन पर चढ़कर नारियल तोड लीजिए, कुछ भी नहीं लगेगा । पंडितजी को यह बात बहु अच्छी लगी और आगे जाकर नारियल के वृक्ष पर चढ़ गये । पंडितजी का पैर फिसला तो दोनों हाथों से वृक्ष की डाल को पकड़ लिया ।

जहाँ पंडितजी लटक रहे थे उसके ठीक नीचे एक बहुत बड़ा गड्ढा था, जिसमें गिरते ही उनका प्राणान्त हो जाता । पंडितजी को वहाँ लटके जब बहुत देर हो गई तो उधर से एक महावत अपने हाथी पर चढ़ा हुआ निकला । पंडितजी ने उससे प्रार्थना करते हुए कहा कि मुझे नीचे उतार दो मैं तुम्हें एक सौ रुपये दूँगा । महावत अपने हाथी को वहाँ ले गया, परन्तु उसने ज्योंही पंडितजी के पैरों को पकड़ा, हाथी नीचे से सरक कर अलग जा खड़ा हुआ । अब दोनों लटक गये । फिर एक ऊँट वाला आया । दोनों ने उसे सौ – सौ रुपये देने की बात कहकर उन्हे उतारने की प्रार्थना की । लेकिन महावत की तरह ही वह भी लटक गया । फिर एक घुडसवार आया और उसकी भी वही गति हुई । अब चारों नारियल के वृक्ष से लटकने लगे । घुडसवार ने पंडित से कहा कि पंडितजी ! आप हाथ नहीं छोड देना, मैं आपको एक हजार रुपये दूँगा । पंडितजी ने सोचा कि एक हजार रूपये कितने होते हैं । उसने खुशी से दोनों हाथ फैलाकर ज्योंही कहा कि एक हजार रुपये तो इतने होते हैं, चारों खड्डे में गिर पड़े और मर गये । तभी किसी ने कहा –

अति लोभ न कीजिए, लोभ पाप की धार ।
एक नारेल के कारणै पडया कुवै में च्यार ॥

अधिक लोभ नहीं करना चाहिए लोभ पाप की धार है । इसी लोभ के कारण एक नारियल की खातिर चार मनुष्य कुएँ में गिर पड़े ।

लोभे लख्खण जाय (गुजराती)

एक देशी रजवाडुं । बापु गामना रणीधणी । अे कहे अे कायदो ने अे कहे अे न्याय । खेडूतो बापुने बापतुल्य मानता । बापु अेनी अरज सांभळ्ता अने तरत अेनो निकाल पण करता ।

गाममां भरवाडो पण वसे । भरवाड अेटले संपीली कोम । संपने जोरे भरवाडो काचापोचा खेडूतोनुं खेतर भेळ्वी मूकता । माथाभारे भरवाडो साथे कोई माथुं ऊंचकतुं नहि । जो कोई सामे थाय तो लाकडीओ ऊडे ।

अेकवार रूडिया भरवाडे पसा पटेलनुं जुवारनुं खेतर मधराते जईने भेळी मेल्युं । बीजे दिवसे बापु पासे फरियाद गई । बापुअे रूडियाने डेलीअे बोलाव्यो अने कह्युं :

'रूडिया हमणांथी तारी राड्य बहु वधी गई छे । पसा पटेलना खेतरमां गायो छूटी मूकी, शुं काम अेनुं खेतर भेलाव्युं ?

'बापु ! अधरात-मधराते झोकुं आवी गयुं अेमां गायो पसा पटेलना खेतरमां पहोंची गई । बापु आटलो गुनो माफ करो ।'

'सारुं जा, सो रूपिया दंड भरी दे ।'

सो रूपियानुं नाम सांभळ्तां ज रूडियानी आंखो फाटी गई । गाडाना पैडा जेवा राणी छापना रूपिया मारी पासे नथी बापु !' अन्नदाता अमारो गुनो माफ करो । एक गुनो तो ईश्वरेय माफ करे छे । तमे मावतर छो ।'

डाह्यो थया वगर दंड भरी दे । आ तारो आठमो गुनो छे । पसा पटेले काळी मजूरी करी, परसेवो पाडीने जुवार उगाडी छे । अे तारी गायो धरववा माटे नहि ।'

'बापु गायो खाय तो पुण्य थाय ।'

'पुण्यनी पूंछडी । अेने पुण्य नथी जोईतुं । अेना खेतरमां गायो चरावीने पराणे पुण्य करावुं छे ? भगवाननो थोडोक तो डर राख ।'

'बापु भगवाननो डर ना राख्यो होत तो आखुं खेतर ना चरावी दीधुं होत ! थोडुंक शुं काम चरावुं ?'

रूडियानी वातथी रोषे भरायेल बापुअे कह्युं :

'हवे डाहीनो थया वगर दंड भरी दे ।'

'बापु ! मारी पासे सो रूपिया तो नथी ज । बीजी कंईक सजा करो ।'

'तारी पासे रूपिया ना होय तो बीजी साज करुं छुं । अल्या सिपाईओ आनां कपडां उतारीने सो जोडा फटकारो ।'

'बापु बारमे जोडे तो मारा राम रमी जाय । मारां बैरी-छोकरां रझळी पडे । दया करो ने कंईक बीजी सजा करो । तमारी गाय छुं ।'

'अल्या सिपाईओ ! जाव डुंगळीनुं गाडुं भरी लावो ।'

'आ गाडामांथी अहीं ऊभो ऊभो डुंगळीना सो दडा खाई जा ।'

रुडिया भरवाडे सजा कंईक सारी छे अेम मानी ऊभा ऊभा डुंगळीना दडा खावा मांड्या । डुंगळीनो दसमो दडो खातां तो रुडियानां पेटमां बळतरा बळवा मांडी । आंखमांथी

आंसु अने नाकमांथी पाणी वहेवा मांड्युं । मोंढामांथी सीसकारा मारतो मारतो डुंगळीना वीस दडा खाई गयो । पछी तो बापुने करगरवा मांड्यो :

'बापु ! मारा जीवना सम । हवेथी अेक पण डुंगळी नहीं खवाय ।'

'ना शुं खवाय । आ बधी डुंगळी तारे ज खावानी छे ।'

'बापु ! तमारे सजा करवी होय ते करो, पण डुंगळी नहीं खवाय ।'

'डुंगळी ना खावी होय तो जोडा खा ।'

डुंगळी खाईने कंटाळी गयेला रुडियाअे जोडा खावानी शरत स्वीकारी । सिपाईओअे रूडियाना कपडां उतारीने वीस-बावीस जोडा मार्या त्यां तो रूडियो बापुना पगमां आळोटवा लाग्यो ।

'बापु ! आ सिपाईओ मारी मारीने मारुं चामडुं उतारी नाखशे । जोडानो मार माराथी नथी खवातो । दंड लो पण मने सजामांथी छोडो ।'

'तो जा ! सो रूपिया भरी दे । हवे कोईनुं खेतर भेळव्युं छे तो तारी वात छे । आ फेरा सीधो जेल भेगो ज करी दईश ।'

'बापु ! हवे भूल नहीं करुं । दंडना सो रूपिया भरी दउं छुं पण मने छोडो !

राजने सो रूपिया भरीने रूडियो छूट्यो ।

त्यारथी कहेवाय छे के, लोभे लख्खण जाय, ते आनुं नाम । डुंगळी खाधी, जोडा खाधा अने उपरथी दंड पण भर्यो ।

सूत्यां की पाडा जणै (राजस्थानी)

दो आदमियों की भैंसे साथ साथ ब्याने को हुई । दोनों उनको ब्याने की वाट देख रहे थे । रात अधिक बीत गई तब एक ने कहा कि दोनों आदमियों के जागने से क्या लाभ ? एक आदमी सो जाए और जब भैंस ब्याने को हो तब दूसरे को जगा लिया जाए । यों कह कर एक आदमी सो गया और दूसरा जागता रहा । थोडी देर बाद दोनों भैंस ब्या गई । जो जाग रहा था उसकी भैंस ने 'पाडा' प्रसव किया । और दूसरे की भैंस ने 'पाडी' । लेकिन चूंकि पाडी की कीमत पाडे से अधिक होती है, इसलिए जागने वाले ने 'पाडी' को अपनी भैंस के साथ लगा दिया और 'पाडे' को दूसरी भैंस के पास खडा कर दिया । फिर उसने अपने साथी को जगाया कि भाई । जल्दी से उठ, मेरी भी आँख लग गई थी । भैंसे तो ब्या गई है ।

जगाने पर उस आदमी ने कहा कि 'पाडी' तो मेरी भैंस के अनुरुप लगती है । तब दूसरे ने कहा कि नहीं, तुम्हारी भैंस ने तो यह 'पाडा' ही जना है । दोनों में विवाद होने लगा इतने में एक तीसरा आदमी वहाँ आ गया और उसने दोनों की बातें सुनकर कहा कि भई, जो कुछ हो, 'सूत्याँ की तो पाडा ही जणै ।'

(जो सोएगा उसकी भैंस तो पाडा ही जनेगी अर्थात् जो सोएगा वह घाटे में ही रहेगा ।)

जागतानी पाडी ने ऊंघतानो पाडो (गुजराती)

अेक गामनी आथमणी बाजुअे भरवाडोनो नेस । आ नेसमां रुडियो अने भीमलो नामना भरवाडो रहे । बंनेना घर वच्चे बहु अंतर नहीं । रुडिया अने भीमलानी भेंसो अेक ज दिवसे गाभणी थई । आठ-नव महिने भेंसोने वियावानो वखत आव्यो ।

रूडियाने गळा सुधी खातरी हती के मारी भेंसने पाडी ज आववानी । तेथी रुडियो रातना निरांते ऊंघी जतो । परंतु भीमलो महा उस्ताद । अेने मनमां थया करे के मारी भेंसने पाडो ज आवशे । आथी भीमलो उपाधिमां घेर रहेतो अने भेंस क्यारे वियाय छे अेनुं ध्यान राखतो । राते पण ओसरीमां खाटलो ढाळीने सूतो । पति-पत्नी बेय जण वाराफरती जागता अने भेंसनुं ध्यान राखतां । रुडियाने आनी कंई ज चिंता नहोती । अेटले शांतिथी घरमां सूई जतो ।

चोमासानी मधरात थई त्यां तो बंने भेंसो वियाई, रूडियानी भेंसने पाडी आवी अने भीमलानी भेंसने पाडो आव्यो । भीमलो जमानानो खाधेलो । अेणे धीमे रहीने पोतानी भेंसनो पाडो रूडियानी भेंस नीचे मूकी आव्यो अने रूडियानी भेंसनी पाडी पोतानी भेंसना आंचळे वळगाडी दीधी । पछी भीमलो ओसरीमां ढाळेला खाटलामां जईने सूई गयो ।

सवारे भेंसों वियाणी छे अे जाणी रूडियो अने भीमलो भेंसो पासे जाय छे । रूडियानी भेंसने पाडो अने भीमलानी भेंसने पाडी धावती जोई अेक जण कहे छे । ''भै आ जमानो अेवो छे के जागतानी पाडी ने ऊंघतानो पाडो ।''

त्यारथी आ कहेवत समाजमां लोकप्रचलित बनी । अेक लीटीनी कहेवत माणसने केटलो बधो मूल्यवान उपदेश आपी जाय छे ।

अंधेर नगरी (राजस्थानी)

गुरु और चेला घूमते-घूमते एक नगर में पहुँचे । नगर का नाम पूछने पर एक आदमी ने कहा -

अंधेर नगरी अणबूझ राजा ।
टकै सेर भाजी, टकै सेर खाजा ॥

वे दोनों नगर में गए तो उन्हें मालूम हुआ कि वास्तव में ही वहाँ हर चीज टके सेर बिकती है । हलवाई से पूछा तो हलवाई ने कहा -

टकै सेर लड्डु, टकै सेर पेड़ा ।
टकै सेर हलुआ, टकै सेर पेठा ॥

सारी ही चीजें टके सेर देखकर चेले ने सोचा कि यहाँ रहकर मौज उडाई जाए, क्यों दर-दर भटक जाएँ ? इससे अच्छी जगह दुनिया में और नहीं हो सकती । गुरु ने उसे बहुत समझाया, लेकिन चेला वहाँ से जाने को राजी न हुआ । तब गुरु यह कहकर चला गया कि मुसीबत पड़े तो याद कर लेना । इधर चेला माल खा-खाकर कुप्पा होने लगा । एक दिन एक चरवाहे की भेड़ एक दीवार के गिरने से मर गई । उसने राजा के पास पुकार की । राजा ने मकान मालिक को तलब किया तो उसने कहा कि महाराज, राज ने दीवाल कमजोर बना दी इसलिए गिर पडी, इसमें मेरा क्या दोष है ? जब राज को बुलाया गया तो उसने कहा कि अन्नदाता, मजदूर ने गारे में अधिक पानी डाल दिया इससे दीवाल कमजोर रह गई कसूर उसी का है, मेरा नहीं । तब मजदूर को बुलाया गया तो उसने कहा कि पृथ्वीनाथ, शहर कोतवाल का प्रबंध ठीक नहीं है इसीसे बडे - बड़े जानवर मरते हैं । अब कोतवाल को याद किया तो उसने सारा दोष मन्त्री के सिर मढ़ दिया । मन्त्री कोई उचित उत्तर न दे सका, इसलिए राजाने उसे फाँसी पर लटकाने का हुक्म दे दिया । मन्त्री दुबला पतला था, फाँसी का फन्दा उसके गले में फिट नहीं बैठा, तो राजा ने हुक्म दिया कि जिसके गले में यह फंदा फिट बैठे उसीको फाँसी दे दी जाए । ऐसे आदमी की तलाश में दौड-धूप शुरु हुई तो हलवाई की दुकान पर उसी चेले को पकड़ लिया गया । चेला बहुत चकराया । राजा के सिपाही उसे घसीटते हुए फाँसी की ओर ले चले । तब चेलेने गुरु को याद किया । गुरुने आकर सारा मामला पूछा और चेले के कान में कुछ कहा । तब दोनों फाँसी पर लटकने के लिए आपस में लडने लगे । गुरु ने कहा कि मैं फाँसी पर चढूंगा, चेले ने कहा मैं । जब उन्हें ऐसा करते-करते कुछ देर हो गई तो राजा ने पूछा कि क्या बात है ? तब गुरु ने कहा कि महाराज, इस वक्त बहुत उत्तम मुहूर्त है । इस मुहूर्त में जो फाँसी चढता है वह सारी पृथ्वी का एकछत्र सम्राट होता है । यह सुन कर राजा ने कहा कि तुम सब लोग अलग हो जाओ । ऐसे उत्तम मुहूर्त में हम खुद फाँसी पर चढेंगे । गुरु और चेला तो वहाँ से चम्पत हो गए और राजाजी फाँसी पर लटक गए ।

दूध का दूध पाणी का पाणी (राजस्थानी)

गाँव की एक गूजरी शहर में दूध बेचने जाया करती थी । रास्ते में एक छोटी-सी नदी पडती थी । गूजरी जितना दूध घर से लाती थी उतना ही पानी और मिला लेती थी । दूध देते कई दिन हो गए तो हिसाब करवा के दूध के सारे रूपये एक दिन ले आई । नदी के किनारे आकर दूध का बरतन धोने लगी कि इतने में एक बन्दरिया आई और रूपयों की पोटली उठाकर भाग गई । गूजरी ने देखा तो चिल्लाने लगी । बन्दरिया पोटली लेकर एक वृक्ष पर चढ गई और पोटली से एक रूपया लेकर गूजरी की तरफ फेंका और दूसरा नदी में । इसी प्रकार एक रूपया गूजरी की तरफ फेंकती गई और दूसरा नदी में । गूजरी को उसके दूध के रूपये मिल गए थे और पानी के पैसे नदी में चले गए । इसी बात को लक्ष्य करके वहाँ खडे किसी आदमी ने कहा :-

बाँदरी भोली गूजरी स्याणी ।
दूध का दूध (अर) पाणी का पाणी ॥

बन्दरिया भोली थी और गूजरी सयानी थी लेकिन फिर भी बन्दरिया ने सच्चा न्याय कर दिया अर्थात् गूजरी को उसके दूध के रूपये दे दिये और पानी के रूपये पानी में फेंक दिये ।

जाट को बेटा (राजस्थानी)

एक जाट को दो लडके थे, एक था भोला दूसरा था चालाक । पिता के धन के नाम पर घर में सिर्फ एक भैंस थी और एक कम्बल । चालाक भाई की पंचों में चलती थी । अतः जब बँटवारा हुआ तो पंचों ने फैसला दिया कि दिन में कम्बल को भोला रक्खे और रात को सयाना । इसी प्रकार भैंस का अगला हिस्सा भोले का और पिछ्ला सयाने को अर्थात् भोला भैंस को चराये और सयाना दूध निकाल ले । इस प्रकार कई दिन बीत गए । बेचारा भोला रात को ठिठुरता और दिन में भैंस को खिलाता-पिलाता । एक दिन भोले ने किसी समझदार आदमी के आगे अपना दुखड़ा रोया तो उसने कहा कि दिन में तो कम्बल तेरे पास रहता ही है । अतः शाम होने से पहले उसे भिगोकर रख दिया कर और जब सयाना दूध निकालने बैठे तो भैंस के सिर पर दो-चार लठ्ठ जमा दिया कर, क्योंकि भैंस का अगला हिस्सा तो तेरा है ही । दूसरे दिन भोला ने वैसा ही किया तो सयाना बिगड़ा, लेकिन वह कुछ कर नहीं सकता था । फिर पंचायत हुई और इसी बार फैसला हुआ कि रात को दोनों भाई कम्बल ओढ़ लें और भैंस का आधा-आधा दूध बाँट लिया करें ।

कुण बड़ी ? (राजस्थानी)

एक बार लक्ष्मी और सरस्वती में विवाद हो गया । लक्ष्मी ने कहा कि मैं बड़ी हूँ, सरस्वती ने कहा कि मैं बड़ी हूँ । दोनों ने अपने-अपने करतब दिखलाने का निश्चय किया । सरस्वती ने एक ब्राह्मण के शरीर में प्रवेश किया तो ब्राह्मण महाविद्वान बन गया । एक नगर में जाकर उसने एक स्थान पर व्याख्यान दिया तो लोग मंत्र-मुग्ध से हो गए । नगर भर में उसके वत्कृत्व की धूम मच गई । नगर सेठ ने सुना तो उसको अपने यहाँ सम्मानपूर्वक ले आया और उससे वहीं ठहर कर नित्य अपने अमृतमय भाषण से सबको तृप्त करने का आग्रह किया । ब्राह्मण ने कहा कि मैं जिस स्थान पर ठहरुँगा उसे छोडकर दूसरे स्थान पर नहीं जाऊँगा, बस यही मेरी शर्त है । नगरशेठ ने बड़ी खुशी से ब्राह्मण की शर्त मान ली और उसे एक बहुत ही सुविधाजनक स्थान पर ठहरा दिया ।

नित्य दोपहर को ब्राह्मण का प्रवचन वहाँ होता और नगरसेठ और उसके परिवार के लोगों के साथ नगर के अन्य लोग भी एकाग्रचित्त होकर प्रवचन सुनते । चूँकि ब्राह्मण के शरीर में स्वयं सरस्वती विराजमान थीं इसलिए उसके व्याख्यान में ऐसा माधुर्य और सम्मोहन था कि लोग अपने शरीर की भी सुध भूल जाते थे । एक दिन जब पंडितजी का प्रवचन चल रहा था तो एक बड़ी बदसूरत सी बुढ़िया वहाँ चिल्लाती हुई आई कि मैं प्यास के मारे मर रही हूँ, कोई ठंडा पानी पिला दे । प्रवचन में विघ्न किसी को सह्य नहीं था । नगरसेठ ने अपने नौकर से कहा कि बुढिया को पानी पिलाकर शीघ्र दूर कर । नौकर वहाँ गया तो बुढ़िया ने कहा कि मैं तो नगरसेठ के हाथ से पानी पीऊँगी और किसी के हाथ से नहीं । नौकर ने जाकर सेठ से निवेदन किया तो शेठ ने अपनी पुत्र-वधू को भिजवा दिया । उसने जाकर बुढ़िया से निवेदन किया कि माजी, आप पानी पीजिए, मैं बहुत ठंडा, मीठा जल आपके लिए लाई हूँ ।

बहुत आग्रह करने पर बुढ़िया ने अपने झोले से एक रत्नजड़ित सोने का प्याला निकाला और उसमें पानी लेकर पीने लगी । उसने प्याला होठों से लगाया और फेंक दिया । वह चिल्लाने लगी कि अरे बाप रे, मेरे तो कंठ जल गए, क्या सेठ के घर में ठंडा पानी भी नहीं है । सेठ की पुत्र-वधू ने दूसरी बार जल लाकर पीने को कहा तो दूसरी बार भी बुढ़िया ने वैसा ही एक प्याला अपने झोले से निकाला और उसी प्रकार फेंक दिया । शेठ की पुत्र-वधू बड़ी चकित हुई कि इस बुढ़िया के पास ऐसे बहुमूल्य प्याले कहाँ से आए और किस लापरवाही से यह इन प्यालों को फेंक रही हैं । उसने अपनी सास को जाकर सारी बात कही । वह आई और उसके साथ भी वही बात हुई । बुढ़िया ने दो तीन प्याले ओर अपने झोले से निकालकर फेंक दिये । तब उसने जाकर अपने पति से सारी बात कही ।

नगरसेठ विघ्न पडने से बड़ा झुँझलाया हुआ बुढ़िया के पास आया, लेकिन जब उसने धरती पर पडे प्यालों की ओर देखा तो उस की सारी झुँझलाहट आश्चर्य में बदल गई । जमीन पर पडे एक प्याले की कीमत सेठ की सारी दौलत से अधिक बैठती

थी । नगरसेठ ने बड़ी नम्रता से बुढ़िया को शीतल जल पिलाया । बुढ़िया ने जल पीकर एक और प्याला फेंक दिया । सेठने बुढ़िया से कहा कि माजी ! आप यहीं ठहर कर इस घर को पवित्र करें । यहाँ आपको किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा । बुढ़िया ने कहा कि मैं यहाँ ठहर तो सकती हूँ लेकिन उसी कमरे में ठहरुँगी जहाँ वह ब्राह्मण ठहरा हुआ है, अन्य किसी स्थान से नहीं, यदि मुझे ठहराना चाहते हो तो पहले इसे यहाँ से निकालो ।

नगरसेठ ब्राह्मण को वचन दे चुका था, लेकिन इधर बुढ़िया हठ पकडे हुए थी । लाचार सेठने ब्राह्मण को किसी दूसरे कमरे में ठहरने को कहा । ब्राह्मण ने बहुत कुछ कहा पर सेठने नहीं माना तो ब्राह्मण अपना बोरिया-बिस्तर लेकर वहाँ से चल दिया । नगरसेठ सपरिवार उस बदसूरत बुढ़िया की परिचर्या में लग गया । थोडी देर बाद बुढ़िया ने कहा कि मैं अब कुछ देर सोना चाहती हूँ, तुम सब बाहर चले जाओ । सारे लोग बाहर चले गए । थोडी देर बाद नगरसेठ फिर अन्दर गया तो न तो वहाँ बुढ़िया थी और न एक भी प्याला था । लेकिन लक्ष्मी और सरस्वती के विवाद का फैसला हो चुका था ।

मगरमच्छ और बांदरो (राजस्थानी)

एक मगरमच्छ और बन्दर दोस्त थे । मगर नदी में रहता और बन्दर नदी किनारे एक जामुन के पेड़ पर । बन्दर हमेशा मगर को मीठे जामुन तोड़ कर दिया करता । एक दिन मगर कुछ जामुन अपनी स्त्री के लिए घर ले गया । मगर की स्त्री ने जामुन खाये तो उसे बड़े स्वादिष्ट लगे । उसने मगर से कहा कि तुम्हारा दोस्त इन मीठे जामुनों को रोज खाता है । जब ये जामुन ही इतने मीठे हैं तो उसका कलेजा न जाने कितना मीठा होगा ? अतः मुझे उसका कलेजा लाकर दो ।

दूसरे दिन मगर बंदर के पास गया और उससे कहा कि दोस्त, आज तुम्हें तुम्हारी भाभी याद कर रही है । तुम हमेशा मुझे जामुन खिलाते हो, आज वह तुम्हें अपने हाथ से खाना खिलायेगी । बन्दर उसकी पीठ पर बैठकर उसके घर चला । जब घर नजदीक आने लगा तो मगर ने बन्दर से कहा कि यार, सच तो यह है कि तुम्हारी भाभी ने तुम्हारा कलेजा माँगा है और इसीलिए मैं तुम्हें घर ले चल रहा हूँ । बन्दर उसकी बात सुनकर एक बार तो सिहर उठा, लेकिन फिर सम्हलकर बोला कि दोस्त मगर, तुम भी निरे मूर्ख हो । यह बात तुमने मुझसे पहले क्यों न कही ? तुम जानते हो कि हम तो एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर लम्बी लम्बी छलांगें लगाते हैं, अतः कलेजे के गिर पडने का डर रहता है और इसलिए उसे जामुन के वृक्ष पर ही सुरक्षित टाँगे रखता हूँ । यदि कलेजा ही चाहिए तो वृक्ष तक वापिस चलो ।

मगर उसकी बातों में आ गया और उसे जामुन के वृक्ष तक ले गया । बन्दर ने एक छलांग लगाई और वृक्ष पर जा बैठा और मगर से कह दिया कि जाओ भाभी से कह दो कि दोस्त का कलेजा इतना सस्ता नहीं है । मगर खाली हाथ घर लौटा और अपनी स्त्री से उसने सारी बात कही । पति की मूर्खता पर वह बड़ी क्रुद्ध हुई लेकिन फिर दूसरी तरकीब सोचने लगी ।

उसने एक योजना बनाई और पांच सात दिन बाद योजनानुसार मगर नदी के किनारे जाकर चुपचाप मुर्दे की तरह लेट गया ? मगर की स्त्री पति की मृत्यु पर जोर-जोर से विलाप करने लगी । मगर की स्त्री ने सोचा था कि बन्दर अपने दोस्त की स्त्री के पास आकर उसे धीरज बँधाने अवश्य आयेगा और तब उसे पकड लूंगी । बन्दर आया मगर पेड़ की डाल पर से ही बोला कि भाभी ! बड़े अफसोस की बात है कि भाई की असमय ही मृत्यु हो गई और मृत्यु भी बड़े अजीब ढंग से हुई है । जब मगर की स्त्री ने पूछा कि अजीब ढंग से कैसे ? तो बन्दर बोला कि जब कोई मगर मरता है तो उसके सारे शरीर से प्राण निकल जाते हैं लेकिन पूँछ में अटके रहते हैं, इसलिए वह पूँछ को बहुत देर तक पटकता रहता है । लेकिन मगर भाई तो पूँछ को जरा भी नहीं हिलाता । बन्दर की बात सुनकर मगर ने अपनी पूँछ थोडी सी हिलाई और तब बन्दर ने हँसकर कहा कि भाभी, क्यों इतने फरेब करती हो, देवर का कलेजा यों हाथ नहीं आने वाला । इतना कहकर बन्दर दूसरे वृक्ष पर छलाँग लगा गया ।

सी-चरी (राजस्थानी)

एक ठाकुर ने एक चारण को एक बकरी दी । चारण बकरी लेकर किसी दूसरे ठाकुर के यहाँ कुछ और पाने की आशा से गया । लेकिन वह ठाकुर बहुत कृपण था । उसने सोचा कि इस चारण की बकरी चुरानी चाहिए, इसलिए उससे बोला कि बारहट जी, बकरी उधर बाँध दीजिए । चारण ठाकुर की चाल को समक्ष गया था इसलिए उसने कहा कि ठाकराँ, मैं तो बकरी को रात-दिन अपने पास ही रखता हूँ । शाम हुई तो ठाकुर ने चारण को सोने के लिए एक कमरा बतला दिया । माध का महीना था और कमरा बहुत ठंड़ा था । ठाकुर ने उसे ओढ़ने बिछाने के लिए कुछ दिया नहीं था । कमरे के बाहर दरवाजे में उसने इस नियत से कुंडा लगवा दिया कि रात को जाड़े के मारे बारहट मर जायेगा तो बकरी अपने रह जाएगी ।

बारहट के पास ओढने के लिए सिर्फ एक साधारण सी चादर थी । जब वह जाड़े के मारे ठिकुरने लगा, तो उसने कोने पड़ी हुई चक्की के पाट को सिर पर रख लिया और कमरे में चक्कर काटने लगा । रात भर वह इसी प्रकार चक्कर लगाता रहा जिससे जाड़ा भाग गया और उसके शरीर से पसीना चूने लगा । सबेरा होने को हुआ तो बारहट अपनी चादर तानकर सो गया । सबेरे ठाकुर ने किवाड़ खोले और बारहट को ठाठ से सोया देखा तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ । ठाकुर ने झूठी समवेदना प्रकट करते हुए कहा कि हम तो रात को आपको कंबल देना भूल गये । इस पर चारण ने कहा कि कम्बल की आवश्यकता ही क्या थी ? यह बकरी बड़ी करामती है, रात भर यह मेरे जाड़े को चरती रही और मैं आनन्दपूर्वक सोता रहा । तब ठाकुर ने कहा कि यह बकरी हमें दीजिये और उसकी जो कीमत आप लेना चाहें हमसे ले लीजिये । बारहट ने पहले तो बहुत ना-नुकर किया लेकिन फिर ठाकुर को दो सौ रूपये लेकर बकरी दे दी । बारहट रूपये लेकर चलता बना ।

शाम को ठाकुर ने बकरी को अपने पास बाँध लिया और कम्बल रजाई सब अलग रखवा दिए । लेकिन ठाकुर सोया तो थोड़ी ही देर में उसे ठंड बहुत सताने लगीं । तब उसने रजाई और कम्बल मंगवाकर ओढ़े, लेकिन चारण की चालाकी पर उसे बड़ा क्रोध आया । सबेरा होते ही वह घोडी पर चढकर चारण की खोज़ में चल पड़ा । चारण पास के ही किसी गाँव में रातभर ठहर गया था, सबेरा होते ही वह भी वहाँ से चल पड़ा । उसे आशंका थी कि ठाकुर जरूर आयेगा अतः जलदी-जलदी चला जा रहा था, लेकिन ठाकुर जल्दी ही चारण के नजदीक आ पहुँचा । उसने दूर से ही बारहठ को आवाज दी । बारहठ को और तो कोई उपाय नहीं सूझा, नजदीक ही झाड़ी में एक रीछ छुपा हुआ था सो उसके उपर जा बैठा और लगा उसे दौडाने । इस भागा-दौडी में उसकी न्योली फट गई और उसे निकल-निकलकर रूपये जमीन पर गिरने लगे । इतने में ठाकुर ने बारहठ को आ पकड़ा और बिगड़कर बोला कि तूने मेरे साथ धोखा किया है । तब बारहठ ने कहा कि ठाकुर साहब मैंने तो आपके बहुत कहने से बकरी आपको दे दी अन्यथा मैं किसी हालत में बकरी आपको नहीं देता । आपने सोते वक्त बकरी को धूप

किया था या नहीं, यदि नहीं तो बकरी ने भी अपना काम नहीं किया होगा । ठाकुर ने सोचा कि भूल हमारी ही है अतः वह नम्र हो गया ।

फिर उसने रीछ के बालों से रूपये गिरते देखे तो पूछा कि बारहठजी ! यह क्या तमाशा है ? तब बारहठ ने कहा कि ठाकुर साहब, मैं इस रीछ के दस हजार रूपये माँगता हूँ और यह हर साल मुझे एक हजार रूपये देता है । रूपये लेने के लिए ही तो मैं यहाँ आया था । तब ठाकुर ने कहा यह रीछ मुझे दे दो और बदले मैं घोड़ी ले लो । बारहठ ने बहुत आनाकानी की लेकिन ठाकुर के बहुत कहने-सुनने पर उसने घोड़ी ले ली और ठाकुर को रीछ पर बैठा दिया । बारहठ ने धरती पर गिरे हुए रूपये उठाये और घोड़ी पर चढ़कर नौ दो ग्यारह हो गया । इधर रीछ ठाकुर से लिपट गया और उसके सारे कपड़े फाड़ डाले । बड़ी मुश्किल से ठाकुर उससे पीछा छुड़ाकर अपने घर आया ।

च्यारुं ई एक सी (राजस्थानी)

एक ब्राह्मण को चार लडकियाँ थीं । वे चारों ही तुतला कर बोलती थीं । इसलिए कहीं उनकी सगाई नहीं होती थी । एक दिन ब्राह्मण ने लडकियों से कहा कि मैं तुम्हारी सगाई करने के लिए बाहर जा रहा हूँ । मेरे पीछे से कोई मेहमान आये तो उसे खाना खिला देना लेकिन बोलना नहीं । ब्राह्मण गया तो पीछे से दो आदमी अपने लडकों की सगाई करने के लिए उस ब्राह्मण के घर आये । ब्राह्मण घर में था नहीं । लडकियों ने दाल भात बनाकर उन्हें भोजन करने के लिए बिठला दिया । जब वे खाना खाने लगे तो बडी लड़की ने पूछा, ''क्यूं, दाल तोखी होई हैनी'' तब दूसरी ने कहा, ''तोखी क्यूं, कोनी होती ?'' तब तीसरी ने कहा, ''बाई, बापूजी बरजग्या हा नी क थे बोयो मतना ।'' तब चौथी ने कहा, ''बाई देखले मैं तो कोनी बोई ।'' आने वालों ने जान लिया कि चारों ही तोतली है और उन्होंने खाना खाकर अपना रास्ता लिया ।

(पहली ने पूछा, 'क्यों दाल अच्छी बनी है न ?' इस पर दूसरी ने कहा, 'अच्छी क्यों न बनती ?' तीसरी बोली, 'बापू मना कर गये थे न कि बोलना मत ।' इस पर चौथी ने कहा, 'देख लो मैं तो नहीं बोली हूँ ।')

सोनलदे बाई (राजस्थानी)

सात भाईयों के बीच 'सोनलदे' एक ही बहिन थी । एक दिन सातों भाभियों के साथ वह मिट्टी लाने के लिए गड्ढे पर गई । जिस जगह वह जमीन खोदती थी वहाँ सोना, मोती और हीरे निकलते थे और जिस जगह उसकी भावजें खोदती थी, वहाँ मिट्टी ही मिट्टी निकलती थी । सभी अपनी ननद से कहती कि बाईजी, अपनी जगह हमें खोदने के लिए दो, लेकिन ज्योंही वे खोदने लगतीं वहाँ भी मिट्टी ही निकलने लगती । खोदते-खोदते सोनलदे थक गई और उसकी आँख लग गई । सातों भौजाईयाँ उसे वहीं छोडकर उसके द्वारा खोदे हुए सोने और हीरे मोतियों को लेकर चलती बनी । जब उसकी आँख खुली तब उसने और जमीन खोदकर सोना और हीरे मोती निकाले लेकिन उस बोझ को वह अकेली सिर पर नहीं उठा सकती थी । थोडी देर में एक साधु उधर से गुजरा तो उसने कहा कि बावाजी ! यह बरतन मेरे सिर पर उठवा दीजिए । साधु ने सोनलदे को अपने झोले में डाल दिया और अपनी मढ़ी में ले गया । दूसरे दिन उसने गाँव में से भिक्षा लाने के लिए 'सोनलदे' को आदेश दिया और जिधर उसका घर था उस दिशा में न जाने के लिए भी कह दिया । तीन दिन तक वह अन्य दिशाओं में जाकर भिक्षा ले आई । लेकिन चौथे दिन अपनी छोटी भौजाई के घर पहुँची और बोली -

''सात भायां बीच एक सोनल बाई,
मोतीडा सा चुगै, बांनै जीगीडो उठाई
घालो ए माई बिच्छा (भिक्षा)
जोगी माहै लो ।''

सात भाईओं के बीच में एक सोनलदे बाई थी, मोती चुगती हुई सोनलदे को जोगी उठा कर ले गया । हे भाई, भिक्षा दे दो अन्यथा मुझे मारेगा ।

इसी प्रकार भिक्षा माँगते माँगते सातों भौजाईयों के घर घूम आई और अन्त में अपनी माँ के घर गई और उसी प्रकार कहा । उसकी माँ ने देखा कि यह तो उसकी लाडली बेटी सोनलदे है । तब उसने उसे अन्दर बुलाया । उसकी झोली वगैरह फेंक दी और उसे अपने घर में छुपा लिया । थोडी देर बाद वह जोगी धमधम करता आया और घर घर में पूछने लगा कि ''बाई म्हारी चेलकी भी देखी के ?'' जब वह जोगी पूछते-पूछते वहाँ आया जहाँ सोनलदे थी, तब उसकी माँ ने कहा कि बावाजी, सोनलदे बाहर गई है, आप बैठो खाना खाओ, इतने में आ जाएगी । जोगी जीमने लगा तो उसकी माँ ने दालान में एक गड्ढा खोदा और घास-फूस से भर दिया । फिर इस गड्ढे पर एक टूटा पलंग डाल दिया और उस पर चादर बिछा दी । जोगी जाकर पलंग पर बैठा तो सोनलदे की माँ ने चुपके से गड्ढे में आग लगा दी । बावाजी के नितंब जल गए और वह वहाँ से उठकर भागता बना ।

हाथी और ऊँदरो (राजस्थानी)

चूहों की एक नगरी थी जिसमें असंख्य चूहे थे और असंख्य ही उनके बिल थे । एक बार हाथियों का झुंड उधर से पानी पीने के लिए गुजरा । चूहों के सरदार ने जाकर हाथियों के सरदार से विनयपूर्वक कहा कि महाराज, यहाँ चूहों की नगरी है, आपके हाथियों के पैरों से रुंद कर सारी नगरी चौपट हो जाएगी । अतः आप कृपा करके अपने झुंड को दूसरी तरफ से ले जाएँ तो बडी कृपा होगी । हाथियों के सरदार ने चूहे की बात मान ली और अपने झुंड को दूसरी ओर से लेकर जाने लगा । चूहों के सरदार ने बड़ा आभार माना ओर हाथियों के सरदार से उसने कहा कि आपने मुझ पर और सारी नगरी पर बड़ी कृपा की है, कभी आवश्यकता पडे तो मुझे याद करना । मैं भी आपकी यथाशक्ति मदद करूँगा । चूहे की बात सुनकर हाथी को हँसी आ गई ।

एक दिन शिकारियों के जाल से हाथी एक गहरे खड्डे में गिर गया । खड्डे में पड़ जाने के कारण हाथी का बल बेकार हो गया । उसने बहुत चेष्टा की, लेकिन सब व्यर्थ । तब उसे चूहों के सरदार की कही हुई बात याद आई । उसने चूहों के सरदार को याद किया । याद करते ही चूहों का सरदार वहाँ भागा आया । हाथी की दशा देखकर उसने कहा कि मैं अभी अपने साथियों को लेकर आता हूँ और हम सब मिलकर आपको बाहर निकाल लेंगे । चूहे की बात सुनकर हाथी को उस वक्त भी हँसी आये बिना न रही । चूहों का सरदार गया और अपनी सारी प्रजा को वहाँ बुला लाया । सरदार के आदेश के अनुसार सारे चूहे खड्डे को धूल से भरने लगे । चूहों के पैरों से इतनी धूल उड़ी कि अंधेरा छा गया । हाथी अपने पैरों से धूल को दबाता हुआ ऊपर उठने लगा । जल्दी ही सारा खड्डा धूल से भर गया और हाथी ऊपर आ गया । बाहर निकलकर हाथी ने चूहों के सरदार को अपनी सूंड में उठाकर अपने गले लगाया और उसे बहुत धन्यवाद दिया ।

मनिहार की चतुराई (राजस्थानी)

एक मनिहार बहुत सारी टोपियाँ लेकर मेले में बेचने चला । रास्ते में वह एक वृक्ष के नीचे सो गया । उस वृक्ष पर बहुत सारे लंगूर रहते थे । मनिहार टोपे ओढ़े हुए था । लँगूरों की भी इच्छा टोपियाँ ओढ़ने की हुई ।

उन्होंने मनिहार की गठरी खोली और सब एक एक टोपी लेकर वृक्ष पर चढ़ गये । टोपियाँ ओढ़कर वे बहुत खुश थे । अब उन्होंने मनिहार को जगाने की सोची । वृक्ष का एक फल तोडकर एक लँगूर ने मनिहार के मुँह पर दे मारा । मनिहार अचकचा कर उठ बैठा । टोपियों की गठरी भी उसे दिखलाई नहीं पडी ।

मनिहार ने ऊपर की ओर देखा तो सारे लँगूर टोपियाँ ओढ़े हुए थे । अब मनिहार ने एक युक्ति सोची । उसने अपनी टोपी सिर से उतार कर और गुस्से में भर कर लँगूरों की तरफ फेंकी । लँगूर उस टोपी को नहीं पकड़ सके और टोपी नीचे आ गिरी । अब सारे लँगूरों ने अपनी टोपियाँ उतार उतार कर मनिहार की ओर फेंक दी । मनिहार तो यही चाहता था । उसने शीघ्रता से सही टोपियाँ बटोरी और वहाँ से चलता बना ।

चोर बेटो (राजस्थानी)

एक सेठ सेठानी रात को अपने घर में सो रहे थे । आधी रात को एक चोर उनके घर में घुस आया । सेठ ने उसे देख लिया, लेकिन उसने सोचा कि इसे युक्ति से पकड़ना चाहिए । यों सोचकर उसने सेठाणी को जगाया और दोनों ने चोर को पकड़ने की तरकीब सोच ली ।

वे दोनों आपस में बातें करने लगे । सेठने सेठानी से कहा कि अपने पास धन बहुत है, लेकिन लडका नहीं है, इसलिए अपने मरने के बाद इस सारे धन का क्या होगा ? सेठानी बोली कि यही चिन्ता मुझे रात दिन लगी रहती है । यदि कोई लडका गोद ले ले तो भी अच्छा है । इस पर सेठने कहा कि यदि कोई इस समय मुझे आकर कह दे कि पिता जी ! मैं आपका बेटा हूं तो तुम्हारी कसम सारा धन मैं उसको ही दे दूं, चाहे वह कोई भी हो । सेठानी ने कहा कि हाँ, इसमें मुझे भी बड़ी खुशी होगी, लेकिन कोई ऐसा कहने वाला भी तो हो ।

चोरने सोचा कि धन प्राप्ति का इससे आसान तरीका और क्या हो सकता है ? यह स्वर्ण अवसर तो संयोग से ही हाथ लगा है । वह उसी वक्त सेठ के पास चला गया और बोला कि बापु जी ! मैं आपका बेटा हूँ ।

इतना सुनते ही सेठ की खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहा । उसने सेठानी से कहा कि आज भगवान ने मेरी इच्छा पूरी कर दी । मुझे अपने मुंह से किसी ने 'बाप' कहा तो सही । अब तुम शीघ्र सारा धन लाकर मेरे बेटे को दे दो । शेठानी ने कहा कि ऐसी भी क्या जल्दी है ? जब बाप अपने बेटे को धन दे रहे हैं तो फिर रोकने वाला कौन है ? लेकिन अपना बेटा क्या एक वक्त अपने घर में भोजन भी नहीं करेगा ? मैं अभी इसके लिए पानी गरम करती हूं वह नहा धो ले तो फिर इसके लिए रसोई बना दूंगी । फिर भोजन करने के बाद आप इसे सारा धन दे देना ।

यों कहकर सेठानी काम में लग गई और बेटे को नहलाने, धुलाने तथा रसोई बनाने में तड़का हो गया । बेटे ने भोजन कर लिया तो सेठने सेठानी से कहा कि अब तुम सारा धन निकालो ।

सेठानी ने कहा कि मैं सारा धन निकाल कर रखती हूं लेकिन इतना धन यह सिर पर थोडे ही उठा कर ले जाएगा । तब तक आप एक 'बहली' जुडवा लाईये । सेठानी धन निकालने लगी और सेठ बहली लाने के लिए निकल गया । घर से निकल कर सेठ शीध्रता से कोतवाली गया और कोतवाल को बुला लाया । कोतवाल ने आकर चोर को पकड़ लिया और कहा कि चलो बेटे तुम्हें धन की कोठरी में ही बैठा देता हूं ताकि तुम्हें ढोने का श्रम ही न करना पडे ।

जो हुआ अच्छा हुआ (राजस्थानी))

एक नगरी के राजा नीम के पेड़ की छाया में पलंग पर सो रहे थे । हवा चलने से पेड़ की एक 'निम्बोली' टूटकर राजा के ललाट पर आ गीरी । निम्बोली की चोट से राजा के ललाट पर सूजन आ गई तथा दर्द होने लगा ।

राजा ने दरबार में आकर कामदार को अपना दर्द बताया तो वह बोला – 'राजन ! जो हुआ, अच्छा हुआ ।' राजा नाराज हो गए – 'मुझे तो चोट लगी है और कामदार जी कह रहे हैं कि अच्छा हुआ ।'

कुछ समय के बाद एक दिन कामदार के साथ राजा शस्त्र –शाला का निरीक्षण कर रहे थे । कामदार सावधानी से शस्त्रों को उठाकर देख रहा था । इस दौरान कामदार के हाथ की तलवार राजा के हाथ में लग गई । जिससे घाव हो गया और राजा चीखने – चिल्लाने लगा । कामदार फिर बोला – 'राजन ! जो हुआ अच्छा हुआ ।' राजा गुस्से में आकर बोले – 'मेरा हाथ कट गया और तुम कह रहे हो कि अच्छा हुआ । ऐसी बात करने वाले व्यक्ति को मैं पसंद नहीं करता हूं । आप अपना हिसाब करके घर चले जाएं ।' 'जो राजा का आदेश – जो भी हुआ, अच्छा हुआ ।' यह कहते हुए कामदार अपना हिसाब करके घर चला गया ।

कई दिन बीत जाने के बाद एक दिन राजा अकेले शिकार करने जंगल में गए । शिकार करते–करते वे थकान से अचेत हो गए । घोड़ा राजा को पीठ पर लादे अपने मनमर्जी से इधर–उधर दौडता हुआ एक अन्यायी अत्याचारी राजा की नगरी में चला गया । नगर के दरवाजे में प्रवेश करते ही द्वारपालों ने तुरन्त घोड़े की लगाम पकड़कर घुड़सवार को झिंझोड़ा – 'तुम कौन हो ? क्यों बेहोश होकर चल रहे हो ? जरा आंखें खोलो ।'

राजा एकदम चौंककर देखने लगा – 'ओह ! मैं अपनी नगरी छोडकर यहां – कहां आ गया ?' वह संभलकर द्वारपालों से बोला – 'हल्की सी नींद आ गई थी । क्षमा करें, मैं भी एक नगरी का राजा हूँ ।' द्वारपालों द्वारा 'अन्यायी' राजा को यह मालूम हुआ तो वह बोला – 'उसको जाने मत देना । वह होगा तो अपने नगर का राजा होगा, हमारे लिए तो 'देवी काली माँ के लिए आई हुई भेंट है । इसलिए उसको जेल में बंद कर दो । कल उसको माँ के चरणों में भेंट चढा देंगे ।' दूसरे दिन सिपाही जेल से राजा को पकड़कर देवी के मंदिर में ले गए ।

अन्यायी राजा बोला – 'हे माँ । आज तुझे बत्तीस लक्षण वाले पुरुष की भेंट चढा रहा हूं, स्वीकार करना ।' मंदिर–मंडप में आवाज गूंजी कि देह खंडित होने से यह भेंट स्वीकार नहीं होगी । आवाज सुनते ही अन्यायी राजा ने देखा, तो मालूम हुआ कि हाथ कट जाने से वह व्यक्ति खंडित है । उसी समय बंदी राजा को तिरस्कृत करके उसको अपने नगर से बाहर निकाल दिया ।

मौत के मुँह से बचकर, राजा वापस अपनी नगरी में लौटा और सम्मान के साथ कामदार को बुलाकर बोला – 'जब तलवार से मेरा हाथ कट गया था, तब आपने कहा

था कि अच्छा हुआ । उस बात का अर्थ आज मेरी समझ में आया कि अगर मेरा हाथ तलवार से नहीं कटता तो मैं अन्यायी राजा की नगरी में देवी की भेंट चढा दिया जाता किन्तु मैंने जब आपको कामदार पद से हटाकर घर भेज दिया, तब भी आप यह बोले कि अच्छा हुआ । आपकी नौकरी चली जाने से आपका क्या अच्छा हुआ ?'

कामदार बोला – 'राजा साहब ! अगर नाराज होकर आप मुझे नौकरी से नहीं निकालते, तो मैं भी आपके साथ रहता और उस नगरी में बंदी बन जाता । अंग खंडित हो जाने से आप तो बच जाते, परंतु मुझे 'काली माँ' की भेंट चढा दिया जाता । इसलिए जो हुआ सो अच्छा हुआ ।'

राजा बोले – 'अच्छा, मेरे सिर में निम्बोली की चोट लगी, तब भी आपने यही कहा कि अच्छा हुआ । उसका क्या अर्थ है ?' कामदार ने राजा को अपने साथ ले जाकर, उसी नीम के पेड़ के पास दरवाजे के टूटे हुए भाग को दिखाते हुए कहा – 'राजन ! इस नीमे की नीचे सोए हुए आपको निम्बोली की चोट लगी । दर्द के कारण आप यहां से उठ गए । थोडी देर बाद ही तेज आंधी आने से इस दरवाजे का एक हिस्सा नीचे गिर गया । अगर निम्बोली की हल्की चोट नहीं लगती तो आप यहां सोए रहते और एक भारी भरकम दरवाजा आपके सिर पर आ गिरता, जिससे आपका प्राणांत भी हो सकता था । इसलिए मैंने कहा– 'जो हुआ वह अच्छा हुआ ।''

राजा बहुत प्रसन्न हुआ और बोला – 'आप भविष्य को जानने वाले हैं । आज से आप अपना कामदार पद वापस संभालें । आपकी बात ने हर समय मेरे प्राणों की रक्षा की है ।' ऐसी सकारात्मक सोच वाले चतुर व बुद्धिमान व्यक्ति सर्वत्र आदरणीय होते हैं ।

ससुराल की रीत

एक ग्रामीण सुसंस्कारित लडकी विवाह करके ससुराल में आई । घर में एक तो उसका पति था, एक सास थी और एक दादी सास थी । वहां आकर उस लडकी ने देखा कि दादी सास का बड़ा अपमान, तिरस्कार हो रहा है । छोटी सास उसको अपमानित करती, गाली देती थी ।

यह देखकर उस लडकी को बड़ा बुरा लगा और दया भी आई । उसने विचार किया कि अगर मैं सास से कहूँ कि आप अपनी सास का तिरस्कार मत किया करो तो वह कहेगी कि कल की छोकरी आकर मेरे को उपदेश देती है, अतः उसने अपनी सास को कुछ नहीं कहा । उसने एक उपाय सोचा । वह रोज काम-धंधा करके दादी सास के पास जाकर बैठ जाती और उसके पैर दबाती । जब वह वहां ज्यादा बैठने लगी तो यह सास को नहीं सुहाया । एक दिन सासने उससे पूछा कि 'बहू ! वहां क्यों जा बैठी ?' लडकी ने कहा कि 'कोई काम हो तो बताओ !' सास बोली कि 'काम क्या बताएँ, तूं वहां क्यों जा बैठी ?' लडकी बोली कि 'मेरे पिताजी ने कहा था कि जवान लड़के - लड़कियों के साथ कभी भी मत बैठना; जो घर में बड़े -बूढे हों, उनके पास बैठना, उनसे शिक्षा लेना । हमारे घर में सबसे बूढी दादी सास ही है, और किसके पास बैठूं ? मेरे पिताजी ने कहा था कि वहां हमारे घर की रिवाज नहीं चलेगी, वहां तो तेरे ससुराल की रिवाज चलेगी । मेरे को यहाँ की रिवाज सीखनी है, इसलिए मैं उनसे पूछती हूं कि मेरी सास आपकी सेवा कैसे करती है ?' सास ने पूछा कि बुढिया ने क्या कहा ?' वह बोली 'दादीजी कहती है कि वह मेरे को ठोकर नहीं मारे, गाली नहीं दे तो मैं सेवा ही मान लूं !' सास बोली कि 'क्या तू भी ऐसा ही करेगी ?' वह बोली कि में ऐसा नहीं करती हूं, मेरे पिताजी ने कहा है कि घर के बड़ो से ससुराल की रीति-नीति सीखना ।' सास ड़रने लग गई कि मैं अपने सास के साथ जो वर्ताव करुंगी, वही वर्ताव मेरे साथ होने लग जाएगा ।

एक जगह कोने में ठीकरियां पडी थीं । सास ने पूछा- 'बहू । ये ठीकरियां क्यों इकठ्ठी की है ?'

बहू ने कहा- आप दादीजी को ठीकरी में भोजन दिया करता हो, इसलिए मैंने पहले ही जमा कर ली ।' तू मेरे को ठीकरी में भोजन कराएगी क्या ?' मेरे पिताजी ने कहा है कि तेरे ससुराल में वहां की रीति ही चलेगी ।' 'यह रीति थोड़े ही है ।' तो फिर आप ठीकरी में क्यों देती हो ?' 'थाली कौन मांजे ?'

'थाली मैं मांज लूंगी ।' 'तो तूं थाली में दिया कर, ठीकरी उठाकर बाहर फेंक ।'

एक बूढी मांजी को थाली में भोजन मिलने लगा । सबको भोजन देने के बाद जो बाकी बचे, वह खिचड़ी की खुरचन, कंकडवाली दाल मांजी को दी जाती थी । लडकी उसको हाथ में लेकर देखने लगी । सास ने पूछा- 'बहू । क्या देखती हो ?' 'मैं देखती हूं कि बड़ों को भोजन कैसे दिया जाए ।'

'ऐसा भोजन देने की कोई रीति थोड़े ही है ! तो फिर आप ऐसा भोजन क्यों देती हो ?' 'पहले भोजन कौन दे ?'

'आप आज्ञा दो तो मैं दे दूंगी !'

'तो तू पहले भोजन दे दिया कर ।'

'अच्छी बात है ।' अब बूढी मांजी को बढ़िया भोजन मिलने लगा । रसोई बनते ही वह लडकी ताजी खिचड़ी, ताजा फुलका, दाल-साग ले जाकर मांजी को दे देती । मांजी तो मन-ही-मन आशीर्वाद देने लगी । मांजी दिनभर एक खटिया में पड़ी रहती । खटिया तूटी हई थी । वन्दनवार की तरह मुंज नीचे लटकती थी । लडकी उस खटिया को देख रही थी । सास बोली कि 'क्या देखती हो ?' 'देखती हूं कि बड़ों को खाट कैसी दी जाए ।'

'ऐसी खाट थोड़े ही दी जाती है । यह तो टूट जाने से ऐसी हो गई ।'

'तो दूसरी क्यों नहीं बिछाती ?' 'तो बिछा दे दूसरी ।'

'आप आज्ञा दो तो दूसरी खाट बिछा दूं ।'

अब मांजी के लिए निवार की खाट लाकर बिछा दी गई । एक दिन कपडे धोते समय वह लडकी मांजी के कपडे देखने लगी । कपडे छलनी हो चूके थे । सास ने पूछा कि 'क्या देखती हो ?'

'देखती हूं कि बूढों के कपडा कैसे दिया जाय ।' 'फिर वही बात, 'कपडा ऐसे थोडे ही दिया जाता है ? यह तो पुराना होने पर ऐसा हो जाता है ।' 'फिर वही कपडा रहने दें क्या ?' 'तू बदल दे ।'

अब लडकी ने मांजी का कपड़ा, चादर, बिछौना आदि सब बदल दिया । उसकी चतुराई से बूढी मांजी का जीवन सुधर गया । अगर वह लडकी सास को कोरा उपदेश देती तो क्या वह उसकी बात मान लेती ? बातों का असर नहीं पडता, आचरण का असर पडता है । इसलिए बहुओं को चाहिए कि ऐसी बुद्धिमानी से सेवा करें और सबको खुश रखें ।

सास बड़ी या बहू

एक गांव में एक सेठ रहता था । उसके घर में बहुत गायें व भैंसे थीं । रोज दूध निकलता, दही जमता, बिलौना होता, मक्खन निकलता, घी बनता व छाछ भी बनती थी । गांव के लोग छाछ लेने आते थे । उनको उदारतापूर्वक छाछ दी जाती थी ।

एक दिन सेठ की सेठानी कहीं बाहर गई हुई थी । घर पर बेटे की बहू थी । गांव की एक महिला छाछ लेने आई । बहूने कहा – मांजी ! आज छाछ नहीं हैं । छाछ लेने आने वाली महिला वापस लौट गई । महिला के हाथ में खाली बरतन देखकर पूछा–कहां गई थी ?'

महिला ने कहा – 'आपके घर छाछ लेने गई थी ।'

सास ने पूछा – 'अच्छा तो फिर क्या हुआ ?' घर पर बहूरानी ने कहा कि आज छाछ नहीं है, इसलिए मैं आ गई ।

सास तमतमायी – 'चल, मेरे साथ वापस चल । बहू ने तुमको यह कैसे मना कर दिया । आज छाछ नहीं है ? मैं उसको अभी बताती हूं ।

महिला ने बात को बढ़ने से रोकने के लिए सास से कहा – 'अजी सेठानी जी ! आज छाछ नहीं बनी होगी ? या फिर बंट जाने के अब नहीं बची होगी ? इस में क्या फर्क पड गया ? आज नहीं, मैं कल छाछ ले लूंगी ।'

सास ने कहा – 'नहीं तुम अभी वापस चलो ।' उस बहू को मैं अभी उसे सजा का मजा चखाती हूं । उसने मना कैसे कर दिया ? '

महिला मजबूरन सास के पीछे–पीछे उसके घर आई । घर में घूसते ही सास ने पलटकर उस महिला से कहा – 'अरी बहन ! जाओ, आज तो छाछ नहीं है ।'

छाछ की आस में, सास के साथ आनेवाली महिला, एकदम सकते में आ गई कि यह क्या हो गया ? वह बोली – 'सेठानी जी ! आज छाछ नहीं है, यह बात तो बहूरानी ने मुझको पहली बार आई, तब ही कर दी थी । आप मुझे वापस यहां तक लाकर यही बात कर रही हैं कि आज छाछ नहीं है । तो फिर व्यर्थ में मुझे चक्कर क्यों लगवाया ?'

सास ने कहा – 'इस घर की मालकिन मैं हूँ, न कि बहू । किसी को 'हाँ' या 'ना' कहने का मेरा अधिकार है, बहू का नहीं । उसने तुमको कैसे 'ना' कह दिया ? जाओ ! अब मैं कहती हूं कि आज छाछ नहीं है ।' घमंड़ी सास की हैंकड़ी को देख कर वह औरत बोली – 'आपके अधिकार के अहं से आपकी गरिमा गिरी है, बहू की नहीं ।'

मूर्ख गधा

एक सौदागर नदी पार करके शहर में अपने सामान बेचने जाता था । वह सामान लादने के लिए अपना गधा और घोडा साथ ले जाता था । एक बार वह नमक बेचने जा रहा था । गधे और घोडे पर नमक के बोरे लादे और शहर की ओर निकल पड़ा । रास्ते में नदी आई । नदी पार करते समय घोडे का पैर फिसल गया । वह नदी में गिर गया । सारा नमक पानी में घुल कर बह गया । घोड़ा पानी से निकला और नमक का वजन कम होने की वजह से आराम से चलने लगा ।

गधे ने सोचा कि गिरने पर तो चोट आती है, फिर घोड़ा आराम से कैसे चल रहा है ? उसने घोड़े से पूछा, 'क्यों भाई, नदी के पानी में गिरने से वजन कम होता है ?' घोड़े ने मजाक में कह दिया, 'हां, ऐसा ही होता है ।' गधा खुश हो गया । उसने सोचा मैं भी अब ऐसा ही करुंगा ।

एक बार सौदागर गधे पर रुई लादकर नदी पार कर रहा था । नदी के बीच में आकर गधा अचानक पानी में कूद गया । पानी में गिरते ही पीठ पर रखी रुई ने पानी सोख लिया और गधे का वजन कम होने की जगह कई गुना बढ गया । उससे आगे नहीं बढ़ा गया । सौदागर ने गधे पर खूब चाबुक बरसाए । बेचारे गधे ने जैसे तैसे भारी वजन को लेकर नदी पार की ।

साथ चल रहा घोड़ा मुस्कुराया और मन ही मन सोचने लगा, 'आखिर गधा, गधा ही निकला । जो दूसरों की अक्ल से चलता है, वही गधा होता है ।'

➢ **आपरी एक फूटी रौ दुख कोनीं**
पड़ोसियां री दोनूं फूटी चाये ।

अपनी एक फूटी का दुःख नहीं, पड़ोसियों की दोनों फूटे ।

संदर्भ-कथा : देवी का एक पुजारी निहायत गरीब होते हुए भी मन का बहुत मैला, कुटिल व बेहद ईर्ष्यालु था । उसे अपनी गरीबी व दुख दैन्य की बजाय दूसरों की सुख सुविधा से अधिक संताप होता था । पत्नी के बार-बार समझाने पर वह देवी के सामने आत्म-बलिदान को तैयार हुआ तो देवीने अकस्मात् प्रकट होकर वरदान देना चाहा कि उसका भक्त चाहे जो वरदान माँग ले, दूसरों को उससे दुगना फलेगा । चाहे सोना-चाँदी माँगे या हीरे मोती । दूसरों को दूने फले वरदान की अपेक्षा तो उस कुटिल भक्त के लिए मौत ज्यादा सुखकर थी । उसने एक बार तो वरदान माँगने से इनकार कर दिया । देवी ने समझाया तो आखिर उसने यह वरदान माँगा कि उसकी एक आँख और एक कान फूट जाए । उसका यह वरदान माँगना था कि आस-पास के हर व्यक्ति की दोनों आँखो फूट गई और दोनों कान । दूसरों के साथ उसकी पत्नी का भी वही हाल हुआ । घर के सामने गहरा कुआँ था । अंधी-बहरी बहू अपनी इस आकस्मिक दुर्दशा से घबराकर इधर-उधर भागी । जब वह कुएँ की तरफ भागने लगी तो काने भक्त ने उसे पुकारकर उधर बढ़ने से मना किया । पर वह पति के वरदान से अंधी और बहरी हो गई थी । पीछे भागता पति दस कदम दूर रहा तब वह गहरे कुएँ में गिर चुकी थी । उस इलाके में एक कान से बहरे और एक आँख से अंधे भक्त के अलावा कोई भी नहीं बचा । भक्त के कुटिल स्वभाव की वजह से कल्याणकारी वरदान अभिशाप में बदल गया ।

– जो व्यक्ति जन्मजात कुटिल हो उसकी दुर्भावना का फल सारे समाज को भुगतना पडता है । तकनीकी विज्ञान का कुछ ऐसा ही वरदान आधुनिक मानव-समाज को मिला है ।

➢ **ऊपरलौ जांणे ।**

ऊपर वाला जाने ।

संदर्भ कथा : चार चोर चोरी करने के लिए जा रहे थे । रास्ते में शेखचिल्ली मिला । उसने आग्रह किया कि उसे भी साथ ले लिया जाय । वे सेठ की हवेली में घुसे । चोर तो अंधेरे घर में प्रवेश करते ही अपने हुनर में लग गये । पर शेखचिल्ली संयोग से जच्चा के कमरे में जा घुसा । वह अगाढ नींद में सो रही थी । शेखचिल्ली को भूख लगी तो उसने घी, खांड व आटे का पता कर किया । हलुवा बनाया और वहीं खाने बैठ गया । इस बीच नींद में बेसुध जच्चा ने अपना हाथ फैलाया । शेखचिल्ली ने सोचा कि बेचारी भूख के मारे हाथ पसार रही है । इसी के घर का सारा माल है, इसे न दें तो ठीक नहीं । गरम-गरम हलुवा उसके हथेली पर रख दिया । हथेली जलते ही वह चौंककर चिल्लाई, 'चोर, चोर ।' शेखचिल्ली छींके की रस्सी पकडकर उपर चढ गया । बाकी नीचे ही हड़बड़ी में जहाँ जगह मिली, दुबक गये । घर वाले दौडकर जच्चा

के पास आये । चिल्लाने का कारण पूछते ही उसने हथेली पर रखा गरम हलुवा उनके सामने कर दिया । उन्होंने आश्चर्य से पूछा- अरे ! यह हुलवा कहाँ से आया, किसने दिया ? तब वह अपनी अनभिज्ञता प्रकट करती कहने लगी - मैं कुछ नहीं जानती, उपरवाला (भगवान) जाने कि यह सब क्या हुआ ? शेखचिल्ली ने समझा कि यह तो सारी जोखम उसी के गले पड़ रही है । तब वह अधीर-सा होकर तुरंत बोल पडा, 'वाह, मैं अकेला ही क्यों जानूं, मेरे चार साथी तो नीचे ही कहीं दुबके हुए हैं ।' फिर क्या कसर ! इतना सुराग मिलते ही घरवालों ने शेखचिल्ली सहित चारों साथियों को भी पकड़ लिया । कसकर बाँधा । जमकर पिटाई की और कोतवाल के पास ले गये ।

- नादान साथी दुश्मन से भी बदतर होता है ।
- जो व्यक्ति अपनी नादानी के कारण दूसरों को विकट आफत में डाले ।

➢ **कागलों जीव सूं गियौ पण ठाकरां से भरोसौ ई आयौ ।**

कौवा प्राणों से गया पर ठाकुर का भरोसा ही आया ।

संदर्भ कथा : एक कौआ किसी ठाकुर के घर में नीम पर बैठा हमेशा काँव-काँव करता था । ठाकुर को उसकी कर्कश बोली से बडी चिढ़ थी । बार-बार कंकर फेंकने पर वह कौआ एक डाली से उड़कर दूसरी पर बैठ जाता । ठाकुर के सिरहाने तीर-कमान पड़ा था । कौआ तना हुआ तीर देखते ही उड़ जाता है । कौए को बरगलाने के लिए ठाकुर ने अपने चाकर से कहा कि वह दौड़कर लाठी लाये । कौए ने सोचा कि लाठी से उस पर वार नहीं हो सकता । वह मजे से काँव-काँव करने लगा । ठाकुर ने सतर्कता पूर्वक लाठी कंधे से सटाकर घोडा दबाया । घाँय की आवाज के साथ कौवे को गोली लगी और धड़ाम से नीचे । वह लाठी नहीं बंदूक थी । यह तो ठाकुर ने जबरदस्त धोखा किया । कौए को तो आखिर मरना ही था । वह मरते-मरते ठाकुर की परख हो गई कि वह कितना झूठा है ।

- कोई साधु के वेश में किसी के साथ घात करे तब ।
- नुकसान उठाकर भी किसी की सही पहिचान हो जाये तो भी बुरा नहीं ।

➢ **कूक बाळो डेडरियो ।**

कुएँ का मेंढ़क ।

➢ **डेडरा वाळौ दरियाव ।**

मेढ़क वाला समंदर ।

संदर्भ-कथा : संयोग का करिश्मा कि समंदर का मेंढ़क कुएँ में आ पड़ा । कुएँ में बसने वाले मेंढ़क पहिले तो चौंके, फिर अपनी जाति का समझकर वे आश्वस्त हुए । पूछा, 'अचानक' कहाँ से टपक पड़े ?' तब उस परदेसी मेंढक ने आप-बीती सुनाकर अंत में कहा, 'मेरा दुर्भाग्य कि समुद्र का विशाल आश्रय छोड़कर कुएँ में आ पहुँचा हूँ, तुम सबका कुशल-क्षेम पूछने । 'मेंढ़को का प्रधान फुदककर अतिथि के पास आया । पूछा, 'यह समुद्र क्या बला है, क्या वह कुएँ जैसी ही निरापद जगह है ? क्या उस

में भी इतना पानी है ?' प्रधान की बाल-जिज्ञासा सुनकर पहिले तो वह खूब हँसा । फिर गुमान से बोला, 'अरे भैया, समुद्र और कुएँ की क्या बराबरी ? समुद्र तो समुद्र ही है और कुआँ, कुआँ ही है ?' तब प्रधान ने अपनी बाहें टाँग तानकर पूछा, 'क्या समुद्र इतना बडा है ?' अतिथि मेंढ़क ने सोचा कि इन नादान मेंढ़को का उपहास करना व्यर्थ है । टर्र- टर्र के उपेक्षित स्वर में कहा, 'छोडो यह जिज्ञासा, मेरे समझाने से भी तुम समुद्र की विशालता का अनुमान नहीं लगा सकते ।' तब प्रधान ने दाहिनी टाँग फैलाकर पूछा, 'तो क्या इतना बडा है ?' तब अतिथि मेंढ़क ने बहस का अंत करने की मंशा से कहा, ''हाँ, इससे भी बडा है । बस आकाश जितना ही लंबा चौडा ?' प्रधान ने दुखती टाँगें समेटकर पूछा, 'आकाश ! यह आकाश क्या बला है ?' अतिथि मेंढ़क को थोडी खुंदक चढ गई । टर्राते बोला, 'तुम कभी कुएँ से बाहर निकले हो तो जानो कि समुद्र और आकाश क्या नफीस नजारे हैं ? मेरे साथ चलकर देखो तो पता चलेगा ? टर्राना - बर्राना सब भूल जाओगे ?' प्रधान ने वैसा ही उत्तर दिया, 'जब तुम टर्राना नहीं' भूले तो हम क्यों भूलेंगे । और इतना अच्छा निवास छोड कर हम दूसरी जगह जाएँ ही क्यों ? हम भले और हमारा कुआँ भला ? तुम्हें ही मुबारक हो यह समुद्र और यह आकाश ।'

- जो व्यक्ति अपने सीमित दायरे को ही सब-कुछ समझे ।
- अपने-अपने परिवेश और सामाजिक वातावरण से ही हर व्यक्ति का मानस निर्मित होता है ।

➢ **गधै रे तो जीव री पड़ी ने स्याळिया रै हूंकणी चालै ।**

गधे को तो जी की पड़ी और सियार चिल्लाने पर उतारू ।

संदर्भ-कथा : एक गधा और सियार दोनों मित्र थे । गधा अपने हाल में मस्त इधर-उधर चरकर अपना पेट भर लेता था । एक दिन सियार उसे बरगला कर पास के खेत में ककडियाँ खाने के लिए ले गया । गधे ने काफी आनाकानी की । पर सियार के आगे उसका कुछ भी जोर नहीं चला । ककड़ियाँ खाने से दोनों को खूब मजा आया । दूसरे दिन फिर वही मौज । खेत का मालिक पहले दिन का नुकसान देखकर जल-भुन गया था । आधी रात को दोनों फिर चुपके से खेत में घुसे । पेट भर ककड़ियाँ खाई । तब सियार ने कहा, 'भाई जोर से चिल्लाये बिना मुझे ककडियाँ हजम नहीं होतीं । पेट काफी फूल गया है ।' गधे ने मना किया, फिर भी सियार नहीं माना । उसके चिल्लाते ही खेत का मालिक लठ्ठ लेकर दौडा । चालाक सियार तो चंपत हो गया, पर गधे पर खूब मार पडी ।

- कुटिल या दुष्ट व्यक्ति की संगति करने पर सीधे आदमी को नुकसान उठाना पडता है ।
- कपटी का साथ करने पर दुष्पपरिणाम अवश्यंभावी है ।
- मूर्ख व चालक व्यक्ति का साथ अधिक दिन नहीं चलता ।

➢ **गरज मिटी रे 'गाँगला' गाँव सूं आटौ मांगला । (राजस्थानी)**

गर्ज मिटी रे, गाँगला गाँव से आटा मांगला ।

गरज मटी अेटले वैद वेरी । **(गुजराती)**

संदर्भ-कथा : एक बीमार साधु को तीमारदारी करने के लिए चेले की आवश्यकता हुई तो उसने 'गाँगला' नाम के व्यक्ति को चेला बना लिया और उसे खुशी-खुशी सारा मठ सौंप दिया । चेला स्वयं मौज करता और गुरु की सेवा-टहल करता । गुरु की बीमारी के दौरान चेले को सभी बातों की पूरी छूट थी । पर ज्यों ही धीरे-धीरे चेले की तीमारदारी से गुरु ठीक हुआ तो उसने साफ तौर पर 'गाँगला' को बतला दिया कि अब बैठे-ठाले खाते से काम नहीं चलेगा । 'गाँगले' को गाँव से प्रतिदिन दोनों के लिए माँगकर भोजन लाना होगा ।

- गर्ज मिटने ही मुनष्य का रुख स्वयमेव बदल जाता है ।
- स्वार्थ ही मनुष्य का सर्वोपरी दर्शन है ।

➢ **गाद्डै रै मूंडे न्याव ।**

सियार के मुँह से न्याय ।

संदर्भ कथा : एक शेर तीन दिन से पिंजरे में बंद था । भूख के मारे बेहाल । यात्रा पर जाते एक वृद्ध बामन को पास से गुजरते देखा तो शेर ने चिरौरी चिरौरी करते कहा, 'पंडित जी, कमाई के लिए दिसावर जाने की कोई जरूरत नहीं । यदि आप मुझे पिंजरा खोलकर मुक्त करा दें तो मोहरों से भरे सात कलश दूँगा । तीन दिन से भूख के मारे जान निकल रही है । जल्दी कीजिए ।'

पंडित ने सहमते स्वर में कहा, 'मैं तो जल्दी करूँगा ही, पर आपने मुझे खाने की जल्दी की तो ये सात कलश मेरे क्या भाव पडेंगे ?' शेर अगले पंजे जोड़कर बोला, मैं हिंसक जरूर हूँ, पर कृतघ्न नहीं । भला मुझे उगारने वाले के मैं प्राण लूँगा ? आप सपनें में भी यह खयाल छोड़ दें । मुझे बोलने में भी कठिनाई हो रही है - जल्दी कीजिए ।'

लोभ अंधा होता है । पंडित ने आगे कुछ भी सोचे-विचारे बिना शेर को पिंजरे से मुक्त कर दिया । पर भूख अंधी-बहरी दोनों होती है । वह बामन को खाने के लिए दहाडने लगा तो बामन ने डरते हुए कहा, 'वचन भूलकर मुझे खाओगे तो तुम सड़-सड़कर मरोगे । भूखे बामन का शाप कभी झूठा नहीं होता ।' बामन के शाप से भूखे शेर को भी ड़र लगा । बोला, 'पंडितजी, यदि सचमुच मेरे पास मोहरों के कलश होते तो प्राण बचने की खुशी में जरूर आपको दे देता । पर मेरे पास तो एक कौडी भी नहीं है । मनुष्य के लोभ को जानता हूँ, इसलिए झूठ बोलना पडा ।'

'पर यह तो सरासर अन्याय है । जंगल का राजा भी अन्याय करने लगे तो....!'

'चलो, इस सियार से न्याय करवा लेते हैं । वक्त ठीक पर आया । भूख तो जबरदस्त लगी है, पर अब तुम्हारे साथ न्याय ही होगा । सियार न्याय करने में माहिर होते हैं ।''

शेर जानता था कि सियार को यदि इस जंगल में रहना है तो उसके पक्ष में ही न्याय करेगा । मौत का ड़र सबको लगता है ।

सियार ने दोनों की बात अच्छी तरह सुनने के बाद कहा, मैं सपने में भी नहीं मान सकता कि हमारे राजा इस अदने से पिंजरे में बंद हो सकते हैं । फिर क्या खाक न्याय करूँ ? राजा की इच्छा ही सबसे बडा न्याय है । वे तुझे खाना चाहें तो भला उन्हें कौन रोक सकता है ?'

सिंह ने हँसने की चेष्टा की, पर भूख के मारे उससे हँसा नहीं गया । कहने लगा, 'मैं जो कह रहा हूँ, सच, पंडितजी ने मुझे इसी पिंजरे से बाहर निकाला था ।'

सियार ने गर्दन हिलाते प्रतिवाद किया, 'मैं नहीं मानता । आपके दिल मैं बहुत दया है । आप पंडितजी को झूठा साबित नहीं करना चाहते, इसलिए उनकी बात रख रहे हैं...।'

सिंह ने सियार की बात पूरी सुनी ही नहीं । बीच में बोला, 'यदि मैं फिर से इस पिंजरे में घुसकर बता दूँ तो...।'

'तब तो मानना ही पडेगा । पर मेरा जी कहता है, आप इस में घुस ही नहीं सकते ।' और शेर ने वाकई उस पिंजरें में घुसकर सिद्ध कर दिया कि उसके लिए पिंजरे में घुसना कितना आसान है । फक्त निकलना ही मुश्किल था । सियार पंडितजी को इशारा करे उसके पहले ही उसने पिंजरे की फाटक अच्छी तरह जड़ दी ताकि शेर बाहर न निकल सके । शेर जोर से दहाड़ कर चिल्लाया, 'मुझे भूख लगी है, फाटक जल्दी खोल । पंडित दुबारा न खोले तो तू खोल दे । तूझे अपना मंत्री बनाऊँगा ।'

सियार ने अतिशय विनम्रता से कहा, 'न मैं मंत्री का काम जानता हूँ और न पिंजरा खोलना ही । यह इस मनुष्य की करामत है । पंडितजी एक बार और पिंजरा खोल दो, मैं तुम्हें मोहरों के कलश दिलवा दूँगा ।'

पिंजरे में बंद शेर से बिना डरे बामन ने कहा, 'अब जिसे मोहरों की गरज होगी, वह बिना कहे मेरी तरह लोभ में आकर पिंजरा खोल देगा । मैं तो अपनी यात्रा पर जा रहा हूँ । एक बार घोखा खाया वही बहुत है ।'

पंडित के रवाना होने पर सियार ने डपटकर कहा, 'रूको पंडित, हमारे राजाजी को बाहर निकालो, नहीं तो मैं तुम्हारा सफाया कर दूँगा ।' यह कह कर सियार उसके पीछे रवाना हो गया और शेर को आश्वासन दे दिया कि अभी पंडित को पकडकर ला रहा है । शेर ने जल्दी लौटने की हिदायत दी । पर दोनों में से कोई वापस नहीं लौटा । और शेर जस-तस दहाड़ता तीसरे दिन तडफ-तडफ कर मर गया ।

- लोभ के वशीभूती दुष्ट व्यक्ति का भला नहीं करना चाहिए ।
- उपकार के बदले अपकार करने वाले का आखिर ऐसा ही न्याय होता है ।

➢ **घर रा घर में सलट लिया ।**

घर – घर ही में सलट लिये ।

संदर्भ-कथा : एक सियार व सियारनी तालाब पर पानी पीने गये तो वहाँ से लौटते हुए शेर की उन पर नजर पडी । बचने की कोई राह नजर नहीं आई तो सियारनी ने तुरंत एक उपाय सोचा । आँखों में आँसू भरकर वह सिंह की ओर बढ़ते कहने लगी – आप ही को सवेरे से खोज रही हूँ, सारा जंगल छान मारा । आप हमारे न्यायी राजा है । हमारा न्याय कीजिए, वरना तालाब में डूब मरूँगी ।

सिंह ने तत्काल पूछा – किस बात का न्याय ?

तब सियारनी बोली – हमारे सात बच्चे हैं । मैंने कितनी मुश्किल से उन्हें पाल-पोस कर बड़ा किया, मेरा जी जानता है । अब यदि अलग होने पर चार बच्चे अपने पास रखूँ तो उसमें क्या बुरी बात ! पर यह दुष्ट कहता है कि चार वह रखेगा । जरा पूछिए इससे कि उसने एक भी बच्चे को जन्म दिया ? आपको तकलीफ तो होगी । हमारी माँद तक चल कर सच्चा न्याय कीजिए ।

सिंह के मुँह में पानी भर आया । मन-ही -मन हिसाब लगाने लगा – सात और दो – नौ । मजा आ जाएगा । चार बच्चों के बाद सियार को और तीन बच्चों के बाद सियारनी को खाने में दुगुना स्वाद आएगा । वह हिसाब करता रहा तब तक वे अपने न्यायी राजा से आज्ञा लेकर पानी पी आये । सिंह चुपचाप उनके साथ चलता रहा । सियारनी पति को मार कोसती रही । माँद के पास पहुँचते ही वह आँखें तरेर कर बोली हरामखोर, यहाँ बाहर क्यों खड़ा है, जा अंदर जा और बच्चों को झटपट बाहर लेकर आ । अब तो न्यायी राजा जो भी न्याय करेंगे, तुझे मानना ही होगा । बोल, मानेगा कि नहीं ?

'जरूर मानूँगा ।' इतना कहकर वह आँखें चुराता हुआ माँद के भीतर घुस गया । काफी देर तक बाहर नहीं आया तो सियारनी का माथा ठनका कि नालायक कहीं धोखा कर जाये । पति को दो टूक गालियाँ निकालती हुई वह भी राजा की आज्ञा से माँद के अंदर घुस गई । सिंह काफी देर तक उनकी प्रतीक्षा करता रहा । आखिर उकताकर जोर से बोला – तुम बच्चों को लेकर बाहर क्यों नहीं आते ? मेरी पूजा का समय टल रहा है । जल्द बाहर आओ तो झटपट तुम्हारा न्याय कर दूँ... !

सियारनी माँद के भीतर से ही बोली – आप जैसे न्यायी राजा को बेकार तकलीफ दी – माफ कीजिएगा । यह हरामी चार बच्चे रखे तो रखने दीजिए । मैं तीन से ही खुश हूँ । आखिर यह दुष्ट है तो इनका पिता ही और मेरा पति भी । हमने घर-घर ही में फैसला कर लिया कि आपस में लडना उचित नहीं । आपने सहयोग व कष्ट के लिए एक बार फिर माफी चाहती हूँ ।

सिंह का मुँह उतर गया । साँस रोकता हुआ बोला – एक बार बच्चों सहित तुम बाहर तो आओ । बच्चों को जरा आशीर्वाद तो दे दूँ ।

'जरूर आशीर्वाद दीजिए पर बाहर से ही । मेरे बच्चे डरपोक बहुत हैं, आपकी छाया से ही उन्हें डर लगता है, फिर कभी झगड़ा होगा तो जरूर आपके पास हाजर होऊँगी ।

यह नालायक जरूर झगड़ा करेगा ।'

आखिर सिंह को झख मारकर वहाँ से रवाना होना पडा । बच्चों का लजीज मांस खाने की मन में ही रह गई ।

- संकट की वेला धैर्य-पूर्वक विवेक से काम लेने से बचाव संभव है ।
- बाहर के खतरे से बचने का एक ही मंत्र है - पारस्परिक एकता । चाहे वह पारिवारिक हो चाहे राष्ट्रीय ।
- पंचों से फैसला न करवाकर आपस में सलटना ही उत्तम है ।

➢ **थारौ घड़ौ फूट ग्यौ, पण म्हारौ घर ढह ग्यौ ।**

तेरा घड़ा फूट गया, पर मेरा घर ढह गया ।

संदर्भ-कथा : शेखचिल्ली की कथाओं में से एक यह कथा भी है कि एक बूढ़े तेली ने तेल से भरा एक घड़ा बाजार में पहुँचाने के लिए शेखचिल्ली को एक टके में राजी कर लिया । दोनों साथ-साथ चलने लगे । शेखचिल्ली तो खयाली पुलाव बनाने में माहिर था । घड़े का वजन सिर पर महसूस करते ही उसकी कल्पना उड़ान भरने लगी - टके से अंड़ा खरीदूँगा । अंडे से चूजा बनते क्या देर लगती है ? मुरगी रोज एक अंडा देगी । दस बारह मुर्गे- मुर्गियाँ होते ही एक बकरी आसानी से मिल जाएगी । बकरी साल में दो बार ब्याती है । इस बकरे-बकरियाँ हुई नहीं और एक गाय तैयार । गाय का दूध देखकर कोई भी औरत ब्याह के लिए तैयार हो जाएगी । फिर तो निकाह के बाद बच्चे - ही बच्चे । सब उससे डरेंगे । उसका कहना मानेंगे । बीबी गाय के घी में चुपड़ी चपातियाँ परोसेगी । बड़ा लडका खाने की मनुहार करेगा तब कहूँगा - थोड़ा ठहर, अभी नहीं । यह कहते ही शेखचिल्ली ने जोर से सिर हिलाया तो घड़ा नीचे गिर पड़ा । पड़ते ही चूर-चूर । सारा तेल माटी में मिल गया । तेली उसे डाटने लगा तो शेखचिल्ली ने पलटकर जवाब दिया, 'तुम्हें अपने घड़े की पड़ी है । मेरा तो बना-बनाया घर बिखर गया, उसकी तुम्हें कुछ फिकर ही नहीं । तुम्हें ऐसा खुदगर्ज तो नहीं जाना था..... ।'

- जो व्यक्ति अपने खयाली नुकसान के सामने किसी की वास्तविक हानि की ओर ध्यान ही न दे ।
- प्रत्यक्ष हानि की तुलना में काल्पनिक मनसूबों की क्षति भी कुछ कम नहीं होती ।

➢ **नाहर रौ भै नीं, जित्रौ टपूकड़ै रौ भै ।**

नाहर का भय नहीं जितना टपूकड़े का भय ।

संदर्भ-कथा : एक बुढिया का कच्चा घर बारिश में टपकता रहता था । रात भर नींद का नाम तक नहीं । जिस पर सर्दियों में तो प्राण ही ठिकुर जाते थे । उस गाँव में बाघ-चित्तों का भी काफी आतंक था पर बुढिया को तो बाघ-चित्तों की बजाय बारिश का अधिक डर लगता था । नाहर या चित्ता तो एक बार ही कष्ट पहुँचाता है, पर टपकते

पानी की पीड़ा का तो कोई पार ही नहीं । संयोग से सर्दियों की बारिश के दौरान एक बब्बर शेर बुढ़िया को खाने की ताक में होठों पर जीभ लपलपा ही रहा था कि उसे बुढ़िया के बोल सुनाई पडे – हे ईश्वर, मुझे नाहर का कतई डर नहीं लगता, यह 'टपूकड़े' की वजह से मेरी नींद ही हराम हो गई, उसे अपने पास ही रख । शेर ने सोचा कि यह 'टपूकड़ा' तो उससे भी ज्यादा ताकतवर है । भिड़ते ही मार डालेगा । उसे 'टपूकड़े' का ऐसा दुर्दम्य भय लगा कि पूँछ दबाकर वहाँ से भाग छूटा ।

–लोग वास्तविक भय की बजाय काल्पनिक भय से अधिक डरते हैं ।

➢ **बियां नी फूट, तीजाए लाभ ।**

दो की फूट में तीसरे को लाभ होता है ।

संदर्भ कथा : दो बिल्लियों और बंदर की कथा उदाहरण के रूप में बहुत प्रासंगिक है । किसी भी कारण से दो बिल्लियों में झगड़ा हो गया । रोटियों के बँटवारे में परस्पर झगड़ पडी । झगड़ा सुलझने की बजाय मार उलझता ही गया । निपटारे की कोई सूरत नजर नहीं आई तो ये न्याय की खातिर एक बंदर के पास गई । रोटियों की खुशबू से बंदर के मुंह में पानी भर आया । ऊपरी मन ने कहा – मेरी मौसियों का झगड़ा न सलटाऊँ तो और किसका सलटाऊँगा । जब बिल्लियों को पूरा एतबार हो गया तो बंदर माँग–मूँगकर एक तराजू लाया । दोनों पलडों में रोटियाँ धरकर तौलने लगा । जिधर पलड़ा भारी होता तो वह सहज भाव से अपनेपन का इज़हार करते हुए भारी पलड़े की एक–आध रोटी खाकर पलडों को बराबर रखने की कोशिश करता तब दूसरा पलडा भारी हो जाता । उसे बराबर करने के लिए भारी पलडे से और एकाध रोटी खा लेता । वह भूख न होने का बारबार बहाना करता पर भारी पलडे से रोटियाँ उठाकर उसे हलका कर देता । और अंत में दोनों पलड़ो को बराबर रखने की चेष्टा में वह सारी रोटियाँ डकार गया और बिल्लियाँ अपना–सा मुँह लेकर रवाना हो गई ।

– यदि लोग झगडेंगे तो पंचो की पाँचों अँगुलियाँ घी में रहेंगी । वे मौज करेंगे और झगडने वाले हमेशा नुकसान में रहेंगे ।

– जहाँ तक बन पडे आपसी फूट और वैमनस्य की जड़ ही काट देनी चाहिए ।

➢ **बिलड़ी रै गळै घंटी कुण बाँधै ?**

बिल्ली के गले घंटी कौन बाँधे ?

संदर्भ–कथा : चूहों की एक बहुत बड़ी बस्ती थी । किंतु सब मिलकर भी शैतान बिल्ली का सामना नहीं कर सकते । ताकत के सामने संख्या कुछ मायने नहीं रखती । स्वयं प्रकृति ने ही चूहों को मारने के लिए बिल्ली की रचना की है । और बिल्ली को मारने के लिए कुत्तों की । बिल्ली की क्रूरता से कम उसकी चालाकी भी नहीं है । पंजों के बल इस तरह चुपचाप चलती है कि स्वयं विधाता को भी पता नहीं चले ! आत्मरक्षा के लिए चूहों की बेठक हुई । सरदार का सुझाव बहुत ही माकूल था कि यदि बिल्ली

के गले में घंटी बांध दी जाय तो उसकी आवाज सुनते ही सारे चूहे बिलों में दुबक जाएँगे और बिल्ली मासी टापती रह जाएगी । बहुत पुख्ता और अचूक सुझाव था, पर बिल्ली के गले में घंटी बाँधे कौन ? चूहा तो सपने में भी ऐसी हिम्मत कर नहीं सकता । सुझाव तो एकदम टनाटन था पर उसकी क्रियान्विति असंभव थी ।

- भला शैतान का सामना कौन करे ?
- जब आततायी के गले में घंटी बाँधने का समय पैदा होता है तो सभी दूर खिसक जाते हैं ।

➢ **भगवांन करै सो भलौ इ करै ।**

भगवान जो करता है अच्छा ही करता है ।

संदर्भ-कथा : एक राजा शिकार के लिए जा रहा था । कुछ उतावली और कुछ गफलत से तलवार बाहर निकालते समय उसकी तर्जनी ऊँगुली कट गई । लहू की धार बहने लगी । वृद्ध दीवान पास ही खडा था । मरहम-पट्टी करते समय गंभीर स्वर में बोला, 'भगवान जो करता है, अच्छी ही करता है ।' राजा दर्द के मारे उसकी पिछली सेवाएँ भूल गया था । तैश में आकर पूछा, 'क्या कहा ?' दीवान के मन में तो कोई मैल था ही नहीं । वही बात फिर दुहरा दी । राजा तो बस राजा ही होता है । दरबारियों की कृतज्ञता मानने से राज थोडे ही चलता है । अदेर सैनिकों को हुक्म दिया और वृद्ध दीवान बंदीगृह में दाखिल ।

राजा को शिकार का बेहद शौक था । सो आराम न करके वह शिकार के लिए जंगल की ओर रवाना हो गया । वही ग्यारह विश्वस्त और कुशल सैनिक साथ थे । संयोग की बात ऐसी बनी कि भाले से घायल सिंह राजा पर झपटा तो राजाने बचाव के लिए कटी अंगुली वाला हाथ आगे किया । सिंह की नजर खून से सनी पट्टी पर पडी़ तो उसने अपना पंजा समेट लिया और राजा को छोडकर जंगल में चल दिया । भाले से घायल होने पर भी उसने अपनी मर्यादा निबाही । खंडित अंग वाले प्राणी को वह नहीं मारता । न उसकी शिकार ही करता है । राजा भी तुरंत सिंह की मंशा समझ गया । यदि अँगुली साबुत होती तो राजा की मृत्यु निश्चित थी । शिकार का शौक वहीं छोडकर वह सीधा बंदीगृह गया । वृद्ध दीवान से क्षमा माँगकर उसने अपने बचने की खुशी प्रकट करते कहा, 'आपकी बात सोलह आने सही थी कि भगवान जो कुछ करता है, अच्छी करता है । कटी ऊँगली के कारण आज मेरे प्राण बच गये ।'

- जिस पर बीतती है, उसे भले ही बुरा लगे पर भगवान जो कुछ करता है, अच्छा ही करता है ।

➢ **मन चंगा तौ कठौती में गंगा ।**

मन चंगा तो कठौती में गंगा ।

संदर्भ कथा : संत रैदास के बारे में यह कथा प्रसिद्ध है कि एक बार कुछ यात्रियों

को गंगा स्नान के लिए जाते देखकर अपनी हथेली आगे बढाते कहा, 'ये कौडियाँ गंगा मैया को भेंट कर देना । कहना कि भगत रैदास ने भेजी है । पर एक बात का खयाल रखना, जब गंगा मैया खुद प्रकट हो तभी देना ।'

ब्राह्मण यात्रियों को बडा आश्चर्य हुआ । दुःख भी हुआ । रैगर को इतना अभिमान सुहाता नहीं । हुं, इस बेचारे की कौड़ियाँ के लिए गंगा मैया प्रकट होगी ? यात्रियों के मुखिये पंडित ने ऊपरी मन से कौडियाँ ले लीं । लेकिन सभी यात्रियों को तब और अधिक अचरज हुआ जब उनके कहने पर स्वयं गंगा मैया ने हाथ पसार कर रैदास की भेंट स्वीकार की और उसके बदले में गंगा मैया ने सोने का एक कंगन दिया और कहा, 'मेरे भगत को दे देना । कहना माँ ने भेजा है । मना नहीं करे । उसकी सच्ची भगती से मैं सचमुच बहुत प्रसन्न हुई हूँ ।' ब्राह्मण यात्री माँ को क्या कहते । दाँत पोरकर कंगन ले लिया । पर उनका मन पूरा कसैला हो गया । रैगर को कहाँ शोभा देगा – हीरे-मोतियों का यह कंगन । खरे सोने में खरे नगीने । वह इसका मोल क्या समझे ? राजा को खुश करने की नीयत से वे दरबार में गये । गंगा मैया का वह कंगन राजा को विनम्रता पूर्वक भेंट कर दिया । पर रानी पूरी खुश नहीं हुई । दूसरे हाथ के लिए वैसा – का वैसा कंगन और माँगा । लाखों रुपये देने को तैयार, पर दूसरा कंगन जल्दी से जल्दी लाना है, नहीं तो नंगी पीठ पर कौडे पडेंगे । बेचारा ब्राह्मण चुपचाप वहाँ से चलते बने । थरथराती आवाज में रैदास भगत के लिए दूसरा कंगन माँगा तो मैया ने उन्हें दुत्कार दिया, 'ब्राह्मण हुए हो, अब भी धोखे की आदत नहीं छूटी ! जाओ पहिले रानी से वह कंगन लेकर रैदास को दो । यदि वह कहेगा तो उसके लिए मेरे पास कंगनों की कमी नहीं है । इतना कहकर गंगा मैया लुप्त हो गई । पंडित अपना-सा मुँह लेकर राजा के पास आये । दांतों में तिनका लेकर पाँव पकडकर उसे सच्ची बात बता दी । राजा यों भी कई दिन से रैदास भगत के पास जाना चाहता था । रानी को साथ लेकर वहाँ पहुँचा । रैदास भगत कठौती से भीगा चमडा निकालकर सफाई कर रहे थे । राम-राम कहकर सबका अभिवादन किया । पर हाथ का काम छोडा नहीं । वे तो अपने गुरु और गंगा मैया से बडा किसी को समझते ही नहीं थे ? रानी से धीरज नहीं रखा गया तो उसने दूसरे कंगन की माग की । रैदास ने चुपचाप रानी के हाथ से कंगन लेकर चमडे की कठौती में अपना बाँया हाथ डुबाया । हाथ बाहर निकाला तो उसके हाथ में दो कंगन थे । राजा भी रैदास के चमत्कार से डर गया । रानी भी डर गई । तब दीवान और पंडितों का कहना ही क्या ! राजा ने हाथ जोडकर जितनी भी मांगे, मोहरें देने की बात कही तो रैदास ने मुस्कराते कहा, 'माफ करें, मैं तो एक के अलावा किसी से कुछ भी माँगने की आशा ही नहीं रखता । रानी-माँ इन कंगनों से खुश है तो मैं भी खुश हूँ ।

- यदि मन शुद्ध है तो चमडे की कठौती का गंदा पानी भी गंगाजल के समान निर्मल है । वरना अशुद्ध मन के प्रभाव से गंगा का पवित्र पानी भी सामान्य ही रहता है । मनुष्य के मन की निर्मलता ही सर्वोपरि है । वही एक मात्र श्रेष्ठ है ।

➢ **सीख न दीजै बादरां घर बच्चा रौ जाय ।**

बंदरों को सीख देने से वैयों के घोंसले नसर होते हैं ।

संदर्भ कथा : एक पेड पर अनेक वैयों का बसेरा था । समझो कि सारा कबीला ही वहाँ आकर बस गया हो । लंबे लंबे झुलते हुए दूसरे घोंसले । पतले-पतले तिनके इस कदर तरकीब से गुँथे हुए कि मनुष्य ध्यान से देखे तो उसका भी मगज चकरा जाय - कैसी तो सुंदर कारीगरी है और कैसी माकूल हिफाजत है । न साँप का खतरा और न चील कौंओं का । न ओले या मुसलधार बारिश का ।

एक दिन संयोग ऐसा घटित हुआ कि वर्षा का खतरा जानकर कई बंदर उस पेड के नीचे बैठ गये । थोडी ही देर में बूंदो के साथ तड़ातड़ ओले बरसने लगे । बंदरो का बुरा हाल । इघर-उधर उछल-फाँद करते रहे । दाँत किटकिटाते रहे । ठिठुरते रहे । और उधर खुली बारिश में झूमते हुए घोंसलों के भीतर वैये पक्षी आराम से बारिश का आनंद ले रहे थे ।

बारिश थमने पर चहचहाते पक्षी बाहर निकले । बंदरों को ठिठुरते देखा तो मुखिये रहा नहीं गया । उसे सीख देने का कुछ विशेष ही शौक था । चहचहाते हुए कहने लगा, आप सबकी हालत देखकर हमें बड़ा तरस आ रहा है । कहाँ हम निरीह पक्षी और कहाँ आप सशक्त हनुमान । चाहें तो मनुष्यों की तरह मकान बना सकते हैं । मगर अफसोस कि आप आलस्य के मारे कुछ नहीं कर पाते । इधर देखिये, हमारा क्या बूता है - मुठ्ठी जितना शरीर और पतली चोंच । एक-एक तिनका तोड़कर हमने ऐसे सुंदर और सुविधा-जनक घोंसले बनाये कि मनुष्य चाहे तो इनकी नकल तक नहीं कर सकता । बाहर ओले बरसते रहे और हवा साँय-साँय करती रही और हम मजे से झलते रहे और आप कभी इधर तो कभी उधर उछल-फाँद करते रहे । ठिठुरन के मारे दाँत बजाते रहे । हमारे बच्चे आप सबकी बेबसी का तमाशा देखते रहे..... ।

खैरियत समझो कि बंदरों का सरदार अकिंचन पक्षी की इतनी बकवास सुनता रहा । आखिर अपने गुस्से पर नियंत्रण नहीं रख सका तो दाँत पीसता हुआ पेड़ पर चढ़ गया । मुखिये का घोंसला तोड़कर उसने नीचे पटक दिया बस, इतना इशारा काफी था । अगले ही क्षण सारे बंदर छलांग मारकर पेड़ पर चढ़े । जमीन पर तड़ातड़ घोंसलों की बरसात होने लगी । अंड़े फूट गये । बच्चे और वैये घोंसलों के इर्द-गिर्द चीं -चीं करते रहे । बंदरों के सरदार ने मुठ्ठी तानते हुए कहा, और देगा, हम जैसे बुद्धिमानों को सीख । हमारी तकलीफ से तुम्हें क्या लेना-देना था । 'और हमारी ताकत का कुछ अंदाज भी हैं तुम्हें ? घोंसला बना नहीं सकते पर तोड़ तो सकते हैं । घड़ी भर का समय मिले तो मैं अकेला तुम्हारे हजार घोंसलों का सफाया कर सकता हूँ ।'

भला पक्षियों का मुखिया बंदरों की मनमानी का क्या जवाब देता । वहाँ से कबीले के साथ उड़ा सो एक दूसरे सघन पेड़ का आश्रय लिया । और नया घोंसला बनाने के लिए उसने घास का एक तिनका चोंच से तोड़ा और पेड़ की ओर दुगने जोश से उड़ा ।

- जो सीख माने उसे ही सीख देना सार्थक है वरना मूर्खों को सीख देने से वैया-पक्षियों की भाँति अपने आवास से हाथ धोना पड़ सकता है ।
- यदि शास्त्रों व धर्म - ग्रन्थों की सीख तनिक भी कारगर होती तो मानव-प्रजाति का बहुत कुछ परिष्कार हो गया होता ।

➢ **सेर री खाल में गरदभ ।**

शेर की खाल में गर्दभ ।

संदर्भ-कथा : जब भाग्य प्रबल हो तो गधे को भी शेर की खाल मिल जाती है । गधे ने सोचा, दुनिया में सब खाल ही का प्रताप है । सिंह, वाघ, सूअर और रींछ की खाल ही से तो सब ड़रते हैं । भीतर झाँककर कौन देखता है ? गधे के नाप की ही खाल थी सो उसने अदेर पहन ली । उत्साह के वशीभूत उसने तालाब के पानी में अपना हुलिया देखा तो फूला नहीं समाया । अब तो वह सारे जंगल पर आसानी से राज्य कर सकता है । इतने में एक सियार उसके पास आकर निःशंक पानी पीने लगा तो गधा चौंका । तब सियार ने कहा, 'मामा मुझसे चौंकने की जरूरत नहीं । मैं दूर से सब देख रहा था । आवाज के अलावा तुम पूरे शेर लगते हो । पर तुम्हें आज से ही बोलने और रेंकने की शपथ लेनी होगी । बाकी सारा काम मैं सँभाल लूँगा । जैसा में कहूँ, वैसे करते रहना । आज से ही मैं आजीवन आपका मंत्री रहूँगा ।' मूर्ख होते हुए भी गधा अपने मतलब की बात तो पूरी समझता ही था । उसने बोलकर सियार को भी कुछ जवाब नहीं दिया । गर्दन उपर-नीचे हिलाकर ही चुप हो गया । तब सियार ने मुस्कराते कहा, 'मेरे सामने खुलकर बातें करिये, तभी हम अपनी योजना में सफल हो सकेंगे ।' शेर का मंत्री बहुत चालाक था । थोडी ही देर में सारी योजना तैयार हो गई ।

दूसरे दिन तो वह शेर लिपे-पुते चबूतरे पर बड़े रुआब से बैठा था । लोमड़ी ने सारे जंगल में डोंडी पिटवाई तो जंगल के सभी छोटे-बड़े जानवरों का मेला सा लग गया । एक सिंह भी आया जो उसी जंगल का राजा था । सियार के कहने पर ही काफी घबराया-सा दिखाई दे रहा था । उसने इन्द्रलोक से आये नये राजा को प्रणाम किया तो उसके बाद कोई भी जानवर पीछे नही रहा । हाथी ने भी उसके चरणों में तीन बार सूँढ से धोक दी । लोमडी ने आरती उतारी ।

मंत्री ने घोषणा की, 'अनजान इंद्र ने अपने राज्य से नये राजा को भेजा है । बरसों इंद्रलोक में रहने के कारण हुजूर मांस खाना भूल गये । देवताओं वाला भोजन करते हैं - खीर, मालपूवे, घेबर, दूध, जलेबी और पराँठे । मैंने हलवाई की व्यवस्था कर ली है । हमारे नये राजा ने साल भर के लिए मौन-व्रत लिया है । लेकिन काली का इष्ट होने की वजह से रोज एक पशु की बलि दी जाएगी । जिसे मैं कहूँ उसे गुफा के भीतर जाकर अपनी बलि देनी होगी । एक चीते को मैंने इसके लिए तैनात कर दिया है । जंगल में सबको शांति रखनी होगी । जिसने भी निरीह जानवर पर अत्याचार किया, उसे पूरा दंडित किया जाएगा । अब आप सभी जाएँ । नये राजा अब गुफा में जाकर जाप करेंगे ।' तत्पश्चात नकली शेर की सभा विसर्जित हो गई ।

वैसी मौज सियार की सात पीढ़ियों ने भी नहीं की होगी ? कुछ ही दिनों में वह सूअर की नाई मुस्टंड हो गया । पर उसने दूसरों का कोई हिस्सा नहीं रखा तो धीरे-धीरे उसके कई दुश्मन हो गये । एक लोमड़ी तो उसके पीछे ही पड़ गई । गुफा के आसपास लीद देखकर वह सारा भेद समझ गई । दुश्मनों से निबटने के लिए मंत्री ने फिर सभा बुलाई । सारे जानवर आतंकित होकर इकठ्ठे हुए । मंत्री नई घोषणाएँ करने ही वाला था कि इन्द्रलोक के शेर की निगाह एक गधी पर पड़ी । वह क्षणभर भी धीरज रख नहीं सका । चबूतरे से नीचे उतरा और जोर से रेंकता हुआ गधी की ओर दौडा । लेकिन भाग्य विमुख होने से वह गधी के पास पहुँच नहीं सका । शेर का पंजा उसकी पीठ पर पड़ा तो वहीं ढेर हो गया । मंत्री ने भागने की चेष्टा की तो एक चीते ने उसे घर दबोचा । जिस तरह मामला बनने में देर नहीं लगी, उसी तरह बिगड़ने में भी देर नहीं लगी !

- आदमी की असलियत ज्यादा दिन तक छिपी नहीं रह सकती ।
- शेर की खाल ओढ़े उस गधे का तो पता चल गया, लेकिन मनुष्यों ने जो तरह-तरह के मुखौटे लगा रखे हैं, उनकी पहिचान जाने कब होगी ?

➢ **सोनार री सौ ठक-ठक अर लुहार की एक घमीड़ ।** (राजस्थानी)
सुनार की सौ ठक-ठक और लुहार का एक घमीड़ ।
सो सोनीनी एक लुहारनी । **(गुजराती)**

संदर्भ-कथा : एक सुनार और एक लुहार में ऐसी घनिष्ठ मित्रता थी कि सगे भाई भी इनसे ईर्ष्या करते थे । लुहार तो सुनार के घर जब तक भोजन करता ही था, पर सुनार भी जात-पाँत का भेदभाव भूलकर उसके घर अकसर खाना खा लेता था । सुनार की दोस्ती के बाद लुहार के घर में भी अच्छी तरह सफाई रहने लगी थी । सुनार स्वभावतः लालची होते हैं । वह जब भी लुहार के घर जाता, कुछ न-कुछ चीज बिना माँगे उठा लाता - कभी काँटा कढ़ना, कभी चिमटा, कभी कुडची, कभी संडासी, पली, पलटा, जर, हथौड़ी इत्यादि । मित्र से क्या दुराव । सुनार तो खुश होता ही था । पर लुहार भी खुश हो जाता था । एक दिन स्वयं लुहार ने आगे चलकर दोस्त को अच्छा सफीट ऐरण घडकर दिया । तब पहली बार लुहारी के मन में वह बात अखरी । पुरानी सारी चीजें एकएक करके याद आने लगीं । मित्रता के नाते इतनी चीजें मुफ्त चली गई तो कोई बात नहीं । लेकिन मित्रता तो दोनों ओर है ! क्या सुनार अपने घर से मित्र को इस तरह कुछ लाने दे सकता है ? उसने लुहार को रात भर अच्छी तरह समझाया तो आखिर उसकी समझ में आ गया । सुनार कुछ दिन से एक सेठानी के लिए सोने की हँसुली घड़ रहा था । शायद कल तक संपूर्ण हो जाय । उसे पूरा विश्वास था कि जब सुनार उसके यहाँ से बीसियों चीजें ले गया है तो हँसुली के लिए मना थोड़े ही करेगा । मित्रो के बीच सस्ता - महँगा कुछ भी बखत नही रखता ।

सो दूसरे दिन लुहार जब सुनार के घर पहुँचा तो सचमुच हँसुली तैयार थी । मित्र

बडे चाव से उजाल रहा था । भोजन करने के बाद हँसुली हाथ में लेकर उसे अच्छी तरह देखने लगा । लुहारी का रूप सौ गुना निखर जाएगा । जवान दीखने लगेगी । लेकिन जाते समय जब मित्र हँसुली बिना लौटाये ही रवाना हुआ तो सुनार ने मुस्कराते पूछा, 'इसे कहाँ ले जा रहे हो ?' लुहार ने सहज भाव से उत्तर दिया, 'तुम्हारी भाभी के लिए । बहुत खुश होगी । सुनार का मुँह उतर गया । हकलाते बोला, 'इसकी कीमत जानते हो कितनी है ?'

लुहार अब भी बात का सार नहीं समझा । अबोध की नाई जवाब दिया, 'मुझे कीमत जानकर करना ही क्या है ? मित्रता के बीच कीमत नहीं आँकी जाती ! भावना आँकी जाती है । हैसियत देखी जाती है । तुम मेरे यहाँ से कितनी चीजें लाये, मैंने एक के लिए भी मना किया ? उलटे इस हँसुली से पचास गुना ज्यादा वजन का तुम्हारे खास काम का ऐरण मैंने अपनी मरजी से बनाकर दिया !'

सुनार ने सोचा कि मित्र मजाक कर रहा है । लेकिन मजाक वजाक करने की तो उसे आदत ही नहीं है । जरूर लुहारी ने कुछ-न-कुछ पाटी पढ़ाई है । अब तो साफ बात करना ही उचित है । उसने मुस्कराने की चेष्टा करते कहा, 'एक ऐरण की बात खूब कहीं । तेरा सारा घर भी बीक जाय तो उस हँसुली का मोल नहीं चुक सकता ।'

लुहार को और कोई बात नहीं सूझी तो बडी गंभीरता से पूछा, 'फिर अपनी दोस्ती का क्या होगा ?'

'दोस्ती गई भाड़ में । आज पता चला कि मूरख की दोस्ती जी का जंजाल कैसे बनती है ?'

लुहार से आगे कुछ भी सुनना बर्दाश्त नही हुआ तो सोने की हँसुली झट से फेंकने पश्चात्, दोनों कानों में अँगुलियाँ डालकर भुनभुनता हुआ वहाँ से रवाना हो गया ।

- सुनार की नन्हीं हथौड़ी की सौ ठक-ठक से लुहार के हथौड़े का एक बार भी ज्यादा भारी पडता है ।
- गरीब व्यक्ति बलवान का सपने में भी सामना नहीं कर सकता ।

➢ **अक्कल तो आपकी ही अतडी आवै ।**

समय पर अक्ल तो अपनी ही काम आती है ।

संदर्भ कथा : एक दिन किसी बात के सिलसिले में मंत्री ने राजा से कह दिया कि अक्ल तो अपनी ही काम देती है । इन बात की परीक्षा लेने के लिए राजा ने मन्त्री को नगर के बाहर के ऊँचे बुर्ज में बन्द कर दिया और कह दिया कि तुम अपनी अक्ल के बल पर ही बुर्ज से निकलना ।

बुर्ज में केवल एक छोटा सा झरोखा था । मंत्री ने उसमें से झांक कर देखा तो उसे बुर्ज के पास से ऊँटों की एक कतार गुजरती हई दिखलाई पडी । उसने कतार के मालिक को पुकार कर पास बुलाया और उससे कहा कि तुम एक लम्बी और मजबूत रस्सी यहां रख दो, उसके सिरे पर एक पतली रस्सी बांध दो तथा पतली रस्सी के साथ

कपडे के एक टुकडे को बांध कर उस पर कुछ चीनी भिगो कर छीडक दो । कतार का मालिक मन्त्री को मानता था । इसलिए उसने मन्त्री के कहे अनुसार कर दिया और अपनी कतार को लेकर आगे बढ गया ।

थोडी ही देर में बहुत सारी चींटियाँ कपडे पर लगी चीनी पर जुट गई और कपडे को खींचती हुई बुर्ज की दीवार पर चढने लगीं । कपडे के पहले पतली रस्सी और फिर मोटी रस्सी भी उपर खिसकने लगी । अन्त में रस्सी बुर्ज के उपर पहुँच गई ॥ मन्त्री उसी रस्सी को बुर्ज की दीवार से बाँध कर उसके सहारे नीचे उतर आया, और उसने राजा के सामने यह सिद्ध कर दिखाया कि अक्कल अपनी ही काम आती है ।

➢ **अल्ला दिया तार-तार खुदा ले गया सोड उतार ।**

अल्लाह ताला ने थोडा थोडा करके दिया और खुदा ताला एक साथ ही सारा ले गया । (राजस्थानी)

खुदा देता है तो छप्पर फाड के देता है और लेता है तो थप्पड मार के लेता है । (गुजराती)

सन्दर्भ कथा : एक धुनिर्यां जाडे के दिनों में रजाईयाँ भरने का काम करता था । उसके पास बहुतेरी रजाईयाँ रूई भरने के लिए आतीं और वह प्रत्येक रजाई में से थोड़ी-थोड़ी रूई चुराकर जमा करता जाता । जब पर्याप्त रूई एकत्र हो गई तो उसने उस चुराई हुई रूई से अपने लिए एक रजाई भरी और रात को उसे ओढ कर खूब आराम से सो गया । सबेरे उठकर वह शौचादि के लिए गया तो पीछे से कोई उचक्का उसकी रजाई को उठा के ले गया । जब वह लौटा तो रजाई गायब थी । उस पर उसके मुँह से निकल पडा, ''अल्ला दिया तार-तार, खुदा लेग्या सोड उतार ।''

➢ **कडवी वेल की कडवी तूमड़ी अड़सठ तीरथ न्हाई ।**

गंगा न्हाई गोमती न्हाई, मिट्टी नहीं कड़वाई ॥ (राजस्थानी)

कागडो गमे तेटलुं गंगामां न्हाय तोय काळो ने काळो । (गुजराती)

तूंबे के कडवे फल से बनी 'तूमडी' को तीर्थो के जल में स्नान कराने से उसकी कटुता नहीं जाती ।

तीर्थों के जल में शारीरिक स्नान करने मात्र से मन का कलुष नहीं धुलता ।

संदर्भ-कथा : महाभारत का युद्ध समाप्त होने के बाद जब पाण्डव तीर्थों के स्नान हेतु जाने लगे तो उन्होंने भगवान कृष्ण से भी साथ चलने के लिए कहा । कृष्ण ने उनसे कहा कि मैं तो नहीं चल सकता, लेकिन मेरी ओर से इस तूंबी को स्नान करवा लाना । यों कह कर उन्होंने एक तूंबी उन्हें दे दी । पांण्डवों ने सभी तीर्थों में स्नान किया और साथ ही वे तूंबी को भी स्नान कराना नहीं मूले । जब वे स्नान करके लौटे तो भगवान कृष्ण ने सब को उस तूंबी का एक एक टुकडा प्रसाद-स्वरूप दिया । लेकिन सभी ने उन्हें चख कर कहा कि भगवान, यह तो बहुत कडवी है । इस पर भगवान

कृष्ण ने पूछा कि क्या इतने तीर्थों के पवित्र जल में स्नान करने के बाद भी इसकी कडुआहट नहीं गई ? उनके कहने का तात्पर्य यही था कि मन की पवित्रता के बिना केवल शारीरिक स्नान से कुछ नहीं होता ।

–अडसठ तीरथ न्हाय तूमडी खारी ।

➢ **करंता सो भोगंता, खोदंता सो पडता । (राजस्थानी)**

जो जैसा करता है, उसे वैसा ही फल भोगना पडता है । जो दूसरों के लिए खाई खोदता है, वह स्वयं ही उसमें गिरता है ।

(१) जैसी करनी वैसी भरनी । (२) जेवुं वावे तेवुं लणे । (३) खाडो खोदे ते पडे । (४) जेवुं करशे तेवुं भरशे । (गुजराती)

संन्दर्भ-कथा : बादशाह का वजीर वेश बदले नगर में घूम रहा था कि उसने एक लडके को गड्ढा खोदते देखा । वजीर ने उससे गड्ढा खोदने का कारण पूछा तो लडका बोला – इससे तुम्हें क्या प्रयोजन है ? जो करेगा सो भरेगा, जो खोदेगा सो पडेगा ।

वजीर को वह लडका होनहार दिखलाई पडा । अतः वह उसे अपने यहाँ ले आया और उसे पढाने-लिखाने लगा । स्वयं वजीर को भी एक उतना ही बडा लडका था, लेकिन वह उस लडके की तुलना में मन्द-बुद्धि था । इससे वजीर को ईर्ष्या हो गई और उसने उस लडके को मरवा देने का निश्चय कर लिया । वजीर ने एक कसाई के घर जाकर कहा कि थोडी ही देर में तुम्हारे घर एक लडके को भेजूंगा सो उसे आते ही मार डालना । घर लौट कर वजीर ने उस लडके को एक रूपया देकर उस कसाई के यहाँ से मांस लाने के लिए भेजा । जब वह जा रहा था तो उसे राह में वजीर का लडका मिला जो अन्य लडकों के साथ खेल रहा था और सात बाजियां हार चुका था । उसने अपने सहपाठी को अपने पास बुला कर कहा कि तुम मेरी जगह खेलो, मांस मैं ला देता हूं । वजीर का लडका मांस लेने के लिए कसाई दे घर पहुँचा और कसाई ने उसे तुरंत मार डाला । बाद में जब वजीर को इस घटना का पता चला तो उसके मुँह से हठात् निकल पड़ा

– करंता सो भोगंता, खोदंता सो पडंता ।

– करै सो भरे, खोदे सो पडै ।

➢ **करम में लिख्या कंकर तो के करै स्योसंकर ।**

यदि स्वयं के भाग्य ही फूटे हुए हों तो भगवान शंकर भी क्या करें । (राजस्थानी)

नसीबमां डोळियुं तो घी क्यांथी होय ? (गुजराती)

सन्दर्भ-कथा : एक बूढा और उसकी बूढिया जंगल से लकडियां लाकर शहर में बेचते और अपने पेट पालते थे । एक दिन जिस रास्ते से वे लकडियों के भार लेकर जा रहे थे, उसी रास्ते से शिव-पार्वती भी गुजर रहे थे । उन दोनों की दशा देखकर

पार्वती को बडी दया आई । उन्होंने शिवजी से कहा कि आप इन्हें धन दीजिए । शिवजी ने उत्तर दिया कि इनके भाग्य में धन लिखा ही नहीं है तो मैं कैसे दूं ? लेकिन पार्वती नहीं मानी तो शिवजी ने रूपयों से भरी एक थैली उनकी राह में डाल दी ।

उधर उन दोनों ने विचार किया कि बूढे तो हो गये लेकिन यदि अन्धे भी हो जाएँ तो कैसे चल पाएँगे । इस बात का तजुरबा करने के लिए वे दोनों अंधे-अंधी बन कर चले और रूपयों की थैली को उलांघ कर निकल गये । इस पर शिवजी ने पार्वती से कहा कि देख लो, रूपयों की थैली भर कर इनके आगे डाल दी तो भी ये उसे उठा नहीं पाये ।

➢ **दगो कौई को सगो नईं । (राजस्थानी)**
दगो कोईनो सगो नहीं । (गुजराती)
दगा किसी का सगा नहीं ।

सन्दर्भ कथा – एक पंडित नित्य राजा को कथा सुनाने जाया करता था । राजा ने पंडित से कहा कि कथा सुनने के लिए मेरे पास अधिक समय नहीं रहता, इसलिए आप मुझे सार रूप में ही कथा सुना दिया करें । पंडितजी सार रूप में दो बातें कह दिया करते – दगा किसी का सगा नहीं; करंता सो भोगंता । राजा उसे सोने की एक मोहर दे दिया करता । यह देखकर राजा के नाई को बडी डाह हुई । उसने पंडित का पत्ता काटने की युक्ति सोची और अगले ही दिन उसने पंडित की भर्त्सना करते हुए कहा कि तुम काई के पंडित हो ? राजा मांस खाता है, शराब पीता है और तुम उसके मुँह में मुँह दिये रहते हो ! जब राजा तुमसे बात करता हैं तो उसके मुँह की हवा तुम्हारे मुँह में जाती है, जिससे तुम्हारा भी धर्म भ्रष्ट होता है । इसलिए कल से मुँह पर पट्टी बांध कर आया करो । पंडित को राजनाई की बात उपयुक्त लगी और उनसे हाँ भर ली । उधर नाई ने राजा से कहा कि महाराज ! अपने यह कैसा पंडित रख रखा है ? यह तो कहता है कि राजा के मुँह से बडी दुर्गन्ध आती है, इसलिए कल से मुँह पर पट्टी बांध कर आया करूंगा । यह बात राजा को बडी बुरी लगी और उसने पंडित को दण्ड देने का निश्चय कर लिया ।

अगले दिन पंडित अपने मुँह पर पट्टी बांध कर आया और कथा सुना कर जाने लगा तो राजाने उसे एक की बजाय दो मोहरें दी और साथ उसे एक चिठ्ठी भी दी कि यह चिठ्ठी अभी कोतवाली जाकर कोतवाल को दे देना । पंडित बाहर निकला तो दरवाजे के बाहर ही उसे नाई मिला । उसने एक मोहर नाई को दे दी और उससे कहा कि यह चिठ्ठी तुम कोतवाल को दे आओ । नाई खुश हो गया और चिठ्ठी लेकर कोतवाली गया । कोतवाल ने चिठ्ठी पढ़ी और नाई को पकड कर झट से उनकी नाक काट ली, क्योंकि चिठ्ठी में राजा ने कोतवाल के नाम यही आदेश लिखा था कि चिठ्ठी लाने वाले की नाक तुरन्त काट ली जाए । इस प्रकार नाई को दगा करने का फल मिल गया ।

– दगा किसी का सगा नहीं, कर देखो रे भाई ।

चिठ्ठी उतरी बामण उपर, नाक कटायो नाई ॥
– दगो करयो बणिये की जोय, पूत खसम नै लीनी रोय ।

➢ **नीत गैल बरकत होवै । (राजस्थानी)**
जेवी दानत तेवी बरकत । (गुजराती)
नियत के अनुसार ही बरकत होती है ।

सन्दर्भ-कथा : (१) एक राजा शिकार खेलता हुआ जंगल में भटक गया । संगी-साथी सब छूट गये । प्यास के मारे उसका दम घुटने लगा । कुछ दूरी पर उसे एक झोंपडी दिखलाई तो राजा वहाँ गया । वहाँ एक बुढिया थी । उसने अपने खेतमें से एक गन्ना तोडा और गन्ने के रस से कटोरा भर कर राजा को दिया । राजा को वह अमृत जैसा स्वादिष्ट लगा । वह तृप्त हो गया । लेकिन राजधानी में पहुँच कर उसने गन्ने की खेती पर भारी कर लगा दिया ।

संयोग से दूसरी बार भी राजा भटक कर उसी बुढिया के पास पहुँचा । बुढिया ने पांच-सात गन्नों का रस निकाला तो कटोरा भरा । लेकिन राजा को वह पहले जैसा स्वादिष्ट नहीं लगा । उसने बुढिया से पूछा कि पिछली बार तो एक ही गन्ने के रस से प्याला भर गया था एवं वह स्वादिष्ट भी बहुत था । लेकिन इस बार गन्नों में न तो उतना रस है और न मिठास, इसका क्या कारण है ? बुढिया ने उत्तर दिया कि यहाँ के राजा की नियत खराब हो गई है, जिससे गन्ने के रस में भी अन्तर आ गया है । राजा का सिर लज्जा से झुक गया ।

नोंध : इसी अन्तर्गत गुजराती में कवि कलापीनी ग्राम्यमाता खंडकाव्य में ''दया हीन थयो नृप'' नामक काव्य भी है ।

उसी कहावत के साथ राजस्थान में एक दूसरी भी सन्दर्भ कथा जुडी है वो देखिए:

सन्दर्भ कथा : (२) एक किसान के दो बेटे थे, लेकिन दोनों ही अकर्मण्य । किसान के मरने के बाद उनके घर में बहुत तंगी आ गई । तब लडकों की माँ ने अपने बेटों से कहा कि, अमुक सेठ तुम्हारे बाप का दोस्त है । तुम उसके पास जाकर कुछ रूपये उधार ले आओ और खेती करो । दोनों लडके गये और उनका परिचय पाकर सेठ ने उन्हें सौ रुपये दिलवा दिये । दोनों को बडी आसानी से रूपये मिल गये थे । अतः उन्होंने सोचा कि अब तो कई दिन गुलछर्रे उडाएँगे । रास्ते में आते समय वे एक तालाब पर ठहरे और तालाब में नहाने घुसे तो एक चील रूपयों की 'न्योळी' को उठाके ले गई । दोनों भाई फिर सेठ के पास गये तो सेठने उन्हें फिर सौ रूपये दिला दिये । इस बार वे नहाने के लिए तालाब में घुसे तो एक भैंस रुपयों की पोटली पर गोबर कर गई । रूपयों की थैली नहीं मिली तो वे दोनों फिर सेठ के पास गये और सेठ ने तीसरी बार भी उन्हें रूपये दे दिये ।

सेठ के व्यवहार का उन पर बडा असर हुआ और उन्होंने गुलछर्रे उडाने की बजाय मेहनत से खेती करने का निश्चय कर लिया । इस बार उन्होंने एक सेर बाजरे का आटा

मोल लिया और उसी तालाब पर पहुँच कर रोटी बनाने की सोचने लगे । एक भाई ने आग जलाने की इच्छा से भैंस वाले गोबर को उठाया तो उसे रूपयों की पोटली मिल गई । दूसरा भाई लकडियों की तलाश में एक खेजडी के पास पहुँचा तो उसे वृक्ष की डाल से एक रस्सी लटकती दिखलाई दी । वह रूपयों वाली 'न्योळी' की रस्सी थी और उसको खींचते ही 'न्योळी' नीचे आ गिरी । अब उनकी समझ में यह बात आ गई कि पहले हमारी नियत खराब थी, इसलिए रूपये चल गये और अब हमारी नियत साफ है तो गये हुए रूपये भी बापस मिल गये ।

➢ **पारखी हि परख करै । (राजस्थानी)**
हीरानी परख झवेरी ज करे । (गुजराती)
पारखी ही अच्छे-बुरे या खरे-खोटे की परख कर सकता है ।

सन्दर्भ-कथा : एक बार किसी बादशाह के दरबार में एक आलिम आया । उसने एक तीर चलाकर मोर का चित्र बना दिया । तो बादशाह ने खुश होकर उसके लिए एक सेर आटा और एक पैसे भर घी रोज का निश्चित कर दिया । दूसरा हुनर दिखलाने पर बादशाह ने उसीके पांचो कपडे बनवा दिये । और तीसरा हुनर दिखाने पर बादशाह ने एक चारपाई का प्रबन्ध करवा दिया । आलिम को बादशाह की गुणग्राहकता पर बडा अफसोस हुआ ।

जब बादशाह ने उससे पूछा कि तुम अपने सारे हुनर दिखला चुके हो या कुछ बाकी है ? तो आलिम ने कहा कि और तो सब दिखा चुका हूं, एक हुनर बाकी है । और वह यह कि मैं किसी भी आदमी को देखकर यह बतला सकता हूं कि वह अपने माँ-बाप की असली संतान है या वर्णशंकर । इस पर बादशाह ने उससे कहा कि कल हमारे सब दरबारियों की पहचान करना । आलिम ने हाँ भर ली । सारे दरबारी उसकी करामत देख चुके थे । अतः सभी रात को उसके यहाँ पहुँचे और उसे मुँह माँगी राशि देकर इस बात के लिये राजी कर लिया कि वह किसी को वर्णसंकर नहीं बतलायेगा । अगले दिन दरबार जुडा तो आलिम ने बादशाह से कहा कि पहले आप से ही प्रारम्भ करता हूं और घोषणा करता हूं कि आप एक भठियारे के अंश है । विश्वास न हो तो अपनी माताजी से जाकर पूछ लें, क्योंकि इसका पता माँ को ही होता है -

मन की बात मन ही जाणै, काया जाणै आपदा ।
गीता ग्रन्थ कृष्ण जाणै, माता जाणै सो पिता ।।

इस पर बादशाह महल में गया और उसकी माँ ने प्रकारान्तर से यह बात स्वीकार कर ली । तब उसने आलिम को बुलाया और पूछा कि तुम्हें इस बात का पता कैसे चला ? आलिम ने उत्तर दिया कि मैंने उनका पुरस्कार देखकर ही अनुमान लगाया । सुनकर बादशाह शर्मिन्दा हो गया ।

➢ **बाणिये की मूंछ ऊँची तो ऊँची अर नीची तो नीची ।**
(राजस्थानी)

वाणियानी मूंछ नीची । (गुजराती)

सन्दर्भ-कथा : एक ठाकुर के पास कुछ रूपये इकठ्ठे हो गये तो वह बडी ऐंठ जताने लगा । एक दिन वह पास के कस्बे में कुछ सामान खरीदने के लिए अपने घोडे पर सवार होकर एक बनिये की दुकान पर गया तो बनिये ने भी अपनी मोंछो पर बल लगाया और बडे रोब के साथ ठाकुर से बात की । इस पर ठाकुर जल गया और उसके मना करने पर भी जब बनिया नहीं माना तो उसने बनिये से कहा कि आज से हमारा और तुम्हारा बैर समझो और उसका निपटारा अमुक दिन होगा । बनिये ने ठाकुर की चुनौती स्वीकार कर ली और ठाकुर अपने गाँव चला गया । घर जाकर ठाकुर ने लडाई करने की तैयारी शुरु कर दी । उसने अपने सगे सम्बन्धियों को भी बुला लिया और कई वैतनिक सैनिक इकठ्ठे कर लिए । ठाकुर उन सब को खिलाता-पिलाता । अन्त में लडाई का निश्चित दिन भी आ गया । ठाकुर अपने दल-बल सहित बनिये की दुकान पर पहुँचा और उसने बनिये को ललकारा कि आ जाओ मैदान मैं, लेकिन बनिये ने कोई तैयारी नहीं की थी । उसने ठाकुर से कहा, ठाकुर साब आपकी और मेरी कैसी लडाई ? आपको मेरी मोंछों का बल अखरता है तो मैं अभी खोल देता हूं । यों कह कर बनिये ने अपनी मोंछों के बल खोल दिये और झगडा समाप्त हो गया । ठाकुर ने लडाई की तैयारी में अपना सारा धन बर्बाद किया था और वह पछताता हुआ अपने आदमियों के साथ लौट गया ।

➢ **भगवान दैवे जब छप्पर फाड कर देवै । (राजस्थानी)**

इश्वर देना चाहे तो छप्पर फाड के दे देता है । जब कहीं से भी प्राप्ति की आशा न हो तो ईश्वर चाहे जिस रूप में दे देता है ।

सन्दर्भ कथा : एक निर्धन ब्राह्मण को भगवान का बडा भरोसा था । ब्राह्मणी जब भी उससे कमा कर लाने को कहती, वह यही उत्तर देता कि भगवान को देना होगा तो वह छप्पर फाड कर ही दे देगा । एक दिन जब वह किसी गाँव जा रहा था तो रास्ते में एक पीपल के वृक्ष के नीचे ठहरा । वहाँ उसे कोई चमकती वस्तु दिखलाई पडी तो उसने उस स्थान को खोदा । खोदने पर हीरे-मोतियों से भरा एक कलश निकला । लेकिन ब्राह्मण ने कलश को वहीं गाड दिया और अपने घर आ गया । रात को जब उसने ब्राह्मणी को यह घटना सुनाई तो ब्राह्मणी ने कहा कि आप को वह कलश ले आना चाहिए था । ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि भगवान को देना होगा तो वह छप्पर फाड कर ही दे देगा ।

ब्राह्मण के झोंपडे के बाहर खडे चोरों ने यह संवाद सुना तो ये तत्काल ही उस पीपल के नीचे पहुँचे । लेकिन कलश में तो साँप और बिच्छू भरे थे । ब्राह्मण की दुष्टता पर उन्हें बडा क्रोध आया और उन्होंने यह निश्चय किया कि उस दुष्ट ब्राह्मण को छप्पर फाड कर ही यह धन देना चाहिए । वे कलश उठा लाये और उन्होंने ब्राह्मण का छप्पर उपर से फाड कर कलश को ओंधा दिया । लेकिन कलश को ओंधाते ही सारे सांप-

बिच्छू हीरे-मोतियों में बदल गये !

➢ **माया मेरा तीन नाम, परसी, परसो, परसराम । (राजस्थानी)**
नाणां वगरनो नाथियो, नाणे नाथालाल । (गुजराती)

सम्पति के अनुसार मुनष्य के नाम में भी परिवर्तन होता रहता है । गरीब को परसी जैसे लघुता सूचक नाम से पुकारते हैं, कुछ सम्पति अर्जित करने पर उसे परसो कहने लगते हैं और विशेष सम्पतिशाली होने पर उसी आदमी को परसीराम कहा जाने लगता है ।

सन्दर्भ कथा : एक शेठ को जगराम नाम का एक ही लडका था । घर में लक्ष्मी का ठाठ-बाट था और जगराम की शादी भी सम्पन्न घर में हुई थी । लेकिन अपने पिता के मरने पर जगराम ने कुसंगति में पड कर सारी सम्पत्ति बर्बाद कर डाली और घर में फाके पडने लगे । उसकी स्त्री अपने पीहर चली गई । तंग आकर जगराम भी मजदूरी की तलाश में निकला और भटकते-भटकते अपनी ससुराल पहुँच गया । इस फटे हाल में ससुराल वालों ने भी उसे नहीं पहचाना और उसे नोकर रख लिया । वह पानी लाने, लकडी झोंकने आदि का काम करने लगा और उसका नाम झोकिया पड गया ।

एक दिन जगराम की स्त्री अपनी माँ से कह रही थी कि तुम्हारे दामाद ने और सब कुछ तो बर्बाद कर डाला, लेकिन मेरी सास ने मुँह दिखलाई में मुझे जो चार बहुमूल्य लाल दिये थे, वे उसके हाथ नहीं लगे, क्योंकि उनको मैंने अमुक स्थान पर छिपा दिया था । 'झोकिया' ने उन दोनों की बात सुन ली । वह नौकरी छोडकर अपने घर आ गया । उसने चारों लाल निकाले और उन्हें बेचकर पुनः कारोबार प्रारम्भ किया तथा शीघ्र ही पहले की तरह मालदार बन गया । अब वह अपनी स्त्री को लेने ससुराल पहुँचा तो ससुराल वालों ने उसकी खूब खातिर की । इस पर वह बोला -

माया तूं है सुलखणी, नाम होयो जगराम ।
हण ही आंगण फिर गयो, घरयो झोकियो नाम ॥

➢ **राई का भाव राते गया । (राजस्थानी)**
राईना भाव राते गया । (गुजराती)
राई के भाव रात में ही चले गये ।

संदर्भ कथा : एक बनिये के घर में रात को चोर घुसा । बनिये ने उसे देख लिया लेकिन उसे पकडे कौन ? तब उसने अपनी स्त्री से पूछा कि आज मैं दुकान से राई लाया था, उसे बहुत सुरक्षित रखना । राई की बडी मांग नीकली है कल सोने के

भाव बिकेगी । बनिये की स्त्री ने उत्तर दिया कि मुझे इस बात का क्या पता था ? मैंने तो सारी राई एक घडे में भर कर रसोई में रख दी है, सुबह ही उसे बहुत संभाल कर रख दूंगी । चोर ने लुपे-छिपे दोनों का संवाद सुना तो उसने सोचा कि और वस्तुओं को ढूंढने की बजाय इस राई के घडे को ले चलना ही सबसे अधिक लाभप्रद रहेगा । इसलिए वह राई के घडे को उठा कर ले गया और दूसरे दिन उसे बेचने के लिए बाजार में गया । लेकिन बाजार में तो राई के भाव में कोई वृद्धि नहीं हुई थी । अन्त में वह घडा लेकर उसी बनिये की दुकान पर पहुँचा । बनिये ने उसे पहचान लिया और बोला-

बखत बखत को मोल है, बाण्यो अकल उपाई ।
राई का भाव राते गया, अब टक्कै की सेर ढाई ॥

➢ **संपत में लिछमी को बासो । (राजस्थानी)**
संप त्यां जंप (गुजराती)
एकता में लक्ष्मी का निवास है ।

सन्दर्भ-कथा : (१) एक सेठ को स्वप्न में लक्ष्मीजी ने दर्शन दिये और कहा कि अब मैं तुम्हारे यहाँ से जा रही हूं । सेठ ने लक्ष्मीजी से रहने के लिए बडी विनय की, लेकिन लक्ष्मीजी ने कहा कि मैं तो नहीं रह सकती, तुम्हें और कोई चीज मांगनी हो तो मांग सकते हो । तब शेठ ने कहा कि मेरे घर में सदा 'सम्पत' (एकता, पारस्परिक मेल) बनी रहे । इस पर लक्ष्मीजी बोली कि जहाँ आपस में मेल रहता है, वहीं मैं रहती हूं इसलिये मुझे भी अब यहाँ रहना ही होगा ।

इसी सिलसिले में दूसरी भी एक सन्दर्भ कथा है वह भी देखिए :

सन्दर्भ-कथा : (२) एक सेठ के घर में भूख ने डेरा डाल दिया, अन्न के लाले पड गये तो सेठ कभी घरवालों को लेकर अन्यत्र चला । रास्ते में जंगल पडा तो सोचा कि चलते-चलते लकडियाँ काट कर ले चलें तथा कुछ रस्सियां बट ले तो पास के शहर में उन्हें बेच कर कुछ पैसे प्राप्त कर लेंगे । सेठ के कहते ही सब लोग काम में जुट गये । वहीं वृक्ष पर एक भूत रहता था । उनको इस प्रकार जुटे देखकर वह डर गया और उसने आकर सेठ से पूछा कि तुम लोग क्या करना चाहते हो ? सेठने उत्तर दिया कि इन रस्सियों से तुझे बांध कर ले जाएँगे । भूत डर गया और बोला कि तुम ऐसा न करो, मैं तुम्हें काफी धन दे दूंगा । सेठ के हां भरने पर भूत ने उसे प्रचुर धन दे दिया और सेठ उस द्रव्य को लेकर सपरिवार अपने घर लौट आया ।

उसके पडोसी ने सेठ से पूछा तो सेठ ने सारी घटना उसे बतला दी । अब पडोसी अपने सब घर वालों को लेकर उसी स्थान पर पहुँचा । उसने सबको लकडियाँ तोडने और रस्सियाँ बटने के लिए कहा, लेकिन किसी ने कहा मैं थक गया हूं, किसी ने कहा मुझे नींद आ रही है, किसी ने कहा मुझे भूख लगी है । उन सब में जरा भी एकता नहीं थी । उनको देखकर भूत नीचे उतरा और उसने मुखिया से पूछा कि तुम क्या करना चाहते हो ? उसने कहा कि हम तुझे बांध कर ले जायेंगे । इस पर भूत बोला कि तुम अपने घरवालों को ही एकता के सूत्र में नहीं बांध पा रहे हो तो मुझे क्या बांधोगे ?

यहाँ से अविलम्ब भाग जाओ, नहीं तो सबको मार डालूंगा । इसी पर वह सबको साथ लेकर वहाँ से उसी समय भाग आया ।

➢ **हर कठै अर मने कठै । (राजस्थानी)**
मन मंदिरमां ने जीव जूतियांमां । (गुजराती)
ईश्वर कहीं और मन कहीं ।
हाथ में तो माला फिरती रहे एवं मन कहीं और रमता रहे ।

सन्दर्भ कथा : एक मौलवी अपना मुसल्ला बिछा कर नमाज पढ रहा था कि एक कामातुर नायिका अपने यार के पास जाती हुई उधर से गुजरी । वह अपनी धुन में जा रही थी । उसने मौलवी या उसके मुसल्ले को नहीं देखा और वह मुसल्ले पर पैर रखती हुई चली गई । इस पर मौलवी को बडा गुस्सा आया और उसने सोचा कि लौटते वक्त उसकी खबर लूंगा । बहुत देर बाद जब वह लौटी तो मौलवी उस पर बरस पडा और उसे पीटने के लिये उतारू हो गया । इस पर युवती ने कहा –

नर रांची जान्यो नहीं, तै करु लख्यो सुजान ।
पढि कुरान बोरो भयो, नहीं रांच्यो रहमान ॥

अर्थात्, हे सुजान मैं तो मनुष्य में अनुरक्त थी, इसलिए मेरा ध्यान तुम्हारे मुसल्ले की ओर नहीं गया । लेकिन तुम तो खुदा से लौ लगाये थे, फिर भला तुमने कैसे जाना कि मेरा पैर चादर पर पड गया है ? तुम तो बस कुरान पढ कर घमंड में भूल गये हो, वास्तव में तुम्हारा मन ईश्वर में लगा ही नहीं हैं । उसकी बात सुनकर मौलवी लज्जित हो गया ।

➢ **हांसी में खांसी होजया । (राजस्थानी)**
हसवामांथी खसवुं थवुं । (गुजराती)
हंसी–हंसी में झगडा हो जाता है ।
हांसी में फांसी होजया ।

सन्दर्भ कथा : एक सेठ के घर में बडा घाटा आ गया और रोटियों के भी लाले पड गये । तब उनकी स्त्री ने कहा कि ऐसा कब तक चलेगा, कुछ दिन मेरे पीहर चलकर रहा जाए । उसके कहने पर सेठ अपनी स्त्री एवं इकलौते बालक को लेकर अपनी ससुराल की ओर चल पडा । लेकिन रास्ते में उसकी स्त्री ने सोचा कि अपने दामाद को ऐसी गिरी हालत में देख कर मेरे पीहर वाले क्या कहेंगे । और मेरी भाभियां तो तानों के मारे जीने ही नहीं देगी । यो सोचकर वह पानी पीने के बहाने अपने पति को कुएँ पर ले गई और अवसर पाकर उसे कुएँ में धकेल दिया । फिर वह अपने छोटे बालक को लेकर पीहर चली गई ।

इधर सेठ को किसीने कुएँ में से निकाल दिया और वह एक शहर में जाकर धंधा करने लगा । थोडे ही समय में उसके पास काफी धन हो गया और वह अपनी बहू और बेटे को अपने घर ले आया । बेटा भी अब सयाना हो गया था, अतः उसने उसका

विवाह कर दिया । लेकिन बहू बडी कर्कशा आई । वह सास से नित्य ही झगडती रहती थी । एक दिन सेठ भोजन कर रहा था । सूर्य की धूप उस पर पड रही थी तो उसकी स्त्री ने अपने आँचल से छाया कर दी । यह देख कर सेठ को हंसी आ गई कि एक दिन तो इसने मुझे कुएँ में धकेला था और आज आँचल से छाया कर रही है ।

पुत्रवधू को इस रहस्य का पता लगा तो उसे सास को छकाने का गुरुमंत्र मिल गया । वह बात-बात पर उससे कहने लगी कि तुम तो वही हो न ! जिसने श्वसुरजी को कुएँ में धकेला था ? इससे दुःखी होकर सेठानी उपर के कमरे में चली गई और यहीं फाँसी लगाकर मर गई । थोडी देर बाद सेठ आया और पत्नी की दशा देखकर वह भी फांसी लगाकर मर गया । मां-बाप को मरा देखकर बेटे को बडा दुःख हुआ और उसने भी फांसी लगा ली । अब बहू अकेली क्या करती ? उसने भी उन तीनों का अनुकरण करना ही अच्छा समझा । और इस प्रकार जरा सी हंसी ने चारों की जान ले ली ।

ऐसी ही कई कहावतें राजस्थानी और गुजराती में मिलती-जुलती आती है वो देखें:-

१. अक्कल कोई कै बाप की कोनी । (राजस्थानी)
अक्कल कोईना बापनी नथी होती । (गुजराती)

२. अक्कलमंद नै इसारो घणों । (राजस्थानी)
अक्कलवान ने इशारो काफी । (गुजराती)

३. अणहोणी होगी नहीं, होणी हो सो होय । (राजस्थानी)
थवानुं होय ते थईने ज रहे छे एने कोई टाळी सकतुं नथी । (गुजराती)

४. अद भण्यो धरकां नै खावें । (राजस्थानी)
(१) अधूरो घडो छलकाय घणो । (गुजराती)
(२) खाली चणो वागे घणो । (गुजराती)

५. अपनी करणी पार उतरणी । (राजस्थानी)
(१) जेवी करणी तेवी भरणी । (गुजराती)
(२) जेवुं वावशो तेवुं लणशो । (गुजराती)
(३) जेवुं करशो तेवुं पामशो । (गुजराती)

६. अम्मर दूजे भूत कमावै, आकासी धन आवै आवै । (राजस्थानी)
भाग्यशाळीने भूत रळीने आपे । (गुजराती)

७. अरजन जिसा ही फरजन । (राजस्थानी)
बाप तेवा बेटा । (गुजराती)

८. आंख्यां देखे का पाप है । (राजस्थानी)
आंखे देख्यानुं झेर । (गुजराती)

९. आंगळी पकडतो-पकडतो पूंर्चो पकड लियो । (राजस्थानी)
आंगळी आपतां पांचो पकडवो । (गुजराती)

१०. आप भलो तो जुग भलो । (राजस्थानी)
आप भला तो जग भला । (गुजराती)

११. कठै राजा भोज अर कठै गांगलो तेली ? (राजस्थानी)
क्यां राजा भोज ने क्यां गांगो तेली ? (गुजराती)

१२. पेट में पाप और गउमुखी में जाप । (राजस्थानी)
मुखमां राम अने बगलमां छूरी । (गुजराती)

१३. भगवान सब चोखी करै । (राजस्थानी)
भगवान जे करे ते सारुं ज करे । (गुजराती)

★★★

संदर्भग्रंथ - १

१) लोक - साहित्यनी प्रेमकथाओ - जोरावरसिंह जादव : प्रकाशन अहमदाबाद
२) लोक - साहित्यनी प्रेमकथाओ - जोरावरसिंह जादव : प्रकाशन अहमदाबाद
३) लोक - साहित्यनी प्रेमकथाओ - जोरावरसिंह जादव : प्रकाशन अहमदाबाद
४) लोक - साहित्यनी प्रेमकथाओ - जोरावरसिंह जादव : प्रकाशन अहमदाबाद
५) सौराष्ट्रनी रसधार-झवेरचंद मेघाणी, प्रकाशन - शब्दलोक प्रकाशन, अहमदाबाद, भाग-५
६) बात सयणी चारणी री (हस्तलिखित) अनूप संस्कृत लाईब्रेरी, बीकानेर, ग्रंथाक-६ (५७)
७) श्री किशोरसिंह बारहठ - सौरभ पत्रिका, भाग-१, पृ. ५९
८) श्री किशोरसिंह बाईस्पत्य - चारण खण्ड-१, पृ. १८७
९) श्री किशोरसिंह बाईस्पत्य - चारण खण्ड-१, पृ. २१०
१०) श्री लल्लूभाई देसाई, चौहान कुल कल्पद्रुम, पृ. २२, २३
११) श्री गोविन्द अग्रवाल ने यह लेख वि. सं. १२७३ का बताया है ।
१२) डॉ. दशरथ शर्मा - वरदा वर्ष - ३, अंक - ४, पृ. २
१३) डॉ. दशरथ शर्मा - अर्ली चौहान डाइनेस्टी - पृ. ३२७
१४) श्री क्षत्री वीर भाथीजी महाराज, केशवलाल र. सायलाकर
१५) श्री के. एम. मुंशी - जय सोमनाथ, पृ. ७
१६) श्री के. एम. मुंशी - ग्लोरी देट वाज गुर्जर देश (ए. डी. ५५०-१३००) भाग-१ पृ. १९४
१७) श्री मनोहर शर्मा - मरुभारती, वर्ष - ७, अंक -४, पृ. १४
१८) वरदा - वर्ष - २, अंक-१, पृ. ७५-७६
१९) जेसल जाडेजा अने सती तोरल : धीरसिंह व्होराभाई गोहिल
२०) जसमा ओडण - दासी की दास्तान, विजयदान देथा
२१) मेह-उजली : सोरठी गीत कथाएँ
२२) तेजमल-सजना : लोक साहित्य : धरतीनुं धावण : झवेरचंद मेघाणी
२३) ढोला-मारु रा दूहा : लोक संस्कृति की रूपरेखा : कृष्णदेव उपाध्याय
२४) ढोला-मारु रा दूहा : डॉ. महावीरसिंह गहलौत
२५) ढोला-मारु रा दूहा : कल्लोल कवि, हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास
२६) मेह उजळीनी बारमासी
२७) ओढा-होथलना दूहा : झवेरचंद मेघाणी (सौराष्ट्रनी रसधार भाग-४)
२८) कहावती कथाएँ (राजस्थानी एवं गुजराती)

संदर्भ ग्रंथ - २

१) लोक - साहित्यनी प्रेमकथाओ - जोरावरसिंह जादव : प्रकाशन अहमदाबाद

२) बात सयणी चारणी री (हस्तलिखित) अनूप संस्कृत लाईब्रेरी, बीकानेर, ग्रंथांक-६ (५७)

३) राजस्थान के लोक देवता एवं लोक साहित्य - डॉ. पुष्पा भाटी

४) राजस्थानी कहावत कोश - विजयदान देथा, प्रकाशक : राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर

५) कहावती कथाएँ - विजयदान देथा, प्रकाशक : राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर

६) मेह -उजली की कथा, गुजराती लोकसाहित्य की समालोचना, झवेरचंद मेघाणी अनुवाद - उर्मिला विश्वकर्मा, प्रकाशक : श्री झवेरचंद मेघाणी लोकविद्या संशोधन-भवन अहमदाबाद

७) तेजमल वरणागियो (गुजराती लोक साहित्य माळा मणको-१) संग्राहक : माधव मो. चौधरी

८) ढोला मारु रा दूहा, (६७४ दोहे) : सम्पादक - रामसिंह, सूर्यकरण पारीक एवं नरोत्तमदास स्वामी, प्रकाशक - नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (वि. सं. १९९१)

९) ढोला मारु रा दूहा, (प्रथम ३०६ दोहे) : सम्पादक - शम्भूसिंह 'मनोहर', प्रकाशक - दी स्टुडेन्टस बुक कम्पनी, जयपुर (ई. सन्. १९६५) ।

१०) ढोला मारु रा दोहा, (लघु शोध निबन्ध), कृष्ण बिहारी सहल, प्रकाशक- आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली (ई. सन्. १९६५)

११) ढोला मारु रा दूहा, (आलोचनात्मक शोध प्रबन्ध), लेखक डो. भगवतीलाल शर्मा, प्रकाशक - अर्चना प्रकाशन, अजमेर (ई. सन्. १९७०) ।

१२) ढोला मारवणी री चौपई - वाचक कुशललाभ विरचित (श्री आनन्द काव्य महोदधि के सातवें मौक्तिक में गुजराती लिपि में मुंबई से वि. सं १९८२ में प्रकाशित) ।

१३) ढोला मारु री वात - चारण कवि महादान महडू रचित (परम्परा, त्रैमासिक के भाग २ के अंक ६-७ में ई. सन. १९५८ में प्रकाशित) ।

१४) ढोला मारु रा दूहा - कृष्णदेव उपाध्याय, लोकसंस्कृति की रूपरेखा ।

१५) लेस दूहा द ढोला मारू (फ्रांसीसी भाषा में शोध प्रबन्ध और पाठ निर्धारित ३६० दोहे सटीक) : लेखिका - डॉ. शार्लोत वॉदविल; प्रकाशक - फ्रांस, भारतीय संस्था, पांडिचेरी (ई. सन. १९६२)

अध्याय - ५

अंधविश्वास एवं लोकमान्यताएँ

अनुक्रमणिका

- ☐ लोकविश्वास एवं मान्यताएँ
  - ◆ शकुन और टोने-टोटके
  - ◆ मंत्र-तंत्र जादू-टोने
  - ◆ अन्धविश्वास (राजस्थानी)
  - ◆ पशु-पक्षी मान्यताएँ / कहावतें
- ☐ भडली वाक्य
- ☐ पहेली
  - ◆ पहेली : एक रूपात्मक और सांस्कृतिक परिचय
  - ◆ पहेलियों की तुलना
  - ◆ बुझौनी (पहेली)
- ☐ कहावतें
  - ◆ ऋतुवाक्य
- ☐ खायणां
  - ◆ निर्दंभी खायणां
  - ◆ असंभावना के कारण
  - ◆ अनुभव कथन एवं नीति की बातें
  - ◆ ऊर्मिगीत
  - ◆ लग्नप्रसंग के विलाप सूर
  - ◆ दूरदेशनो सासरवास
  - ◆ मातृस्नेह
  - ◆ भाई-बहन की प्रीति
  - ◆ पुत्रवधू का चित्र
    - ○ खायणां (बहेनने)
    - ○ खायणां (भाईने)
    - ○ खायणां (भाभीने)
    - ○ खायणां (जनेताने)
    - ○ खायणां (पिताने)
    - ○ खायणां (सासरीने)
    - ○ खायणां (संसारनां)
    - ○ खायणां (वहुवारुने)
    - ○ खायणां (शोक्यने)
    - ○ खायणां (जमाईने)

- ☐ कहावतें (राजस्थानी)
- ☐ मुहावरे (राजस्थानी)
- ☐ सामाजिक मान्यताएँ
- ☐ प्रकीर्ण
  - ◆ राजस्थान और गुजरात में प्रचलित लोक-नृत्य
    - ○ घूमर
    - ○ माँच के नृत्य
    - ○ भीलों के नृत्य
    - ○ मोहिली
    - ○ पाली नृत्य
    - ○ भवाई नृत्य
    - ○ गेर नृत्य
    - ○ गुजरात का गरबा नृत्य
- ☐ सन्दर्भ ग्रन्थ - १
- ☐ सन्दर्भ ग्रन्थ - २

लोकविश्वास एवं मान्यताएँ

प्रत्येक समाज की अपनी धार्मिक व सामाजिक आस्थाएँ तथा मान्यताएँ होती हैं । उनके अपने आचार-विचार होते हैं, जो वहाँ की संस्कृति को उजागर करते हैं । राजस्थानी समाज की भी अपनी मान्यताएँ एवं आचार-विचार हैं जिनके आधार पर उसकी अपनी विशेष पहचान बनी हुई है । इन मान्यताओं में शकुन-अपशकुन, पितृपूजा, टोने-टोटके, झाड-फूंक और लोक-विश्वास आदि आते हैं । पांडित्य की चेतना से शून्य, अहंकार से रहित, सहज विश्वासी राजस्थानी लोकसमाज में ये मान्यताएँ व विश्वास आज भी प्रचलित हैं । तार्किकता से दूर यह लोकसमाज वैज्ञानिक युग में भी अपनी मान्यताओं एवं विश्वासों पर कायम हैं । विज्ञान की बढती हुई तेज आंधी तथा उपभोक्तावादी व्यावसायिक सभ्यता व संस्कृति की चकाचौंध भी इन विश्वासों को खण्डित नहीं कर सकी क्योंकि इनकी जडें लोकमानस में गहराई से खची हुई हैं ।

शकुन और टोने-टोटके :

राजस्थान का शकुन-शास्त्र बडा ही दिलचस्प रहा है । इसमें पशु-पक्षी, वनस्पति, प्रकृति, मानव के अंग-प्रत्यंगो के कम्पन आदि का सूक्ष्म अध्ययन कर फलाफल ज्ञान प्राप्त किया जाता है । इन्हें शकुन कहा गया है । शकुन गहन अध्ययन, अनुभव एवं चिन्तन-मनन के विषय हैं । अकाल, सुकाल, अतिवृष्टि, अनावृष्टि महामारियाँ, प्राकृतिक प्रकोप, कार्यसिद्धि, लाभ-हानि, सफलता-असफलता, अच्छे-बुरे आदि परिणाम शकुन के द्वारा निकाले जाते हैं । जैसे अक्षयतृतीया पर हवा के रुख से सुकाल अथवा दुकाल का अनुमान लगाया जाता है । यदि उस दिन चारघडी दिन चढ़ने से पूर्व, दक्षिण पवन चले तो फसलों को हानि व टिड्डी दल के आक्रमणों की आशंका रहती है । उत्तर की हवा शुभ मानी जाती है । मध्याह्न में थाली में पानी भरकर सूर्य के प्रतिबिम्ब को देखकर भी शकुन ज्ञात किये जाते हैं । जिस दिशा में सूर्य लाल दिखे तो उस दिशा में विग्रह होता है । यदि सूर्य नीला-पीला दिखे तो घरती पर बीमारियां फैलती हैं । धवल दिखाई दे तो अनाज अधिक पैदा होता है और प्रजा सुखी रहती है । सूर्य साँवला-सा दिखाई दे तो दुर्भिक्ष (अकाल) पडता है । दीपावली पर कवडिया के शकुन लिये जाते हैं । यदि कवडिया कमल के फूल, घर, वृक्ष पर दिखाई पडे तो शुभ माना जाता है । यदि वह राख, काष्ठ, चमड़ा, सूखे तिनकों के पर दिखाई दे तो अशुभ माना जाता है ।

घर से प्रस्थान करते समय भी शकुन व शुभ मुहूर्त देखा जाता है । यदि घर से निकलते ही रोता व्यक्ति, लकड़िया, कोयला, आटा, दूध, घी, खाली घड़ा, विधवा स्त्री सामने आ जाए तो अशुभ मानते हुए यात्रा स्थगित कर दी जाती है या वापस घर में आकर कुछ समय बिताकर उसके पश्चात् बाहर जाते हैं । उसके विपरीत दहीं, पानी से भरा कलश, सुहागिन, नारियल, पुत्रवती, कँवारी कन्या, हरिजन, गधा सामने आ जाये तो अच्छे शकुन माने जाते हैं ।

कागमाळा के अनुसार भी शकुन ज्ञात किये जाते हैं । यदि कौआ वृक्ष की उपरी शिखा पर घोंसला बनाये तो सुकाल तथा अधबिच डाली पर बनाये तो वर्षा की कमी से फसलें सूखेंगी । छोटी खेजड़ी पर बनाये तो महामारी और सूखे वृक्ष या सूने घर में बनाये तो राज्य में विग्रह होता

है ।

यात्रा के लिये रवाना होते समय यदि बाँयी तरफ उल्लू बोले तो वह सुखाकारी एवं आनन्दवर्धक होता है । यदि दाँयी तरफ बोले तो भयकारक एवं दुःखदायी होता है । इस तरह गाँव में प्रवेश करते ही दाँयी तरफ उल्लू बोले तो शुभ होता है । घर के उपर बोले तो कष्टदायक होता है ।

इस तरह कुत्तों के शकुन के सन्दर्भ में भी लोकमानस यह कहता है कि –

स्वान कान फड़फड़ करे, अथवा बैठो खाट ।
असो देख व चालिये, आगै करै उचाट ॥
कूकर डावो सुर करे, बोले वारो वार ।
सुकन विचारों पंथिया, सीने राज दवार ॥

गाय के शकुन प्रायः शुभ माने जाते हैं किन्तु सांड के शकुन के विषय में यह माना गया है कि बैल बाँये पाँव अथवा बाँये सींग से जमीन खोदता दिखाई पडे तो बहुत लाभकारी होता है तथा दाँये पाँव या दाँये सींग से जमीन खोदता दिखे तो अशुभ होता है ।

घर से बाहर निकलते वक्त यदि दिन में बिल्ली रास्ता काट जाये तो विग्रह होता है किन्तु रात्रि में बिल्ली रास्ता काट जाये तो शुभ होता है । यदि प्रस्थान के वक्त बाँयी तरफ छींक हो तो शुभ है । पीछे की छींक कार्यसिद्धि का संकेत करती है । सन्मुख छींक अशुभ होती है । दो बार छींक हो तो शुभ मानी जाती है ।

शरीर के अंगों के फुरकने (कम्पन) के आधार पर भी शकुन ज्ञात किये जाते हैं । पुरुष की दाँयी आंख की फुरकन शुभ व स्त्री की बाँयी आंख की फुरकन शुभ मानी जाती है । इसके विपरीत यदि पुरुष की बाँयी आंख फुरके तो अशुभ तथा स्त्री की दाँयी आंख फुरके तो अशुभ होती है । स्त्री की बाँयी हथेली खुजलाये तो पैसा आता है व दाँयी खुजलाये तो पैसा खर्च होता है । यदि पगतली में खाज आये तो यात्री योग होता है ।

मौसम, वर्षा, फसल आदि की भविष्यवाणी नक्षत्रों व बादलों की स्थिति के आधार पर भी की जाती है । पहले घडियाँ नहीं थी तब कृषक इन्हीं के सहारे पूर्वानुमान कर लेता था । इस सम्बन्ध में यहाँ कुछ लोकोक्तियाँ व दोहे प्रसिद्ध हैं । जैसे कि :

आसाढ़ सुद नवमी, कै बादल कै बीज ।
कोठ खेर खंखेरकर, राखौ बळद नैं बीज ॥
चैत्र मास को बीजळ होवै, घुर वैसाखा केसू धोवै ।
जेठ मास जो जाई तपुंतो, कुण राखे जळहर बरसंतो ॥

नक्षत्रों के सम्बन्ध में कहा गया है –

(१) श्रावण वद एकादशी, तीन नक्षत्रां ताळ ।
(२) आदरा भरै खादरा ।
(३) कृतिका करे करवरौ, रोहिणी करें सुगाळ ।

वृक्ष में होने वाले परिवर्तन को देखकर भी अकाल-सुकाल का अनुमान किया जा सकता हैं । यदि –

नींबोळी सूखें नींम पर, पडै न नीचै आय ।
अन्न न नीपजै एक कण, काळ पडैगो आय ॥

राजस्थान में सप्तवार, तिथि, नक्षत्र आदि को ध्यान में रखते हुए नया कार्य या नये कार्य के लिये प्रस्थान किया जाता है । बुधवार को घर छोडकर परदेश जाना अशुभ माना गया है । चतुर्थी, अष्टमी, चतुर्दशी और अमावस्या प्रस्थान के लिये अशुभ तिथियाँ हैं । मृगशिश, पुष्य, ज्येष्ठा, अश्विनी और अनुराधा नक्षत्र शुभ समझे जाते हैं ।

गाँव में कुत्तों का रोना व वन में लोमड़ी का रोना भी अशुभ माना गया है ।

मंत्र-तंत्र जादू-टोने

राजस्थान समाज में शकुन की ही तरह कुछ ऐसे लोकविश्वास एवं निजी मान्यताएँ भी प्रचलित हैं, जिनसे यहाँ की अनूठी एवं निराली संस्कृति की पहचान होती हैं । जादू-टोने, मंत्र-तंत्र, विधि-विधान आदि में लोकमानस की आस्था देखी जा सकती है । यहाँ विभिन्न लोक देवी देवताओं एवं पितरों की पूजा उपासना का विधान है । ऐसा माना जाता है कि इनकी पूजा करने से किसी भी प्रकार का संकट नहीं आता तथा परिवार के सदस्य कुशल मंगलपूर्वक रहते हैं । देवी देवताओं की आराधना से भौतिक कष्टों का निवारण होता है तो पितरों की पूजा से वंश की वृद्धि एवं समृद्धि होती है । इसी तरह भोमिया, सतियों के देवरे, थान आदि पर धोक देने से पुत्र-रत्न प्राप्त होता है तथा शारीरिक कष्ट दूर होते हैं ।

आज के वैज्ञानिक युग में विभिन्न बीमारियों, महामारियों का उपचार संभव हो गया है किन्तु फिर भी मध्यकाल से चली आ रही लोकधारणाओं में अभी परिवर्तन नहीं आया है । इसलिये जनमानस जादू-टोने और तंत्र-मंत्र में विश्वास रखता है । तंत्र-मंत्र से वशीकरण, मारण और उच्चाटन आदि कार्य किये जाते हैं । यदि शत्रु को मारना हो तो मंत्रों से मूंठ (उड़द के दाने) फैंकी जाती है जो शत्रु के शरीर में घुस जाती है और वह छटपटाकर मर जाता है । मूंठ से बड़ी से बड़ी शिला भी चूर्ण-चूर्ण हो जाती है । इसी तरह आटे का पूतला बनाकर मंत्रो के साथ पूतले को सुई चुभाई जाती है । इसके पीछे यह मान्यता है कि ऐसा करने से दूर बैठे शत्रु के तन में सुई की चुभन का दर्द होता है । यदि पूतला गाड़ दिया जाय तो शत्रु मर जाता है । मंत्रो से वश में करने की मान्यता भी यहाँ प्रचलित है । इसके लिये उसे मंत्रित खाद्य पदार्थ खिला दिया जाता है या उसके वस्त्रों को मंत्रित कर दिया जाता हैं जिससे वह व्यक्ति वश में हो जाता है ।

मंत्रो से भूत-प्रेत, डाकिनी और पिशाचिनी का भय मिटाया जा सकता है । ओझा, झाडफूँक करके भूत-प्रेत की बाधा दूर करता है । भूत-प्रेतों के प्रभाव का भी विशेष समय होता है । भरी दुपहरी में १२ बजे से ३ बजे तक व रात्रि में १२ से ३ बजे तक सूनसान स्थान, खेजडी आदि के पास से कोई खाद्य पदार्थ, विशिष्ट व्यंजन लेकर नहीं निकलना चाहिए क्योंकि भूत-प्रेत उनके लालच में तन में घुस जाते हैं और फिर उन्हें कष्ट देते हैं ।

साँप व बिच्छू के काटने पर मंत्रो से इलाज किया जाता है । मंत्रों से साँप और बिच्छू का जहर उतर जाता है तथा कुछ ही देर में व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है । इसी तरह आधा सिर का दर्द,

पेट दर्द, पीलिया रोग, आंख का दर्द, एकांतरा ज्वर, पागल (हडकाया) कुत्ता काटने पर मंत्र एवं जंत्र करके ठीक किया जाता है । जंत्र के अन्तर्गत विशिष्ट प्रकार की चित्राकृति बनाकर उसमें अंक, शब्द और मंत्र लिखा जाता है । फिर उसे मंत्रपूत करके चाँदी के तावीज में डालकर या लाल कपडे में बांधकर पहना दिया जाता है । मंत्र की तरह जंत्र भी प्रभावशाली होता है । जंत्र-मंत्र किसी ओझा या सिद्ध पुरुष से प्राप्त किया जाता है ।

राजस्थान में लोग छोटी-मोटी बीमारी का उपचार टोने-टोटके से स्वयं ही कर लेते हैं । बच्चे को बुरी नजर से बचाने के लिये काला दिंठोना (काला टीला) किया जाता है और शेर या सूअर का नाखून गले में पहनाया जाता है । यदि फिर भी नजर लग जाये तो उसका उतारा किया जाता है । रुई की बाती को तेल में भिगोकर उसका एक छोर जलाकर वह बच्चे पर सात बार वारी जाती है । फिर दीवार पर दूसरा छोर चिपका दिया जाता है । जब वह जल जाती है तो उसे जली वर्तिका को जूते से सात बार मारा जाता है । ऐसी मान्यता है कि इससे नजर उतर जाती है । या फिर नजर उतारने के लिये नींबू को चीरकर उसमें सिन्दूर, तेल, राई, कालीमिर्च भर कर उसे सात बार बच्चे पर उतार कर आग में जला दिया जाता है । इसी तरह चार रास्तों के बीच चौराहे पर पडी मिट्टी लाकर उसमें नमक, मिर्च, राई आदि डालकर सात बार उतार कर आग में जला दी जाती है ताकि बुरी नजर उतर जाये । यदि बच्चे को दस्त लगे और सुस्त रहे तो दोपहर बारह बजे व सन्ध्या में पानी से भरा करवाँ (लोटा) उस पर सात बार उतार कर मुख्य द्वार के बाँयी तरफ गिरा दिया जाता है । बच्चे के गले में रेशम का काला धागा भी बांधा जाता है ताकि वह स्वस्थ तथा प्रफुल्लित रहे । और भी ऐसे कई लोक विधि-विधान प्रचलित हैं जिनसे अनिष्ट, अमंगल को दूर किया जाता है ।

तन्त्र : (टोने- टोटके - झाडा आदि) एक जन्त्र - मन्त्र भलाई के लिए किये जाते हैं और दूसरे वैर - विरोध तथा बुराई के लिए होते हैं । इन्हें अभिवार तथा शांति कार्य कहते हैं । भलाई वाले जादू टोनों में भूत निकालने, आधीशीशी या वायवादी और सर्प बिच्छू के झाडे देने, तेजरा, इक्यांतरा आदि ताव (बुखार) को डोरा, कैना, पीलिया, गाय-भैंस के डोरे, बच्चा जीने, बच्चा होने तथा नजर-फिटोडा न लगने, लोरी ढालने आदि मनुष्य हितार्थ कार्य के लिए टोने होते हैं ।

वैर-विरोध वाले जन्त्र-मन्त्रों में अपने किसी दुश्मन पर मूठ मरवाने, पूतले गडवाने, कलेजा निकालने, वश में करने आदि कार्य दूसरों के अहित पहुँचाने के लिए किये-करवाये जाते हैं । इनकी साधना में देवता विशेष, गृह विशेष, भूत-प्रेत-पिशाच आदि की साधना करनी पडती है ।

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि जन मानस में रचे-बसे लोकविश्वास लोक-जीवन के आधार बने हुए हैं । आज के वैज्ञानिक युग में बौद्धिकता, तार्किकता तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास के कारण भले ही इन्हें सन्देह की दृष्टि से देखा जाए, इन्हें अंधविश्वास कहकर बुद्धिजीवी वर्ग भले ही इनका उपहास करे, किन्तु यह तो सत्य है कि इन लोकविश्वासों में लोकमंगल की भावना निहित है जो लोकमानस की सरलता, निश्चलता, संवेदनशीलता एवं आस्था को उजागर करती हैं ।

अन्धविश्वास (राजस्थानी)

कई पूर्वज अपने अनुभवों से कुछ विश्वासों को सही बताते हैं। जो आगे आनेवाली पीढी अपनाती है। उसने सत्यासत्य की खोज किये बिना कई ऐसे विश्वास है जो आज तक माने जाते हैं। इसमें कुछ अन्धविश्वास है।

जैसे किसी कार्य के लिए बाहर निकलते समय बिल्ली रास्ते में आती है तो अपशकुन माना जाता है। किसी भी काम के लिए अगर तीन व्यक्ति साथ निकले तो एक पत्थर हाथ में लेकर निकलते हैं क्योंकि ऐसी मान्यता है कि तीन तिघाडा काम बिघाडा। स्त्री की दाई और पुरुष की बांई आँख फडकना अपशुकन माना जाता है।

हथेली में खुजली आना धन प्राप्ति का प्रतीक, और पैर में खुजली आना यात्रा का प्रतीक माना गया है। किसी भी शुभ कार्य के लिए घर से निकलते समय भरा हुआ घडा और सुहागन स्त्री आती है तो उस कार्य में विजय निश्चित है और खाली घडा या विधवा स्त्री आ जाने पर उस कार्य में हार होगी ऐसा माना जाता है।

राजस्थानी लोग मुहूर्त और पंचांग पर विश्वास करते हैं। किसी भी छोटे कार्य में मुहूर्त देखा जाता है। अमावस्या, वित्तिपात के दिन किसी कार्य की शुरुआत नहीं करते। बेटी की बिदाई हो, या यात्रा पर निकलना हो तो मुहूर्त देखा जाता है। बुधवार को घर से यात्रा के लिए नहीं निकलते। इसके अलावा मंगलवार को इस दिशा में, गुरुवार को उस दिशा में नहीं निकलना ऐसी भी मान्यता हैं।

राजस्थानियों में बाहर गाँव जाते समय पापड नहीं खाने देते। परन्तु इसके पीछे विज्ञान है। पापड में सोडा रहता है। उस कारण रास्ते में प्यास लगती है। पहले राजस्थान में पानी की कमी थी - अब तो पानी पीने के लिए कहीं भी मिलता है तो अब इस परम्परा का कोई अर्थ नहीं रहता। गाँव जाते समय हाथ में थोडा गुड देते हैं। गुड को राजस्थान में मांगळिक कहा जाता है। गुड से शरीर में रक्ताभिसरण अच्छा होता है। गुड खून बढाता है। उसकी उपयोगिता के कारण उसे मांगळिक कहा है। ऐसे ही घर पर कौआ आकर बोलता है तो किसी मेहमान के आने की खबर सुनाता है। शाम में झाडु नहीं लगाते, रात्री में सीटी नहीं बजाई जाती। दक्षिण दिशा यम की दिशा मानी जाती है इसलिए कोई भी शुभ कार्य दक्षिण की ओर मुँह करके नहीं करते।

छींक कई कामों में अशुभ मानी जाती है। तब बच्चे को छींक आने पर घरवाले कहते हैं, ''छींक माता छतरपती, माथे रति ताळवे तैल, बाप के आंगणै दौड दौड खेल।'' छींक आना बिमारी की सूचना स्वरुप अत: छींक आने के बाद कोई भी काम रुककर करने के लिए कहा जाता है। परन्तु इसमें ज्यादा अतिशयोक्ति लगती है।

ऐसी कई मान्यताएँ और विश्वास है। आजकल पढे लिखे नौजवान इन विश्वासों का अंधानुकरण नहीं करते।

पशु-पक्षी मान्यताएँ (१)/कहावतें

(१) कौआ : लोक जीवन में कौआ के सम्बन्ध में जितना लोकविश्वास प्रचलित है उतना अन्य किसी पक्षी के सम्बन्ध में नहीं है। कौआ रूप में काला और वाणी में कर्कश होता है। यह मांस का भी भक्षण करता है। अत: यह पक्षी आदर से नहीं देखा जा सकता।

कौआ अपनी चालाकी के कारण बडा ही काँईयाँ पक्षी माना जाता है। लोक में यह कहावत प्रसिद्ध है कि –

''मनहन में नौआ, चिरहन में कौआ' अर्थात् ''मनुष्यों में नाई और पक्षियों में कौआ'' बडा ही चालाक होता है। इसीलिए कौवे को मारना बडा ही कठिन कार्य है। यह एक स्थान पर बैठा हुआ चारों ओर दृष्टिपात करता रहता है। इसकी चेष्टायें बडी चंचल होती हैं। इसीलिए चंचल वृत्तिवाले मनुष्यों की उपमा ''कौआ'' से दी जाती है। विद्यार्थी के पाँच लक्षणों में से पहिला लक्षण कौवे के समान चंचल चेष्टा का होता है। इसीलिए कहा गया है कि –

''काक चेष्टा, बकोध्यानं, श्वान निद्रा तथैव च ।
अल्पहारी गृही त्यागी विद्यार्थी पंच लक्षणम् ॥''

कई मनुष्यों की निद्रा कम होने के कारण गुजराती में कहा जाता है कि उनकी निद्रा कौवे जैसी (कागडा जेवी छे) है।

कौओं के सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि इसकी जीभ के मांस को खाने से मनुष्य अमर हो जाता है। कौवे की केवल एक ही आँख होती है। उस आँख की एक ही पुतली बारी-बारी से दोनों गोलाओं में आती-जाती रहती है। इसीलिए कहा जाता है कि उनकी नजर (दृष्टि) काग जैसी (कागडा जेवी छे) है।

लोगों की यह धारणा है कि यदि कौआ किसी व्यक्ति के सिर पर बैठ जाता है तो उसकी शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है। परन्तु यदि किसी सम्बन्धी अथवा प्रिय व्यक्ति को उसकी ''झूठी'' मृत्यु की सूचना दे दी जाय और वह रोने लगे तो उसका परिहार हो जाता है।

कौवे के द्वारा कमर तथा स्कन्ध प्रदेश (कन्धा) का भी स्पर्श करना अशुभ माना जाता है। सधवा स्त्री के सिर पर कौआ के बैठने से उसके पति अथवा पुत्र की मृत्यु हो जाती है। यदि कोई व्यक्ति मैथुन कर्म में निरत कौआ को देख ले तो छः महिनों के भीतर उसका निधन हो जाता है। संस्कृत में कहा गया है कि –

''षड्मासाभ्यन्तरे मृत्युः काक-मैथुन दर्शनात् ।''

कौवे का कर्कश बोली में बोलना और आँगन में उसका बैठना अपशकुन माना जाता है। राजा दशरथ की मृत्यु का समाचार सुनकर जब भरत अपनी ननिहाल से अयोध्या लौट रहे थे तब मार्ग में कौवों का कटु-रटन अनिष्ट की आशंका उत्पन्न करता था।

''असग्रन होंहि वगर बैठारा ।
रटहि कुभाँति कुखेत करारा ॥''(२)

- रा. च. मा. (अ. का.) १५८/२

परन्तु कौआ विरहिणी नायिकाओं का प्रिय पक्षी है। उनके प्रियतम के आगमन की सूचना देने का यह अनन्य साधन है। घर के मुँडेरे पर कौवे को देखकर उसे सम्बोधित करती हुई कोई स्त्री कहती है कि यदि मेरा पति आता है तो तुम उड जाओ। इस प्रकार कौआ का उड जाना प्रियतम के आगमन का सूचक है। ऐसे प्रियतम पक्षी को स्त्रियाँ सोने के कटोरे में दूध -भात खिलाने का आश्वासन देती हैं तथा उसकी चाँच को सोने से मढा देने

का विश्वास दिलाती है।

''सोने के चोंच मढहवो तोहि कागा
जो पिया आवहिं आजु रे ।'' (३)

- विद्यापति पदावली ।

सूरदास की विरह-विदग्धा गोपियाँ काग को उडाकर प्रियतम के आगमन की सूचना की जाती है।

''जँह-तँह काग उडावन लागी ।
हरि आवन उडि जाहि नहीं ॥ (४)

- सूरसागर ।

कौआ प्रेतात्मा तक भोजन आदि पहुँचाने का अनन्यतम साधन माना जाता है। इसीलिए धार्मिक व्यक्ति बलि-वैश्यदेव की पूजा करते समय कौवे को भी अन्न की बलि देते हैं। आश्विन कृष्ण पक्ष (जिसे पितृ पक्ष भी कहा जाता है) में कौवों का विशेष आदर होता है। क्योंकि इस पक्ष में पितरों का पिण्ड कौवों को खिलाया जाता है। महाकवि बिहारी ने इस तथ्य की ओर संकेत किया है कि -

''दिन दस आदर पाईके;
करिलै आपु बखान ।
जो लगि काग ससध पख,
तो लगि तव सनमान ॥

- वि. स.

रात्रि में कौवे का बोलना अत्यन्त अशुभ माना जाता है। यात्रा के समय भी कौआ का दर्शन अमंगलकारी है। एक जातक की कथा से पता चलता है, किसी शिकारी को प्रस्थान करते समय कोई कौआ मिल गया। अतः उसने इसे अशुभ समझकर अपनी यात्रा स्थगित कर दी। जातक में इस कौवे को ''काल कर्णि शकुन'' कहा गया है। (५)

- पं. बटुक नाथ शर्मा - पालि जातकावलि ।

विदेशों में भी कौआ अशुभ पक्षी माना गया है। इग्लैण्ड के लंकाशायर तथा पार्कशायर नामक काउण्टी (जिला) में लडके कौंवों को बडी धृणा की दृष्टि से देखते हैं। वे इसे अपनी दृष्टि से ओझल हो जाने की इच्छा प्रकट करते हैं। (डायर-इ.) (फो., पृ. ८१) यदि कौआ कर्कश शब्द करता है तो यह अमंगलकारी है। यदि उसकी वाणी में कर्कशता के साथ विश्वसता भी हो तो यह बुरे मौसम की सूचना देता है। इस प्रकार कौआ देश और विदेश में भी अशुभ तथा अमंगलकारी पक्षी माना जाता है।

भडली वाक्य

ऋतुगीतों का एक प्रकार 'भडली - वाक्यों' नामक है। यह 'भडली-वाक्यों' जन-समूह को ऐसे ही कंठस्थ होते हैं, क्योंकि उसमें ऋतुओं कैसी होंगी इसका अनुमान लगाया जाता है। कोई कहता है कि भडली नामक कणबण हो गई, तो कोई कहता है कि भडली तो रुद्रमाळ का खातमुहूर्त करने वाली मारवाडी हुदड जोशी की पुत्री थी, उनको संबोधित करके गोपकाय करने वाले (बकरियाँ चराने वाले) ज्योतिषी पिता ने ऐसे वाक्य कहे थे। बाद में हर कोई, कविने ऐसी अनुभव वाणी बोली यह सब 'भडली वाक्य' रूप में पहचानी गई।

लोग मानते हैं कि भडली वाक्य भविष्य वाणी नहीं है। यह अनुभव के उद्‌गार है। वर्षो तक ऋतुओं के फेरफारों के आधार पर, व्यापारों के सूक्ष्म दर्शन करने के बाद लोक-कविओंने काव्यबद्ध किये हुए हैं। देखिए :

वरसे आदरा
तो बारे पाधरा ।

(आर्द्रा नक्षत्र में बारिस आती है तो सारा साल (बारह महिने) अच्छे रहते हैं।

वरसे उत्तरा तो
धान न खाय कूतरां ।

(उत्तरा नक्षत्र में वारिस होती है तो इतना धान (अनाज पकता) पैदा होता है कि कुत्ते भी नहीं खा सकते।)

वरसे मघा तो
खडना ओघा ।

(मघा नक्षत्र में बारिस होती है तो घास बहुत पैदा होता है।)

वरसे भरणी तो
नार मेले परणी ।

(भरणी नक्षत्र में बारिस होती है तो अपनी पत्नी को भी छोड देनी पडती है (त्याग करना पडता है) ऐसा विकट दुष्काल होता है।)

वरसे स्वांत तो
न वाते तांत ।

(स्वाति नक्षत्र में बारिस होती है तो पींजारे की तांत नहि बजती है, यानिकि कपास का पाक नष्ट हो जाता है।)

असलेखा चगी तो चगी
ने फगी तो फगी ।

(अश्लेषा नक्षत्र में बारिस हो तो अच्छा या वर्ष बिलकुल बिगडता है।)

रोंण दाझी

(रोहिणी नक्षत्र बारिस के बिना अकेली बीजली हो तो भयंकर अकाल पडता है उसको ''रोंण दाझी' कहते हैं।)

रोंण सुवाडी

(कृतिका नक्षत्र में बारिस हो और रोहिणी में बारिस हो और बीजली हुई हो तो 'रोंण सुवाडी' कहा जाता है, यानिकि समृद्धि देता है। गाय-भेंस को सुवाडी कहा जाता है।)

रोंण कुंडाळां

(कृतिका नक्षत्र में बारिस हो और फिर रोहिणी में छांटा (छींटे) और बीजली हो तो 'कुंडाळा' होते हैं। इस से पांच गाँव में अच्छा अनाज पैदा होता है और पाँच गाँव में फसलें कम पैदा होती हैं।)

वावणी
ने घी तावणी ।

(जैसे चूले पर मक्खन को घी बनाने के लिए रखा हो, तब वहाँ से हम हट सकते नहीं है, जो वहाँ से हटे तो सब मक्खन - घी उभरकर नष्ट हो जाता है, उसी तरह बीज बोना भी बारिस के वक्त पर तत्काल कर देनी चाहिए। जो बीज नहीं बोया तो भारी नुकसान होता है।)

भाई, मडां ढांकीने सांती जोड्यां छे ।

(बीज बोने का वक्त हो और उसी रात कोई मर गया हो तो शब को ढंक कर बीज बोने का काम करना पडता है उतना इनका महत्त्व है।)

गियुं वरस पुरबा वाळे ।

(पुरवा नक्षत्र (श्रावण वद) में भी बारिस हो तो भी अकाल का सारा वर्ष सुधर जाता है।)

वख पख बे वादीलां
वरसे तो वरसे, ने ठालां तो ठालां ।

(वख (पुनर्वसु) नक्षत्र और उसके बाद का पक्ष नक्षत्र दोनों में एक जैसी बारिस हो या एक जैसी बारिस न भी हो।)

घेली चित्रा मांडे खेल
तो काळे उनाळे आणि रेल ।

(चित्रा नक्षत्र जो खेल खेले यानिकि चित्रा नक्षत्र में बारिस हो तो गर्मी के दिनों मे भी रेलमछेल हो जाती है।)

दि'ए काढे दुवाळां
ने राते काढे तारा
आणंद के' करमाणंदा
ई छप्पनियाना चाळा ।

(दिन में आकाश में बादल के ढग दिखा दे और रात को तारे दिखा दे तो समज लेना कि अकाल की निशानी है।)

कर कृत्तिका कल्याण
वूठी घर विदू तणे
रोयण दाझी राण
मर दाझे देवकरणतणी

(कृत्तिका नक्षत्र में बारिस हो तो फिर रोयण भले दाझे। अर्थात् रोहिणी नक्षत्र में सिर्फ बीजली होने के भयंकर कालचिह्नों हो तो फिर कोई दिक्कत नहीं होती है।)

मागशर न वाया वावला
आदरा आदरा न वूठा मेह
भर जोबनमां नायो बेटडो
त्रणे हार्यां एह ।

(मृगशीष नक्षत्र में वायु (हवा) न हो, आर्द्रा नक्षत्र में वारिस न हो और माता-पिता के भरयौवन में जो पुत्र न हो तो ये तीनों बिना काम होते हैं।)

आथमणी ताणे काचबी
जो ऊगमते सूर
दादा के' वाछरु वाळजो
नकर जाशे पाणीने पूर ।

(दादा कहते हैं कि जब सूर्य ऊगे तब पश्चिम दिशा में मेघधनुष्य दिखाई दे तो सचेत होकर जल्द से जल्द वाछरु (धण) खेत में से लेकर आ जाना, क्योंकि तीव्र वृष्टि होने की संभावना है।)

आसोवदी अमासडी
जो आवे शनिवार
धन कण राखी संग्रहो
सौ जगनां नरनार
आगळ रवि पाछळ पदी
मंगळ हाल्यो जाय
ए वरसे अन्न मोकळां
हरख घणेरो थाय ।

(जे वर्ष रवि ग्रह के पीछे मंगल ग्रह चलता हो तो उस वर्ष में अनाज ज्यादा होता है।)

स्वाति दीवा जो बळे
विशाखा खेले गाय
तो राणीजाया रणे चढे
ने पृथ्वी परले थाय ।

(जब दिवाली स्वाति नक्षत्र में आयें और जो गोधण तेरस विशाखा नक्षत्र में आयें तो वह उल्कापात के चिह्न होते हैं।)

शनि रवि के मंगळे
जो पोढे जदुराय
तो चाक चडावे मेदनी
ने करके पाळ बंधाय ।

(देव पोढी अगियारस जब शनि, रवि या मंगलवार के दिन आती हैं तो पृथ्वी पर चक्रावात-तूफान आता है और मृत पशुओं के हाडपिंजर (अस्थिपिंजर) (करकां) इतने ज्यादा होते हैं कि उनके ढग हो जाते हैं यानि कि अकाल पडता है।)

पहेली

पहेली : एक रूपात्मक और सांस्कृतिक परिचय :

लोक साहित्य की जिन विधाओं ने शिष्ट साहित्य को कई रूपों में प्रभावित किया है, उनमें पहेली भी एक है। यह बात दूसरी है कि इस पर उतने विस्तार से विचार नहीं हुआ है जितने विस्तार की सम्भावना, इसके अध्ययन के सन्दर्भ में अपेक्षित है। लोक साहित्य सम्बन्धी अधिकांश शोध प्रबन्धों में इसे प्रकीर्ण विषयों की सूची में डाल दिया गया है। यह सही है कि आधुनिक जीवन संदर्भ में इसका महत्त्व घट गया है और औद्योगिकीकरण के दौर में वह और भी घट सकता है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वह सदैव कम था या कि समकालीन आदिम समुदायों में भी उतना ही कम है, जितना कि गैर-आदिम औद्योगिक समुदायों में। इसकी ऐतिहासिक भूमिका इतनी वैविध्यपूर्ण रही है कि केवल गैर-आदिम कृषि और औद्योगिक संस्कृतियों - यहाँ तक कि समकालीन आदिम संस्कृतियों में इसकी भूमिका के आधार पर इसके महत्त्व का समुचित मूल्यांकन कठिन है।

पहेली लोकमानस की एक पुरातन अभिव्यक्ति है - सम्भवतः उतनी पुरातन नहीं जितनी कि लोककथा और लोकगीत, क्योंकि इसमें मानव बुद्धि का अपेक्षाकृत अधिक विकसित और जटिल उपयोग मिलता है। सम्भव है कि एक विधा के रूप में यह सुदूर अतीत में किसी प्रतिभाशाली व्यक्ति द्वारा उद्भावित हुई हो, किन्तु इससे कहीं अधिक सम्भव यह है कि यह किसी प्रदेश के लोकसाहित्य की शैलीगत प्रवृत्ति या कथन-प्रकार हो जिसे व्यक्ति या व्यक्तियों के एक रचनात्मक समुदाय ने लोकजीवन की किन्हीं गहरी आवश्यक्ताओं से प्रेरित होकर एक नयी विधा का रूप प्रदान किया हो। वस्तुतः संस्कृति के इतिहास में जिसे नया कहा जाता है, वह अभूतपूर्व और आकस्मिक न होकर रचनात्मक व्यक्तित्व या व्यक्तित्वों द्वारा पूर्ववर्ती सम्भावनाओं का विकास मात्र है। प्रतिभा या मौलिकता परम्परा के अभूतपूर्व उपयोग का ही दूसरा नाम है।

रचना की दृष्टि से पहेली प्रश्नवाचक हो या विधानार्थक यह हर स्थिति में प्रश्न होती है। यह प्रश्न असामान्य और अनभ्यस्त सादृश्य योजना, विषय के किसी महत्त्वपूर्ण पक्ष के अनुल्लेख या श्लिष्ट शब्दों की योजना पर आधारित रहता है। प्रायः हर भाषा में तीनों प्रकार की पहेलियाँ मिलती हैं। जब आफ्रीकी थोंगा यह पूछता है - ''एक घर है जिसमें दरवाजा नहीं'' तो वह अंडे का घर से सादृश्य निरूपित करता है जो श्रोता की देखने और विचार की अभ्यस्ति से भिन्न है और इसलिए तत्काल प्रत्यभिज्ञेय नहीं हो पाता।

बहुत पहले अरस्तू ने पहेली और रूपक के सम्बन्ध का उल्लेख किया था। यह इस अर्थ में सत्य है कि बहुत सी पहेलियों में रूपात्मकता मिलती है जिसका लक्षण है एक वस्तु द्वारा दूसरी वस्तु - उपमान द्वारा उपमेय-का द्योतन। कुछ पहेलियों में उपमेय की सार्वनामिक स्थिति मिलती है; किन्तु बहुत सी पहेलियों को, जिनमें उपमेय एकदम अनुक्त रहता है। भारतीय काव्यशास्त्र की दृष्टि से अतिशयोक्ति कहना अधिक संगत है। लेकिन जो वस्तु सामान्य रूपक या अतिशयोक्ति से पहेली को विशिष्ट बनाती है, वह है उपमान द्वारा उपमेय का दूरान्वित, असंगतिमूलक और असंभवतापूर्ण द्योतन। यह सही है कि इसमें भी दूसरे साम्यमूलक अलंकारों की तरह आकृति, वर्णक्रिया आदि आधारों पर साम्य की योजना होती है, किन्तु वह योजना का श्रोता का ध्यान मूल विषय की ओर से दूसरी ओर ले जाती है। इसलिए ''वस्तु के स्वरूप के गोपन द्वारा किसी भिन्न अर्थ का द्योतन'' (व्यक्तिकृत्य किमप्यर्थ स्वरुपार्थस्य गोपनात्-) और ''परव्यामोहन''[६] (सरस्वतीकण्ठाभरण : २/१३४) अन्य अलंकारों से इसके भेदक लक्षण हैं। काव्यशास्त्र में इसे एक स्वतंत्र अलंकार माना गया है, लेकिन

इसके स्वरूप की व्यापकता को देखते हुए इतने से ही इसके साथ न्याय नहीं हो जाता।

कई पहेलियों में उक्ति का स्वरूप विशुद्ध अभिधात्मक और इकहरा है। ''काँधे आय, काँधे जाय, नेग-नेग में मारा जाय,' जिसका उत्तर ''बाजा'' है, रूपकात्मक नहीं है। जो वस्तु इसे पहेली बनाती है, वह है गोपनमूलक विवरण। इसी प्रकार बहुत सी पहेलियाँ श्लेष (सभंग और अभंग, दोनों) का उपयोग करती हैं और बहुत-सी कूटशैली का। काव्यशास्त्र में पहेली के दो भेद किये गये हैं - शाब्दी और आर्थी। श्लिष्ट और कूट पहेलियाँ शाब्दी है और वे सभी पहेलियाँ, जो अर्थ पर आधारित है, आर्थी। यह वर्गीकरण इस विषय के अध्ययन के लिये उपादेय है, क्योंकि यह न केवल साहित्यिक, वरन लोक पहेलियों पर भी समान रूप में लागू है। शिष्ट और लोक, लिखित और अलिखित दोनों परम्पराएँ एक दूसरे को प्रभावित करती रही है। इसलिए बहुत सम्भव है कि लोकसाहित्य में श्लिष्ट और कूट पहेलियों का प्रचलन शिष्ट साहित्य के प्रभाव के कारण हुआ हो, किन्तु इससे इस वस्तुस्थिति में कोई अन्तर नहीं पडता कि इनका प्रायः विश्व की सभी भाषाओं में अस्तित्व है।

अमरिकी लोकवार्ताविद् एलेन डण्डेस ने लोकसाहित्य को रूपात्मक दृष्टि से दो भागों में बाँटा है - नियत-पद रूप और अनियत-पद रूप। पहेली, मंत्र, कहावत, आदि विधाएँ नियत-पद है। इससे विपरीत, कहानी और गीत जैसी विधाओं की प्रकृति अनियत-पद होती है।

साधारणतः पहेली लोक कविता का अंग होती है , इसलिए इसमें तुक, अन्तःतुक और यति जैसी सभी युक्तियाँ मिलती हैं जिनका उपयोग लोक कविता करती है। भारत के कई क्षेत्रों में पहेलियाँ मिलती हैं।[७] डो. चिंतामणी उपाध्याय (लोकायनः १९६१-१०३) ने विवाह के अवसर पर गायी जाने वाली मालवी की गीतात्मक पहेली या पारसी का उल्लेख किया है जो कई पहेलियों के टेक द्वारा जोडकर बनायी जाती है। राजस्थान के हाडौती क्षेत्र के विषय में ठीक इसी प्रकार का उल्लेख डो. चन्द्रशेखर भट्ट का है, ''हाडौती क्षेत्र में विवाहादि के अवसर पर पहेलियाँ पूछने का रिवाज है। वर के कोहवर में प्रवेश करने के पूर्व पूछी जाने वाली कुछ पहेलियाँ इस प्रकार है -

बुध भटके, मङ्गल चलअ, होवऊ ताबडतोड
असी बगत में बीन्द जो आया क्यूं घर छोड ? (जी आया)
फूल्या गेंदा गुलाब, काट्या न जाव,
उतर दयो चतर नअ तो पूरा खर । (तारे) इत्यादि[८]
(हाडौती लोकगीत : १९६६ : १५)

लेकिन कई भाषाओं में ऐसे पहेली गीत भी मिलते हैं जो आकार में लघु गीतों जैसे होते हैं और जिनमें केवल एक विषय का विवरण रहता है।

रुद्रट ने पहेली (प्रहेलिका) जो दो भेद किये हैं - स्पष्ट प्रच्छन्नार्था और अव्याहृतार्था (स्पष्ट प्रच्छन्नार्था प्रहेलिका व्याहृतार्था च)। स्पष्ट प्रच्छन्नार्था पहेली यह है जिसमें प्रश्न वाक्य के भीतर ही उत्तर छिपा हुआ रहता है। अव्याहृतार्था पहेली का उत्तर उसमें प्रयुक्त विशेषणों द्वारा संकेतित अर्थ के विश्वास के आधार पर दिया जाता है अर्थात् वह किसी भी रूप में उक्त नहीं रहता और स्वयं श्रोता द्वारा दिया जाता है।

फूलमित्य गुलाब चटान नह काँह,
मूदमुन राजा वदान नह काँह,
बअथरून क्यामखाव शेरान नह काँह ।

–गुलाब के फूल खिले हैं, लेकिन उन्हें कोई काट नहीं सकता। **उत्तर-तारे।**

–जो अपने को राजा समझता था, वही मर गया लेकिन कोई रोता नहीं। **उत्तर- कुत्ता।**

–चाँदी के तार का बना कपडा बिछाया गया है, लेकिन उस पर कोई सो नहीं सकता। **उत्तर- बर्फ।**(९)

एक लोकप्रिय विधा के रूप में पहेली की अनेक सामाजिक भूमिकाएँ हैं। इनमें से जिन चार का सामान्यत: उल्लेख किया जाता रहा हैं, वे हैं – प्रतिफलन, शिक्षण, बुद्धि – परीक्षा और मनोरंजन।

पहेलियों के आधार पर किसी भी समुदाय के दैनन्दिन जीवन और विश्वासों का पुन:निर्माण किया जा सकता है। इस दृष्टि से इनका महत्त्व लोकसाहित्य की किसी भी विधा से भिन्न नहीं है। इनमें जिन विषयों का विवरण मिलता है, वे समुदाय की जीवित संस्कृति से गृहीत हुए हैं।

भारतीय पहेलियों में मुख्य रूप में कृषि संस्कृति की सामग्री का समावेश हुआ है। एक और मुण्डा अपनी नुतुम-कहानी या पहेली मैं यह पूछता है –

नुतुम कहानी

काठ केरो कोठरी लोह केर धार
आगे आगे बकुली सेकर पीछे चोर
लाए चीना ताना ? **(उत्तर- हल)**

तो दूसरी ओर यह नुतुम कहानी

मियाद होरो जेता
इम्ता काए दुरुमा
लाए चीना ताना ? **(उत्तर - घडी)**

मुण्डा पहेलियों में कैंची, दियासलाई, चीठी आदि नये शिल्प-तथ्य, जो आधुनिक जीवन से गृहीत हुए है, विषयों के रूप में प्रवेश पा गये हैं। यही बात दूसरी लोक भाषाओं के सम्बन्ध में भी सत्य है जिनमें साईकिल, रेल, मोटर, यहाँ तक कि स्पुतनिक पर भी पहेलियाँ बन गयी हैं। (१०)

लोकसाहित्य को जनता का विश्वविद्यालय कहा गया है। लोकसाहित्य और संस्कृति के पारस्परिक सम्बन्धों पर विचार के क्रम में यह देखा गया है कि किस प्रकार आज भी कई आदिम जातियों में गीतों, कहानियों, कहावतों आदि का शैक्षिक उपयोग होता है।

पहेलियों की तुलना

अब शामळ की पहेलियों और लोकवाणी की पहेलियों की तुलना कर विक्रम की कहानी (सिंहासन बत्तीसी भाग-२, सातवी कहानी: नाई की) में परकाया प्रवेश का जो मंत्र नाई को परोपकार की भावना से सीखा दिया था वह नाई विक्रम के खाली देह में प्रवेश करके नकली विक्रम बनता है। अंत:पुर में जाने पर रानी विक्रम की कुचेष्टाओं से उस पर शंकित होती है और उसकी परीक्षा लेने के लिए ऐसी पहेलियाँ पूछती है:

सिंग सहित जे जनमियो, जोबनमां सिंग जाय;
जोबन फीरि वृद्ध थयो, सिंग फरीने थाय ।

[सिंग के साथ जो जन्मा, यौवन में उसका सिंग चला जाय । यौवन जाने पर वृद्ध हुआ, सिंग फिर से उग आय ।]

[अर्थ : चन्द्रमा]

नारी जाते उजळी, मुख नासिका नेण;
अन्न उदक निद्रा नहि, मुख नव खोले वेण ।

[जो नारी जाति की तरह उजली है, जिसके मुख, नासिका, नैन है, अन्न, पानी नींद नहीं, मुख से न बोले कोई शब्द]

[अर्थः सांप का केंचुल]

वदन श्याम ने गौर वर्ण, अमी झरंतो आप;
तेहना संग थकी मटे, शोकांतर महाताप ।

[मुख श्याम, रंग गोरा है, जिसमें से स्वयं अमृत झरता है उससे शोक का महाताप मिटता है ।]

[अर्थः स्त्री का स्तन]

सो नर लीधा सामटा, नारी भणाय जेह;
तुज रक्षाने कारणे, हाथ धरी में एह ।

[सौ नर को एकसाथ लेकर, जिन्हें नारी पढाती है । उसकी रक्षा के लिए मैंने उसे हाथों में ले रखा है ।]

[अर्थ : माला]

इन पहेलियों के लगोलग सोन हलामण की लोककथा में सोन जिस पहेली को अपने विवाह के उम्मीदवार जेठवा के राजा सियाजी को भेजती है उसे देखें :

घण विण जे घडियां, एरण आभडियां नहि ।

बस इतना ही, घण अर्थात् हथौडी के बिना जो गढा गया है और निहाई का जिसने स्पर्श भी नहीं किया, ऐसा गहना भेजिए ।

उत्तर में उस दोहे की पूर्ति हो जाती है;

सरवड स्वात तणां, भळे तो मोती नीपजे ।

[स्वाती नक्षत्र में बारिस की बूँदे गिरें तो मोती बनें]

[अर्थ : मोती]

यह पहेली समस्या पिछली दस पहेलियों से अलग पड जाती है । एक भी पहेली शामळ की पहेलियों से मेल नहीं खाती । फिर भी पिछली दोहेबद्ध पहेलियों और शामळ की पहेलियों के बीच आकार और शिल्प की साम्यता है । मात्र 'घण विण जे घडियां, एरण आभडियां नहि' अलग पडती है ।

इन दोनों कथा-प्रकारों के साथ अब स्त्रियों के रासडा की पहेलियों को देखिए :

वेंत ते जेवडी वरखडी, रे !
डाला तो जेवडां फूल वा'ला !
काचां ते उतरे कडपले रे,
पाकांनां थाय मूल वा'ला !
अंबोडे गल फूल वा'ला !
चतुर होय ते समजी रे लेजो
मूरख करे विचार वा'ला !

[वेंत भर की पीलूडी (वृक्ष) टोपली जितना फूल है । कच्चा उतारने पर ढेर- के ढेर और पकाने पर हो जाय मजबूत । उसके गले में फूल की गाँठ है, चतुर हों तो समझ जाय, मूरख करे विचार]

सासु वउवारु मां दीकरी रे
चारेनो एक भरथार वा'ला !
चतुर होय ते समजी रे लेजो
मूरख करे विचार, वा'ला !

[अर्थ : साडलो]

[सास, बहू, माँ, बेटी सभी का एक ही पति है । चतुर हो तो समझ जाय और मूरख करे विचार, हे मेरे बालम]

सासरो जमाई बाप दीकरो रे
चारेनी एक घरनार वा'ला ।
चतुर होय ते समजी रे लेजो
मूरख करे विचार वा'ला ।

[अर्थ : तलवार]

[ससुर, दामाद, बाप, बेटा, चारों की पत्नी एक ही है, चतुर हो वह समझ जाय और मूरख करे विचार, मेरे बालम जी ।]

भैंस वियाणी पाडुं पेटमां रे
दूध कचोळे जाय 'वाला !
चतुर होय तो समजी रे लेजो
मूरख करे विचार वा'ला ।

[अर्थ : पक्का आम]

[भैंस बियाई पाडा पेट में, दूध हंडिया में जाय चतुर हो वह समझ जाय, मूरख करे विचार, मेरे बालम ।]

काळो ते मार्यो कागडो रे
लीलूडो मार्यो हंस, वा'ला !
नाख्यो वाणीडाना हाटमां रे
त्राजवीए तोळाय, वा'ला !
जमे बामण, जमे वाणिया रे
जमे अढारे आलम, वा'ला !

[अर्थ : बैगन]

[काले कौए को मारा, हरे हंस को मारा मेरे बालम । उसे बनिये की दुकान में डालकर तराजू से तौलते हैं । ब्राह्मण, बनिया सब खाते हैं । खायें अट्ठारहों आलम ।]

['रढियाळी रात']

यहाँ तक हमें यह बुद्धि -चातुर्य का खेल विद्वज्जनों की करामत-सी लगती है । किन्तु एकदम सादी पहेली-गीत लें :

राम ने सीता वाद वदे
लावजो रे एक रातुं फूल, रदा कमळमां राम रमे ।
रातो ते रंगत चूडलो
राता रे कन्याना दांत रदा कमळमां राम रमे ।
राम ने सीता वाद वदे
लावजो रे एक धोळुं फूल रदा कमळमां राम रमे ।
धोळां प्रभुजीनां धोतियां -
धोळी रे बगलानी पांख, रदा कमळमां राम रमे ।
लावजो रे एक काळुं फूल रदा कमळमां राम रमे ।
काळो कन्यानो चोटलो
काळो रे अषाढी मेघ रदा कमळमां राम रमे ।

['रढियाळी रात']

[सीता राम से कहती हैं मेरे लिए एक लाल फूल लाना, मेरे हृदय-कमल में राम रमे हैं । लाल रंग का चूडा है, लाल कन्या का दांत, मेरे हृदय-कमल में राम रमे हैं । सीता राम से कहती हैं मेरे लिए एक सफेद फूल लाना, सफेद प्रभु की धोती है । तथा सफेद बगुले का पंख । मेरे हृदय-कमल में राम रमे हैं । मेरे लिए एक काला फूल लाना, काली कन्या की चोटी है और काला है अषाढी मेघ । मेरे हृदय-कमल में राम रमे हैं ।]

बुझौनी (पहेली)

कहावतें और भडली-वाक्य के जैसा ही संक्षिप्त रसात्मक गद्यकथन हमें बालकों की पहेली में मिलता है । अंग्रेजी लोकवाणी में 'रीडल्स' के नाम से जानी जाती यह पहेली बालबुद्धि को कसने के उपरान्त रसमयता के काम में भी आती है । एक बालक कहेगा, बताओ तो, जरा यह क्या होगा ?

घरमां घर
तेमां रमे केसरिया वर

[घर में घर, उसमें खेले केसरिया वर]

यह है नारियल का संक्षिप्त काव्य, छिलका और नरेली रूपी दो घरों के अंदर केसरिया-वर नारियल का गोला खेलता है । सिवान में कपास के खेतों में सफेद कपास को :

रणवगडामां डोशी दांत काढे

[मरुस्थल के वीराने में बुढिया हँसे]

ऐसा रूपक देकर सजीवतापूर्ण चमत्कृति दी है ।

एक जनावर हतुं के पूंछडे पाणी पीतुं

[एक जानवर ऐसा कि पूँछ से पानी पीता]

बाती रूपी पूंछ द्वारा तेल शोख कर जलते दिये का काव्यात्मक वर्णन किया । ऐसी पहेलियाँ अपरंपार थी और वे बालकों को जीवन की नीरस होती जाती सृष्टि में कौतुकोद्दीपक काव्यरस प्राप्त करती थी । इस पहेली के अनामी शिल्पी कितने कुशल रहे होंगे !

तारी मानुं पेट फाट्युं, मारी मा सूपडुं लैने दोडी!
तारी मा वांसे मारो बाप दोड्यो जाय ।

[तेरी माँ का पेट फटा, मेरी माँ सूपडा लेकर दौडी जाय, तेरी माँ के पीछे मेरा बाप दौडा जाय ।]

ऐसे अशिष्ट जान पडते हास्यरस वाली पहेलियाँ भी थी; (पहली का अर्थ 'अनाज की कोठी' और दूसरी का अर्थ 'सूई डोरा' होगा ।) तो उसके विरुद्ध उत्तम कल्पना को उडाते -

गण्या गणाय नै, वीण्या वीणाय नै;
तोय मारी डाबलीमां माय ।

[गिने गिनाय नहीं, बिने बिनाय नहीं, फिर भी मेरी डिबिया में समाय]

- ऐसे आँख रुपी डिबिया में समा जानेवाला अगणित आकाशी, ग्रहों-तारों का सम्पर्क सुलभ बनाती पहेलियाँ थी । जिस प्रकार जनता धूल में से धान उत्पन्न करके आती थी उसी प्रकार जीवन की काव्यहीन सामग्री से कल्पनोद्दीपक चातुरी द्वारा रस प्राप्त कर लेती थी । वहाँ भी साहित्य-क्यारा समूह का ही था । लडके घेर लेते और बडे भी पलौठी मार कर बैठ जाते । पहेली पहेली में विनोद की भरमार हो जाती । पहेली का कौतुक केवल बालसुलभ न था । पहेली की लहर तो विवाह तक पहुँच गयी है । ब्याह करते वर वधू की रसिकता चातुरी की जाँच कल्पित करती उन पहेलियों विवाहगीत में आती हैं ।

कहावतें

लोगों की बोलचाल की वाणी में बसा हुआ ठेठ साहित्य-बल ऐसे नित्य के व्यवहार से जन्मे अगणित लाक्षणिक प्रयोगों से शुरू होता है । किसी भी असाधारण अनुभव को या अच्छे-बुरे भाव को नीरस रूप से बोलने में अन्य साहित्यरसिकों की तरह लोगों को भी सन्तोष नहीं था । उपर कहे गये प्रयोगों से भी बढकर शिल्पविधान उनकी कहावतों में दिखाई देता है । ढोंगी आदमी को 'चकली नानी पण फरडको मोटो' (नन्ही चिरैया और फुदका ज्यादा) इस शब्द के आईने में बताया । बेहाल होने पर भी खुराफात न छोडनेवाली की प्रकृति 'छींदरी बळे पण वळ न मूके ! (रस्सी जल जाय पर उसका बल न जाय) इस कहावत में जिस तरह से बताया है उस पर यकीन करने के लिए रस्सी को जला कर देखना । कहावतें तो हजारों हैं । एक - एक कहावत अर्थात् अनुभवों के पुंज-पुंज से निचोडा हुआ एक एक अर्क बिन्दु । इस व्यवहार - चतुराई को पहनाया हुआ वाणी - कलेवर आप थोडा भी कमजोर नहीं पायेंगे । वर्षाऋतु में किसान बोआई करने जाते हैं उनके द्वारा सुबह बोया हुआ दाना और दुपहर के बाद बोया दाना, उन दानों की उगी हुई फसल देखेंगे तो जान पडेगा कि वह एक प्रहर की बोआई-अवधि, उस फसल का महिना कितना स्थित्यंतर कर डालता है । बोआई के समय थोडा-सा विलम्ब और इतना बडा नुकसान । इतनी अधिक हानि । कहावत में कहा गया है कि :

वावणी घी तावणी
(बोआई घी खराई)

चूल्हे पर घी खराने रखा हो उसे थोडी देर भूल जाने पर घी कडककर नाश हो जाता है; इसी तरह से बोआई में विलम्ब भयंकर :

घरमां मडुं ढांकी मूकीनेय खेडु वावणी करे.

[किसान घर में मुरदे को ढककर भी बोआई करता है । इस कहावत में लोककल्पना, लोकानुभव और लोगों के सौंदर्य-सामंजस्य की दृष्टि से सर्जित किया हुआ काव्यतत्त्व है । जीवन की नाजुक या कटाक्षात्मक आलोचना का संग्रह करती ये कहावतें जितनी मिलें उतनी संग्रह करनी चाहिए ।]

ऋतु-वाक्य

बोआई का प्रसंग हमें लोकवाणी का एक विशिष्ट सुभाषित प्रकार 'भडली-वाक्य' पर ले आता है । ऋतु के रहस्यों को संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत करनेवाली कहावतों को भडली-वाक्य कहते हैं । उदाहरण के तौर पर, एक वाक्य है कि :

वख पख वादीलां.

इसका लाघव नमूनेदार है । वख (अर्थात् पुनर्वसु) और पख (पुष्प) इन दोनों नक्षत्रों को वादीला (वादा) कहा गया है । वादीला शब्द लाक्षणिक है । वादीला अर्थात् एक जो करे वह दूसरा भी करे ऐसी आदतवाला । अर्थात् कि यदि वख बरसे तो पख भी बरसे और एक न बरसे तो दूसरा भी

खाली जाय ।

जो वरसे भरणी तो नार मेले परणी

इस ऋतु - वाक्य में कराया गया ऋतु-दर्शन, अति करुण और यथार्थ दर्शन है । भरणी नक्षत्र की बरसात अन्न-धान्य का इतना अधिक विनाश करती है कि खुद स्वामी अपनी पत्नी को त्याग दे ऐसा दुष्काल पडता है । इस प्रकार से यह भडली-साहित्य भी यथार्थदर्शी था । इस साहित्य को उत्तर हिन्दुस्तान में घाघ और भड्डरी कहते हैं । इसमें भी :

सावन सुक्ला सप्तमी
जो गरजे अधरात
तू पिय जईहो मालवा
मैं जईहुं गूजरात

[सावन शुक्ला सप्तमी, जो गरजे अधिरात, हे पिया, तुम जाओ मालवा, मैं जाऊँगी गुजरात ।]

इसमें व्यंजना द्वारा भयंकर यथार्थ को काव्यांकित किया गया है कि अमुक दिन की मध्यरात्रि को मेघ गरजे तो इतनी सख्त अनावृष्टि पडे कि पेटगुजारा के लिए पति को गुजरात जाना पडे और पत्नी को मालवा । (बंगाली साहित्य में भडली-वाक्य को 'अनार वचन' कहा जाता है ।) लोकसंघ का लक्ष्य ऋतुओं के रूप-सौन्दर्य की बजाय ऋतुओं के गुण-दोष पर अधिक था, क्योंकि जनता का प्राणप्रश्न ही रोटी का था । रोहिणी नक्षत्र गाजे या जले (यानी कि बिजली चमके) तो उस दुष्काल का दांत किचकिचाते नक्षत्र का भरा सौन्दर्य जनता को किस तरह काव्यप्रेरक बनेगा !

खायणां

निर्दंभी खायणां

'किन्तु आप एक मुझे ही भूल गये ?' ऐसा एक द्रावक प्रश्न पगडंडी के किनारे से किसी ने किया । हम सभी ने चारों तरफ देखा । हमने पहचाना : यह तो तापी नदी - सूरत की माता बोलती है । उसके हृदय से दोपहर को बाष्प निकलती है और उष्ण आवाज में गाती है -

आकाशे अर्प्यां ने धरती माए झील्यां,
माए ने बापे उछेर्यां, के परने सोंपवा ।
मारी ते माए जतन करीने जाळवी,
रतन करीने राखी, के परने सोंपवा ।

[आकाश ने दिया और धरती माँ ने ग्रहण किया, माँ-बाप ने पाला-पोषा दूसरे को सौंपने के लिए । मेरी माँ ने बड़े जतन से संभाला, रत्न की तरह रखा, दूसरे को सौंपने के लिए ।]

मैंने पूछा : 'तापी माँ, किस संताप से रो रही हो ?'

'अपने तीर पर खेलती बेटियों के संताप से रो रही हूँ । ब्याह कर पराया होना उन्हें अच्छा नहीं लगता ।' तापी का नीर बोला ।

'ओहो ! यह तो आज के सुधार का सुर हैं ।'

'नहीं रे, सदा काल की शाश्वत समूह की चीख । विवाह संस्था पर फैली फूल की चादर को मेरे खायणांओंने बार-बार उठाया है । यह आक्षेप गलत है कि लोकगीतों ने गाँवों को दंभी रंग से सजाया है । देखिए न ! -

बापाजी बापा, मीठुं मध पीजो,
दीकरी परणाववा जजो, के मोटा शे'रमां ।
मारा ते बापे तापी-किनारा न जोया,
जोयामां ने जोयां, जमाईनां झूपडां ।

[पिताजी मीठां मधु पीना और बेटी का ब्याह करने के लिए बडे शहर में जाना । मेरे पिता ने ताप्ती का न तो किनारा देखा और न ही दामाद की झोंपडी देखी ।]

'कौन कहता है कि श्रमजीवन और गरीबी का कल्पित सुख भी नहीं गाया गया है ।

मारा ते बापे व्हाणे चडी वर जोया,
मूरख वरने मोह्या, मूळापणी वेचता ।
मूळापणी वेची लाव्यो कडबनो भारो,
ए दीकरीनो जनमारो के जावा दोह्यलो,
मारा ते बापे त्राजूडीमां तोळी,
भर्या कुटुंबमां बोळी के दादानी दीकरी ।

[मेरे पिता ने जहाज पर चढकर वर देखा । कीमती चीजों को बेचते हुए वे मूरख पर मोहित हो उठे । कीमती चीजों को बेचकर घास-पात का बोझा उठा लाये, बेटी का जन्म बडा कठिन है ।

मेरे पिता ने तराजू में तौला और भरे कुटुम्ब में दादा की बेटी को बोर दिया ।]

यह कन्याविक्रय, कंगालियत और कुमेल जोड़ा के विरुद्ध काव्य-बंड तो पुराना है । शहर की पुत्रियों ने इस दिल का दर्द छिपाया नहीं है, खायणे में उसे झूला पर चढकर गाया है :

मारा बापने एक ज दीकरी होजो
सारेसा वरने जोजो, के चिंता ऊगरे ।

[मेरे पिता की एक ही बेटी है, सुन्दर-सा वर खोजना ताकी चिन्ता मिटे ।]

और पानी भरना यह क्या सुख था ?

ओ पेली, ओ पेली क्या गामनी दीकरी,
पाणी भरे कूवे एकली, के कई बेन सासरे ।

[वह देखो, वह देखो कौन से गाँव की बेटी है जो अकेले पानी भरती है, उसकी कौन-सी बहन ससुराल में है ?]

'ऐसे बलात्कार के ब्याह में साड़ियों का ढेर दिखाकर फँसाई जाती पुत्री की पुकार को खायणा के एक एक दोहे में अंकित किया है -

माडी रे माडी, नव जोइए तारी साड़ी,
जनमनी ओशियाळी के हुं तारा दूधनी ।

[हे मां, मुझे नहीं चाहिये तेरी साड़ी, मैं तो जन्म से ही तेरे दूध की ऋणी हूँ ।]

असंभावना के कारण

उपर्युक्त कथन का सबूत आजकल रचे जा रहे असंख्य रासगरबा तथा बाल-कहानियों पर से मिल जाएगा । छोटी कहावतें और संक्षिप्त पहेली के पुराने लोकभंडार में हम अपनी नयी चतुराई से, विचारकणिकाओं से या चातुर्यपूर्ण लघुक्तियों से एक की भी बढ़ोतरी नहीं कर सके । लोककृति का धारदार लाघव, जो कि सच्चे मोती में झिलमिलाते पानी के समान है, वह नयी रचनाओं में नहीं आ सकता । 'वढकणी बहुए दीकरो जण्यो' [झगड़ालू बहू ने बेटा पैदा किया] इस लोक-कटाक्ष को अखा ने एक काबिल सोनार की अदा से अपनी रचना रूपी आभूषण में नग की तरह जड़ दिया किन्तु नये नग, नये मौक्तिक हमें नहीं मिले । पुरानी लोकवाणी ने वही की वही कहावतों को अलग-अलग ढंग से रचा :

एक तो ऊंट वळी उकरडे चड्यो.
एक तो सांढ ने तेमां चोमासुं चर्यो.
दोडवुं' तुं ने ढाळ आव्यो
रोवु'तुं ने पियरियां सामां मळ्यां.
एक तो हुं, ने पाछा तमारा भाई घेरे नहि !

[एक तो ऊंट उस पर कूड़े के ढेर पर चढ़ा, एक तो सांढ़ उस पर वर्षाऋतु में चर रहा है, दौड़ना था कि ढलान आया, रोना था कि मायकेवाले सामने मिले, एक तो मैं उस पर तुम्हारे भैया घर पर नहीं ।]

इस अंतिम कहावत में, अनाड़ी स्त्री के पति की गैरहाजिरी में अधिक बहक जाना, उच्छृंखल रूप सूचित हुआ है ।

कहावतों और पहेलियों के बाद अल्प कथाओं का स्वरूप देखिए तो वह लोकरचना की अनुकरणीय चमत्कृति हमें बेचैन कर देगी । मालिक की गैरहाजिरी में बाड़े में से बैंगन चुराकर ले आनेवाले दला तरवाडी की बात मनोनुकुल नीतिशास्त्र पर कुरुप प्रहार है । जो ब्राह्मण सामाजिक नीतिनियम का रखवाला माना जाता था, कथाकार ने उसे ही खलनायक का पाठ अदा करते हुए दिखाया । अनुमति लेकर ही बैगन तोड़ना इस नीति को उसने उल्टा पढ़ाया, मुफ्त में बैंगन की सब्जी खाने की लोलुपता से दला तरवाडी बाड़ी के पास जाकर कहता है -

'वाडी रे वाडी '
'शुं छे दला तरवाडी ?'
'रींगणां लउँ बेचार ?'
'के' लेने भाई, दसबार !'

['बाडी रे बाडी' ! 'क्या है दला तरवाडी ?' 'बैगन लूँ दो चार ?' कहता है' लो न भाई दसबारह']

इस तरह से खुद ही संवाद बोलकर गूंगी बाड़ी की कल्पित रजामंदी लेकर चोरी करते बैंगनशौकीन ब्राह्मण को बाड़ी के मालिक ने एक दिन पकड़ लिया, और उसी के नीति-शास्त्र के अनुसार, कूंए में उल्टा सिर डूबा कर कहा :

'कूवा रे कूवा !'
'शुं छे वशराम भूवा ?'
'डबकां खवरावुं बेचार ?'
'के'भाई खवरावने दसबार !'

['कुआ रे कुआ । क्या है वशराम, भुवा ?' डूबकी खिलाऊँ दो'चार ? कहता है 'खिलाखों न भाई दसबारह']

अनुभव कथन एवं नीति की बातें

हमारे पूर्वजों ने अपने जीवन में आये अनेकानेक अनुभवों को सहज उद्घृत करते हुए अनेक बातें सिखायी हैं । राजस्थानी लोकगीतों में उनकी अनुभव की यह बातें अनगिनत है । व्यक्तिगत और पारिवारिक के समाज की दृष्टि से ये बातें अच्छाई और बुराई का बोध कराती हैं ।

मरे कुण तीज जना
कुवत कम घुस्सा घणा
मरे कुण तीन जना
हाजमा कम भावण घणा
मेरे कुण तीन जना
कमाई कम खर्चा घणा

जिसकी औकात कम और गुस्सा अधिक, जिसकी पाचन शक्ति कम है और अधिक खाता है कमाई कम और खर्चा अधिक है ऐसे लोगों को मृत्यु जल्दी आती है ।

इसी तरह क्या अच्छा है इसकी भी जानकारी हमें लोकगीतों में मिलती है । जैसे-

बात सांची भली, पोथी बांची भली
देह सांची भली, बहू लाजी भली
प्रीत गाढी भली, भींत जाडी भली
मौत मोडी भली, मंसा थोडी भली

सिद्ध व्यक्तियों के जीवन के अनुभव इन गीतों में होते हैं ।

साख में साळो
भिंत में आळो
आँख में जाळो
खेत में नाळो
नहीं रहतो

इसी तरह

जीमणो मॉरे हाथ रो हूवों भलाई जैर
रैणो भायां रा भेळ हुवों भलाइ बैर
बेठण छियां में हुवों भलाई केर
चालणु सिधो रस्तो हुवों भलाई देर ।

खायणां

खायणां यानीकि अनाज खांडते वक्त खांडणिया पर बैठके गाये जाने वाले तिन-तिन पंक्तियों के जूमखे । या दो पंक्तियों के झूमखे गीत । खनकते (कंकण) कंगन वाले दो दो हाथ खांडते हैं और खांडते खांडते मुख गाये जाते हैं :

खांडणियां खांडुं ने खखडे हाथनां कंकण
मोटा घरनां कंकण
के..... बहेन सासरे ।
खांडणियां खांडतां खखडे हाथनी चूडी
महिपरियेथी मूडी
वीराजी मोकलो ।

बडे घर की कुलीन पुत्रवधू कुल के संरक्षण समान ढंकण बनकर सासरिया में बैठकर खांडती है या तो लखपति पिता की लाडकवाई बेटी अपने पियर के घर खांडने के धबकार द्वारा धमधमा रही है ।

खांडुं दळुं ने धबोधब रे वागे
भरेलां घर गाये
लखेशरी बापनां ।

ऊर्मिगीत :

सांबेला के धबकार सुनो । खांडने वाली नारी गाते गाते अपने अंतःकरण का बोज हलका कर रही है । हृदय की ऊर्मियों को वेदनाओं को रो रो कर बाहर निकाल रही है ।

जैसे दोहा यानीकि एक-एक ऊर्मिगीत उसी तरह खायणां भी तिन-तिन पंक्तियों में ऊर्मिगीत खरलता से निखार उठते हैं :

आ रे जगतमां एक ज मोटी खोड
सरखेसरखी जोड
के मळवी दोह्यली !

कोई मधुर उपमा स्फूट हुई तो खायणां के रूपमें प्रकट हो जाती है :

काळी ते कोयल आंबलियामां रमती
बापाजी भेगी जमती
के बहेनी नानडी ।

कोई मांगल्य कल्पना स्फूट हुई तो तुरंत खायणां में प्रकट हुई :

सूरज ऊग्यो गौरी गायने खीले
किया भाईने टीले
के सूरज झळहळे !

या

सूरज ऊग्यो आशापुरीने ओटले
..... बेनने चोटले
के सूरज झळहळे ।

बम्बई के कन्यालोलुप गमार बुढ्ढा धनवान का एक टोळचित्र देखिए :

मुंबाईना शेठिया खाडी खाबोचिये रखडे
कन्या माटे टळवळे -
काणी बहेन आपीशुं !

या

अरदेसरनी पेटीमां सव्वा बशेरो तोडो
अरदेसरनो घोडो
नाखुदा वापरे ।

लग्नप्रसंग के विलाप सूर :

खायणां का राग स्वयं कारुण्य से भरा हुआ होता है । बेटी के लग्न प्रसंग के खायणां देखे :

बापाजी बापा, तमे मीठुं मध पीजो
दीकरी परणाववा जाजो
के मोटा शहेरमां ।

अथवा तो -

सूरज बापा, हुं तो तमारी बेटी
कोरां घरेणांनी पेटी
के मारे जोईशे !

शहर के सासरीवाले की गहने की उत्सुकता वाली पुत्री कहती है :

तारा ते बापे तापी किनारा जोया
जोयामां न जोयां
जमाईनां झूपडां

बापने बेटी को नजदीक में शादी करा दी लेकिन जांच-पडताल नहि की कि जमाई (दामाद) खोली (झूंपडी) में रहता है । अरे वो तो मूलापणी बेचता है :

मारा ते बापे वहाणे चडी नर जोया
मूरख वरने मोह्या
मूळापणी वेचता ।
मूळापणी वेची लाव्यो कडबनो भारो
ए दीकरीनो जन्मारो
के जावो दोह्यलो ।

दूरदेशनो सासरवास :

मूळा वेचतो मूरख नर और पुस्तक पढनेवाला चतुर वर सूरत जैसी नगरी की दीकरी को खेडूत कैसे पसंद हो सकता है । न पसंद हुआ नजदीक का खेडुपति या न पसंद हुआ दूर की सासरवास देखिए :

मारा बापे गामडां जोयां संधां
दीकरी लाडकी अंबा -
ने मूक्यां माळवे ।

परदेशी सासरवास के द्वारा क्या स्थिति होती हैं, देखे :

मारा ते बापे परदेश दीकरी दीधी
फरी खबर न लीधी
मूई के जीवती ।
बापाजी दीकरी परदेशमां न देशो
मूवा पछी ना रोशो
के मोभेण दीकरी ।

★ ★ ★

ने बापे कन्याविक्रय कर्यो ।

मारा ते बापे त्राजूडीमां तोळी
भर्या कुटुंबमां बोळी
के दादा दीकरी ।

और कैसी विकट परिस्थिति (विकट ऋतु) में सासरे भेजते हैं :

बापाजी बापा, में शुं करियां पाप !
भर्या ते भादरवे
वळावी सासरे ।

और फिर अपने पिताजी को सीख देती हुई बेटी परगृह (सासरिया) चली जाती है :

बापाजी, आंबो थड जोईने रोपावजो
घर जोईने परणावजो
के दादा दीकरी !

और ईश्वर (भगवान) को वह प्रार्थना करते हुए मांग रही है :

मारा ते बापने एक ज दीकरी होजो
सारा वरने जोजो
के चिंता उतरे ।

आकाश-पृथ्वी की विराट बेलडी ने उत्पन्न की हुई दीकरी को दूसरे को सौंपने के लिए बडी की है :

आकाशे अर्प्यां ने धरती माए झील्यां
माए ने बापे ऊछेर्यां
के परने सोंपवा ।
मारी ते माए जतन करीने जाळवी
रतन करीने राखी
के परने सोंपवा ।

जब बेटी सासर जाती है तब मातापिता की प्रतिकृति जैसे ताड वृक्ष की जोड को देखकर माता-पिता की याद आ जाती है । देखिए :

सासर जातां सामे मळ्यां बे ताड
मातापिताना लाड
मने केम वीसरे !

यहां खजूरी के वृक्ष द्वारा बेहूदापणा दिखाई देता है, देखिए :

सासरे जातां सामी मळी खजूरी
सासरानी मजूरी
के करवी दोह्यली ।

★★★

सासरे जाता सामी मळी बे बत्ती
सासरियानी घंटी
ते खेंचवी दोह्यली ।

मातृस्नेह :

दूरसुदूर श्वसुर गाँव के कोई पहाडी पर एकल हाथ पानी भर रही दु:खियारी बहन का ध्वनि-चित्र । तुरंत ये बहन का उरतरंग अपने अंतर के साथ स्पर्श होते हैं । देखिए :

ओ पेली - ओ पेली कया गामनी दीकरी
पाणी भरे कूवे एकली
के कई बेन सासरे !

★★★

सांज पडे ने आथमे रविनुं तेज
माडी केरुं हेत
के मुजने सांभरे ।

संध्या वक्त के रवितेज के साथ माता के हेत की कैसी सुसंगति है, देखिए :

घडो फूटे ने रझळे जेवी ठीकरी
मा विण रझळे दीकरी
के आ संसारमां ।

★★★

गोळ विनानो मोळो ते कंसार
मा विण सूनो संसार
के सहुने लागशे ।

विजोगण दीकरी को माता क्यों नहीं बुलाती ? बेटी को साडी लेनी पडे यही डर से कल्पना करके बेटी माँ को कहती है :

माडी रे माडी न जोईए मने साडी
जनमनी ओशियाळी
के तारा दूधनी ।

भाई-बहन की प्रीति :

भाई-बहन के हेत-प्रीत के खायणां भी साहित्य में प्रचलित हैं, देखिए :

.... बहेन परणेने मोर चित्तरना मांडवा
अखंड उजागरा
के एना भाईने ।
वाडा पछवाडी शिवजीनुं दहेरुं
पूजा करवाने तेडुं
के मारा भाईने ।
आजे में रांध्या खीरचूर रे थोडां

वीराजीना घोडा
परसाळे हणहणे ।
आधेथी देखुं दूर दूरने डगले
परमेश्वरने पगले
के वीराने ओळख्या ।
आवता देखुं लीली लाकडीए
कसुंबी पाघडीए
के वीराजीने ओळख्या ।

सूरती बहन का भाई मा के जैसे डग भरता है इसलिए पहचाना जाता है :

आवता देखुं पुरीजनने डगले
वीर माडीने पगले रे
भाईने ओळख्या ।

तो सौराष्ट्र की बहन अपने भाई को कैसे पहचानती हैं, यह देखो :

ओळख्यो, ओळख्यो रे मानी आंख्युंनी अणसार
बापनी बोलाशे वीरने ओळख्यो ।

लडके की आंखें मा को मिलती आती है और वाणी बाप को मिलती है यह लोकशास्त्र है ।

आवतां देखुं दूर दिल्लीने छेडे
बहेन करीने भेटे
माडीजाया होय ते
आज सखी मारी आंखलडीनो हीरो
आवे माडीजायो वीरो
तो मांडुं गोठडी ।
मारे ते माईनो रेवंतो छे घोडो
जडित्र अंबोडो
के मारी बहेननो ।

भाई का बचपन याद करते हुए बहन कहती है :

देवने वा'ला दीवानां कोडियां
मुजने वहालां घोडियां
के बचुभाईनां ।
लीलुडो पोपट कचेरीमां ऊडतो
बापाजी जोडे जमतो,
बचुभाई सांभरे ।

माडीना मेवा ने बापनी मीठाई
वीरनी सगाई
ते टाळी नव टळे ।

पुत्रवधू का चित्र

गृह-शृंगार करती हुई भाभी की मधुर छबी यहाँ अंकित हुई हैं । देखें :

कई वहु लींपे ने कई वहु थापे ?
कई वहु ते पाडे
सिंधुरिया ओकळी !

★★★

लीलीवहु राणी ने हाथमां चलाणी,
अंबिका भवानी -
ने पूजवा नीकळ्यां ।
बारीए बेसी कंकुडा अजवाळुं
धैण कही शणगारूं
के चंदन वहुने ।
आवोनी मालण आपीश कटको रोटलो
फूले भरजे चोटलो
के कुंदन बहुनो ।

भाभी के प्रहसन, शोक्यना ईर्षा-चित्रो भी लोकसाहित्य में मिलते हैं :

नानी वहुने मोटी वहु देराणी ने जेठाणी
मुंबईनी शेठाणी
के अद्धर चालती ।

ऐसे, अथवा तो -

रेंटियो भांगीने चाली हुं तो मोसाळ
मामीने कंताव्या
के मामाना धोतियां ।

कटाक्ष में (वेवाई-वेवाण) समधन-समधिन के पद भी देखें :

मारे बारणे एठा-जूठानुं कूंडुं
भंगिया करतां भूंडुं
नाना भाईनुं सासरुं ।

ऐसे हीनता प्रकट करने वाले खायणां देखो :

खाळ कुंडीमां कुंदनलाभ अंगोळे
बाबरियां खंगोळे
के मण कीडा खरे ।

तो कई -

मीठावाळा तें मीठुं मोघुं कीधुं
रैयतने दुःख दीधुं
अंग्रेजना राजमां ।
टोपीवाळा तारी अक्कलनी बलिहारी
पहाडमां कोची गाडी
के तारा राजमां ।

या तो -

ओ पेलो - ओ पेलो दामोदरियो कूवो
अफीण खाई मूवो
चकानो चूनियो ।

ऐसे खायणां का प्रधान सूर तो विवाहित जीवन के दुःख प्रत्ये कटाक्षयुक्त, संवेदनयुक्त आक्रंद गाने का ही है । ऐसे संवेदना के खायणां करुणता भरी मीठाश से व्यक्त हुए हैं ।

कई खायणे नारी हृदय के आंसु समान हैं ।

खायणां (बहेनने)

१. मारा ते बापने अेक ज दीकरी होजो;
हिंडोळाखाट जोजो, के बहेनने झूलवा

२. सासरे जाय मारे कई बाने रे हेल्यो;
धसमसती रे वहेल्यो, के वीराजी मोकले ।

३. बेनी रूपाळी ने बनेवी छोगाळो,
हैयामां उकाळो, के रोज करावतो ।

४. आवजे रे मालण, आपीश कटको रोटलो;
फूले भरजे चोटलो, के कीकी बहेननो ।

५. नणंदने पहेरवा छायल आपीश कोरुं;
मोटा घरनां छोरुं, के बेनी चाल्यां सासरे ।

६. काचनी दाबडीमां मोतीनो छे दाणो;
नणदोई मारो काणो, के नणदी केम वेठशे !

७. माने म्हालाव्यां ने बापे लडाव्या लाड,
भोजाई मळीयां सांढ के तजाव्या उंबरा ।

८. खांडणीया खांडतां खखडे हाथनां कंकण,
मोटा घरनां ढांकण, के नानी बहेन सासरे ।

९. मारा ते भाईनो रेवंतो रे घोडो,
सोना जडित्र अंबोडो, रे मारी बहेननो ।

१०. मुंबईना शेठीया, खाडाखाबोचीये रखडे,
कन्या माटे टळवळे, के काणी बेन आपशुं ।

खायणां (भाईने)

१. डाबो ते डुंगर ने जमणी आवे शेरी;
वीरनी हवेली, के लवंगी बारणां ।

२. मारा ते बापे हवेली बंधावी;
वीराअे चितरावी, के भाभीने म्हालवा ।

३. वाडीनां वेंगण वेडीने वघारुं;
रांधीने जमाडुं, के भाई भोजाईने ।

४. घेलां भाभीजी बोबडां थईअे, तोतडां थईअे,
घर मांडीने रहीअे के, आ संसारमां ।

५. आवतां देखुं लाल ने लाकडीअे;
कसुंबी पाघडीअे, के वीराजीने ओळख्या ।

६. चार खूणे चार मेलुं, दूधना वाटका;
पीओ नानाभाई लाडका, के बहेनी विनवे ।

७. मारो ते वीरो मुंबई शहेरनो सूबो;
माणेकचोकमां ऊभो, के अम्मर मूलवे ।

८. मारा ते मांडवे वीजळीना छे दीवा;
भाईने घेर वी'वा, के फोई रीसाई गयां ।

९. होळी-दिवाळी ने दा'डा रह्या छे थोडा;
वीराअे जोडया घोडा, के बेनीने तेडवा ।

१०. भाई तो भोळा ने भाभी छे धुतारी;
भाईअे तो विसारी, के गरीब बेनडी ।

खायणां (भाभीने)

१. आवो भाभीजी, धम्मा धम्मी करीअे;
मोटां घर गजवीअे, के लखेशरी सासरां ।

२. वीरानां व्हाल ने भाभीनां छे बहुमान;
मात पिता विना सूनुं, के महियरियुं लागशे ।

३. मारा ते घरमां झगमगतो छे दीवो;
भाई भाभी घणुं जीवो, के आपे चुंदडी ।

४. सडकवाळा तारी सडक लांबी टूंकी;
भाभीने चोरे लूंटी, के भाई अेकला ।

५. भाई छे भोळा ने भाभी छे धूतारी;
हैयानी उतारी, के वीराअे बहेनडी ।

खायणां (जनेताने)

१. घडो फूटे ने रझळे जेवी ठीकरी;
मा विण रझळे दीकरी, के आ संसारमां ।

२. गोळ विनानो मोळो जेम कंसार;
मा विण सूनो संसार, के सौने लागशे ।

३. सांज पडे ने आथमे रविनुं तेज,
सांभरे माडीनुं हेत, के बेनी सासरे ।

४. वरसाद वरसे ने भादरवानी हेली,
माडी कहे मारी घेली, के क्यारे आवशे !

५. माडी रे माडी, न जोईअे मने साडी;
जन्मनी ओशियाळी, के तारा दूधनी ।

६. शेर कांतु ने शेरनी करुं हुं पूणी;
मा बाप तारी ऋणी, के जनम जनमनी ।

७. भाई ने भाभी बोलावे तेनो पाड,
माता विनाना लाड, के कोण लडावशे ।

८. माडी रे माडी, झट मोकलजो आणां,
होळी दिवाळीनां टाणां, के मारे मन वै जशे ।

९. मारी ते माअे, जतन करीने जाळवी,
रतन करीने राखी, के परने सोंपवा ।

१०. मारी आंतरडी नहि थाय टाढी,
नथी जनेता माडी, के करीअे वातडी ।

खायणां (पिताने)

१. खांडुं दळुं ने धबोधब रे वागे,
भरेला घर गाजे, के लखेशरी बापनां ।
२. बापाजी बापा, मोटा घर न जोशो;
मुआ पछवाडे रोशो, के मों-जोण दीकरी ।
३. मारा ते बापे ऊंडा कूवामां नाख्यां,
उपर ढांकण दीधां, के सुरत शहेरमां ।
४. मारा ते बापे तापी किनारा जोया,
जोयामां न जोयां, के जमाईनां झूंपडां !
५. दीकरी मरजो, ने बापाजी वधाई लेजो,
वीराजीने कहेजो, के पनोती उतरी ।
६. मारा ते बापे वहाणे चढी वर जोया,
मूरख वरने मोह्या, के मूळापणी वेचता ।
७. मारा ते बापे मने परदेश दीकरी दीधी
फरी खबर ना लीधी, के मूई के जीवती ?
८. बापाजी बापा, में शुं करियां पाप ?
भरे ते भादरवे, के वळावी सासरे !
९. बापाजी बापा, साळु मळे तो लेजो,
सारुं घर जोई देजो, के चिंता ऊगरे ।
१०. मारा ते बापे गामडां जोयां सघळां,
दीकरी लाडकी अंबा, के मूक्यां माळवे ।

खायणां (सासरीने)

१. मारी ते माडीअे हरखथी वळावी;
फरी नहि तेडावी, के पडी हुं सासरे ।
२. सासुअे कहाडी, ने माडीअे ना बोलावी,
बेनीअे ना पूछी, के दुःखनी वातडी ।
३. मारी ते काकी, ते कादवनी कोठी,
सासरुं आप्युं शोधी, के नाखी दुःखमां ।
४. मारे ते काके, कुळ जोईने कन्या दीधी,
पहेरामणी नव कीधी, के दीकरी रडी रह्यां ।
५. सासरे जातां सामी मळी छे खजूरी,
सासरियांनी मजूरी, के करवी दोह्यली ।

६. दीकरी रूवे ने माडी आंसुडां लुछे,
लोको सामुं जुअे, के क्यां बेन चाल्यां सासरे ।

७. सासुडी सापणने नणंदी नागण,
जेठाणी वींछण, के लेती जीवडो ।

८. सरोवरनी पाळे सासु वहु बे मळीआ,
खडखडीने लढियां, के डुंगर डोलिया ।

९. घर पछवाडे मोटो छे रे वाडो,
सासु नणदीनो भवाडो, के वेठवो दोह्यलो ।

१०. शेर दळु ने शेरीअे जई आवुं,
माडीने कहेवडावुं, के आणां मोकले ।

खायणां (संसारनां)

१. आ रे जगतमां नारीनो नहि भार,
हलको ते अवतार, के अबळा तणो ।

२. पुनमनो चंद्र छे रातो ने रढियाळो,
नारीनो जनम ओशियाळो, के आ संसारमां ।

३. तळावनी पाळे मा, ने दीकरी मळियां,
पेट भरीने रडीयां, के डुंगर डोलीआ ।

४. सुखमां सांभरे सोनी, दुःखमां सांभरे राम,
दामना सौ गुलाम, के आ संसारमां ।

५. आ रे जगतमां अेक ज मोटी खोड;
सरखा सरखी जोड, के मळवी दोह्यली ।

६. मामा रे मामा भाणेजीआ घेर आव्यां,
मामीअे डोळा काढ्या के भाणेजीआं बी गयां ।

७. आकाशे आप्यां, ने धरती माअे झील्यां,
माअे ने बापे उछेर्या, के परने सोंपवा ।

८. वरसाद वहु ने दुनिया जश नव आपे,
तेना विना नव चाले, के आ संसारमां ।

९. बापे परणाव्यां, माअे लाड लडाव्यां,
भूंडी ते भोजाईअे, के तजाव्या उंबरा ।

१०. वरसाद बहु वरसे, जाणे भादरवानी हेली,
माडी कहे मारी घेली, के मैयर क्यारे आवशे !

खायणां (वहुवारुने)

१. होडीवाळा होडीवाळा, तारी होडीमां पाणी,
शांतावहु छे काणी, के पार उतारजो ।

२. सांकडी शेरीमां नाग सापना ओळा,
वहेला भरजो खोळा, के नयना वहु तणा ।

३. कई वहु लींपे ने कई वहु ते थापे,
कई बहु पाडे के सिंधुरिया ओकळी !

४. खांडी खूंदीने भरुं गागर बरणी,
पांचमनी अघरणी, के प्रतिमा वहुनी ।

५. आज तो रांधु हुं लापशी लचकाळी;
कनक वहु मचकाळी, के जमवा नोतरुं ।

खायणां (शोक्यने)

१. शोक्य मरे तो रूडां साळुडां रंगावुं,
दियरने बंधावुं, के कसुंबल पाघडी ।

२. मारी ते शोक्यने सवा बसेंना तोडा,
फजेतीना वरघोडा, के सवारना पहोरमां ।

३. आवळनुं दातण ने धतुरानो कूचो,
अभागीयानुं घर पूछे, के शोक्यना बापनुं ।

४. मारे ते नाके सवा बसोंनी वाळी,
खरे बपोरे बाळी, के मारी शोक्यने ।

५. अमारे बारणे सामसामी गोख,
सामा घरनी शोक्य, के सवारे नित्य लडे ।

खायणां (जमाईने)

१. मायरामां बेठी छे वरकन्यानी जोडी,
जमाई तमारी घोडी, के भूखी हणहणे ।

२. दाणावाळा दाणावाळा, तारे कोठार छे बाजरी,
कयो जमाई छे वाघरी, के दातण वेचतो ?

३. होडीवाळा होडीवाळा, तारी होडीमां छे खजूर,
कयो जमाई मजूर, के मजूरी करतो फरे ?

४. सोनानी थाळीने रूपानो रे वाटको,
जमशे जमाई लाडको के मारा बापनो ।

५. काम नव आवडे, ने थई फरे हरायो;
कयो जमाई भवायो ? के भवाई करवा निसर्यो ।

कहावतें (राजस्थानी)

१. कोई बिना तो बजाई रै हाथां री ताली ना बजै ।
(बिना बजाये हाथ की ताली नहीं बजती)

२. बोलां रा घावज जुग में ना भरे ।
(बोली के घाव नहीं भरते)

३. फाट्यां दूदां कै रे जावण ना लगे ।
(टूटे हुए कभी नहीं जुडते)

४. उझल्योढा समंदर नांय दटे ।
(हृदय के भाव जब उमडने लगते है और अश्रु प्रवाह के रूप में बह कर ही रहते हैं रूक नहीं पाते)

५. भोम सपूतां बावडे जी वाला देवजी ने
वंस कपूतां परो जाय ।
(सपूत अपनी मातृभूमि पर लौट कर आते हैं, कपूत परे चले जाते हैं)

६. छोटे तो मुखडा हूं थे मोटी बातां मत कहो ।
(छोटे मुँह बडी बात)

७. सूरां का नारा का रै बार कर्योडा न फिरे ।
(शूरवीर और सिंहो के वार कभी निष्फल नहीं जाते)

८. कोई बेटो केरो दुःखडो रै साथ की छाती दलमले ।
(बेटे का दुःख माता की छाती को मसल डालता है)

मुहावरे (राजस्थानी)

१. मूंछ ना चढे (प्रतिष्ठित न होना)

२. बीडा उठाना (उत्तरदायित्व लेना)

३. कोई न रोवणहार (सर्वनाश होना)

४. जरणी दूध लजावे (कपूत होना)

५. थर-थर घूँजे गात (भय से काँपना)

६. कोई ताते तो धावां पर रै यो लूंणज भावज छिडकियो
(जले पर नमक छिडकना)

७. कोई बोलां रा काड्या छै रै तेजै कै तीखा तीरिया
(व्यंग्य वचनों के बाणों से वेधना)

८. कोई अंग-अंग लाग्या रै म्हारै छाँटा ताते तेल का
(गुस्से से जलकर राख होना)

९. बाप वचन तो होवे छै मरदां रा जुग में एक
(बाप और बचन एक ही होता है)

१०. मांगी मिलै न छाछ
(तुच्छ वस्तु भी कभी-कभी माँगने पर नहीं मिलती)

११. कोई अँइया तो देखेडी जी या जुग में झूठी ना हुवै
(आँखो से देखी कभी झूठ नहीं होती)

१२. वर टूठना
(देवता का प्रसन्न होकर वरदान देना)

सामाजिक मान्यताएँ (राजस्थानी और गुजराती)

१. तारा टूटना अशुभ माना जाता है । इस समय श्रीफल (नारियल) का नाम बोलते हैं ।

२. छींक आने पर ''छत्रपति'' या ''माँ अंबा'' बोला जाता है । या अपने इष्टदेव का नाम लिया जाता है । छींक भी देवता है ।

३. समय पर वर्षा न होने पर भोमिया, खेतरपाल को बल-बाकल चढाये जाते हैं ।

४ कुआ खोदने से पहले हनुमानजी की पूजा की जाती है ।

५. रात में फेकरी बोलना अशुभ माना जाता है क्योंकि यह आग उगलने वाली शुंगाली शिव कही जाती हैं ।

६. विवाह के बाद वापस घर आते समय बारात ग्राम सीमा पर पहुँचती तो नारियल वधेरकर उसकी चिटकियों के चार-चार टुकडे कर वर-वधू के हाथों सीमा पर चढवाते हैं । ये सब भोमिया, खेतरपाल, पितर आदि से सम्बन्धित हैं ।

७. दक्षिण दिशा यम दिशा कहलाती है इसलिए दक्षिण की तरफ मुँह किए शुभ कार्य नहीं किया जाता ।

८. दक्षिण की तरफ सिर करके नहीं सोते हैं क्योंकि उत्तरी ध्रुव ही देवताओं की बस्ती मानी जाती है तथा दक्षिण की तरफ राक्षसों की ।

९. बच्चे के छींक आने पर घरवाले - छींक 'माता छतरपति' 'माथे रति तालवे तेल, बाप के आँगणे दौड-दौड खेल' बोलते हैं ।

१०. बीमार को छींक आने पर कुटुम्बी जन शतंजीव (घणुं जीवजो) कहते हैं ।

११. बीकानेर, जैसलमेर की तरफ ग्यारस के रोज दूध नहीं जमाते और अमावस को दूध कम बेचते हैं ।

१२. मंगलवार के दिन मिट्टी नहीं खोदते हैं तथा गोबर मिट्टी से चौका भी नहीं करते हैं । मंगल भीम-पुत्र माने जाते हैं ।

१३. बुधवार के दिन बेटी की माँ सिर नहीं धोती हैं । भरे घडे के उपर रखकर उसे नये-नये कपडे पहनाते हैं ।

१४. गुरुवार के दिन पुरुष हजामत नहीं बनाते हैं तथा स्त्रियाँ सिर नहीं नहाती है ।

१५. शुक्रवार के दिन कोई शुभ कार्य प्रारम्भ नहीं करते हैं ।

१६. शनिवार के दिन नये कपडे तथा जूते नहीं पहनते हैं और किसी काम का प्रारम्भ नहीं करते हैं । समाप्त करना हो तो इस दिन करते हैं ।

१७. रविवार के दिन दातून नहीं करते हैं । इस दिन नमक, तेल, चना, आँवला, तिल आदि नहीं खाते ।

१८. जाँट की जड यदि नीम-पीपल से मिल जाती है तो उसे लक्ष्मीनारायण का रूप मान कर उसकी पूजा करते हैं ।

१९. नवरात्रि के दिनों में गरुड पक्षी का दर्शन करना शुभ माना जाता है ।

प्रकीर्ण

राजस्थान और गुजरात में प्रचलित लोक-नृत्य

भारतवर्ष की संस्कृति बडी विशाल है । इस महान देश के प्रत्येक राज्य में लोक-नृत्य प्रचलित हैं । हम यहाँ राजस्थान एवं गुजरात के लोकनृत्य की झांकी करेंगे ।

राजस्थान में प्रचलित नृत्यों को दो भागों में विभक्त किया गया है । (१)पुरुषों के नृत्य और (२) स्त्रियों के नृत्य । कुछ नृत्य केवल पुरुषों के द्वारा ही उपस्थित किये जाते हैं तथा कुछ स्त्रियों के द्वारा ।

➢ **घूमर :** यह पुरुषों का नृत्य हैं। होली के अवसर पर यह नृत्य किया जाता है। इसमें पुरुष और स्त्री- जिनका पार्ट पुरुष ही किया करते हैं - घेरा बनाकर नाचते हैं। होली के पार्ट पर पुरुष एक हाथ में छतरी (छाता) और दूसरे हाथ में दुपट्टा लेकर नाचते हैं। दर्शक गण इनके चारों ओर घेरा बनाकर खडे होकर इस नृत्य को देखते हैं। नाच बन्द हो जाने पर एक दर्शक उस घेरे में आकर ''छल्ला'' (मालवी दोहे) और ''छल्ला बोल्यो रे '' के साथ नाच पुनः प्रारम्भ हो जाता है।

➢**माँच के नृत्य :** राजस्थान में माँच नामक लोक-नाट्य प्रचलित है। इसका अभिनय करते समय नृत्य भी किया जाता है जो बडा सुन्दर तथा रमणीय होता है।

➢ **भीलों के नृत्य :** राजस्थान और गुजरात में भील जाति के लोग भी निवास करते हैं। इन भील-भिलालों के नृत्य उनके जीवन की ही तरह सरल होते हैं। भीलों के अधिकांश नृत्यों में स्त्री और पुरुष दोनों ही समान रूप से भाग लेते हैं। पुरुषों (भीलों) के नृत्यों में पद संचालन साधारण किन्तु गतिमय होता है। हाथों में अस्त्र-शस्त्र लेकर तथा पैरों में घुंघरूं बांधकर ये वृत्ताकार रूप में नाचते हैं। नृत्य के साथ माँदल (लोकवाद्य) बजाई जाती है। नृत्य में माँदल की गति के साथ ही पद से चालन की गति भी बढती जाती है। नृत्य का समाँ जब बंध हो जाता है तब तो पुरुष हुंकारते हुए नृत्य करते हैं और बीच में पशु-पक्षियों की तरह बोली भी बोलते हैं।

➢**मोहिली :** इस नृत्य में भलनी स्त्रियाँ वृत्ताकार रूप में मंद गति से नर्तन करती है। चार कदम दाहिनी ओर बढने के पश्चात् पाँचवा कदम पीछे की ओर रखती हैं। इनके पश्चात्, दाहिना पैर बायें पैर के पास ले जाकर आगे बढ जाती हैं। यही क्रम आगे चलता रहता है। इस पद संचालन में एकरूपता रहती है जिससे यह नृत्य बडा ही आकर्षक लगता है।

➢**पाली नृत्य :** स्त्रियाँ दो कतारों में आमने-सामने खडी हो जाती है । कुछ कदम आगे बढती है और फिर दाहिनी ओर पीछे हटती हुई वृत्ताकार में नृत्य करती है ।

➢**भवाई नृत्य :** भवाई नृत्य राजस्थान का लोक-प्रसिद्ध नृत्य है । इस नृत्य में उच्च स्तर की भावभंगिमा तथा पदसंचालन की वक्र चाल देखते ही बनती है । भवाई नर्तक अपने सिर पर अनेक मटके (५ से ११ तक) रखकर नृत्य करता है । नर्तक शरीर का ऐसा सन्तुलन रखता है कि एक भी मटका नृत्य करते वक्त हिलता तक नहीं । भवाई नृत्य करने वाले ऐसे ऐसे करतब दिखाते हैं कि दर्शक मंत्रमुग्ध हो जाते हैं । जैसे सिर पर मटके रखकर, नीचे जमीन पर पडी थाली पर खडे होकर ताल के साथ पैरों से थाली सरकाते हुए, कांच की गिलास पर खडे होकर गिलास सरकाते हुए, भाले को ऊपर फैंक कर नृत्यक्षेत्र का चक्कर लगाते हुए पुनः समय पर आकर गिरने

से पहले भाले को पकडना, तलवार की धार पर नृत्य करना, लोहे के खीले लगाये हुए बाजोठ पर खुले पैर नृत्य करना आदि रोमांचक करतब देखने योग्य होते हैं ।

➢ **गेर नृत्य :** राजस्थान और गुजरात के आदिवासी क्षेत्रों अंबाजी से उमरगाँव तक होली के अवसर पर पूरे माह में गेर नृत्य चलता रहता है । इस नृत्य में ढोल-थाली के वादन के साथ पुरुष लकडियों के डंके के साथ नाचते हैं । ताल के साथ थिरकते हुए अंग-प्रत्यंग होली की मादकता एवं उल्लास का अहसास कराते हैं । कभी - कभी एक ओर स्त्रियाँ का दल तथा उसके सामने दूसरी ओर पुरुष दल नृत्य करते हुए पास आते हैं और पीछे हटते हैं । इस तरह नृत्य चलता रहता है ।

➢ **गुजरात का गरबा नृत्य : :** गरबा गुजरात का प्रसिद्ध भक्तिपूर्ण नृत्य है जिसे नवरात्रि में दुर्गा की आराधना में महिलायें तन्मय होकर नृत्य करती हैं । गुजरात से जुडे हुए होने के कारण राजस्थान में भी इसका प्रचलन हैं । डुंगरपूर, आबू, पाली व बांसवाडा में तो यह नृत्य बहुत प्रसिद्ध है । गरबा तीन रूपों में किया जाता है । प्रथम रूप तो वह है जिसमें शक्ति की आराधना में स्त्रियाँ मिट्टी के घडे में छिद्र कर उसमें दीपक प्रज्जवलित कर फिर उसे सिर पर रखकर गर्भगृह के आसपास प्रदक्षिणा करती हैं या फिर धीरे-धीरे गोलाकार में घूमती हुई नृत्य करती हैं । यह नृत्य ताली व चुटकी से भी किया जाता है ।

गरबा का दूसरा रूप रास नृत्य में हैं । इसमें राधा कृष्ण, गोप-गोपियाँ के प्रणय चित्रण का प्रस्तुतिकरण होता है ।

तीसरे रूप में लोक-जीवन का सौन्दर्य प्रकट होता है । इसमें पनिहारी, नववधू की भावकुता, गृहकार्य में रत स्त्रियों का चित्रण होता है । गरबा लेते समय दुर्गा की भक्ति से संबंधित गीत गाये जाते हैं ।

गुजरात का गरबा नृत्य अन्यन्त अधिक मनमोहक, आकर्षक तथा मधुर होता है । पहले यह वास्तविक रूप में एक लोक-नृत्य था परन्तु अब कला तथा अभिरामता के कारण शास्त्रीय नृत्य की कोटि (स्टेट्स) को प्राप्त करता जा रहा है ।

गरबा एक प्रकार का सामूहिक नृत्य है जो गाँवों तथा शहरो में गोधूलि की बेला में प्रस्तुत किया जाता है । इसमें केवल स्त्रियाँ ही नृत्य करती है । स्त्रियाँ अपने सिर के उपर मिट्टी का बना 'हडिया' की आकृति के समान पात्र रख लेती है जिसमें अनेक छेद बने रहते हैं । इसी पात्र के बीच में एक दीपक जला कर स्थापित कर देती है । इस दीपक का प्रकाश, पात्र में बने छिद्रों के माध्यम से बाहर निकलता रहता है । ये स्त्रियाँ दीपक जलते हुए पात्र को अपने सिर पर रखकर सामूहिक रूप से नृत्य करती हैं । इनके पद-विक्षेप की यह विशेषता होती है कि सिर पर रखा पात्र गिरने न पाये और पात्र में स्थापित दीपक बुझने न पाये ।

इस अवसर पर अनेक प्रकार के गीत भी गाये जाते हैं जिनका वर्ण्य विषय सामाजिक, राजनैतिक तथा ऐतिहासिक हुआ करता है । सुज्ञ जन वेश-भूषा में, सुन्दर तथा रमणीय, गोरी गुजराती स्त्रियों के द्वारा प्रस्तुत किया जाने वाला गरबा नृत्य बडा ही सुन्दर, सरस तथा मनोरम होता है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ-१

(१) लोक संस्कृति की रूपरेखा, पृ. १०२, १०३, १०४
(२) रा. च. मा. (अ. का.) १५८/२
(३) विद्यापति पदावली
(४) सूरसागर
(५) पंडित बटुकनाथ शर्मा - पालि जातकावलि
(६) सरस्वती कण्ठाभरण : २/१३४
(७) डो. चिंतामणी उपाध्याय : (लोकायन : १९६१-१०३)
(८) हाडौती लोकगीत : १९६६, पृ. १५
(९) मोहन कृष्ण दर : कश्मीर का लोक साहित्य : १९६३ - ३०३
(१०) स्पुतनिक पर पहेली के लिये दे : हाडौती लोकगीत, १९६६, पृ. १५

सन्दर्भ ग्रन्थ-२

(१) लोक साहित्य और संस्कृति
डॉ. दिनेश्वर प्रसाद, जयभारती प्रकाशन इलाहाबाद

(२) हिन्दी का प्रादेशिक लोक साहित्य शास्त्र, डॉ. नन्दलाल कल्ला, प्रकाशक : राजस्थान ग्रन्थागार जोधपुर (राजस्थान)

(३) लोक संस्कृति की रूपरेखा : पृ. ३८-३९

(४) लोक संस्कृति की रूपरेखा, लोक संगीत खण्ड- ५, पृ. २४६-२५१

(५) राजस्थान की सांस्कृतिक विरासत - डॉ. सौ. लीला कर्वा, पृ. ६०-६१

(६) लोक साहित्य की रूपरेखा पृ. १०२, १०३, १०४

(७) खायणां : वसंत जोधाणी

(८) कोयडा-उखाणा : नवो हलको, संपादक : पुष्कर चंदरवाकर

(९) कुसुम पाल - काठियावाड तथा गुजरात के गरबे - सम्मेलन पत्रिका (लो.सा.सं.) दि. २०१० पृ. ४२५

(१०) भडली वाक्य : लोक साहित्य : धरतीनुं धावण, झवेरचंद मेघाणी

अध्याय - ६

गुजराती और राजस्थानी लोक-साहित्य में नारी संवेदन

अनुक्रमणिका

- लोकगीत में नारी संवेदना
  - पुरुष की संवेदना
  - विरहीजनों की संवेदना
  - खारवणों की संवेदना
  - पति के लिए तडपती नारियाँ की संवेदना
  - बरसात के वक्त में नारी की संवेदना
  - नारी को पति प्राण की चिंता
  - बहन की संवेदना
  - माँ की संवेदना
  - कन्या की वेदना
  - माता-पिता की वेदना
  - कन्या बिदाई के गीत में संवेदना
  - वर -कन्या के माता की वेदना
  - प्रेमानंद के ओखाहरण में नायिका की वेदना
  - लोक रचनाओं में विरह
  - बाँझ स्त्री की संवेदना
  - लोरी गीतों में माँ का संवेदन
  - वर ढूंढने की कन्या की वेदना
  - माता और कन्या की वेदना
  - दादा की वेदना
  - मृत्यु के विलाप गीतों में वेदना
  - मुस्लिम जनाजा का विलाप
  - वेदना के आधार पर पले-बढे करुण गीत
  - बाँझ स्त्री की वेदना
  - दादा और दीकरी की वेदना
  - कुमारिका की वेदना
  - दीकरी की विरह वेदना
  - कन्या की माँ की वेदना
  - वर की माँ की वेदना
- तापी नदी का संवेदन
  - छोटी उम्र की बहू की संवेदना
  - गुर्जर नारी की शौर्य गाथा में व्यक्त संवेदना
  - मोरबी नगर की वाणियण की संवेदना

- ☐ वियोगावस्था में ऋतुओं की असर
  - ◆ विरहिणी नारी के संदेशवाहक पशु पक्षी
  - ◆ राजस्थानी लोकगीतों में पशु
  - ◆ विरहिणी नारियाँ के हृदय में सूरज, चांद, तारे का महत्त्व
  - ◆ विरहिणी नारियों के हृदय में बादल-वर्षा - बिजली का महत्त्व
  - ◆ विरहिणी नारियों के हृदय में सांझ और दिन रात का महत्त्व
  - ◆ विरहिणी नारियों के हृदय में नदी, तालाब, समुन्दर का महत्त्व
  - ◆ पक्षी के माध्यम से विरहोत्तेजना
  - ◆ पत्नी की व्यथा
  - ◆ वियोगावस्था
  - ◆ माँ की विरह-वेदना-करुणता
  - ◆ लोरी में माँ की वेदना
  - ◆ वेजी की वेदना
  - ◆ विरह दशा का प्रबल कारण
  - ◆ बैरन चाकरी में नारी संवेदन
  - ◆ वियोग के सूर
- ☐ मृत्यु वक्त के विलाप गीत में संवेदन
- ☐ कुमारी अने रसियो वालम में संवेदना
- ☐ भेरियो गारुडी अने सगई संगार में संवेदना
- ☐ पडियेल हिरलानी गांठ में संवदेना
- ☐ ढोला मारु में संवेदना
- ☐ शेणी विजाणंद में संवेदना
- ☐ जसमा ओडण में संवेदना
- ☐ मेह - उजली में संवेदना
- ☐ तेजमल - सजना की संवेदना
- ☐ सोनल के गीत में संवेदना
- ☐ ढोला मारू रा दूहा में संवेदना
- ☐ ऋतुनुं दोहा साहित्य में संवेदना
  - ◆ मेह-उजळीनी बारमासी में संवेदना
  - ◆ ओढा-होथलना दोहा में संवेदना

- ☐ प्रास्ताविक दोहा में संवेदना
  - ◆ अन्य कई दोहे

तुलना

  - ◆ रीति-रिवाजों में साम्यता
    - ○ पीठी गीत में साम्यता
    - ○ सुहाग-कामण गीत
    - ○ कुमकुम पत्रिका गीत
    - ○ मंडप रोपण के गीत
    - ○ सप्तपदी
    - ○ सात वचन
    - ○ गणगोर गीत में साम्यता
    - ○ लोरी के गीत में साम्यता
    - ○ विवाह गीतों में साम्यता
  - ◆ लोक साहित्य की तुलना
    - ○ गुजरात और राजस्थान के लोकनृत्य
    - ○ प्रदेश-प्रदेश में एक जैसे ही लोकगीत
- ☐ एक समान कथा गाथाएँ
  - ◆ चारणी देवी-आवडमाता और गुजरात की आवडमाता नाडेश्वरी माता
  - ◆ लोकदेवता गुगाजी और गुजरात के वीर भाथीजी महाराज
  - ◆ जेसल जाडेचा और गुजरात का जेसल जाडेजा
- ☐ कहावती कथाओं में साम्यता
- ☐ लोकविश्वास एवं लोकमान्यताओं में साम्यता
  - ◆ मंत्र-तंत्र जादू-टोने
  - ◆ अन्धविश्वास
  - ◆ पशु-पक्षी मान्यताएँ / कहावतों में साम्यता
- ☐ लोक-साहित्य की तुलना
  - ◆ भडली वाक्य
  - ◆ पहेलियों की तुलना
  - ◆ ऋतु वाक्य
  - ◆ अनुभव कथन
  - ◆ खायणां
- ☐ संदर्भ ग्रंथ-१
- ☐ संदर्भ ग्रंथ-२

नारी संवेदन

अबतक हमने लोक-साहित्य की विविध विधाओं का उल्लेख करके विगतवार विगतें प्राप्त की । लेकिन इस महत्त्वपूर्ण अध्याय-६ में हम अपने विषय ''गुजराती और राजस्थानी लोक-साहित्य में नारी संवेदन-तुलनात्मक अध्ययन'' के अनुरूप गुजराती और राजस्थानी लोकसाहित्य में नारी संवेदन कहां और कैसे वर्णित किया गया है उसका अध्ययन करेंगे । इस के बाद दूसरे भाग में हम गुजराती और राजस्थानी लोक-साहित्य में कौन कौनसी साम्यता है उनका भी अध्यपन करेंगे । तो पहले हम नारी संवेदन को देखते हैं ।

नारी संवेदन

लोकगीत में नारी संवेदना : यहाँ हम गुजरात और राजस्थान प्रदेश के एक लोकगीत में नारी संवेदन का तुलनात्मक अध्ययन करेंगे -

गुजराती (काठियावाडी) लोकगीत : (हालरडुं - पालना)

संतोकरा मामा आवता'ता
ढाल पछेडो लावता'ता
ढाल पछेडे नवली भात
संतोक ओढे दि'ने रात ।
ओढी ओढी जूनो कर्यो
सरवर पाळे झिलवा ग्यां
हाडियो आव्यो लइ गियो
हालां । हालां ।

ढाल-पछेडा, सरवर की पाल, संतोक झिलणिये खेले, कागा आये, कान में कुछ बात कह जाय और पछेडा चाँच में ले जाय, एक छोटी-सी, रम्य और गूढ दुनिया खडी हो गई ।

राजस्थानी (मारवाडी) लोकगीत : (हालरडुं - पालना)

हालां हालां करता'तां
संतोकरा मामा रमता'ता
रमते खेलते बाजरी वाई
बाजरीरा खेतमें ढेलडी विंयाई;
ढेलडीरा बचिया राता रे भाई
संतोकरा मामा माता रे भाई
हालां..... हालां ।

बाजरे का खेत, ढेल का प्रसव, बच्चों का लाल रंग, उसमें काव्य हैं, शब्दों की कोमल रचना हैं । ताल की तरलता है, पालने में पलनेवाले बच्चे के लिए उसमें नींद की लहरें हैं । उसमें माता का हर्षोल्लित-आनंदित संवेदन घूटघूट कर भरा हुआ है ।

★★★

नारीहृदय में जब जब सुखदु:ख, आशा-निराशा या आनंद-शोक की प्रबल लहरें उठती हैं तब ये गीत के रुप में व्यक्त हो जाती है । उसने अपने अच्छे या बूरे किसी भी भाव को निष्कपट शब्दबद्ध किये, उसमें सरल छलना है । भावगोपन की वृत्ति कहीं भीं नहीं मिलती । यहाँ गुजरात और राजस्थान प्रदेश के लोकगीत में नारी संवेदन का तुलनात्मक अध्ययन के लिए और एक रचना देखें -

गुजराती लोकगीत :

सात साहेली पाणी रे ग्या'तां
सैयर मेणां बोल्यां हो राम
पाणीडे ग्यां'ता रामनी वाडी
अमे रे परण्यां ने तुलसी कुंवारां
एवा सैयर मेणां बोली हो राम ।
- पाणीडे.

घेर आयी तुलसी ढोलिया ढाळे,
ढोलिये चडी तुलसी पोढ्यां हो राम
- पाणीडे.

को'तो तमने तुलसी सूरज परणावुं
चंदर वरनां मांगां होय राम
- पाणीडे.

सूरजना दादा । तेज घणेरां,
चंदर राते खंडत हो राम
- पाणीडे.

राजस्थानी लोकगीत :

सात सहेली पाणीडे ने निकली
सातुं परणी एक उणिया रे, हो राम,
भरण गई जल जमना को पाणी
सातुं की सातुं यो उठ बोली
तुळछा ओड कुंवारा हो राम
- भरण.

रोवत ठिणगत बाई तुळछां घर आई
तो बाबो ली गोठ बिठाई हो राम
- भरण.

कै बाई थाने चांदो वर हेरां
कै सूरज वर हेरां हो राम
- भरण.

चांदो तो बाबोजी चकमक उगै,
तो सूरज की किरण घणेरी हो राम
- भरण.

सात सहेली जब पानी भरने के लिए जाती है तब उनकी सहियर एक कंवारी सहियर को कटुवचन बोलती है तब वह घर आकर ऐसे ही खटिया ढालकर सो जाती है । उसके घरवाले-कुटुंबीजन उनको कई प्रलोभन देतें हैं, फिर भी वह क्रोध में घूमती फिरती है । यह लोकगीत भी गुजरात और राजस्थान को मिलता-झुलता है और उसमें नारी का क्रोधित रुप संवेदन व्यक्त किया गया है ।

ढोला मारु लोकगाथा में आनेवाले गुजरात और राजस्थान में बडी मात्रा में नारी के विरह की तुलना दर्शायी गई है । विरह में मारु अपने ढोला को दोहों में संदेश भेजती है :

मारुवणी भगताविया मारु राग निपाइ ।
दूहा संदेसाँ-तणाँ दीया तिर्यां सिखाइ ॥ १०९ ॥
वायस वीजउ नांम, ते आगळि लल्लउ ठवइ ।
बइ तुँ हुई सुर्जाण, तउ तूं वहिलउ मोकळे ॥ १४२ ॥
संदेसउ जिन पाठवइ, मरिस्यउँ हीया फूटि ।
पारेवाका झूल जिउँ पडिनई आँगणि त्रूटि ॥ १४३ ॥

यहाँ राजस्थानी दोहो में मारु का अपने प्रियतम ढोला को मिलने का विरह व्यक्त किया गया है ।

उसी तरह गुजराती सोरठाओं में नारी का विरह संवेदन तो व्यक्त किया गया है लेकिन उनकी खुशियाँ, आनंद भी व्यक्त किया गया है । यह विरह-मिलन का जो संवेदन है वो यहाँ दी गई गुजराती पंक्तिओं में देखें :

मारु सूती अटारीए, रतडो पलंग बिछाय ।
तारा तरवरियुं करे, चन्द्र रियो ललचाय ॥
नवा मोल ने धण्य नवी, नवी जवानी नेह ।
ठाकर घेर पधारिया, मोती वरस्या मेह ॥
कड्य ललके कोहां ढले, ललके लाल कबान ।
ढोला ! वड्यनी ढोलिये, मारु नानी म जाण ॥

पुरुष की संवेदना :

यहाँ दिये गये लोकगीत में नारी का नहीं लेकिन पुरुष पात्र की संवेदना व्यक्त की गई है । पति बहुत दिनों के बाद घर आता है और घर में अपनी पत्नी को नहीं देखता है तो वह अपनी माँ को पूछता है कि माँ मेरी पतली परमार्य कहाँ गई है, वो कहीं दिखाई नहीं रही है वो

कहाँ है ? तब माँ अपने पुत्र को अलग अलग बहाने बताकर गुमराह करती है । पति माँ ने बताई हुई सभी जगह पर घूम कर खोजता है लेकिन अपनी पत्नी का कहीं भी पता नहीं लगता है । क्योंकि माँने तो पत्नी को मार डाली है । कहाँ से मिलेगी ? यहाँ पुरुष पात्र की संवेदना व्यक्त की गई है देखें :

श्रृंगारोद्दीपक काव्य-सामग्री का इतना जलद रंग दीर्घकालीन विप्रलंभ की दशा को ही आभारी है । ऐसा वियोग कभी -कभार करुणान्त बनता है :

माडी ! बार बार वरसे आवियो रे
माडी ! नो दीठी पातळी परमार्य रे जाडेजा जी मा !
मोलुमाँ दीवो शग बळे रे,
नेवे ते नवरंग चूंदडी रे.

(हे माता, बारह बरस के बाद आया हूँ, कहीं पतली परमार्य (नारी) नहीं दिखाई देती, महल में दीये की लौ जल रही है और खपरैल पर उसकी नवरंगी चुनरी पड़ी है ।)

इस गरबा की कथा यह है कि सैनिक बारह वर्ष के बाद वापस आने पर घर में अपनी 'पातली परमार्य' को-पत्नी को-खोजता है । किन्तु 'नहीं दीखी' इसलिए माँ से पूछता है । माँ उसे बहाना बताती है :

दीकरा, हेठो बेसीने हथियार छोड्य, कलैया कुंवर !
दळणा दळीने हमणां आवशे रे

(बेटा हथियार छोड़कर नीचे बैठ, मेरे कनैया कुंवर, अभी दाना दर कर आयेगी ।)

★

पाणी भरीने हमणां आवशे रे

(पानी भरकर अभी आयेगी)

★

धोण्युं धोईने हमणां आवशे रे

(कपड़ा धोकर अभी आयेगी)

पुरुष तो माँ द्वारा कहे सभी जगह पर पातळी परमार्य-पत्नी-को खोज आता है :

माडी ! घंटीयुं ने रथडा जोई वळ्यो रे,
माडी ! नो दीठी पातळी परमार्य रे जोडेजी मा ! मोलुंमां.

★

माडी ! कूवा ने वाव्युं जोई वळ्यो रे,
माडी ! नो दीठी पातळी परमार्य रे जोडेजी मा ! मोलुंमां.

★

माडी ! नदीयुं ने नेरा जोई वळ्यो रे,
माडी ! नो दीठी पातळी परमार्य रे जोडेजी मा ! मोलुंमां.

(हे माता-मैं चक्की और जांता पर देख आया, कुंआ और वाव देख आया, नदी और नहर देख आया, कहीं भी मेरी 'पातळी परमार्य'-पत्नी नहीं दिखाई दी ।)

फिर भेद खुलता है : पत्नी को तो माँ ने हाल ही में मार डाला है । इसलिए स्वामी, मृत पत्नी के असबाब का निरीक्षण करता है । सौभाग्य के श्रृंगार की वे सभी वस्तुएँ 'कोरी' बिना उपयोग किए पड़ी है । अपनी अनुपस्थिति में पत्नी ने पाले विजोगण-व्रत के चिन्हों को देखकर पुरुष इस संसार में वैराग्य का अनुभव करता है :

एनी बचकीमां कोरी बांधणी
एनी बांधणी देखीने बावो थाऊँ रे, गोझारण मा !
मोलुमां आंबो मोरियो रे.
एनी बचकीमां कोरी टीलडी;
एनी टीलडी देखीने तरसूळ ताणुं रे, गोझारण मा !
मोलुमां आंबो मोरियो रे.

(उसकी डलिया में कोरी चूनरी, चूनरी को देखकर जोगी बन जाऊँ रे पापी माँ, महल में आम मौर गया । उसकी डलियाँ में कोरी बिन्दी, उसकी बिन्दी को देखकर त्रिशुल तानूँ रे, पापी माँ, महल में आम मौर गया ।)

विरहीजनों की संवेदना :

विहरीजनों को विरह या संवेदना ही लोक-साहित्य में व्यक्त हुई है ऐसा नहीं है पत्नी अपने पति को कहीं नजदीक में नौकरी ढूंढने को कहती है क्यों कि तुम्हारी चार टके की नौकरी के लिए मेरी लाखो मोहर की मूल्यवान रात चली जाती है । यहाँ नारी की संवेदना व्यक्त हुई है । विहरीजनों में विरह के साथ विनोद रसिकता भी व्यक्त हुई है, वो भी देखे :

किसी न किसी विधिवैषम्य के कारण रुपान्तरित होती जीवनस्थिति के चित्रों को अंकित करते ये गीत, ये गाथाएँ और ये कहानियाँ सोरठी कंठस्थ साहित्य को करुणरसिक बनाती हैं । ऐसी विरहदशा का विनोदात्मक चितार देते गीतों से भी परिहास की सपाटी के तल से पातालकूट अश्रुजल उभरता है :

मेंदी ते वावी, माळवे, अेनो रंग गियो गुजरात
मेंदी रंग लाग्यो रे
नानो दियरियो लाडको कांई लाव्यो मेंदीनो छोड - मेंदी.
वाटी घूंटीने भर्या वाटका, भाभी, रंगो तमारा हाथ - मेंदी.
हाथ रंगीने देर शुं रे करुं, एनो जोनारो परदेश - मेंदी.

(मेंहदी का पौधा बोया गया मालवा में और उसका रंग गया गुजरात में, मेंहदी का रंग लगा । छोटा लाडला देवर मेंहदी का पौधा लाया । पीस-घोटकर कटोरियां भरीं, भाभी, तुम अपना हाथ रंगो, हाथ रंगकर देवर क्या करूँगी, इसको देखनेवाला तो परदेश में हैं ।)

शृंगार किसे दिखाने के लिए सजे ? सिपाहीगिरी करने परदेश गया हुआ पति याद आने पर

संदेशा कहलवाती है - झूठ-झूठ बहाना बताती है : ' तारी बहेन परणे छे, घेर आव । तारी मा मरे छे, घेर आव ('तुम्हारी' बहन ब्याह रही है घर आओ', तुम्हारी मा मर रही है, घर आओ) नहीं आता है । अन्त में 'तारी मानेतीनी उठी आँख, माटे घेर आव' (तुम्हारी प्यारी की आँख आई है, इसलिए घर आओ) तो तुरन्त -

हालो सिपाहीयो ने भाईबंधीओ;
हवे हलके बांधो रे हथियार, मेंदी रंग लाग्यो रे

(चलो सिपाहियों और दोस्तों, अब जल्दी से हथियार बांधो मेंहदी का रंग लगा है ।)

किन्तु इसी गुर्जर मेंहदी-गीत के राजस्थानी पाठ में पत्नी घर आये हुए पति का जो कान पकड़ती है उसमें विनोद के छद्मवेश में कितनी करुणता है !

चार टकारी थारी नौकरी, लाख मोहरकी म्हारी रात
नेडकी कर ल्यो, राजन, चाकरी, सांझ पड्यां घर आव

(सोदागर मेहंदी राचणी : राजस्थान के लोक गीत)

(हे स्वामी, तुम्हारी नौकरी तो चार टके की है, किन्तु मेरी रात तो लाख मोहर की मूल्यवान है । इसलिए कहीं नजदीक में नौकरी ढूँढ लो ताकि सांझ पड़ते ही रोज घर आओ)

चाकरी पर जानेवाले स्वामी का समरांगण में मृत्यु होता है तब वह मृत सैनिक की वेदना क्या है वो इस गीत में दर्शायी गई है । देखिए :

पति को पेटगुजारा के लिए परदेश जाना पड़ता है । पत्नी यहाँ तक प्रस्ताव करती है कि मैं चरखा चलाकर अपने दोनों का पेट भरूँगी । ऐसे भाव दर्शानेवाले गीत भी हैं । चाकरी पर जानेवाले स्वामी का समरांगण में मृत्युशैया यह चारणों को बिरदाने का विषय हो सकता है, भले ही देशभक्ति और वीरता के साहित्य में कवि उसे कृत्रिम शृंगार पहनाये, लोकगीत की निर्व्याजता और सत्यनिष्ठा, तो मरते हुए सैनिक के अंतस्तल में जाकर ऐसे उद्‌गार ले आती है :

पे'लो रे जुवार मारा दादाजी ने के'जो;
होकलियानो भरनार दीकरो तारो त्यां रियो.
बीजो रे जुवार मारी माताजीने के'जो;
घडपणनो पाळनार बेटडो तारो त्यां रियो
त्रीजो रे जुवार मारी बेनीजीने के'जो;
करियावरनो वोरनार वीरो तारो त्यां रियो
चोथो रे जुवार मारी परणेतरने के'जो;
खोळामां पोढ़ाड़नार, पियु तारो त्यां रियो.

(लोकगीत, सं. रणजितराम महेता)

(पहला संदेशा मेरे दादाजी से कहना, हुक्का भरनेवाला तेरा बेटा वहीं रह गया । दूसरा संदेशा मेरी माँ से कहना, बुढ़ापे का सहारा तेरा बेटा, वहीं रह गया । तीसरा संदेशा मेरी बहन से कहना,

दहेज देनेवाला तेरा भाई वहीं रह गया । चौथा संदेशा मेरी ब्याहता से कहना, गोदी में सुलानेवाला तुम्हारा पिया वहीं रह गया ।)

खारवणों की संवेदना :

सावन पूर्णिमा के दिन जहाज पर चढनेवाले अपने नाविक पति की विरह वेदना को भुलाने के लिए खारवण स्त्रियाँ जो गीत गाती है उस में पुरुष और नारी का संवेदन व्यक्त हुआ है । देखिए :

जोबनियां मारां आज आव्यां ने काल्य जाशे,
जोबनियां काल्य जातां रे'शे.

(मेरा यौवन आज आया और कल चला जाएगा, यौवन कल चला जाएगा ।)

ऐसे चले गये यौवन के पिछवाड़े लगभग दो सौ वर्ष पूर्व सौराष्ट्र के तीरवासी फिरंगियों ने अपनी लालसा में फंसाई नाविक-पत्नी का गीत है :

तुं तो मंबी हाल्यो, तुं तो मलबार हाल्यो,
नाणानी रे खोट, खरचीनी रे खोट.
काकाना रे काळु मामाना मूळु,
दुःखडलां रे देवे, दुःखडलां रे देवे.

(भरणपोषण के खातिर, हे पिया, तुम तो मुंबई - मलबार की फेरी में चले गये । उसके बाद मुझे काका-मामा के पुत्रों ने दुःख दिया ।)

उन्हीं दिनों में हमारे गाँव के सिवान में टोपीवाला का पड़ाव पड़ा :

जांगलो रे आव्यो, टोपीवालो आव्यो;
पीथलपरने पादर, केराणाने पादर.

(टोपीवाला जांगला आया, पीपलपर से सिवान तथा केराणा के सिवान में ।)

और मैं एकबार पानी भरने निकली । टोपीवाला पीछे-पीछे आया : मेरा रूप देखा । मसल डाला :

वंटोळो रे आव्यो, वंटोळो रे आव्यो,
चूंदडली रे उडी, पांभडली रे उडी.

★

टोपियाने घेर पोढी, जांगलाने घेर पोढी

(सौराष्ट्रनां खंडेरोमां)

(बवंडर आया रे बवंडर आया, चुनरी उड़ी रे डुपट्टा उड़ा, टोपीवाले के घर सोयी, जंगली के घर सोयी ।)

पति के लिए तड़पति नारियाँ की संवेदना :

युद्ध के प्रति नफरत, परदेश की चाकरी के प्रति वैर-भाव, पेट गुजारने के प्रश्न की दुविधा, परदेशी पिया के लिए झंखना, पीछे से हवसखोरों के हाथों फंसना, इन सभी विषयों में सोरठी नारियों के आत्मनितार के समान गीत कंठस्थ साहित्य की गोदी में रखे हैं । और लोकसाहित्य निखालस है । इसलिए जो-जो कहना है उसे बिना छिपाये-बिना तिरस्कार से कह डालती है । पति की मृत्यु के बाद पुनर्विवाह की छूट मिलने, एक संसार में न रुचे तो उसे तोड़कर नया संसार सजाने के लिए उसके समाज ने उसे मुक्त रखा है, फिर भी ये सोरठी नातरिया वर्ण की नारियाँ यदि पति-स्नेह की खातिर रोती-तड़पती रही हैं तो उनमें संस्कार होना चाहिए । वह संस्कार-'कल्चर'-सवर्णों का निरा अनुकरण होता तो इसमें से साहित्य नहीं पैदा होता ।

बरसात के वक्त में नारी की संवेदना :

लोकगीत में नारी बरसात में अपने पिया को परदेश जाने नहीं देती । उसको रोकते हुए कहती है :

आभमां झीणी झबूके बीजळी रे
झीणा झरमर वरसे मेघ, गुलाबी !
केम करी जाशो चाकरी रे !
भींजाय हाथी ने भींजाय घोडलां रे
भींजाय हाथीनो बेसतल सूबो, गुलाबी !
केम करी जाशो चाकरी रे !

(आकाश में झीनी झीनी बिजली चमक रही है और झीना झरमर गुलाबी मेह बरस रहा है । हे पिया, कैसे चाकरी पर जाओगे ? हाथी-घोड़ा भीग रहे हैं और हाथी पर बैठनेवाला प्रदेश का सूबा भी भीग रहा है, तो हे पिया, कैसे चाकरी पर जाओगे ?)

नारी को पति-प्राण की चिंता :

पति के प्रवास की ऐसी विषमता उसे सालती है । इसके उपरांत उसकी भावना पति के साथ जाने की नहीं बल्कि पति को घर पर रोकने की है । उसका मन पहाड़ों पर मौज करने के बजाय पति के जीव को जोखिम से बचाना होता है :

तमने वा'ली दरबारी चाकरी रे
अमने वा'लो तमारो जीव, गुलाबी !
नै जावा दउं चाकरी रे.

(हे पिया, आपको तो दरबारी चाकरी प्यारी है । मुझे प्यारा है आपका जीव । मैं चाकरी पर नहीं जाने दूँगी)

बहन की संवेदना :

मामेरा (मोसाळुं) भरने का समय हो चुका है । वर या कन्या की माता राह देख रही है कि अपने मायके (पिहर) से भाई कब आयेगा ? यानीकि भाई आयेगा ऐसी चेष्टाएँ शरीर में होती है ।

मारी आंखलडी भींजाय रे मारो नख नमे रे
मारो फरके छे डाबा पगनो लांक रे
घेरे कोण साजनियां आवशे रे
मारे किया भाई आव्या किया भाई आवशे रे
हुं तो जोई रही छुं दिनेशभाईनी वाट रे
अमृतभाई आव्ये रंग रे'शे रे !(१)

लेकिन बहुत इन्तजार करने के बाद भी भाई नहीं आता है । ननदी ताने देने लगी । बहन अकुलाई सी घर (डेली) के बाहर दौडी जाती है । दूर दूर तक रास्ते पर नजर दौडाती है । शरीर पर पसीना होता है तब किसीने कहा कि आपका भाई आ रहा है ।

बाई रे साव रे सोनानो सारो दीवडो
अेने दीवडीअे रंग रूपाना मोर
सोहन दांडीनो दीवडो
बाई रे दीवडो मेलावो मोटे मांडवे रे
त्यां चडी बेसजे मारो देर ने जेठ,
सोहन दांडीनो दीवडो
नणदी मचको करीने बोल्यां रे
भाभी ! ना आव्यो तारो लोभी वीर.
सोहन दांडीनो दीवडो.(२)

ऐसे ताने सुनने वाली स्त्री की दशा (वेदना) यहाँ की गई है । कमखा (कब्जा) की दोरी तूट गई है, बाल का अंबोडा बिखरा हुआ है और मुँह पर से पसीने की बूंद छाती तक फैले हुए है ।

बाई रे कसुं रे छूटीने वेणु मोकळी
मारे हैडे रे कांई ऊतर्यो तंबोळ.
सोहन दांडीनो दीवडो
देर वधामणी लावे
भाभी ! आव्यो रे तारो माडी जायो वीर
सोहन दांडीनो दीवडो
बाई कसु रे बांधी ने वेणुं ठांसियुं
जी रे मारे हैडे हरख न माय
सोहन दांडीनो दीवडो

भाई (वीरा) को देर होने से बहन पूछती है कि, अरेरे वीरा ! इतनी देर क्यों हो गई ? तब वीरा उत्तर देता है कि :

वीरा ! चांदलियो ऊग्यो ने हरण्युं आथमी रे
वीरा ! क्यां लगण जोउं तमारी वाट रे
मामेरा वेळा वही जशे रे !
बेनी ! पाटण ग्यो'तो पटोळां वोरवा रे
बेनी ! पाटणमां पडी'ती हडताळ
अमदावाद ग्यो'तो वोरवा रे !
वीरा ! चांदलियो ऊग्यो ने हरण्युं आथमी रे
वीरा ! कयां लगण जोउं तमारी वाट रे
मामेरा वेळा वही जशे रे !
बेनी ! चीतळ ग्यो'तो चूंदडी वोरवा रे
बेनी ! चीतळमां पडी'ती हडताळ
अमदावाद ग्यो'तो वोरवा रे !(३)

यहाँ बहन की संवेदना प्रकट की है ।

माँ की संवेदना :

माँ अपने बेटे को कहती है कि बहन के घर मामेरा (मोसाळुं) है उसमें किसी भी प्रकार की कभी न रहनी चाहिए । गहनें-कपडें सब कुछ देना ।

जीवणजीने जीवो लैने मोसाळुं, मोहनजीने जावो लैने मोसाळुं;
के'छे पुत्रने तरवाडी काळु..... जीवण.
छाब सोनेरी वस्त्रेशुं भरजो, घणां घरेणां छाबमां धरजो;
बेनी बाळाने बहु राजी करजो,.... जीवण.
सासु ससराने चितवी चित्ते, देजो वस्त्र रूडां करी प्रीते;
न्यून राखशोमां कोई रीते ..... जीवण.
वस्त्र घरेणां घनश्याम तणां, पाघ दुशाल धर्मना घणां;
लई जाजो म राखशो मणा..... जीवण.
बेनी बाळा सारस घडशाळी, बीजा वस्त्र ते देजो संभाळी;
कोई रीते न रहे अेशियाळी..... जीवण.
देजो मोती माळानी झूडी, कोटे कंठेसरी लागु रूडी;
मोहनमाळा हाथे हेम चूडी..... जीवण
लेजो अखंड मणि जड्यो मोड, सगां बधु जाजो जोड जोड;
बेनी बाळानी जई पूरो कोड..... जीवण.(४)

बहन को मामेरा (मोसाळुं) में कौनसी कौनसी चीजें देती है उनका वर्णन गीत में किया है । यहाँ माँ की संवेदना प्रकट की गई है ।

कन्या की वेदना :

अपने पिताजी के आँगन का वृक्ष को छोडने की घडी आ पहुँची है और पंखिणी जैसी दीकरी (कन्या) पिता की क्षमा माँगती है ।

दादाने आंगण आंबलो, आंबलो घोर गंभीर जो,
अेक ते पान में चूंटियुं दादा, गाळ नां देजो जो,
अमे रे लीला वननी चरकलडी, ऊडी जाशुं परदेश जो,
आज रे दादाजीना देशमां, काले जाशुं परदेश जो,
दादाने वा'ला दीकरा, अमने दीधा परदेश जो !(५)

कन्या अपने पिताजी को कहती है कि, पिताजी ! अब तो वापस जाओ आप कितने दूर आओगे ? आपने तो मेरा ब्याह बहुत दूर किया है ।

परशाळेथी केसर ऊडे,
घोडवेल्युं आवे रे उतावळी.
घोडवेल्ये बेसी बेनीबा चाल्या,
दादा ते छगनभाई वळामणे,
वळो वळो रे मारा समरथ दादा,
अमने दीधां तमे वेगळा !(६)

वहेल (वेलडी) के पैडां के तले नारियल कुचाला गया और सभी स्वजन कन्या को बिदाई देने के लिए गये । सभी ने कन्या को करुण शीख दी । पिता अपनी भावनाओं को नहीं रोक सकता इसलिए वो शेरी से ही वापस चला जाता है और कन्या का भाई गाँव की सीम तक उसको बिदाई करने के लिए जाता है । बिदाई हुई बहन सीम में अपने पिता के खेत की ओर अनिमेष देखती है और भावुक होकर मनोमन कहती है :

आ दृश्य आ दृश्य पीपळो, आ दृश्य दादानां खेतर,
डेली वळामण बानो दादोजी, दीकरी, डायलां थाजो !
हैडे ते जडजो सोना सांकळा, मनडां वाळीने रे'जो !
ससरानो सरडक घूमटो, सासुने पाये ते पडजो !
जेठ देखी झीणां बोलजो, जेठाणी वाद न वदजो !
नानो देरीडो लाडको, अेनां हस्यां रे खमजो !
नानी नणंद जाशे सासरे, अेनां माथडां गूंथजो !
माथां गूंथी सेंथा पूरजो, बेनने सासरे वळावजो !(७)

सभी लोगोंने बारातियों के प्रति का कर्तव्य निभाया है । रोती हुई दीकरी और वहेल के पीछे दौडती हुई माँ यानीकि पति (स्वामी) हरण करके लेकर चला जाता हो ऐसा कठोर बनता है । कन्या कहती है कि थोडी देर रुक जाओ, मेरे पिताजी को एक बार फिर मिल लूं, भाई (वीरा) की रजा मांग लूं । लेकिन नहि..... नहि.....।

ढोलीडा धडूक्या लाडी, चालो आपणे घेर रे !
ऊभा रो'तो मागुं मारा दादाजीनी शीख रे !
हवे केवी शीख रे, लाडी, हवे केवा बोल रे !
परण्यां अेटले प्यारा लाडी, चालो आपणे घेर रे !
ऊभा रो'तो मागुं मारा वीराजीनी शीख रे !(८)

माता-पिता की वेदना :

ऐसे पुकार करती हुई कन्या को लेकर वहेल चली जाती है । कन्या के पिताने घर जाकर देखा तो मंडप निःस्तेज लगने लगा ।

वळी वळी दादा पूछे वात
आज मांडव केम अणोहरो रे
दीवडो तो हतो बेनीबाने हाथ
मेलीने चाल्या सासरे रे(९)

पिताजी के घर का दीप-घर का तेज चला गया । जाने कोई ठगाई करने वाला अपनी दीकरी (कन्या) को ठगाई करके ले गया ऐसी कल्पना की गई है ।

अेक आव्यो'तो परदेशी पोपटो;
बेनी रमतां'ता मांडव हेठ; धुतारो धूती गयो !
बेने मेल्यां ढींगल मेल्यां पोतियां,
बेने मेल्यां सैयरीओनो साथ; धुतारो धूती गयो !(१०)

माता अफसोस कर रही है कि मेरी लाडली बेटी को अमृत पिलाकर बडी की थी वो आज पराई हो गई है ।

पीठी चोळी लाडकडी ! चूंदडी ओढी लाडकडी !
चूंदडीअे धबकारा ढांक्या ने करमां कर सोंप्यां लाडकडी !
मीठी आवो लाडकडी ! केम कहुं जाओ लाडकडी !
तुं शानी सापनो भारो ? तुं तुलसीनो क्यारो लाडकडी !
चरकलडी चाली लाडकडी ! रहेशे ना झाली लाडकडी !
आछेरी शीमळानी छाया अेवी तारी माया लाडकडी !
सोडमां लीधां लाडकडी ! आंख भरी पीधां लाडकडी !
हीबकीने हैयामां रुंदया ! ने पारकां कीधां लाडकडी !(११)

यहाँ माता और पिता की वेदना व्यक्त की गई है ।

कन्या-विदाई के गीत में संवेदना :

वह नीति-सदाचार की परवाह किए बगैर सन्दर्भ में श्रेष्ठ कन्या - धर्म का बोध-पाठ देता है । विवाह का उल्लास करुण यथार्थ को ढक नहीं सकता । वर पक्ष के लोग कहते हैं,

'परण्यां एटले प्यारां लाडी चालो आपणे घेर रे

(ब्याह हुआ इसलिए प्यारी दुल्हन चलो अपने घर) तब उस गीत में कन्या का चिरौरी-स्वर सुनाई देता है कि,

'उभा रो' तो मागुं मारां माताजीनी शीख रे'

(खडे रहो, मैं अपनी माता की सीख मांग लूँ) इस पर यथार्थसूचक प्रबल आज्ञा-प्रहार पडता है कि,

''हवे केवी शीख रे लाडडी, हवे केवा बोल रे!''

(अब कैसी सीख बन्नी अब कैसा बोल)

[''चूंदडी'']

वर-कन्या के माता की वेदना :

वस्तुस्थिति तो लोकगीतों ने बगैर दंभ से गायी है, वही है । मायकेवाले गाते है कि बहन, यहाँ अंतिम बार खा लो :

ल्योने बेनी कचोळडां, जमजो वार बे वार रे
पछी तो जमशो सासरे, जमशो उच्छिष्ट भात रे
कूर जमशो दीवालडी, रोटली आदितवार रे
एक जमशो बपोरले, बीजलुं माझम रात रे.

[''चूंदडी'']

[लो बहन कचोलां, खाओ एक दो बार रे, फिर तो ससुराल में खाओगी उच्छिष्ठ भात रे, चूरमा खाओगी दिवाली पर और रोटी इतवार को, एक बार दुपहर को खाओगी तो दूसरी बार आधी रात को ।]

ससुराल में समय से खाने को नहीं मिलेगा; और वहाँ जाकर कैसी गरजू और पराधीन स्थिति में रहना पडेगा ।

आ दश आ दश पीपळो, आ दश दादानां खेतर;
डेली वळामणा बानो दादोजी, दीकरी डायलां थाजो !
हैडे ते जडजो सोना सांकणां, मनडां वाळीने रे'जो.

[''चूंदडी'']

[ये दस (दिशा) पीपल के पेड हैं, ये दस (दिशा) दादा के खेत हैं । दादाजी डेली तक छोडने आते हैं, बेटी सयानी बनना, अपने हृदय को सोने की जंजीर से बाँध लेना, और मन मार कर रहना ।]

यथार्थ का इससे भी अधिक धारदार और सघन आक्रंद, काव्यरसिकता के उच्च स्तर से लोकवाणी ने पुत्री को बिदा करती जनेता के मुख में रखा है :

में तो हरखेथी चांपलियो वावियो
मारो उछेरतां भव जाय
फुलनी वेळाए माळी लई गया रे.
में तो हरखेथी लाडवई मोटां कर्यां रे
मारो उछेरतां भव जाय
कामनी वेळाए जमाई लई गया रे.

[''चूंदडी'']

[मैंने बडे हर्ष से चंपा को बोया । उसको पालते - पोषते मेरा जीवन बीता गया । जब उसमें फूल आने लगे तो उसे माली उठा ले गया । मैंने हर्ष से अपनी लाडली बेटी को बडा किया । उसको पालते-पोषते जीवन बीता गया । जब वह काम करने लायक हुई तो उसे दामाद ले गये ।]

यहाँ कन्या और कन्या की माता की संवेदना प्रकट की गई है ।

और लोकवाणी ने ब्याहता पुरुष की जनेता के हृदय को भी स्पर्शहीन नहीं रहने दिया । अन्त में उसकी भी तो यही दशा है :

में तो हरखेथी जीयावर मोटा कर्या रे
मारो उछेरतां भव जाय,
कमाई वेळाए बहुए वश कर्या रे.

[''चूंदडी'']

[मैंने बडे हर्ष से दुल्हेराजा को बडा किया । उसके लालन-पालन में मेरा जीवन बीत गया । जब वह कमाने लायक हुआ तो बहू ने उसे अपने बस में कर लिया ।]

प्रेमानंद के ओखाहरण में नायिका की वेदना :

यहाँ कन्या और वर की माता की वेदना प्रकट की है ।

प्रेमचंदजी ओखाहरण में अपनी नायिका की विरह-ज्वाला कैसे शब्दों में सुलगाते हैं उसे देखें :

शुकदेवजी वाणी वदे, ओखा भरी छे पूरण मदे;
वैशाख सुदी द्वादशी हती, स्वामी-स्वामी करती सूती.
व्रेहनी ज्वालानो ताप न शमे, घणा दोह्यल दिवस निर्गमे;
समय-संजोग सूर्यने अस्ते, कुच मर्दन करे छे स्वहस्ते.

अधर करडे चुंबन दे घेली, बेउ चरण हृदे पर मेहेली;
लडथडती आवे हींडी, चित्रलेहाने पाडे भुज भीडी.

[''काव्यदोहन'' भाग-१]

[शुकदेव जी कहते हैं ओखा पूर्ण मद से भरी है, वैशाख सुद द्वादशी को स्वामी-स्वामी करते सो गई, विरह रूपी ज्वाला का ताप शमित नहीं होता, दिन बडी बेताबी से बीतता है, सूर्य के अन्त होने के बाद वह अपने स्तन को अपने ही हाथों से मसलती है, अधर को काटती है, चुंबन देती है, दोनों पैरों को हृदय पर रखकर, अपनी सखी चित्रलेखा को बाँहों में भरकर भहराते हुए आती है ।]

ओखा पर काम इतना व्याप्त है कि वह अपने हीं स्तनों को अपने हाथों से मसलती है, इतना ही नहीं वह अपनी चित्रलेखा को बाहों में भरकर शैया में एकसाथ सोती है, सभी चेष्टायें करती हैं । और स्वप्न में मिले नाथ के साथ :

रति -संग्राम करे छे निःशंक ग्रही अधरे देती डंख
टूटयो हार, वछूटी मेखला, रमे रतिसुख - आसन-कळा;
स्वप्ने नारी ते मळियो नृप, कन्या खलित थई कंद्रप

[वह निःसंकोच रति-संग्राम करती है । आग्रह से गालों पर काट लेती है, हार टूट जाता है, मेखला खुल गई । रतिसुख के लिए आसन-कळा खेलती है । स्वप्न में नारी को उसका स्वामी मिला और कन्दर्प से कन्या छली गई ।]

लोक रचनाओं में विरह :

विरहोद्दीपन की लोकरचनाएँ लीजिए । प्रियतमा संदेशा कहलवाती है :

पंथी एक संदेशडो, ढोला लग ले जाव;
जोबन-आंबो मोरियो, रस चाखण क्युं न आव ?

[हे पथिक, एक संदेशा मेरे पिया तक ले जाओ, यौवन रूपी आम्र बौरा गया है, रस चखने क्यों नहीं आते ?]

दूसरी विरहिणी अपने मत्त यौवन को पकी फसल का रूपक पहना कर प्रेमिक से कहलवाती है ।

खेतर पाक्युं, कण गळे, मन बेठुं माळे;
वे'लो वळये वीजाणंदा, (मने) रोझडां रंजाडे.

[खेत की फसल पक गयी है, दाने आ गये हैं, हे वीजाणंद, तू जल्दी आ जा । मेरा मन ऊपर की माल में चढ बैठा है, विरह सता रहा है ।]

तीसरी विरहिणी बारमासी गाती है :

फागण महिने फेर फरे छे होली रे, वा'ला जी !
आ पेली ने पाडोशण रंगमां रोळी मारा वा'ला जी !

[हे मेरे बालम, फागुन के महिने में फिर होली आई । उसने और मेरी पडोसिन ने मुझे रंग में रंग डाला ।]

ढोला-मारु की कथा में नायिका शयनमंदिर जाती है :

मारु सूती अटारीए, रतडो पलंग बिछाय;
तारा तरवरियुं करे, चंद्र रियो ललचाय.
नवा मोल ने धण्य नवी, नवी जवानी नेह;
ठाकर घेर पधारिया मोती वरस्या मेह.
कोरी गागर मदभरी, हेम कटोरो हाथ;
लडथडती प्याला भरे, धन्य आजूनी रात.
कड्य लळके कोहां ढळे लळके लाल कबान;
ढोला ! चड्यनी ढोलिए मारु नानी म जाण.

['ढोला-मारु', सोरठी गीतकथाओ']

[मारु रात्रि को अटारी पर पलंग बिछाकर सो रही है । तारे उसे अधीर बना रहे हैं और चाँद ललचाता है । नया पिया और नई पत्नी है और नया-नया यौवन-प्रेम फला हे । ठाकुर रूपी पति घर पधारे और स्नेह रूपी मोतियों की वर्षा की । कोरी गागर यौवन रूपी मध से भरी है और सोने का कटोरा हाथ में है । लडखडाते हुए प्याला भरती है, आज की रात्रि धन्य हो गई । कमर लचक रही है, उसकी चोली में स्तन थिरक रहे हैं, हे ढोला तुम पलंग पर चढो, मारवणी को छोटी मत जानो ।]

बाँझ स्त्री की संवेदना :

लोक साहित्य तो संघ-साहित्य है । परिवार इस संघ का बलवान घटक (युनिट) था । परिवार-जीवन के कडवे पानी को मधुर करने की आवश्यकता सर्वोपरि थी । कुटुम्ब-संसार की सामाजिक, आर्थिक तथा पारलौकिक जीवन-दृष्टि से भी प्रथम आवश्यकता संतान-प्राप्ति की थी । खेती, व्यापार या मजूरी जैसे रोजी-रोटी के व्यवसाय में बडा परिवार चाहिए, युद्ध के मैदान में चढ सके ऐसा हट्टा-कट्टा बेटा चाहिए । उस प्रजोत्पत्ति की वेदना-भरा भार, परिवार की नारी को वहन करना था । इसलिए उस नारी, उसकी पुत्रहीनता, उसका सर्वप्रथम गर्भाधान इत्यादि अति पीडक, संवेदनात्मक अवस्थाएँ साहित्योत्पादक बनीं । ये देखिए पुराने गोद-भराई के गीत ।

पहला गर्भ-भार वहन कर रही गृहिणी को 'रन्नादे' नाम की सूर्य की पत्नी की प्रतिमा के समक्ष बैठाकर कुटुम्ब -वनिताएँ जो गीत गाती थीं वे ही ये अघरणी गीत हैं । उन गीतों के द्वारा बेटे के लिए प्रार्थना होती थी, उनमें का :

लींप्युं ने गूंप्युं मारुं आंगणुं
पगलीनो पाडनार द्योने, रन्नादे !
वांझियां-मेणां, माडी ! दोह्यलां.

[हे रन्नादे, मेरा आँगन लीपा-पोता है । पद-चिन्ह छोडने वाला एक बेटा दो । हे माँ बांझपन का ताना असहनीय है ।]

घोयो घफोयो मारो साडलो
खोळानो खूंदनार द्योने, रन्नादे !
वांझियां-मेणां, माता ! दोह्यलां.

[हे रन्नादे, मेरी साडी एकदम साफ-सूफ है । गोदी में खेलनेवाला बेटा दो । बाँझपन का ताना असहनीय है ।]

यह गीत है । इसमें नर्मद-संग्रह में से एक सुन्दर पंक्ति को जोड दी है :

वार्या ने बूर्या मारा ओरडा
कचरानो पाडनार द्योने, रन्नादे
वांझियां-मेणां, माडी ! दोह्यलां.

[हे रन्नादे मेरा कमरा झारा-बहारा है । कचरा करनेवाला एक बेटा दो न । बाँझपन का ताना सहन नहीं होता ।]

बाँझ स्त्री को जो ताना सुनना पडता है वह कितना असहनीय है उसका वर्णन करनेवाला भी गीत है :

त्यांथी ते दडवड चालियां धन्य रमतां रे;
जइ पड्यां ससराने पाय के मा'देव जातां रे;
ससरो ते मेणां बोलिया धन्य रमतां रे;
वाझियां - मों कोण जोशे के मा'देव जातां रे.

महादेव के पास बेटा माँगने जाती पुत्रवधू ससुर का पैर छूती है, बदले में ससुर उसका मुँह देखने के काबिल भी नहीं समझता है । वह तो कहता ही है, सास भी कहती है; किन्तु माता-पिता की निष्ठुरता भी देखने का समय आया ।

दादो के' नै मारी दीकरी धन्य रमतां रे;
माता के' नै मारुं पेट के मा'देव ग्यां'तां रे.

[पिता कहता है कि यह मेरी बेटी नहीं है, माँ कहती है कि यह मेरे पेट की नहीं है ।]

अरे, कृपानिधि प्रकृति के जड-चेतन सभी सत्त्व उस बाँझ की छाया को विनाशक मानते हैं :

लीलूडा आंबा सुकाई गिया..... धन्य.
कोयलडी करे रे कल्पांत के मा'देव.
भर्या रे सरोवर सुकाई गयां..... धन्य.
माछलडी करे रे कल्पांत के मा'देव.

[हरा-भरा आम का पेड सुख गया, कोयल कल्पांत करती है । भरा हुआ तालाब सुख गया,

मछली कल्पांत करती है ।]

किन्तु महादेव का वरदान पाकर वापस लौटती उसी वधू के लिए प्रकृति किल्लोल कर उठती है और ससुर चिठ्ठी भेजता है कि :

मारा घरना दीवा ! घेरे आवो के मा'देव ग्यां'तां रे

[मेरे घर का दीपक, अपने घर वापस आओ]

माता-पिता सत्कार करते हैं और अपमानदाता पति बुलाता है :

परण्यो लखी कागळ मोकले धन्य रमतां रे;
मारा घरनां तेज ! घेर आवो ! के मा'देव ग्यां'तां रे.

['वांझियां' : 'रढियाळी रात']

[ब्याहता पति चिठ्ठी भेज कर बुलवाता है कि मेरे घर का उजाला अपने घर आओ ।]

यहाँ बाँझ स्त्री की वेदना व्यक्त की गई है ।

दूसरे गीत में अपने को बाँझ-बाँझ कहकर ताना मारनेवाले परिवार-जनों को बहू का उत्तर मिलता है । असंतुष्ट संवेदन के उन्नतीकरण (सब्लिमेशन) का यह नमूना है :

ससरा ! वांझियां वांझियां शुं करो रे;
मारा जेठनां ते मारा पेटनां रे,
मारा देरनां ते मारा वीरनां रे;
मारी नणदीनां ते मारा धरमनां रे.
मारी शोक्यनां ते अरधा अंगनां रे.

['रढियाळी रात']

[ससुर बाँझ-बाँझ क्या करते हो, जो मेरे जेठ के हैं वे मेरे पेट के हैं, जो मेरे देवर के हैं वे मेरे वीर के हैं, जो मेरी ननद के हैं वे मेरे धर्म के हैं, जो मेरी सौत के हैं वे मेरे आधे अंग (पति) के हैं ।]

नर्मद ने 'रन्या देवीनां गीत' का संग्रह किया, उसमें 'बालक की झंखना का ऐसा लाक्षणिक चित्र बाँझ स्त्री के मुँह में रखा है :

आंबुडा जांबुडा हेठ रंनादेव, बांझ पोकारे प्रभु एकली रे;
आघेरी जाउं तो रान रंनादेव, पाछी फरुं तो प्रभु एकली रे.
ससराने बारणे ढोल ना ढडूक्या बापे वधामणी ना मोकली रे,
पीळडां पेरी पाटे न बेठां, लीलडां पे'री जळ ना भर्या रे;
सासु सोवासणे खोळा ना भरिया, माडी सोवासणे ना विसाम्या रे,
बोचलो बांधी सुवावड ना सूती, अजमो ना खाधो तीखो तमतमो रे,
सूंठ पीपेर लै मारी सासु ना आव्यां, माडीए ते सुवावड ना केळवी रे.

सांगामाचीए बेसी पूतर ना धवराव्या, थाने ना भींजी जादर कांचळी रे.
लांबी परसाळे पारणां न बांध्यां, हाला करी ना हींचोळ्या रे,
पाणीडां जातां छेडा नव साह्या, वछ करी ना वछोडिया रे;
निसाळे जातां राडा न लीधा, गजुए ना घाली सुन्दर सुखडी रे.

[नागर स्त्रीयोमां गवातां गीत - ५४]

[आम, जामुन के पेड के नीचे एक बाँझ रन्नादे को पुकार रही है । हे प्रभु, अगर मैं दूर जाऊँ तो लोक मुझे रांण कहेंगे, वापस जाने पर अकेली हो जाऊँगी । ससुर के दरवाजे पर ढोल नहीं बजा । बाप ने बधावा नहीं भेजा । पीला वस्त्र पहनकर पाट पर नहीं बैठी । सुहागिन सास ने गोदी नहीं भरी, माँ ने सुहागिनों को नहीं बुलाया, सिर पर कपडा बाँधकर सौरी में नहीं सोई, तीखा तीखा अजवाईन नहीं खाया, सोंठ, पीपर लेकर मेरी सास न आई, माँ ने सोहर के लिए नहीं बुलाया । खाट पर बैठकर पुत्र को दूध नहीं पिलाया । दूध चुवाकर चोली भी नहीं भीगी । लम्बे दालान में पलना नहीं बंधा । लोरी गाकर झूला नहीं झुलाया, पानी भरने जाते समय किसी ने मेरा पल्लू नहीं पकडा और मुश्किल से उसको छुडाया नहीं । शाला जाते समय चिल्ला-चोट नहीं की, और जेब में सुन्दर सुखडी नहीं डाली ।]

इस चित्र में रंग-रेखा परिपूर्ण है । बाँझ पुकार करती है उसमें सगर्भा स्त्री की किस तरह से देखभाल होती है, किस तरह से उसका शृंगार किया जाता है, सौरी में क्या-क्या ओढा, पहना, और खाया जाता है । पुत्र को दूध पिलाते समय निरोगी और स्नेही स्त्री का दूध चूकर चोली कितनी भीग जाती है, पानी भरने जाते समय बालक साडी का पल्लू पकडता है, उसे छुडा कर माँ पानी भरने जाती और स्कूल जाने से आनाकानी करते बालक की जेब में मिठाई रखती, ऐसे आनंद से वंचित नारी किस शून्यता का अनुभव करती है । कोई भी कवि लिख ही नहीं सकता, अति पार्थिव, शुष्क, हास्यास्पद लगे, अशिष्ट भी भासे, ऐसे निरे ब्योरे के ताने बाने से लोककाव्य बुना गया और उसमें बाँझ की छटपटाहट का बेलबूटा पडा । भावनाओं का उर्ध्वीकरण यह यदि साहित्य का उद्देश्य है तो यहाँ वही हुआ है । लोकवाणी में यह हमेशा होता रहा है ।

लोरी गीतों में माँ का संवेदन :

लोरी के साथ साथ बालक को कुछ हो न जाय उसकी चिंता माता को है । ये सब लोक साहित्य में लोरी गीतों में व्यक्त किया गया है ।

एक गोरी बाई के विधान के अनुसार 'हां... हां... हालां' के ध्रुवपदवाली असंख्य लोरी माता गाती है :

हालो रे हालो, भाईने हालो रे बहु वा'लो;
भाईने गोरीडां रे गाजो, भाई ने रमवा तेडी जाजो.
गोरी, गायनां दूध, भाई पीशे उगमते सूर;
हां... हां हालो.
भाई भाई हुं रे करुं, भाईनी वासे भूली फरुं;
भाईने कोइए दीठो, फूलवाडीमां पेठो.

फूलवाडी वेडावो, माईने घेर रे तेडावो;
हां... हां हालो.
[‘हालरडां’]

[भैया को लोरी बहुत पसन्द है । गोरी भैया के लिए लोरी गाओ और उसे खेलने ले जाओ । भैया उठेगा तो गोरी गाय का दूध पीएगा । मैं भैया भैया कर उसी के पीछे घूमती फिरुँ । भैया को किसी ने बगीचे में बैठे देखा । बगीचे से भैया को घर बुलाओ ।]

मात्र बालक को सुलाने के लिए ही नहीं किन्तु माता के वात्सल्य, माँ के अन्य उरसंवेदन, ऊब और दूध पिलाने के त्रास को, पति के उत्पीडन को, आशिक की दोगलेबाजी, कृष्ण-क्राइस्ट की बालविपदों और पराक्रमों और अनेकविध भावों को इस पालना-डोरी पर बहाने की तुतली वाणी हैं । उन्नत भाव भी जनेता लोरी में गाती हैं

तमे मारा देवना दीधेल छो, तमे मारा मांगी लीधेल छो;
आव्या त्यारे अमर थैने रो’ !
तमे मारुं नगद नाणुं छो, तमे मारुं फूलवसाणुं छो;
आव्या त्यारे अमर थैने रो’ !

[तुम मेरे भगवान के दिए हुए हो, मैंने तुम्हे भगवान से माँग लिया है । तुम मेरे नगद रुपये हो, तुम मेरे फूल का बगीचा हो, आये हो तो अमर होकर रहो ।]

बालक सोता नहीं है उसकी भी वेदना माँ को होती है । यह वेदना भी लोक साहित्य का अंग बनी हुई है । देखिए :

विश्व की ढेर सारी प्रजाओं में लोरी गीत है । उनके साथ हमारी लोक-लोरियों की रचनाओं और भावनाओं में काफी साम्य है । बालक का सौंदर्य वर्णन है, बालक की खुशामद है, बालक की खुराफात भी गाई जाती है :

सुवराव्यां सूवे नहि
आ शां कळगज रूप, बाळा पोढोने !

[सुलाने से सोता नहीं है, यह कैसा कलयुगी रूप है, बालक सोओ न !]

हाउ का भय दिखाना

और हमारे यहाँ की :

सूओ सूओ रे बाळा, घोघर आव्या;
बारणे बैठुं छे हाऊं ?

[सोओ, सोओ मेरे बच्चे, बावा आया है और बाहर बडा सा हाउ बैठा है ?]

वर ढूंढने की कन्या की वेदना :

विवाह योग्य कन्या की वर ढूंढने की वेदना भी लोक साहित्य में उल्लेखित है । कन्या को

कैसा वर चाहिए उसका वर्णन करती हुई कन्या अपने दादा से कहती है वो देखें ।

कन्या और पिता के बीच दुल्हे की पसन्दगी संबंध में वार्तालाप करते इस गीत को –

एक ऊंचो ते वर नो जोजो रे, दादा,
ऊंचो ते नत्य नेवां भांगशे;
एक नीचो ते वर नो जोजो रे, दादा !
नीचो ते नत्य ठेबे आवशे.

[हे दादा, एक लम्बा वर मत देखना, लम्बा वर तो नित्य नरिया तोडेगा । हे दादा, एक ठींगना वर मत ढूँढना, ठींगना वर नित्य पैरों की ठोकर में आयेगा ।]

माता और कन्या की वेदना :

विवाह करके कन्या जब ससुराल जाती है तब माता की वेदना क्या है वो यहाँ इस गीत में व्यक्त की गई है । देखिए :

में तो हरखेथी लाडवई मोटां कर्या रे
मारो उछेरतां भव जाय, कामनी वेळाए जमाई लै गया !

[मैंने बडे हर्ष से बेटी को पाला-पोसा । पालते-पोसते मेरा जीवन चला जाय रे, काम के समय दामाद ले गये]

तब पुत्री अपनी माता प्रति वेदना व्यक्त करती पुत्री पुकारती है :

वळो रे वळो रे मारा समरथ माता;
तमे दीधां अमने वेगळां.

[लौट जाओ, लौट जाओ मेरी समर्थ माता, तुमने मुझे जुदा कर दिया ।]

फिर माता अपनी पुत्री की चिंता करती हुई कहती है :

गुजरात की लोकमाता विवाह-गीत में इसी दुःख का चित्रण करती है । बेटी भरपेट खाने को नहीं मिलेगा :

ल्योने बहेनी कचोळडां, जमजो वार बे वार रे,
पछी तो जमशो सासरे, जमशो उच्छिष्ठ भात रे,
एक जमशो बपोरले, बीजुं माझम रात रे,
चूर जमशो दिवालडी, रोटली आदितवार रे.

[लो बेटी कचोडां, खाओ एक-दो बार रे । फिर तो खाओगी ससुराल में, खाओगी उच्छिष्ठ भात । एक बार दुपहर को खाओगी तो, दूसरी बार आधी रात को, चूरमा दिपावली को खाओगी और रोटी इतवार को]

पारसी ब्याह-गीतों में तो माँ कन्या के दुःख की इससे भी अधिक तीव्र संभावना को गाती हुई, बेटी की सास से विनती करती है :

वेवाण, हैया करजो भोळां रे, जरबाईने ना पीरसतां थोडा रे,
वेवाण, हैया करजो घाडां रे, जरबाईने ना पीरसतां टाढां रे,
वेवाण, चमटो रखे तोडतां रे, चमटो चमचमशे ने रोशे रे.

[हे समधिन, अपना हृदय उदार रखना, जरबाई को थोडा खाना न परोसना, हृदय को उदार रखना, जरबाई को बासी खाना न देना । चिमटे को पछाडना नहीं, उसकी चमक से वह रोने लगेगी ।]

दादा की वेदना :

जब वरराजा विवाह के लिए मंडप में आते हैं तथा दादाजी गढ पर से दूल्हा साँवला देखते हैं तब दादाजी व्यथित होते है और कन्या को कहते हैं :

इसी प्रकार दूल्हे को काला देखकर बडे-बुजुर्ग निःश्वास छोडते हैं कि :

गढडे चडीने बाईने दादे ते जोयुं, कन्या गोरां ने वर शामळा.

[गढ पर चढकर बाई के दादा ने देखा, कन्या गोरी और दुल्हा साँवला ।]

तब कन्या दादाजी को आश्वासन देती हुई कहती है :

एना ओरतडा न करजो रे दादा ! द्वारकामां रणछोडराय शामळा ।

[हे दादा, इसका दुःख मत करना, द्वारका में भी तो रणछोडराय साँवले हैं ।

मृत्यु के विलाप गीतों में वेदना :

नारी-गीत का अंतिम प्रकार ऐसा है कि जिसका स्पर्श करते हुए आप सभी घृणा का अनुभव करेंगे । यह प्रकार छाजियां-राजिया (मरसिया) नाम से जाना जाता मृत्यु-गीत है । किन्तु अधीर मत होइए । यहाँ हिन्दुस्तान में हमारी ऐसी स्त्रियों को चौकाचौखट पर मृत्यु के बाद रोते-कूटते देखकर, मजाक उडानेवाले तथा हिन्दुस्तान के प्रति घृणा करनेवाले विदेशियों को तथा खुद शिष्ट हिन्दुओं को यह बात बता देना चाहिए कि, हमारा यह अनुमरण का सामूहिक आक्रंद और छाती पीटना शास्त्रोक्त नहीं है । इस प्रथा की सगी बहनें तो युरोप के देश-देशों के इतिहास से खोजी गई है ।

['The custom of hymning the dead prevailed over most, if not all, parts of Europe: Study of folk songs, Folk-dirges.]

युरोप में मरसिया गवानेवाली व्यवसायी कौमें थीं

सरकारी प्रतिबंध और धर्मगुरुओं का आदेश उस रिवाज को रोक नहीं पाये थे, मरसिया गानेवाली तो वहाँ भी, हमारे रजवाडों की मृत्यु को विलाप से सजनेवाली खवासिनें और रुदाली की तरह whole choirs of lay dirge-singers थीं ।

स्फोटिश हाईलेण्ड प्रदेशों के coronachs और आयरिशों के keeners. रशियन voplenitsa (the sobbing one) और प्रोवेन्कल प्रजा के व्यावसायिक praefical (public wailers) थे । शेक्सपियर का 'सिम्बेलीन' नाटक साक्षी देता है कि इग्लेंण्ड में भी रुदालियाँ थीं । विशेष रूप से पैसा देकर बुलाये जाते विलाप-गायक थे । ऐसे व्यवसायी विलाप-गायकों में से कभार-कभी कोई सच्चा

कविजन भी निकल जाता और वह तीव्र संवेदनशील कविप्राण रचनाकौशल भी भरपूर बताकर नाट्य-शिल्प के नमूना के समान मरसिया का सर्जन करता । इसका उदाहरण नवानगर के राजा के साथ ब्याही गयी भावनगर की राजकुमारी बाकुंवरबा को ससुराल जाने की पहली ही रात्री को सौतें जहर देकर मार डालती हैं । इस संबंध में रास साक्षी देता हैं ।

('नगर सासरे', रढियाणी रात)

नवला से सोनीडा तेडाविया,
घडये घडये मारे बा कुवरना हार रे दाजीराजनी कुंवर्य,
बाने जावां ते नगर सासरे.

[सोनी को बुलवाया, दाजीराज की राजकुमारी कुंवरबा के लिए हार गढो । राजकुमारी को अपने नगर ससुराल जाना है ।]

इस प्रकार प्यार भरे पहनावे के सजावट का वर्णन करने के बाद :

काका बापु ते आव्या मळवाः
के'जो बा कांई करियावरनी खोट रे दाजीराजनी कुंवर्य,
बाने जावां नगर सासरे,
घणी खम्मा काका बापु तमने;
आजने समे मारा बापु होय रे दाजीराजनी कुंवर्य.

[चाचा और पिता मिलने आये । हे दाजीराज की राजकुंवरी, अगर दहेज में कोई कमी हो तो कहना । चाचा, पिताजी को भगवान क्षेम-कुशल रखें । इससे बढकर क्या हो सकता है कि आज मेरे सामने मेरे पिता है ।]

ऐसी परितृप्ति से भरपूर राजकुमारी के हृदय का दर्शन कराने के बाद :

माने मळीने रोयां धूसके,
नथी मारे माडीजायो वीर रे दाजीराजनी कुंवर्य,
दाजीराजनो दीवडो हाल्यो सासरे.

[माँ से मिलकर फूट-फूटकर रोने लगी । दाजीराज की कुंवरी को माँ-जाया कोई भाई नहीं है, दाजीराज का दीपक तो चला ससुराल ।]

इस प्रकार पितागृह के दीपक जैसी पुत्री की विदाई का वर्णन करते हैं, और उसके बाद ससुराल-द्वार पर जाती राजकुंवरी की सासु, ससुर और पति ने अपनी-अपनी लाक्षणिक रसदृष्टि से स्वागत किया । पराकाष्ठा पर पहुँचे हुए इस नाटक के अंदर, सौत ने आकर प्यारभरी चूनरी ओढाई, उसके अंदर से राजकुमारी के शरीर में विषप्रवेश होते ही :

ओढाडीने काळी पाडी चीस रे

[ओढाई और भयंकर चीख मारी]

इस तरह की परिवर्तन-पटुता दिखाकर मरसिया रचनेवाली, इसके बाद चितारोहण तक के दृश्यों का चित्रण करके काव्य में समतुला बनाए रखती है ।

मृतकों की माताएँ, पत्नियाँ, बहनें, पुत्रियाँ भी परम्परागत मरसिया के कल्पांत गातीं, नये शब्द भरकर शीघ्र रचनाएँ भी करतीं, छाती पीटतीं, पछाड खातीं, अरे बालों को भी खींचतीं और तोडतीं, विधवा कोने में बैठी रहती, बाल मुंडवाती । मृत्यु के बाद दुःख प्रदर्शन की ऐसी जटिल क्रियाएँ, प्रगट शोक प्रदर्शित करने में नामर्दगी का अनुभव करनेवाले पुरुषों ने धीरे-धीरे नारीवर्ग पर ही ढोल दिया होगा, ऐसा भी एक विधान है ।

हिन्दुओं में प्रवर्तमान यह विलाप-परम्परा शास्त्राधार विहीन, अर्थात् शुद्ध लोकोक्त तो है ही, इसके उपरान्त यह बतानेवाली है कि हम कौन जाने कितने युगों पूर्व की अपनी मूलनिवास की भूमि और बंधुप्रजाओं के साथ जोडती यह एक कडी ले आयें होंगें ।

यहाँ की चारणी विधवा अपने पति के मरने के बाद, मुँह ढँककर बैठी-बैठी रुदन-स्वर में बोलती थी कि :

तारां ढांकणीनां ढांकेल छे, मोळा मावळानां !
आपणे माणहनी माठप छे,
मोळा भीमना जेवी भुजाउंवाळा रे मावळानां !
ए.... मुंने चाकरीचोर करेने जा मा रे !

[हे मेरे स्वामी ! ये सब बच्चे आप रूपी ढक्कन से ढके हुए हैं अब वे खुले हो जाएँगे । अपने परिवार में निर्वाह करनेवाले आदमियों की कमी है । फिर मैं आपकी लम्बी बिमारी में देखभाल करते हुए ऊब गयी थी ऐसा ताना चढा कर चले मत जाओ ।]

तो कोर्सिका की विधवा का Vocers मुँह मोड लेने के विलाप (गीत) में ये शब्द है :

"You were my flower, my thomless rose, my stalwart one, my column, my brother, my hope, my prop, my eastern gem, my most beautiful treasure."

(Study of Folksongs)

फ्रांस की स्त्रियाँ छाती पीटते -पीटते तालबद्ध स्वर में गाती थीं उसका ध्रुवपद :

Ah !
Ah ! Ah ! Ah !
Ah ! Praube !
Ah ! Praube !
Monn dieu,
Monn dieu ! Monn dieu.

ऐसा था तो यहाँ की हिन्दु नारी :

हाय लाडडा हाय हाय रे !

[हाय लाडला हाय हाय रे]

यह ध्रुवपद बोलते-बोलते मृतक को विशेषण द्वारा सम्मानित करती है । गाये जाने की ये रुदनरसिक कृतियाँ ही थीं । सोरठ की अनेक कौमों में स्त्रियाँ साहित्य में से पुराने प्रचलित दोहे -

सुभाषितों को उठा-उठाकर, या किसी पुरानी लोक-कथा का दोहा ले-लेकर अपने फूटे भाग्य और अत्यंत दु:खी हृदय का वर्णन करती ।

भाणुं भांग्युं होय, (तो) रेवण दईने राखीएं,
(पण) करम फूट्युं होय, (तेने) सांधो न मळे सूरना ।

[बरतन टूट गया हो तो उसको रेण देकर ठीक कर सकते हैं लेकिन जब भाग्य फूट गया हो तो उसको जोड नहीं सकते ।]

कापड फाट्युं होय (तो) ताणो लईने तूनीएं,
(पण) काळज फाट्युं होय (तो) सांधो न मळे सूरना !

[कपडा फट जाय तो ताना लेकर बिनते किन्तु हृदय के फटने पर उसे जोडने के लिए कोई धागा नहीं मिलता ।]

इसी तरह से बालक की मृत्यु पर विलाप-बोल हृदयबेधक और काव्यमय होता है :

एवो उगेने अवठाई गियो,
मारा घरमां बाळा सादनी ताण पडी ।

[अभी तो जन्मा ही था कि कुम्हला गया । मेरे घर में बच्चे की किलकारी की कमी पड गई ।]

नन्हीं बालाएँ अषाढ मास में (देदो) कूटती हैं । देदा नामक वीर राजपूत की मृत्यु की ही निमित्त बनाकर इस मृत्युविलाप का गीत गाती हैं । बालबच्चेवाली किशोरी की मृत्यु विषयक गीत-बोल इस प्रकार होते है :

हाय हाय रे कूवामां ढेल वियाणी,
हाय हाय रे ढेलने चार बचळां,
हाय हाय रे बचळां कोण धवरावशे ।

[हाय रे हाय एक कुँए में मोरनी बियाई । मोरनी के चार-चार बच्चे, उन बच्चों को कौन दूध पिलायेगा ।]

हम है कोई अति प्राचीन जग में भ्रमण करती प्रजा

ऐसे ऐसे तो बहुत से हैं । उसमें भी हमारे और पश्चिम के बीच साम्य है । To play at funerals was probably a very ancient amusement (study of folksongs.) [रणजित राम का संग्रह 'लोकगीत' में १२४ से १३३ तक ऐसे मृत्युगीत शोकगीत के नाम से दिये गये हैं । पंजाबियों के लोकगीत में 'छाती दी अलाणी' नामक जो प्रकार है वही अपना छाजियाँ (मरसिया) हैं, फिर वही का वही प्रश्न उठता है कि हमारे गुर्जर और सौराष्ट्री यहाँ कब आये ? कहाँ से आये ? कौन हैं ? आर्य हैं ? सिथियन हैं ? ग्रीक हैं ? हम जो भी हों, किन्तु है, कोई अति प्राचीन, काफी भ्रमणप्रेमी और युग के परिभ्रमण से प्राप्त हुई कितनी ही वस्तुओं को नूतन बल के प्रभाव तले भी संभालकर लोकवाणी द्वारा जतन करनेवाले गजब के समन्वयकार !]

मुस्लिम जनाजा का विलाप :

मृत्यु के विलाप-गीतों में मुस्लिम विभाग की भी उपेक्षा नहीं करेंगे । करबला के शहीद इमाम हुसेन की प्रत्येक संवत्सरी को मनाने के रूप में मोहर्रम में औरतें मातम कूटती-कूटती जो विलाप गाती हैं वे भी तालबद्ध काव्यमय गीत है :

गुल-छडियाँ रे गुल-छडियाँ रे,
रणमें खेले इमाम गुल-छडियाँ ।

★

हाय वोय रे लीला रंगा दे कपडा,
हाय वोय रे पानी के प्यासे जंगल में ।

★

हाय रे बना कासम गहेरनमें मारे,
मेंदी जोगे मारे - हाय रे बना.
दुलदुल जोगे मारे - हाय रे बना.

इस प्रकार के मातम के विलापगीतो में मोहर्रम की रात्रियों में जाकर चौक में बैठी-बैठी कूटती और गाती मुस्लिम गुजरातिन के कंठ से गीत को ग्रहण किया है । वह गुर्जर लोकवाणी ही है । उसका प्रारंभ, ढाँचा, पुनरुक्तिप्रधान शैली लोकगीतों की ही हैं ।

वेदना के आधार पर पले-बढे करुण गीत:

'मृत्यु, मुर्दा और स्मशान से संबंधित क्रियाएँ तथा विलापवाणी का यह विषय एक अति पुनित मनोवेदना, कई बार तो घातकीपना और बिभत्सता की हद पर पहुँचा है जो उच्चारण की हास्यास्पदता बताता है । किन्तु इन सभी को घटा देने के बाद, अन्ततः और आम तौर पर मृत्यु जीव को दी हुई एक स्नेहांजलि है ऐसा तो हर कोई स्वीकार करता है । यह मजाक की चीज नहीं ।' एक पाश्चात्य स्त्री-समीक्षक के इस विधान के साथ हम भी सहमत होंगे । मृत्यु और प्रीति, इन दोनों के बीच जहाँ अनवधि द्वन्द्व चल रहा हो, वहाँ लोककवि हमें ले जाता है । युगान्तर से सुनाई देता इस प्रेम-मृत्यु के बीच के विग्रह का प्रधान स्वर साहित्य है । यहाँ तक कहा गया है कि प्रेम और बुलबुल के गीत थे, उससे भी पहले से मृत्यु के गीत थे । प्रेम के कवि को जल्दी ही यह प्रतीति हो गई कि मृत्यु के तार के बिना उसकी वीणा अधूरी है । कविता का मुख्य आहार ही वेदना और ग्लानि है । ग्रीक लोकगायक का यह बोल है कि 'सोंग्स आर द वर्ड स्पोकन बाय दोज हु सफर' । सच्चा गीत तो वेदना सहनेवाले घायल ही सर्जित कर सकते हैं । लोक-कविता यह तो चीरे हुए दिल की ही वाणी है । इसीलिए लोकवाणी ने गद्यात्मक कहानियों में सुखद समाप्ति की है, किन्तु पद्यात्मक गाथाओं में मृत्यु की ही उपासना की है । कोई भी गाथा 'बॅलड' लीजिए : अपना 'जलदेवता को बलिदान' इसका सचोट उदाहरण है । बारह-बारह वर्षों से निर्जला रहे गाँव के जलाशय को पानी तो मिलता है, किन्तु बेटा और बहू, दोनों का सच्चा बलिदान देने के बाद ही । उस वर-बहू को देवी-देवता सजीव नहीं करते ।

जलाशय की सीढियाँ वर-बहू जैसे-जैसे उतरते हैं, त्यों-त्यों पानी निकलता है, चढता है और अन्त में :

छेल्ले पगथियए जई पग दीधो,
माथा समाणां नीर आव्यां जी रे.

[अंतिम सीढी पर पैर धरते ही सिर तक पानी आया]

गाँव की जनता को जल मिलता है, किन्तु बलि बने दंपती के माता-पिता तो किनारे खडे होकर डूबे हुए को पुकारते है :

एक होंकारो द्यो रे वशराम वीर,
गोझारां नीर कोण पीशे जी रे ।
एक होंकारो द्यो रे वाघेली वउ,
गोझारां नीर कोण पीशे जी रे ।

['जलदेवताने बलिदान' : रढियाळी रात]

[हे वशराम वीर और वाघेली बहू, एक हुंकार तो दो, पापी जल कौन पीएगा ।]

बाँझ की मनोवेदना :

इन गानेवालियों के वृंद में से कुछ की गहरी मनोवेदना नहीं थी क्या ? सन्तान-भूख की मनोवेदना ! उनमें से अनेक को क्या यह धिक्कार नहीं सहना पडता था ?

गंगा ते माटी चीकणी धन्य रमतां रे
एना चूला नखावोने चार मा'वेद जावां रे

[गंगा की मिट्टी, चिकनी है उसके चूल्हे डलवाओ चार कि महादेव जाना है ।]

बना-खाकर बाँझ चली :

त्यांथी ते दडवड चालियां धन्य रमतां रे
जई पड्यां ससराने पाय मा'देव जावां रे
ससरो ते मेणां बोलिया, - धन्य.
वांझियां मों कोण जोशे के - मा'देव.

पिता के पास जाकर पैर छूने पर :

दादो के' नै मारी दीकरी - धन्य.
माता के' नै मारुं पेट के - मा'देव.

[दादा कहता है कि मेरी बेटी नहीं है, मां कहती है कि मेरे पेट की जायी नहीं है ।]

अरे, प्रकृति ने भी मुँह फेर लिया -

लीलुडा आंबा सुकाई गिया - धन्य.
कोयलडी करे कल्पांत के - मा'देव.

[हरा-भरा आम का पेड सूख गया, कोयल कल्पांत करती है, कि महादेव के मंदिर गये थे ।]

यहाँ पति-पत्नी और बांझणी बहू की वेदना प्रकट की गई है । ऐसी स्त्री ससुराल एवं पिहर सभी जगह से तुच्छकार पाती है ।

वंध्या स्त्री को सभी जगह से तुच्छकार मिलता है और नासीपास होती है तब वह रांदल माँ की शरण में जाती है ।

धण्यने खोळे चोखा ने खंभे चूंदडी रे
धण्य तो चाल्यां रांदलमाने ओरडे रे
धण्यनो ससरो ते मे'णां बोलिया रे
मारां वांझियां वउ तमे क्यां चाल्यां रे ।
ससरा वांझियां वांझियां शुं करो रे !
मारा जेठनां ते मारा पेटनां रे,
मारा देरनां ते मारा वरनां रे,
मारी नणदीनां ते मारा घरमनां रे,
मारी शोक्यनां ते अरधा अंगनां रे.

['रढियाळी रात']

[पत्नी की गोद में अक्षत और कंधे पर चूनरी । पत्नी तो चली रांदल माता के मंदिर में । पत्नी का ससुर ताना मारता है, बाँझ बहू तुम कहाँ चली । ससुर, बाँझ-बाँझ क्या करते हो, जो मेरे जेठ के हैं वे मेरे पेट के हैं । जो मेरे देवर के हैं वे मेरे पति के हैं । जो मेरी ननद के हैं वे मेरे धरम के हैं और जो मेरी सौत के हैं वे मेरे आधे अंग (पति) के हैं ।]

सामाजिक अन्याय की झडियाँ सहने का ज्ञानोपदेश यहाँ साहित्य स्वरूप धारण कर गंभीर रसानंद सींचता है, संतापित समाजवधू के सच्चे स्वानुभवों का कलात्मक संवेदन है । वह कलात्मक संवेदन 'लीप्युं ने गूंप्युं मारुं आंगणुं' (देखिए हालरडां) (लीपा और पोता हुआ मेरा आँगन) में पराकाष्ठा पर पहुंचता है । ऐसे संताप-गीतों का स्थान चौटा के गरबा में नहीं किन्तु सीमन्त के अवसर पर रांदल माता के दीपक के सन्मुख था यह भी सूचक है । सगर्भा के उत्साहवर्धन के अवसर पर वंध्याओं का दुर्भाग्य गाया जाता था ।

दादा और दीकरी की वेदना :

विवाह योग्य कन्या दूबली हो जाती है तब दादाजी चिंता करते है और दीकरी-कन्या को कहते है ।

'किन्तु ब्याहने का इकरार करने से क्या मिला ? उन नादान जवानों के माता-पिता के पास जाकर हृदय की बात किसने की ।' ऐसा कहता हुआ ब्याह-गीत पगडंडी के किनारे के वृक्ष पर

के ओसबिन्दुओं में से जगा और बोला, देखो, मैंने तो नवयौवना के बौराये, जंजाल में डूबे पिता के हृदय में सुकुमार भाव बोया :

एक ते राज द्वारमां रमतां
बेनीबा ! दादे ते हसीने बोलावियां
कां कां रे दीकरी तमारी देह ज दूबळी ।
कां रे आँखलडी जळे भरी.

[एक समय राजद्वार में खेलते समय बेटी को दादा ने हँसकर बुलाया, हे बेटी, क्यों तुम्हारी देह दूबली हो गई है, क्यों तुम्हारी आँखे जल से भरी हैं ।]

तब बेटी कहती है :

एक ऊंचो ते वर नो जोजो रे दादा,
ऊंचो ते नत्य नेवां भांगशे.
एक नीचो ते वर नो जोजो रे दादा,
नीचो ते नत्य ठेबे आवशे.
एक गोरो ते वर नो जोजो रे दादा,
गोरो ते आप वखाणशे.
एक काळो ते वर नो जोजो रे दादा,
काळो ते कुटुम्ब लजावशे.
एक कड्य रे पातळियो ने मुख रे शामळियो,
ते मारी सैयरुं ए वखाणियो.
एक पाणी भरती पनियारीए वखाण्यो,
भलो रे वखाण्यो मारी भाभीए.

('चूंदडी')

[एक लम्बा वर न देखना दादा, लम्बा नित्य नरिया तोडेगा । एक ठींगना वर मत ढूँढना दादा, ठींगना नित्य पैरों की ठोकर में आयेगा । एक गोरा वर मत ढूँढना दादा, गोरा तो अपना ही बखान करेगा । एक काला वर मत ढूँढना दादा, काला कुटुम्ब को लज्जित करेगा । एक कमर से पतला तथा मुख से साँवला है उसका मेरी सहेलियों ने बखान किया, पानी भरती पनिहारिन ने बखान किया तथा अच्छा हुआ मेरी भाभी ने बखान किया ।]

कुमारिका की वेदना :

कुमारिका को चिन्ता है कि उनको कैसा ससरा चाहिए, कैसी सासु चाहिए और कैसा पति चाहिए उसकी वेदना व्यक्त करता हुआ लोकगीत है । देखिए :

ऐसी घटनेवाली वास्तविक दशा की कल्पना करके कुमारिका को चेता दिया था कि गोरमा की पूजा करते-करते सभी बडों को सुना देना बहन, कि तुम्हारी सही जरूरत तो पेट भरना और मिष्टान

खाना है, साथ ही सर्वगुण-सम्पन्न आदर्श स्वामी की बजाय तुम्हारा जो कहना माने ऐसे पति की है । ऐसा कहकर गौरमा (गेरी)का व्रत बडबडाने लगा -

गोर मा गोर मा ससरो देजो सवादीआ
तमे मारी गोर मा छो
गोर मा गोर मा रे सासु देजो भुखाळवां.
तमे मारी गोर मा छो
गोर मा गोर मा रे कंथ दजो कह्यागरो.
तमे मारी गोर मा छो

('मोळाकत' : कंकावटी)

[हे गौरी माँ, ससुर देना सवादिया, तुम मेरी गौरी माँ हो । गौरी माँ, सासु देना भुक्खड, तुम मेरी गौरी माँ हो । गौरी माँ पति ऐसा देना जो कहना माने, तुम मेरी गौरी माँ हो ।]

दीकरी की विरह वेदना :

बेटी अपने माता-पिता की लाडली होती है । बेटी की शादी होते ही वह ससुराल जाती है । इसलिए उसे चिड़िया की उपमा दी है । मेरी बेटी ससुराल चली जायेगी । इसलिए उसे कोई कुछ मत कहना उस पर गुस्सा मत होना, ऐसा माता पिता का कहना है । गीत इस प्रकार है ।

मत दो म्हांरी बाई नै गाळ
म्हॉरी बाई चिडोकली जी चिडोकली
आ आज अठे परभात
तडकले ठड ज्यासी जी उठ ज्यासी
सावणियेरा दिनडा चार
जॅवाईडो ले ज्यासी जी ले ज्यासी

यह लडकी जब ससुराल जाती है तो उसे अपने पिहर की याद आती है । अपने माता-पिता का लाड प्यार याद आता है । पिहर के सुख का वर्णन इस गीत में है ।

सहेल्या मन में ओळु आवे ए
मन में आवे ए सहेल्या म्हार मन में आवे
कदयक तो म्हें पीवरिया में नित उठ मौज उडाय
मायड म्हांन गले लगाती बाबोसा लाड लडाय
पोर चढया दिन माय जगाती सूती गुदडाँ माय
आँख धोय म्हारो मुखडो धोती वे पल बित्या जाय
दही मांडया करयो ए कलेवो गुडिया लीनी का
सात सहेली खेलन आयी म्हारा आँगन माय
छाक मथी माय करी रसोई दीनो थाल लगाय
जद बाबासो जीमण लाग्यो लीनो हेलो मार
सहेल्या वे दिन बीत्या ए सहेल्या ओळु आवे ए ।

सहेली मेरे मन में मेरे पिहर की बातें याद आ रही हैं । वहाँ माँ मुझे गले लगाती थी, मेरे बाबा मेरा लाड करते थे । मैं वहाँ सूरज के उगने के बाद, दिन चढने के बाद उठती थी । माँ मुझे जगाती, मुँह धोकर, दही का नाश्ता कर गुडिया को लेकर सात सहेलियों के संग आँगण में खेलती थी । मॉ छाँछ मथकर रसोई बनाती और बाबा का थाल परोसती तब बाबा मुझे भी भोजन के लिल्ए बुलाते थे । सहेली अब वे दिन नहीं रहे, मुझे मेरे पिहर की याद आ रही है । यही लडकी ससुराल जाती है । लडकी दो कुल का उद्धार करती है । अपने माता पिता परिवार को छोडकर वह अपने पति के घर जाती है तो वहाँ के परिवार को बडे खुशी से अपनाती है । केवल अपने पति को ही नहीं, उसके परिवार के प्रति उसके गाँव के प्रति उसके मन में आदर हैं ।

कन्या की माँ की वेदना :

कन्या के माँ की वेदना क्या होती है वो इस पंक्तियों में दी गई है ।

में तो हरखे चांपलियो मोटो कर्यो रे
मारो उछेरतां भव जाय, फूलनी वेळाए माळी लई गियो रे.
में तो हरखेथी लाडवई मोटां कर्या रे
मारो उछेरतां भव जाय, कामनी वेळाए जमाई लई गिया रे.
(चूंदडी)

[मैंने तो बड़े हर्ष से चंपा का पौधा बोया, उसको पालते-पोषते मेरा जीवन बीत रहा था, जब उसमें फूल आने लगे तो उसे माली उठा ले गया । मैंने बड़े हर्ष से अपनी लाडली बेटी को बड़ा किया, उसको पालते-पोषते मेरा जीवन बीत रहा था, काम करने के योग्य वह हुई उस समय उसे दामाद उठा ले गये ।]

वर की माँ की वेदना :

कन्या के माँ की तरह वर (पति) के माँ को भी पीडा होती है वो भी लोक साहित्य में मिलती है । देखें :

में तो हरखेथी जियावर मोटा क्र्या रे
मारो उछेरतां भव जाय, कमाई वेळाए वहुए वश कर्या रे.

[मैंने बड़े हर्ष से लड़के को बड़ा किया पालते-पोषते मेरा जीवन बीत गया, कमाई के समय बहू ने वश में कर लिया ।]

तापी नदी का संवेदन :

तापी नदी के तीर पर किसी चूनरीवाली बहू-बेटी की अर्ध-बुझी चिता से आवाज आती है यह वेदना भरी आवाज को सुने :

दरियाना बेटमां रे'ती, साहेबनुं नाम लेती,
हुं दरियानी माछली.
मने बारणे काढवी नो'ती हुं दरियानी माछली.
बार काढी तो हवे भले काढी;
मने सूंडले नाखवी नो'ती -
हुं दरियानी माछली.
सूंडले नाखी तो हवे भले नाखी,
मने घर घर वेचवी नो'ती -
हुं दरियानी माछली.
घर घर वेची तो हवे भले वेची,
मने छरीए छोलवी नो'ती -
हुं दरियानी माछली.
छरीए छोली तो हवे भले छोली,
मने मरचे भूँजवी नो'ती -
हुं दरियानी माछली.
मरचे भूँजी तो हवे भले भूँजी
मने तावडे तळवी नो'ती -
हुं दरियानी माछली.
तावडे तळी तो हवे भले तळी,
मने चप चप चाववी नो'ती -
हुं दरियानी माछली.
चप चप चावी तो हवे भले चावी,
मने कागडाने नाखवी नो'ती -
हुं दरियानी माछली.

['रढियाळी रात']

[मैं समुद्र में रहनेवाली मछली हूँ और साहब का नाम लेती हूँ । मैं समुद्र की मछली, मुझे समुद्र के बाहर निकालना नहीं था । बाहर निकाला तो भले निकाला मुझे टोपली में डालना नहीं था । टोपली में डाला तो अब भले डाला, मुझे घर-घर बेचना नहीं था । घर-घर बेचा तो अब भले बेचा, मुझे छूरी से छीलना नहीं था । छूरी से छीला तो भले छीला मुझे मिर्च डालकर भूँजना नहीं था । मिर्च डालकर भूँजा तो भले भूँजा, मुझे तवे पर तलना नहीं था । मुझे तवे पर तला तो भले तला, मुझे चप-चप चबाना नहीं था । चप-चप चबाया तो भले चबाया मुझे कौए को डालना नहीं था ।]

'मैं समझ गया । यह तो किसी गृहबहू पर बीती-घटना का वर्णन है । किन्तु कर्कशा बहुबेटियों ने सास के उपर क्या कुछ नहीं गुजारा, हे तापी माँ ? इसका विवेचन हुआ है ?'

छोटी उम्र की बहू की संवेदना :

नयी नवेली बहू ब्याह करके स्वसुर गृह आ गई है । लेकिन बहू की छोटी उम्र है, उसको ससुराल क्या है उसकी भी खबर नहीं है । वो रमतियाळ है । उनकी सास उनको कहती है कहीं और बहू कहती है कहीं । यहाँ बहू की वेदना इसी गीत में व्यक्त की गई है वो देखे :

मेंदी लेशुं मेंदी लेशुं मेंदी मोटुं झाड,
एक हलावुं डाळ त्यां तो डाळां हले चार. सैयर मेंदी लेशुं रे.
मारी सासुए एम कह्युं के पाणीडां भरी मेल,
में भोळीए एम जाण्युं के बेडलां फोडी मेल. सैयर मेंदी लेशुं रे.
मारी सासुए एम कह्युं के रोटला घडी मेल,
में भोळीए एम जाण्युं के चूला खोदी मेल. सैयर मेंदी लेशुं रे.
मारी सासुए एम कह्युं के डोबाने पूळो नीर,
में भोळीए एम जाण्युं के डोसाने पूळो नीर, सैयर मेंदी लेशुं रे.
मारी सासुए एम कह्युं के कोढमां दीवो मेल,
में भोळीए एम जाण्युं के सोडमां दीवो मेल. सैयर मेंदी लेशुं रे.

[मेंहदी लूँगी, मेंहदी लूँगी, मेंहदी का बडा वृक्ष है, जहाँ एक डाल हिलाऊँ तो वहाँ डाली हिले दो-चार, सैंया मेंहदी लूँगी । मेरी सास ने ऐसा कहा कि पानी भर दो, मैं भोली ने यों समझा की गागर फोड़ डाल । मेरी सास ने ऐसा कहा कि रोटला बना डाल, मैं भोली ने ऐसा समझा कि चूल्हा खोद डाल । मेरी सास ने ऐसा कहा कि भैंस को पानी दे, मैं भोली ने ऐसा समझा कि बूढ़े को पानी दे । मेरी सास ने ऐसा कहा कि बाड़े में दीया रख, मैं भोली ने ऐसा समझा कि बगल में दिया रख । सैंया मेंहदी लूँगी ।]

गुर्जर नारी की शौर्य गाथा में व्यक्त संवेदना :

गूर्जर नारी की शौर्य गाथाएँ भी गायी गई है वो तापी माँने निःश्वास के साथ कहा है वो देखते है :

'किन्तु तापी माँ ! आपके तीर कोई नारी - शौर्य नजर में चढ़ा है ?'

'गूजरात ने तो, बेटा', तापीने निःश्वास छोड़ा : 'वीर-वीरांगनाओं के पराक्रम ज्यादा नहीं गाया है ।'

'तापी माँ ! इतना बड़ा स्मृति भ्रंश !' ऐसा कहती हुई उत्तर भारत की सुविशाल सरिताएँ उस पगडंडी की बगल से उछल पड़ी : आपकी गुर्जर- गलियों को गुंजित करते गुर्जरी-गीत क्या भूल गयीं ? गुजरात की अपनी कुल-नामक मुद्रा की धाक जमानेवाले नौ लाख गुर्जर हमारे तीर से जिस दिन दिल्ली पर चढ़ बैठे थे उस दिन को तो आपकी लोकवाणी ने तो गुर्जर वधुओं के हृदय में न जाने कितने काल से काव्यांकित किया है -

के काबुल से बादशा चडे ने सारी दिल्ली का दीवान रे
के बादशा ऊतरे बागमें, में के मस जोवा जाऊं रे !

'गुजरात की आद्य जगदंबा वह जवान ग्वालिन मेना गुर्जरी हमारे तीर खड़ी हुई और बात सुना कि पड़ौस में ही बदाशाही पड़ाव पड़ा है । प्यारी गुर्जरी को बादशाही ठाठबाठ देखने का मन हुआ । उसने भव्य ग्वालिन-स्वांग रचा, और -

महियर लो कोई महियर लो, कोई लो मटकी का दूध रे

ऐसा कहते हुए वह बादशाह के पड़ाव में घूमने लगी ।
बादशाह उसकी सुन्दरता पर फिदा होकर उसे ललचाया :

के बादशा केहेवे सुण गुजरी, तुम सुणो हमेरी बात रे,
मेरी मूछुं तो अजब बनी, मेरी मूछुं देखन आव रे.

इसका उत्तर गुर्जरी ने यह दिया :

तेरी मूछुं में क्या देखना, मेरा बकराकुं ऐसा पूंछ रे.

बादशाह चिढ़ गया और चिल्ला पड़ा :

हिंदवाणी तुं हरामजादी, बादशाकुं देवे जवाब रे !

उसे पकड़ कर, बंद कर दिया, जंजीर में जकड़ दिया, फिर भी गुर्जरी क्या बोली :

मने न जाणीश एकली, मारा गुजर चड़े नव लाख रे !

और सचमुच में संदेशा पहुँचते ही नव लाख गुर्जर -

केसरिया भाई वाघा पहेरो ने हो जवा लाल गुलाल रे !

ऐसा युद्ध ललकार करते हुए चढ़ आये । बादशाह ने गुर्जर सैन्य और बादशाही फौज दोनों के बीच मैना गुर्जरी को बैठाते हुए कहा कि -

बीचमें राखो गुजरी ने जे जीते ते लई जाय रे ।

गुर्जरों ने घसामान युद्ध कर विजय प्राप्त की, तब बादशाह ने कबूल किया कि-

तमारी गुजरी तमने मुबारक, गुजरी हमेरी बेन रे !

('रढियाळी रात')

'ऐसी राष्ट्रगाथा क्या याद नहीं रही, तापी माँ ! पगडंडी के पथ पर वीरत्व गुर्जरियों ने गाया है; राजमार्ग पर जिन्हें चलने का अधिकार ही नहीं था उन प्राकृत लोगों का आत्मगौरव और जातिगौरव दूसरे किस प्रकार से जीवित रह पाता !' ऐसा कहते हुए गुर्जरों की आद्य-अन्नपूर्णा पंजाबी महानदियाँ शांत हुई ।

मोरबी नगर की वाणियण की संवेदना :

इसी तरह सौराष्ट्र की मच्छु नदी के तीरवासी मोरबी नगर की वाणियण की भी संवेदना व्यक्त की गई है । वो देखें :

'यही गुर्जरी-गर्व हमने अपने छोटे -से किनारे पर गुंजित रखा है, ऐसा कहते हुए सौराष्ट्र की मच्छु नदी ने अपने तीरवासी मोरबी नगर की वाणियाण और राजा जीवाजी ठाकोर की कथा गाकर बताने लगी -

मोरबीनी वाणियाण मच्छु पाणी जाय.
आगळ रे जीवोजी ठाकोर
वांसे रे मोरबीनो राजा,
घोडां पावा जाय.
के'जे रे वाणियाणी तारा अंबोडानां मूल !
जावा दो जीवाजी ठाकोर, रे'वा दो मोरबीना राजा, नथी करवां मूल.
मारा अंबोडामां तारुं माथुं थाशे डूल.

['रढियाळी रात']

[मोरबी की बनियाईन मच्छु नदी में पानी भरने जाती है । उसके आगे जीवोजी ठाकोर और पीछे मोरबी का राजा है घोड़े को पानी पिलाने जाता है । कहो तो बनिआइन अपने जूड़े का मूल्य । रहने दो जीवाजी ठाकोर और मोरबी के राजा, मेरे जूड़े में तुम्हारा सिर खप जाएगा ।]

वियोगावस्था में ऋतुओं की असर :

वियोगावस्था में नारी की स्थिति विपरीत हो जाती है । उन्हें प्रकृति का प्रत्येक स्थल, प्रत्येक कार्य विरह को बढाने वाला लगता है । जहाँ पहले प्रकृति नायिका के आमोद प्रमोद की पुण्यस्थली है, वही विरह की अवस्था में उसकी विरह भावना को उद्दीप्त करने में सहायक होती है । यही कारण है कि प्रकृति प्रेरित भावनाओं से लोक विरह ओत-प्रोत है ।

राजस्थानी लोक गीतों में प्रत्येक ऋतु का प्रभाव नायिका पर अलग-अलग रूपों में वर्णित है । 'बारह मासा' में बारह महिनों के प्राकृतिक चित्रण के साथ ही साथ विरह की अवस्था में विरहिणी की मनोदशाओं का वर्णन भी पूरे गीत में होता है ।''

लोकजीवन की कल्पनाएँ आभिजात्य साहित्य जैसी दुःखद न होकर स्वाभाविक और रम्य होती है । चित्र उपस्थित करने की क्षमता उन गीतों में अधिक है । रंग, रूप, भावना, चेष्टा, पृष्ठभूमि और वातावरण का उपयुक्त वर्णन उन गीतों में मिलता है ।

विरहिणियों को सबसे दुःखदाई वर्षा ऋतु लगती है एक तो प्रिय की याद में विरहिणी की अवस्था दयनीय है ही, उस पर सुहावनी वर्षा ऋतु आकर विरह को और अधिक उद्दीप्त कर देती है । यथा -

भादूंबरखा झूक रही, रही घटा नभ जोर,
चम-चम चमकै बीजली, टप-टप बरसे मेंह ।

भर भादूं बिलखत तजी, भली निभायो नेह
जी सरदार चौमासे ने घर मत छोडो ॥ मेरी ज्यान -

इस गीत में आगे चलकर विरहिणी प्रत्येक ऋतु की विशेषताओं का वर्णन करती हुई प्रिय से घर रहने का आग्रह करती है । जैसे आसोज में प्रिया सीप की तरह आस कर रही है कि प्रिय पास रहे, इस कामना की पूर्ति के लिए विरहिणी दुर्गामाता को सोने के छत्र की भेंट चढाने को भी कहती है । विरहिणी कार्तिक महिने में प्रिय को परदेश में रहने के कारण कठोर हृदयवाला कहती है तो मागसर महिने में कामदेव के तंग करने पर विरहिणी के हृदय की जलन को शान्त करने के लिए घर पर बुलाती है । सर्दी की ऋतु तो वर्षा ऋतु से भी कष्टप्रद है, अगहन, पौष, माघ माह विरहिणी के लिए प्रिय के बिना दुःखदाई है । एक अन्य गीत में सर्दी की ऋतु के साथ-साथ अन्य ऋतुओं का चित्रण भी मिल जाता है -

'ओ म्हारी जोडीरा, ओ मिरगा नैनीरा रतन, सीयालो राजन यूं ही गयो ।
ऊनाला रा पांच महीना, चौमासा रा चार महीना, सीयाला रा लोग थोडा ॥
ऊनाला रा पोमचा, चौमासा रा लहरिया, सीयाला रा फागणिया छपावो ।
म्हारा जोडी रा जलाल .....

और अन्त में विरहिणी विवश होकर यहां तक कह देती है कि -

''ऊनालो फेर आवेला, चौमासो फेर आवेला,
गयो तो जोबन फेर नहीं आवेला ।''

यो तो सभी ऋतुओं का अपने स्थान पर महत्त्व है, किन्तु सावन की अपनी छटा निराली है । इसका राजस्थान में महत्त्व कुछ अधिक है । मरुघर का शुष्क अन्तस्थल इन दिनों में हरियाली से भरपूर हो लहलहा उठता है । सावन का महिना सुहावना भी तो उठता है । वर्षा की हल्की - हल्की फुहारें गर्मी की तपती लूओं की झुलसन को समाप्त कर देती है । पत्नी को ऐसी ऋतु में प्रिय के विदेश जाने का आभास हो जाता है । वह रोकते हुए कहती है :-

''कुण थाने चाला चालिया, हो परनिया मारु, कुण थाने दीवी ढोला सीख
हो पिया प्यारी रा ढोला जी हां रे हाँ, सावणियो विलूंबों रे बीकानेर''

प्रिय से बिछुडे बरस बीत गये पर वह घर नहीं आया । विरह की अवस्था में सभी आमोद-प्रमोद की चीजें अतीत की मदमाती स्मृतियों को सजग कर देती है । विरह व्यथित एक स्त्री अपने प्रिय की याद में इतनी लीन हो जाती है कि सजीव निर्जीव का भेद भी भूल जाती है । समयावधि बीतने पर वह उस महल (मेडी) से, जो उसके प्रियतम जाते समय बना गये थे, प्रश्न करती है :-

तू क्युं ए मेडी बैरण डगमगी ।

इसी गीत में वह प्रिय का आह्वान करती है और याद दिलाती है कि श्रावण में आने का वायदा था, किन्तु प्रिय नहीं लौटे । एक अन्य प्रसंग में माह गिनते-गिनते उसकी अंगुली की रेखाओं के घिस जाने का वर्णन मिलता है :-

सावण आवण कै गया, कोल कर गया अनेक ।
गिणता गिणता घिस गई, मारी आँगलिया री रेख ॥

सावण में लगी वर्षा की झडी विरहिणी की रुदन अभिव्यक्ति है । विरहिणी कहती है :

मेरो मन मारुजी मिलवाने
जेठ असाढ आसा सूं काढया तो सावण आयो झुरवा ने
मेरो मन मारुजी मिलवा ने
पूरब दिसा सूं उठी बादली तो आयी म्हारे घरां बरसवां ने
मेरो मन मारुजी मिलवा ने

विरहिणी के लिए सावण जैसी सुहावनी पर उसकी विरह वेदना को बढाने वाली ऋतु ओर कोई नहीं है । धरती का हरा-भरा आंगन, बरसालू बादल, बाडों से लिपटी बैल सभी विरहिणी के लिए असह्य है । वह कह उठती है :-

सावण आयो सायबा रे, बांधो पाग सुरंग
घर बैण राज सिकारो कोई हरित्या चरे सुरंग
म्हारे सावण री लूमां-झूमां रे राज रे बिना
चौमासो अलूणो जाय ।
साबण आयो सायबा पगां वै लूम्बी नार
वाडा लूम्बी बेलडी कोई नरां ने लूम्बी नार ॥

प्रकृति गीतों में सावन की तरह ही फाल्गुन का चित्रण भी व्यापक रूप से मिलता है । इस माह में वसन्त ऋतु का आगमन होता है । नायिका की सब सहेलियाँ चीर रंगा रही है, पर वह कहती है : मेरा तो सब रंग बाईजी का भाई ले गया है । हे उमराव । उस रंग बिरंगे वसन्त में तुम्हारी प्रिया रंग विहीन हो गई है । सब 'पिया' की प्यारी कामनियां साजन के साथ फाग खेल रही है । हे प्रियम । केवल तुम्हारी प्रिया ही तुम्हारे वियोग में बिलखती हुई घूम रही है ।

विरहिणी नारी के संदेशवाहक पशुपक्षी :

पशु पक्षी और मानव का सम्बन्ध आदिम अवस्था से है । 'आदिम-मानव शिशु की उस असहाय अवस्था में वनस्पति और पशु माँ घरती के दो स्तन समान थे, जिनसे उसे अपना जीवन मिलता रहा था । आदिम-मानव पशु-जगत में अपनी चेतना का सबसे अधिक साम्य देखता है । पशु उसके समान चलते फिरते हैं, आते हैं, पीते हैं, आवाज करते हैं, विभिन्न मनोदशाएँ प्रकट करते हैं ।''

वस्तुतः पशु पक्षी मनुष्य के सदैव से अभिन्न सहचर रहे हैं । राजस्थानी लोकगीतों में पशु-पक्षियों का उल्लेख प्रचुरता से हुआ है । विशेषकर विरही हृदयों द्वारा संदेशों का आदान-प्रदान करने के लिए पक्षी ही मुख्य माध्यम बनाये गये हैं । अतः काग, सुवा, पपैया, मोर, कुरजां कोयल और कूकडा आदि पक्षी संदेशवाहक व हृदयगत भावों के प्रदर्शन के माध्यम रहे हैं । इनमें से काग, कुरजां, सुआ आदि स्त्रियों के प्रमुख विश्वास पात्र रहे हैं । अतः उनके सम्मुख अपने भावों का प्रदर्शन करना और संदेश भेजने का कार्य करवाना अधिक हुआ है ।

(i) काग – राजस्थानी लोक साहित्य में काग का अपना विशिष्ट स्थान है । घर की मेडी पर बैठे काग ने लोक जीवन में आज तक कितना मिठास संचित किया है, कोई पार ही नहीं कोई लेखा-जोखा ही नहीं है । मनोदशा के संदेशवाहक इन पक्षियों को बदले में कितनी बार गुड, घी, खांड का थाल परोस कर भोजन कराया गया है, कितनी बार और कितनी तरह के घूंघरे इनके पैरों में बाँधे गये हैं, कितनी बार मिसरी की डलिया इन्हें प्यार के साथ चुगाई गई है, कितनी बार इनकी चोंचों को हिंगलू से लाल रंगा गया है और कितनी बार कितनी तरह से उसके सुन्दर पिंजरे बनवाये गये हैं, उसके काम करवाने के तरीके में भी हुक्म और आदेश का स्वर नहीं प्रार्थना, प्यार और भाई-चारे की स्नेह भरी विनय है । आपसी समानता है । मानवीय संवेदना है ।

एक लोकगीत में विरहिणी काग से प्रिय के समाचार लाने की याचना करती हुई कहती है-

उडजा रे काग, गिनग का वासी
खबर तो ल्याव म्हारे साजन की
नाम नहीं जाणु, म्हें तो गाँव नहीं जाणु
सूरत न जांणु थारे साजन की ।
तीखी-तीखी नाक फिरंगी को नौकर
चाल चले उमरावां की ।

लोकधारणा है कि जब काग बार-बार बोलता है तो वह किसी प्रियजन के आने की अग्रिम सूचना देता है । इसी धारणा के आधार पर निर्मित एक लोकगीत है । स्त्री के घर के भीतर लगे नीम पर बैठकर कौआ बोला पर कई दिनों की प्रतिक्षा के पश्चात् भी जब उस विरहिणी का प्रिय, भाई या स्वजन घर नहीं आये तो वह झुंझला उठती है और अपनी दासी से उस काग को तीर मारने को कहती है –

मारो ! ए रतनादे दासी ! काग लिया रे तीर ।
नित नित आयने कूर के, म्हारी नीमडली रै बीच ॥

एक अन्य गीत में विरहिणी घर की मुंडेर पर बोलते काग को प्रिय का नाम लेने पर उडकर शगुन बताने को कहती है । यथा –

उड उड रे म्हारा काला रे कागला
जद म्हारा पीवजी घर आवे, जद म्हारा ।
खीर खांड रा जीमण जीमाउ
सोने में चोंच मंडाऊ कागा, जद म्हारा पीवजी.....

इतने आग्रह को कौन टाल सकता है ? इसीलिए स्त्री के दुःख से दुःखी होकर काग अन्त में उसे आश्वासन देता हुआ कह देता है –

मत कर मत कर बिदरंग थारो मेष,
खुल्या रे केशा ना फिर
आग मिलेंगो थारो श्याम बिन दसने
झुर झुर ना मरे रे ॥

इस पर भी स्त्री को धैर्य नहीं है । अतः वह काग से अपने नयन निकाल कर देने को कह देती है -

कागा नैन निकाल दूं पिय पास ले जाय,
पहले दरश कराय के पीछे लीजो खाय,
कागलिया गेरो गेरो बोले रे
म्हारो परवानों गयोडो परदेश, कागलिया

इस गीत में प्रियतमा ने नयन विहीना होना स्वीकार किया है पर वह प्रिय दर्शनों के पश्चात् । प्रियदर्शन की अभिलाषा इससे बढकर क्या होगी ।

(ii) कुरजां - कुरजां लोक काव्यों का प्राण रही है । ढोला मारु में भी 'मारवणी' अपना संदेश कुरजां के माध्यम से भेजती है । लोकगीतों में भी कुरजां का वर्चस्व कम नहीं है । काग के लिए तो विरहिणी ने केवल 'खीर खांड' का भोजन और 'सोने में चोंच' मंडाने का कहकर ही अपने विरही हृदय के उद्गारो को प्रकट किया है । किन्तु कुरजां के साथ तो उसका रिश्ता भी बन जाता है वह उसकी ''धरम की बहनडी'' और ''भायली'' तक बन जाती है -

तू छै कुरजां भायली ए
तू छै धरम की ए भाण
पतरी लिख दू प्रेम की ए
दीजो पियाजी ने जाय
कुरजां म्हारो भंवर मिला दीजे ।

कुरजां के समक्ष नारी अपने प्रियतम की शूरवीरता का बखान करती है - शायद पारिवारिक संकोच के कारण वह अन्य किसी से कह नहीं सकती । प्रिय पक्षी के आगे तो अपने वीर पति का गुणगान करे -

कुरजां आज भंवरजी रा डेरा डूंगरा
कुरजां मारिया मारिया सूर पचास

प्रिय की याद में कृशकाय विरहिणी कुरजां के साथ अपनी कृशकाय दशा का हाल पत्र में लिखकर भेजती है ।

ढोले ने कागद लिखूं लाल बैठ महल के जी माय,
आंगलियां से मूंदडो जी ढोला ढल आवे म्हारी बाय ।

ढोला मारु लोक काव्य में एक स्थान पर विरहिणी कुरजां से संदेश न भिजवा कर उससे पंख देने की विनय करती है -

कुरंझडिया द्यौ पांखडी, थाकउ विनउ वहेसि ।
सागर लंघी प्री मिलउ, प्री मिल पाछी देसि ॥

(iii) सूवटा– राजस्थानी लोकगीतों में सूवटा (तोता) सहानुभूति का आधार है । विरहिणी काग को प्रलोभन देती है । कुरजां से नाता जोडती है । पर फिर भी उसके प्रिय घर नहीं आते । हारकर स्त्री तोते से प्रिय मिलाने पर उसकी जन्म जन्मांतर तक दासता स्वीकार करने तक का कह देती है । इससे बडी विवशता और क्या हो सकती है कि एक स्त्री पक्षी की दासी तक बनना स्वीकार कर ले –

मेरो बिछुडयो कन्थ मिलाय,
सूवटा जन्म-जन्म की दासी ।

एक गीत में स्त्री को यह ज्ञात हो जाता है कि सूवा नरवर जा रहा है, जहाँ उसका प्रियतम भी रह रहा है । ससुराल के सब नाते-रिश्तेदारों को उचित याद के साथ प्रिय को सात सलाम कहलाती है । वह सूवटीये को एक प्रलोभन भी देती है । जिसमें उसे गुजरी के यहाँ बसेरा लेना व दूध दही खा लेने का आग्रह करती है –

सूवा नरवर जायगो तू ही ओ
सास ससुरै जी ने कहियो पगेलागणा रे
नणदल ने याद कही ओ सूवा
परण्ये ने कहिजै, सूवा सात रे सलामी
देवर ने प्यार सही हो सूवा
घर गूजरी के सूवा वासो रे लीजौ
घालेगो दूध-दही ओ..... सूवा नरवर.....

(iv) पपैया – संयोगावस्था में पपीहा की बोली अच्छी लगती है, परन्तु वही बोली विरहिणी को वियोगावस्था में विरह को उद्दीप्त करने वाली लगने लगती है । मीराँ ने भी पपैया को सम्बोधित करके 'पिऊ पिऊ' की रट लगाने हेतु मना किया है । एक लोकगीत में विरहविदग्धा पपैये से कहती है –

पपैया बैरी ना बोलो
म्हारे घरे नहीं भरतार

राजस्थानी लोकगीतों में पशु :

राजस्थानी जन-जीवन में पशुओं का अपना महत्त्व है । अतः पशुओं से आत्मीयता व्यक्त करना स्वाभाविक है । विशेषकर ऊँट, घोडा, हरिण, गाय-बैल आदि का चित्रण विविध गीतो में हुआ है ।

(v) ऊँट – मरुभूमि का ऊँट राजस्थान के लोगों के लिए कितना महत्त्व रखता है, यह यहाँ के लोग ही जानते हैं । आज यातायात के साधनों में मोटर, रेल व वायुयान का प्रभाव होते हुए भी राजस्थान में कई स्थल ऐसे है जहाँ पहुंचने के लिए लोगों को ऊंट का सहारा लेना पडता है । अतः यदि राजस्थानी लोकगीतों में ऊँट का उल्लेख आज भी गर्व के साथ किया जाता है, तो आश्चर्य की बात नहीं है ।

राजस्थानी लोकगीतों में ऊँट कहीं पर सवारी के काम आता है तो कहीं प्रिय साथी के रूप में । एक नायिका ऊंट को घर बुलाने का आग्रह करती है, ताकि उसके साथ उसका प्रियतम भी आये ।

ऊभोडी उडीकूं घर आव हांजी रे ।
महाराजा रा करहा लूंगा रो लदियोडो घर आव ॥

एक गीत में, एक नायक के दो पत्नियाँ है अतः जन नायक दूसरी पत्नी के पीहर जाता है तो पहली पत्नी ऊंट को सम्बोधित करके कहती है - ओ करहला तू मेरे पिता का दिया हुआ है । मेरी बात सुन, तू प्रिय के ससुराल मत जा, मैं तुझे खाने को नागर बेल दूंगी । उस ऊंट पर उसका अधिकार है । यह कहती है -

''करहला तू म्हारा बाप रौ, रे तू सांभल म्हारी बात''

(vi) घोडा - राजस्थान में रेगिस्तान क्षेत्र होने के कारण वैसे तो ऊँट को ही प्रधानता दी गई है किन्तु राजपूती आन मान और युद्ध की आवश्यकता को ध्यान में रखकर घोडे का महत्त्व भी कम नहीं माना है । यहाँ के लोकगीतों में घोडे का चित्रण भी मिलता है । नायिकाएं अपने प्रियतम को घोडो पर आने का निमन्त्रण देती है -

ये म्हारे आवजो पावणा मारुजी,
करने घोडा रो घमसाण म्हारा राज ।

कहीं नायिका अपने जाने वाले प्रियतम को रोककर दो घडी के लिए घोडे को थामने का आग्रह करती है -

नागजी घडी होय घडी घुडला थाम रे ।

कुछ प्रसंगों में नायिका ने घुडला दौडने की प्रशंसा की है :

तीज्या ने घुडला दौडसी सहेली ए,
हां ए कोई होसी होसी करालां री होड ।

घोडे से सम्बन्धित कुछ गीतों के प्रसंग निम्नलिखित है :

(क) लालडी बाँधी भंवर जी ठाण में जी,
(ख) घी थारे घुडला ने पाय, गोरी ने खिदावो बाप के ।
(ग) सेल करण सायबो गयों हुय लीली असवार
(घ) घुडला सइयां दीखे य न ठाण,
ना रे पगाणे भंवरजी री मोचडी
(च) ओ लो थारां हाथी घोडा,
म्हाने सीख दिरावो राजा जी ।

(vii) हिरण - लोकगीतों में हिरण व हिरणी नायक-नायिका के लिए प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुए हैं और हिरणी के विरह दुःख में नायिका का ही दुःख व्यक्त हुआ है । कोई विरहिणी

को सम्बोधित करके पूछ रही है कि हे हरिणी ! तू किस दुःख से दुःखी है और तेरा वेश बिरंगा क्यों हो रहा है ? वह उत्तर देती है कि मेरा हरिण हरिणों के साथ वन में चला गया है । उसी दुःख से मेरा वेश बिरंगा हो रहा है ।

तूंतो किस विघ, ए हिरणी दूबली
थारां के दुःख बिरंगा भेस
म्हारां हिरण गया हिरणां के खेत
ए दुख म्हारा बिरंगा भेस
पपैया बोले वाणी, म्हारे नैनां बरसे पाणी ।
म्हें उभी जोऊं बाट, पपैया बैरीना .....

(ix) पपीहा – लोकगीतों की नायिका यह भी समझती है कि श्रावण की सुरंगी ऋतु तो पपीहे के बोलने ही ऋतु है ही अतः वह बोलेगा अवश्य । फिर भले ही उसे प्रिय वियोग के कारण कुछ भी अच्छा नहीं लगता हो ।

पपैया बारे बोलण री रितु आई रे
जेठ मास री लुआं बीती, अबै सुरंगी रितु आई रे
आसाढ उतरियो सावण लाग्यो, काली घटा घिर आई रे.....

एक अन्य गीत में नायिका पपीहे से उस स्थान पर जाकर बोलने का निवेदन करती है, जिस स्थान पर उसके मदभरे प्रिय का निवास है ।

पपैया, तू बोल रे जित म्हारे आलीजा भंवर रो मुकाम
सावन आयो सायबा, वने झिंगोरत मोर
कालिंगडो कू कू करें, म्हारे करत कोयलडी सोर
पपैया तू बोल रे जित म्हारे आलीजे भंवर रो मुकाम ॥

किन्तु कुछ लोकगीत ऐसे भी मिलते हैं जिनमें विरह व्यथित पत्नी की अपेक्षा प्रेमिका का उल्लेख मिलता है । एक परकीया अपने प्रेमी से पपीहा बोलने पर कहती है कि – हे प्रिय तुम हमारे बागों में आना । मैं बागों में अकेली घूम रही हूं और इसके साथ ही पपैया बोलकर मेरे विरह को और बढा रहा है । यथा –

भंवर बागा में आजोजी,
बागा फिरुं अकेली पपैयो बोल्योजी

इसी गीत में आगे परकीया को नायक पत्नी की दुहाई देकर आने के लिए असमर्थता प्रकट करता है । नायक के हृदय में पत्नी का महत्त्व अधिक है, जो उसका वंश बढाती है । इस तरह इस गीत में दाम्पत्यरति का निर्वाह मिलता है ।

(x) कोयल – कोयल भी संदेशवाहिका रही है । सुकोमल भावों को उद्दीप्त करने में सहायक मानी जाती है । नायिका ने कहीं कोयल के माध्यम से संदेश भेजे हैं तो

कहीं पर उसकी बोली सुनकर प्रिय को स्मरण किया है । कहीं कोयल परकीया की प्रतीक बनी है । एक गीत में नायिका कहती है - हे दासी मेरा प्रियतम अभी तक नहीं आया । किसी ने उसे लुभा लिया है । यथा -

बागां में घूमण गयो म्हारो रावतियों सरदार
बागा मांयली कोयल म्हारो लियो छै भंवर बिलमाय ।

कहीं - कहीं कोयल शगुन विचार की दृष्टि से भी लोकगीतों में उल्लेखित हुई है ।

(xi) मोर - नायिका के लिए रात अकेले काटना दूभर है । तिस पर आधी रात के बाद मोर बोलने लगा । तब तो उसका चैन ही नष्ट हो गया । मानो किसी ने उसके कलेजे में दुसार (दुधारी तलवार) लगा दी हो । यथा -

मोरिया आछो बोल्यो रे ढलती रात रा
म्हारा काजलिया में बेगी रे दुलार
आछो बोल्यो रे ढलती रात रा
म्हारा हिवडा में वैगी रे करौत ।

एक अन्य गीत में नायिका मोर की 'पीऊ पीऊ' सुनकर प्रिय मिलन हेतु विह्वल हो जाती है । यथा -

पिउ पिउ बोले मोरडो, म्हारे पिउ गए परदेश ।
यो ना बोल रे मोरडा, म्हारे हिवडे ने लागे ठेस ॥
तूं के जाणे रे मोरडा म्हाने पिया मिलन री आस,
पल पल कांपे हिवडो, दोरी आवे सांस ।

कुछ गीतों में चिडिया, हंस चकवा आदि पक्षियों का चित्रण भी मिल जाता है । राजस्थान कृषि प्रधान प्रान्त है । अतः टिड्डियों से बचाव हेतु 'टीडी' गीत भी गाया जाता है । जिसमें परिश्रमी किसान-पत्नी द्वारा खेत रक्षा की कामना व्यक्त की गई है । जैसे -

टीडी ! उडज्जा अे, खेत परायो
जेठ असाढ म्हे बलया ताबडै
पच-पच हलियो वायो
टीडी ! उडज्या अे खेत परायो

'जल्ला' नामक लोकगीत में जो होली के आसपास गाया जाता है, हिरण को नेत्रों की उपमा दी गई है ।

जलाजी मारु
म्हे तो थारां डेरा निरखण आयो हो

मिरगानैणी - रा जलाल !
म्हे तो थारां डेरा निरखण आयो हो जलाल !

एक लोकगीत में मृग (प्रिय) मृगी (प्रियतमा) को अकेली छोडकर वन में चला जाता है । मृगी उसे वन में ढूंढने निकलती है । आँसू बहाती है पर निष्ठुर हिरण (प्रिय) नहीं मिलता है । असफलता मिलने पर निराशा की घनीभूत पीडा से वह चक्कर खाकर गिर पडती है -

मिरगे बिना मिरगी एकडली
मिरगो छोड गयो वन खण्डमांय मिरगी ने एकलडी
मिरगे ने ढूंढण वन मिरगी निसरी
ढूंढ्यो ढूंढ्यो वन खण्ड छाण
मिरगे बिना मिरगी एकलडी.....
खाय तिरवालो मिरगी ढै पडी
कोई ओ दुःख सहयो भी न जाय
मिरगे बिना मिरगी एकलडी.....

पत्नी को मृगी का रूपक देकर अन्योक्ति के आधार पर लोक गीतकार ने उसकी मूर्च्छा का अति स्वाभाविक चित्रण किया है । ''ढै पडी'' पद में गहन-व्यंञ्जना है । ऐसा तभी होता है, जब उस वस्तु का कोई सहारा नहीं रहता तभी तो वह आधारहीन होकर ढै पडती है । यहाँ कितनी सारयुक्त अभिव्यक्ति मिलती है ।

विरहिणी नारीयों के हृदय में सूरज, चांद, तारे का महत्त्व :

(ii) चांद - चन्द्रमा सुकोमलता और सौन्दर्य का प्रतीक माना जाता है । स्त्री के सौन्दर्य की उपमा 'चन्दा बरनी घरनार' के रूप में ही दी जाती है । चन्द्रमा जहाँ संयोग अवस्था में शीतलता प्रदान करता है वही वियोगावस्था में वह विरहिणीयों के हृदय को जलाने वाला भी है । उसकी शीतल चाँदनी नायिका के लिए कष्टदायक होती है :

चन्दा थारे चांदणे सूती पलंग बिछाय,
जद जागूं जद एकली, मरु कटारी खाय ।

चाँदनी रात में नायिका प्रिय की स्मृतियों को संजोती है । चाँद के साथ हँसी-दिल्लगी भी की है, किन्तु वियोग में वही चन्द्रमा रोष का पात्र बन जाता है । उसकी शीतलता आग बन जाती है और विरहिणी चाहती है कि यह बदली की ओट में ही रहे तो अच्छा है ।

चन्दा छिप ज्यारे बदली मांही
क्यूं रे म्हांरी देह जलावे, पापी चन्दा
मैं झूर रही म्हारे पीव ने
तूं मोय आप सताई
चन्दा, छिप ज्या रे बदली माय

इसी गीत के अन्त में चन्द्रमा को कोसते हुए कहती है अगर तू मुझे जलायेगा तो तुझे राम पहुंचेगा ।

(iii) तारे – चन्द्रमा के साथ तारों का उल्लेख होना स्वाभाविक है । लोकगीतों में उन्हें सुन्दरता का प्रतीक ही माना है । संयोग में ये तारे प्रेम के क्षणों को अधिक सौन्दर्यमय बनाते हैं । वे ही वियोग विदग्धा को चिनगारियों के समान प्रतीत होते हैं । 'तारा छाई रात' बिताना नायिका के लिए कठिन हो जाता है : कहीं नवयौवना का महत्त्व तारों भरी रात से तुलना करके की गई है :

जोबन छाई घणमली, तारां छाई रात ।

एक घुडला गीत में भी तारों का उल्लेख मिलता है :

घुडला अे सोपारयाँ छायो, तारां छाई रात ।
डीडवाणो नारेला छायो, राज उम्मेदसिंहजी रे राज ॥

विरहिणी नारियों के हृदय में बादल-वर्षा, बिजली का महत्त्व :

(i) बादल – राजस्थानी लोकगीतों में प्रकृति अपने वास्तविक स्वरूप में प्रकट हुई है । राजस्थान में जहाँ एक ओर बदली किसान के लिए हर्ष का विषय होती है, वहाँ मानवी भावों का प्रतीक भी बनती है । नायिका का हृदय बदली को देखकर हाहाकार कर उठता है – और वह अपने प्रिय की याद में बदली को ही उपालम्भ देती है :

बदली ए, म्हारो चाँद छिपायो,
उठ उठ बादली म्हारे घर आई ।

एक अन्य गीत में नवयुवती कामना करती है :

बादली बरसै क्यूंनी ए, बीजली चमके क्यूं नौ ए ।
म्हारा भंवर सा रा महल में चम्पो सूखे ए ॥

एक स्थान पर पिया के देश बरसने का आग्रह करती है :

मेरे पिया के देश बरस बदली मेरे पिया के देश
कुणसी दिसा से उठी रे बादली कुण सी दिशा में जाय बरसी

बादली को अपने महलों पर मंडराते देख कहती है :

आवो किण जी रें मेंला बादली रे लाल
आतो झुक झुक झौला खाय ।

'झुक झुक झोला' खाय पद में कितनी सुन्दर व्यंञ्जना है । कुछ गीतों में बादली के बरसने पर नायिका प्रिय मिलन का अनुभव कर लेती है :

प्रीतम भेजी बादली, इण में मीन न मेख,
बरसण मिस झूरै खडी, घण बिललन्ती देख ।

(ii) बिजली – चमकती गर्जना करती बिजलियाँ भी प्रिय भावों की द्योतक बनती है । 'ढोला मारु' लोक काव्य के बादलों में चमकती बिजलियाँ मारवणी को प्रिय-प्रियतमा का मिलन सी प्रतीत होती है । बरसात के उपमान – बादल, कलायण, काठल, बिजली आदि को देखने से कालिदास

की अमर कल्पना 'मेघदूत' मानव हृदयों में साकार हो उठती है । पुरुष के भीतर सोया हुआ यक्ष अपनी प्रियतमा की याद में विकल हो उठता है । नारी के भीतर सोई हुई यक्षिणी अपने प्रियतम की याद में अकुला उठती है ।

बिजली का चमकना दु:खिनी के हृदय के अन्तर्जगत में प्रवेश कर प्रिय-स्मृति की चकाचाँध उत्पन्न कर देती है ।

'ऊँची तो खीवे, ढोला बीजली,
नीची खीवै छै निवाण जी ढोला ।

एक गीत में स्त्री अपनी उपमा आकाश की बिजली से करती हुई प्रिय को सावन की वर्षा की उपमा देती है :

ढोलो सांवणियों रो मेंह,
मरवण आभा केरी बीजली रे लाल ।

इसी बिजली के क्षणिक प्रकाश में विरहिणी प्रियतम को आता हुआ देखने की कामना करती है :

बिजली रै झबके देखूं, भंवर थाने आवाता जी ।

एक अन्य लोकगीत में बिजली के गिरने को नायिका ने अपने अनुकूल माना है :

नरवर गढ पर पडज्यो बीजली जी,
कोई पडज्यो अचूके ए जी ए काल
ज्यूं डुल आवे गोरी रो सायबो जी

विरहिणी कामना करती है कि उसका प्रियतम बिजली गिरे या अकाल पडे ताकि घर लौट आवे ।

विरहिणी नारियों के हृदय में सांझ और दिन रात का महत्त्व :

लोकगीतों में दिन-रात एवं संध्या का भी व्यापक चित्रण है । नायिका सांझ होते ही प्रिय की याद करती है । दिन भर तो वह खेतों में काम करती रही, संध्या होते ही पिया मिलन की हूक दिल में उठने लगी -

सारे सारे दिन में खेत नपायी जी,
शाम पडया घर आयी मेरा स्याम ।
नेणा परम बिलम रह्यो
सांझ पडी दीन आथण लागो ।

इसी तरह लोकगीतों में अंधेरी रातों का व्यापक चित्रण मिलता है । भादवे की गरजती रात में नायिका प्रिय की अनुपस्थिति में डर जाती हैं ।

यथा –

भादुडी री रैन अँधेरी
गरज गरज मोही डर पाते ।

विरहिणी नारियों के हृदय में नदी, तालाब, समुन्दर का महत्त्व :

नदियों का चित्रण विरह गीतों में मिलता है । एक गीत में विरहिणी कहती है –

ढोलो नदियाँ रो नीर,
मरवण जल मांयली माछली रे लाल.....

नदी प्रिय के मार्ग में रुकावट भी है । यथा –

आडी तो गोरी नदियाँ फिर रही
बैरन हुई है बनास.....

पक्षी के माध्यम से विरहोत्तेजना :

'वीरा' गीत में हरी डाल पर कोयल का कुहकना लोकनायिका के विरह की कूक को उत्तेजना दे जाता है ।

हरियै हरियालै डाल, काली कोयल बोले राज,
बोलै बोलावै, सैयां सबद सुणावे राज ।

विवाहोपरान्त कन्या को विदा देते समय 'कोयल' गीत गाया जाता है । यथा –

वनखण्ड री ए कोयल, वन खण्ड छोड कठे चली ।
थारी आले-दिवाले गुडिया धरी,
वन खण्ड छोड कठे चली ॥

इसी गीत में कन्या के स्नेह में वशीभूत होकर सूर्य, बादल और हवा आदि प्राकृतिक शक्तियों से प्रार्थना की गई है कि उसे ससुराल में असुविधा न होने देवे । सम्बन्धियों का हृदय चीत्कार कर उठता है –

आयो परदेशी सूवटो, लेग्यो टोली में सू टाल,
कंवर बाई सिध चाली ए ।

'ओलूं' गीत में बाग-बगीचों, फल-फूलों का स्मरण कराकर कन्या की विदाई के समय दुःख व्यक्त किया है –

थारै बाबोसा बाग लगायो ए बनडी
थारै बिना कूण सींचेगौ ?
ए म्हांरै हरियै वन री कोयली !

इस तरह संस्कारों एवं नारी संवेदना का यथा स्थान चित्रण प्रकृति गीतों में सर्वत्र मिल जाता है ।

कागा गीतों में विरहिणी नारी प्रियतम आने का शकुन मनाती है, उसे खीर खांड के भोजन खिलाने का आग्रह भी करती है -

उड उड रे म्हारा काला काग, जे म्हारो पिवजी धर आवै,
खीर खांड रो थने थाल परोसूं, थारी सोना चोंच मठाऊ ।

विरहिणी 'सूवा' से भी पियु मिलाने का आग्रह करती है -

सुवा सुकन विचारो प्यारो कद धर आवसी रे,
कहती रामजी की नार, ऊभी सज सोलह सिंणगार ।
सुती ए गोरा दे रंग भर मेल में
सुतोडी ने आयो रे जंजाल
सपना में म्हारा भंवर मिलिया छे आज
कुरजा ए म्हारे भंवर मिलाणे ए
धम धम मेडी नीची उतरा
गई म्हारी सासुजी ने पास
सासुजी थारो जायो रे मिल्यो अधरात
झुठी ए थारा दे झूठा सा मत बोल
थारो जायो तो बसे रे परदेश
कुरजा ए म्हाने भंवर मिलावो ए
उठ ए छोरी छोकरी थु म्हारे साथे चाल
छोरी आली कुरजा रे चाला ए
कुरजा कुरजा कुरजडिया
बायां थे हो म्हारे धरम केरी बेण
कुरजा ए म्हारो स्याम मिलावो ए
ए सोवण कुरजडिया
कुरजा ए म्हाने भंवर मिलावो ए
म्हे तो वन री कुरजडिया
किसडी सुनाणी हे थारी स्याम
सेनाणी थने राजा री बताओ ए
पीला पीताम्बर पहरिया
असल अजब री ढाल
कटारी कमर कसियां में राखे
दुनाली ढोलो खंचि हैराखे
न्याय णिवेडे सगले देसरो

कुरजा बैठे तरज बिछाव
महलां बैठो मद पिवे
कुरजा ए सगला में सिरदार
कुरजा ए म्हाने भंवर मिलावो ए ।

पत्नी की व्यथा :

अपना पति परदेश जाता है तब पत्नी पति को रोकने का प्रयास करती है । और पति को लुभावनी लालचें देती है । पति के बिना पत्नी रह नहीं सकती । इस गीत में पत्नी की संवेदना व्यक्त हुई है ।

ससुराल में अपने पिया के बिना रहना किसी भी नारी के लिए बहुत कठिन होता है । इसलिए जब उसका पति उसे छोडकर परदेश जाना चाहता है, तो वो उसे रोकना चाहती है । यही भाव बडी निंबडी नामक गीत में है । इस गीत में उसका पति मातृभूमि की रक्षा हेतु निकला है । राजस्थान का नवयुवक देश की रक्षा हेतु निकला है । उसकी पत्नी उसे रोकना चाहती है । परंतु वो उसे समझाता है, मेरा जाना आवश्यक है । गीत इस प्रकार है ।

उदयापूस्सूं ढोला बीज मंगाय ठाण रुपाओं
आलीजारी लिंबडीजी म्हाका राज ।
माखनीयारो ढोला पाळ बंधाय, दुधान सिंचावो
आलीजारी लिंबडीजी म्हाका राज ।
उगी लिंबडली घेर गुमेर, कोईर मती तोडो,
आलीजारी लिंबडीजी म्हाका राज ।
नणंदबाई तोड्या लिंबडीरा पान
देवरीयो छंदग्याळो तोडी काचा कांबळीजी म्हाका राज ।
ननंदल बाईन ढोला सासूजीरो लाड,
देवरीयो छंदग्याळो माऊजीरो लाडलोजी म्हाका राज ।
बेठा छेला मारु दुकानारे माय
कागदीया लिख आया इंदरगडरी चाकरीजी म्हाका राज ।
कागज सुंदर गोरी बाचोयन जाय,
छाती भरीजो हिवडो उलटेजी म्हाका राज ।
छाती छेला मारु हिरासू जडाय
हिवडो जडावो माणीक मोत्यासूंजी म्हाका राज ।
पेली ओळग ढोला ससुराजीन मेल,
आबके उन्हाळे चांदन चोक मेजी म्हाका राज ।
ससूराजीन गोरी मेलयोयन जाय,
म्हारा न सरिसा वे डिकाजी म्हाका राज ।
आबके चोमासो रंगभर मेलामेंजी म्हाका राज ।

जेठजीरी गोरी बडका बोली नार
उठने परभाते हमसूं कळो करेजी म्हाका राज ।
इगनी ओळग ढोला देवरजीन मेल,
अबके सियाला, सुखभर सेजमेजी म्हाका राज ।
देवरजीरी गोरी बाळी भाळी नार
उथोडो कुमळावे गुलरा ऊलज्युंजी म्हाका राज ।
चोथी ओळग मारुजी नणंदोईजीन मेल
अबके तिज्यान भेवर घर बसोजी म्हाका राज ।
नणंदोयारी गोरी जात कुजात
ननंदली कहीये सावणीयारी तिजणीजी म्हाका राज ।
पांचवी ओळग ढोला हाळीकान मेल
अबके तिजाने मेळ पिंडो पासरयाजी म्हाका राज ।
हाळीकाने गोरी मेल्योयन जाय
ब्यारा बायोडा मोती निवजेजी म्हाका राज ।
छही ओळग ढोला राईकाने मेल
अबके तिजाने हिंडो खेल्यांजी म्हाका राज ।
सुता छेला मारु सुखभर निंद
रतन राईको हेलो पाडीयोजी म्हाका राज ।
मरजो राईका थारोडीजी नार
भंवर बिछवा थे धालयाजी म्हाका राज ।
मती देवो सुंदर गोरी राईकाने गाळ
थाराए सरीसी राईकारी गोरडीजी म्हाका राज ।
हंस हंस सुंदर गोरी देयो म्हान सीख
जीव चित लागी इंदरगाडी चाकरी म्हाका राज ।
खीचन वेला मारु दियोयन जाय
हिवडो भरीजे छाती उलटेजी म्हाका राज ।
छाती सुंदर मोरी रतना जडाय
हिवडो जडावा माणक मोत्यांसूंजी म्हाका राज ।

उदयपूर रे ढोला (प्रियतम) बिज मंगवा दो, और मेरे खेतो में निंबडी लगा दो । मैंने मखन्न की पाळ बंधाई और दुध से उसे सिंचा । निंबडी बडी घेर घूमेर आयी । ननंद ने और देवरने उसके पत्ते तोडे हैं-ननंद को उसके ससुराल भिजवा दो । देवर को इंदरगढ की चाकरी में भिजवा दो । ननंद तो सास की लाडली है और देवर माँ का दुलारा । जब इसके पति दुकान में बैठे हैं तो इंदरगढ से नौकरी के लिए पत्र आता है । यह पत्र पढा नहि जाता क्योंकि अब पति को चाकरी के लिए जाना होगा । पत्नी कहती है तुम ससुरजी को भेज दो । पति कहता है वो मेरे जैसे युवक नहीं ।

फिर जेठजी को भेज दो । उसकी नार तो बडी झगडालु है । सबेरे होते ही वो मेरे से लढ पडेगी । ठीक है तो देवर को भेज दो । देवर की नार बहुत भोली है, उसे भेजा तो वो मुरझा जायेगी । तो ननंद को भेज दो । हम इस बार तीज पर साथ में रहेंगे । साथ में झूला खेलेंगे । ननंदोयी को कैसे भेजुं ? वो तो पराया है । आप किसान को भेज दो । उसको भेजूँगा तो खेतों में अनाज कौन उगायेगा ? तो राईका को भेज दो । दोनों आराम से सो जाते हैं । तभी राईका उसे आवाज देता है । गोरी गुस्से में आती है । राईका तेरी नार मर जाय । पति उसे समझाता है, अरे राईका को गाली मत दो । उसे भी तेरी जैसी पत्नी है । तुम मुझे ही इंदरगढ चाकरी के लिए हंसते हंसते बिदा करो । जिससे मैं वहाँ की नौकरी दिल लगाकर कर पाऊँ ।

वियोगावस्था :

संयोग में प्रेम की तीव्रता होती हैं तो वियोग में उसकी गहराई । पति-पत्नी एक दूसरे से बिछुड़ना नहीं चाहते ।

झिर मिर झिर मिर मेह जिओ राजभंवरजी
हुई अंधेरी रेण ।
मति जाओ पिया चाकरी ।
डबडब भरिया नैन ।

पिया नौकरी के लिए जाते समय गौरी के नैंन भर आयें इसलिए वो कहती हैं बाहर वर्षा हो रही है अंधेरी रात है ऐसे समय आप नौकरी के लिए मत जाना ।

पति भी जब पत्नी अपने पीहर जाती है तो उसे रोकता है और कहता है तुम अपने पिता के यहाँ खुश रहोगी मैं यहाँ उदास बैठा रहुँगा ।

मति जाओ गोरी बापर जीओ राजभॅवरजी
कारण नहीं है खास
थे रेवा बढ मोज में जीओ राजभँवरजी
म्हें रेवा उदास

परन्तु संसार में कभी कभी बिछुडना तो पड़ता ही है । बिछुडने के इस क्षण को, इस भाव को बहुत ही सुंदर ढंग से चित्रित किया है ।

राजींद चाल्या चाकरी जीओ राजभँवरजी
पगम उलझी डोर
पाछा फिर कर देखिया जीओ राजभँवरजी
धन उभी गणगौर

पिया नौकरी के लिए जा रहे हैं परतु उनके पैर में प्रेम की डोर अटकी हुयी है । वह मुड़कर पीछे देखते हैं तो उसकी पत्नी अभी भी वहीं खडी हैं । उसका भी यही हाल हैं ।

वियोग में रात दिन तड़पती हुई दुःखी नायिका अपने पिया को संदेशा देती है । आप शिघ्र आओ । नहीं तो मेरे प्राण निकल जायेंगे ।

कागद लिखु प्रेम सूं जीओ राजभँवरजी
अद बिच लिखुं प्रणाम ।
बेगा आओ सायबा जीओ राजभँवरजी
नहीं तो छोडु प्राण ।

राजस्थानी लोककथा गीत साहित्य ढोला मारु, निहाल दे, में श्रृंगार के दोनो तत्त्व संयोग-वियोग का बहुत ही सुंदर चित्रण मिलता है ।

माँ की विरह वेदना - करुणता :

राजस्थानी लोकगीतों में ओळवुं और बिदाई गीतों में करुणा की धारा बहती है । कन्यादान के समय माता पिता का हृदय दहल जाता है । उनके लिए तो मानो पूरी धरती काँप उठती है । इसका चित्रण इस गीत में हैं -

धरधर धरती धूजै
हुई रे धरम री बेळा
हस्तियांरा दान बाईसा देती ।

बिदाई के समय गाये जाने वाले कोयलडी गीत में करुणामयी माँ अपनी बेटी से पूछती है तुम्हे अपने माता-पिता, काका-काकी, दादा-दादी से इतना प्यार है फिर हमको छोडकर क्यों जा रहीं हो । माँ खुद अपनी बेटी को बिदाई देती है परंतु अपनी बेटी की बिदाई सहने की क्षमता उसमें नहीं । गीत इस प्रकार है -

ए तो आंबाजी पाक्या आमली जिओ पाकी आमुलयारी डाळ
कोयल बाई सीध चाल्या
जी जीवो म्हे थान पुछा म्हारा कँवरबाई इतरो दादाजीरो हेत
छोड़कर बाई सीध चाल्या जीवो इतरो बाबजीरो हेत काका जीरो हेत
माऊजी रो हेत छोड़कर बाई-सीध चाल्या
जिओ आयो सगारो सुवटो जीवो ले टोळी मासूं टाळ
कोयल बाई सीध चाल्या.

लोरी में माँ की वेदना :

राजस्थानी लोक गीतों में लोरी का अपना अलग स्थान है । यह गीत बहुत ही सरल है । इनमें कोई भी अलंकृत शब्द नहीं फिर भी दिल को छू जानेवाले यह गीत है -

सो जा लाला सोई
थारी माँ कर रसोई
रसोई में घी घणो
लाला पर सगळा को जीव घणो

अरे लाल तू सोजा तेरी माँ रसोई बना रही है । रसोई में घी ज्यादा है उसी तरह लाला पर सबका जी (लाडला) बहुत है ।

सो जा रे लाला हाबु आवलो
जरी की टोपी थारो काको लावेला
पगाम का पायल थारी भूवा लावली
रुम झुम करतो नानेर जावेलो

तेरा काका तेरे लिए टोपी लायेगा और भूआ पायल लायेगी । तुम यह पायल पहनकर नानी के यहाँ जायेगा । यही गीत बच्चा नानी के यहाँ होगा तो इस तरह गाते हैं –

सो जा रे लाला हाबु आवलो
जरी की टोपी थारो मामो लावेला
पगाम का पायल थारी मासी लावेली
रुम झुम करतो दादेर जावेलो

इन अंगाई गीतों में राम और कृष्ण को बालरुप में चित्रित कर उसे अपने लाल को सुलाते समय बडे प्यार से गाते हैं । यहाँ उदाहरण के लिए यह गीत प्रस्तुत है –

सो जा सो जा हारा लाल कौसल्यारा प्यारा राम घडीयक सोजा रे ।

आमो झुके आंगणो डाली दिई पसार
पूत प्रेम रो पालणो जी दशरथजी रे द्वार ॥ १ ॥
जगत प्रेम भेलो कियो काचा काचा तार
रस्सी बटकर बाँधे माता पलणे एक सार ॥ २ ॥
झोका देवे शाम ने माता गावे गीत
पल घडियारो पतो न लागे दिन सब जावे बित ॥ ३ ॥
पगल्या पटके पालणे रे पैंजणीया रही बाज
उठमणी हिंमत करे रे दूध पिवन रे काज ॥
सूतन लिनी गोद में माता दिया सुलाय
स्तन मुख माही ले लियो, अब दूध रह्यो सटकाय ॥
अरध धरम अरु काम मोक्षरी बाँधी चारु कुँट
रस्सी पकड झुलावे माता लावा ले रही लुट ॥

कौसल्या के राम की उपमा यहाँ अपने लाल को देती हुई माँ अपने लाल को सुलाती है । आंगण में आम के पेड की डाली को पालना बँधाया है । अपने लाल के लिए वो जगत के प्रेम का तार तार इकठ्ठा कर उसी तार की रस्सी बुनकर उस पालने को जोडती है । राजस्थानी लोक गीतों में परिवार, मातृभूमि, जगत के प्रति प्रेम की आस्था दिखाई देती है । यही भाव इस लोरी में हमें दिखाई देता है ।

लोरी बाई लोरी गाय ब्याई गौरी
दूध भरी कटोरी उपर शक्कर भौरी

इन राज बहिरै कारणै दो साजण आया बारणै
भूवा केवे भतीजो देस्यां पण गहणा घणा लेक्ष्या
सेर सोनो लो थारी बाई म्हाने दो

वेजी की वेदना :

यह तलवार-सी उज्ज्वलता और तेजपत्ता के समान तीखापन के संस्कारों ने कई बार उत्कट संवेदनाएँ जन्माई है और यह लोकवाणी में अंकित हुआ है । अहीर भोजा कामणिया की पत्नी ने, स्वामी की गैरमौजूदगी में स्वामी का सम्मानित शूरवीर पीठात हाटी की मेहमान-नवाजी की । पति के घर आने के बाद वह सपने में 'वाह पीठात ! वाह पीठात !' ऐसा बोल पड़ी । स्वामी ने शंका कर उसे दुत्कार दिया, स्त्री की चिरौरी निष्फल हुई । स्त्री क्रोधित हुई, सिर पर गगरी रखकर पीठात के गाँव पहुँची, कहा कि पीठात, गगरी उतराव । अर्थात् मुझे अपनी स्त्री के रूप में स्वीकार कर, किन्तु मेरा स्वीकार तो भयानक है :

मरण मेवाडा ! (आवे) पीठिया, पानी खूंदतुं,
(एनी) लांवे लोकाणा । तारे मरवुं मोरी संग-धणी

(मृत्यु तो तुम्हारे कदम के पीछे वेग से चला आ रहा है । उसकी झपट में तुम्हें मरना है) और तुम डरोगे तब भी -

मसाणथी मडां, पाछां न जाय, पीठिया !

(हे पीठिया, स्मशान से मुरदा वापस नहीं जाता)

मैं वापस नहीं जानेवाली । ऐसा कहकर स्वामी के सुबहा शत्रु की पत्नी बन गई । भोजा ने चढ़ाई की । धोखाघड़ी से पीठात को अपने सिकंजे में लिया; पीठात ने अपने घर माता के काज से आये मेहमानों को शुश्रूषा पूरी कर वापस आकर लड़ने का वचन देकर शत्रु से अनुमति माँगी । भोजा ने अनुमति दी । पीठात वचन के अनुसार वापस आया, पीछे -पीछे वेजी भी आई, दोनों शत्रुओं की वीरनीति ने पुनः मित्रता जन्माई और पराये घर बैठी वेजी की मेहमान नवाजी स्वीकार करने के लिए पहला पति, बिना वैरभाव के पीठात के घर जाकर रहा । वेजी तो पीठात की ही रही ।

एक अनोखी नीति का संस्कार ऐसी घटनाओं में अंकित हुआ है । ऐसे संघर्षण साहित्य के उत्पादक बने हैं । समस्त जनता उसे तिरस्कार से गाती है ऐसा नहीं, किन्तु भावना के रूप में गाती है । वेजी, राणकदेवी, पुरुष के भेष में वीरांगना होथल, पुरुषमात्र को न देखने का व्रत, हार कर एक युवक पर मुग्ध होनेवाली यात्रिका लोडण खंभातण आदि सभी सोरठी साहित्य के स्त्रीपात्र जनता की नजर में भावनाओं को संस्कार के रूप में समाते रहे हैं ।

विरह दशा का प्रबल कारण :

स्त्रीजात ने सोरठी साहित्य के पोषक संस्कार के रूप में जो भूमिका अदा की है वह इतनी अधिक जबरजस्त, व्यापक और सघन है कि उसकी सीमा को माप नहीं सकते । जहाँ नजर डालो वहाँ नारी खड़ी है । इसका एक प्रबल कारण नारी की विरह-दशा है । सौराष्ट्र विशेष रूप से बाहर के आगन्तुकों की भूमि है । वे आगन्तुक पशुपालक है । यहाँ की भूमि यानी जमी हुई काले पत्थर की ज्वालामुखी । बरसात की कमी । चारे की कमी । चतुर्मास को छोडकर तो पशुओं को हाँककर परदेश का देशनिकाला भोगना । स्त्रियाँ साथ में जांय, न भी जांय । घर बैठकर विरह में तड़पती । सौराष्ट्र के चारों ओर समुद्री किनारा । नाविकों से खदबदती बस्ती । सैलानी तो जहाज चलाकर ठेठ जावा, सुमात्रा और आफ्रिका का फेरा खींचते । तीन महिना घर पर रहते । और समुद्र की गोद तो खप्पर जैसी । वापस आये या न भी आये । बनिया सौदागर और कोळी, मुस्लिम खलासियों, सभी की नवयौवनाएँ घर बैठकर तरसतीं और तड़पतीं । सौराष्ट्र यानी क्षत्रिय, काठी, आहीर, इत्यादि लड़ायक कुलों की शरणदात्री; अपने अपने प्रदेश की रक्षा और विस्तार के लिये, रात्रि का सीमा संग्राम : पुरुषों को निरंतर 'खडियामां खापण' : 'निरन्तर मुँह में तुलसी का पत्ता' : 'तलवारों का तोरण' भाला-बरछी का अग्नि । पुरुष वापस लौटें न भी लौटें । स्वामी का साथी-मित्र चुपचाप आकर आँगन में नीम का पत्ता रख जाय तो यह मान लेना कि स्वामी युद्ध के मैदान में सदा की रात रह गया है ।

बैरन चाकरी में नारी संवेदन :

सौराष्ट्र अर्थात् सिपाहीगिरी की भूमि । दूर और पास के रजवाड़ों की लश्करी चाकरी पर हाजरी देने की स्थिति । छोटे राजपूत कुलों के घर-घर चाकरी का बुलावा आता । घर-घर 'वेरण चाकरी' की कंपकंपी रहती । चाकरी बारह-बारह वर्ष की होती । चाकरी पर गया हुआ नौजवान वापस आये और न भी आये । 'वेरण-चाकरी' के गीतों से सोरठी साहित्य अश्रुभीगा है । मात्र कांटिया वर्ण के ही नहीं, सवर्ण बनिया, नागर तक के पुरुष लश्करी, मुलकी या मुसद्दीगीरी की चाकरी पर अचानक चल पड़ते । नहीं तो :

नानी-शी नार ने नाकमां मोती
वालम विदेशे ने वाटडी जोती,
उडाडती काग अने गणती 'ती दाडा
ए रे एंधाणीए नागरवाडा

(छोटी-सी नार और नाक में मोती । प्रियतम विदेश में है और वह राह देखती । कौआ उड़ाती और दिन गिनती । यही नागर लोगों की पहचान है ।)

ऐसी निशानियाँ कहावत का रूप कैसे प्राप्त करतीं ?

वियोग के सूर :

खलासी, क्षत्रिय, बनिया और ब्राह्मण के तमाम बने हुए समग्र लोकसमूह पर इन नारियों की वियोगिनी दशा ने एक प्रकार की काव्यरसिकता बिछा दी है । दोहाबंदी गूंथ कर कहानियों में, स्त्रियों के रास-गरबा में, खलासी नारियों के गीतों में, विप्रलंम ने मुख्य स्थान पाया है । चारणी वर्णानुप्रास-काव्य भी विशेषकर वियोग की उपासना करता है । गरबा घूमती स्त्रियाँ चौटा में गाती है :

वा वाया ने वादळ उमट्यां
मघ दरिये डुलेरा वाण, मोरली वागे छे.
आ हालार शे' र ना हाथीडा
कांई आव्या हमारे देश,
छेलछोगाडो होय तो मूलवे
डोलरियो दरिया पार

(हवा बहने लगी और बादल उमड़ पड़े । समुद्र के बीच में प्रियतम का जहाज है, मुरली बज रही है । ये हालार देश के व्यापारी हमारे देश आये हैं । छेल-छबीले प्रियतम होते तो खरीदते, प्रियतम तो समुद्र के पार है ।)

समुद्रपार प्रियतम को कोई चिठ्ठी पहुँचाने में सक्षम नहीं, इसलिए :

कुंजलडी रे संदेशो अमारो, जईने वालमने के'जो जी रे;
प्रीतकांठानां अमे पंखीडां, प्रीतम सागर विण सूनां जी रे.

(हे कुंजडी (पक्षी) ! हमारा संदेशा प्रियतम जी से जाकर कहना, प्रीत रूपी सागर के हम पंखी हैं, सागर प्रियतम के बिना सुना है ।)

नायिका, नायक-प्रत्यागमन की एक वर्ष की अवधि के अंतिम दिन राह जोह-जोह कर सूख रही है :

वरस वळयां, बादल वळयां, धरती नीलाणी,
विजाणंदने कारणे, शेणी सूकाणी

(वर्ष लौटा, धरती हरी हो गई, विजाणंद के वियोग के कारण शेणी (नायिका) सूख गई ।)

वेरण-चाकरी की बारी आने पर सैनिक के घर में इस स्थिति का होना गाया जाता है :

उभी उभी उगमणे दरबार, कागळिया आव्या राजना रे लोल
बाळयां बाळयां बार घाणीनां तेल रे, परभाते कागळ उकल्या रे लोल
कोरे मोरे लखियुं छे सौ-सौ सलामुं रे, वचाळे वेरण चाकरी रे लोल

(पूर्व दिशा में दरबार खड़ा है, राजा का भेजा हुआ पत्र आता है । बारह घानी का तेल जलाने पर सुबह जाकर पत्र पढ़ा जाता है । किनारे पर सौ-सौ सलामी लिखी है, बीच में वेरण चाकरी लिखा है ।)

किन्तु घर के सभी मर्दो में से कौन जाय ? सभी को परदेशी राज-फौज की चाकरी से डाह है । अंत में जिसके पति को जाना तय होता है वह मझली बहु कल्पांत करती है :

चाकरीए मारा ससराजीने मेलो रे, अलबेलो नै जाय चाकरी रे लोल

(चाकरी पर मेरे ससुरजी को भेजो, मेरा अलबेला पति चाकरी पर नहीं जाएगा)

अरे, खा-पीकर फरागत हो चुकी सासु, ससुरजी को भेजने के लिए तैयार नहीं :

ससरा घेरे दरबारी छे राज रे, दरबारी पूरा नै पडे रे लोल

(ससुर के घर दरबारी चलती है, दरबारी पूरा नहीं पड़ेगा ।)

जेठ घेरे जेठाणी झीणाबोली रे, परभाते झगड़ो मांडशे रे लोल

(जेठ के घर जिठानी झगड़ालु है, सुबह झगड़ा करेगी)

देर घेर देराणी नानुं बाळ रे, मोलुमां एकल नै रहे रे लोल

(देवर के घर देवरानी को छोटा बच्चा है, महल में अकेली नहीं रहेगी ।)

और मझला पति चल पड़ा तब :

झाली झाली घोडलियानी वाध रे अलबेला क्यारे आवशो रे लोल ?

(घोड़े की लगाम पकड़कर पूछती है, प्रियतम कब आओगे ?)

वापस तो अब आने से रहा !
गणजो, गोरी पीपळडांनां पांद रे, एटले ते दा'डे आवशुं रे लोल

(हे गोरी, पीपल के पत्ते गिनना उतने दिन में वापस आऊँगा ।)

इन हृदयवेधी चाकरी-गीतों में नारी-हृदय का मार्दव सिंचित हुआ है ।

आभमां झीणी झबूके वीजळी रे
झीणा झरमर वरसे मेह,
गुलाबी ! नै जावा दउं चाकरी रे

★

तमने वा'ली दरबारी चाकरी रे
अमने वा'लो तमारो जीव.... - गुलाबी

(आकाश में मद्धिम बिजली चमकती है । झरमर झरमर झीना मेघ बरस रहा है । हे प्रियतम मैं चाकरी पर नहीं जाने दूँगी । आपको दरबारी चाकरी प्यारी है तो मुझे आपका जीव प्यारा है ।)

घासचारे के अभाव में पति को पशुधन लेकर विदेश चले जाना पड़ा उसके बाद बरसता हुआ मेघ नारी हृदय को सताता है :

खड सूक्यां गोरल बसूक्यां
वा'ला गिया विदेश :

अवसर चूक्य मेहुला ।
वरस्ये कांउ करेश ।

(घास सूख गया, पति के विदेश जाने पर पत्नी सूख गयी । हे मेघ, अब वरसने से क्या होगा ? तुम तो अवसर चूक गये हो ।)

मृत्यु वक्त के विलाप गीत में संवेदना :

राजस्थान और गुजरात में आज भी किसी वृद्ध के मृत्यु पर समधि लोग हार और गुलाल लेकर आते हैं, गीत गाते आते हैं - गीत इस प्रकार है -

कठै सूं आई बडेरा थांने पालकी कठे सूं आया रेबीमांण
जी ओ बड़भागन आयो हलकारो, श्री भगवान रो राजा रामरो
सुरगा सू आई बडेरा पालकी दरगा सूं आया रे बीमांण
जी ओ बडभागन आयो हलकारो श्री भगवान रो
कुणजी घडावै बडेरा थारी पालकी, कुणाजी मोलावेरे वीमाण
जी ओ बडभागन हर रो हिंडोळो बडेरां थारे संग चाले
बेंटाजी घडावे बडेरा थारी पालकी पोताजी घटावे रे वीमाण
कुणजी उठावै थांरी पालकी कुणजी उठावेरे वीमाण
बेटा जी उठावे थांरी पालकी पोता जी उठावे रे वीमाण
हर हर करता बडेरा थे उठ चाल्या, तुळछारी माळ थारे हाथ
किणनै थे सूंण्या चौकी चूंतरा किणनै थै सूप्या घरबार
बेटा ने सूंप्या चौकी चूंतरा बहुआ नै घर बार
बेटा तो पोता धरां सिधाइया होज्यों थांनै बैकुन्ठारा बास
चाँवळ तो रांधा बडेरा थांनै ऊजळा असल जाळापुररी खांड
पोळी तो पोवां थांनै लडछडी कोई तीवण तीस बतीस

बडेरा घर के बडे व्यक्ति जिनकी मृत्यु हुई है, उन्हे पूछा है आपके लिए पालकी कौन बनायेगा ? विमान कौन लायेगा ? आप बडे भाग्यशाली है आपको भगवान का बुलावा आया है । स्वर्ग से पालकी आयेगी, दरगा से विमान आयेगा । बेटा पालकी बनवायेगा और पोता विमान मँगायेगा । तुम्हारी पालकी कौन उठायेगा ? विमान कौन उठायेगा, बेटे पालकी उठायेंगे । विमान उठायेंगे । हर हर करते बडेरे जा रहे हैं । उनके हाथों में तुलसी की माला है । आप जा रहे हो आपने चौकी चुतरा (दुकानदारी) किस के हाथ में सौंपा ? किसके हाथ में घरबार सौंपा ? बेटे को चौकी चुतरा और बहुओं को घरबार बेटे और पोते तो घर आ गये बडेरा तो वैकुंठ को जा पहुँचे । चाँवल बनाये उजले, मिठाई बनाई तीस-घरमें बडे की मृत्यु पर १२ दिन रोज मीठा भोज बनाने की प्रथा है । इसी कारण शायद बडेरे की मृत्यु में बेटे, पोते का ठाटबाट रहता है ऐसा कहा जाता है । मृत्यु अवश्य तत्व है । जो आया है उसे एक दिन जाना ही होता है । उसे स्वीकार करके

ही जीवन की गति आगे बढती है । मनुष्य कितनी भी उम्र हो जाये उसको लगता है कुछ दिन और जीना है । इसी भाव का एक भावपूर्ण गीत है । गीत इस प्रकार है ।

थाने रामजी बुलावे ओ बडेरा थै माइने सूंबारे आव जावेला द्वारका
थे दस दिन भगवत धीरज धरो, म्हारा कंवरां समझाय नै लेवा
थे दस दिन भगवत धीरज धरो म्हारी माया नै लेऊ समझाय ।
थे सुनज्यो हो कंवरां अग्याकारी, म्हारो पीछे दीज्यो सुधार
थानै प्रभुजी बुलावै बडेरा थै माइनें सु बारे आव
थे दस दिन भगवत धीरज धरो म्हारी बहुवां नै देवां समझाय
सुनो थें बहुवां अग्याकारी म्हारी ताळा कूंची लेवोनी संभाळ
थाने रामजी बुलावे ओ बडेरा माइने सूं बारें आव
थे दस दिन भगवत धीरज धरों म्हारी धीवडल्यां नै देवो समझाय
सुणों थै धीवडल्या लाडकी म्हारी गुवाडी दीज्यो जगाण

प्रत्येक पंक्ति के बाद जावाला द्वारका की कडी दुहराई जाती है । बडेरा की मृत्यु होने के बाद भी उसके प्राण वहीं अटके है ऐसी कल्पना की गयी है । इसलिए बडेरे को कहा जाता है, तुम अब वहाँ से बाहर आ जावो आपका रामजी का बुलावा आ गया है । आप द्वारका जाओगे । वो कहता है तुम दस दिन धीरज धरो मैं मेरे बेटे, बेटी, बहु तुम बडे आज्ञाकारी हो तुम मेरे पीछे मेरा संसार संभालना ।

मृत्यु के तीसरे दिन तिया कहा जाता है । तीसरे दिन अस्थि संचय का रिवाज है । तीसरे दिन मृतक के कुछ नजदीकी रिश्तेदार अंत्येष्ठि के स्थान पर जाकर मृतक की हड्डियाँ चुनकर लाते थे । हड्डियाँ चुनते समय पंडित कुछ मंत्रो का उच्चारण करते हैं । ये हड्डियाँ गंगा में विसर्जित करते हैं । घर के किसी भी बहु बेटी को हरिद्वार या गंगातट पर भेजकर अस्थियों का विसर्जन करते हैं । कई लोग नाशिक भी अस्थि विसर्जन के लिए जाते हैं ।

गुजरात में चांदोद (चाणोद) जि. वडोदरा जाकर नर्मदा मैया में अस्थि विसर्जन करते हैं ।

कुमारी अने रसियो वालम में संवेदना[१२] (गुजराती)

कुमारी और रसियो बालम लोकगाथा में कुमारी रसिया वालम की बाँसुरी के सूर पर फिदा हो जाती है और रसिया को अपना दिल दे बैठती है । कुमारी अपनी सहेली के साथ संदेश भेजती है और कहती है कि, ''रसिया तनमन से मैं तेरी हो गई हूँ । मैं तेरे प्रेम की पूजारण हो गई हूँ । मेरे विवाह की बात चल रही है । अब एक ही रास्ता है । चल यहाँ से कहीं दूर भाग चलें । मैं पूर्णिमा की रात को नखी तालाब के किनारे पर तेरा इन्तजार करूँगी । मैं जीऊँगी तो भी तेरे साथ और मरूँगी तो भी तेरे साथ ।''

रानी ने भी कुमारी को बहुत समजाई लेकिन कुमारी अपनी माता अनंता से कहती है कि, ''माताजी ! अब दूसरा विचार नहीं हो सकता । अब मानिये कि अपनी कुमारी मर चुकी है । मैं रसिया को हृदय दे चूकी हूँ ।''

रसिया वालम को राज दरबार में बुलाकर उनके सामने शर्त रखी जाती है, कि आबु पर्वत की तलहटी से आबु पर्वत तक की सडक कल सूरज उगते ही पहले तैयार हो जानी चाहिए ।

रसिया को शर्त मंजूर है । वह अपने गुरुजी भूतनाथ को प्रसन्न करता है और भूतनाथ अपनी भूतावल को भेज कर सडक बनाने के काम में लग जाते हैं ।

इस बात की रानी अनंता को खबर हो जाती है इसलिए वह कपट रचता है और मुरघे की आवाज से वातावरण गूंज उठता है । सुबह होने के भ्रम से सारी भूतावल चली जाती है और रसिया हार जाता है ।

कुमारी और रानी अनंता को मंदिर आते हुए देख कर भूतनाथ को याद करके कुमारी और रानी अनंता को पत्थर के पूतले बना देता है जिससे धरती पर प्रेमियों के साथ कोई कपट न करें ।

गुस्से में आकर रसिया रानी अनंता का पूतला तोड देता है । लेकिन हृदयेश्वरी जैसी कुमारी को पत्थर के पूतले के रूप में देखकर रसिया का हृदय काँप उठता है । उसकी आँखों में से आँसु बह गये और वह बोल उठा : 'कुमारी ! कुमारी ! तूं मुझे अकेला छोडकर नहीं जा सकती । मैं आ रहा हूँ । अपने सपनों के महल को स्वर्ग बनायेंगे । कुमारी, तेरे वियोग की वेदना मैं अब नहीं सह सकता । और ये अहमी दुनिया को अलविदा करता हूँ । कुमारी मैं आया, मैं आया ।'

ऐसा कहता हुआ रसिया जहर भरा कटोरा पी गया । पल भर में उसके प्राण नीकल गये । कुमारी और रसिया बालम की याद इस पृथ्वी पर रह गई ।

इस लोकगाथा में कुमारी और रसिया वालम दो प्रेमियों की वेदना व्यक्त की गई है ।

भेरियो गारुडी अने सगई संगार में संवेदना[१३]

भेरियो गारुडी और सगई संगार की प्रेम कहानी के साथ इस लोकगाथा में उन दोनों प्रेमिओं की संवेदना प्रकट की गई है ।

भेरियो गारुडी अपने संघ के साथ झोली-टोपली लेकर सगई संगार के पच्छम बेट के पादर में आये हुए गाँव में पहुँच गया ।

सगई संगार ने अपनी विद्या भेरिया गारुडी पर आजमाई लेकिन भेरिया की विद्या के आगे वो निष्फल रही । राजकुमारी भेरिया पर आफरिन हो गई और अपना दिल दे बैठी ।

भेरिया को बुलाकर उसने विवाह का प्रस्ताव रखा । भेरिया सहमत हुआ तब सगई ने कहा : 'विवाह करने से पहले तुम्हे मेरी एक शर्त माननी पडेगी ।'

रूपसुंदरी सगई पर आफरिन भेरिया बोला : 'एक क्या हजार शर्ते मैं मानूंगा । लेकिन तुम्हारा हाथ ग्रहण किये बिना नहीं जाऊँगा । तुम्हारी शर्ते मुझे बताओ ।'

सगई ने शर्त बताते हुए कहा : 'भेरिया जी । अभी तक मैंने नवसौ नव्वाणु नाग को वश किये हैं । मुझ से मारवाड का नाग वश नहीं हुआ । तुम उनको वश करके बताओ तो मैं तुम्हारी रानी बनूंगी ।'

भेरिया ने आनंद के साथ शर्त मान ली । भेरिया मारवाडी नाग को वश करने के लिये अपने संघ के साथ मारवाड की ओर चल पडा ।

भेरिया घूमता-फिरता मारवाड में आ पहुँचा और नागदेव का स्थान ढूंढ निकाला ।

नाग को भेरिया गारुडी की गंध आने से भाग निकला । भेरिया भी उसके पीछे पीछे भागा । नाग अपने प्राण बचाने के लिए अपने गुरु के पास आ पहुँचा । भेरिया और नागदेव एक ही गुरु के शिष्य थे । नागदेव भेरिया की शक्ति (विद्या) को जानता था । उसने गुरुजी को आकर कहा : 'गुरुजी ! भेरिया मुझे परेशान कर रहा है, सगई संगार के साथ विवाह करने हेतु मुझे पकडना चाहता है ।'

नागदेव की बात सुनकर गुरुजी क्रोधित हो गये । उन्होंने कहा : 'समंदर पार करने के बाद भेरिया की शक्ति नष्ट हो जायेगी । और जहाँ उनकी दृष्टि न पहुँच सके ऐसी शरीर की जगह पर दंश देने से जहर की असर जरुर होगी ।'

गुरु की आज्ञा सुनकर नागदेव समंदर की ओर भागा । भेरिया ने भी नाग का पीछा किया । भागते भागते नागदेव ने समंदर पार करके कच्छ में प्रवेश किया । भेरिया भी कच्छ में आ गया । समंदर पार करने से भेरिये की शक्तियाँ क्षीण होने लगी ।

नागदेव ने लकडी का रूप धारण कर लिया और रास्ते के बीच पडा रहा । भेरिया ने सुंदर लकडी पडी हुई देखकर उसको उठा ली और खंभे पे रख दी । खंभे पर रखते ही लकडी नागदेव के रूप में आ गई और भेरिया गारुडी को गरदन के पीछे की ओर डस लिया ।

सर्पदंश पर दृष्टि पडते ही नाग का जहर उतारने वाला भेरिया गारुडी को गरदन के पीछे दंश देने से उनकी नजर वहाँ नहीं पहुँच सकी । भेरिया जहर उतारने के लिये अशक्त बन गया । उनके शरीर में जहर फैल गया और मूर्च्छित होकर गिर पडा । उनको गुरुजी के बचन याद आये । बचने की कोई उम्मीद न रहने से उसने शिष्यों को एकत्रित होने की आज्ञा दी :

'मेरे मृत्यु के बाद मेरे देह का अग्निसंस्कार मत करना । मेरे मांस को पकाकर खाना । जिससे आप सब मेरे जैसे शक्तिशाली और विद्या के पारंगत बन जाओगे ।'

सभी शिष्यों ने इकठ्ठे होकर भेरिया गारुडी का मांस पकाने लगे । इस बात की जानकारी नागदेव को हो गई । नागदेव ने सोचा कि 'भेरिया के शिष्यों को मांस खाते हुए नहीं रोका जाय तो वे सब शक्तिशाली बन जायेंगे और फिर नागजाति का नाश हो जायेगा ।'

इसी डर से नागराज ने ब्राह्मण का वेश लिया : भेरिया के शिष्यों जहाँ मांस पकाते थे वहाँ पहुँचा और कहा : 'गुरु का मांस खाना घोर पाप है ।'

नागदेव (ब्राह्मण) ने शिष्यों को यह बात समझायी । शिष्यों ने भी मांस नहीं खाया और मटके में भरकर समंदर में फैंक दिया ।

मटका समंदर में तैरता तैरता ब्रह्मदेश पहुँचा । वहाँ के कई माछीमारों ने मांस खाया । वो सब भेरिया गारुडी जैसे शक्तिशाली और नागविद्या के जानकार हो गये ।

इसी ओर सगई संगार ने भेरिया गारुडी के मृत्यु की खबर मिलते ही भुजिया डुंगर पर आ पहुँची । वहाँ आकर अपने माने हुए स्वामी भेरिया गारुडी के पीछे सती हो गई ।

यह नागदेव भुजिया नाग के नाम से प्रसिद्ध हो गये । कच्छ में आये हुए भुजिया डुंगर में भुजिया नाग का स्थानक आज भी मौजूद है । वहाँ नागपंचमी के दिन मेला लगता है । इस मेले में दूर दूर से गारुडी आते हैं और सगई संगार एवं भेरिया गारुडी की कथा को याद करते हैं ।

भेरियो गारुडी और सगई संगार की लोकगाथा यहाँ पहले वैरभाव में, फिर प्रेम में परिवर्तित होकर यहाँ उन दोनों की संवेदना में प्रकट हुई है ।

पडियेल हिरलानी गांठ में संवेदना(१४) (गुजराती)

साधु हिरागर और साध्वी हिरलबाई पहले प्रेमिओं के रूप में अपना वतन मारवाड छोडते हैं और गुजरात के समढियाळा गाँव में ऊँट पर सावर होकर आते हैं । भक्ति में लीन दोनों गाँव लोगों के प्रेमपात्र बनते हैं । हिरागर महाराज गाँवजनों के पास जाने की आज्ञा मांगते है लेकिन गाँवजनों आज्ञा नहीं देते ।

साधु हिरागर जब गाँव लोगों से बिनती करते थे उसी वक्त यकायक भगवान को बिनती करते हो ऐसे उनके मुँह से 'राम' शब्द निकल गया । महाराज के मुँह से जोर जोर से 'राम' शब्द निकल ने लगा, जानी कि महाराज समाधिस्थ होने को जा रहे हो । अंत में 'राम' शब्द गूंजता बंद हो गया । उनकी आँखे बंद हो गई । संत शान्त हो गये । कई लोगों ने हिरल माँ को खबर दी कि, 'बापु देव हो गये ।'

हिरलबाई ने सिर हिलाकर 'ना' बोल दी । 'ऐसा नहीं हो सकता । हीर की गांठ कभी खुल नहीं सकती । उसका एक भाग मेरे हाथ में है और दूसरा भाग उनके हाथ में था, तो कहाँ से खुले ।'

सब एक साथ बोल उठे : 'माँ गलत नहीं है । आप वहाँ आकर देखो, खातरी कर लो ।'

हिरलबाई जोर जोर से हँसने लगी और पूछा कि, 'मुझे महाराज ने बुलायी है ?'

लोगों ने कहा, 'अब वे आपको कहाँ से बुलायें ?'

'तो मुझे नहीं आना है ।'

सब एक दूसरे को देखने लगे । और इशारों से कहने लगे कि, साध्वी पागल हो गई है ।

महाराज की अंतिमक्रिया के लिये और समाधि देने की जगह तय करने लगे ।

संत बेलडी ने जो जगह पर ऊँट को रोक दिया था उसी जगह शिवालय के पास समाधि देने का तय किया ।

एक ओर गाँव के लोग व्याकुल और दुःखी थे तब हिरलबाई शान्त और स्वस्थ बैठी थी ।

जब पालखी में बिठाकर समाधि स्थल पर साधु के शब को ले गये तब सब की आँखों में आंसु थे लेकिन हिरलबाई अकेली ही जैसे कुछ नहीं हुआ हो ऐसे बैठी थी ।

एक आदमी ने जाकर हिरलबाई को कहा कि, 'अब तुम्हारे पति का देह समाधि में लीन हो जायेगा और जमीं में ढंक दिया जायेगा । तुम को अंतिम बार इनका मुँह देखना हो तो चलो ।'

हिरलबाई खडी होकर हाथ में मंजीरा लेकर चली । उनकी चाल में बिलकुल गभराहट या शोक नहीं था । वह स्वस्थ चली जाती थी ।

साधु की समाधि के पास आकर हिरागर महाराज के शब को हिरलबाई देख रही और धीरे से बोली, 'बावाजी । अकेले क्यों चल पडे ? हम दोनों के बीच क्या बात हुई थी ?'

'प्रेम के तंतु से बंधे हुए आप गांठ को खोले बिना तोडने में बहुत उस्ताद नीकले, लो रखो अब ।'

लेकिन उत्तर कौन दे ? हिरागर तो वहाँ थे भी नहीं । सिर्फ उनका शब था ।

गाँव के लोगों की आँखो से अश्रु प्रवाह से समाधि गीली हो गई थी ।

हिरलमाँ ने ताना मारने का शुरू कर दिया : 'महाराज, तुम तो मेरे लिए संन्यासी बनने को नीकल पडे थे । लोगों ने अपने प्रेम के बीच दिवारें खडी कर दी थी । मैंने तुमको कहा था कि, तुमको जो भगवा रंग लगाना हो तो मेरे लहू से रंगो, और शरीर पर भस्म लगाने का शोख हो तो मेरी भस्म लगा लो । महाराज तुम मेरी नगरी छोडकर कहाँ चले गये ? महाराज तुमने ही स्मशान में वास किया । तुम्हारे जैसे बावाओं का वास तो स्मशान में ही हो सकता है न !'

'और आज तुम अकेले चल पडे ! मैं तुम्हारे पीछे साध्वी बनी, मेरा मारवाड मैंने छोड दिया । देखो ये ऊँट हमको इस गाँव में ले आया और अब तुमने दोस्ती तोड दी !'

ऊँट ने दंपति के सामने देखा । लोगों की अश्रु भीनी आँखें ऊँट की ओर टीकी ।

ऊँट ने अपना मुँह मारवाड की ओर किया और साध्वी ने साद दिया : 'महाराज ।' लेकिन उत्तर नहीं मिला ।

तीसरी बार हिरलबाई का आवाज कठोर बना । वो जोर से बोल उठी : 'बावा, कहाँ चला ! अकेला अकेला ! अरे ऐसे भागकर कहाँ जायेगा मेरे स्वामी ।'

ऐसा कहते हुए सती के मुख से - 'हिरा' शब्द निकल पडा । 'र' और 'रा' एक हो गये । हिरलबाई के मुख से हिरागर और राम सब एकाकार को गया ।

हिरा.... शब्द के 'रा' शब्द के साथ ही उनका प्राण निकल गया । महाराज के आत्मा के साथ ओतप्रोत हो गया । 'हिरनी गांठे' बंधा गया ।

यह मारवाडी संत बेलडी के दिव्य प्रेम की याद में आज चारसो से ज्यादा वर्ष हो गये फिर भी समढियाळा गाँव में लोग दूर दूर से उनकी समाधि पर फूल चढाने आते हैं ।

इस लोकगाथा में प्रेम की संवेदना के साथ साथ हिरलबाई की वेदना भी व्यक्त की गई है । समढियाळा गाँव में आज भी लोग संवेदना प्रकट करते हुए उनकी समाधि पर फूल चढाने आते हैं । यह दो प्रेमिओं की संवेदना का प्रतीक है ।

ढोला मारु में संवेदना[१५]

ढोला मारु राजस्थान प्रदेश की लोककथा है । इस लोककथा में मारवणी की विरह वेदना का भरपूर प्रयोग किया गया है । यह कथा संवेदना से भरपूर है ऐसी कहा जाय तो भी अतिशयोक्ति नहीं होगी ।

मारवाड की कन्या मारवणी (मारु) का बचपन के स्नेह का पुष्प खील रहा है । अपने हृदय कमल में स्थित ढोला एक रात मारु को स्वप्न में आता है ।

इतने में एक पक्षी की चहचहाहट से मारवणी की नींद तूट जाती है और ढोला के विचारों में खो जाती है । मारु ढोला के आगमन की राह देखकर अटारी (अगाशी) में व्याकुल होकर घूम रही है । इसी वक्त उनकी सहेलियाँ कहती है, ''आधी रात में क्यों घूम रही है । हमारे भी स्वामी

है लेकिन तूं तो बहुत स्वामी घेली हो गई है ।'' फिर सहेलियाँ ने कहा, 'अरे पगली, तूं ने तो अपने स्वामी को देखा ही नहीं फिर इतना स्नेह क्यों ?'

तब मारवणी कहती है, 'माँ के स्तन में अमृत जैसा दूध भरा होता है लेकिन बालक यह दूध को कभी देखता नहीं है फिर भी माँ का दूध पीता है । मैंने भी अपने प्रियतम ढोला को नहीं देखा फिर भी मेरे मन मंदिर में ढोला बचपन से ही आसन जमा कर बैठ गया है । वो मुझे भर पेट खाना भी नहीं खाने देता और चेन से सोने ही नहीं देता । मेरा मन उनके पास ही रहता है ।'

इतने में चंपा के वृक्ष पर बैठा हुआ बपैया (एक पक्षी) बोल रहा : 'पियाव... पियाव...।' (पक्षी की बोली)

बपैया के टहुकार सुनकर मारवणी कहने लगी : 'ओ नीली पंख वाले बपैया । बर्षा ऋतु (बारिस की मौसम) में 'पियुआव' 'पियुआव' ऐसा कह कर तूं क्यों मेरा कलेजा काट रहा है । पियु तो मेरा है । मेरे पियु का नाम लेनेवाला तूं कौन है ? अब जो फिर बोलेगा तो मैं तेरी चाँच काट डालूँगी ।'

सुबह मोर खजूरी की डाल पर बैठा बैठा 'मेआव..... मेआव.....' करता हुआ मधुर टहुकार करता है तब मारवणी मोर के सामने अपना हृदय खोलकर अंतर की बात कहती है :

'मत तूं बोल मोरला,
ऊडी मत बेस खजूर :
तारे जळथाळ ढूंकडो
मारो वालम दूर.'

[(रोया) मोरला तूं खजूरी के वृक्ष पर बैठकर क्यों टहुका कर रहा है ? तूझे तो जल का स्थल नजदीक है, अभी बारिस आयेगी । लेकिन मेरा प्रियतम तो दूर -देशावर है । तेरी आवाज (टहुका) मेरे प्रियतम की याद को बहुत गहरी बनाता है । अब तूं बोलने का बंद कर ।]

विरह से व्याकुल मारवणी अपनी सहेली को कहती है : 'अली, यह मोर और बपैया की आवाज नहीं है । मुझे तो उसमें कामदेव के नगाडे की आवाज सुनाई देती है । बीजली के रूप में तलवारें चमकती दिखाई देती हैं । यह ऋतु (मौसम) में मैं स्वामी (प्रियतम) के बिना अकेली हो गई हूँ..... हे देव । मैं दुःखी हूँ । मैं मरी हुई को क्यों मार रहे हो ?'

मारवणी की सहेली मारवणी का मन हलका करने के लिए सरोवर के किनारे ले गई । सरोवर में (कुंजडियाँ) पक्षियों के जूथ खेलते हुए उछल-कूद कर रहे थे । यह पक्षिओं के वृंद के सामने मारवणी कहने लगी :

'कुंजो द्यो ने पांखलडी,
मागुं तमारो वेश,
सागर ओळंगी स्वामीने मळुं,
पछी तमने पाछी दे'श.'

'अरे (कुंजडियों) पक्षिओं । आप मुझे अपनी पंख दो । मेरा प्रियतम जहाँ रहता है वहाँ बडे बडे पर्वत है, बडे बडे समुद्र भरे पडे हैं । एक बार प्रियतम का मुँह देखकर वापस लौट जाऊँगी और आपकी पँखे आपको वापस लौटा दूँगी ।'

मारवणी कहती है : 'पक्षियों (कुंजों) ! तुम मुझे पंखों न दो तो फिर तुम (उगमणी-आथमणी) पूरब और पश्चिम दिशा में जाते हो तो दक्षिण दिशा में नहीं जाओगे ? यदि दक्षिण दिशा की ओर जाओ तो मेरे प्रियतम ढोला के लिए यह संदेश ले जाना' :

'पंखी एक संदेशडो,
ढोला लग लै जाव,
जोबन कळीयुं मोरियुं,
भमर बैठो न आंय.....!'

('हे पक्षी ! जाकर मेरे ढोला को इतना कहना कि मेरी जोबन फूल की कली खील उठी है । तूं भ्रमर बनकर उनके पर आकर क्यों नहीं बैठता ?')

'पंखी एक संदेशडो,
ढोला लग लै जाव
जोबन हस्ती जागियो,
अंकुश लई घेर आव.'

('हे पंखी ! तुम ढोला के पास जाकर कहना कि, मारु का जोबन रूपी हाथी अब मदोन्मत बन गया है । तूं महावत बनकर अंकुश लेकर जल्दी से घर आ जा ।')

पक्षियों के साथ संदेश भेजकर मारवणी अपने महल में वापस लौटती है तब प्रियजन के आने का संकेत हो इसी तरह कौआ बोलता है । कौआ की आवाज सुनकर मारवणी कहती है :

'कगवा दऊं वधाइयाँ
प्रितम मिलव मुज,
काढी कलेजो अपना
भोजन दऊँगी तुज...'

('हे कौआ । जो तूं आज मेरे प्रियतम का मिलन करा देगा तो मैं तुझे मेरे कलेजा का मांस खाने दूंगी अर्थात् मेरा सर्वस्व तुझे दे दूंगी । अरे कौआ ! कलेजा ही क्यूं ? मेरी अणियाळी आंखे भी तेरे भोजन के लिए निकाल दूंगी, लेकिन एक शर्त पर :')

'कागा नयन निकाल दूं,
पियु पास ले जाव,
पहले दरस दिखाय के
पीछुं लीजो खाय.'

लोक साहित्यकारों ने यहाँ मारवणी की संवेदना व्यक्त की है ।

★★★

ढोला मारु की दूसरी भी एक लोक कथा गुजराती में है । उसमें भी मारवणी की व्यथा-संवेदना व्यक्त की गई है वो भी देखें :

दूसरी ओर मारवणी भर-जोबन में विरह से व्याकुल होने लगी । प्रियतम की याद में तडपने लगी । मारवणी की सहियर ने यह बात पिंगळराजा को की । पिंगळ राजा ने ढोला के समाचार पाने के लिए उनको बुलाने के लिए कई दूत भेजे ।

ढोला की नई पत्नी मालवणी बडी चतुर थी । उसको इस बात की खबर हो गई थी । घर में शोक्य (अपने जी ते जी पति की दूसरी पत्नी) के कारण उनका हृदय जल रहा था – वो बहुत दु:खी थी । इसलिए उसने पुगलनगर के रास्ते में अपने सागरितों को बिठा दिये और जो कोई आता उसकी कत्ल कर दी जाती । इसलिए एक भी आदमी नरवरनगर पहुँच नहीं पाया ।

एक दिन नरवरगढ का रहनेवाला घोडे का एक सौदागर अपना घोडा बेचने के लिए पुगलनगर में आ पहुँचा । उनकी खबर मिलते ही पिंगळराजा ने सौदागर को महल में बुलाया गया । तब सौदागर ने कहा कि ढोला अभी जीवित हैं, ब्याह भी किया है लेकिन उनको सच्चा संसार सुख नहीं मिला ।

पिंगळराजा ने राजपुरोहितों को बुलाया और नरवरगढ जाकर ढोला को सभी बात बताने का हुक्म किया । तब राणी ने कहा, 'राजाजी ! कुल पुरोहित को मत भेजो । कोई भी दूत अभी तक वापस नहीं लौटा है । कुल पुरोहित को भेजकर हमको ब्रह्महत्या का पाप नहीं करना है । उस के लिए ढाढी लोगों को भेज दिया जाय । इससे किसी को शंका भी नहीं होगी और ढोला को संदेश पहुँच जायेगा । ढाढी लोग संगीत से खुश करके ढोला को यहाँ ले आयेंगे ।'

राणी की बात सुनकर राजा ने ढाढिओं को नरवरगढ भेजे । उसी वक्त मारवणी ने एक ढाढी के साथ अपनी व्यथा भरा संदेश भेज दिया ।

नरवरगढ पहुँच कर रात को ढाढिओं ने रावणहथ्था पर मारु का प्रेम संदेश सुनाया गया :

'ढाढी, एक संदेशडो,
ढोलाने कही आव,
मारु बळी कोलसो थई
भसम ढूंढने को आव.'

('हे ढाढी ! तुम जाकर ढोला को संदेश देना कि तुम्हारी प्रियतमा मारु तुम्हारे विरह में जलकर कोयला हो गई है । अब इस कोयले की राख को ढूंढने को तो आओ ।')

'ढाढी, एक संदेशडो
ढोला लग ले जाव,
जोबन फाटी तळावडी
पाळ बांधन कुं आव.'

('हे ढाढी ! तुम जाकर ढोला को कहना कि, मेरे यौवन रूपी तालाब की पाल तूट गई है । तूं उनकी पाल बांधने को आओ ।')

'ढोला, तूं थी ढोर भलां,
चरे जंगल रो घास,
दन ऊगी दन आथमे,
करे घरारी आश.'

('हे ढोला । तुझ से तो पशु अच्छे नहीं ? जंगल में जाकर सारा दिन घास खाते हैं, फिर भी शाम को घर आ जाते हैं । उनको भी अपने बच्चे याद आते हैं ।')

'फागण मासि वसंतऋतु,
आय ऊ जई न सणेसि,

आचरी कई मिस खेलती
होली झंपावेसि.'

('हे प्रियतम । वसंतऋतु के फागुन मास में तूं आया है ऐसा नहीं सूनुंगी तो चर्चरी नृत्य करती हुई होली की ज्वालाओं में मेरे शरीर को जला दूंगी ।')

'राती ज सुनी निसह भरी,
सुणी महाजनी लोई;
हाथाली छालां पड्यां,
चीर निचोई निचोई.'

('कल रात प्रियतम की याद में बहुत रोई । बहुत निःसासा डाला । मेरा रोना गुरुजनों ने भी सुना । अखियों से बरसते आँसु के कारण भीगा हुआ ओढणी के पल्लु को निचोड निचोड कर मेरे हाथों में छाले पड गये ।')

'ढोला मलिसि म,
बिआरिसी नवी आविसिना,
लेसि मारु तणाई
करंकडई वापस उडावेसि.'

('हे ढोला ! तूं आता नहीं है, याद करता नहीं है, मुझे यहाँ से ले जाता भी नहीं है । ऐसी स्थिति में तुम्हारी प्रियतमा अब ज्यादा वक्त जी नहीं सकेगी । और जब तूं आयेगा तब मेरे अस्थिपिंजर (हाडपिंजर) पर उडनेवाले कौआ के सिवा तुझे दूसरा कुछ नहीं मिलेगा ।')

ढाढिओं ने मारु का संदेश सुनाया । ढोला सारी रात जागता रहा और मारवणी का संदेश सुनता रहा । उनके हृदय में मारवणी की बचपन की प्रीत याद आ गई ।

अंत में मारवणी और ढोला का मिलन होता है ।

ग्रीष्म ऋतु की चांदनी रात है । राजमहल के झरुखे (अगाशी) में पलंग बिछाया गया है । प्रियतम ढोला की राह देखती हुई मारु पलंग में सो रही है :

'मारु सूती अटारिये,
रतडो पलंग बिछाय,
तारा तरवरियुं करे,
चंद रियो ललचाय.'

('झरुखे (अटारी) में लाल (राता) रंग का ढोलिया (पलंग) बिछाया गया है । मारु उसमें सो रही है । उसे देखकर आकाश के तारले मारवणी को मिलने के लिए टमक टमक चमक रहे हैं । मारवणी का रूप देखकर चंद्र भी (मारवणी को मिलने की अपनी लालच रोक नहीं पाता) लुभा रहा है ।')

विरह में झूरते हुए दो प्रेमीओं ढोला और मारु का मिलन हो गया । यह रात भी धन्य हो गई :

'नवा मो'ल ने धण्य नवी,
नवी जवानी नेह,

ठाकर धेर पधारिया,
मोती वरस्या मेह.'

('नया राजमहल, नई परणेतर (पत्नी), नई जुवानी और नया स्नेह-प्रेम और स्वामी (पति) घर आये तब तो आनंद रूपी (मेह-वरसाद) बारिस हो रही ।')

और अंत में ढोला और मारवणी दोनों विरही प्रेमिओं का सुखद मिलन होता है ।

शेणी-विजाणंद में संवेदना(१६)

गिरनार की बगल में आये हुए गोरवियाळी गाँव में विजाणंद भेंस चराता है । विजाणंद ने पनिहारी को पानी पिलाने को कहा तो शेणी ने पानी नहीं पिलाया लेकिन दूसरी पनिहारी ने पानी पिलाया । विजाणंद अपना जंतर (वाजिंत्र) बजाता हुआ गाँव में चला जाता है । रात को जब वह जंतर बजाता है तब गाँववाले मंत्रमुग्ध हो जाते हैं । वेदा चारण खुश हो जाता है और विजाणंद को कुछ मांगने को कहता है । तब विजाणंद शेणी का हाथ मांगता है । वेदा चारण निस्तेज हो जाता है । फिर भी एक वर्ष में एकसौ ने एक नवचंदरी भेंस लेकर आने को कहता है । इस शर्त को कबूल कर के विजाणंद निकल पडता है ।

शेणी विजाणंद के जंतर पर मुग्ध हो जाती है और विजाणंद को दिल दे बैठती है । विजाणंद जब एकसौ एक नवचंदरी भेंस को ढूंढने निकलता है तब शेणी विजाणंद के विरह से व्यग्र होकर पशु-पक्षी सबको संदेश भेजती है :

विजाणंद हाली नीकळ्यो, पोठीडा पलाणे,
डाबे थाने गणेश, विजाणंद पाछो वळे ।

विरही शेणी जंगल के तेतर पंछी को बिनती करती हुई कहती है कि, तूं मेरे पीयु की बायीं ओर से निकलना जिससे अपशुकन समझकर वापस घर लौटे ।

हरणा तारी डोकमां, घडावुं घूघरमाळ,
सोने मढावुं शींगडी, विजाणंद पाछो वळय ।

'हे हरण जो तूं विजाणंद की बायीं ओर से निकल कर उनको अपशुकन देगा तो मैं तुम्हारे गले में घूघरमाळ पहनाऊँगी, तेर शिंग सोने से मढाऊँगी ।'

विजाणंद नवचंदरी भेंस इकठ्ठी करने के लिए गाँव गाँव भटकता फिरता है । वेदा चरण ने दी हुई समयावधि पूर्ण होने को है । शेणी की यौवन कलियाँ खील ऊठी है । उनका मन विजाणंद को मिलने को तलस रहा है ।

'खेतर पाक्युं कण झरे, मन बेठुं माळे,
वळय वेलो विजाणंदा, (मने) रोझडां रंजाडे ।'

('हे विजाणंद, मेरा जीवन खेत पक गया है । यौवन रूपी दाने गिर जाते हैं । मेरा हृदय तेरे नाम की माला जपता बैठा है । अब तूं वापस लौट जा । क्योंकि चारण उम्मीदवार (परणने वाले उम्मीदवार) रोझडां (नील गाय) मेरे जीवन - खेत को परेशान कर रहे हैं - विवाह करने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं ।')

'खेतर पाक्युं पोंक थियो, मन बेठुं माळे,
अधवच मेल्यां एकलां, हाल्य हैडा हेमाळे ।'

('जीवन का खेत पक गया है । यौवन रूपी पोंक (लीला दाणा) पका कर खाने के लिए तैयार हो गये हैं । मेरा मन माळा पर बैठ कर (खेत में सोने के लिए बनाया हुए माला) राह देख रहा है । विजाणंद ने मुझे अधबीच छोड दी । इसलिए हे हृदय चल हिमालय गलने के लिए ।') (ठंड में पीघलकर मर जाने के लिए)

आज विजाणंद को आने का अंतिम दिन है । आषाढ महिने की शुरुआत हो गई है । जगत (पृथ्वी) पर वर्षा का आगमन हो गया है ।

'वरस वळ्यां वादळ वळ्यां, धरती नीलाणी,
(पण) एक विजाणंद ने कारणे, शेणी सुकाणी ।'

('वर्ष आ गया । बादल भी एक साल के बाद वापस लौटे । पृथ्वी भी बारिस से हरी हरी होकर प्रफुल्लित हो गई । सभीने मिलन का सुख पाया लेकिन एक शेणी ही विजाणंद के कारण सूख रही है विरह की वेदना में जल रही है ।')

विजाणंद के वियोग में शेणी ओझत नदी को कहती है :

'चड टींबा चड टींबडी, चड गुंदाळी धार,
ओझत, उछाळो लई, विजाणंद पाछो वाळ ।'

('बहन ओझत, तूं ऊँची ऊँची पर्वत टेकरियाँ चडनेवाली है । तूं विजाणंद को कहीं देखती होंगी । तूं ऐसी उछल और विजाणंद का मार्ग रोक दे और उसको वापस लौटा ।')

अंतिम दिन की रात हो गई फिर भी विजाणंद नहीं आया इसलिए शेणी का पिता वेदा चारण बहुत खुश है । इसलिए शेणी को लापसी बनाने को कहता है ।

लापसी बनाकर शेणी अपने पिता वेदा चरण को खिलाती है और सुबह उठकर अपने पिता को हाथ जोडकर हिमाळे गळवा (हिमालय में जाने के लिए) बिनती करती है । और कहती है कि :

'विजाणंदनी वरमाळ, बीजानी बांधु नहि,
चारण होय लख चार, (एने) बांधव कही बोलावीए ।'

उसी दिन वेदा चारण को पता चलता है कि शेणी तो विजाणंद के नाम की ही माला रटती है ।

अठारह साल की शेणी चली जाती है । कई गाँव-प्रदेश की सीमाएँ पार करती है और अपने पीयु विजाणंद के वियोग में कहती है :

'मारग कांठे मढी करुं, लऊँ जोगणना वेश,
गोतूं देशविदेश, (कोई) वावड द्यो, विजाणंदना ।'

('रास्ते की धार पर मैं एक मढूली (झोंपडी) बाँधकर जोगन का वेश लेकर बैठ जाऊँगी । दशोदेश (दशे दिशाओं में) मैं विजाणंद की खोज करुंगी । कोई मुझे विजाणंद का संदेश (समाचार) दो ।')

शेणी व्याकुल होकर विजाणंद को ढूंढने चली जाती है, और लोगों को कहती है :

'(कोई) जंतरवाळो जुवान, भालमां भूलो पड्यो,
(हुं) सगडे पाडुं साद, (मने) वावड द्यो विजाणंदना ।'

कई लोग कहते हैं कि, हा हा बाई कई दिनों के पहले यहाँ से एक जुवान नीकला था और नवचंदरी भेंस का समाचार पूछता पूछता यहाँ से चला गया ।

शेणी, विजाणंद की खोज में चली जाती है लेकिन कहीं भी उनका ठिकाना-पता नहीं मिलता। आखिर में शेणी हिमालय पहुँच जाती है । चारों ओर बर्फीले डुंगर । पानी भी बर्फ हो गया है । ऐसे हिमालय पर्वत पर अठारह साल की चारण कन्या शेणी हिमाळे गलने के लिए आ बैठी । लेकिन उनका शरीर गलता नहीं है - पीघलता नहीं है । इसलिए शेणी हिमालय को कहती है :

'हे बाप हेमाळा । हे मोक्षपुरी के द्वारपाळ । हे सती पार्वती के पिता । मैं भी आपकी पुत्री हूँ और तेरे पास आई हूँ । तो तूं मुझे जल्द से जल्द अपने में समाविष्ट कर ले ।'

तब हिमालय कहता है : 'बेटा तूं बाळ कँवारी है । इसलिए तूं नहीं गल सकती । तेरे हृदय में कोई बैठा है । तूं विवाह करके दोनों साथ में आना ।'

शेणी दर्भ का पूतला बनाकर विजाणंद के साथ विवाह करने का संकल्प लेती है । और पूतले को अपनी गोद में लेकर बैठ गई ।

थोडी ही देर में शेणी का शरीर गलने लगा तब पर्वत में से 'शेणी । शेणी । शेणी ।' की आवाज आती है ।

शेणी, विजाणंद की आवाज सुनकर बोली : 'चारण आ पहुँचे ?'

तब विजाणंद कहता है : 'तेरे पिताजी को एकसौ एक नवचंदरी भेंस दे दी है । अब चलो ओझत के किनारे पर अपना घर (झोंपडी) बनायें ।'

शेणी कहती है :

'हाडा हेमाळे, गळियां जे गूडा लगे
विजाणंद वळे, घणमूला जाने घरे ।'

('हे विजाणंद मेरे अस्थि अब तो गोठण तक हिमालय में पीघल गये हैं । हे वहाला अब तूं वापस घर लौट जा ।')

'वळवळ वेदानी, (तुं) पांगळी होय तोय पाळशुं,
कांधे कावड करी, (तने) जात्रा बधी जुवारशुं ।'

('शेणी तूं खडी हो जा । वापस लौट आ । ओ वेदा चारण की पुत्री, तूं लंगडी होगी तो भी मैं तुझे कावड (खभे टोकरी में बिठाकर) में बिठाकर मैं तुझे अडसठ तीर्थ की यात्रा कराऊँगा । तूं वापस लौट जा ।')

'ना विजाणंद । अब वापस नहीं लौटूंगी ।
वळुं तो रहुं वांझणी, मूवा न पामुं आग,
आलु को अवतार वणसाड्यो विजाणंदा ।'

('अब जो मैं वापस आऊँ तो मेरे साथ तेरा शरीर संबंध नहीं हो सकेगा । और पुत्र के बिना मैं मर जाऊँगी तो अग्निसंस्कार कौन करेगा ? यह जन्म तो बिगडा लेकिन आनेवाला जन्म न बिगडे इसलिए मैं वापस नहीं लौट सकूंगी ।')

फिर भी विजाणंद वापस लौट.... वापस लौट.... ऐसा पुकार करता है तब शेणी कहती है :

'गळियुं अरधुं गात्र, अरधामां अरधुं रियुं,
हवे मसळता हाथ, विजाणंद, पाछा वळो ।'

('हे विजाणंद अब तो मेरा पौना भाग (७५ प्रतिशत) का शरीर पीघल गया है - गल गया है । अब तूं मिथ्या (फोगट) मेहनत किये बिना वापस लौट जा ।')

लेकिन शेणी एक बिनती करती है, 'चारण मेरी अंतिम इच्छा रह गई है । मरते मरते भी एक बार तेरा जंतर सुनना है ।'

'विजाणंद, जंतर वगाड, हेमाळो हलकु दिये,
मोह्या माछलमार, माछलियुं टोळे वळे ।'

विजाणंद जंतर बजाने लगा । बरफ में से "राम । राम ! राम ! राम ।" की आवाज आती है । अंत में राम नाम के उच्चार बंद हो जाते हैं । विजाणंद के हाथों में से जंतर नीचे पटकाता है ।

'जंतर भांग्युं तड पडी, त्रूटयो मोभी त्राग,
वेदानी शेणी हल गई, जंत्री काढे न राग ।'

('जंतर पटकाता है । जंतर में तिराड पड गई । जंतर का प्रधान सूर नीकलता था वो तार तूट गया । वेदा चारण की पुत्री शेणी के प्राण निकल गये । जंतर का बजाने वाला (विजाणंद) सूर भी बंद हो गया ।')

और

'भूखे खाधुं भात, पेट भरी पामर जीं,
शेणी जेवो संगाथ, मेलीने विजाणंद वळ्यो ।'

(शेणी जैसे संगाथ को हिमालय को सौंप कर विजाणंद चारण खाली हाथ वापस लौटता है । और जब तक जिन्दा रहा तब तक पागल आदमी की तरह पेट भरता रहा ।')

इस लोकगाथा में शेणी की विरह व्यथा को व्यक्त करके विरही प्रेमिओं की संवेदना प्रकट की है ।

जसमा ओडण में संवेदना[१७]

(राजस्थान और गुजरात में प्रचलित 'जसमा ओडण' की संवेदना की कथा)

सती जसमा ओडण की लोकगाथा राजस्थान और गुजरात में बहुत प्रचलित संवेदना की लोककथा है । इस कथा में एक रूपवती स्त्री को कितना दु:ख झेलना पडता है, राजा जैसे बडे बडे लोग भी उनको वश करने के लिए कैसे परेशान करते हैं और सती स्त्री अनपढ होने के बावजूद भी उसका कैसे प्रतिकार करती है ये सब घटना-संवेदना जसमा ओडण के मुँह से इस लोककथा में सुनने को मिलती है ।

गुजरात के पाटन के राव खेंगार ने सोचा कि पाटन में एक ऐसा सरोवर बनाया जाय जो दुनिया में सबसे बडा हो और भविष्य में भी कोई उसकी होड न कर सके । इस कार्य में गुजरात, मारवाड, मालवा, मेवाड सब जगह से ओड परिवारों गुजरात आ पहुँचे । और देखते देखते में गुजरात में पहुँचते ही अपनी अपनी झोंपडियों बनाने लगे । और देखते-देखते एक भरी-पूरी बस्ती बस गयी ।

जसमा ओडण की खूबसूरती के सामने इन्द्रलोक की अप्सराएँ भी पानी भरती थीं । मानो हजार स्त्रियों का रूप एक ही देह में समा गया हो ।

कुछ दिन बाद राव खेंगार घोडे पर सवार होकर सरोवर की खुदाई देखने के लिए वहाँ आया । यकायक उसकी नजर जसमा ओडण पर पडी । जसमा को देखते ही राव खेंगार मूर्छित हो गया । मूर्छा टूटने पर ही राव खेंगार आँखे मूंदकर बडबडाने लगा, ''ओडण.... ओडण.....।''

दूसरे दिन राव खेंगार घोडे पर सवार होकर सरोवर की पाल पर गया । और बोलने लगा, ''मैं पाटन का सिरमौर राव खेंगार हूं .... राव खेंगार और वह एक अदनी ओडण ! गधों की पीठ पर भर-भर गूणतियाँ माटी ढोने वाली । पाली पर माटी का ढेर लगाने वाली । धूल से अटी हुई । राजा के मन की बात सुनकर अपना भाग्य सराहेगी । घोडे पर सवार राजाने सरोवर की तीन बार परिक्रमा लगायी । तमाम ओड-ओडणियों ने 'खम्मा घणी, खम्मा घणी' की जय-जयकारों से अतसयान उपर उठा लिया, मगर जसमा तो जैसे निपट अन्धी और बहरी हो । अपने गधे को हाँकने के उन्माद में उसके घोडे की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा । आखिर राव खेंगार घोडे से उतरकर वह जसमा के पास आया और हकलाते पूछा, ''रूपसी, तेरा नाम.... ?''

एक बार तो जसमा ने सुनी-अनसुनी कर दी ! काफी दूर तक उसके पीछे चलते-चलते बमुश्किल वही सवाल फिर दुहराया, ''रूपसी, तेरा नाम तो बता....?''

जसमा मीठे सुर में बोली, ''मेरा नाम, भगवान का नाम तो नहीं है, सो उसकी माला जपोगे !''

''एक बार तेरा नाम बता तो सही, मैं उसे आठों पहर जपूँगा.....।''

''मेरा नाम क्यों जपोगे.... और वह भी आठों पहर, तुम्हारी अक्ल भाँग तो नहीं चरने लगी ?''

राव खेंगार ने कहा, ''मेरा नाम राव खेंगार है.... राव खेंगार । पाटन का राजा हूं । तुम लोगों को काम पर लगाने की खातिर यह सरोवर खुदवाने की इच्छा हुई । तू कहे तो मैं हर रोज तुझे सोने की मोहर मजूरी में दूँ....।''

जसमा को यह बात काफी बुरी लगी । गम्भीर भाव से जवाब दिया, ''मेरा नाम जसमा ओडण है... जसमा ओडण । मजूरी से एक कौडी भी अधिक लेना गाय का लहू समझती हूँ । तुम जैसे

अनेक ठाकुरों ने, सेठ-साहूकारों ने मुझे बहुतेरे लालच दिये, पर मैंने उधर कान तक नहीं दिया । मेरे गधे भले, लकडी का ढाँचा भला और यह माटी भली ! काम, काम और काम ही मेरा इष्ट है । मेरी आस्था है । लोभ-लालच के मारे इधर-उधर झाँकती भी नहीं । रही सुख-दुःख की बात, अपने से सुखी मैं ईश्वर को भी नहीं मानती ! मैं बामन-पण्डितों की तरह पढ़ी-लिखी भी नहीं हूं । पर तुम्हारी बातें सुनकर मुझे लगा कि जानना चाहो तो तुम्हें बहुत-कुछ बता सकती हूं । समझ नहीं पडती कि तुम जैसा ठोठ राजा क्योंकर राज चलाता है ? कैसा न्याय करता होगा... ?''

ऐसे अकल्पनीय रूप की महारानी और इतनी भोली । उसने बिना किसी हील-हुज्जत के उसी क्षण हामी भरी, ''तू जो सिखाए, सीखने को तैयार हूं । किन्तु यहाँ जंगल में नहीं, महलो में स्वर्ण - निकेतन में । उसके सुनहरे चित्र देखकर तू बौरा जाएगी । यदि तूने मुझे पारंगत कर दिया तो अमोलक हीरे-मोतियों से तेरी टोकरी भर दूँगा । तेरी इच्छा होगी तो आधा राज्य सौंप दूँगा । मुझे ऐसी-ऐसी विद्या सीखा, जिसे अब तक कोई सीख नहीं सका ।''

''लेकिन अपना काम छोडकर मैं तो स्वर्ग में भी नहीं जाना चाहती । काम करते-करते ही काफी-कुछ सिखाती चलूँगी । सबसे पहले धरती को बाँचने का हुनर बताऊँगी । बस, आँखे खुली रखने की जरूरत है । इस सरोवर के बहाने हम इसका कलेजा खोदते हैं, अनगिनत घाव करते हैं, फिर भी वह मुस्कराती है ! जब जरूरत के हिसाब से इसका कलेजा खोदना बन्द करेंगे और इसी चौमासे में वह छिलाछिल भर जाएगी, तब हजारों पंछी-जानवर, ढोर-डंगर और बटोही इसका पानी पीकर अपनी प्यास बुझाएँगे । पनिहारिनें पायल झनकातीं पानी भरेंगी । कुओं के बहाने गहरे घाव खोदेंगे, तब भी वह लहू की बजाय ऐसा अमृत सौंपेंगी, जिसके सहारे हम सबकी काया टिकती है । हल की तीखी नोक से उसकी देह उघाडकर जब उस में बीज गेरते हैं तो एक दाने के बदले अनेक दाने लुटाती है । धरती पर चलने वाले प्राणियों को बाँचो, हवा में उडते पंछियों को बाँचो, झाड-बिच्छ और फूलों को बाँचो, चाँदनी और उजाले को बाँचो । रात के अँधेरे में टिमटिमते असंख्य तारों को बाँचो तो सुख और आनन्द का पार नहीं रहेगा । एक बात पूछती हूँ । सच बताना कि तुमने बादल बिजली और बरखा को कभी भूल-चूक से भी बाँचा है । बरसती बूँद-बूँद में तो अथाह ज्ञान भरा है....।''

राव खेंगार तो जसमा की वाणी सुनकर ही तुष्ट हो गया, मगर उसकी बातों का झीना मर्म तो कुछ पल्ले ही नहीं पडा । फिर भी उसके अज्ञान का आभास कराने की मंशा से गुमान के लहजे में कहने लगा, ''ये भी कोई बाँचने की चीजें हैं....! मेरे गुरुजी की सीख के अनुसार महाभारत बाँचो, गीता-रामायण बाँचो, पंचतन्त्र बाँचो तो बुद्धि पर ऐसी चमक आये कि क्या कहना ..... ।

जसमा के दमकते ललाट में त्रिशूल-सा उभर आया और धीरज के स्वर में बोली, ''तुमने पोथियों के नाम बताए उन्हें अच्छी तरह समझने के बाद ही कह सकती हूँ कि कुदरत के कण-कण में उनसे ज्यादा ज्ञान भरा है ! हाँ, अलबत्ता उन्हें लिखने वाले बहुत अनुभवी और ऊँचे ज्ञानी थे । लेकिन अब तोते की नाईं बिना समझे रटने से उस मरम को नहीं समझा जा सकता । तुम्हारे सुनहरे महल और उनकी चमकती पच्चीकारी को देखने पर भी मेरे मन में रती भर भी ईर्ष्या नहीं होगी । उलटे मेरी झोंपडी ज्यादा सुन्दर लगेगी । मनुष्य बाहर की सम्पत्ति से मालदार नहीं बनता, भीतर की पूँजी से बडा बनता है । रात को समय मिले तो जरूर आना, अपने पति से मिलाऊँगी । वह सचमुच मुझ से अधिक गुणवान है । दो नन्हे-मुन्ने बच्चे हैं मेरे । एक बेटा और एक बेटी । मेरा वश चला तो

उन्हें खरा मनुष्य बनाऊँगी, जो भीतर से भी धनवान हों । उनके अन्तस् में चाँद जैसी चाँदनी धुली रहे । हमारी तरह काम ही उनका धर्म और ईश्वर हो और वे उसी की पूजा करें ! काम करते-करते ही बात करने का मन हो तो दिन के समय चाहे जब आ जाना ।'' कुछ सोचकर थोडी देर बाद कहा, ''जो राजा भीतर से इतना कंगाल हो उसे राज करने का कोई अधिकार नहीं है ।''

एक गँवार ओडण के मुँह से ऐसी बातें सुनकर राजा हतप्रभ-सा हो गया । अचरज और हताशा के लहजे में कहने लगा, ''मैं तो तुम्हें अक्षत युवती मान रहा था । दो बच्चों की माँ का शरीर ऐसा गठा हुआ नहीं होता । तेरा पति कितना भाग्यशाली है कि उसे तुझ जैसी बहू मिली । सच बताना, दोनों एक ही खाट पर सोते हो....?''

जसमा ने मुस्कराते प्रतिवाद किया, ''खाट पर तो हम अब तक नहीं सोये । साफ-सुथरा आँगन ही हमारी सेज है । सहवास की वेला में एक एक तारे को बीनकर अपने हृदय में जडती हूँ । तुम कभी इस तरह के आनन्द को बरतकर तो आजमाओ ! जब दो बार मेरी कोख में आशा का संचार हुआ तो पहले तेरस का चाँद कोख में जडा और दूसरी बार पूनम का ! मेरे कहने से ही रानीजी को पूछना कि उन्होंने कोख में किस चाँद या सितारे को धारण किया ? इस में संकोच जैसी कोई बात नहीं । यदि तुम नहीं पूछ सको तो रानीजी को यहाँ ले आना, मैं पूछ लूँगी । यही तो बातें हैं पूछने की....।''

राव खेंगार आकबाक-सा मुँह फाडे ओडण की आँखों में घूरने लगा । कुछ होश आते ही आश्चर्य-चकित होकर पूछा, ''पाटण की रानियों को यहाँ लाऊँ, ओडों की बस्ती में.... तेरी अकल तो नहीं मारी गयी... ?''

जसमा ने हँसते-हँसते ही कहा, ''मेरे खयाल से राजा तो रानियों से बढकर ही होता है । जब वह एक भिखारी के उनमान मुझ जैसी ओडण के पीछे-पीछे लार टपकाता है, तब उसकी शान नहीं घटती ? फिर रानियों के यहाँ आने पर उनका मान क्योंकर घटेगा ? ऐसी दोगली मर्यादा से राजा का काम चल सकता है, हम ओडों का नहीं चलता । कल मेरी पीठ देखने से ही तुम बेहोश हो गये थे, तभी मुझे अनुमान हो गया कि पाटण के राजा को मेरे तलवे चाटने में कतई आनाकानी नहीं होगी .....।''

राव खेंगार को झटका लगते ही उसके चेहरे पर खीझ उभर आयी । कडकते सुर में पूछा, ''क्या कहा... मैं तेरे तलवे चाटूँगा.... ?''

जसमा ने मुस्कराते हुए धीमे से कहा, ''मैं चाटने दूँ तब ना....।''

राजा अपने ही जाल में फँसता गया । हकलाते पूछा, ''क्या मैं इतना गया-गुजरा हूँ कि तू मुझे अपने तलवे भी नहीं चाटने देगी ? एक अदनी ओडण का इतना गुमान.....! याद रखना मैं तेरे तलवे चाटकर ही रहूँगा । सच्ची मुहब्बत गाल, होठ, हथेली और तलवों में भेद नहीं करती । अभेद की पवित्र भावना ही प्यार की सही पहचान है !''

जसमा ने खुशी का अभिनय करते गम्भीर स्वर में पूछा, ''क्या सचमुच आप मुझ से सच्ची प्रीत करते हैं...?''

''हाँ सच्ची प्रीत.... सोलह आने सच्ची प्रीत....।''

होठों तक उछली मुस्कान को दबाने की व्यर्थ चेष्टा करते जसमा ने फिर पूछा, ''मुझ से पहले कितनी रानियों और बाँदियों से सोलह आने सच्ची प्रीत कर चूके हैं... ?''

राव खेंगार कुछ देर तक असमंजस में उलझा रहा । फिर यह सोचकर कि राजा पर कैसा अंकुश । गर्व के साथ कहने लगा, ''रानियाँ तो केवल तीन... पर बाँदियों का कोई हिसाब ही नहीं । राजा तो जितनी औरतों से प्रीत करें, उसकी उतनी ही शान बढती हैं । उसकी सत्ता और शक्ति की यही पहचान है । वह तो भगवान का अवतार होता है । तेरा रूप देखकर मुझे पहली बार महसूस हुआ कि पहले वाली प्रीत सच्ची नहीं थी, प्रीत का वहम था, फक्त वहम.....! ''

राव खेंगार को जसमा ने कहा, ''मानती हूँ, आपकी बात एकदम सही मानती हूँ । यदि मुझ से बेशी रूप वाली कोई अप्सरा मिल गयी तो मेरे प्रति जो आपकी खरी मुहब्बत है, वह वहम की धुँध मात्र रह जाएगी । और तुम्हें नयी अप्सरा से सच्ची प्रीत हो जाएगी-सोलह आने सच्ची प्रीत.....।''

राजा ने चुनौती के लहजे में कहा, ''ऐसी बात सपने में भी नहीं हो सकती.... तुझ से अधिक रूपवती अप्सरा सारी दुनिया में नहीं मिल सकती, मेरे कहे पर विश्वास कर....।''

''कैसे विश्वास करुँ....?'' जसमा ने मजबूरी के आशय से जवाब दिया, ''यह दुनिया बुहत लम्बी-चौडी है । सभी सुन्दर औरतों की तलाश करने में हजार जनम भी थोडे हैं । मेरे हिसाब से तो पहुँच के परे की औरत सबसे ज्यादा खूबसूरत होती है...।''

उस मन-पसन्द बातचीत के बीच जसमा के पति ने दोनों की पीठ पीछे बाधा उपस्थित कर दी, ''बातचीत भले ही करो, पर काम में नुकसान नहीं होना चाहिए । अपने लिए काम ही राम है....।''

दोनों ने चौंक कर पीछे देखा । जसमा ने बेहिचक परिचय कराया - ये मेरे पति है, मेरे बच्चों के पिता । इनके अलावा दूसरा पुरुष मुझे नजर ही नहीं आता.....।

थोडी देर बाद जसमा ने राव खेंगार की ओर हाथ का इशारा करते हुए अपने पति से कहा, ''ये पाटण के राजा है, मुझे सच्ची प्रीत करते हैं.....।''

''कोई बात नहीं, प्रीत करना बुरा नहीं है.....।''

''लेकिन प्रीत के बदले आधा राज्य देना चाहते हैं.....।''

''यह बूरी बात है । प्रीत के बदले भाव-ताल तो वेश्याओं से किया जाता है । प्रेम तो बदले में निखालिस प्रेम की ही माँग करता है । तू इनसे प्रेम करे तो मुझे एतराज नहीं होना चाहिए । यह बहुत बेजा बात है....।''

''ऐसे लिजलिजे आदमी की प्रीत फक्त रानियों और बाँदियों के भाग्य में ही लिखी होती है ।'' फिर हँसते हँसते कहने लगी, ''इस तरह के राजा या महाराजा से प्रीत करने की खातिर तेरी गंध भी तीन बार सोचेगी... तीन बार । दुनिया की किसी औरत को मँगते वाली प्रीत सपने में भी नहीं सुहाती । प्रीत करे तो रिरियाने की दरकार ही कहाँ है । भले ही वह राजा हो चाहे अखूट मायापति । सच पूछिए तो मुझे बेचारी रानियों और बाँदियों पर तरस आता है कि उन्हें एक ढुलमुल राव-उमरावों से मुहब्बत करनी पडती है.... ।''

जसमा की बात सुनकर राव खेंगार उलझन में पड गया । और गुस्से में आकर समसमा गया । लेकिन करे क्या ? युद्ध में बिना लडे ऐसी बुरी हार तो कभी नहीं हुई । क्या करने से कब्जे में आ सकती है ? सत्ता, माया और तलवार की शक्ति को तो ये शक्ति ही नहीं मानती । आया तो था राज्य सिंहासन का रुतबा जताने, पर जसमा ने तो उसे इल्ली से भी गया-गुजरा साबित कर

दिया । राव खेंगार ऐसी उलझन में पडा था तब पास आकर जसमा ने पूछा, ''ऐसी क्या बात हो गयी ? किस गुत्थी में उलझे हो ?''

राव खेंगार की सारी ख्याति डगमगाने लगी, फिर भी उसने झुकना नही चाहा । तनिक रूआब से जवाब दिया, ''बात तो हुई जैसी ही हुई है । पर अभी बताना नहीं चाहता । तीन बरस बाद सरोवर पूरा खुदने पर मन की बात दरसाने की योग्यता मुझ में हुई तो अवश्य बताऊँगा । मगर उस से पहले एक छोटी-सी बात अभी बताना चाहता हूँ, मान लो तो मैं जीवन भर तेरा एहसान मानूँगा । पहले वचन दे....।''

''पहले वचन कैसे दूँ...। कितनी बचकानी बात करते हैं ?

मानने जैसी बात होगी तो पल भर की भी देरी नहीं करूँगी और न मानने जैसी होती तो उम्र भर नहीं मानूँगी ।''

''बात तो मानने जैसी ही है, पर कहने में संकोच होता है...।''

''ठहरो मत, चलते रहो.... मेहनत और पसीने की नियामत ही मेरे लिए सबकुछ है । इसका नुकसान मैं झेल नहीं सकती । पूरा काम न करूँ तो मुझे नींद नहीं आती । निशंक बताओ ....।''

''बिना बताए मुझे चैन नहीं पडेगा । मगर बताना आसान भी नहीं है । तू वचन देती तो मेरा हौसला बढ जाता । फिर भी बताना जरूरी है कि जब से तुम लोग काम पर लगे हो, उस दिन से मैं मजदूरी तिगुनी करना चाहता हूँ । प्रत्यक्ष देखने पर ही मुझे पता चला कि तुम लोगों का काम बहुत कठिन और कल्याणकारी है....।''

जसमा सहज भाव से बोली, ''यदि शुरुआत से ही यह मजदूरी खुल जाती तो किसे भी एतराज नहीं होता । लेकिन अब यह बात मानने पर हर व्यक्ति वही सोचेगा कि मेरी प्रीत की वजह से ही यह दक्षिणा मिली है । दूसरों की बात तो दरकिनार, मुझे और मेरे पति को भी यह इनायत मंजूर नहीं होगी । हम ओड हैं, बामन नहीं । बेबात की यह दक्षिणा हमें पचेगी नहीं । फिर भी इतनी जल्दबाजी करने की जरूरत ही क्या है ? तीन बरस बाद जब यह तालाब हिलोरें लेने लगेगा तब अपने पसीने का उचित प्राप्य हम राजी-खुशी कबूल कर लेंगे । परन्तु होना चाहिए प्रीत की बजाय मेहनत और पसीने का मोल । आपको मंजूर हो तो मैं अभी वचन देने को तैयार हूँ ।''

पाटण के राव खेंगार को तत्काल कुछ उत्तर नहीं सूझा । तब जसमा ओडण का धीरज छूटने लगा । तकाजा करते बोली, ''कुछ जवाब तो दो... यों चुप रहने से क्या पता चलेगा ।''

राव खेंगार का हृदय होठों की राह प्रकट हुआ, ''आज जवाब देने का कुछ मतलब नहीं है । जिस शुभ घडी में यह तालाब छिलाछल भर उठेगा, तब तट पर खडे रहकर जो भी जवाब सूझेगा वही सच्चा जवाब होगा....।''

राव खेंगार के ये खरे बोल सुनकर जसमा ओडण विचलित तो जरुर हुई, पर उसके कदम डगमगाये नहीं । उतावली दरसाते कहने लगी, ''चलते चलो, रूको मत.... ।''

उसने मुस्कराते हुए अदेर जवाब दिया, ''अब साथ चलने की शक्ति नहीं है । रुकना ही पडेगा । मगर याद रखने की सार बात यही है कि हम सात कदम से अधिक साथ चले हैं...।'' इतना मन्त्र सुनकर पाटण का राव खेंगार तत्काल मुडकर तेज कदमों से चलने लगा । जसमा ओडण

थोडी देर ठहरकर तब तक देखती रही जब तक वह ढलान से उतरकर अदीठ नहीं हो गया । उम्र के इस पडाव पर पहली बार वह तनिक उहापोह में उलझ गयी थीं ।

मेह - उजली में संवेदना[१८] (गुजराती)

मेह-उजली की कथा एक शोकान्त प्रेम-कथा है । उजली की जो संवेदना है - वेदना है ये उस कथा में व्यक्त की गई है । देखे :

'तेर तांसळियुं' इस शब्द से जानी जाती तेरेक तरवारधारी गुजरात की सौराष्ट्रीय जातियाँ आपस में विवाह संबंध करती है यह तो ठीक है किन्तु विवाह किस्सों की चमक अपने अन्तर में संग्रहित करतीं हैं । मूल भावना तो धार्मिक माने जाते प्रतिबंध के प्रति भी अप्रियता का अनुभव करता था । इतना ही नहीं किन्तु उस रुढिगत प्रतिबंध ने धूल में रगड डाले एक प्रेम - विवाह की घटना तो शकुंतला-दुष्यंत की कहानी का स्मरण कराती है, जो ऐसे करुण भावों के साथ एक लोकगाथा में उतरी है । और उस गाथा के आद्यपर्यन्त सत्तर जितने दोहों का गुच्छा सिवानों, खेतों और पहाडों-टीलों पर सोरठ के श्रमजीवियों के कंठ तथा नयनों को अश्रूभीगा बनाता है ।

वह है मेह-उजली की शोकान्त प्रेम-कथा । एक नगरवासी राजपुत्र था और दूसरी वनवासिनी चारण कन्या थी । इन दोनों कौम के बीच भाई-बहन का संबंधधर्म चलता है । यदि इसका उल्लंघन हो तो गौ-हत्या के बराबर माना जाता है । नगरवासी राजकुमार और वनवासी गोपकन्या के बीच प्रेम उत्कटता की परिसीमा पर पहुँच गया था । किन्तु मेहकुमार आखिर में रूढिधर्म की धमकी का भोग बना, और किसी भी रूढिधर्म को नहीं माने इतना तीव्र प्रेम गोपकन्या उजली को सामाजिक अपवाद के विरुद्ध तथा पिता की चाहत के विरुद्ध बागी बनाकर राजनगर में खींच ले गया । वहाँ वह मेहकुमार के महल की छत के नीचे खडी होकर पहले तो चिरौरी करने लगी :

मेनी मेडी हेठ, उजळी अरदासुं करे,
मोढ देखाड मे ? अमे भोठां पडिये भाणना ।

(महल के नीचे खडी होकर उजली चिरौरी करती है, मुँह दिखाओ मेह नहीं तो हम शर्मिंदा होंगे ।)

उत्तर में कुमार ने निषेध बताया :

चारण एटलां देव (अमे) जोगमाया करी जाणीए,
लोहीनां खपर खपे, तो बूडे बरडानो धणी,

(तुम चारण पुत्री-पूजनीय हो : तुम तो खून का खप्पर हो, उसे पीऊँगा तो मैं बरडा का राजकुमार निर्वंश हो जाऊँगा ।)

उजली ने ताना मारा :

साकरने सादे बोलावतो, बरडानो धणी
(आज) कूंचा कांऊ काढे, जाते दा-डे जेठवा ।

(हे बरडा प्रदेश के स्वामी तुम तो मुझे मधुर आवाज से बुलाते थे, तो आज क्यों मुँह में से कूचा जैसे शब्दों को निकालते हो !)

इतना ही नहीं, गोपकन्या के उदर में गर्भ होगा । या स्वयं अपने शरीर को कभी का भोगे जाने की दशा का निर्देश करती होगी ।

नळीयुं हतीयुं नकोर, ते दी बोलावतो, बरडाना धणी,
जांगे भांग्यां जोर, जातां कीधां जेठवा ।

(जब मेरे पैर की नलियां मजबूत थीं तब तू मुझे बुलाता था किन्तु आज मेरी जांघ का जोर टूट गया है इसलिए क्या तुम मुझे छोड रहे हो ?)

कुमार - ने कृपानिधि बताई :

कण ने दाणा कापे, भण्य तो दउं गाडां भरी,
हैये भूखुं हो, (तो) आभपरे आवे उजली ।

(तुझे अनाज के बिना नहीं रहने दूँगा, जितना कहेगी उतना दूँगा । भूख से पीडित नहीं होने दूँगा । मेरे आभपरा की राजधानी में सुख से अन्नवस्त्र लेने आना । ब्याह तो नहीं कर सकूँगा । उजली के हृदय में गहरी चोट पहुँची ।)

आवडली अमे, जेठीराण जाणेल ने,
(नीकर) पीयर पग ढाँके, बेसत बरडाना धणी ।

(तेरे इस नीतिधर्म का पता होता तो मैं अपने मायके पैर ढंककर कुमारिका अवस्था में ही बैठी रहती ।)

काचो घडो कुंभार, अणजाण्यो में उपाडियो,
भवनो भांगणहार जेठीराण जाणेल ने ।

(अपने संसार-सागर को तैरने के लिए अनजाने में मैंने इस कच्ची मिट्टी के घडे को उठा लिया । वह ते फूटा हुआ निकला ।)

अन्त में उजली श्राप देती है :

कण कण करशे काग धुमलगढ भेळाशे धणो,
अंगडे लागो आग (तने) भडकावणी भाणना ।

लोककथा कहती है कि उस जेठवा के अंग में रक्तपित्त की आग लगी थी, धुमलीनगर का विनाश हो गया था और मेर के मरने पर उसे गोदी में लेकर मरने के लिए उजली आखिर में आ पहुँची थीं ।

तेजमल-सजना की संवेदना[१९] (गुजराती-राजस्थानी)

ठाकुर की एक छोटी सी लडकी ने पुरुष का वेश धारण करके दुश्मनों का संहार किया था, लेकिन दुश्मनों का संहार करने से भी ज्यादा पराक्रम उसने अपने नारी-स्वभाव को छुपाने से

किया था । ठाकुर का लडका बनकर तेजमल ठाकुर ने अपनी जन्मभूमि की रक्षा की थी । गुजराती में 'तेजमल' का नाम है उसी प्रकार प्रेरक और प्रोत्साहक नाम राजस्थानी में 'सजना' का है ।

इस लोकगाथा में गुजराती और राजस्थानी नारी का संवेदन व्यक्त किया गया है । नारी को अपना असली रूप छुपाने के लिए कितनी मुश्किलियाँ पडती है । यदि जो अपना असली पहचान बता दे तो भी कितनी तकलीफें होती है - मुसीबतें होती हैं उसकी वेदना - संवेदना व्यक्त की गई है ।

गुजराती साहित्य में शुरुआत की 'तेजमल' की यह पंक्तियाँ देखें :

उगमणी धरतीना, दादा ! कोरा कागळ आव्या रे
ए रे कागळ दादे डेलीए वंचाव्या रे
काको वांचे ने दादो रह रह रोवे रे ।

राजस्थानी साहित्य में शुरुआत की 'सजना' की यह पंक्तियाँ देखें :

बैठ्या बाबोजी तखत बिछाय
कागदिया तो आया तो बाबाजी रे हाडेराव रा ।

तब सजना लडकी पूछती है :

कागद, बाबाजी म्हाने बांच सुणाय,
कांई रे हे लिख्यो वे बाबाजी कोरे कांगदां ?

उसी तरह गुजराती में तेजमल दादा को पूछती है :

शीदने रूवो छो, दादा ! अमने संभाळावो रे ।

सजना को उनके बाबा उत्तर देते हैं :

कागद वांच्या ए न जाय
छाती तो फाटे, ए बाई सजना, हिवडो उजळे ।

(हे बाई ! कागज पढा जाय ऐसा नहीं है । मेरी छाती फट रही है और हृदय व्याकुल हो रहा है ।)

सजना के पिता पर बडे राजा हाडेरावजी जयमल ने कागज में क्या लिखा है ?

एवडछेवड लिखि छे सात सिलाम
बीचमें तो लिखियो, ए बाई सजना, वेग पधारणा ।

गुजराती साहित्य में भी यही पंक्तियाँ लिखी गई है :

कोरे मोरे लखियुं छे सात सलामुं रे
वचाळे लखी चाकरी रे लोल ।

और तेजमल के दादा को कागज लिखा है :

दळकटक आव्युं, दीकरी, वारे कोण चडशे रे ।

सजना के पिताजी छोटे ठाकुर है, और बडे राजा हाडेराव कानून के मुताबिक बारह साल की नौकरी पर हाजीर होने को बुलाते हैं । जागीर (मिलकत) के बदले में जागीरदार ने स्वयं या अपने पुत्र को बडे राज की फौज में नौकरी (उठानी) करनी पडती है । 'बारह साल' शब्द का लोकगीत में बडा स्थान है । उनका अर्थ लंबी समयावधि है ।

तेजमल के पिता भी छोटे ठाकुर है, उनके राज (रियासत) पर शत्रुओं ने डेरा डाला है, लेकिन उनके सामने सैन्य ले के कौन रणभूमि में जा सकता है ? दादाजी वृद्ध है और :

सात सात दीकरीए दादो बांझिया के'वाणा रे ।

सात-सात लडकियाँ है, एक भी लडका नहीं है । ऐसी ही स्थिति सजना के बाबा (पिता) की है ।

तेजमल क्या हल (रास्ता) निकालती है ?

हैये हिमत राखो दादा । अमे वारे चडशुं रे ।

सजना क्या हल (उकेल) बताती है ?-

थे मारा बाबाजी, बेदिल मत होय,
बारे तो वरसां लग करसां चाकरी ।

(तुं, हे मेरे पिता, बेदिल मत बन (चिंता मत करो) मैं जाकर बारह साल तक हाडेराव की नौकरी (चाकरी) करुंगी)

बाद में तुरंत सजना मरद-वेश (पुरुष वेश) पहन कर ढलती रात को ऊँट पर सवार होकर नीकल पडती है :-

करिया सजना मरदाना-भेस
करला ललकार्या ए बाई सजना ढळती रातरा ।

लेकिन गुजराती साहित्य में तेजमल के दादा इतनी जल्द समझे ऐसे नहीं है और तेजमल को अपना नारी स्वरुप कैसे छुपायेगी और राजपूतों के सामने कैसे लडेगी - युद्ध करेगी यही प्रश्न उनके पिताजी को सताते हैं । उसके बारे में तेजमल और पिता के बीच संवाद होता है वही राजस्थानी साहित्य में नहीं है । फिर भी यह प्रश्नोत्तरी यहाँ पेश करने की मैं चेष्टा करता हूं ।

तेजमल और अपने पिता के बीच गुजराती में जो संवाद (सवाल-जवाब) होते हैं वे यही हैं देखिये :

प्रश्न : माथानो अंबोडो, तेजमल, अछतो केम रे'शे रे ?
उत्तर : माथानो अंबोडो, दादा, मोळीडामां रे'शे रे ।

(हे पिता । अंबोडे को तो दादा मैं मेरी पघडी में लपेट लूंगी ।)

प्रश्न : कानना आकोटा, तेजमल, अछता केम रे'शे रे ?
उत्तर : कानना आकोटा, दादा, बुकानीमां रे'शे रे ।
प्रश्न : हाथना त्राजवडां, तेजमल, अछतां केम रे'शे रे ?
उत्तर : हाथनां त्राजवडां, दादा, बांहोडलीमां रे'शे रे ।

(योद्धा के अंगरखे की बाँय हमेशा लम्बी होती है, इसलिए उसमें छूंदणां (त्रोफा) छूपा सकते हैं ।)

फिर भी मुश्केलियाँ आगे बढती है :

प्रश्न : दांत रंगावेल, तेजमल अछता केम रे'शे रे ?

इस प्रश्न का उत्तर सरल नहीं है । लाल रंग में रंगे हुए दांत को छुपाने का कोई स्थल या साधन तो है ही नहीं फिर भी तेजमल में उनको छुपाने की बौद्धिक कुशलता है । वो अपने उत्तर में कहती है :

उत्तर : नाना हता ते दी मोसाळे ग्या'तां रे
खांतीली मामीए दांत रंगाव्या रे ।

(हे पिता । वहेम (शंका) करने वाले को मैं ऐसा जवाब (खुलासो) दूंगी कि जब मैं बचपन में मोसाल (ननीहाल) में गई थी तब मेरी उत्साही मामीने वहाल करके मेरे दांत रंग दिये थे ।)

फिर भी पिताजी की गभराहट बढती जाती है :

प्रश्न : नाक वींधावेल तेजमल अछतां केम रे'शे रे ?
उत्तर : अमारा दादाने अमे खोटना हता रे,
खोटना हता तेथी नाक वींधाव्यां रे ।

सात-सात बहनों के बाद आया हुआ भाई गुजरात में खोट का कहा जाता है । (लाडकवायो) लेकिन छठ्ठी के दिन (जन्म के बाद छठे दिन की रात को) भाग्य लेख लिखने विधाता देवी आती है तब लडका देखकर कदाच जल्द मृत्यु लिख दे, इसलिए विधाता को छेतरने के लिए (छेतरपिंडी करने के लिए) नाक वींधाया है, जिससे विधाता देवी ''यह तो लडकी है'' ऐसा जानकर वींधे हुए नाक से कुछ अमंगल (अशुभ) लिखे बिना चली जाय । ऐसा वेसा मैं प्रश्न करनेवाले को बता दूंगी पिताजी । ऐसा तेजमल कहती है ।

एक ओर राजस्थानी साहित्य में ऊँट पर सवार होकर मरदाना-वेश धारण करके सजना पूछती पूछती हाडा राजा जेमल के महल पर जाकर अपना नाम गायडमल हैं ऐसा कहकर खडी रहती है । तो दूसरी ओर अपनी बुकानी मुँह पर बाँधकर तेजमल अंगरखे की लम्बी चोली में छूंदणां (त्रोफां) छुपाकर मरद वेश (पुरुष वेश) में अपने दादा को लडके की तरह गाँव गाँव के योद्धाओं को हाकल करती हुई दुश्मनों पर हमला करने के लिए तत्पर खडी है ।

इसी लोकगीत में अपने पिताजी की तो वेदना है ही साथ में अपने पिताजी को मुश्किल के समय में एक नारी - एक लडकी, एक लडका बनकर कैसे सहायरूप हो सके उसका संवेदन यहाँ निरूपण किया गया है यह हम समझ सकते हैं । एक नारी को अपने पिता की कितनी चिंता है नारी की यही वेदना को यहाँ चित्रित किया गया है ।

अभी भी वेदना कम हो उसी तरह तेजमल और सजना की कसौटी की शुरुआत होती है ।

तेजमल स्त्री है या पुरुष उसकी कसौटी सैनिक कर रहे हैं । और सजना की कसौटी स्वयं हाडेराव कर रहे हैं । उस में भी हाडेराव की सहाय में उनकी भाभी (भोजाई) है इसलिए कसौटी बहुत तेजदार और मजेदार बनती है ।

यहाँ कल्पना की जाती हे कि हाडेराव एक युवान राजकुमार है, और उसने सजना को अपनी तहेनात में राजमहल में उनकी नौकरी दी गई है । कारण स्पष्ट है कि मरदाना वेश में सजना पर युवान राजकुमार का मन मोहित हो चुका हो । बहुत प्रयत्नों के बाद भी हाडेराव सजना को पहचान सकता नहीं है । नयन नारी (लडकी) के हैं लेकिन आवाज मरद की है ऐसी असमंजस (मूझवण) हाडेराव अपनी भाभी को बताता है । :

भाभी म्हांने अचरज होय,
नैणा नारीरा ऐ, आ बोली छोले मरदरी ।

हाडेराव की भाभी मार्ग बताती हुई कहती है :

एक बार, देवर, बागों में ले चाल,
वेरो तो पाडां, ओ देवरिया, नारी-मरदरो ।

(हे देरजी एक बार ये तेरे सैनिकों को बाग-बगीचे में ले जा, वहाँ ये नारी है या मरद उनकी पहचान हो जायेगी ।)

वहाँ क्या होगा ?

नारी होय तो पडयां-रिड्यां फल खाय
मरद हुवे तो तोड फूल गुलाबरो ।

(नारी होगी तो नीचे जमीं पर पडे हुए फल खाने लगेगी, और मरद होगा तो गुलाब का फूल तोडेगा ।)

हाडेराव ने ऐसा किया और सजना को पहचान ने की कोशिश की, लेकिन सजना ने गलती नहीं की, वो सावध हो गई थी ।)

राणा जैमल पड्यां रिड्यां फल खाय,
गायडमलरी सजना ओ तोडे फूल गुलाबरो ।

समयांतरे राजा जयमल हाडेराव असमंजस का अनुभव करता है इसलिए अपनी भाभी को सहायता के लिए बुलाता है । भाभी तीन उपाय बताती है :

एक बार, देवर, ले चलो, समंद-तळाव,
वेरो तो पाडां, ओ देवरिया, नारी मरदरो,
नारी होय तो हरां-तीरां न्हाय
मरद मूछालो ओ न्हावे समंद झकोळ कै ।
राजा जैमल हरां-तीरां न्हाय
गायडमल री सजना तो पान्हाबे समंद झकोळ कै ।

समुद्र जैसे तालाब में ले जा । जो स्त्री होंगी तो पाली (कांठा) पर बैठ के नहायेगी और पुरुष होगा तो सरोवर के जल में कूद पडेगा और ऊँडे जल में जाकर नहायेगा । जयमल राजा सजना गलती

करेगी ऐसे अहसास से पाली पर बैठ कर स्नान किया लेकिन गायडमल सजना तो पुरुष-मरद लक्षण से पूरी सभान थी और सजना ने सरोवर के गहरे जल में कूद पडी और स्नान करने लगी ।

तीसरी कसौटी :

एक बार, देवर, साथ रसोई ले चाल,

★★★

नारी होय तो धीरे धीरे खाय
मरद मूछालो तो झट दे जीम चळु करै ।

(साथ में खाना खाने को ले जा । जो स्त्री होंगी तो धीरे धीरे खायेगी और पुरुष होगा तो जल्दी-जल्दी खाना खाकर खडा हो जायेगा ।)

ये कसौटी में भी सजना पार उतर गई । और अंतिम कसौटी भी हो जाती है :

एक बार, देवर सेजां में ले चाल,

★★★

नारी होय तो फूल जावे मुरझाय
मरद मूंछालो री सेजां, ओ देवर, सळवट ना पडे ।

(अपने साथ सजना को एक सेज (पथारी) में सोने की बात आई । स्त्री होती तो फूल की तरह मुरझा जायेगी और पुरुष होगा तो मन में संकोच नहीं रखेगा ।)

और इसी तरह सजना की नौकरी (चाकरी) के बारह साल (नियत किया गया समय) खत्म होता है । बाद में उसको यहाँ ठहरने का बंधन नहीं था ।) और

हो गई सजना घुडले असवार
दिन तो उगायो ए बाई सजना बाबाजी रे देश में
उळंगी सजना समंद-तळाव
चूडलो तो दिखायो बाई सजना बांये हाथ रो ।
उठ ओ बाबाजी, ढकियो फळसो खोल
बारे बरसां ही ओ बाई सजना कर आयी चाकरी ।

(यह कटोकटी की रात को सजना तुरंत घोडे पर असवार होकर नीकल पडी । रातभर सवारी करके वो अपने वतन में पिताजी के पास पहुँच गई) और अपना चूडला बताकर (मैं अभी भी कंवारी हूं, परिशुद्ध और अणिशुद्ध हूं उसकी निशानी रूप) जोर से आवाज देकर बोली, ''जागो पिताजी, दरवाजा खोलो, बारह साल की नौकरी (चाकरी) पूरी करके मैं वापस आ गई हूं ।'')

गुजराती साहित्य में तेजमल की कसौटी सजना से अलग प्रकार की है । शंकाशील साथीयो व्यवस्था करते हैं कि :-

चालो मारा साथी, आपण दोशीडा हाट जईए रे
दोशीडा हाट जईए ने असतरी पारखीए रे
पुरुष हशे तो एनां पाघडीए मन मो'शे रे
असतरी हशे तो एनां चूंदडीए मन मो'शे रे

संधा साथीडाए चूंदडीयुं मूलवियुं रे
तेजमल ठाकोरियाए पाघलडी मूलवियुं रे

उसी तरह दूसरी खरीदारी करने को ले गये लेकिन तेजमल ने तो पुरुषोंचित (पुरुषों की) वस्तुओं का आग्रह रखा । बाद में अंतिम कसौटी नदी में नहाने की आती है । उनके शब्द बराबर सजना के गीत को मिलते-झुलते आते हैं :-

चालो मारा साथी, आपण नदीए ना'वा जईए रे ।
नदीए ना'वा जईए ने असतरी पारखीए रे ।
असतरी हशे तो ए कांठे बेसी ना'शे रे,
पुरुष हशे तो ए दरियो डोळी ना'शे रे ।
सघळा साथीडा तो कांठे बेसी ना'या रे
तेजमल ठाकोरियो तो दरियो डोळी ना'यो रे ।

तेजमल की कसौटी और सजना की कसौटी भिन्न होने के बावजूद भी लोकविधा की दृष्टि से एक ही है । दोनों में गलतियाँ की तरक्की एक ही प्रकार की है । सजना में अंतिम कसौटी है वो तेजमल में नहीं हैं । कारण स्पष्ट है । सजना और तेजमल को अलग अलग क्षेत्र पार करने के थे । सजना को चाकरी पूरी करके वापस चले जाना था । तेजमल को दुश्मनों पर विजय पाकर वापस जाने का था । सजना की लीलाभूमि युवान राजकुमार जयमल के महल में अंगत जीवन में थी, तेजमल की लीलाभूमि रणमैदान था । सजना ज्यादा रहस्यमयी और कौतुकभरी है । तेजमल ज्यादा तेजस्विनी है । गुजराती और राजस्थानी दोनों गीतों में कला-कसब न्यारा है । दोनों में साम्यता दिखाई पडती है । दोनों में अपने पिता को सहायभूत होने की और सहायभूत होने में जो भी मुश्किलियाँ आएँ उसको पार करने की-सहन करने की दोनों नारियाँ-तेजमल और सजना - में भरपूर संवेदना दिखाई देती है ।

सोनल के गीत में संवेदना

ठाकुर की कन्या को सिंधि जत सुमरा उनका अपहरण करते हैं और उस कन्या को - नारी को क्या क्या सहन करना पडता है यह वेदना उस गीत में व्यक्त की गई है ।

एक ठाकुर की राजपूत कन्या गढ पर खेलती है :

सोनल रमती रे
गढडाने गोख जो
गढडाने गोख जो
रमतां झलाणी सोनल गरासणी ।

गोख खेलती हुई कन्या का अपहरण हो जाता है । सिंधी जत सुमराओ उनका अपहरण करते हैं ।

आडो आव्यो रे
सोनल, दादानो देश जो

दादानो देश जो
सोनले जाण्युं जे दादो छोडावशे ।

दादा यानीकि पिता : सोनल ने अपने दादा को खबर भेजी कि दादा हमको छुडा कर ले जाओ । तब

दादे दीधा रे
सोनल, धोळुडां धण रे
कांई धोळुडां धण रे
तोये न छूटी सोनल गरासणी !

पिताने गाय के जूथ देने को कहा लेकिन अपहरणकर्ताओंने ज्यादा माँग करने से सोनल नहीं छूट पाई ।

बीच में मामा का देश आया । सोनल ने अपने मामा को खबर दी । मामाने काळुडां खांडुं – काली भेंस देने को कहा :

मामे दीधां रे
सोनल, काळुडां खांडुं रे
कांई काळुडां खांडुं रे
तो ये न छूटी सोनल गरासणी ।

फिर भी चोरों ने नहीं माना । आगे भाई का देश आता है । भाई जरूर छुडायेगा । इसलिये सोनल अपने भाई को खबर भेजती है । भाई महामूला 'धमळा वछेरु' – सफेद बाछडा (गाय के बच्चे) लेकर आता है :

भाईए दीधां रे
सोनल, धमळा वछेरु रे
धमळा वछेरु रे
तोये न छूटी सोनल गरासणी !

लेकिन लूटेरों को ज्यादा धन चाहिए था । इसलिए सोनल को नहीं छोडा । बीच में अपने पति – स्वामी का देश आता है 'आडो आव्यो स्वामीनो देश जो'। अपना पति कुछ भी धन लेकर नहीं आता है लेकिन पति तलवार खींच कर युद्ध करने को तैयार हो जाता है ।

आडो आव्यो
स्वामीनो देश जो
स्वामीए दीधी रे
एना माथा केरी मोळ्युं जो
घमके रे छूटी सोनल गरासणी ।

अंत में पति युद्ध करके आपनी पत्नी सोनल को चोरों – अपहरण कर्ताओं – लूंटेरों के हाथों से छुडाता है । यहाँ अपहरण हुई नारी का संवेदन प्रस्तुत किया गया है ।

ढोला मारू रा दूहा में संवेदना[२०]

लोक - काव्य ढोला - मारू-रा-दूहा (१५ वीं शताब्दी ईस्वी) है जो 'संदेश रास' और 'वीसल देव रास' की तरह मूलतः विरहगीत ही है; परन्तु समय - समय पर उसमें दाँव पेच भरी हुई कथाओं की चिप्पियाँ लगाकर उसे मुक्तक से आख्यानक काव्य बना देने के प्रयत्न हुए हैं । मुख्य काव्य इतना ही है कि सयानी होने पर मारवणी अपने बचपन के पति ढोला की चर्चा सुनती है और विरह में व्याकुल हो जाती है । वह अपने पति का पता लगाने के लिए कई संदेश वाहक भेजती है लेकिन कोई वापस लौटने नहीं पाता; सभी संदेशवाहकों को उसकी सौत मालवणी मरवा देती है और ढोला के पास मारवणी का सन्देश तक नहीं पहुँचने देती । अंत में मारवणी लोक-गीत के गायक एक ढाढी को यह जिम्मेदारी सौंपती है और ढाढी को इस उदेश्य में सफलता मिलती है । ढाढी के प्रयत्न से ढोला और मारवणी दोनों में पुनर्मिलन होता है ।

'ढोला' में क्रोंच पक्षी से लेकर ढाढियों तक से अपनी विरह -वेदना कही गयी है । यहाँ संदेश-वाहक भी सहृदय हैं । क्रोंच पक्षी से बढकर विरह-विदग्ध और कौन होगा; दूसरी ओर गायक ढाढी भी पथिक और पंडित की तरह मात्र श्रोता नहीं है बल्कि संदेश को अपनी रचना-शक्ति से अधिक मार्मिक बनाकर कहने वाला जीव है । ऐसी दशा में ढोला के संदेश-कथन में मार्मिकता कहीं अधिक है ।

'ढोला' के दोहों में - विशेषतः विरह निवेदन में इस प्रवृत्ति की बहुलता है ।

मारवणी के संदेश-कथन का आरंभ इस प्रकार होता है कि एक रात घर के पीछे वाले सरोवर में रात भर कुंझ पक्षियों का करुण-रव होता रहा । मारवणी को नींद नहीं आयी । सुबह होते ही वह सखियों सहित सरोवर के पास गयी और कुंझों से बोले बिना न रह सकी । मारवणी और कुंझों का सवाल-जवाब थोडी देर तक होता रहा और अंत में किसी गँवार को शर संधान करते देखा कुँझणियाँ उड गयीं । पक्षी और स्त्री की ज्ञानी मार्मिक बातचीत हिन्दी में 'पदमावत' को छोडकर और कहीं नहीं है । यह प्रश्नो के दस प्रकार है :-

''कुंझाँ, द्यउ नह पडखडी, थांकउ विनउ वहेसि ।
सागर लंघी प्री मिलउँ प्री मिलि पाछी देसी ॥''
''म्हे कुरझाँ सरवर-तणा, पाँखाँ किणहिं न देश ।
भरिया सर देखी रहाँ, उड़ आधेरि वहेस ॥''
''उत्तर दिसि उपराठियाँ, दक्षिण साँमहियाँह ।
कुरझाँ, एक संदेशमऽउ ढोलानइ कहियाँह ॥
''माणस हवाँ त मुख चर्वा, म्हे छाँ कुझडियाँह ।
प्रिय संदेसउ पाठविसु लिखि दे पंखडियाँह ॥''
''पांखे पाणीं थाहरइ, जलि काजल गहिलाइ ।
सयणाँ तणाँ, संदेसडा, मुख-वचने कहिबाइ ॥''

कुंज चाहे जो हों, लेकिन है तो आखिर पक्षी ही । वे भला इतनी समझदारी से भला उत्तर कैसे दे सकते हैं ? लेकिन विदग्ध चित की गति विचित्र होती है । यदी कुंझें नहीं बोल रही हैं तो यह चित्त उनकी ओर से स्वयं ही जवाब दे देता है । इस मनःस्थिति को इस बात-चीत में कितनी मार्मिकता के साथ व्यक्त किया गया है ।

यदि कुंझों ने अपनी पांखो पर संदेशा लिखवाने से इनकार कर दिया और यदि उन्होंने प्रियतम के पास जाने के लिए अपनी पांखें उधार न दीं तो क्या हुआ । ढाढी तो हैं ही । मारवणी उन्हीं में से एक को बुलाकर अपना संदेश कहती है । इस संदेश में कोई लम्बी - चौडी बात नहीं, बनावट नहीं । स्त्रियों का संदेश दिल पर जितनी सीधी चोट करने वाला होता है, वैसा ही है । हर एक भाव, और हर एक वाक्य कैसे रह-रह कर उठती हुई एक-एक लहर है - इन सबका ऐसा लम्बा सिलसिला है कि कभी खत्म ही होता न दीखे ।

''ढाढी, एक सदेसडउ प्रीतम कहिया जाई ।
सा घण बलि कहलाभई, भसम ढँढोलिसि आइ ॥
ढाढी, जे प्रीतम मिलइ, यूँ कहि दाखवियाह ।
पंजर नहिं छह प्राणियउ, थाँ दिस झल रहियाह ॥''

धनिया जलकर कोयला हो गई, अब आकर उसकी भस्म ढँढोलना और पंजर में प्राण नहीं है, केवल उसकी लौ तुम्हारी और झुक कर जल रही है ।

मारवणी के मन की स्थिति का एक और चित्र है जब ढोला के आने की खबर उसे मिलती है । खबर सुना नहीं कि हृदय हर्षोद्रेक से हेमगिरि जितना विशाल हो गया । वह अनुभव करती है कि अब वह तन-पंजर में समाएगा ही नहीं ।

मारुवणी की विरह व्यथा :

मारुवणी भगताविया मारु रण निपाइ ।
दूहा संदेशाँ तणाँ दिया तियाँ सिखाइ ॥ १०९ ॥

मारवणी की विरह दशा का वर्णन और मालवणी की विरह व्यथा का वर्णन किया गया है । मारवणी ने मारु राग में दोहों में संदेश भेजा था उसका वर्णन इस दोहे में किया गया है ।

फागुण मासि वसंत रूप आपउ जइ न सुणेसि ।
चाचरिकह मिस खेलती, होळी झंपावेसि ॥ १४५ ॥
जउ तूँ साहिब, नावियउ साबण पहिली तीज ।
बीजळ-तणइ झबूकड़इ मूंध जरेसी खीज ॥ १४९ ॥
जइ तूं ढोला, नावियउ काजळियारी तीज ।
चमक मरेसी मारवी, देख खिवंताँ बीज ॥१५०॥
आवी सवरत आँमळी, त्रिया करह सिणगार ।
जिका हिया न फाटही, दूर गया भरतार ॥ ३०३ ॥

लोक धारणा है कि परदेशी पति को वसन्त ऋतु में घर लौट आना चाहिए । विरहिणी पत्नी भी ऐसी आशा संजोये रहती है । मारवणी भी कहती है कि हे प्रिय ! यदि तुम फाल्गुन मास के

वसन्त में नहीं आए तो मैं गोल गोल नृत्य (चर्चरी) करने के बहाने, जलती होली में झपट कर कूद पडूँगी । इस आत्मदाह की धमकी इन शब्दो में हैं ।

कौआ उडना भी शकुन बताता है । जो कहने पर कौआ उड जावे अथवा घर पर जाकर बोले तो अतिथि के आगमन का सूचक होता है । यह लोक धारणा गुजरात-राजस्थान और कई प्रदेशों में व्यक्त हुई है जिनकी दो पंक्तियाँ उदाहरण के तौर पर यहां दी गई है -

कउआ दिऊँ बधाइयाँ, प्रीतम मेळइ मुज्झ ॥ ७५ ॥

मारु-तणइ करंकडइ, वाइस उडावेसि ॥ ५७॥

इस तरह विरहिणी नारी का संवेदन इन दो पंक्तियों में भरा पडा दिखाई देता है ।

राजस्थानी परम्परा में ही नहीं गुजरात की वाचिक परम्परा में भी ढोला-मारु के सुख विलास का प्रसंग कुछ ऐसे ही रंग के साथ प्रवाहित होता रहा है । गुजराती लोक साहित्य का वह प्रसंग उसका एक अंग है । पूरा अवतरण यहाँ नहीं देकर यहाँ पर झवेरचन्द मेघाणी के संग्रह ग्रन्थ 'सोरठी गीत-कथाओं' से केवल तीन दोहे प्रस्तुत कर रहे हैं जो वानगी रूप पर्याप्त होंगे । अन्तिम पंक्ति तो सारा रहस्य स्पष्ट कर देती है ।

मारु सूती अटारीए, रतडो पलंग बिछाय ।
तारा तरवरियुं करे, चन्द्र रियो ललचाय ॥
नवा मोल ने धण्य नवी, नवी जवानी नेह ।
ठाकर घेर पधारिया, मोती वरस्या मेह ॥
कड्य ललके कोहां ढले, ललके लाल कबान ।
ढोला ! वड्यनी ढोलिये, मारु नानी म जाण ॥

मारवणी अपनी मनःस्थिति को पपीहा, कुंज्ज, दादुर, मोर, काग, वायु आदि को सम्बोधित कर प्रकट करती है । पंथी को सम्बोधित करते कई दोहे मिलते हैं जो वास्तव में सम्बोधन की परिपाटी को निभाते हैं क्योंकि कोई पंथी उसका संदेश ले जाने उपस्थित अथवा दृष्टिगोचर हुआ जान नहीं पडता है । मारवणी के विरह में लौकिक भाव ही प्रबल है । मारवणी अंकुरित यौवना है । मदन की ज्वाला उसमें उठती है । (दोहा सं. २५) और यह ताप (दोहा सं. २६) शरीर को निरन्तर तपाता रहता है । मारवणी अपने संदेश में अपनी इस यौवन व्याधि (संवेदना) को मूल आधार बनाती है । कुछ पंक्तियाँ यहाँ दृष्टव्य है वह देखें -

जोबन - हस्ती मद चढयउ, अंकुस लइ धरि आइ ॥११५॥
जोबन - आंबउ फळि रह्यउ, साख न खाअउ आइ ॥११७॥
जोबन - छत्र उपाडियउ, राज न बहसउ काइ ॥११८॥
जोबन - कमल विकासियउ, भमर न बइसइ आइ ॥११९॥
जोबन चांपउ मउरियउ, कळी न चुट्टइ आइ ॥१२०॥
जोबन फट्टि तलावडी, पालि न बंधउ काँइ ॥१२२॥
जोबन बंधन तोडसइ, बंधण धातउ आप ॥१२४॥
जोबन जायइ पाहुणउ, बेगइरउ घर आय ॥१३४॥

इस पक्तियों में मारवणी का विरह संवेदन भरा पडा दिखाई पडता है ।

ढोला मारू रा दूहा[२१] कल्लोल कवि

ढोला-मारू रा दूहा एक लोक-काव्य है । इसमें कछवाहा वंश के राजा नल के पुत्र ढोला और पूगल नरेश पिंगल की पुत्री मारवणी की प्रेम-कथा का वर्णन है । कथानक का सारांश इस प्रकार है - एक बार पूगल में भयंकर अकाल पडा, फलतः पूगल नरेश अपनी पुत्री मारवणी को लेकर राजा नल के यहाँ चले गये । वहीं पर राजा नल के पुत्र ढोला से मारवणी का विवाह कर दिया । इस समय ढोला और मारवणी की आयु क्रमशः तीन और देढ वर्ष की थी । बाद में जब ढोला बडा हुआ तो उसका विवाह मालवा के राजा की पुत्री मालवणी से कर दिया गया । ढोला (मारवणी को भूलकर) मालवणी के प्रेम में लिप्त हो गया । उधर मारवणी अपने प्रियतम ढोला के विरह में जलने लगी । मारवणी ने प्रेम और वियोग की व्यथा से दग्ध होकर ढाढियों के माध्यम से ढोला के पास अनेक संदेशे भेजे । संदेशा भेजने के साथ-साथ लोक कवि ने प्रेम और विरह के अनेक मार्मिक भावों को अभिव्यक्ति दी है । कवि ने मारवणी के संदेश-वर्णन द्वारा हृदय की प्रेम-मूलक कोमल संवेदनाओं को बडी गहराई के साथ व्यक्त किया है । विरह वर्णन के साथ-साथ षट्ऋतु वर्णन करके कविने प्रकृति और मानव-मनोभावों में एकात्मय स्थापित करने का प्रयास किया है । वियोग की क्षणों में प्रकृति की सरसता भी विषय बन जाती है । ऐसे में बिजलियों का बादल से मिलकर - अठखेलियाँ करता मारवणी को अच्छा नहीं लगता :

''बिजुलियाँ जालउमिल्यां ढोला हूं द सहेसि ।
जउ आसाढि आवियउ सात्रण समकि मरेसि ॥''

विरह-प्रसंग में ऋतु वर्णन के साथ ही सौंदर्य-वर्णन भी हुआ है । कविने मारवणी के यौवन और रूप का विभिन्न उपमानों के माध्यम से अत्यन्त ही सरस और मादक के रूप में वर्णन किया है । कभी कवि मारवणी के यौवन को क्षीर-सागर कहता हुआ ढोला से अपेक्षा करता है कि वह उसे मथ कर उसमें से रत्न निकाले, तो कभी यौवन को प्राहुणउ (मेहमान) मानता हुआ कहता है कि यह शीघ्र ही चला जाएगा, अतः ढोला शीध्रातिशीध्र आकर मारवणी से मिले । प्रेम में मारवणी 'ताता भात' इसलिए नहीं खाती कि हृदय में बसा हुआ उनका प्रियतम कहीं दग्ध नहीं हो जाए ? यौवन और रूप का वर्णन करते हुए कवि लिखता है -

जीवन हस्ती मय चढवउ, अंकुस लइ धरि आह ।
आँख्याँ सीप विकासिया, स्वात ज वरसउ आई ।
जोवन कमल विकासियउ, भ्रमर न बहसइ आह ।
जंधा केलिनि फलि गइ, स्वात जु वरसउ आई ।

मारवणी कहती है कि अब ढोला संदेश अथवा पत्र नहीं भेजे अपितु स्वयं आकर मिले । वह ढोला को निमंत्रित करती हुई कहती है -

'संदेशा मति मोकलउ, प्रीतम तू आवेस ।
आंगुलडी ही गलिं गयां, नयण न बाँचण देस ।''

कवि ने विरह-वर्णन के प्रसंग में ही प्रेम के अकथ्य और गूढ स्वरुप की ओर इंगित करते हुए लिखा है :-

''अकथ कहाणी प्रेम की, किंणसूं कही न जाइ,
गूंगा का सुपना भया, सुमर सुमर पछताइ ।''

यद्यपि मालवणी अनेक प्रयत्न करती है कि कहीं मारवणी के संदेश ढोला तक न पहुँच पाएँ किन्तु अन्त में मारवणी के संदेश ढोला तक पहुँच जाता है । मालवणी को अपने कृत्य की सजा मिलती है तथा ढोला-मारवणी का पुनर्मिलन हो जाता है ।

ऋतुनुं दोहासाहित्य में संवेदना (गुजराती)

मेह - ऊजळीनी बारमासी में संवेदना[२२]

मेह जेठवो छूमली नगर का राजकुमार था और ऊजळी पांचाल के डुंगर पर रहने वाली चारण कन्या थी । ऊजळी के पिता का निवास (तंबू बांधकर) वर्षाऋतु में बरडा डुंगर (पोरबंदर के पास आया हुआ बरडा डुंगर) था । उसी वक्त मेह जेठवो अतिवृष्टि से भीगा हुआ विश्वेतन अवस्था में ऊजळी के तंबू के पास पडा था उनकी शर्दी (ठंड) दूर करने के लिए और गर्मी देने के लिए सभी उपाय निष्फल होने से ऊजळी ने मेह को अपने बिस्तर पर सुलाकर गर्मी (हूंक) दी थी । बाद में दोनों के बीच प्रीति हुई थी लेकिन अंत में मेह - जेठवा को उनके माता-पिता ने चारण कन्या के साथ विवाह करने को मना किया । मेह जेठवा ने ऊजळी का जीवन धूल में मिला दिया । उनके सपने चकनाचूर हो गये । ऊजळी बिनती के स्वर में यह दोहे गाती है । यह बारहमासी दोहे में ऊजळी ने मेह जेठवा को मे (वर्षा) का रूपक दिया है । ऊजळी अपने विरही दोहे गाती हुई कहती है :

कारतक महिना मांय, सौने शियाळो सांभरे,
टाढडियुं तन मांय, ओढण दे आभपरा-धणी ।

(कार्तिक मास में सभी को शर्दी की ऋतु (शियाळो) याद आती है । शरीर पर ठंड लगती है । इसलिए हे आभपरा के स्वामी मेह जेठवा । तुं मुझे तेरा (स्नेहरूपी) ओढण दे ।)

मागशरमां मानव तणा सहुना एक ज श्वास
(ई) वातुंनो विशवास, जाण्युं करशे जेठवो !

(मागशर मास में तो सभी मानव एक श्वास हो जाते हैं । (प्रियजन अलग नहीं रह सकते ।) मैंने तो माना था कि इस बात पर विश्वास करके मेह जेठवा मेरे पास आयेगा ।)

पोष महिनानी प्रीत, जाण्युं करशे जेठवो;
राणा ! राखो रीत, बोल दई बरडा-धणी ।

(मैंने तो जाना था कि अंत में पोष मास में तो जेठवा-पुत्र प्रीति करेगा । हे बरडा डुंगर के राजा । वचन देने के बाद अब तो सज्जन बनें ।)

माह महिना मांय ढोल त्रंबाकु ध्रुशके;
लगन चोखां लै आव । वधावुं वेणुवा धणी ।

(माह महिने में विवाह की ऋतु होने के कारण ढोल-नगाडे बजते हैं । इसलिए हे वेणु डुंगर के मालिक मेह ! तुं भी शुभ तिथि (शुभ दिन) की (लग्न की आमंत्रण पत्रिका) कंकोतरी भेज तो मैं उनका स्वीकार कर लूं ।)

फागण महिने फूल, केशूडां कोळ्यां घणां;
(एनां) मोघां करजो मूल, आवीने आभपरा-धणी !

(फाल्गुन मास में केसूडां इत्यादि के कई फूल खीले हैं । लेकिन हे आभपरा के राजा । तुम आकर ये महँगे फूलों की किमत कीजिए । (अभी तो ये सब मेरे लिए निकम्मे हैं ।)

चैतरमां चत मांय कोळामण वळ कारमी
(एनी) ऊलट घणी अंग मांय, आयो आभपरा-धणी !

(चैत्र मास में बाहर की वनस्पति की तरह मेरे चित्त (हृदय) की अंदर भी नई ऊर्मिओं के अंकुर फूटते हैं । ये ऋतु का उल्लास मेरे मन में (शरीर में) उभराता है । इसलिए हे आभपरा के स्वामी । तुम आओ ।)

वैशाखे वनमांय आंबे साखुं ऊतरे,
तम व्होणी करमाय विजोगे वेणुना धणी ।
जेठ वसम्मो जाय, धर सूकी धोरी तणी,
पूंछल पोरा खाय जीवन विनानां जेठवा ।

(जेठ महिना इतना कठिन होता है कि बैल की कांध सूख जाती है । निश्चेतन और बिना जीवन के पशु आराम करते करते हल खींचते है ।)

अषाढ कोराडो उतर्यो, मैयण पतळ्यो मे,
दलने टाढक दे । जीव नांभे रे जेठवा ।

(अषाढ भी बिना बारिश पूरा हो गया । मे (वरसाद या मेह जेठवो) ने भी विश्वासघात किया । हे जेठवा ! थोडा भी बरसकर मेरे दिल (हृदय) को ठंडक दे, तो मेरा जी नाभि में टिक रहे ।)

श्रावण महिनो साबदो जेम तेम काढयो जे,
तम वण मरशु मे ! भेळां राखो भाणना !

(श्रावण मास भी बारिस बिना जैसे तैसे निकला । अब तो हम तुम्हारे बिना मर जायेंगे । हे भाण जेठवा के पुत्र ! मुझे तुम्हारी साथ रखना !)

हाथी पूछल्यो होय, (एने) केम करी उठाडीए ।
जेठवा विचारी जोय ! भादरवो जाय भाणना ।

(ये तो भादरवा महिना भी बारिस के बिना जाता है । हे जेठवा ! अन्य छोटे छोटे पशु पूछल्यां (चेतनहीन) हो तो उसे किसी भी उपाय से उठा सकते हैं, लेकिन हाथी जैसे बडे पशु जब अनावृष्टि से चेतनहीन होकर बैठ जाते हैं तो उसे कैसे उठा सकते हैं ? कहने का मतलब है कि हाथी जैसी लाचार गति मेरे प्रेम की हो गई है ।)

आसो महिनानी अमे राणा ! लालच राखीएँ,
त्रोडियुं सर्युं तमे, जीव्युं नो जाय जेठवा ।

(हे मेह । हमने आसो मास में भी तेरी आशा रखी है । लेकिन तुमने यह स्नेह की सरवाणी तोड डाली है । अब मैं जी नहीं सकूंगी ।)

ओढा-होथलना दोहा में संवेदना[२३] (गुजराती)

ओढा-होथल के दोहे में ओढा और होथल के विरह व्यथा का वर्णन व्यक्त किया गया है। वो देखे :

उत्तर शेड्युं काढिढयुं, डुंगर डम्मरिया,
हैडो तलके मच्छ जीं, (मुजां) सजण संभरिया,

(उत्तर दिशा में मेघ (वर्षा) ने अपनी कालिमा छायी है । डुंगर पर काले डिबांग बादलों को देखकर ओढा का हृदय जल के बाहर की मीन (मछली) की तरह छटपटाने लगा । क्योंकि उनको अपने स्वजनों (वतन के लोगों) की याद सता रही थी ।)

मत लव्य, मत लव्य मोरला, लवतो आघो जा !
एक तो ओढो अणोहरो, मथ्ये तोंजी धा ।

(होथल कहती है : हे मोरला ! तुं बक बक मत कर ! तुं दूर जाकर टहुका कर ! क्योंकि एक तो मेरा स्वामी ओढा उदास है ही, उसमें तेरी (वाणी) घा से ये ज्यादा शोकातुर हो जाता है । क्योंकि उनको स्वजन याद आ रहे हैं ।)

मारीश तोंके मोर ! सींगणजां चडावे करे,
अयें चितजा चोर ! आढेके उदासी कियो ।

(हे मोर ! मैं तुझे कामठी पर तीर चडा के मारुंगी । ओ मानवी के चितडा के चोर ! तुने मेरे ओढा को आज उदास कर दिया ।)

असीं गिरिवरजा मोरला, कांकर पेट भरां,
रत आव्ये न बोलां, (त) हैडो फाट मरां !

(मोर कहता है : हे होथल ! मैं तो डुंगर में रहने वाला गरीब मोर हूं । मैं तो पृथ्वी पट पर से कंकर खा कर पेट भरता हूं । लेकिन जब मेरी पसंद की ऋतु आये तब हृदय खोलकर न बोलुं तो मेरा हृदय फट जाय और में मर जाऊँ !)

करायलके न मारी जेंजां रत्तां नेण,
तड विठा टौका करे, नित संभारे सेण ।

(ओढा कहता है : हे होथल ! जिसके नयन (आँखे) लाल है । जो पर्वत की (भेखडें) टोच पर बैठे बैठे टहुका करता है, और जो प्रतिदिन अपनी प्रिया (स्वजन) को याद करता है, ऐसे मोरले को नहीं मारा जा सकता ।)

रेलमछेला डुंगरा, चावो लगो चकोर;
विसर्या संभारी डिपे, से न मारीजें मोर !

(डुंगर पानी से तरबतर हो गये हैं । चकोर पक्षी को चाह याद । ऐसी ऋतु में अपने को भूल गये (विस्मृत) स्वजनों, स्वदेश बांधवों का स्मरण (याद) कराने वाला मोर को नहीं मारा जा सकता ।)

छीपर भींजाणी, छक हुवो; त्रंबक हुई व्यां नेण,
अमसे उत्तर गोरियां पडी तोजें चित्त सेण ।

(मेरा दर्शन से वतन की याद आने से ओढा इतना रो पडा कि स्वयं जहाँ बैठा वह शिला आँसुओं से भीग गई । नयन (आँखे) लाल हो गई । तब होथल ने पूछा : ''हे प्यारे स्वजन (सेण) क्या तेरे हृदय में मेरे से भी ज्यादा कोई सुंदर स्त्री याद आ रही है ?)

प्रास्ताविक दोहा में संवेदना (गुजराती)

अन्य कई दोहे

छोटे गाँव (नेसडा) की वियोगी चारण स्त्री का कैसा वियोग-संवेदना है वो हम यहाँ दिये गये दोहे में देखते हैं ।

खड खूट्यां गोरल बसूक्यां, वालां गियां वदेश,
अवसर चूक्या मेहुला ! वरस्ये कांऊ करेश ?

(देरी से आई हुई बारिस को छोटे गाँव (नेसडा) की वियोगी चारण स्त्री कहती है : हे तक चूक जाने वाला मेहुला । अब बिना अर्थ क्यों बरस रहा है ? घास चारा कम हो गया, मेरी गायें वसूक गई (गायों ने दूध देना बंद कर दिया) और मेरा प्रियजन (मेरा पति) पशुओं को लेकर कब का परदेश चला गया ।)

शियाळ टाढयुं सोपटे, हाले हेमाळा,
वसता घर वसियो नहि के दी कुचाळा ।

(शर्दी की ऋतु में ठंड लगती है, ठंडा, ठंडा पवन लगता है; फिर भी हे कुचाळा ! हे स्वामी ! तुं भी शर्दी की ऋतु में घर नहीं आया !)

ऊनाळे अग्नि झरे, करवा, पंथ काळा,
वसता घर वसियो नहि, के दी कुचाळा ।

(गर्मियों के दिन में अग्नि बरसती है, प्रवास करने का कठिन हो गया है । ऐसी मौसम में हे स्वामी । तुं घर पर नहीं ठहरा !)

चोमासे ठोंडी चुवे पाणी परनाळां;
वसता घर वसीओ नहि, के दी कुचाळा ।

(बारिस की ऋतु में पाघडी टपकती है । पानी बरस रहा है फिर भी हे स्वामी ! तुं घर पर नहीं ठहरा !)

रात अंधारी मेह झड, शेरी सांकडियां,
हाथ वछूटी सायबा । खवजो वीजळियां ।

(रात्रि गहरी अंधकारमय है, धोधमार मेह बरस रहा है, और ये छोटी गली है ! हे पति ! आप से मैं अलग हो गई हूं - खो गई हूं । तो मुझे बीजली के चमकार से ढूंढ निकालना ।)

बीजळी ! तुं वेरण थई, मेहुला ! तुं य न लाज,
मारो ठाकर घर नहि, मधरो मधरो गाज ।

(हे बीजली ! तुं मेरी वेरण हो गई है । मेहुला ! तुझे भी शर्म नहीं हैं ! तुं आज धीरे धीरे गाज ! क्योंकि मेरा पति घर पर नहीं हैं । तेरी गर्जना से मेरी वेदना बढ जाती है ।)

मोर मारे मदई थियो, वहरां काढे वेण,
जेनी गहके गरवो गाजे; सूतां जगाड सेण;
सूतां जगाडे सेण ते मोरलो ऊडी गियो;
वालां साजणनो संदेशो अधवच रियो;
पांखुं पीळी पोपटनी ने कोयल राते नेण;
मोर मारे मदई थियो ने वहरां काढे वेण,

(मोर मेरा दुश्मन बना है, क्योंकि यह वर्षाऋतु में ये टहुका कर रहा है । उनके टहुकार से गिरनार (पर्वत) हिल रहा है और मेरे हृदय में से विस्मृत हुए स्वजन ये टहुकार से जागृत कर रहा है । यह विस्मृत स्वजनों की स्मृति जगाकर मोरला तो उड गया, लेकिन मेरे प्रिय स्वजन (प्रियतम) को संदेश भेजना था वो तो आध रास्ते में ही रह गया ।)

अषाढ वरसे एलीए, गाजवीज घमघोर,
तेजी बांध्या तरुवरे मधुरा बोले मोर,
मधुरा बोले मोर ते मीठा,
धणमूलां साजण सपनामां दीठा,
के' तमाची सूमरो, रीसाणी ढेल ने मनावे मोर
आषाढ वरसे एलीए गाजवीज घमघोर,

(आषाढ मास अनराधार बरस रहा है । गाजवीज हो रही है । घनघोर बादल छाया हुआ है । मोर धीरे धीरे बोल रहा है । ऐसी रात्रि में मैंने प्रियजन को स्वप्न में देखा । तमाची सूमरो नायक कवि कहता है कि, मोरलो अपनी (रिसाई हुई) नाराज ढेलडी को मनाता है । आषाढ अनराधार बरस रहा है ।)

तुलना

गुजरात और राजस्थान प्रदेश की कई रीत -रसमें एक जैसी होती है । यह भी हम देखते हैं :

रीति-रिवाजों में साम्यता :

विनायक यानीकि गणेश स्थापना के बाद सांकडी गणेश होता है । उसमें कांकण-दोरा बनाया जाता है । डोरे लाल रेशमी वस्त्र या लच्छा से तैयार किया जाता है । उसमें एक कोडी, लोखंड की वींटी, लाख की वींटी और लाल कपडे में नमक और राई बांधी जाती है । उसी तरह कांकण -डोरा (कंगन) तैयार किये जाते हैं । वर के हाथ और पैर में ये कंगन बांधे जाते हैं, और कन्या के हाथ में ही बांधे जाते हैं । ऐसा बांधने से किसी की नजर नहीं लगती । वर और कन्या के शरीर पर हल्दी लगाने से आकर्षक लगते हैं । वर और कन्या को ये मांगलिक अवसर पर कोई विघ्न न आये और किसी की कुदृष्टि न पडे या कोई अनिष्ट न हो जाय इसलिए ये कंगन वर-कन्या की सलामती -सुरक्षा के लिए बाँधे जाते हैं । गुजरात में मींढळ बाँधा जाता है ।

जिस दिन से वर-कन्या को कंगन बाँधे जाय उस दिन से खट्टा और तेज खाना बंद हो जाता है । उसी दिन से जागरण गीत शुरू हो जाते हैं, जो विवाह तक चलता है । गणपति की पूजा के बाद जागरण गीत बंद किये जाते हैं ।

गुजरात और राजस्थान के विवाह गीतों में भी साम्यता दिखाई देती है । वो हम इस गीत के माध्यम से देखें :

वर और कन्या को हररोज हल्दी का लेप लगाकर स्नान कराया जाता है । ये मांगलिक स्नान है । वर को बारात नीकले तब तक और कन्या को विवाह हो जाय तब तक पीठी यानीकि हल्दी लगायी जाती है । हल्दी का प्रयोग शरीर का वर्ण और सौंदर्य को निखारने के लिए होता है । ये काम सुहागिन महिलाएँ करती हैं । बाद में वर -कन्या को पाट (बाजोठ) पर बिठाये जाते हैं । बाद में मिट्टी के बरतन में तेल, हलदी, जव का आटा मिलाकर हलदी मिश्रित तेल को वर-कन्या की पाट (बाजोठ) के पास रख दिया जाता है । बाद में सुहागिन महिलाएँ ये तेल वर-कन्या के मस्तक, खभा, घूंटन और पैर पर लगाया जाता है । इस वक्त स्त्रियाँ पीठी गीत हलदी-गीत गाती है ।

पीठी गीत में साम्यता

सुंदा गुढा रो सोगटडो राव चम्पेली रो तेल
हो हरियाले बनडा करलो नी सोगटडो
थाणा माताबाई संजोयो सोगटडो
जाण्या थारा काकासा रा लाड हो
नादानी बनडा करलो नी सोगटडो
थाणा भाभीसा संजोयो सोगटडो
जाण्या थारा दादासा रा हेत हो.... नादानी बनडा.....
थाणा बेन्या बाई संजोयो सोगटडो
जाण्या थाणा जीजोसा रा लाड हो.... नादानी बनडा
थाणा मामीसा संजोयो सोगटडो

जाण्या थाणा मामा सारा लाड हो.... नादानी बनडा
थाणा नानी मा संजोयो सोगटडो
जाण्या जाणा नानासा रा लाड हो.... नादानी बनडा[२४]

प्रस्तुत गीत में वर को आग्रह किया जाता है कि अपने प्रिय संबंधीओं ने अपने लिए (उबटन) (लेप) बनाया हैं, जिसे लगाने से आपकी त्वचा निखर उठेगी । इस वक्त महिलाएँ उबटन (पीठी) गीत गाती है । देखिए :

उबटन (पीठी)
गेहूं अे चणा को उबटणो
आओ म्हारी दाद्या मायां देखल्यो
आओ म्हारी काकी भाभी देखल्यो
या देख्यां सुख होय
आछ्यो लाडो बेठ्यो उबटणो[२५]

गेहूँ और चने के मिश्रण से उबटन तैयार किया जाता है । वर की दादी, माँ और चाची सभी वर को उबटन लगाते हैं तब सब को देखने को बुलाते हैं क्योंकि ऐसा करने से उनको सुख की प्राप्ति होती है । उसी वक्त स्त्रियाँ हलदी गीत गाती है ।

हल्दी
म्हारी हल्दी रो रंग सुरंग निपजै मालवै
लगा अे सायजादी उबटणो थारा उबटणा में बास घणी
यो तो तेल चंपेल चम्पा की काळी, थारी माता संजोयो उबटणो
थारा पितासा रो हेत घणो थारी बैणा संजोयो उबटणो
थारा जीजोसा रो हेत घणो थारी मामीसा संजोयो उबटणो
थारा मामासा रो हेत घणो थारी मामीसा संजोयो उबटणो
थारा दादोसा रो हेत घणो थारी भुजाईसा संजोयो उबटणो
खळहळ खळहळ नदिया जोवै सायजादी लाडी मलमल न्हावसी
केवर उतरेला समंदी री पोल्यां के पचरंगी पल्या जी
राईवर उतरेला बागा में ये ब्याई समंधीजी री पोल्या जी[२६]

प्रस्तुत गीत में कहा गया है कि हमारी हलदी मालवा प्रदेश से लायी गई है । उसका रंग काफी तेज है । उसमें से बना हुआ उबटन में चंपा का सुवासित तेल डाला है । इसीलिए उबटन महक उठा है । ये उबटन कन्या के सभी घरवालों ने स्नेहपूर्वक तैयार किया गया है । उसको लगाने से कन्या के तन (शरीर) और मन महक उठेगा । गीत में पिताजी, जीजाजी, मामाजी, दादाजी सब को कन्या वहाली लगती है ।

लग्न तय हो जाने की साबिती के रूप में सगाई-चांदलो किया जाता है तब गीत गाये जाते हैं :

मग वीणता मोती रे जडिया,
मोतीमांना हीरला रे जडिया,
हीरला सरीखा मारा चमनभाई रे,
चमनभाई तो मारा मेडीअे बेठा, मग वीणता .....
अडद वीणता मोती रे जडिया,
पेरो पेला मणीदा वेवाई रे,
मणीदा वेवाई तो छापरे रे बेठां,
चमनभाई तो ईमनं तांणी रे लीधा, मग वीणता.....
आवो वेवाईओ सगा रे थईअे.
सगा रे थईअे ने सगपण करीअे
दळ खाजांनी जानो जमाडीअे
पंचमा पूछाता रे थईअे, मग वीणता.....
अमारा चमनभाईने सौ लोक जोणे
मणीदा वेवाईने कोई जन्म्या न जोंणी, मग वीणा.....(२७)

गीत में एक समधि मोती जैसा है दूसरा मुहर जैसा । मुंग बीनते (खोजते) वक्त मोती मिले, उडद बीनते (खोजते) वक्त मुहर मिले । यह गीत कृषि काम का है । बारात को खाजां (दलखाजो) खिलाने की बात है ।

सुहाग - कामण
लाडी की दादी माँ दाळ दळो ने उडदा की
थै उडद मूँग सा दळ ल्यो
सुहाग कामण करल्यो,
सुहाग लाग्या अल्ल ये कामण लाग्या पल्ल(२८)

कन्या की चाची, मामी, बहनें, फूफी, भाभज, नानी इत्यादि के नाम लेकर गीत आगे बढाया जाता है । प्रस्तुत गीत में कामण यानीकि सम्मोहन (वश करना) का गीत है । दुल्हन के परिवारजनों और सगे-संबंधी स्त्रियाँ प्रार्थना करती है कि दुल्हन उनके होनेवाले पति (दुल्हा) को सम्मोहित (वश) करने में सफलता प्राप्त करें ।

कुमकुम पत्रिका गीत :

गुजरात और राजस्थान में विवाह के प्रसंग पर कंकोतरी लिखने की रसम भी एक जैसी है जैसे कि :

सबसे पहले कंकोतरी पर कंकु के छींटे-साथिया करके परिवार के इष्ट देव को लिखी जाती है बाद में कन्या के मामा और दूसरे संबंधीओं को कंकोतरी लिखी जाती है । वडी-पापड बनाते वक्त स्त्रियाँ के मुख से विवाहगीतों का प्रवाह चलता रहता है । जैसे कि :

सोना खडिया मंगावो, रूपा लेखन मंगावो,
बेनना मांडवळा हेठ कंकुतरीओ लखावो.
बेनना दादाने लखजो, बेननी माताने लखजो
बेननां लोभनंता फैबाने, घणुं घणुं लखजो.
बेनना दादा ते आव्या, बेननी माता रे आव्या,
बेननां लोभनंता फैबा तो हजुअे न आव्या,
सोना खडिया मंगावो.....
बेनना काकाने लखजो, बेननी काकीने लखजो,
बेननां लोभनंता फैबाने, घणुं घणुं लखजो.
बेनना काका ते आव्या, बेनना काकी ते आव्या,
बेननां लोभनंता फैबा तो हजुअे न आव्या,
सोना खडिया मंगावो.....(२९)

'सोना खडिया मंगावो.....' यह पंक्ति लग्न की मंगलता और भव्यता को प्रदर्शित करती है । यह पंक्ति बार-बार पुनरावर्तित होने से मांगलिकता के भावों को दोहराकर वातावरण को सजीव एवं आह्लादक बनाती है ।

कंकु छांटी, कंकोतरी मोकलो,
मांय लखजो माडी जाया वीर रे;
में महाजग मांडीओ.....
ईमना दादा आया ने दादी आवशे
मारा ना आया माडी जाया वीर रे
में महाजग मांडीओ.....
ईमना काका आयाने काकी आवशे
मारा ना आया माडी जाया वीर रे
में महाजग मांडीओ.....
ईमना मामा आयाने मामी आवशे
मारा ना आया माडी जाया वीर रे
में महाजग मांडीओ.....(३०)

कन्या के मुख में लग्न समारंभ के लिए 'महाजग' शब्द रखा गया है । यह 'महाजग' में 'माडी जाया' (भाई) की गैर हाजिरी सब को खटकती है । 'वीरा' को यह प्रसंग पर उपस्थित रहने के लिए 'कंकु छांटी कंकोतरी भेजी है', फिर भी वो (वीरा-भाई) नहीं आया इससे बहन राह देख रही है ।

धन्य धन्य दिन रळियामणो, धन्य धन्य अवसर आज रे !
लग्न लाडीली मोकले रे, वे'ला आवो महाराज रे.....

वालाजी विलंब न कीजिये रे, दीजे दरशन दान रे;
भूधर तमने भेटतां रे, वळे तमारा वान रे.....
सर्वे अंगे स्वामी तमने, स्परशी पावन करुं रे;
पियुजी वे'लेरा पधारज्यो, आवो अंकज भरुं रे.....
अवगुण मारा अनेक छे, रखे ते सामुं जोता रे;
अधम ओद्धारण बिरुद छे, रखे तमे ते खोता रे.....
थोडे लख्ये घणुं जाणज्यो रे, दया करज्यो ओ दयाळु रे;
जेम जाणो तेम जाणज्यो रे, बांय ग्रह्यानी लाज रे.....
छोडतां छेक छूटो नहि रे, ते केम छांडो महाराज रे;
निष्कुळानंदना नाथजी रे, बांय ग्रह्यानी लाज रे.....(३१)

मंडप रोपण के गीत :

विवाह के पहले एक या तीन दिन पहले मंडप रोपण या माणेकस्तंभ स्थापना के वक्त विवाहगीत गाये जाते हैं । सबसे पहले गणेशजी की स्थापना होती है और उनके गीत गाये जाते हैं ।

गणेश दुंदाळा ने फांदे फांदाळा
गणेशने पाटे बेसाडो रे मारा गणेश दुंदाळा

गणेशजी दुंदाळा और फांदे फांदाळा है । उनको पाट पर स्थापित किये जाते हैं । भारतवर्ष में हिन्दुओं में कोई भी शुभ कार्य में गणेशजी की सब से पहले पूजा की जाती है ।

गणपत उपर चोपडेला सिंदुर आजे,
गणपति पूजा कोणे करी ?
आव्या हता विमलभाईना कुंवर आजे
गणपति पूजा अेणे करी..(३२)

'गणेश दुंदाळा ने फांदे फांदाळा
कंठे रोपी वरमाळा रे मारा गणेश दुंदाळा;
तेत्रीस करोड देवता सीमाडे आव्या,
हरख्या गोवाळीयाना मन रे मारा गणेश दुंदाळा (३३)

इसी पर दादा, चाचा, मामा, भाई सब के नाम लेकर गीत आगे चलता रहता है ।

विवाह प्रसंग पर मंडप बाँधने से पहले पंडित शास्त्रोक्त पूजन कराता है बाद में मंडपमुहूर्त और माणेकस्तंभ का स्थापन किया जाता है । मंडप के एक कोने पर खड्डा बनाकर उसमें कंकु, सुपारी, दूध, दहीं, तांबा का पैसा, शिमला वृक्ष का एक टुकडा आदि रखा जाता है । शास्त्र के अनुसार शिमला का वृक्ष पवित्र और सकुनवाला होता है । कहा जाता है कि शिमला के वृक्ष को काटने से बार बार कुंपित होता है । इसलिए उनका अंत नहीं होता । उसी कारण से ही मानव जीवन के

अनंत विकास के प्रतीक रूप शिमला के वृक्ष का पूजन होता है । विवाह मंडप के वक्त इकठ्ठी हुई महिलाएँ गीत गाती है । मंडप में आई हुई महिलाओं और सभी लोगों को पतासां, गुड बाँटा जाता है ।

मांडव लीली आडी रे पीळी थांभली
मांडव उपर चंदरवा बेचार रे
रूडो सोहे मांडवो
मांडव बेसे राणाने बेसे राजिया
मांडव बेसे दादाजी देहोत रे
मोभीजीनो मांडवो
मांडव म्हाले राणाने बेसे राजिया
मांडव म्हाले काकाजी देहोत रे
भत्रीजानो मांडवो
मांडव हरखे राणाने हरखे राजिया
मांडव हरखे मामाजी देहोत रे
भाणेजुंनो मांडवो
मांडव सोये राणाने सोये राजिया
मांडव सोये वेवायुं देहोत रे
रूडो सोये मांडवो.(३४)

अपने आँगन का मंडप समधि के मंडप से विशिष्ट है ऐसे भी गीत गाये जाते हैं ।

ऊंचो ऊंचो दादाजीनो मांडवो
अेथी ऊंचेरा परहर बेचार रे
दादाजीनो मांडवो
मांडव बेसे राणा ने बेसे राजिया
मांडव बेसे मोभीडा बेचार रे
दादाजीनो मांडवो
मांडव लीली आडी रे राती थांभली
मांडव ऊंची चडी रे नागरवेल रे
दादाजीनो मांडवो
नीचो नीचो रे वेवायुंनो मांडवो
मांडव नीचेरा परहर बेचार रे
वेवायुंनो मांडवो
मांडव बेसे गोलाने बेसे गांडिया रे
मांडव बेसे काळुभाई कजात रे
वेवायुंनो मांडवो

मांडव फाटी आडीने तूटी थांभली
मांडव उपर चडी रे कडवी वेल्य रे,
वेवायुंनो मांडवो.(३५)

इन गीतों में वधू अपने सुहाग की कामना करती है । प्रस्तुत गीत में वधू गणेशजी को प्रार्थना कर रही है, मेरा सुहाग हमेशा अमर रहे ।

बनड़ी बैठी गजानन पास, गणपत पूरी करजो आस
म्हारा मनडारे में लागी एक आसजी म्हारो
अमर राखीजो सवागजी ।
मैं तो माँगू वर एकजी, म्हारो अमर राखीजी सवागजी ॥
म्हारी चुनरी लाल म लाल, उसपे तारों की बहार
म्हारा चुनरी रो रंग कदियन जायजी ॥ म्हारो अमर राखीजो सुवागजी
म्हारी मेंदी लालम लाल, मैंने डोरे काढे सात
म्हारा मेंदी रो रंग कदियन जायजी ॥ म्हारो अमर राखीजो सुहागजी
हाथो में कंगना की खनकार, पाँवों में पायल की झंकार
म्हारा मांगरो सिंदूर भळकदार जी ॥ म्हारो अमर राखीजो सुवागजी
जैसे राम सीता की जोडी, वैसे बना बनीकी जोड़ी ।
आ जोडी थे इबछळ राखजोजी । म्हारो अमर राखीजो सुवागजी

बनडी (वधू) गणेशजी के पास बैठकर उनसे प्रार्थना करती है, मेरा सुहाग अमर

रहे । मेरी चूनर लाल है उस पर तारों की बहार है । मेरे इस चूंदड़ का रंग कभी फिका ना पडे । मेरी मेहंदी रची हुई है, मेरो हाथों से मेहंदी का रंग कभी उतरे नहीं । मेरे हाथों में सदा कंगना की खनकार रहे । और पैरों में सदा पायल को झनकार रहे । मेरे माँग का सिंदूर हमेशा चमकता रहे । जिस तरह राम और सीता की जोड़ी अमर है, उसी तरह हमारी जोडी अखंड रहे ।

वधू वर के सभी बुजुर्गों से - लोगों से वह सुहाग का आशीर्वाद लेती है । गीत इस प्रकार है ।

बनड़ी सवाग मांगन चाली अपना बाबाजी रे दरबार
माता देवो नी सवाग, भोळी भाळीनं सवाग
पियर पूरीनं सवाग, अखंड कंवारीन सवाग
ऐ माँ मैं क्या जाणूं कामण ऐसा गोड लाग्या
कामन लाग्या ओ राईभर, कामण लाग्या ओ सूरजमल
इंदली बिंदली से गुळ लाग्या, अणवट बिछिया से गुड लाग्या
मेंदी मोळी से गुड लाग्या ।
ऐ माँ मैं क्या जाणू कामण ऐसा गोड लाग्या ।

वधू सुहाग माँगने अपने पिता और काका के दरबार में जाती है । माँ, काकी, भुआ, मासी, भाभी सभी से वो सुहाग की माँग करती है और कहती है इस तुम्हारी भोली बच्ची को सुहाग का

आशीर्वाद दो । मैं नहीं जानती थी सुहाग का कामण इतना मिठा होता है । बिंदी, काजल, टिकी, चुडा, चूंदड, मेहंदी, बिछीया सभी मुझे गुड के समान मिठे लगते हैं । यहाँ नारी के सौंदर्य के प्रति आकर्षण के साथ साथ सुहाग की मंगल कामना के भावों का उद्रेक होता है ।

सप्तपदी :

सात पग साथ चलने से मैत्री होती है ऐसा शास्त्र वचन है ।

प्राहुः सप्तपद मैत्र बुधा : तत्वार्थ दर्शिन

सात कदम साथ उठाने के कारण वर वधू को समझाता है ।

१. अन्न के लिए एक कदम उठाने वाली हो ।

२. बल के लिए दूसरा कदम उठाने वाली हो ।

३. सम्पत्ति के पोषण के लिए तीसरा कदम उठानेवाली हो ।

४. आनंदमय होने के लिए चौथा कदम उठाने वाली हो ।

५. सन्तान के लिए पाँचवा कदम उठाने वाली हो ।

६. ऋतुओं नियम पालन के लिए छठा कदम उठाने वाली हो ।

७. तू मेरी मित्र बनने के लिए सातवाँ कदम उठाने वाली हो ।

विवाह संस्कार में इसीलिए सप्तपदी का विशेष महत्त्व है । कुछ पंडित फेरे (अग्नि-यज्ञ) की परिक्रमा में ही सप्तपदी मानते हैं । कुछ पंडित फेरे और सप्तपदी अलग कराते हैं । फेरे के समय राजस्थानी महिलाएँ गीत गाती है । वह बडा मार्मिक और करुणामयी गीत है ।

अबलक छबलक पेलोजी फेरे
पेल तो फेर ए बनडी दादाजीरी पोती
दूज तो फेर ए बनडी बाबाजीरी बेटी
अबलक छबलक इगण्योजी फेरो
इंगण तो फेर ए बनडी मांमारी भाणेजी
चौथ व तो फेर ए बनडी बिराजीरी बेनड
पांचवतो फेर ए बनडी काकारी भतीजी
छठो तो फेर ए बनडी फुफारी भतीजी
जिजाजी री साळी मासाजीरी भाणेजी
सातवतो फेर ए बनडी हुई रे पराई ।

दादा, बाबा, मामा, भाई, माँसा, फूफा इन सबकी लाडली तूं आज पराई हो गयी । इस समय लड़की को तीन फेरे में आगे करते हैं । और चौथे फेरे में लड़का लड़की के आगे रहता है । गीत गाते समय सभी की आँखे सजल हो जाती हैं ।

सात वचन :

पहेलुं पहेलुं मंगळियुं वरताय रे
पहेले मंगळ गायोना दान देवाय रे,
अग्निदेवनी साक्षीअे फेरा फराय रे,
बन्ने पक्षे आनंद अति ऊभराय रे.

बीजुं बीजुं मंगळियुं वरताय रे,
बीजे मंगळ रुपाना दान देवाय रे,
मांडवडामां मंगळ गीतो गवाय रे,
सौने हैये अति हरख न माय रे,

त्रीजुं त्रीजुं मंगळियुं वरताय रे,
त्रीजे मंगळ सोनाना दान देवाय रे,
अग्निदेवनी साक्षीअे फेरा फराय रे,
बन्ने पक्षे आनंद अति ऊभराय रे.

चोथुं चोथुं मंगळियुं वरताय रे,
चोथे मंगळ कन्याना दान देवाय रे,
फूलडां केरी फोरम बधे प्रसराय रे,
शुभ दिन आजे शुकननो कहेवाय रे.

राजस्थानी समाज में वधू वर से सात वचन माँगती है - उनके पश्चात् वर वधू को एक वचन माँगता है और दोनों की संमति होने के बाद विवाह संस्कार पूर्ण होता है - वधू वर से कहती है

१. तीर्थ यात्रा, यज्ञ, अध्यापन आदि धार्मिक विधि में मुझे साथ बैठना होगा ।

२. जैसे आप अपने माता पिता और घरके बड़े लोगों का आदर करते हो उसी प्रकार मेरे माता पिता और बड़ों का आपको आदर करना पड़ेगा ।

३. आज से कुटुंब रक्षा और पालन पोषण की जिम्मेदारी और देश की संस्कृति और गौरव की रक्षा का वचन दो ।

४. मंदिर, बगीचा, कुआँ आदि परोपकार के लिए जो आप पैसे खर्च करेंगे उसमें मेरी सलाह लेने का वचन दो ।

५. घर की आमदनी और खर्च मेरी सलाह से करना घर के सभी कार्य में सहभाग से ही होंगे वचन दो ।

६. आपको किसी कारण (पढाई, व्यापार आदि) शहर से बाहर जाना है तो मुझे बताकर जाना होगा । मेरा अपमान हो ऐसा कोई कार्य आप नहीं करोंगे ।

७. पराई स्त्री को माँ या बहन मानना । और जुआ, दारु से दूर रहकर मेरे साथ हरदम प्रेम से बात करने का वचन दो ।

वर वधू से वचन माँगता है । तुम भी मेरे माता-पिता परिवार का आदर और सेवा तथा गृह कार्य और पतिव्रत निभाने का वचन दो ।

गणगोर गीत में साम्यता :

गौरी (पार्वती) को बेटी के स्वरुप मानकर गौर पर शादी के गीत भी (झाला-वारणा) गाते हैं ।

गण गौर पूजन के समय गौर माता से प्रार्थना करते हैं -

गौर ए गणगौर माता खोल किवाडी
बायर उभी थाने पूजनवाळी
पूजो ए पूजाऱ्या बाया, कांई कांई मांगो
मांगा म्हे तो अनधन लाछर लिछमी
कान्ह कूँवर सो बीरो मांगा राई सी भोजाई
जळभर जामी बाबल मांगा, राता देई मांयड
बडो दुमालिक काको मांगा चुडला वाली काकी
फूस उडावण फूफो मांगा कूडो धोवण भूवा
काजल्यो बहनोई मांगा सदा सुहागन बहना
इतरो तो देई माता गौरज ए, इतरो सो परिवार ए
देई तो पियर सासरौ ए सात भायांरी जोड ए
परण्यां तो देई माता पातळा ए सारं मे सिरदार ए

ऐ गौर माता तुम अपना द्वार खोलो । बाहर तुम्हे पूजनेवाली खड़ी है । गौर माता उन्हें वर मांगने कहती हैं । तो यह राजस्थानी ललना अपने पूरे परिवार का सुख मांगती है । राजस्थान में परिवारिक संघटन की मजबूती के पीछे यही संस्कार महत्त्वपूर्ण है । आज भी राजस्थानी परिवार जहाँ जाते हैं वे एकत्रित रहते हैं । यहाँ इस गीत में केवल पिहर के ही लोगों का सुख मांगा नहीं तो ससुराल में भी सात भाईयों की जोड हो ऐसी कामना वो गौर माता से पहले करती है और बाद में परण्या (पति) सब में सिरदार हो ऐसी कामना करती है ।

गोर्य पूजे छे गोपी रे (गुजराती)

गोर्य गोर्य माडी, उघाडो कमाडी
तमारी पूजारी आवी रे,
गोर्य पूजे छे, गोपी रे,
ई'रे पूजारी शुं शुं रे मागे ?
दहीं मागे, दूध मागे, पूतरने परिवार,
मागे अखंड हेवातण रे,
गोर्य पूजे छे, गोपी रे,
वेळुडीनां ढगलां करीने,
पूजे छे प्रेम धरीने रे,
गोर्य पूजे छे, गोपी रे,
कंकु केसर ने अबील गलाली,
घीना दीवा लैने आवी रे,

गोर्य पूजे छे, गोपी रे
एकुं एकुं गोपी ने एकुं एकुं कान,
रास रमे भगवान रे,
गोर्य पूजे छे, गोपी रे,

प्रेमानंदे लोक साहित्य में से लिया हुआ (गुजराती लोकगीत)

'कंकावटी' (भाग-१) ना 'मोळाकत' ना व्रतसाहित्यमां गोरमानी स्तुति छे :

गोर मा गोर मा रे, ससरा देजो सवादिया
गोर मा गोर मा रे, सासु देजो भूखाळवां
गोर मा गोर मा रे, कंथ देजो कह्यागरो

वगेरेनी साथे घणुं खरुं मळतुं आवतुं पद प्रेमानंदना 'ओखाहरण'मांथी प्राप्य थाय छे । गौरीपूजन करतां ओखा पार्वतीजीने प्रार्थना करे छे :

गोर मा ! मागुं रे हुं तो कंथजीनां राज, कंथजीनां राज;
चांदलो, चूडो, अविचल घाटडी
गोर मा ! मागुं रे हुं तो ससरानां राज, ससरानां राज;
सासु ते मागुं भुखावडी.
गोर मा ! मागुं रे हुं तो दादानां राज, दादानां राज;
माडी रे, सदा सोहामणी,
गोर मा ! मागुं रे हुं तो जेठनां राज, जेठनां राज;
जेठाणी ते मीठा बोलणी,
गोर मा ! मागुं रे हुं तो वीराजीनां राज, वीराजीनां राज;
भाभी ते हाल हुलावती,
गोर मा ! मागुं रे हुं तो पुत्रपरिवार, पुत्रपरिवार;
वहुवर पाये रे लागती,
गोर मा ! अेटली पूरो मनडानी आश, मनडानी आश;
झाझुं तो कंईअे नथी मागती

(प्रेमानंदकृत 'ओखाहरण' सचित्र प्रत, कडवुं २६.)

गुजराती लोकगीत

जमी परवारी, पथारीअेथी ऊठी सांजे कन्याओ कान उघाडवा जाय, जईने मागे :

गोर्य गोर्य माडी !
उघाडो कमाडी !
हुं आवुं छुं पूजणहारी,
पूजणहारी शुं मागे ?
ढींगलियाळी घैडी मागे
पाघडियाळो पूतर मागे

देरियां जेठियांनां जोडलां मागे
दूझणियुं झोटडियुं मागे.....(१)

राजस्थानी गणगोर (राजस्थानी लोकगीत)

गुजराती लोकगीत साथे मळतुं आवतुं राजस्थानी लोकगीत :

गवर गिणगोर माता, खोल किंवाडी
बहार ऊभी थारी पूजणवाळी
पूजो अे पूजायां जाया, आसण कासण मांगां
जळहर जामी बाबो मांगां, राता देई माय
कान्हकंवर-सो वीरो मांगा, राई-सी भोजाई
सांवळियो बदनोई मांगां, सोहरा बहन मांगां
हांडा धोलण फूको मांगां, झाडू देवण भूवा
('राजस्थान के लोकगीत' प्रथम भागः पूर्वार्ध पृ-४३)

अेक ज तहेवार, अेक ज व्रत, समान भाव अने सरखा शब्दो, राजस्थानी लोकसाहित्यना भाषाभावनां नीर अेकमेकमां वहेतां हतां. पाणी अेक ज हतां, आरा ज फक्त जुदा हता ।

लोरी के गीत में साम्यता :

राजस्थानी लोक गीतों में लोरी का अपना अलग स्थान है । यह गीत बहुत ही सरल है । इनमें कोई भी अलंकृत शब्द नहीं फिर भी दिल को छू जानेवाले यह गीत है -

सो जा लाला सोई
थारी माँ कर रसोई
रसोई में घी घणो
लाला पर सगळा को जीव घणो

अरे लाल तू सोजा तेरी माँ रसोई बना रही है । रसोई में घी ज्यादा है उसी तरह लाला पर सबका जी (लाडला) बहुत है ।

सो जा रे लाला हाबु आवलो
जरी की टोपी थारो काको लावेला
पगाम का पायल थारी भूवा लावली
रुम झुम करतो नानेर जावेलो

तेरा काका तेरे लिए टोपी लायेगा ओर भूआ पायल लायेगी । तुम यह पायल पहनकर नानी के यहाँ जायेगा । यही गीत बच्चा नानी के यहाँ होगा तो इस तरह गाते हैं -

सो जा रे लाला हाबु आवलो
जरी की टोपी थारो मामो लावेला
पगाम का पायल थारी मासी लावेली
रुम झुम करतो दादेर जावेलो

इन अंगाई गीतों में राम और कृष्ण को बालरुप में चित्रित कर उसे अपने लाल को सुलाते समय बडे प्यार से गाते हैं । यहाँ उदाहरण के लिए यह गीत प्रस्तुत है -

सो जा सो जा हारा लाल कौसल्यारा प्यारा राम घडीयक सोजा रे ।

आमो झुके आंगणो डाली दिई पसार
पूत प्रेम रो पालणो जी दशरथजी रे द्वार ॥ १ ॥
जगत प्रेम भेलो कियो काचा काचा तार
रस्सी बटकर बाँधे माता पलणे एक सार ॥ २ ॥
झोका देवे शाम ने माता गावे गीत
पल घडियारो पतो न लागे दिन सब जावे बित ॥ ३ ॥
पगल्या पटके पालणे रे पैंजणीया रही बाज
उठमणी हिंमत करे रे दूध पिवन रे काज ॥
सूतन लिनी गोद में माता दिया सुलाय
स्तन मुख माही ले लियो, अब दूध रह्यो सटकाय ॥
अरध धरम अरु काम मोक्षरी बाँधी चारु कुँट
रस्सी पकड झुलावे माता लावा ले रही लुट ॥

कौसल्या के राम की उपमा यहाँ अपनी लाल को देती हुइ माँ अपने लाल को सुलाती है । आंगण में आम के पेड की डाली को पालना बँधाया है । अपने लाल के लिए वो जगत के प्रेम का तार तार इकठ्ठा कर उसी तार की रस्सी बुनकर उस पालने को जोडती है । राजस्थानी लोक गीतों में परिवार, मातृभूमि, जगत के प्रति प्रेम की आस्था दिखाई देती है । यही भाव इस लोरी में हमें दिखाई देता है ।

लोरी बाई लोरी गाय ब्याई गौरी
दूध भरी कटोरी उपर शक्कर भौरी
इन राज बहिरै कारणै दो साजण आया बारणै
भूवा केवे भतीजो देस्यां पण गहणा घणा लेक्ष्या
सेर सोनो लो थारी बाई म्हाने दो

इन गीतों के अलावा वह अपने बच्चे को किसी की नजर न लग जावे इसीलिए माँ तरह तरह के मंत्र और कर्म करती है । नजर उतारने के लिए झाडु, चप्पल, चोटी, पल्लु का उपयोग होता है । कभी कभी बच्चा ज्यादा सताता है तो लाल मिर्च कपडे की चिंधी या नारियल उतारकर फेंका जाता है । नजर उतारते समय माँ कहती है-

आया की, गया की, घर का की, बारला की, तेली की तंबोली की,
पापी की दुष्ट की, माँ की, बाबा की, काका की, काकी की,

इस तरह परिवार के सभी सदस्यों का नाम लेकर झाडु आदि वस्तु लेकर बच्चे पर बार बार घुमाते हैं । अंत में तीन बार थुँ थुँ करती हैं ।

अपने बच्चे को हँसाने यह ममतामयी माँ तरह तरह के मंत्र अपनाती है - रोते हुए बालकों को चुप करने के लिए उनकी हथेली में ऊँगली फेरती हुइ माँ कहती है -

''चिट्टी मिट्टी लाग लगावनी, दाल चाँवल शिरो
पुडील गाय का गोरान भोग लगानु गाय को
गोरो कठ गयो ? गुम ग्यो - ढूँढो रे ढूँढो रे''

हाथ से अकुंणी, अकुंणी से बगल के नीचे गुदगुदी करके बालक को हँसाती है । यह तो बच्चों को बहलाने का, लाडप्यार का जादू है । यह एक आदर्श मंत्र है जिससे बच्चों का सहज विकास होता है ।

गुजराती और राजस्थानी विवाह गीतों में साम्यता :

गुजरात और राजस्थान के विवाह गीतों में भी साम्यता दिखाई देती है । यहाँ पीठी गीत की तुलना देखे :

विवाह मंडप के नीचे वर या कन्या को हलदी (पीठी) भी लगायी जाती है और पाट (बाजठ) पर से उठाये भी जाते हैं ।

पीठी भर्या बेठा छे पाट
हवे जुओ दादाजीनी वाट
कनुभाई दादा वेगे वेला आवो
हर्षदभाईने पाटेथी उठाडो
जाणे दादा देशे रे तेजीघोडो
ई अमारे हर्षदभाईने मन थोडो
पीठी चोळे पीडी रे वरनी फईबा
मोंघी फईबा वेगे वेला आवो
फईबाने फुमकियाळी साडी
तोय फईनी अरधी फांद उघाडी.(३६)

वर को हलदी (पीठी) लगायी जाती है क्योंकि वर साँवला है उसकी त्वचा गोरी करने के लिए और उनके देह को सुगंधित करने के लिए पीठी लगाई जाती है ।

पीठी चोळे पितराणी,
आ तो छे अक्षरातीत अेम जाणी
मुख चोळी जोयुं मनोहर जेणे,
नक्की क्र्युं हरी धामे जावा तेणे
हाथ चोळी हाथ चोळी जोया हरि,
तेने परमधाम प्राप्ति करे
छाती चोळी माननी मंगळ गाय,
तेने ब्रह्मधाम आव्युं भाग्यमांय
पडखां चोळी जुवे छे जुवती जेह
तेनां थयां अमृतधाममां गेह
पेटे चोळे प्रेमे प्रेमदा वळी,

तेने ब्रह्ममोहोले बोलाव्युं मळी,
वांसो चोळे विनता वारंवार,
तेना वर अक्षरधामे त्यार
चरण चोळी छाट्यां छातीअे जे दास,
वास वस्या अखंडानंद हरि पास.(३७)

कोडी रमवी

गोत्रज के सामने दूध से भरी हुई थाली में वर-कन्या (दंपती) कोडी के खेल खेलते हैं । बाद में सहभोजन, सहक्रीडा और रमूज और मस्तीभरा चित्रांकन किया गया है ।

कण कण कांकणियाळी चूडी रे
लाडा पासे लाडडी दीसे रूडी रे
कहोने लाडी अेवडां ते तप शां कीधां रे
गढडामां गोपीनाथ पूजवा ग्या'ता रे
तेने तपे चंपकभाई ससरो पाम्यां रे
कहोने लाडी अेवडां ते तप शां कीधां रे
मूळीमां मांडवराय पूजवा ग्या'ता रे
तेने तपे वनिताबाई सासु पाम्यां रे.(३८)

एक काल में 'मारु गुर्जर' प्रांत के नाम से पहचाना जाता और तेस्सितोरी ने जिस को 'पश्चिम प्रांत' के नाम से जिस की पहचान की गई है वो प्रदेश आज 'राजस्थान' और 'गुजरात प्रदेश' के नाम से जाना जाता है । एक काल में दोनों ही प्रांत एक होने के नाते से दोनों की संस्कृति में कई साम्य दिखाई पडता है । कालक्रम में ऐतिहासिक और भौगोलिक कारणोसर एवं भाषा के कारण दोनों प्रांत अलग होने से नामकरण भी अलग हुआ लेकिन परंपरित संस्कृति के कारण आज भी दोनों प्रांत में उतनी ही साम्यता दिखाई पडती है जैसे कि पहले थी । लोकगीतों के माध्यम से हम उनको समज पायेंगे ।

गुजराती और राजस्थानी लोकगीतों की तुलना करनी हो तो गुजराती लोक साहित्यकार श्री झवेरचंद मेघाणी के 'रढियाळी रात' की उक्ति का संदर्भ लेना आवश्यक है ।

''मानवहृदय एनुं एज छे. ए ज कारणे संसारभरना लोक-साहित्यमां सर्वत्र एकज अंतर्धारा वहेती रही छे. एमां केवळ भाषानी ज भिन्नता छे.''(३९)

टूंक में कहा जाय तो गुजरात और राजस्थान सीमा प्रदेश से जुडा हुआ है इसलिए सांस्कृतिक क्षेत्र में बडी साम्यता दिखाई देती है ।

लोकगीतों को मनोरम कहे गये हैं इसीलिए वो मनोहर भी हैं । स्त्रियों में गाये जाने वाले लोकगीतों का अविरत विकास होता रहा है । उनका प्रमुख कारण गुजराती लोक साहित्यकार झवेरचंद मेघाणी ने ''रढियाळी रात'' में कहा है कि :

''नारी हृदयमां ज्यारे ज्यारे सुख-दुःख आशा-निराशा के उमंग-आघातनी प्रबळ लहरी उठी त्यारे ए गीतना रूपमां व्यक्त थई । ए पोताना सारा या बुरा कोईपण भावने निष्कपटपणे शब्दरुप कर्या एमां सरल छलहीनता छे । भाव गोपननी वृत्ति क्यांय नथी मळती ।''(४०)

विवाह गीत गुजरात का सीमाडा पार करके पालनपुर से भी आगे नानी मारवाड में बसे हुए हैं । दूसरी ओर हकीकत यह है कि सौराष्ट्र की कई कोम-ज्ञाति मारवाड से गुजरात में आकर बसी हुई है इसलिए वहाँ के गीत भी यहाँ गाये जाते हैं । कई गीत तो वैसे ही वैसे हैं, सिर्फ मारवाडी बोली की सामान्य छांट (अंश) है और सूर अलग हैं ।

गुजरात और राजस्थान में विवाह के वक्त सबसे पहले गणेश स्थापन किया जाता है । उसी वक्त गुजरात में गाये जाने वाले गणेश स्थापन के गीत के साथ राजस्थानी विनायक गीत के साथ साम्यता दर्शाता है ।

गुजराती विवाहगीत :

''वागे रे वागे नोबत वागे
मारे घेर आनंद वधारो विनायक.''

राजस्थानी विवाहगीत :

''छाजे रे छाजे नोपत बाजे;
म्हारे घर आनन्द बधावा, छाजे रे.''(४१)

प्रस्तुत गीत में जो घर वर विवाह हैं वहाँ नोबत (शहनाई) बज रही है । क्योंकि आज उनके घर विवाह है इसलिए गणेशजी को पधारने को कहा जाता है । और उनके हर्ष-आनंद में बढावा करने को कहा जाता है ।

उसके बाद के गीत में मायरा और मांडवडा की बात की गई है ।

गुजराती विवाहगीत :

''सूडला कोयलडीने विनवे रे;
आवी रूडी आंबलिया डाळ
सरोवरीआनी पाळ
मेलीने कोयल क्यां ग्या'ता रे
शीळा निरवभाईना मायरां रे
तीयां रूडा मांडवा नखाय
रूडी कन्या परणाय
जोवाने अमे त्यां ग्या'ता रे''(४२)

राजस्थानी विवाहगीत :

''सूडलो पूछे रे कोयलडी,
आवी रूडी आंबलिया डाळ

मेली रे शीद चाल्या :
नीलभाईअे विवा आदर्या
कंकुडारो हुवो रे सकाळ
जोवा रे अमे सांचर्या.
नाळियेर रो हुवो रे सकाळ,
जोवा रे अमे सांचर्या.''(४३)

इसके अलावा कन्या बिदाई के गीतों में भी करुणा और प्रेम का समन्वय देखने को मिलता है ।

गुजराती विवाहगीत :

(१) ''आछेरुं कंकुडुं धोळ्ये रे लाडी
आछली पीळ्ये कढावुं
तारी माताना खोळा मेल्य रे लाडी
कंचनबा सासु देखाडु
(२) में तो डुंगर कोरीने घर क्र्या रे
में तो काचना जडिया कमाड रे हो लाडडी !
हजी रे समज मारी कोयलडी !''(४४)

राजस्थानी विवाहगीत :

(१) ''झाली रे राणी ! हावोने आपणे देश के
आंबा रे पाका रस फळे !
सोडा रे राणा ! में केम हालु मारे देश के
बावाजी वोणुं नहि गमे
बावोजी रे थारा आळ जंजाळ के
साचो सगपण होय जणां ?
(२) बनडी ! थारे सासरेजी डोलर बांधीओ
बनडी ! हींडा रे उमाटे वेली आव रे
मारी दरिया वनरी कोयलडी !

उपर्युक्त विवाह गीतों – लोक-गीतों से स्पष्ट दिखाई पडता है कि गुजरात और राजस्थान प्रदेश के लोकगीतों में सामान्य भिन्नता है ।

कंकावटी गोरमा गोरमा
हल्का फूल तपस्वी

'आप कौन है ?' मैंने उन सौ एक पत्तों के प्रकट हो चुके हल्के फूल और गंभीर मृदुभाषी तपस्वियों से पूछा :

'हम कंकावटी की संतान है- लोकसाहित्य के व्रत । पूछिए तो सही इन गणगौर व्रतों को ! उसने प्रत्येक चैत महिना की उजली त्रीज को सैंकडों कुमारिकाओं के पास कैसा स्तोत्र रटाया है ।'

ऐसा कहते हुए एक नन्हा-सा गीत रट उठा :

आगरीए घूघरीए गोर शणगारी
बापे बेटी खोळे बेसाडी,
कियो वर कियो वर कियो वर गमशे ?
..... भाई वर ..... भाई वर .... भाई वर गमशे.

('गणगोर व्रत' कंकावटी)

[बेटी को पंडिताइन ने घुँघरु से संवारा, पिता ने बेटी को गोदी में बैठाया और पूछा, कैसा वर भायेगा ? भाई जैसा.... भाई जैसा .... भाई जैसा वर भायेगा ।]

'मुझे भी कुछ कहना है,' ऐसा कहते हुए दूसरा एक व्रत बोला :

'मैने दंभ नहीं सिखाया है । मैंने तो किशोरियों को उनके मनोव्यापार की गहराई में जाकर पहचाना है । उसका विवाह -जीवन यह कोई सांसरिक जीवन में कदम रखने की ही बात नहीं थी ।'

'हाँ, हाँ',' एक ब्याह-गीत ने बीच में कहा : देखिए न, पुत्री को बिदा करती माँ की सच्ची मनोव्यथा को मैंने नहीं गवाया : बेटी को अंतिम बार भोजन कराते हुए क्या कहा ?

ल्योने बेनी कचोळडां, जमजो वार बे वार रे
पछी रे जमशो तमे सासरे, जमशो एठला भात रे
कूर जमशो दिवाळडी, रोटली आदितवार रे
एक जमशो ते बपोर, बीजुं माझम रात रे

('चूंदडी')

[लो बहन कचोळ्लां, खाओ एक दो बार, फिर खाओगी ससुराल में, खाओगी जूठा भात । चूरमा खाओगी दीपावली पर, रोटी इतवार को । एक बार खाओगी दुपहर को, दूसरी बार आधी रात को ।]

ऐसी घटनेवाली वास्तविक दशा की कल्पना करके कुमारिका को चेता दिया था कि गोरमा की पूजा करते-करते सभी बडों को सुना देना बहन, कि तुम्हारी सही जरूरत तो पेट भरना और मिष्टान खाना है, साथ ही सर्वगुण-सम्पन्न आदर्श स्वामी की बजाय तुम्हारा जो कहना माने ऐसे पति की है । ऐसा कहकर गौरमा (गेरी)का व्रत बडबडाने लगा -

गोर मा गोर मा ससरो देजो सवादीआ
तमे मारी गोर मा छो
गोर मा गोर मा रे सासु देजो भुखाळवां.
तमे मारी गोर मा छो
गोर मा गोर मा रे कंथ दजो कह्यागरो.
तमे मारी गोर मा छो

('मोळाकत' : कंकावटी)

[हे गौरी माँ, ससुर देना सवादिया, तुम मेरी गौरी माँ हो । गौरी माँ, सासु देना भुक्खड, तुम मेरी गौरी माँ हो । गौरी माँ पति ऐसा देना जो कहना माने, तुम मेरी गौरी माँ हो ।]

गुजरात और राजस्थान के लोकनृत्य :

भारतवर्ष की संस्कृति बडी विशाल है । इस महान देश के प्रत्येक राज्य में लोक-नृत्य प्रचलित हैं । हम यहाँ राजस्थान एवं गुजरात के लोकनृत्य की झांकी करेंगे ।

राजस्थान में प्रचलित नृत्यों को दो भागों में विभक्त किया गया है । (१) पुरुषों के नृत्य और (२) स्त्रियों के नृत्य । कुछ नृत्य केवल पुरुषों के द्वारा ही उपस्थित किये जाते हैं तथा कुछ स्त्रियों के द्वारा ।

● **घूमर :** यह पुरुषों का नृत्य हैं। होली के अवसर पर यह नृत्य किया जाता है। इसमें पुरुष और स्त्री- जिनका पार्ट पुरुष ही किया करते हैं - घेरा बनाकर नाचते हैं। होली के पार्ट पर पुरुष एक हाथ में छतरी (छाता) और दूसरे हाथ में दुपट्टा लेकर नाचते हैं। दर्शक गण इनके चारों ओर घेरा बनाकर खडे होकर इस नृत्य को देखते हैं। नाच बन्द हो जाने पर एक दर्शक उस घेरे में आकर ''छल्ला'' (मालवी दोहे) और ''छल्ला बोल्यो रे '' के साथ नाच पुनः प्रारम्भ हो जाता है।

● **माँच के नृत्य :** राजस्थान में माँच नामक लोक-नाट्य प्रचलित है। इसका अभिनय करते समय नृत्य भी किया जाता है जो बडा सुन्दर तथा रमणीय होता है।

● **भीलों के नृत्य :** राजस्थान और गुजरात में भील जाति के लोग भी निवास करते हैं। इन भील-भिलालों के नृत्य उनके जीवन की ही तरह सरल होते हैं। भीलों के अधिकांश नृत्यों में स्त्री और पुरुष दोनों ही समान रूप से भाग लेते हैं। पुरुषों (भीलों) के नृत्यों में पद संचालन साधारण किन्तु गतिमय होता है। हाथों में अस्त्र-शस्त्र लेकर तथा पैरों में घुंघरूं बांधकर ये वृत्ताकार रूप में नाचते हैं। नृत्य के साथ माँदल (लोकवाद्य) बजाई जाती है। नृत्य में माँदल की गति के साथ ही पद से चालन की गति भी बढती जाती है। नृत्य का समाँ जब बंध हो जाता है तब तो पुरुष हुंकारते हुए नृत्य करते हैं और बीच में पशु-पक्षियों की तरह बोली भी बोलते हैं।

● **मोहिली :** इस नृत्य में भलनी स्त्रियाँ वृत्ताकार रूप में मंद गति से नर्तन करती है। चार कदम दाहिनी ओर बढने के पश्चात् पाँचवा कदम पीछे की ओर रखती हैं। इनके पश्चात्, दाहिना पैर बायें पैर के पास ले जाकर आगे बढ जाती हैं। यही क्रम आगे चलता रहता है। इस पद संचालन में एकरूपता रहती है जिससे यह नृत्य बडा ही आकर्षक लगता है।

● **पाली नृत्य :** स्त्रियाँ दो कतारों में आमने-सामने खडी हो जाती है । कुछ कदम आगे बढती है और फिर दाहिनी ओर पीछे हटती हुई वृत्ताकार में नृत्य करती है ।

●**भवाई नृत्य :** भवाई नृत्य राजस्थान का लोक-प्रसिद्ध नृत्य है । इस नृत्य में उच्च स्तर की भावभंगिमा तथा पदसंचालन की वक्र चाल देखते ही बनती है । भवाई नर्तक अपने सिर पर अनेक मटके (५ से ११ तक) रखकर नृत्य करता है । नर्तक शरीर का ऐसा सन्तुलन रखता है कि एक भी मटका नृत्य करते वक्त हिलता तक नहीं । भवाई नृत्य करने वाले ऐसे ऐसे करतब दिखाते हैं कि दर्शक मंत्रमुग्ध हो जाते हैं । जैसे सिर पर मटके रखकर, नीचे जमीन पर पडी थाली पर खडे होकर ताल के साथ पैरों से थाली सरकाते हुए, कांच की गिलास पर खडे होकर गिलास सरकाते हुए, भाले को ऊपर फैंक कर नृत्यक्षेत्र का चक्कर लगाते हुए पुनः समय पर आकर गिरने से पहले भाले को पकडना, तलवार की धार पर नृत्य करना, लोहे के खीले लगाये हुए बाजोठ

पर खुले पैर नृत्य करना आदि रोमांचक करतब देखने योग्य होते हैं ।

● **गेर नृत्य :** राजस्थान और गुजरात के आदिवासी क्षेत्रों अंबाजी से उमरगाँव तक होली के अवसर पर पूरे माह में गेर नृत्य चलता रहता है । इस नृत्य में ढोल-थाली के वादन के साथ पुरुष लकडियों के डंके के साथ नाचते हैं । ताल के साथ थिरकते हुए अंग-प्रत्यंग होली की मादकता एवं उल्लास का अहसास कराते हैं । कभी - कभी एक ओर स्त्रियाँ का दल तथा उसके सामने दूसरी ओर पुरुष दल नृत्य करते हुए पास आते हैं और पीछे हटते हैं । इस तरह नृत्य चलता रहता है ।

● **गुजरात का गरबा नृत्य : :** गरबा गुजरात का प्रसिद्ध भक्तिपूर्ण नृत्य है जिसे नवरात्रि में दुर्गा की आराधना में महिलायें तन्मय होकर नृत्य करती हैं । गुजरात से जुडे हुए होने के कारण राजस्थान में भी इसका प्रचलन हैं । डुंगरपूर, आबू, पाली व बांसवाडा में तो यह नृत्य बहुत प्रसिद्ध है । गरबा तीन रूपों में किया जाता है । प्रथम रूप तो वह है जिसमें शक्ति की आराधना में स्त्रियाँ मिट्टी के घडे में छिद्र कर उसमें दीपक प्रज्जवलित कर फिर उसे सिर पर रखकर गर्भगृह के आसपास प्रदक्षिणा करती हैं या फिर धीरे-धीरे गोलाकार में घूमती हुई नृत्य करती हैं । यह नृत्य ताली व चुटकी से भी किया जाता है ।

गरबा का दूसरा रूप रास नृत्य में हैं । इसमें राधा कृष्ण, गोप-गोपियाँ के प्रणय चित्रण का प्रस्तुतिकरण होता है ।

तीसरे रूप में लोक-जीवन का सौन्दर्य प्रकट होता है । इसमें पनिहारी, नववधू की भावकुता, गृहकार्य में रत स्त्रियों का चित्रण होता है । गरबा लेते समय दुर्गा की भक्ति से संबंधित गीत गाये जाते हैं ।

गुजरात का गरबा नृत्य अन्यन्त अधिक मनमोहक, आकर्षक तथा मधुर होता है । पहले यह वास्तविक रूप में एक लोक-नृत्य था परन्तु अब कला तथा अभिरामता के कारण शास्त्रीय नृत्य की कोटि (स्टेट्स) को प्राप्त करता जा रहा है ।

गरबा एक प्रकार का सामूहिक नृत्य है जो गाँवों तथा शहरो में गोधूलि की बेला में प्रस्तुत किया जाता है । इसमें केवल स्त्रियाँ ही नृत्य करती है । स्त्रियाँ अपने सिर के उपर मिट्टी का बना 'हडिया' की आकृति के समान पात्र रख लेती है जिसमें अनेक छेद बने रहते हैं । इसी पात्र के बीच में एक दीपक जला कर स्थापित कर देती है । इस दीपक का प्रकाश, पात्र में बने छिद्रों के माध्यम से बाहर निकलता रहता है । ये स्त्रियाँ दीपक जलते हुए पात्र को अपने सिर पर रखकर सामूहिक रूप से नृत्य करती हैं । इनके पद-विक्षेप की यह विशेषता होती है कि सिर पर रखा पात्र गिरने न पाये और पात्र में स्थापित दीपक बुझने न पाये ।

इस अवसर पर अनेक प्रकार के गीत भी गाये जाते हैं जिनका वर्ण्य विषय सामाजिक, राजनैतिक तथा ऐतिहासिक हुआ करता है । सुज्ञ जन वेश-भूषा में, सुन्दर तथा रमणीय, गोरी गुजराती स्त्रियों के द्वारा प्रस्तुत किया जाने वाला गरबा नृत्य बडा ही सुन्दर, सरस तथा मनोरम होता है ।

प्रदेश-प्रदेश में एक जैसे ही लोकगीत :

इस समय तो लोक-साहित्य की कथ्यवाणी ने हमारे समूहजीवन को खण्ड-खण्ड कर देनेवाली दीवारों को तोडना शुरू किया है । गिरिमाला के शिखर-शिखर पर बैठे मोर की तरह हमारे प्रान्त-प्रान्त के लोकगीत एक-दूसरे को समरूपता, साम्यता, सहानुभूति का गहक दे रहे हैं । हास्यास्पद बन चुका मारवाडी बोली का, 'आज मारी शाशूडी मुने साचो सपनो आयो री' यह लोकगीत अनेक बार गाया-सुना और तिरस्कार का भोग बना, यह लोकगीत आज हमारी श्रवणेंद्रिय में नए भाव का दीपक जला रहा है । जो हमारी घृणा का कारण बना वह लोकसाहित्य की सुरुचि को व्यापक करनेवाला बन रहा है । काठियावाड़-गुजरात या सूरत-चरोतर के बीच बोली-भेद अप्रिय न रहकर प्रिय बनते गये हैं क्योंकि हमने उन प्रान्त-भाषा का ठेठ कथ्य प्रयोगों का आस्वाद पन्नालाल, उमाशंकर, धनसुखलाल और ज्योतीन्द्र आदि की कहानियों में लिया है । प्रान्त के बाहर कदम रखते हुए डरते, संकुचाते या घिन्नाते नहीं । क्योंकि कथ्यवाणी परप्रान्तों के सिवान में पुरानी होने पर भी नित नूतन साम्य के फूल बिखेरने लगी है । अजनबीपन हमारा कैसे रह सकता है ? मुझे मिला एक गुजराती ब्याह - गीत :

तो दादा माराने दूभव्या रे
तारा आछा घूंघटडाने कारण, हो लाडली ।
हजी रे समझ, मारी कोयलडी ।

बड़ों की इच्छा के विरुद्ध मनपसन्द कन्या को वरनेवाला युवक ब्याह करने के बाद पितृगृह छोड़ने से हिचकती वधू को इन शब्दों में मनाता है : इसी मनुहार को गुजरात निवासी मारवाड़ी मजदूर अपने वतन के नृत्यलय से भरपूर एक विवाहगीत इस तरह से गाता है :

में तो घारा, जीवन वनी ! कारणिये,
में तो मेल्यां बावाजीवाणा हेत
हालो ने वनी । वागां में

(चल मेरे साथ बाग में, हे बन्नी ! हे वधू ! तेरे लिए तो मैंने पिता का प्यार त्याग दिया है ।)

थराद, मारवाड़ तो हमारे सटे हुए पड़ौसी है : साम्यता है तो आश्चर्य कैसा ? चलिए, अभी आगे, जेलम और रावी के किनारे । सोरठ की लोकपुत्री का विवाह, बाद में उसका मायका-त्याग हमारे गीत में यों आलेखित हुआ :

दादाने आंगण आंबलो, आंबलो घोर गंभीर जो,
एक तो पान में तोडियुं, दादा गाळ न देजो जो,
अमे रे लीलूडा वननी चरकलडी, उड़ी जाशुं परदेश जो.
आज रे दादाजीना देशमां, काले जाशुं परदेश जो,
दादाने वाला दीकरा, अमने मेल्यां परदेश जो.

(दादा के आँगन में आम का पेड है, आम घटादार है । हे दादा, मैंने एक पत्ता तोड लिया है । गाली मत देना । हम तो हरे-भरे वन की चिडियाँ हैं, परदेश उड जाएँगी । दादा, आज तो हम इस देश में हैं, कल परदेश में जाएँगी, दादा को बेटे प्यारे हैं, हमको तो परदेश भेज दिया ।)

इक समान कथा गाथाएँ

ऐसा कहा जा सकता है कि लोकवाणी में जगह-जगह कुछ प्रयोग, कुछ बाह्य कलेवर, उदाहरण नमूने आदि की एकरूपता प्रचलित थी । किन्तु इससे आगे जाय तो हमें कथावस्तु की समानता विलक्षण रूप से सामने मिलती है । हमारा एक शौर्यशाली कथागीत है :

सोनल रमती रे गढ़डाने गोख जो
रमतां झलाणी सोनल गरासणी;
आडो आव्यो रे सोनल दादानो देश जो
सोनले जाण्युं दादो छोडावशे,
दादे दीघां रे सोनल, धोणुडां धण जो
तोय न छूटी सोनल गरासणी.

(किले के झरोखे के पास सोनल खेल रही थी । खेलते समय सोनल गरासणी का अपहरण हो गया; रास्ते में सोनल के दादा का देश आया; सोनल ने समझा कि दादा बचा लेंगे, दादा ने सफेद गोधन दिया, फिर भी सोनल गरासणी नहीं छूटी ।)

फिर रास्ते में काका, भाई आदि का देश आता है । काका ने काली भैंसों का झुण्ड दिया तथा भाईने दूधिया बछवा दिया, तब भी सोनल गरासणी नहीं छूटी । फिर :

आडे आव्यो रे सोनल स्वामीनो देश जो,
सोनले जाण्युं जे स्वामी छोडावशे.

(रास्ते में आया सोनल के स्वामी का देश, सोनल ने समझा स्वामी छुड़ायेगे)

स्वामी ने किसी पार्थिव मूल्य को चुकाकर नहीं किन्तु शिरसमर्पण से-युद्ध से-सोनल को अपहर्ता के पास से छुड़ाया :

स्वामीए दीधी रे एना माथा केरी मोळ्युं जो
धमके छूटी सोनल गरासणी.

(स्वामी ने अपना सिर दिया, झटके से छूट गयी सोनल गरासणी ।)

यह कथाविषय ठेठ उत्तर प्रदेश और बिहार कौन-जाने कैसे पहुँच गया होगा । मुगलों इत्यादि के परिबलवाले उस प्रदेश में अपहरण के विरुद्ध प्रकोप जागृत करनेवाले कथानक सहज ही में फूट निकलते हैं । 'ग्रामगीत' के संग्राहक श्री रामनरेश त्रिपाठी द्वारा संग्रहित 'जांत के गीत' (जांता चलाते समय के गीत) और 'निरवाही के गीत' (खेतो में सोहनी करते समय के गीत)की एक कृति है :

ओखली चावल छांटती, बाते करती बनाय
आवेला मोगल का छोकड़ा, यों डालूँगी कूट.

(ओखली में धान कूटती एक स्त्री गप मार रही है कि यदि मोगल का छोकरा यहाँ मुझे उठा ले जाने के लिए आयेगा, तो मैं धान की तरह उसे भी मूसर-मूसर कूट डालूँगी)

मोगल का छोकरा सही में आ गया, सुन्दरी को हर ले गया, सुन्दरी ने पिता, भाई, पिय को संदेशा भेजा :

''उड़ी उड़ी पतिया जाय तू, यह सनेस लेइ जा.
बाबा से कहिगा समुझाई, बेटी पड़ी बंदीवान !

तीनों सगे आते हैं किन्तु सम्पत्ति लेकर :

लेहु मोगल का छोकड़ा रुपिया लेहु बहुत
बेटी मेरी की छोड़ दे, जैसे कंचन थाल,

भाई मोतियों का ढ़ेर और प्रिय मोहरें देने लगते हैं । उत्तर में :

रुपिया हमारे बहुत है, अशर्फी भरा है संदुक,
सुन्दर को में ना छोडों, जैसे गले का हार.

फिर तो सुन्दर खुद ही निपटारा करने उठी :

सुन्दर बोली क्रोधकर, कमर कटारी खींच,
लेहु मोगल के छोकड़ा यह है गले का हार.

मैं इसे सोरठी कथ्यवाणी का सीमाचिह्न समझता हूँ । मुझे उत्तर प्रांत का यह गीत सोरठी गीत की ठेठ भूमिका पर आधारित रुपान्तर लगता है । इस विधान की अवश्य आज मैं चर्चा नहीं कर सकता । हमारे इस प्रयोजन के लिए पर्याप्त यह तुलना मात्र कथ्यवाणी का सीमान्त बताने के लिए है ।

चारणी देवी - आवडमाता (राजस्थान)

आवडमाताने लूणराज भाटी को अपने धारण करने की एक स्वर्ण की चूड प्रदान कर यह वर दिया कि इस चूड को दाहिने हाथ में पहिन कर तू युद्ध में अकेला खडक प्रहार करता हुआ भी शत्रुओं को पराजित कर सकेगा ।[४५] आवड देवी अपने पिता और बहिनों को साथ लेकर तेमडा जा रही थी । मार्ग में आवड ने 'हाकडा समन्दर' को पार करने के लिए तीन चूल्लू में उसका पानी पी डाला और 'हाकडा' मरुभूमि में पलट गया ।[४६] हाकडा सुखा कर आवड माता तेमडा पर्वत पर पहुँची । यहीं नर-भक्षी राक्षस था, जिसने उन बहिनों पर हमला किया । छोटी बहिनोंने कहा कि, 'बाई, आई राक्षस है' यानी यहाँ राक्षस है । इस पर आवड देवी ने कहा कि 'तेमडी छै अर्थात् वह तो मुर्दा है । देवी ने राक्षस का पैर पकड कर नीचे फैंक दिया और वह तत्काल मर गया । उस दिन से 'तेमडी' मिलकर उस पहाडी का नाम तेमडी हो गया ।[४७]

चारणी देवी - आवडमाता
(नडेश्वरी माता - वरेवडी माता - वरुडीमाता) (गुजरात)

गुजरात में आये हुए बनासकांठा जिले के सूईगाम तहसील से करीब २० कि.मी. और पालनपुर से करीब ४० कि.मी. की दूरी पर नडाबेट नामक स्थल ८ से १० कि.मी. के विस्तार में फैला हुआ बेट (द्वीप) आया हुआ है । पाकिस्तान की सरहद पर यह द्वीप (बेट) रण विस्तार में आया हुआ है । यहाँ नडाबेट में नडेश्वरी माता- आवडमाता - वरेवडी माता - वरुडीमाता के विविध नामधारी नडेश्वरी माता के मंदिर का इतिहास हजारो साल पुराना है ।

इतिहास और किंवदन्ती के मुताबिक जूनागढ के राजा रा'नवघण की धर्म की मानी हुई बहन (धर्मनी बहेन) जाहल को सिंध का बादशाह हमीर सुमरा उठा के ले गया था । रा'नवघण अपनी धर्म की बहन को सिंध के बादशाह हमीर सुमरा की कैद से छुडाने के लिए अपने लश्कर के साथ सिंध पर आक्रमण (चढाई) करता है और विरमगाम, राधनपुर और सूईगाम की समुद्र की छोटी खाडी पार करके समुद्र के बीच में आया हुआ नडाबेट आता है ।

जब रा'नवघण नडाबेट आते हैं तब नडाबेट में बरगद के एक वृक्ष के नीचे कई चारण कन्याएँ खेल रही थीं । रा'नवघण को आते हुए देखकर बाल स्वरूप माता नडेश्वरी-आवडमाता-वरुडी माताने अपना हाथ को लंबा करके घोडे पर सवार रा'नवघण के भाल में कुमकुम तिलक किया । बाद में बालिका स्वरूप आवडमाता (नडेश्वरीमाता - वरेवडी माता - वरुडीमाता) ने कुल्लड में खीर बनाकर सारे लश्कर को भोजन कराया ।

रा'नवघण नडेश्वरी माता के चमत्कार को पहचान गये । रा'नवघण घोडे से नीचे उतरे और माताजी के चरणों में मथ्था टेककर, माताजी की पूजा-अर्चना की और माताजी को प्रार्थना करते हुए कहा कि सिंध का बादशाह हमीर सुमरा हमारी धर्म की बहन जाहल को उठा ले गया है । सिंध पर आक्रमण करके, विजय प्राप्त करके हमारी धर्मकी बहन जाहल को छुडाना है । लेकिन समय बहुत कम है । सामने समंदर है । इसलिए सिंघ पहुँचने का मार्ग दिखाने के लिए तथा शक्ति देने के लिए रा'नवघण माता नडेश्वरी को प्रार्थना करता है ।

तब नडेश्वरी (आवडमाता) माता ने आशीर्वाद देते हुए कहा कि ''तेरे भाले (हथियार) पर काली चीडियाँ (देवचकली) बैठे तब तू अपने घोडे को लेकर समंदर में चला जाना । मैं तेरे साथे सिंध में आऊँगी ।''

रा'नवघण ने नडाबेट से समुद्र के किनारे पर जाकर माता नडेश्वरी (वरेवडी-आवडमाता) और हिंगलाज माता का स्मरण किया तब काली चीडियाँ (देवचकली) आकर रा'नवघण के भाले (हथियार) पर बैठ जाती है । काली चीडियाँ को अपने भाले पर बैठी हुई देखकर और उनको शुभ चिन्ह मानकर रा'नवघण अपने घोडे के साथ समुद्र में छलाँग लगाता है । माता नडेश्वरी की कृपा से समंदर सूख जाता है और रा'नवघण को सिंघ में जाने का रास्ता आसान हो जाता है । रा'नवघण के पीछ पीछे उनका सारा लश्कर सिंघ में पहुँच जाता है ।

रा'नवघण सिंघ में जाकर सिंघ के बादशाह हमीर सुमरा को मार डालता है, और सिंघ पर विजय प्राप्त करता है । और सिंध के बादशाह की कैद से अपनी धर्म की बहन जाहल को छुडाकर जूनागढ वापस लौटता है ।

हमीर सुमरा को हराकर सिंध पर विजय प्राप्त करने के बाद वापस लौटते वक्त रा'नवघण ने नडाबेट में नडेश्वरी माता (आवडमाता-वरेवडी माता-वरुडी माता) के मंदिर का निर्माण किया था । हजारो वर्षों से नडाबेट में आये हुए नडेश्वरी माता का मंदिर आज भी लाखों - करोडो माई-भक्तों की आस्था का केन्द्र बन चुका है - गुजरात का पवित्र धाम है ।

वर्तमान में नडेश्वरी माता का मंदिर समंदर के बीच बेट (द्वीप) में आया हुआ है । भारत-पाकिस्तान सरहद से बिलकुल नजदीक होने से अब भारत के बीएसएफ के नौ-जवान उनकी पूजाविधि करते हैं । सालभर में मार्च महिने में माता नडेश्वरी के प्रागट्य दिन के अवसर पर राम-नवमी के आसपास करीब १५ दिनों के लिए आमजनता के दर्शनार्थ यह मंदिर खुला रहता है । सारे भारत वर्ष में से आये हुए भक्तजन आवडमाता-नडेश्वरीमाता के दर्शन करके धन्य होते हैं ।

लोकदेवता गुगाजी और गुजरात के वीर भाथीजी महाराज

श्री ओझाजी ने राजस्थान स्थित सांभर राज्य के चौहाण राजाओं में गोपेन्द्र नामक राजा का भी उल्लेख किया है । श्री लल्लूभाई भीमभाई देसाई इसी गोपेन्द्रराज को गोगादेव मानते हैं । उन्होंने लिखा है कि गोगाराव वि. सं. ७५२ में गद्दी पर बैठा । सांभर के चौहानों ने मुसलमानों के हमले में हर समय अपना बलिदान दिया है । बगदाद के खलीफा महमूद बिन कासिम के साथ गोपेन्द्रराज उपनाम गोगाराव ने ११ लडाई लडीं और १२ वीं लडाई में गौओं के रक्षार्थ अपने ४३ पुत्रों के साथ मारा गया । उनकी राणी मेणलदे राठोड कन्या महासती थी । गोगाराव के पीछे उनकी ३५ रानियाँ सती हुई । गोगाराव ने वि. सं. ७८२ में गढ सांभर में समर किया था । वर्तमान समय में इसकी गोगादेव के नाम से पूजा होती है । इसी में आगे गोगा के ४३ पुत्रों के विषय में 'निशानी' दी गई है जो युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए थे ।[४८]

★★★

(१) गोगाजी : लोकदेवता गोगाजी चौहान का जन्म चूरु जिले के ददरेवा में राजा झेंवर के यहाँ हुआ था । इनकी माता का नाम बाछळ था । बाछळ गुरु गोरखनाथ की सेवा करती थी । एक दिन बाछळ की बहिन काछळ गुरु गोरखनाथ की सेवा करने चली गई । गुरु ने उसे ही बाछळ समझ कर दो पुत्रों के होने का वरदान दे दिया । बाद में जब पता चला कि बाछळ ने प्रतिदिन सेवा की है और यह काछळ तो उसकी बहिन है, तब गुरु ने बाछळ को एक महावीर पुत्र होने का वरदान दिया । समय आने पर काछळ को दो पुत्र अरजन - सरजन हुए तथा उसके पश्चात् बाछळ को पुत्र गोगाजी का जन्म हुआ । गोगाजी का विवाह पाबूजी की भतीजी और बुडौजी की बेटी केळमदे से हुआ । विवाह के पूर्व केळमदे को साँप ने डस लिया किन्तु गोगाजी के नाम से तांती बाँधने और गोगाजी के स्मरण से साँप का जहर उतर गया । केळमदे ठीक हो गई । लोकसमाज में गोगाजी चमत्कारों के लिये प्रसिद्ध रहे हैं । इनके मौसेरे भाई अरजन-सरजन इनसे द्वेषभाव रखते थे । परिणामस्वरूप गोगाजी और इनसे युद्ध हुआ । गोगाजी ने दोनों भाइयों को मार दिया । तब क्रोधित माता बाछळ ने गोगाजी को देश से निष्कासित कर दिया । गोगाजी गुरु गोरखनाथ के पास चले गये । गुरु की आज्ञा से वे रात में अपनी रानी से मिलने आते । एक दिन माता बाछळ को पता चल गया । उसने अपने पुत्र को ताना मारा । गोगाजी अपने नीले घोडे सहित धरती में समा

गये । वह स्थान ''गोगामेडी'' के नाम से प्रसिद्ध है । यहाँ हर वर्ष गोगानवमी को विशाल मेला लगता है ।

★★★

(२) पाबूजी : गोरक्षक लोकदेवता पाबूजी का जन्म जोधपुर जिले की फलौदी तहसील के 'कोळू' ठिकाने में हुआ । बचपन से ही वे निडर, साहसी एवं वीर पाबूजी शरणागतवत्सल भी थे । एक शक्तिशाली शासक आना बघेला के भय से भागते थोरी जाति के सात भाईयों को किसी ने आश्रय नहीं दिया, तब राठौड पाबू ने इन्हें शरण दी । इनको मित्र का दरजा दिया । भील सरदार चांदा व डाया तो इनके परम मित्र एवं दायां-बायां हाथ थे । इस प्रकार ऊंचनीच का भेदभाव न मानते हुए सामाजिक समानता को महत्त्व देने वाले पाबू राठौड से उनका बहनोई जायल खींची बहुत द्वेष रखता था । पाबूजी ने अपने विवाह के समय बहन को बुला लिया किन्तु बहनोई को नहीं बुलाया । इसलिए वह और भी अधिक जल भून गया । दूल्हे बने पाबूजी देवल चारणी की 'केसर घोडी' पर सवार हो गये । बारात प्रस्थान के समय पाबूजी ने देवल चारणी को वचन दिया कि संकट आने पर वे केसर घोडी पर बैठकर तुरन्त दौडे आयेंगे । बारात अमरकोट सोढा राणा के यहाँ पहुँची । केसर घोडी ने अपने करतब दिखाये तथा किले के कंगूरे पर टंगे तोरण को मरवाने में पाबूजी को सहयोग दिया । ठाठ-बाठ से पाबूजी व बारात का स्वागत किया । उधर मौका देख जायल खींची देवल चारणी की गायों को ले भागा । पता चलने पर पाबूजी चंवरी (चोरी) में से ही गठबन्धन छुडाकर उठ गये । तीसरा फेरा भी पूरा नहीं किया और अर्ध्यब्याहता को छोड गायों की रक्षार्थ चल पडे । पाबूजी ने गायों को तो छुडा लिया किन्तु इस युद्ध में वे स्वयं वीरगति को प्राप्त हो गये । उनकी अर्ध्यब्याहता सोढी भी पाबूजी के साथ सती हो गई । इस प्रकार साहसी, पराक्रमी पाबूजी ने सामाजिक समानता एवं गोरक्षण में अपने जीवन का बलिदान कर दिया । जन-जनने उन्हें लोकदेवता के रूप में पूजकर अपनी आस्था प्रकट की ।

★★★

(३) तेजाजी : वीरवर तेजाजी भी गोरक्षक थे । वे पराक्रमी और योद्धा होने के साथ साथ उच्च कोटि के साधक थे । उन्होंने अपनी साधना से प्राप्त सिद्धियों से जन-कल्याण का कार्य किया । साँप का जहर उतारने में गोमूत्र व राख का प्रयोग इन्होंने ही किया । वचनबद्ध तेजाजी साँप के पास गये तो साँपने उन्हें डस लिया किन्तु उनकी वचनबद्धता से प्रसन्न होकर साँपने यह वरदान दिया कि संसार के लोग सर्प के देवता के रूप में तुम्हारी पूजा करेंगे तथा सर्प दंश से पीडित व्यक्ति को तुम्हारे नाम की तांत (धागा) बाँधेंगे तो उसका जहर उतर जायेगा । तभी से गाँव -गाँव में तेजाजी लोकदेवता के रूप में पूजे जाते हैं । तेजाजी के चबूतरे पर भोपे सर्पदंश से पीडित व्यक्ति का जहर तेजाजी की कृपा से ही उतारते हैं । भाद्रपद की शुकला दशमी को तेजाजी के थान पर मेला लगता है ।

लोकदेवता तेजाजी का जन्म नागौर जिले के खरनाल्यां ग्राम में धोळ्या जाट के यहाँ हुआ । बचपन में ही इनका विवाह पनेर के पटेल की लडकी पैंमल से हुआ किन्तु अल्पायु के कारण गौना

नहीं हुआ । तेजाजी जब युवा हुए तो एकदिन भाभी के कटु वचन सुनकर अपनी पत्नी को लाने हेतु पनेर की ओर चल पडे । मार्ग में अपशुकन हुए किन्तु तेजाजी ने उनकी परवाह नहीं की । ससुराल पहुँचने पर सास ने भी बिना सोचे समझे कह दिया कि 'कुण नाग रो कोटियोडो आयो है जिको म्हारी गायां भिडकाय दी ।' ऐसे कटु वचनों को सुनकर तेजाजी बाहर से ही चले गये । पत्नी के आग्रह पर वे हीरा के घर ठहरे । रात में मीणा लोग हीरा की गायें ले गये तो तेजाजी ने उनका पीछा किया और युद्ध करके गायें छुडा लाये । लेकिन एक बछडा कम होने की वजह से उन्हें दुबारा जाना पडा । मार्ग में आग में जलते हुए साँप को देखकर दयालु तेजाजी ने उसे भाले से बाहर निकाला । लेकिन साँपने कहा कि मैं तुम्हें डसूंगा । तुमने मुझे बचाकर अपराध किया है । मैं अपनी नागिन के साथ जल रहा था । अब वह तो जल गई और मैं बच गया । तेजाजी को अपनी गलती पर पश्चाताप हुआ । उन्होंने सर्प को वचन दिया कि वे गुजरी को उसका बछडा सौंप कर उसके पास आ जायेंगे । तेजाजी ने वही किया । वे हीरा गुजरी को बछडा सौंप कर वापस साँप के पास लौट गये । साँप ने घायल तेजा को कहा कि तुम्हारा शरीर क्षत-विक्षत है अतः कहाँ डसूँ । तब तेजाजी ने जीभ निकाली और साँप ने उन्हें डस लिया । तेजाजी का तेजस्वी शरीर निर्जीव हो गया । उनकी पत्नी उनके साथ सती हो गयी । तभी से तेजाजी की मूर्ति घोडे पर बैठे हुए हाथ में भाला लिये हुए तथा साँप द्वारा काटते हुए की बनाई जाती है ।

★★★

वीर भाथीजी महाराज : गोगा महाराज : घोघा बापा, गोगा बापा, वाच्छडा दादा[४९] (गुजरात)

लीली लीली लेमडीओनी छाय महाराज, हालो ने फागवेल धाम जईअे ।
धोळी धोळी धजायुं लहेराय महाराज, हालोने फागवेल धाम जईअे ॥

गुजरात के खेडा जिले में कपडवणज से करीब ३० कि. मी. की दूरी पर फागवेल गाँव आया हुआ है । फागवेल के ठाकोर श्री तखतसिंह और अक्कलबा के यहाँ ई. स. १६०० में कारतक सुदी एकम के दिन वीर भाथीजी का जन्म हुआ था । जन्म के वक्त भाथीजी के भाल प्रदेश में नागफणी का चिह्न था ।

भाथीजी को गायों और साँप के प्रति अगाध प्रेम था । सात साल की उम्र में जब भाथीजी अपने साथीयों के साथ गायें चराते वक्त दोपहर को नीम के वृक्ष के नीचे आश्रय ले रहे थे तब बिल में से एक फणीधर नागने बाहर आकर अपनी फेण निकाली । सब साथी डर से गभराकर दौडने लगे और भाथीजी को वहाँ से निकल जाने को जोर जोर से कहने लगे । लेकिन भाथीजी वहाँ से नहीं हटे । फणीधर नाग और भाथीजी की एक नजर (दृष्टि) होने से भाथीजी ने नाग देवता को कहा कि, ''नागदेवता अपने स्थान पर चले जाओ ।'' नागदेवता भाथीजी को शीश नमाकर अपनी फेण वापस लेकर अपने बिल में चला गया ।

जब अक्कलबा ने यह सुना तो भाथीजी को वहाँ गायें चराने के लिए नहीं जाने को कहा । तब भाथीजी ने कहा कि, ''मुझे नाग देखने को बहुत मजा आता है और मैं हररोज नाग को दूध

पीलाने के लिए जाऊँगा ।'' माता अक्कलबा और पिता तखतसिंह ने भाथीजी को बहुत मना किया लेकिन भाथीजी नहीं माने और खुद ने भी दूध पीना छोड दिया । कई दिनों के बाद नाग को दूध पीलाने के लिए भाथीजी को भेजे । जैसे दूध का कटोरा भाथीजी ने बिल के पास रखा तब नाग बिल में से बाहर आकर दूध पीकर वापस अपने बिल में चला गया । फिर यह हररोज का नियम बन गया । और यह सारी बातें आपस में फैल गई । गौभक्त होने के कारण गौसेवक, गौभक्त ऐसे नाम से भाथीजी को लोग पहचानने लगे । और जब अक्कलबा भाथीजी को जंगल में नहीं जाने को कहते तब भाथीजी कहते हैं कि, ''नाग पूजा, गौसेवा, गरीबों का दुःख जानने को जंगल में घूमना मुझे बहुत पसंद है । मुझे मेरा काम करने दो और जगह जगह पर मुझे घूमने दो ।''

जंगल में और आसपास के गाँव वालों को जब साँप डसता है (दंश देता है) तब भाथीजी वहाँ पहुँच जाते हैं और गाँववालों को बचा लेते हैं । भाथीजी ने गाँव गाँव में गायों के लिए घासचारा और पानी पीने के लिए सवलतें कर दी गई ।

फागवेल के आसपास के प्रदेश को खाखरिया जंगल से भी जाना जाता है । क्योंकि यहाँ खाखरा यानी कि पलाश के वृक्ष बहुत होते हैं । यह जंगल में नाग के कई बिल होने के कारण नाग पकडने के लिए शेरु और फेरु नामक दो वादी लोग फागवेल प्रदेश में आये । गायें चराते भाथीजी ने यही देखा तो उन्होंने पूछताछ की ।

यहाँ सैंकडों नाग मिलेंगे ऐसी जानकारी मिलने से हम नाग को पकडने आये हैं, ऐसा सुनकर भाथीजी ने उनको यहाँ से चले जाने को कहा । लेकिन हम नाग को पकडे बिना नहीं जायेंगे ऐसा शेरु और फेरु ने कहा । भाथीजी गुस्से हो गये और पकडे हुए नाग को छुडा दिये, साँप रखने की टोकरी जला दी और शेरु-फेरु को मार-पीट कर खदेड दिये ।

शेरु और फेरु आतरसुंबा गाँव में आकर कासम नामके मुस्लिम को कहा कि, ''फागवेल गाँव के भाथीजी ने हमारे साँप-नाग को भगा दिया और साँप को रखने की टोकरी भी जला दी और हमको मार-पीट कर हमारे पर त्रास - सितम गुजारा है ।

यह सुनकर कासम गुस्से हो गया और सिंधी, पठाण, मुगल और चाउस (आरब) सभी को बात बताई । ये सब कासम की तरह गुस्से हो गये और सब कासम की अगुवाई में सब मलेच्छों फागवेल-तखतसिंह के दरबार में आये । उस वक्त मलेच्छों को पडकारते हुए भाथीजी ने कहा कि, ''ऐसे अधम काम करने वाले पापीओं के पक्ष लेकर आये हुए पापीओं । खबरदार यहाँ से कोई भागा तो मारा जायेगा ।'' और भाथीजी ने म्यानमें से तलवार खींची ।

''ये हमारी भूमि है । जंगल के रखवाला करने वाले नागदेवता और इस भूमि के पशु-पक्षी को मारने की या उनकी चोरी करनेवाले को हम जिन्दा नहीं रखेंगे । लेकिन आज तुम सब बिना हथियार आये हो इसलिए वापस जाने देते हैं ।''

ऐसा सुनकर सब मलेच्छ लोग वापस चले गये लेकिन उनके मनमें वैर के बीज का निर्माण हो गया ।

भाथीजी के वीरत्व की बात चारों ओर फैल गई और उनकी वाहवाही होने लगी । गोपालक लोग भाथीजी को देव मानने लगे । कई लोगों नागदेव का अवतार कहकर प्रशंसा करने लगे ।

दूधातेल राज के राजा भूपतसंग और राणी सज्जन बा की कुंवरी कंकुबा के साथ भाथीजी का विवाह तय हुआ । भाथीजी की बारात बाहरगाम दूधातेल जानेवाली है ऐसी जानकारी मिलने से कासम, शेरु और फेरु, सिंधी, मुगल, पठाण, आरब, कसाई सब एकत्रित हुए और जब भाथीजी विवाह करने को दूधातेल गये उस दिन मलेच्छों फागवेल गाँव की गायों को भगा कर खाखरिया जंगल में ले गये । और गोपालकों को मारपीट की ।

भाथीजी विवाह के मंडप में बैठे हैं । मंगल फेरे की विधि हो रही है वहाँ घायल हुए कई गोपालक आते हैं और कहते हैं कि, ''महाराज अपनी गायों को मलेच्छ लोग चुरा ले गये हैं और हम सब को मारपीट करते हुए कहते थे कि वादी के समय का वैर खतम हुआ ।''

वीर भाथीजी चौथा मंगल फेरा अधूरा रखकर विवाह मंडप में से खडे हो गये । वरमाला तोडकर मंडप में से घोडे पर सवार होकर खाखरिया के जंगल की ओर निकल पडे । विवाह मंडप में छुपकर बैठा हुआ एक नाग भी भाथीजी के साथ घोडे के आगे आगे दौडने लगा ।

खाखरिया जंगल में आकर भाथीजी ने पडकार किया और कहा कि, ''खबरदार चोरटाओ । कोई भागेगा तो तीर (बाण) से मौत हो जायेगी ।''

मलेच्छों भाथीजी के सामने आये तो तीर छोडकर कई मलेच्छों को मौत के घाट उतार दिये । और दोनों हाथों से तलवार घुमाते हुए भाथीजी मलेच्छों को मारते हुए चले जाते थे । दूसरी ओर नागदेव भी दुश्मनों को गले, हाथ, पग, मुँह पे उछल उछल कर काटने (डंशने) लगे ।

इस युद्ध में एक संधी वृक्ष के पीछे छीपा रहा था उसने भाथीजी को गरदन पर जोर से तलवार का घा किया । तलवार के घा से भाथीजी का मस्तक धड से अलग हो गया । संधी को भी नाग ने डस लिया और संधी की भी मौत हो गई ।

भाथीजी का धड दोनों हाथों में तलवार लेकर झूझ रहा था । जमीं पे गिरता नहीं था । शत्रुओं के शब यहाँ तहाँ पडे थे । नागदेवता भाथीजी के शीश (मस्तक) पर अपनी फणा (फेण) फैला कर बैठे थे ।

भाथीजी की पत्नी कंकुबा आई और नागदेवता को कहा कि, ''घोघा बापजी । शूरा के शीश की रखवाली करने वाले देव । मेरे पतिदेव का शिर लेने दो, और आप अपने स्थानक पर चले जाओ ।'' तब नागदेवता अपने स्थानक पर चले गये ।

माता अक्कलबा भी खाखरिया के जंगल में आ गये और रोते हुए तलवार घुमाते हुए अपने बेटे को कहा कि, ''धन्य है क्षत्रियवीर । धन्य हे गौरक्षक को । अब शांत हो जाओ । खमैया करो बेटा । विवाह का आनंद मनमें रह गया मेरे लाडकवाया लाल । अब शांत हो जाओ ।'' और भाथीजी का धड जमी पे गिर गया ।

उसी वक्त भाथीजी ने अपने बडे भाई हाथीजी के शरीर में प्रवेश किया और कहा कि, ''मैं भाथीजी हूं । सभी जगह पर मेरे स्थानक स्थापित किया जाय । स्थानक पर सफेद (धोळी) धजा फहराना, घी का दिया जलाना और गूगळ का धूप करना । कारतक सुद एकम के दिन मेला लगाना । किसी को भी जहरीला जंतु या सर्प डंसे (काटे) तो मेरे नाम का भजन (धून) करना ।

मैं भूवा-ओझा के अंग में प्रवेश कर के नागदंश का जहर निकालूंगा । कई जगह नाग दिखाई दे तो मेरे नाम के सोगंद देने से वहाँ से चला जायेगा, यही मेरा वचन है ।''

इसके बाद भाथीजी की पत्नी कंकुबा के शरीर में प्रवेश किया । कंकुबा बोली, ''स्वामी । नाथ । वीरात्मा भाथीजी । शूरा देव मैं आप के साथ आ रही हूँ ।'' ऐसा कहकर कंकुबा भाथीजी की जलती हुई चिता में प्रवेश कर सती हो गई ।''

सब को रोते हुए देखकर और चिता पे चढते वक्त कंकुबा ने कहा कि :

ए रोशो मा कोई जण, जान जाय अमरापरे ।
जुग जुगना सगपण, कंकु ने भाथी तणा ॥

★★★

ए ..... भले मळ्या आ मांडवे, जानमां आवेल जण ।
चांदलो, चूडलो, चूंदडी मारा अखंड एवातण ॥

★★★

आज भी गुजरात के छोटे छोटे गाँवों में भी वीर भाथीजी महाराज के स्थानक दिखाई पडते हैं । गुजरात के कई प्रदेश में भाथीजी को भाथीजी महाराज, घोघाबापा, गोगाबापा, गोगाजी महाराज, वाच्छडा दादा, नारसंग दादा ऐसे कई नामाभिधान से पुकारे जाते हैं । फागवेल में आज भी कारतक सुद एकम से पंचमी तक - पाँच दिन का मेला लगता है । भाथीजी के घोडे के आगे नागदेवता भी सदैव रहते हैं । कहते हैं कि आज भी इस खाखरिया वन में जो भी खाखरा (पलाश) के वृक्ष उगते हैं उसमें से एक डाली पर लहू के छींटे वाले पान होते हैं ।

गुजरात में भाथीजी महाराज-गोगा महाराज के मंदिर - (स्थानक) देवडा, पोरबंदर, पाटण, गोधरा, भाणवड, खंभालिया, द्वारका, मांडवी और अंजार में प्रमुखतः स्थापित है । भाथीजी महाराज सोलंकी वंश के कुलदेवता माने जाते हैं । फागवेल गाँव कपडवणज और प्रसिद्ध यात्राधाम डाकोर से करीब ३० कि. मी. की दूरी पर आया हुआ है ।

जैसल जाडेचा (राजस्थान) और जेसल जाडेजा (गुजरात)

राजस्थान और गुजरात में जैसल जाडेजा की लोककथा में कई भेद के साथ साम्यता दिखाई देती है । पहले इस राजस्थान की लोकगाथा देखें ।

सुवारथ नामक एक खाती था । उसको कोई सन्तान न थी, इससे उसकी स्त्री अत्यन्त दुःखी रहती थी । एक दिन सुवारथ ने लकडी की दो घोडियाँ एक एक लडकी बनायी और उन्हें अपनी पत्नी को मनोविनोद के लिए सौंप दिया । एक दिन एक साधु उनके घर में भिक्षा के लिए आया । जब सुवारथ की स्त्री उसके लिए भोजन तैयार करने के लिए रसोई में गई तो साधु ने काठ की बनी हुई दोनों घोडियों तथा उस लडकी को सप्राण कर दिया । भोजन लेकर खाती की स्त्री रसोई में से आई तो देखा कि साधु वहाँ नहीं था और लडकी तथा घोडियाँ जीवित रूप में थी । पति-पत्नी दोनों साधु के पीछे चले परन्तु वह नहीं मिला । एक पत्र मिला जिसमें लिखा था कि

इन घोडियाँ एक लडकी को एक निश्चित समय पर गुरुजी को भेंट चढा देना । लडकी का नाम तोळांदे था ।

समय आने पर सुवारथ अपनी पत्नी के साथ घोडियाँ एवं तोळांदे गुरुजी को भेंट चढाने के लिए ले चला । उन्हीं दिनों जैसल नामक एक भयंकर डाकू था । वह डाका डालकर अपने घर पहुँचा तो संयोग से उसके भोजन में एक बाल निकला । इस पर जैसल नाराज हुआ । उसकी भावज ने ताना मारा कि देखूं ऐसी कौन-सी स्त्री लाओगे, जो मुझ पर नाराज हो रहे हो । जैसल ने कहा कि तुम कहो वही स्त्री में ला सकता हूं । उसकी भावज ने तोळांदे का नाम बतलाया । जैसल उसी समय उसका पता लगाकर उसे लाने के लिए चल पडा । सुवारथ खाती गुरुजी की सेवा में पहुँचा एवं घोडियाँ व तोळांदे उनकी भेंट चढा दी । रात के समय जग्मा हुआ । जैसल घास में छिपकर बैठ गया । उसके डर से घोडियों ने रस्सी तुडवा डाली । गुरुजी ने घोडियाँ बाँधने के लिए अपने चेलों को आज्ञा दी । खूंटा गाडकर घोडी बाँधी गयीं । संयोग से घास में छिपे रहने के कारण जैसल का हाथ खूँटे के बीच में ही आ गया । परन्तु वह समस्त पीडा सह गया । अन्त में गुरुजी ने भेद प्रकट किया और जैसल उनके सम्मुख खडा हुआ । वह गुरुजी का शिष्य बनने के लिए तैयार हुआ । परन्तु उसने तोळांदे व दोनों घोडियों को गुरुजी से मांगा । गुरुजी ने उनको उसे सौंप दिया । जैसल उनको लेकर अपने घर पहुँचा और अपनी भाभी के सामने उन्हें प्रस्तुत किया । उसके बाद वह अपना घर छोडकर संन्यासी के रूप में तोळांदे के साथ निकल गया ।[५०]

अब हम गुजरात की जेसल जाडेजा अने सती तोरल नामक लोकगाथा को देखते हैं ।

ई. स. १३८० में कच्छ में कावोजी नामक राजवी थे उनके दो पुत्र नारणजी और चांदोजी थे । कावोजी की शाख (ज्ञाति-कुल) जेसलजी होने के नाते जेसल जाडेजा कहा जाता है । कावोजी के दोनों पुत्र में नारणजी बडे और चांदोजी छोटे थे । नारणजी शांत स्वभाव के थे जब कि चांदोजी उद्धत, बलवान, स्वच्छंदी और क्रूर स्वभाव वाला था । चांदोजी बडा होता गया तो उनके कुकर्म बढते गये । वह शिकार खेलता, लूंट-फाट करता और लोगों को हेरान-परेशान करता था । चांदोजी की शाख जेसल होने के नाते उनको सब कोई जेसल के नाम से ही पुकारते थे ।

जब बडे भाई नारणजी ने उनको सलाह-सूचन किये तो जेसल जंगल में चला गया और एक टोली-जूथ बनाकर लूंटफाट करने लगा । बाद में जेसल भादली गाँव में रहने चला गया । जेसल की क्रूरता-अनीति बढती गई, उनके पाप बढते गये ।

एक बार जेसल सौराष्ट्र के सलडी-बांसवड गाँव के संत राजवी सांसतिया काठी के यहाँ तोरल घोडी और तलवार चुराने आया । लेकिन रास्ते में गिरनार पर्वत में एक महात्मा योगी मिल गये । उन्होंने कहा, ''तुम कौन हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? तुम बडे बदमाश लग रहे हो ? तुम्हारे कार्य से जगत असंतुष्ट है । तेरा जन्म उच्च कुल में हुआ है लेकिन तेरा कर्तव्य बडा भारी नीच मालूम आता है ।''

योगी महात्मा की बानी सुनकर जेसल को लगा कि मैं मनुष्य मिटकर राक्षस बना हूँ । लेकिन पारस का स्पर्श होने से ही लोहा स्वर्ण बन जाता है, उसी तरह मनुष्य भी राक्षस में से देव बन जाता है ।

जेसल ने योगीजी को कहा मैं ये सब डकैती - चोरी - लूंटफाट छोड दूंगा लेकिन आज जो मैं छेल्ली बार - अंतिम बार कार्य करने जा रहा हूं उसमें सफलता मिले ऐसे आशीर्वाद दिजीए । योगीजी ने कहा ये काम आसान नहीं है । फिर भी थोडा सा कष्ट सहन करने से ये तेरा काम होगा । लेकिन बाद में तूं अच्छा प्रभु भक्त हो ऐसा मेरा आशीर्वाद है ।

जेसल का हृदय परिवर्तन होने लगा । और उसने यह एक चोरी के बाद चोरी-डकैती नहीं करने का निश्चय किया । जेसल संत सांसतिया के घर पहुँचा । सांसतिया के यहाँ प्रभु भजन चल रहा था । पूजा पाठ - भजन पूर्ण होने के बाद घोडी चुराकर चला जाऊँ उसी नियत से घुडहार में छूप गया । लेकिन तोरल घोडीने तूफान मचा दिया । और खीले से बंधी हुई घोडी खीला के साथ बाहर आ गई । किसीने फिर से खीले को जमीन में गाड दिया और जो खीला था वो अंधकार में सोते हुए जेसल की हथेली में गाड दिया । जेसल के हाथ में वेदना होने लगी । जेसल थर थर काँपने लगा । मुझे इतनी वेदना होती है तो दूसरों को कितनी होती होगी । जेसल काँपने लगा और ईश्वर को याद करने लगा ।

सांसतिया के यहाँ पूजा-पाठ का कार्य संपन्न हो गया । भगवान का प्रसाद भी बांट दिया लेकिन एक आदमी का प्रसाद बचा । यह देखकर सांसतिया ने कहा यहाँ कोई नहीं है तो प्रसाद कैसे बचा ? यहाँ कोई छूपा तो नहीं है ? सांसतिया ने दो हाथ जोडकर बिनती की कि, ''भाई तू चोर हो या मित्र, हमारा अच्छा करने आया हो या बुरा । तेरे सब गुना माफ किये जायेंगे । तुझे जो कुछ चाहिए वो मिलेगा लेकिन तू प्रकट हो ।'' सांसतिया की बिनती सुनकर जेसल बोला, ''मैं यहाँ घोडी के पास हूं । मेरे हाथमें खीला भोंक दिया गया है ।'' ऐसा सुनकर सांसतिया घोडी के पास गया और जेसल को निकाला ।

भाई तू कौन है ? कहाँ रहता है ? यहाँ क्यों आया है ?

तो जेसल ने कहा कि मैं कच्छ में भादली गाँव में रहता हूं, जाडेजा राजपूत हूं, तोरल घोडी और तलवार चुराने आया हूं । मेरा नाम चंदाजी है लेकिन मुझे जेसल के नाम से पहचाना जाता है ।

सांसतिया जेसल को अपनी पुत्री तोरल के पास ले गया । तोरल ने जेसल को प्रसाद दिया । बाद में सांसतिया ने कहा कि ये तोरल, तोरल घोडी और तलवार ले जाओ ।

लेकिन जेसल ने कहा कि मैं तोरल स्त्री को नहीं तोरल नाम की घोडी लेने आया हूं ।

सांसतिया ने कहा मेरी प्रतिज्ञा है कि तूं जो कुछ भी लेने आया है वो प्रतिज्ञा मैं पूरी करूंगा । तूने कहा था कि, तोरल, घोडी और तलवार लेने आया हूं तो, ये तोरल (स्त्री), तोरल (घोडी) और तलवार ले जा ।

जेसल सुंदर स्त्री, तोरल घोडी और तलवार लेकर घोडी पर सवार होकर चला जाता है ।

कच्छ और सौराष्ट्र के बीच समुद्र के जल प्रवाह में नाव में बैठकर जेसल और तोरल आते हैं तब समुद्र में तूफान आ जाता है । नाव हिलने लगती है, उछल-कूद होती है, बचने की कोई उम्मीद नहीं है तब जेसल गभरा जाता है लेकिन तोरल शांति से सब कुछ देखती है । जेसल जब तोरल से कहता है कि, आपको डर नहीं लगता ? आपको गभराहट नहीं होती जब मृत्यु सामने है तो ? तब तोरल ने कहा कि, आप तो पुरुष हो । मर्द होने से भी आप डरते हो ? डर तो सभी

को होता है फिर भी मैं तो नहीं डरती और याद दिलाती हुई तोरल कहती है कि, आप भूल गये कि जब बैल चुराये थे तब ईश्वर ने आपको बचाये थे । आप वहाँ बैठे थे तो भी आप दिखाई नहीं दिये थे । सच्चे मन से की गई ईश्वर प्रार्थना से प्रभु अवश्य मदद करता है । आप प्रभु का भजन करो और अपने पापों का प्रायश्चित करो ।

यहाँ लोकगीत के माध्यम से तोरल प्रश्न करती है और जेसल जवाब देता है :

तोरल : पाप तारुं परकाश जाडेजा धरम तारो संभाळ रे,
तारी बेडली ने बुडवा नहीं दऊं जाडेजा रे एम तोरल कहे छे जी ॥

जेसल : घणा कर्या अपराध तोरलदे घणा कर्या अपराध रे,
मारी बेडली हवे नहि तरे तोरलदे रे एम जेसल कहे छे जी ॥

तोरल : धरम तारो संभाळ जाडेजा धरम तारो संभाळ रे,
तारी बेडलीने बुडवा नहीं दऊं जाडेजा रे एम तोरल कहे छे जी ॥

जेसल : हरण हण्या लख चार तोरलदे हरण हण्या लख चार रे,
वनना मोरला मारिया तोरलदे रे एम जेसल कहे छे जी ॥
लूंटी कुंवारी जान तोरलदे रे लूंटी कुंवारी जान रे,
सात वीसु मोडबंधा मारिया तोरलदे रे एम जेसल कहे छे जी ॥
गोंदरेथी वाळी गाय तोरलदे रे गोंदरेथी बाळी गाय रे,
गौंधण तरस्या वाळीया तोरलदे रे एम जेसल कहे छे जी ॥
बेन भाणेज दुभावीया तोरलदे रे बेन भाणेज दुभाविया रे,
तोडी सरोवर पाळ तोरलदे रे एम जेसल कहे छे जी ॥
जेटला माथाना वाळ सतिराणी जेटला माथाना वाळ रे,
तेटला कुकरम तो में क्यां तोरलदे रे एम जेसल कहे छे जी ॥
बोल्या जेसल राय तोरलदे रे बोल्या जेसल राय रे
संत अमरापुरमां वसे तोरलदे रे एम जेसल कहे छे जी ॥

तोरल : धरम तारो संभाळ जाडेजा धरम तारो संभाळ रे,
तारी बेडली ने बुडवा नहीं दऊं जाडेजा रे एम तोरल कहे छे जी ॥

इस तरह जेसल जाडेजा सति तोरल के सम्मुख अपने किये कुकर्मों का पश्चाताप करता है अपने कर्मों का स्वीकार करने से प्रभु प्रसन्न होते हैं । समुद्री तूफान बंद हो जाता है । और जेसल और तोरल समुद्र पार करके सही सलामत कच्छ में अपने गाँव भादली पहुँच जाते हैं । और जेसल ईश्वरमग्न होकर प्रभुभक्त बन जाता है । जेसल को ज्ञानप्राप्ति होती है । जेसल के यहाँ साधु आने लगे और जेसल भक्त बनकर प्रसिद्ध हो गया । बाद में जेसल भादली गाँव छोडकर अंजार में आ जाता है ।

जेसल रात-दिन भजन करता रहता था इसलिए उसके पास भरणपोषण करने के लिए कुछ था ही नहीं । फिर भी जो कोई अपने आंगन आये उसको भोजन किये बिना जाने नहीं देता । एक

दिन जेसल को अपने गाँव भादली जाने को हुआ तो तोरल को कहा कि अपने आंगन आये हुए किसी को भूखा मत जाने देना । ऐसा कहकर जेसल भादली गया ।

जेसल के जाने के बाद एक साधु आया । तोरल ने उसको बडे आदर से घर में बिठाया । लेकिन साधु को भोजन कराने के लिए कुछ था ही नहीं । तोरल सुधीर नायक बनिये के वहाँ गई । लेकिन सुधीर बनिया मोहांध था । उसने तोरल के पास अभद्र मांग की । तोरल संकट में आ गई । भोजन किये बिना साधु चला जाय वो उसे मंजूर नहीं था और अभद्र मांग से उनका सतीत्व लूट जाता था । साधु को जल्दी थी । इसलिए तोरल ने हां भर दी और रात को आने का वचन देकर रसोई का माल सामान लेकर चली गई । रसोई बनाकर साधु को भोजन कराया । साधु विदा हुए । साम को जब जेसल घर पर आये तो तोरल ने सबकुछ बता दिया । सुधीर बनिया कुद्दिष्ट वाला है उसका उद्धार करना चाहिए । उसका अज्ञान दूर करना चाहिए । ऐसा कहकर तोरल को लेकर जेसल रात को सुधीर के घर पहुँचे । बारिश शुरु हो गई थी । बीजलियाँ चमकती थी । जेसल ने तोरल को सुधीर के घर छोड दी और नीचे बैठा । तोरल प्रथम मंजिले पर गई तो सुधीर ने कहा कि, ''आप के पाँव कादव से बिगडे होंगे धो डालो ।'' तब तोरल ने कहा कि, ''मेरे पाँव नहीं बिगडे हैं ।'' तब सुधीर ने कहा कि ''इतनी बारिश हो रही है फिर भी आपके पाँव नहीं बिगडे है ?'' तब तोरल ने कहा कि, ''जेसलजी मुझे कंधे पे बिठा के लाये हैं तो मेरे पाँव कैसे बिगडेंगे !''

जेसल का नाम सुनकर सुधीर थरथर कांपने लगा । और बोला कि, ''माताजी मैं अधम हूं । नीच हूं । मुझे क्षमा करें । मैं अपने शरण हूं ।'' तब तोरल ने कहा सुधीर शांत हो जाओ । ईश्वर का भजन करो । सुधीर जेसलजी के पाँव में पडा और गिडगिडाने लगा । बाद में सुधीर ईश्वर भक्त बन गया । सुधीर का हृदय परिवर्तन हो गया । इसी तरह तोरल ने तीन नर का उद्धार किया ।

तोरले त्रण नर तार्या, सांसतियो ने सुधीर ।
जेसल जगनो चोरटो, पलमां कीधो पीर ॥

मेवाड (राजस्थान) में आये हुए मेवासागर गाँव में मालदे बडा जागीरदार था । उनकी रानी रूपांदे थी । मालदे और रूपांदे ने कच्छ के जेसल-तोरल की प्रशंसा सुनी थी । वो दोनों जेसल-तोरल को मिलने के लिए कच्छ आने को निकले । दूसरी ओर जेसल-तोरल ने मेवाड के मालदे और रुपांदे की प्रशंसा सुनकर अभिभूत हुए थे । वो भी मालदे-रूपांदे को मिलने के लिए कच्छ से मेवाड जाने को निकल पडे । रास्ते में चारों एक-दूसरे को मिले लेकिन पहचान नहीं पाये । बातबात में पहचान हुई और चारों आश्चर्य में पड गये । चारों ने ज्ञान और उपदेश की बातें की । सुबह मालदेजी और जेसलजी दातून करने के लिए बैठे तो तोरल ने कहा कि, 'यह पानी तो नमक वाला है पीने लायक नहीं है ।' तब रूपांदे ने कहा कि, 'तोरलदे आप तो सती है । आपकी इच्छा हो तो समुद्र भी आप मीठा अमृत समान कर सकती हो, तो यह कूआं आपके लिए क्या चीज है ?' तोरलदे ने विचार किया कि रूपांदे मेरी कसौटी करना चाहती है इसलिए कटाक्ष में बोली है ऐसा सोचकर ईश्वर की आराधना की । तोरल की प्रार्थना से कुएँ का पानी मीठा हो गया ।

घरे भूल्या धोरी नमे कुवे कडवा पाणी
आधारे अमृत हुवा ए तोरल काठी राणी ॥

वर्षों के बाद मेवाड से मालदे और रूपांदे का पाठपूजा और भजन का निमंत्रण आता है । निमंत्रण का अपमान नहीं किया जा सकता और दोनों साथ में जा नहीं सकते इसलिए जेसल जी की आज्ञा से तोरलदे अकेली मेवाड जाने की तैयारियाँ करती है । तब जेसलजी अपनी व्यथा व्यक्त करते हुए कहते हैं :

रुदियो रुवे मायलो भीतर जले रे जी,
आ दुःख कोने रे संभळावुं जेसल कहे छे जी ॥
रोई रोई कोने रे बतावुं रे जाडेजो कहे छे जी,
अमे रे हतां, तोळी राणी उडे जल बेडला जी ॥

तोरलदे मेवाड जाने को तैयार हुई लेकिन उनका मन नहीं था । फिर मिलेंगे या नहीं ऐसे विचार आने लगे । फिर भी जल्दी वापस आने को कहकर तोरलदे मेवाड जाने को निकल पडी । जेसलजी ने कहा, ''मेरी ओर से दर्शन किजीयेगा और सोनैया पाट रखना ।''

तोरलदे को अकेली आई हुई देखकर मालदे और रूपांदे ने कहा कि जेसल जी क्यों न आये ? जेसलजी का स्वर्गवास तो नहीं हो गया ? दीये की बाती कम होने से शंका सच लगती है । तोरल सोनामुहर पाट पर रखकर दर्शन करके वापस अंजार आने को निकल पडती है । जैसे जैसे कच्छ नजदीक आता है तो जेसलजी के समाचार सुनने को मन व्याकुल होता है । अंजार की सरहद में आये तो ग्वालों को पूछा तो उन्होंने बताया कि जेसलजी ने समाधि ले ली है । जेसलजी ने समाधि लिये कितने दिन हुए ? तो ग्वालों ने बताया कि आज तीन दिन हुए हैं । जेसल पीर की जाने की खब्र सुनते ही तोरल का संसार सूना हो गया । मैं अकेली रहकर - जीवित रहकर क्या करुं ऐसी हृदयद्रावक और शोकार्द वाणी से पृथ्वी माता को अपने को भी आश्रय देने की बिनती की ।

पीर कहेवाणा रे जेसल ने तोळी बाई,
साधु कहेवाणा रे जेसल ने तोळी राणी ।
जोने दिलडे भ्रांत कदी नाणी रे,
अला हो जगमा सिद्धा पीर जेसल ने तोळी ॥

जेसलजी के स्वर्गवास से मालदे-रूपांदे, सांसतिया सब आते हैं और तोरलदे को उपदेश देते हैं ।

तोरलदे को मेवाड जाने के बाद सुधीर को समाधि तैयार करने की जेसलजी ने जिद की थी । अंजार नगर के सब लोग इकठ्ठे हुए और जेसलजी समाधि में बैठ गये । ऐसा सुनकर तोरलदे ने भी जेसलजी की समाधि के पास अपनी समाधि तैयार करने को कहा । समाधि तैयार होने के बाद सब को राम राम कहकर तोरलदे ने भी तीसरे दिन समाधि ले ली ।

कच्छ में आये हुए अंजार शहर में जेसलपीर और तोरलदे की समाधि आई हुई है । जो जेसल पीर और सती तोरलदे से जानी जाती है । गुजरात में उसकी बडी महिमा है । और आज भी जेसल पीर से पूजा जाता है ।

गुजरात और राजस्थान का पहले से नाता रहा है । राजस्थान में भाटी उगमशी के शिष्य संत मालदे-राव मल्लीनाथ और रूपांदे ने भी (ई. स. १३९९ में) जीवित समाधि ली थी ऐसा माना जाता है । जेसल-तोरल ने अंजार-कच्छ में ई. स. १३५१ में समाधि ली थी, ऐसा माना जाता है ।

यहाँ राजस्थान और गुजराती की लोकगाथा की तुलना में कई भेद को छोडकर कई साम्यताएँ हैं उनका निर्देश किया गया है ।

कहावती कथाओं में साम्यता

(राजस्थानी एवं गुजराती)

गुजराती और राजस्थानी कहावती कथाओं में कई कहावतें मिलती-जुलती आती हैं । कई कहावतें एक जैसी ही है । ऐसी साम्यता वाली कहावतों को हम यहाँ उदाहरण के तौर पर देखते हैं ।

हठीला, हठ छोड दे (राजस्थानी)

एक शेरनी को जब भूख लगी तो उसने शेर से कहा कि भूख लगी है, जाकर शिकार कर लाओ । तब शेर उठा उसने एक झटके के साथ अपने शरीर को झाडा, उसकी पूँछ खडी हो गई और आँखें लाल हो गई । उसने एक दहाड़ लगाई तथा एक ओर को दौड गया । थोडी ही देर में वह एक जँगली भैंसे को मार कर ले आया । एक गीदड ने यह सब देखा तो उसने सोया कि अब शिकार करने की अटकल मुझे भी आ गई है । वह दौड़ा-दौड़ा अपनी घरवाली के पास गया और बोला कि क्यों भूख लगी है क्या ? यदि भूख लगी हो तो मुझसे कहो, मैं आज शिकार करने की विद्या सीखकर आया हूँ । उसने हाँ करने पर गीदड़ ने कहा कि देखो मेरी पूँछ हवा में सीधी खड़ी हो गई है न ? और मेरी आँखे लाल हो गई है न ? तब सियारी ने कहा कि अभी तो पूँछ नीचे लटक रही है और आँखो की पुतलियाँ सफेद पड़ी है, तब गीदड़ ने उसे फटकारा और कहा कि तुम्हें इतनी भी तमीज नहीं । तब सियारी ने कहा कि नाराज क्यों होते हो ? तुम जैसा कहोगे मैं हाँ भर लूँगी । तब गीदड़ शिकार की खोज में दौड़ा । थोड़ी ही दूर पर एक ऊँट चर रहा था, गीदड़ ने झाड़ में घुसकर उसके मुँह पर अपना पंजा जमाया । ऊँट ने अपनी गर्दन ऊपर को उठाई तो गीदड़सिंहजी जमीन से पाँच हाथ उपर हवा में लटक गये । तब सियारी ने अपने पति से शिकार का हठ छोडने के लिए कहा, ''हठीला हठ छोड दे''। तब सियार ने कहा कि मैं हठ तो छोड दूँ, लेकिन कमबख्त ने तो मुझे जमीन से पाँच हाथ ऊपर उठा रखा है, कहीं जमीन पर पैर भी तो टिके:

सुन्दर का बोल मेरै मन भावै ।
पण धरती पर पग मँडण भी पावै ॥

(सुन्दरी के बोल मेरे मन को बड़े अच्छे लग रहे हैं लेकिन धरती पर पैर टिकने पाएँ तब तो शिकार करने का हठ छोडूं ।)

रढियाळा मूके छे पण सूंढाळा क्यां मूके छे ? (गुजराती)

वादळ साथे वातो करता गिरनारना डुंगरनी छायामां नानकडो नेस । नेस नजीक नानकडुं तळाव । तळावना कादवमां देडकांनो लांबो-पहोळो परिवार रहे । सवार-सांज आ परिवारनी महेफिल जामे, महेफिलमां संगीत रजू करवानी हरीफाई चाले । डरांउ डरांउना अवाजथी टाढा पहोरे वगडो आखो गुंजवा मांडे ।

आ तळावने कांठे रबारी, भरवाड अने चारणोना नाना मोटा नेस । अेनी पडखे खाखी बावानो अेक धूणो । धूणो धखावीने बावो तप करे । धूणानी पडखे हाथी बांध्यो रहे । महावत आ हाथीने सवार सांज पाणी पावा माटे तळावे लई जाय ।

हाथीने तळावमां आवतो जोई मेडक परिवारोनी संगीत सभाना रंगमां भंग पडतो । हाथी पाणी डहोळीने जतो रहे पछी संगीतनी रंगत जामती नहि । आथी एक दिवस बधा देडकां भेगां थयां अने पोताना राजा मेडकराज पासे पहोंच्यां । जईने फरियाद करी :

'राजाजी ! राजाजी ! आ जाडियो पाडियो हाथी दररोज आवीने देडकांना दरबारी रंगमां भंग पाडे छे । आपणी संगीतसभा मांड जामे छे त्यां अेने वेरणछेरण करी नाखे छे । लोकशाहीना जमानामां आवी सरमुखत्यारशाही शी रीते सही लेवाय ? तमे रजा आपो तो आपणा तळाव साम्राज्यमांथी डाह्या देडकाओनुं अेक प्रतिनिधि मंडळ मोकली हाथीने जणावी दईअे के हवे पछी जो अमारा तळावनी हदमां आवीने अडपलां करवानुं बंध नहीं करे तो अेनुं गंभीर परिणाम तारे भोगववुं पडशे ।

नक्की क्र्या मुजब बीजा दिवसे पांच दोढ डाह्या देडकाओनुं प्रतिनिधि मंडळ तळावना कांठे जई पाणीमांथी अर्धां मोढां बहार काढी, हाथी क्यारे आवे छे अेनी राह जोतुं बेठुं । बपोर सुधी हाथी देखायो नहीं अेटले तेओ अंदरोअंदर वातोअे वळग्यां :

'आ हाथीडाने आज तो स्पष्ट कही ज देवुं छे के कालथी अमारा तळाव तरफ ऊंची आंख करी छे तो आंख फोडी नाखीशुं । ऊंची सूंढ करी छे तो सूंढ तोडी नाखीशुं, अने जो पाणी पीधुं छे तो तारुं पेट फोडी नाखीशुं । तुं तारा मनमां समजे छे शुं ? तुं जाडो होय तो तारे घेर, अमे ताराथी बी नई जईअे ।'

आम बोले छे त्यां तो हाथीने सामे आवतो जोयो, हाथी तळावमां पाणी पीवा लाग्यो त्यारे पांचेय देडकां अेक वांढा देडकाने आगळ करतां कहेवा लाग्यां ।

'तुं आगळ जा । तुं वांढो छे अेटले पाछळ कोई वाट जोवे अेवुं नथी । अमारी देडकीओ अमने न जुअे ने तो ऊंडा कादवमां जईने डूबी मरे अेनी तने खबर छे ?'

आम प्रतिनिधि मंडळ वातोना वडां करतुं रह्युं त्यां तो हाथी पाणी पीने पाछो वळतो हतो त्यारे वांढो देडको छलांग मारीने पाणीमांथी बहार आव्यो ने बोल्यो :

'अे तारा माना हाथीडा ! ऊभो रहे । कालथी जो तळावमां पग मूकीशने तो तारो टांटियो ज भागी नाखीश । तारुं माथुं तोडी नाखीश, ने मारी मारीने चामडुं उतारी नाखीश ।'

आम देडको बोलतो रह्यो ने हाथी अेनी मस्तीमां चाली नीकळ्यो । बीजा देडका कहेवा लाग्या के हवे तो राजा पासे ज फरियाद करवी पडशे । अकळायेला बधा देडका खरा बपोरे मेडक राजाना महेले पहोंच्या, त्यारे मेडक राजानी मानीती राणी मेडकी नाक चढावीने बोली:

'स्वामी अत्यारे शयनगृहमां पोढ्या छे । अत्यारे केम अहीं आव्या छो ?'

'राणी साहेबा ! आ हाथी दररोज तळावमां पाणी पीवा आवे छे अने आपणा देडकांनी दरबारी संगीतसभामां भंग पाडे छे । मेडकराजा सिवाय अेने कोई मारी शके अेम नथी ।'

'ओह ! अेम वात छे ?'

अेम बोलीने मानीती मेडकी राणीअे मेडक राजाने जगाड्या ।

'स्वामी ! जागोने केटला बधा देडका आपणे आंगणे आव्या छे ।

आ सांभळीने मेडक राजा ऊंघमांथी जाग्या । देडकाओअे हाथीनी फरियाद करी । मेडक राजा ताडूक्या :

'क्यां छे अे हाथीडो ?'

'बापु तळावनी पाळ उपर ऊभो ऊभो पीपरनां पांदडां तोडीने खाय छे । आज तो अेने छठ्ठीनुं धावण ओकावी दो ।'

मेडक राजाअे बधां देडकांने बोलावीने हुकम क्र्यो :

'चालो, हाथी उपर चडाई करवी छे ।'

सांजे हाथी पाणी पीवा आवे त्यारे अेना पगमां गाळियो भरावी, ऊंडा पाणीमां खेंची जई डुबाडीने मारी नाखवानी योजना बनावी ।

संध्या समये देडकाओ तैयार थईने हाथीनी राह जोवा लाग्यां, मेडकी राणी अने अन्य देडकीओ मेडकराजानुं पराक्रम जोवा बेसी गई अने कहेवा लागी :

'रढियाळा राजा ! आज हाथीडाने तमारी भूजाबळनुं पाणी बतावी देजो ।'

त्यारे मेडकराजे गजगज छाती फुलावीने कह्युं :

'मेडकी राणी ! मूंझाईश नहि ! आज हाथीने तळावमां डुबाडी ना दउं तो मारुं नाम मेडक राजा नहीं ।

सांज पडी ने हाथी तळावमां पाणी पीवा आव्यो त्यारे मेडकराजाअे बनावेल गाळियो हाथीना पगे बांध्यो अने बीजो छेडो पोतानी कमरे बांध्यो ।

देडकाओअे मेडक राजानी जय बोलावी, त्यारे मेडकीराणी बोली :

'हवे जोजो अमारा राजाना पराक्रम ।'

हाथीने तो आ मेडक पराक्रमनी कंई खबर ज न हती । अे तो पाणी पीने पाछो वन तरफ वळी गयो । मेडकराजा पाछळ पाछळ खेंचावा मांड्या ने बूमो पाडवा मांड्या ।

'हाथीडा ! आज तारा भुक्का काढी नाखुं.' मेडकराजा भूंडा हाले हाथी पाछळ खेंचाय छे । मेडकी राणी मेडक राजाने पोरस चडावे छे ।

'स्वामी ! तमे तळावमांथी हाथीने खेंचीने छेक वगडामां लई गया । तमे घणुं जोर कर्युं छे । हाथीने बिचाराने क्यां सुधी खेंची जशो । मारा रढियाळा राजा हवे तो हाथीने छोडो !'

ढसडाता अथडाता - कुटाता मेडकराजा ढीलाढस थईने बोल्या : 'रढियाळा तो हमणां मूके, पण सूंढाळा क्यां छोडे छे ?'

आ कहेवत मोटी मोटी डंफाशो मारनार फूलणजीओ क्यारेक भराई जाय छे त्यारे अेना माटे वपराय छे ।

*****

लोभी पंडित (राजस्थानी)

एक पंडित बडा लोभी था । एक दिन उसकी स्त्री ने बाजार से एक नारियल लाने के लिए उसे कहा । पंडित ने बाजार में जाकर दुकानदार से पूछा तो उसने एक नारियल की कीमत चार पैसे बताई । पंडित ने कहा कि चार पैसे तो बहुत हैं, तीन पैसे में देना हो तो दे दो । दुकानदार ने कहा कि तीन पैसे में आगे मिलते हैं । पंडितजी आगे चले । अगले दुकानदार ने नारियल की कीमत तीन पैसे बताई तो पंडितजी ने पूछा कि कहीं दो पैसे में नारियल मिल सकता है क्या ? दुकानदार ने कहा कि आगे मिलेगा । पंडितजी फिर आगे गये तो वहाँ उन्होंने एक पैसे में नारियल मिलने का स्थान पूछा । दुकानदार ने कहा कि आगे नारियल का वृक्ष हैं, उन पर चढ़कर नारियल तोड लीजिए, कुछ भी नहीं लगेगा । पंडितजी को यह बात बहु अच्छी लगी और आगे जाकर नारियल के वृक्ष पर चढ़ गये । पंडितजी का पैर फिसला तो दोनों हाथों से वृक्ष की डाल को पकड़ लिया ।

जहाँ पंडितजी लटक रहे थे उसके ठीक नीचे एक बहुत बड़ा गड्ढा था, जिसमें गिरते ही उनका प्राणान्त हो जाता । पंडितजी को वहाँ लटके जब बहुत देर हो गई तो उधर से एक महावत अपने हाथी पर चढ़ा हुआ निकला । पंडितजी ने उससे प्रार्थना करते हुए कहा कि मुझे नीचे उतार दो मैं तुम्हें एक सौ रुपये दूँगा । महावत अपने हाथी को वहाँ ले गया, परन्तु उसने ज्योंही पंडितजी के पैरों को पकड़ा, हाथी नीचे से सरक कर अलग जा खड़ा हुआ । अब दोनों लटक गये । फिर एक ऊँट वाला आया । दोनों ने उसे सौ - सौ रुपये देने की बात कहकर उन्हे उतारने की प्रार्थना की । लेकिन महावत की तरह ही वह भी लटक गया । फिर एक घुडसवार आया और उसकी भी वही गति हुई । अब चारों नारियल के वृक्ष से लटकने लगे । घुडसवार ने पंडित से कहा कि पंडितजी ! आप हाथ नहीं छोड देना, मैं आपको एक हजार रुपये दूँगा । पंडितजी ने सोचा कि एक हजार रूपये कितने होते हैं । उसने खुशी से दोनों हाथ फैलाकर ज्योंही कहा कि एक हजार रुपये तो इतने होते हैं, चारों खड्डे में गिर पड़े और मर गये । तभी किसी ने कहा -

अति लोभ न कीजिए, लोभ पाप की धार ।
एक नारेल के कारणै पडया कुवै में च्यार ॥

अधिक लोभ नहीं करना चाहिए लोभ पाप की धार है । इसी लोभ के कारण एक नारियल की खातिर चार मनुष्य कुएँ में गिर पड़े ।

लोभे लख्खण जाय (गुजराती)

एक देशी रजवाडुं । बापु गामना रणीधणी । अे कहे अे कायदो ने अे कहे अे न्याय । खेडूतो बापुने बापतुल्य मानता । बापु अेनी अरज सांभळता अने तरत अेनो निकाल पण करता ।

गाममां भरवाडो पण वसे । भरवाड अेटले संपीली कोम । संपने जोरे भरवाडो काचापोचा खेडूतोनुं खेतर भेळवी मूकता । माथाभारे भरवाडो साथे कोई माथुं ऊंचकतुं नहि । जो कोई सामे थाय तो लाकडीओ ऊडे ।

अेकवार रूडिया भरवाडे पसा पटेलनुं जुवारनुं खेतर मधराते जईने भेळी मेल्युं । बीजे दिवसे बापु पासे फरियाद गई । बापुअे रूडियाने डेलीअे बोलाव्यो अने कह्युं :

'रूडिया हमणांथी तारी राड्य बहु वधी गई छे । पसा पटेलना खेतरमां गायो छूटी मूकी, शुं काम अेनुं खेतर भेलाळ्युं ?

'बापु ! अधरात-मधराते झोकुं आवी गयुं अेमां गायो पसा पटेलना खेतरमां पहोंची गई । बापु आटलो गुनो माफ करो ।'

'सारुं जा, सो रूपिया दंड भरी दे ।'

सो रूपियानुं नाम सांभळतां ज रूडियानी आंखो फाटी गई । गाडाना पैडा जेवा राणी छापना रूपिया मारी पासे नथी बापु !' अन्नदाता अमारो गुनो माफ करो । एक गुनो तो ईश्वरेय माफ करे छे । तमे मावतर छो ।'

डाह्यो थया वगर दंड भरी दे । आ तारो आठमो गुनो छे । पसा पटेले काळी मजूरी करी, परसेवो पाडीने जुवार उगाडी छे । अे तारी गायो धरववा माटे नहि ।'

'बापु गायो खाय तो पुण्य थाय ।'

'पुण्यनी पूंछडी । अेने पुण्य नथी जोईतुं । अेना खेतरमां गायो चरावीने पराणे पुण्य करावुं छे ? भगवाननो थोडोक तो डर राख ।'

'बापु भगवाननो डर ना राख्यो होत तो आखुं खेतर ना चरावी दीधुं होत ! थोडुंक शुं काम चरावुं ?'

रूडियानी वातथी रोषे भरायेल बापुअे कह्युं :

'हवे डाहीनो थया वगर दंड भरी दे ।'

'बापु ! मारी पासे सो रूपिया तो नथी ज । बीजी कंईक सजा करो ।'

'तारी पासे रूपिया ना होय तो बीजी साज करुं छुं । अल्या सिपाईओ आनां कपडां उतारीने सो जोडा फटकारो ।'

'बापु बारमे जोडे तो मारा राम रमी जाय । मारां बैरी-छोकरां रझळी पडे । दया करो ने कंईक बीजी सजा करो । तमारी गाय छुं ।'

'अल्या सिपाईओ ! जाव डुंगळीनुं गाडुं भरी लावो ।'

'आ गाडामांथी अहीं ऊभो ऊभो डुंगळीना सो दडा खाई जा ।'

रुडिया भरवाडे सजा कंईक सारी छे अेम मानी ऊभा ऊभा डुंगळीना दडा खावा मांड्या । डुंगळीनो दसमो दडो खातां तो रुडियानां पेटमां बळतरा बळवा मांडी । आंखमांथी आंसु अने नाकमांथी पाणी वहेवा मांड्युं । मोंढामांथी सीसकारा मारतो मारतो डुंगळीना वीस दडा खाई गयो । पछी तो बापुने करगरवा मांड्यो :

'बापु ! मारा जीवना सम । हवेथी अेक पण डुंगळी नहीं खवाय ।'

'ना शुं खवाय । आ बधी डुंगळी तारे ज खावानी छे ।'

'बापु ! तमारे सजा करवी होय ते करो, पण डुंगळी नहीं खवाय ।'

'डुंगळी ना खावी होय तो जोडा खा ।'

डुंगळी खाईने कंटाळी गयेला रुडियाअे जोडा खावानी शरत स्वीकारी । सिपाईओअे रूडियाना कपडां उतारीने वीस-बावीस जोडा मार्या त्यां तो रूडियो बापुना पगमां आळोटवा लाग्यो ।

'बापु ! आ सिपाईओ मारी मारीने मारुं चामडुं उतारी नाखशे । जोडानो मार माराथी नथी खवातो । दंड लो पण मने सजामांथी छोडो ।'

'तो जा ! सो रूपिया भरी दे । हवे कोईनुं खेतर भेळव्युं छे तो तारी वात छे । आ फेरा सीधो जेल भेगो ज करी दईश ।'

'बापु ! हवे भूल नहीं करुं । दंडना सो रूपिया भरी दउं छुं पण मने छोडो !

राजने सो रूपिया भरीने रूडियो छूट्यो ।

त्यारथी कहेवाय छे के, लोभे लख्खण जाय, ते आनुं नाम । डुंगळी खाधी, जोडा खाधा अने उपरथी दंड पण भर्यो ।

*****

सूत्यां की पाडा जणै (राजस्थानी)

दो आदमियों की भैंसे साथ साथ ब्याने को हुई । दोनों उनको ब्याने की वाट देख रहे थे । रात अधिक बीत गई तब एक ने कहा कि दोनों आदमियों के जागने से क्या लाभ ? एक आदमी सो जाए और जब भैंस ब्याने को हो तब दूसरे को जगा लिया जाए । यों कह कर एक आदमी सो गया और दूसरा जागता रहा । थोडी देर बाद दोनों भैंस ब्या गई । जो जाग रहा था उसकी भैंस ने 'पाडा' प्रसव किया । और दूसरे की भैंस ने 'पाडी' । लेकिन चूंकि पाडी की कीमत पाडे से अधिक होती है, इसलिए जागने वाले ने 'पाडी' को अपनी भैंस के साथ लगा दिया और 'पाडे' को दूसरी भैंस के पास खडा कर दिया । फिर उसने अपने साथी को जगाया कि भाई । जल्दी से उठ, मेरी भी आँख लग गई थी । भैंसे तो ब्या गई है ।

जगाने पर उस आदमी ने कहा कि 'पाडी' तो मेरी भैंस के अनुरुप लगती है । तब दूसरे ने कहा कि नहीं, तुम्हारी भैंस ने तो यह 'पाडा' ही जना है । दोनों में विवाद होने लगा इतने में एक तीसरा आदमी वहाँ आ गया और उसने दोनों की बातें सुनकर कहा कि भई, जो कुछ हो, 'सूत्याँ की तो पाडा ही जणै ।'

(जो सोएगा उसकी भैंस तो पाडा ही जनेगी अर्थात् जो सोएगा वह घाटे में ही रहेगा ।)

जागतानी पाडी ने ऊंघतानो पाडो (गुजराती)

अेक गामनी आथमणी बजुअे भरवाडोनो नेस । आ नेसमां रुडियो अने भीमलो नामना भरवाडो रहे । बंनेना घर वच्चे बहु अंतर नहीं । रुडिया अने भीमलानी भेंसो अेक ज दिवसे गाभणी थई । आठ-नव महिने भेंसोने वियावानो वखत आव्यो ।

रूडियाने गळा सुधी खातरी हती के मारी भेंसने पाडी ज आववानी । तेथी रुडियो रातना निरांते ऊंघी जतो । परंतु भीमलो महा उस्ताद । अेने मनमां थया करे के मारी भेंसने पाडो ज आवशे । आथी भीमलो उपाधिमां घेर रहेतो अने भेंस क्यारे वियाय छे अेनुं ध्यान राखतो । राते पण ओसरीमां खाटलो ढाळीने सूतो । पति-पत्नी बेय जण वाराफरती जागता अने भेंसनुं ध्यान राखतां । रुडियाने आनी कंई ज चिंता नहोती । अेटले शांतिथी घरमां सूई जतो ।

चोमासानी मधरात थई त्यां तो बंने भेंसो वियाई, रूडियानी भेंसने पाडी आवी अने भीमलानी भेंसने पाडो आव्यो । भीमलो जमानानो खाधेलो । अेणे धीमे रहीने पोतानी भेंसनो पाडो रूडियानी भेंस नीचे मूकी आव्यो अने रूडियानी भेंसनी पाडी पोतानी भेंसना आंचळे वळगाडी दीधी । पछी भीमलो ओसरीमां ढाळेला खाटलामां जईने सूई गयो ।

सवारे भेंसों वियाणी छे अे जाणी रूडियो अने भीमलो भेंसो पासे जाय छे । रूडियानी भेंसने पाडो अने भीमलानी भेंसने पाडी धावती जोई अेक जण कहे छे । ''भै आ जमानो अेवो छे के जागतानी पाडी ने ऊंघतानो पाडो ।''

त्यारथी आ कहेवत समाजमां लोकप्रचलित बनी । अेक लीटीनी कहेवत माणसने केटलो बधो मूल्यवान उपदेश आपी जाय छे ।

*****

गरज मिटी रे 'गाँगला' गाँव सूं आटौ मांगला । (राजस्थानी)

गर्ज मिटी रे, गाँगला गाँव से आटा मांगला ।

गरज मटी अेटले वैद वेरी । **(गुजराती)**

संदर्भ-कथा : एक बीमार साधु को तीमारदारी करने के लिए चेले की आवश्यकता हुई तो उसने 'गाँगला' नाम के व्यक्ति को चेला बना लिया और उसे खुशी-खुशी सारा मठ सौंप दिया । चेला स्वयं मौज करता और गुरु की सेवा-टहल करता । गुरु की बीमारी के दौरान चेले को सभी बातों की पूरी छूट थी । पर ज्यों ही धीरे-धीरे चेले की तीमारदारी से गुरु ठीक हुआ तो उसने साफ तौर पर 'गाँगला' को बतला दिया कि अब बैठे-ठाले खाते से काम नहीं चलेगा । 'गाँगले' को गाँव से प्रतिदिन दोनों के लिए माँगकर भोजन लाना होगा ।

- गर्ज मिटने ही मुनष्य का रुख स्वयमेव बदल जाता है ।
- स्वार्थ ही मनुष्य का सर्वोपरी दर्शन है ।

➢ **सोनार री सौ ठक-ठक अर लुहार की एक घमीड़ ।(राजस्थानी)**

सुनार की सौ ठक-ठक और लुहार का एक घमीड़ ।

सो सोनीनी एक लुहारनी । **(गुजराती)**

संदर्भ-कथा : एक सुनार और एक लुहार में ऐसी घनिष्ठ मित्रता थी कि सगे भाई भी इनसे ईर्ष्या करते थे । लुहार तो सुनार के घर जब तक भोजन करता ही था, पर सुनार भी जात-पाँत का भेदभाव भूलकर उसके घर अकसर खाना खा लेता था । सुनार की दोस्ती के बाद लुहार के घर में भी अच्छी तरह सफाई रहने लगी थी । सुनार स्वभावतः लालची होते हैं । वह जब भी लुहार के घर जाता, कुछ न-कुछ चीज बिना माँगे उठा लाता - कभी काँटा कढ़ना, कभी चिमटा, कभी कुडची, कभी संडासी, पली, पलटा, जर, हथौड़ी इत्यादि । मित्र से क्या दुराव । सुनार तो खुश होता ही था । पर लुहार भी खुश हो जाता था । एक दिन स्वयं लुहार ने आगे चलकर दोस्त को अच्छा सफीट ऐरण घडकर दिया । तब पहली बार लुहारी के मन में वह बात अखरी । पुरानी सारी चीजें एकएक करके याद आने लगीं । मित्रता के नाते इतनी चीजें मुफ्त चली गई तो कोई बात नहीं । लेकिन मित्रता तो दोनों ओर है ! क्या सुनार अपने घर से मित्र को इस तरह कुछ लाने दे सकता है ? उसने लुहार को रात भर अच्छी तरह समझाया तो आखिर उसकी समझ में आ गया । सुनार कुछ दिन से एक सेठानी के लिए सोने की हँसुली घड़ रहा था । शायद कल तक संपूर्ण हो जाय । उसे पूरा विश्वास था कि जब सुनार उसके यहाँ से बीसियों चीजें ले गया है तो हँसुली के लिए मना थोड़े ही करेगा । मित्रो के बीच सस्ता - महँगा कुछ भी बखत नहीं रखता ।

सो दूसरे दिन लुहार जब सुनार के घर पहुँचा तो सचमुच हँसुली तैयार थी । मित्र बडे चाव से उजाल रहा था । भोजन करने के बाद हँसुली हाथ में लेकर उसे अच्छी तरह देखने लगा । लुहारी का रूप सौ गुना निखर जाएगा । जवान दीखने लगेगी । लेकिन जाते समय जब मित्र हँसुली बिना लौटाये ही रवाना हुआ तो सुनार ने मुस्कराते पूछा, 'इसे कहाँ ले जा रहे हो ?' लुहार ने सहज भाव से उत्तर दिया, 'तुम्हारी भाभी के लिए । बहुत खुश होगी । सुनार का मुँह उतर गया । हकलाते बोला, 'इसकी कीमत जानते हो कितनी है ?'

लुहार अब भी बात का सार नहीं समझा । अबोध की नाई जवाब दिया, 'मुझे कीमत जानकर करना ही क्या है ? मित्रता के बीच कीमत नहीं आँकी जाती ! भावना आँकी जाती है । हैसियत देखी जाती है । तुम मेरे यहाँ से कितनी चीजें लाये, मैंने एक के लिए भी मना किया ? उलटे इस हँसुली से पचास गुना ज्यादा वजन का तुम्हारे खास काम का ऐरण मैंने अपनी मरजी से बनाकर दिया!'

सुनार ने सोचा कि मित्र मजाक कर रहा है । लेकिन मजाक वजाक करने की तो उसे आदत ही नहीं है । जरूर लुहारी ने कुछ-न-कुछ पाटी पढ़ाई है । अब तो साफ बात करना ही उचित है। उसने मुस्कराने की चेष्टा करते कहा, 'एक ऐरण की बात खूब कहीं । तेरा सारा घर भी बीक जाय तो उस हँसुली का मोल नहीं चुक सकता ।'

लुहार को और कोई बात नहीं सूझी तो बडी गंभीरता से पूछा, 'फिर अपनी दोस्ती का क्या होगा ?'

'दोस्ती गई भाड़ में । आज पता चला कि मूरख की दोस्ती जी का जंजाल कैसे बनती है?'

लुहार से आगे कुछ भी सुनना बर्दाश्त नही हुआ तो सोने की हँसुली झट से फेंकने पश्चात्, दोनों कानों में अँगुलियाँ डालकर भुनभुनता हुआ वहाँ से रवाना हो गया ।

- सुनार की नन्हीं हथौड़ी की सौ ठक-ठक से लुहार के हथौड़े का एक बार भी ज्यादा भारी पडता है ।
- गरीब व्यक्ति बलवान का सपने में भी सामना नहीं कर सकता ।

➢ **अल्ला दिया तार-तार खुदा ले गया सोड उतार ।**

अल्लाह ताला ने थोडा थोडा करके दिया और खुदा ताला एक साथ ही सारा ले गया । **(राजस्थानी)**

खुदा देता है तो छप्पर फाड के देता है और लेता है तो थप्पड मार के लेता है । **(गुजराती)**

सन्दर्भ कथा : एक धुनिर्यां जाडे के दिनों में रजाईयाँ भरने का काम करता था । उसके पास बहुतेरी रजाईयाँ रूई भरने के लिए आतीं और वह प्रत्येक रजाई में से थोड़ी-थोड़ी रूई चुराकर जमा करता जाता । जब पर्याप्त रूई एकत्र हो गई तो उसने उस चुराई हुई रूई से अपने लिए एक रजाई भरी और रात को उसे ओढ कर खूब आराम से सो गया । सबेरे उठकर वह शौचादि के लिए गया तो पीछे से कोई उचक्का उसकी रजाई को उठा के ले गया । जब वह लौटा तो रजाई गायब थी । उस पर उसके मुँह से निकल पडा, ''अल्ला दिया तार-तार, खुदा लेग्या सोड उतार ।''

➢ **कडवी वेल की कडवी तूमड़ी अड़सठ तीरथ न्हाई ।**

गंगा न्हाई गोमती न्हाई, मिट्टी नहीं कड़वाई ॥ **(राजस्थानी)**

कागडो गमे तेटलुं गंगामां न्हाय तोय काळो ने काळो । **(गुजराती)**

तूंबे के कडवे फल से बनी 'तूमडी' को तीर्थो के जल में स्नान कराने से उसकी कटुता नहीं जाती । तीर्थों के जल में शारीरिक स्नान करने मात्र से मन का कलुष नहीं धुलता ।

संदर्भ-कथा : महाभारत का युद्ध समाप्त होने के बाद जब पाण्डव तीर्थों के स्नान हेतु जाने लगे तो उन्होंने भगवान कृष्ण से भी साथ चलने के लिए कहा । कृष्ण ने उनसे कहा कि मैं तो नहीं चल सकता, लेकिन मेरी ओर से इस तूंबी को स्नान करवा लाना । यों कह कर उन्होंने एक तूंबी उन्हें दे दी । पांण्डवों ने सभी तीर्थों में स्नान किया और साथ ही वे तूंबी को भी स्नान कराना नहीं मूले । जब वे स्नान करके लौटे तो भगवान कृष्ण ने सब को उस तूंबी का एक एक टुकडा प्रसाद-स्वरूप दिया । लेकिन सभी ने उन्हें चख कर कहा कि भगवान, यह तो बहुत कडवी है । इस पर भगवान कृष्ण ने पूछा कि क्या इतने तीर्थों के पवित्र जल में स्नान करने के बाद भी इसकी कडुआहट नहीं गई ? उनके कहने का तात्पर्य यही था कि मन की पवित्रता के बिना केवल शारीरिक स्नान से कुछ नहीं होता ।

- अडसठ तीरथ न्हाय तूमडी खारी ।

➢ **करंता सो भोगंता, खोदंता सो पडता । (राजस्थानी)**

जो जैसा करता है, उसे वैसा ही फल भोगना पडता है । जो दूसरों के लिए खाई खोदता है, वह स्वयं ही उसमें गिरता है ।

(१) जैसी करनी वैसी भरनी । (२) जेवुं वावे तेवुं लणे । (३) खाडो खोदे ते पडे । (४) जेवुं करशे तेवुं भरशे । **(गुजराती)**

संन्दर्भ-कथा : बादशाह का वजीर वेश बदले नगर में घूम रहा था कि उसने एक लडके को गड्ढा खोदते देखा । वजीर ने उससे गड्ढा खोदने का कारण पूछा तो लडका बोला - इससे तुम्हें क्या प्रयोजन है ? जो करेगा सो भरेगा, जो खोदेगा सो पडेगा । वजीर को वह लडका होनहार दिखलाई पडा । अतः वह उसे अपने यहाँ ले आया और उसे पढाने-लिखाने लगा । स्वयं वजीर को भी एक उतना ही बडा लडका था, लेकिन वह उस लडके की तुलना में मन्द-बुद्धि था । इससे वजीर को ईर्ष्या हो गई और उसने उस लडके को मरवा देने का निश्चय कर लिया । वजीर ने एक कसाई के घर जाकर कहा कि थोडी ही देर में तुम्हारे घर एक लडके को भेजूंगा सो उसे आते ही मार डालना । घर लौट कर वजीर ने उस लडके को एक रूपया देकर उस कसाई के यहाँ से मांस लाने के लिए भेजा । जब वह जा रहा था तो उसे राह में वजीर का लडका मिला जो अन्य लडकों के साथ खेल रहा था और सात बाजियां हार चुका था । उसने अपने सहपाठी को अपने पास बुला कर कहा कि तुम मेरी जगह खेलो, मांस मैं ला देता हूं । वजीर का लडका मांस लेने के लिए कसाई दे घर पहुँचा और कसाई ने उसे तुरंत मार डाला । बाद में जब वजीर को इस घटना का पता चला तो उसके मुँह से हठात् निकल पड़ा

- करंता सो भोगंता, खोदंता सो पडंता ।
- करै सो भरे, खोदें सो पडै ।

➢ **करम में लिख्या कंकर तो के करै स्योसंकर ।**

यदि स्वयं के भाग्य ही फूटे हुए हों तो भगवान शंकर भी क्या करें ।

(राजस्थानी)

नसीबमां डोळियुं तो घी क्यांथी होय ? **(गुजराती)**

सन्दर्भ-कथा : एक बूढा और उसकी बूढिया जंगल से लकडियां लाकर शहर में बेचते और अपने पेट पालते थे । एक दिन जिस रास्ते से वे लकडियों के भार लेकर जा रहे थे, उसी रास्ते से शिव-पार्वती भी गुजर रहे थे । उन दोनों की दशा देखकर पार्वती को बडी दया आई । उन्होंने शिवजी से कहा कि आप इन्हें धन दीजिए । शिवजी ने उत्तर दिया कि इनके भाग्य में धन लिखा ही नहीं है तो मैं कैसे दूं ? लेकिन पार्वती नहीं मानी तो शिवजी ने रूपयों से भरी एक थैली उनकी राह में डाल दी ।

उधर उन दोनों ने विचार किया कि बूढे तो हो गये लेकिन यदि अन्धे भी हो जाएँ तो कैसे चल पाएँगे । इस बात का तजुरबा करने के लिए वे दोनों अंधे-अंधी बन कर चले और रूपयों की थैली को उलांघ कर निकल गये । इस पर शिवजी ने पार्वती से कहा कि देख लो, रूपयों की थैली भर कर इनके आगे डाल दी तो भी ये उसे उठा नहीं पाये ।

➢ **दगो कौई को सगो नई । (राजस्थानी)**
दगो कोईनो सगो नहीं । (गुजराती)

दगा किसी का सगा नहीं ।

सन्दर्भ कथा - एक पंडित नित्य राजा को कथा सुनाने जाया करता था । राजा ने पंडित से कहा कि कथा सुनने के लिए मेरे पास अधिक समय नहीं रहता, इसलिए आप मुझे सार रूप में ही कथा सुना दिया करें । पंडितजी सार रूप में दो बातें कह दिया करते - दगा किसी का सगा नहीं; करंता सो भोगंता । राजा उसे सोने की एक मोहर दे दिया करता । यह देखकर राजा के नाई को बडी डाह हुई । उसने पंडित का पत्ता काटने की युक्ति सोची और अगले ही दिन उसने पंडित की भर्त्सना करते हुए कहा कि तुम काई के पंडित हो ? राजा मांस खाता है, शराब पीता है और तुम उसके मुँह में मुँह दिये रहते हो ! जब राजा तुमसे बात करता हैं तो उसके मुँह की हवा तुम्हारे मुँह में जाती है, जिससे तुम्हारा भी धर्म भ्रष्ट होता है । इसलिए कल से मुँह पर पट्टी बांध कर आया करो । पंडित को राजनाई की बात उपयुक्त लगी और उनसे हाँ भर ली । उधर नाई ने राजा से कहा कि महाराज ! अपने यह कैसा पंडित रख रखा है ? यह तो कहता है कि राजा के मुँह से बडी दुर्गन्ध आती है, इसलिए कल से मुँह पर पट्टी बांध कर आया करूंगा । यह बात राजा को बडी बुरी लगी और उसने पंडित को दण्ड देने का निश्चय कर लिया ।

अगले दिन पंडित अपने मुँह पर पट्टी बांध कर आया और कथा सुना कर जाने लगा तो राजाने उसे एक की बजाय दो मोहरें दी और साथ उसे एक चिठ्ठी भी दी कि यह चिठ्ठी अभी कोतवाली जाकर कोतवाल को दे देना । पंडित बाहर निकला तो दरवाजे के बाहर ही उसे नाई मिला । उसने एक मोहर नाई को दे दी और उससे कहा कि यह चिठ्ठी तुम कोतवाल को दे आओ । नाई खुश हो गया और चिठ्ठी लेकर कोतवाली गया । कोतवाल ने चिठ्ठी पढ़ी और नाई

को पकड कर झट से उनकी नाक काट ली, क्योंकि चिठ्ठी में राजा ने कोतवाल के नाम यही आदेश लिखा था कि चिठ्ठी लाने वाले की नाक तुरन्त काट ली जाए । इस प्रकार नाई को दगा करने का फल मिल गया ।

- दगा किसी का सगा नहीं, कर देखो रे भाई ।
  चिठ्ठी उतरी बामण उपर, नाक कटायो नाई ॥
- दगो करयो बणिये की जोय, पूत खसम नै लीनी रोय ।

➢ **नीत गैल बरकत होवै । (राजस्थानी)**
जेवी दानत तेवी बरकत । (गुजराती)
नियत के अनुसार ही बरकत होती है ।

सन्दर्भ-कथा : (१) एक राजा शिकार खेलता हुआ जंगल में भटक गया । संगी-साथी सब छूट गये । प्यास के मारे उसका दम घुटने लगा । कुछ दूरी पर उसे एक झोंपडी दिखलाई तो राजा वहाँ गया । वहाँ एक बुढिया थी । उसने अपने खेतमें से एक गन्ना तोडा और गन्ने के रस से कटोरा भर कर राजा को दिया । राजा को वह अमृत जैसा स्वादिष्ट लगा । वह तृप्त हो गया । लेकिन राजधानी में पहुँच कर उसने गन्ने की खेती पर भारी कर लगा दिया ।

संयोग से दूसरी बार भी राजा भटक कर उसी बुढिया के पास पहुँचा । बुढिया ने पांच-सात गन्नों का रस निकाला तो कटोरा भरा । लेकिन राजा को वह पहले जैसा स्वादिष्ट नहीं लगा । उसने बुढिया से पूछा कि पिछली बार तो एक ही गन्ने के रस से प्याला भर गया था एवं वह स्वादिष्ट भी बहुत था । लेकिन इस बार गन्नों में न तो उतना रस है और न मिठास, इसका क्या कारण है ? बुढिया ने उत्तर दिया कि यहाँ के राजा की नियत खराब हो गई है, जिससे गन्ने के रस में भी अन्तर आ गया है । राजा का सिर लज्जा से झुक गया ।

नोंध : इसी अन्तर्गत गुजराती में कवि कलापीनी ग्राम्यमाता खंडकाव्य में ''दया हीन थयो नृप'' नामक काव्य भी है ।

उसी कहावत के साथ राजस्थान में एक दूसरी भी सन्दर्भ कथा जुडी है वो देखिए:

सन्दर्भ कथा : (२) एक किसान के दो बेटे थे, लेकिन दोनों ही अकर्मण्य । किसान के मरने के बाद उनके घर में बहुत तंगी आ गई । तब लडकों की माँ ने अपने बेटों से कहा कि, अमुक सेठ तुम्हारे बाप का दोस्त है । तुम उसके पास जाकर कुछ रूपये उधार ले आओ और खेती करो । दोनों लडके गये और उनका परिचय पाकर सेठ ने उन्हें सौ रुपये दिलवा दिये । दोनों को बडी आसानी से रूपये मिल गये थे । अत: उन्होंने सोचा कि अब तो कई दिन गुलछर्रे उडाएँगे । रास्ते में आते समय वे एक तालाब पर ठहरे और तालाब में नहाने घुसे तो एक चील रूपयों की 'न्योळी' को उठाके ले गई । दोनों भाई फिर सेठ के पास गये तो सेठने उन्हें फिर सौ रूपये दिला दिये । इस बार वे नहाने के लिए तालाब में घुसे तो एक भैंस रुपयों की पोटली पर गोबर कर गई । रूपयों की थैली नहीं मिली तो वे दोनों फिर सेठ के पास गये और सेठ ने तीसरी बार भी उन्हें रूपये दे दिये ।

सेठ के व्यवहार का उन पर बडा असर हुआ और उन्होंने गुलछरें उडाने की बजाय मेहनत से खेती करने का निश्चय कर लिया । इस बार उन्होंने एक सेर बाजरे का आटा मोल लिया और उसी तालाब पर पहुँच कर रोटी बनाने की सोचने लगे । एक भाई ने आग जलाने की इच्छा से भैंस वाले गोबर को उठाया तो उसे रूपयों की पोटली मिल गई । दूसरा भाई लकडियों की तलाश में एक खेजडी के पास पहुँचा तो उसे वृक्ष की डाल से एक रस्सी लटकती दिखलाई दी । वह रूपयों वाली 'न्योळी' की रस्सी थी और उसको खींचते ही 'न्योळी' नीचे आ गिरी । अब उनकी समझ में यह बात आ गई कि पहले हमारी नियत खराब थी, इसलिए रूपये चल गये और अब हमारी नियत साफ है तो गये हुए रूपये भी बापस मिल गये ।

➢ **बाणिये की मूंछ ऊँची तो ऊँची अर नीची तो नीची । (राजस्थानी)**
वाणियानी मूंछ नीची । (गुजराती)

सन्दर्भ-कथा : एक ठाकुर के पास कुछ रूपये इकठ्ठे हो गये तो वह बडी ऐंठ जताने लगा । एक दिन वह पास के कस्बे में कुछ सामान खरीदने के लिए अपने घोडे पर सवार होकर एक बनिये की दुकान पर गया तो बनिये ने भी अपनी मोंछो पर बल लगाया और बडे रोब के साथ ठाकुर से बात की । इस पर ठाकुर जल गया और उसके मना करने पर भी जब बनिया नहीं माना तो उसने बनिये से कहा कि आज से हमारा और तुम्हारा बैर समझो और उसका निपटारा अमुक दिन होगा । बनिये ने ठाकुर की चुनौती स्वीकार कर ली और ठाकुर अपने गाँव चला गया । घर जाकर ठाकुर ने लडाई करने की तैयारी शुरु कर दी । उसने अपने सगे सम्बन्धियों को भी बुला लिया और कई वैतनिक सैनिक इकठ्ठे कर लिए । ठाकुर उन सब को खिलाता-पिलाता । अन्त में लडाई का निश्चित दिन भी आ गया । ठाकुर अपने दल-बल सहित बनिये की दुकान पर पहुँचा और उसने बनिये को ललकारा कि आ जाओ मैदान मैं, लेकिन बनिये ने कोई तैयारी नहीं की थी । उसने ठाकुर से कहा, ठाकुर साब आपकी और मेरी कैसी लडाई ? आपको मेरी मोंछों का बल अखरता है तो मैं अभी खोल देता हूं । यों कह कर बनिये ने अपनी मोंछों के बल खोल दिये और झगडा समाप्त हो गया । ठाकुर ने लडाई की तैयारी में अपना सारा धन बर्बाद किया था और वह पछताता हुआ अपने आदमियों के साथ लौट गया ।

➢ **माया मेरा तीन नाम, परसी, परसो, परसराम । (राजस्थानी)**
नाणां वगरनो नाथियो, नाणे नाथालाल । (गुजराती)

सम्पति के अनुसार मुनष्य के नाम में भी परिवर्तन होता रहता है । गरीब को परसी जैसे लघुता सूचक नाम से पुकारते हैं, कुछ सम्पति अर्जित करने पर उसे परसो कहने लगते हैं और विशेष सम्पतिशाली होने पर उसी आदमी को परसीराम कहा जाने लगता है ।

सन्दर्भ कथा : एक शेठ को जगराम नाम का एक ही लडका था । घर में लक्ष्मी का ठाठ-बाट था और जगराम की शादी भी सम्पन्न घर में हुई थी । लेकिन अपने पिता के मरने पर जगराम ने कुसंगति में पड कर सारी सम्पत्ति बर्बाद कर डाली और घर में फाके पडने लगे । उसकी स्त्री अपने पीहर चली गई । तंग आकर जगराम भी मजदूरी की तलाश में निकला और भटकते-भटकते अपनी ससुराल पहुँच गया । इस फटे हाल में ससुराल वालों ने भी उसे नहीं पहचाना और उसे नोकर

रख लिया । वह पानी लाने, लकडी झोंकने आदि का काम करने लगा और उसका नाम झोकिया पड गया ।

एक दिन जगराम की स्त्री अपनी माँ से कह रही थी कि तुम्हारे दामाद ने और सब कुछ तो बर्बाद कर डाला, लेकिन मेरी सास ने मुँह दिखलाई में मुझे जो चार बहुमूल्य लाल दिये थे, वे उसके हाथ नहीं लगे, क्योंकि उनको मैंने अमुक स्थान पर छिपा दिया था । 'झोकिया' ने उन दोनों की बात सुन ली । वह नौकरी छोडकर अपने घर आ गया । उसने चारों लाल निकाले और उन्हें बेचकर पुनः कारोबार प्रारम्भ किया तथा शीघ्र ही पहले की तरह मालदार बन गया । अब वह अपनी स्त्री को लेने ससुराल पहुँचा तो ससुराल वालों ने उसकी खूब खातिर की । इस पर वह बोला -

माया तूं है सुलखणी, नाम होयो जगराम ।
हण ही आंगण फिर गयो, घरयो झोकियो नाम ॥

➢ **संपत में लिछमी को बासो । (राजस्थानी)**
संप त्यां जंप (गुजराती)
एकता में लक्ष्मी का निवास है ।

सन्दर्भ-कथा : (१) एक सेठ को स्वप्न में लक्ष्मीजी ने दर्शन दिये और कहा कि अब मैं तुम्हारे यहाँ से जा रही हूं । सेठ ने लक्ष्मीजी से रहने के लिए बडी विनय की, लेकिन लक्ष्मीजी ने कहा कि मैं तो नहीं रह सकती, तुम्हें और कोई चीज मांगनी हो तो मांग सकते हो । तब शेठ ने कहा कि मेरे घर में सदा 'सम्पत' (एकता, पारस्परिक मेल) बनी रहे । इस पर लक्ष्मीजी बोली कि जहाँ आपस में मेल रहता है, वहीं मैं रहती हूं इसलिये मुझे भी अब यहाँ रहना ही होगा ।

इसी सिलसिले में दूसरी भी एक सन्दर्भ कथा है वह भी देखिए :

सन्दर्भ-कथा : (२) एक सेठ के घर में भूख ने डेरा डाल दिया, अन्न के लाले पड गये तो सेठ कभी घरवालों को लेकर अन्यत्र चला । रास्ते में जंगल पडा तो सोचा कि चलते-चलते लकडियाँ काट कर ले चलें तथा कुछ रस्सियां बट ले तो पास के शहर में उन्हें बेच कर कुछ पैसे प्राप्त कर लेंगे । सेठ के कहते ही सब लोग काम में जुट गये । वहीं वृक्ष पर एक भूत रहता था । उनको इस प्रकार जुटे देखकर वह डर गया और उसने आकर सेठ से पूछा कि तुम लोग क्या करना चाहते हो ? सेठने उत्तर दिया कि इन रस्सियों से तुझे बांध कर ले जाएँगे । भूत डर गया और बोला कि तुम ऐसा न करो, मैं तुम्हें काफी धन दे दूंगा । सेठ के हां भरने पर भूत ने उसे प्रचुर धन दे दिया और सेठ उस द्रव्य को लेकर सपरिवार अपने घर लौट आया ।

उसके पडोसी ने सेठ से पूछा तो सेठ ने सारी घटना उसे बतला दी । अब पडोसी अपने सब घर वालों को लेकर उसी स्थान पर पहुँचा । उसने सबको लकडियाँ तोडने और रस्सियाँ बटने के लिए कहा, लेकिन किसी ने कहा मैं थक गया हूं, किसी ने कहा मुझे नींद आ रही है, किसी ने कहा मुझे भूख लगी है । उन सब में जरा भी एकता नहीं थी । उनको देखकर भूत नीचे उतरा और उसने मुखिया से पूछा कि तुम क्या करना चाहते हो ? उसने कहा कि हम तुझे बांध कर ले जायेंगे । इस पर भूत बोला कि तुम अपने घरवालों को ही एकता के सूत्र में नहीं बांध पा रहे हो तो मुझे क्या बांधोगे ? यहाँ से अविलम्ब भाग जाओ, नहीं तो सबको मार डालूंगा । इसी पर वह सबको साथ लेकर वहाँ से उसी समय भाग आया ।

➢ **हर कठै अर मने कठै । (राजस्थानी)**
मन मंदिरमां ने जीव जूतियांमां । (गुजराती)
ईश्वर कहीं और मन कहीं ।
हाथ में तो माला फिरती रहे एवं मन कहीं और रमता रहे ।

सन्दर्भ कथा : एक मौलवी अपना मुसल्ला बिछा कर नमाज पढ रहा था कि एक कामातुर नायिका अपने यार के पास जाती हुई उधर से गुजरी । वह अपनी धुन में जा रही थी । उसने मौलवी या उसके मुसल्ले को नहीं देखा और वह मुसल्ले पर पैर रखती हुई चली गई । इस पर मौलवी को बडा गुस्सा आया और उसने सोचा कि लौटते वक्त उसकी खबर लूंगा । बहुत देर बाद जब वह लौटी तो मौलवी उस पर बरस पडा और उसे पीटने के लिये उतारू हो गया । इस पर युवती ने कहा -

नर रांची जान्यो नहीं, तै करु लख्यो सुजान ।
पढि कुरान बोरो भयो, नहीं रांच्यो रहमान ॥

अर्थात्, हे सुजान मैं तो मनुष्य में अनुरक्त थी, इसलिए मेरा ध्यान तुम्हारे मुसल्ले की ओर नहीं गया । लेकिन तुम तो खुदा से लौ लगाये थे, फिर भला तुमने कैसे जाना कि मेरा पैर चादर पर पड गया है ? तुम तो बस कुरान पढ कर घमंड में भूल गये हो, वास्तव में तुम्हारा मन ईश्वर में लगा ही नहीं हैं । उसकी बात सुनकर मौलवी लज्जित हो गया ।

➢ **हांसी में खांसी होजया । (राजस्थानी)**
हसवामांथी खसवुं थवुं । (गुजराती)
हंसी-हंसी में झगडा हो जाता है ।
हांसी में फांसी होजया ।

सन्दर्भ कथा : एक सेठ के घर में बडा घाटा आ गया और रोटियों के भी लाले पड गये । तब उनकी स्त्री ने कहा कि ऐसा कब तक चलेगा, कुछ दिन मेरे पीहर चलकर रहा जाए । उसके कहने पर सेठ अपनी स्त्री एवं इकलौते बालक को लेकर अपनी ससुराल की ओर चल पडा । लेकिन रास्ते में उसकी स्त्री ने सोचा कि अपने दामाद को ऐसी गिरी हालत में देख कर मेरे पीहर वाले क्या कहेंगे । और मेरी भाभियां तो तानों के मारे जीने ही नहीं देगी । यो सोचकर वह पानी पीने के बहाने अपने पति को कुएँ पर ले गई और अवसर पाकर उसे कुएँ में धकेल दिया । फिर वह अपने छोटे बालक को लेकर पीहर चली गई ।

इधर सेठ को किसीने कुएँ में से निकाल दिया और वह एक शहर में जाकर धंधा करने लगा । थोडे ही समय में उसके पास काफी धन हो गया और वह अपनी बहू और बेटे को अपने घर ले आया । बेटा भी अब सयाना हो गया था, अतः उसने उसका विवाह कर दिया । लेकिन बहू बडी कर्कशा आई । वह सास से नित्य ही झगडती रहती थी । एक दिन सेठ भोजन कर रहा था । सूर्य की धूप उस पर पड रही थी तो उसकी स्त्री ने अपने आँचल से छाया कर दी । यह देख कर सेठ को हंसी आ गई कि एक दिन तो इसने मुझे कुएँ में धकेला था और आज आँचल से छाया कर रही है ।

पुत्रवधू को इस रहस्य का पता लगा तो उसे सास को छकाने का गुरुमंत्र मिल गया । वह बात-बात पर उससे कहने लगी कि तुम तो वही हो न ! जिसने श्वसुरजी को कुएँ में धकेला था ? इससे दुःखी होकर सेठानी उपर के कमरे में चली गई और यहीं फाँसी लगाकर मर गई । थोडी देर बाद सेठ आया और पत्नी की दशा देखकर वह भी फांसी लगाकर मर गया । मां-बाप को मरा देखकर बेटे को बडा दुःख हुआ और उसने भी फांसी लगा ली । अब बहू अकेली क्या करती ? उसने भी उन तीनों का अनुकरण करना ही अच्छा समझा । और इस प्रकार जरा सी हंसी ने चारों की जान ले ली ।

लोकविश्वास एवं लोकमान्यताओं में साम्यता

(गुजराती एवं राजस्थानी)

राजस्थान और गुजरात का शकुन-शास्त्र बडा ही दिलचस्प रहा है । इसमें पशु-पक्षी, वनस्पति, प्रकृति, मानव के अंग-प्रत्यंगो के कम्पन आदि का सूक्ष्म अध्ययन कर फलाफल ज्ञान प्राप्त किया जाता है । इन्हें शकुन कहा गया है । शकुन गहन अध्ययन, अनुभव एवं चिन्तन-मनन के विषय हैं । अकाल, सुकाल, अतिवृष्टि, अनावृष्टि महामारियाँ, प्राकृतिक प्रकोप, कार्यसिद्धि, लाभ-हानि, सफलता-असफलता, अच्छे-बुरे आदि परिणाम शकुन के द्वारा निकाले जाते हैं । जैसे अक्षयतृतीया पर हवा के रुख से सुकाल अथवा दुकाल का अनुमान लगाया जाता है । यदि उस दिन चारघडी दिन चढ़ने से पूर्व, दक्षिण पवन चले तो फसलों को हानि व टिड्डी दल के आक्रमणों की आशंका रहती है । उत्तर की हवा शुभ मानी जाती है । मध्याह्न में थाली में पानी भरकर सूर्य के प्रतिबिम्ब को देखकर भी शकुन ज्ञात किये जाते हैं । जिस दिशा में सूर्य लाल दिखे तो उस दिशा में विग्रह होता है । यदि सूर्य नीला-पीला दिखे तो घरती पर बीमारियां फैलती हैं । धवल दिखाई दे तो अनाज अधिक पैदा होता है और प्रजा सुखी रहती है । सूर्य साँवला-सा दिखाई दे तो दुर्भिक्ष (अकाल) पडता है । दीपावली पर कवडिया के शकुन लिये जाते हैं । यदि कवडिया कमल के फूल, घर, वृक्ष पर दिखाई पडे तो शुभ माना जाता है । यदि वह राख, काष्ठ, चमड़ा, सूखे तिनकों के पर दिखाई दे तो अशुभ माना जाता है ।

घर से प्रस्थान करते समय भी शकुन व शुभ मुहूर्त देखा जाता है । यदि घर से निकलते ही रोता व्यक्ति, लकड़िया, कोयला, आटा, दूध, घी, खाली घड़ा, विधवा स्त्री सामने आ जाए तो अशुभ मानते हुए यात्रा स्थगित कर दी जाती है या वापस घर में आकर कुछ समय बिताकर उसके पश्चात् बाहर जाते हैं । उसके विपरीत दहीं, पानी से भरा कलश, सुहागिन, नारियल, पुत्रवती, कँवारी कन्या, हरिजन, गधा सामने आ जाये तो अच्छे शकुन माने जाते हैं ।

कागमाळा के अनुसार भी शकुन ज्ञात किये जाते हैं । यदि कौआ वृक्ष की उपरी शिखा पर घोंसला बनाये तो सुकाल तथा अधबिच डाली पर बनाये तो वर्षा की कमी से फसलें सूखेंगी । छोटी खेजड़ी पर बनाये तो महामारी और सूखे वृक्ष या सूने घर में बनाये तो राज्य में विग्रह होता है ।

यात्रा के लिये रवाना होते समय यदि बाँयी तरफ उल्लू बोले तो वह सुखाकारी एवं आनन्दवर्धक होता है । यदि दाँयी तरफ बोले तो भयकारक एवं दुःखदायी होता है । इस तरह गाँव में प्रवेश करते ही दाँयी तरफ उल्लू बोले तो शुभ होता है । घर के उपर बोले तो कष्टदायक होता है ।

इस तरह कुत्तों के शकुन के सन्दर्भ में भी लोकमानस यह कहता है कि -

स्वान कान फड़फड़ करे, अथवा बैठो खाट ।
असो देख व चालिये, आगै करै उचाट ॥

कूकर डावो सुर करे, बोले वारो वार ।
सुकन विचारों पंथिया, सीने राज दवार ॥

गाय के शकुन प्रायः शुभ माने जाते हैं किन्तु सांड के शकुन के विषय में यह माना गया है कि बैल बाँये पाँव अथवा बाँये सींग से जमीन खोदता दिखाई पडे तो बहुत लाभकारी होता है तथा दाँये पाँव या दाँये सींग से जमीन खोदता दिखे तो अशुभ होता है ।

घर से बाहर निकलते वक्त यदि दिन में बिल्ली रास्ता काट जाये तो विग्रह होता है किन्तु रात्रि में बिल्ली रास्ता काट जाये तो शुभ होता है । यदि प्रस्थान के वक्त बाँयी तरफ छींक हो तो शुभ है । पीछे की छींक कार्यसिद्धि का संकेत करती है । सन्मुख छींक अशुभ होती है । दो बार छींक हो तो शुभ मानी जाती है ।

शरीर के अंगों के फुरकने (कम्पन) के आधार पर भी शकुन ज्ञात किये जाते हैं । पुरुष की दाँयी आंख की फुरकन शुभ व स्त्री की बाँयी आंख की फुरकन शुभ मानी जाती है । इसके विपरीत यदि पुरुष की बाँयी आंख फुरके तो अशुभ तथा स्त्री की दाँयी आंख फुरके तो अशुभ होती है । स्त्री की बाँयी हथेली खुजलाये तो पैसा आता है व दाँयी खुजलाये तो पैसा खर्च होता है । यदि पगतली में खाज आये तो यात्री योग होता है ।

मौसम, वर्षा, फसल आदि की भविष्यवाणी नक्षत्रों व बादलों की स्थिति के आधार पर भी की जाती है । पहले घडियाँ नहीं थी तब कृषक इन्हीं के सहारे पूर्वानुमान कर लेता था । इस सम्बन्ध में यहाँ कुछ लोकोक्तियाँ व दोहे प्रसिद्ध हैं । जैसे कि :

आसाढ़ सुद नवमी, कै बादल कै बीज ।
कोठ खेर खंखेरकर, राखौ बळद नैं बीज ॥
चैत्र मास को बीजळ होवै, घुर वैसाखा केसू धोवै ।
जेठ मास जो जाई तपुंतो, कुण राखे जळहर बरसंतो ॥

नक्षत्रों के सम्बन्ध में कहा गया है –

(१) श्रावण वद एकादशी, तीन नक्षत्रां ताळ ।
(२) आदरा भरै खादरा ।
(३) कृतिका करे करवरौ, रोहिणी करें सुगाळ ।

वृक्ष में होने वाले परिवर्तन को देखकर भी अकाल-सुकाल का अनुमान किया जा सकता हैं । यदि –

नींबोळी सूखें नींम पर, पडै न नीचै आय ।
अन्न न नीपजै एक कण, काळ पडैगो आय ॥

राजस्थान में सप्तवार, तिथि, नक्षत्र आदि को ध्यान में रखते हुए नया कार्य या नये कार्य के लिये प्रस्थान किया जाता है । बुधवार को घर छोडकर परदेश जाना अशुभ माना गया है । चतुर्थी, अष्टमी, चतुर्दशी और अमावस्या प्रस्थान के लिये अशुभ तिथियाँ हैं । मृगशिश, पुष्य, ज्येष्ठा, अश्विनी और अनुराधा नक्षत्र शुभ समझे जाते हैं ।

गाँव में कुत्तों का रोना व वन में लोमड़ी का रोना भी अशुभ माना गया है ।

मंत्र-तंत्र जादू-टोने

राजस्थानी और गुजराती समाज में शकुन की ही तरह कुछ ऐसे लोकविश्वास एवं निजी मान्यताएँ भी प्रचलित हैं, जिनसे यहाँ की अनूठी एवं निराली संस्कृति की पहचान होती हैं । जादू-टोने, मंत्र-तंत्र, विधि-विधान आदि में लोकमानस की आस्था देखी जा सकती है । यहाँ विभिन्न लोक देवी देवताओं एवं पितरों की पूजा उपासना का विधान है । ऐसा माना जाता है कि इनकी पूजा करने से किसी भी प्रकार का संकट नहीं आता तथा परिवार के सदस्य कुशल मंगलपूर्वक रहते हैं । देवी देवताओं की आराधना से भौतिक कष्टों का निवारण होता है तो पितरों की पूजा से वंश की वृद्धि एवं समृद्धि होती है । इसी तरह भोमिया, सतियों के देवरे, थान आदि पर धोक देने से पुत्र-रत्न प्राप्त होता है तथा शारीरिक कष्ट दूर होते हैं ।

तंत्र-मंत्र से वशीकरण, मारण और उच्चाटन आदि कार्य किये जाते हैं । यदि शत्रु को मारना हो तो मंत्रों से मूंठ (उड़द के दाने) फैंकी जाती है जो शत्रु के शरीर में घुस जाती है और वह छटपटाकर मर जाता है । मूंठ से बड़ी से बड़ी शिला भी चूर्ण-चूर्ण हो जाती है । इसी तरह आटे का पूतला बनाकर मंत्रो के साथ पूतले को सुई चुभाई जाती है । इसके पीछे यह मान्यता है कि ऐसा करने से दूर बैठे शत्रु के तन में सुई की चुभन का दर्द होता है । यदि पूतला गाड़ दिया जाय तो शत्रु मर जाता है । मंत्रो से वश में करने की मान्यता भी यहाँ प्रचलित है । इसके लिये उसे मंत्रित खाद्य पदार्थ खिला दिया जाता है या उसके वस्त्रों को मंत्रित कर दिया जाता हैं जिससे वह व्यक्ति वश में हो जाता है ।

मंत्रो से भूत-प्रेत, डाकिनी और पिशाचिनी का भय मिटाया जा सकता है । ओझा, झाडफूँक करके भूत-प्रेत की बाधा दूर करता है । भूत-प्रेतों के प्रभाव का भी विशेष समय होता है । भरी दुपहरी में १२ बजे से ३ बजे तक व रात्रि में १२ से ३ बजे तक सूनसान स्थान, खेजडी आदि के पास से कोई खाद्य पदार्थ, विशिष्ट व्यंजन लेकर नहीं निकलना चाहिए क्योंकि भूत-प्रेत उनके लालच में तन में घुस जाते हैं और फिर उन्हें कष्ट देते हैं ।

साँप व बिच्छू के काटने पर मंत्रो से इलाज किया जाता है । मंत्रों से साँप और बिच्छू का जहर उतर जाता है तथा कुछ ही देर में व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है । इसी तरह आधा सिर का दर्द, पेट दर्द, पीलिया रोग, आंख का दर्द, एकांतरा ज्वर, पागल (हडकाया) कुत्ता काटने पर मंत्र एवं जंत्र करके ठीक किया जाता है । जंत्र के अन्तर्गत विशिष्ट प्रकार की चित्राकृति बनाकर उसमें अंक, शब्द और मंत्र लिखा जाता है । फिर उसे मंत्रपूत करके चाँदी के तावीज में डालकर या लाल कपडे में बांधकर पहना दिया जाता है । मंत्र की तरह जंत्र भी प्रभावशाली होता है । जंत्र-मंत्र किसी ओझा या सिद्ध पुरुष से प्राप्त किया जाता है ।

राजस्थान और गुजरात में लोग छोटी-मोटी बीमारी का उपचार टोने-टोटके से स्वयं ही कर लेते हैं । बच्चे को बुरी नजर से बचाने के लिये काला दिंठोना (काला टीला) किया जाता है और शेर या सूअर का नाखून गले में पहनाया जाता है । यदि फिर भी नजर लग जाये तो उसका उतारा किया

जाता है । रुई की बाती को तेल में भिगोकर उसका एक छोर जलाकर वह बच्चे पर सात बार वारी जाती है । फिर दीवार पर दूसरा छोर चिपका दिया जाता है । जब वह जल जाती है तो उसे जली वर्तिका को जूते से सात बार मारा जाता है । ऐसी मान्यता है कि इससे नजर उतर जाती है । या फिर नजर उतारने के लिये नींबू को चीरकर उसमें सिन्दूर, तेल, राई, कालीमिर्च भर कर उसे सात बार बच्चे पर उतार कर आग में जला दिया जाता है । इसी तरह चार रास्तों के बीच चौराहे पर पडी मिट्टी लाकर उसमें नमक, मिर्च, राई आदि डालकर सात बार उतार कर आग में जला दी जाती है ताकि बुरी नजर उतर जाये । यदि बच्चे को दस्त लगे और सुस्त रहे तो दोपहर बारह बजे व सन्ध्या में पानी से भरा करवाँ (लोटा) उस पर सात बार उतार कर मुख्य द्वार के बाँयी तरफ गिरा दिया जाता है । बच्चे के गले में रेशम का काला धागा भी बांधा जाता है ताकि वह स्वस्थ तथा प्रफुल्लित रहे । और भी ऐसे कई लोक विधि-विधान प्रचलित हैं जिनसे अनिष्ट, अमंगल को दूर किया जाता है ।

तन्त्र : (टोने- टोटके - झाडा आदि) एक जन्त्र - मन्त्र भलाई के लिए किये जाते हैं और दूसरे वैर - विरोध तथा बुराई के लिए होते हैं । इन्हें अभिवार तथा शांति कार्य कहते हैं । भलाई वाले जादू टोनों में भूत निकालने, आधीशीशी या वायवादी और सर्प बिच्छू के झाडे देने, तेजरा, इक्र्यांतरा आदि ताव (बुखार) को डोरा, कैना, पीलिया, गाय-भैंस के डोरे, बच्चा जीने, बच्चा होने तथा नजर-फिटोडा न लगने, लोरी ढालने आदि मनुष्य हितार्थ कार्य के लिए टोने होते हैं ।

वैर-विरोध वाले जन्त्र-मन्त्रों में अपने किसी दुश्मन पर मूठ मरवाने, पूतले गडवाने, कलेजा निकालने, वश में करने आदि कार्य दूसरों के अहित पहुँचाने के लिए किये-करवाये जाते हैं । इनकी साधना में देवता विशेष, गृह विशेष, भूत-प्रेत-पिशाच आदि की साधना करनी पडती है ।

अन्धविश्वास (राजस्थानी एवं गुजराती)

किसी कार्य के लिए बाहर निकलते समय बिल्ली रास्ते में आती है तो अपशकुन माना जाता है । किसी भी काम के लिए अगर तीन व्यक्ति साथ निकले तो एक पत्थर हाथ में लेकर निकलते हैं क्योंकि ऐसी मान्यता है कि तीन तिघाडा काम बिघाडा । स्त्री की दाई और पुरुष की बांई आँख फडकना अपशुकन माना जाता है ।

हथेली में खुजली आना धन प्राप्ति का प्रतीक, और पैर में खुजली आना यात्रा का प्रतीक माना गया है । किसी भी शुभ कार्य के लिए घर से निकलते समय भरा हुआ घडा और सुहागन स्त्री आती है तो उस कार्य में विजय निश्चित है और खाली घडा या विधवा स्त्री आ जाने पर उस कार्य में हार होगी ऐसा माना जाता है ।

राजस्थानी लोग मुहूर्त और पंचांग पर विश्वास करते हैं । किसी भी छोटे कार्य में मुहूर्त देखा जाता है । अमावस्या, वित्तिपात के दिन किसी कार्य की शुरुआत नहीं करते । बेटी की बिदाई हो, या यात्रा पर निकलना हो तो मुहूर्त देखा जाता है । बुधवार को घर से यात्रा के लिए नहीं निकलते ।

इसके अलावा मंगलवार को इस दिशा में, गुरुवार को उस दिशा में नहीं निकलना ऐसी भी मान्यता हैं ।

ऐसे ही घर पर कौआ आकर बोलता है तो किसी मेहमान के आने की खबर सुनाता है । शाम में झाडु नहीं लगाते, रात्री में सीटी नहीं बजाई जाती । दक्षिण दिशा यम की दिशा मानी जाती है इसलिए कोई भी शुभ कार्य दक्षिण की ओर मुँह करके नहीं करते ।

छींक कई कामों में अशुभ मानी जाती है । तब बच्चे को छींक आने पर घरवाले कहते हैं, ''छींक माता छतरपती, माथे रति ताळवे तैल, बाप के आंगणै दौड दौड खेल ।'' छींक आना बिमारी की सूचना स्वरुप अतः छींक आने के बाद कोई भी काम रुककर करने के लिए कहा जाता है । परन्तु इसमें ज्यादा अतिशयोक्ति लगती है ।

लोक-साहित्य की तुलना :

गुजराती और राजस्थानी समाज में कई मान्यताएँ, टोने-टोटके कई रसमें एक जैसी ही है । उनका विश्लेषण हम यहाँ करेंगे । देखिए :

वैदिक आर्य संस्कृति की वैज्ञानिक व्यवस्था में रचा-ढला राजस्थानी एवं गुजराती समाज आज भी वैदिक समाज की मान्यताओं को अपने में कुछ हद तक संजोए हुए हैं । वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था आज भी अन्य प्रदेशों में बसे भारतीय समाज की अपेक्षा यहाँ अधिक आस्था तथा भावनात्मकता के साथ जमी है । चारों वर्गो की सैंकडों जातियाँ, उपजातियाँ और शाखा-उपशाखाएँ हैं । जातियों के अपने स्थान, अधिकार, कार्य बंटे हुए हैं ।

राजस्थानी तथा गुजराती लोकजीवन सादा और सरल है । यहाँ का समाज पुरुष प्रधान है । सारे अधिकार तथा शक्तियाँ पुरुष वर्ग के हाथों में केन्द्रित हैं । स्त्रियों को अर्धांगिनी अवश्य कहा जाता है किन्तु अन्तिम निर्णय पुरुषों का ही होता है । पर्दा प्रथा का यहाँ आज भी प्रचलन है । विवाहित स्त्रियाँ ससुर-जेठ के साथ-साथ सास-जेठानी आदि परिवार, यहाँ तक कि गाँव के बडे बुजुर्गों के सामने घूँघट रखती है और उनसे बात नहीं करती ।

सम्पूर्ण राजस्थानी तथा गुजराती समाज आस्तिक है । पौराणिक देवी-देवताओं में इन लोगों की दृढ आस्था है । समर्पित भाव से सामान्य जन इनका लीलागायन, कथा-कीर्तन करते हुए पुलकित रहता है । राजस्थानी एवं गुजराती समाज जन-कल्याणकारी कार्य करने वाले वीर पुरुषों एवं नारियों को लोक देवी-देवताओं के रूप में पूजता रहता है । समाज में प्रत्येक शुभ कार्य, सुख-दुःख में बडी श्रद्धा से इनका स्मरण किया जाता है । राजस्थान में प्रसाद 'सवामणी', 'रातीजोगा' तथा 'जम्मा' दिया जाता है । तो गुजरात में पूजा-अर्चना के पश्चात् 'मुवा' (एक तरह का मंत्र) इकठ्ठे होकर 'घूमे छे' (अग्नि जलाना) और भोग लगाते हैं ।

समाज में अनेक विश्वास, परम्पराएँ प्रचलित हैं । शकुन विचार में राजस्थानी तथा गुजराती दोनों ही समाजों का गहरा विश्वास है । पक्षियों में तीतर, सोन चिडियाँ, कौआ, पशुओं में बिल्ली, गधा तथा मानव अंग-प्रत्यंगों के फरकने आदि से सम्बन्धित शुभ-अशुभ शकुनों में जन-मानस की गहरी आस्था हैं । भूत-प्रेतों, अन्धविश्वास, टोने-टोकने आदि में इन लोगों को पूर्ण विश्वास है ।

राजस्थान और गुजरात में त्यौहारों, व्रतों, मेलों तथा उत्सवों का ताँता लगा रहता है । दीपावली, होली, तीज, गणगौर, रक्षाबन्धन, नवरात्रि, अक्षय तृतीया, शीतलाष्टमी आदि मुख्य त्यौहार हैं । होली के रंगीले त्यौहार पर महिने भर तक गाँवों में धूम मची रहती है । यह आदिवासियों, भीलों तथा ग्रामीणों में विशेष लोकप्रिय है । दीपावली वैसे तो पूरे भारत का त्यौहार है, किन्तु गुजरात में व्यापारी वर्ग की अधिकता के कारण वहाँ इसे विशेष उल्लास से मनाया जाता है ।

गुजरात का एक अन्य मुख्य महोत्सव है - नवरात्रि । शक्ति-पूजा के इस अवसर पर नौ दिनों तक गरबा-रास खेला जाता है । इन त्यौहारों पर नए-नए वस्त्र, पकवान बनाये जाते हैं, महिलाएँ मंगल गीत गाती हैं । इष्ट-मित्रों तथा सगे सम्बन्धियों से मिलते हें । इस प्रकार इन आध्यात्मिक महत्त्व वाले त्यौहारों को हँसी-खुशी और उमंगों से मनाया जाता हैं ।

राजस्थान और गुजरात के लोक जीवन में त्यौहारों, मेलों तथा अन्य सामाजिक, पारिवारिक तथा धार्मिक अनुष्ठानों में अपने हृदय के उल्लास को प्रकट करने हेतु अनेक लोक नृत्य प्रचलित हैं । राजस्थान में जहाँ 'घूमर', 'अग्नि नृत्य', 'चरी नृत्य', 'भवाई नृत्य', 'तेराताली' तथा 'डंडिया गेर' की गिनती प्रमुख लोकनृत्यों में की जाती है, वहीं गुजरात में 'गरबा' 'गरबी' 'मटकी' 'रास', 'मंजीरा', 'कीसग' आदि प्रमुख लोक नृत्य है ।

पशु-पक्षी मान्यताओं/कहावतों में साम्यता (गुजराती और राजस्थानी)

(१) कौआ : लोक जीवन में कौआ के सम्बन्ध में जितना लोकविश्वास प्रचलित है उतना अन्य किसी पक्षी के सम्बन्ध में नहीं है । कौआ रूप में काला और वाणी में कर्कश होता है । यह मांस का भी भक्षण करता है । अतः यह पक्षी आदर से नहीं देखा जा सकता ।

कौआ अपनी चालाकी के कारण बडा ही काँईयाँ पक्षी माना जाता है । लोक में यह कहावत प्रसिद्ध है कि -

''मनहन में नौआ, चिरहन में कौआ' अर्थात् ''मनुष्यों में नाई और पक्षियों में कौआ'' बडा ही चालाक होता है । इसीलिए कौवे को मारना बडा ही कठिन कार्य है । यह एक स्थान पर बैठा हुआ चारों ओर दृष्टिपात करता रहता है । इसकी चेष्टायें बडी चंचल होती हैं । इसीलिए चंचल वृत्तिवाले मनुष्यों की उपमा ''कौआ'' से दी जाती है । विद्यार्थी के पाँच लक्षणों में से पहिला लक्षण कौवे के समान चंचल चेष्टा का होता है । इसीलिए कहा गया है कि -

''काक चेष्टा, बकोध्यानं, श्वान निद्रा तथैव च ।
अल्पहारी गृही त्यागी विद्यार्थी पंच लक्षणम् ॥''

कई मनुष्यों की निद्रा कम होने के कारण गुजराती में कहा जाता है कि उनकी निद्रा कौवे जैसी (कागडा जेवी छे) है ।

कौओं के सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि इसकी जीभ के मांस को खाने से मनुष्य अमर हो जाता है । कौवे की केवल एक ही आँख होती है । उस आँख की एक ही पुतली बारी-बारी

से दोनों गोलाओं में आती-जाती रहती है । इसीलिए कहा जाता है कि उनकी नजर (दृष्टि) काग जैसी (कागडा जेवी छे) है ।

लोगों की यह धारणा है कि यदि कौआ किसी व्यक्ति के सिर पर बैठ जाता है तो उसकी शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है । परन्तु यदि किसी सम्बन्धी अथवा प्रिय व्यक्ति को उसकी ''झूठी'' मृत्यु की सूचना दे दी जाय और वह रोने लगे तो उसका परिहार हो जाता है ।

कौवे के द्वारा कमर तथा स्कन्ध प्रदेश (कन्धा) का भी स्पर्श करना अशुभ माना जाता है । सधवा स्त्री के सिर पर कौआ के बैठने से उसके पति अथवा पुत्र की मृत्यु हो जाती है । यदि कोई व्यक्ति मैथुन कर्म में निरत कौआ को देख ले तो छः महिनों के भीतर उसका निधन हो जाता है । संस्कृत में कहा गया है कि -

''षड्मासाभ्यन्तरे मृत्युः काक-मैथुन दर्शनात् ।''

कौवे का कर्कश बोली में बोलना और आँगन में उसका बैठना अपशकुन माना जाता है । राजा दशरथ की मृत्यु का समाचार सुनकर जब भरत अपनी ननिहाल से अयोध्या लौट रहे थे तब मार्ग में कौवों का कटु-रटन अनिष्ट की आशंका उत्पन्न करता था ।

''असग्रन होंहि वगर बैठारा ।
रटहि कुर्भाति कुखेत करारा ॥''

- रा. च. मा. (अ. का.) १५८/२

परन्तु कौआ विरहिणी नायिकाओं का प्रिय पक्षी है । उनके प्रियतम के आगमन की सूचना देने का यह अनन्य साधन है । घर के मुँडेरे पर कौवे को देखकर उसे सम्बोधित करती हुई कोई स्त्री कहती है कि यदि मेरा पति आता है तो तुम उड जाओ । इस प्रकार कौआ का उड जाना प्रियतम के आगमन का सूचक है । ऐसे प्रियतम पक्षी को स्त्रियाँ सोने के कटोरे में दूध -भात खिलाने का आश्वासन देती हैं तथा उसकी चाँच को सोने से मढा देने का विश्वास दिलाती है ।

''सोने के चोंच मढहवो तोहि कागा
जो पिया आवहिं आजु रे ।''

- विद्यापति पदावली ।

सूरदास की विरह-विदग्धा गोपियाँ काग को उडाकर प्रियतम के आगमन की सूचना की जाती है ।

''जँह-तँह काग उडावन लागी ।
हरि आवन उडि जाहि नहीं ॥

- सूरसागर ।

कौआ प्रेतात्मा तक भोजन आदि पहुँचने का अनन्यतम साधन माना जाता है । इसीलिए धार्मिक व्यक्ति बलि-वैश्यदेव की पूजा करते समय कौवे को भी अन्न की बलि देते हैं । आश्विन कृष्ण पक्ष (जिसे पितृ पक्ष भी कहा जाता है) में कौवों का विशेष आदर होता है । क्योंकि इस पक्ष में पितरों का पिण्ड कौवों को खिलाया जाता है । महाकवि बिहारी ने इस तथ्य की ओर संकेत किया है कि -

''दिन दस आदर पाईके;
करिलै आपु बखान ।
जो लगि काग ससध पख,
तो लगि तव सनमान ॥

- वि. स.

रात्रि में कौवे का बोलना अत्यन्त अशुभ माना जाता है । यात्रा के समय भी कौआ का दर्शन अमंगलकारी है । एक जातक की कथा से पता चलता है, किसी शिकारी को प्रस्थान करते समय कोई कौआ मिल गया । अतः उसने इसे अशुभ समझकर अपनी यात्रा स्थगित कर दी । जातक में इस कौवे को ''काल कर्णि शकुन'' कहा गया है ।

-पं. बटुक नाथ शर्मा - पालि जातकावलि ।

विदेशों में भी कौआ अशुभ पक्षी माना गया है । इग्लैण्ड के लंकाशायर तथा पार्कशायर नामक काउण्टी (जिला) में लडके कौंवों को बडी धृणा की दृष्टि से देखते हैं । वे इसे अपनी दृष्टि से ओझल हो जाने की इच्छा प्रकट करते हैं । (डायर-इ.) (फो., पृ. ८१) यदि कौआ कर्कश शब्द करता है तो यह अमंगलकारी है । यदि उसकी वाणी में कर्कशता के साथ विश्वसता भी हो तो यह बुरे मौसम की सूचना देता है । इस प्रकार कौआ देश और विदेश में भी अशुभ तथा अमंगलकारी पक्षी माना जाता है।

भडली वाक्य

लोग मानते हैं कि भडली वाक्य भविष्य वाणी नहीं है । यह अनुभव के उद्‌गार है । वर्षो तक ऋतुओं के फेरफारों के आधार पर, व्यापारों के सूक्ष्म दर्शन करने के बाद लोक-कविओंने काव्यबद्ध किये हुए हैं । देखिए :

वरसे आदरा
तो बारे पाधरा ।

(आर्द्रा नक्षत्र में बारिस आती है तो सारा साल (बारह महिने) अच्छे रहते हैं ।

वरसे उत्तरा तो
धान न खाय कूतरां ।

(उत्तरा नक्षत्र में वारिस होती है तो इतना धान (अनाज पकता) पैदा होता है कि कुत्ते भी नहीं खा सकते ।)

वरसे मघा तो
खडना ओघा ।

(मघा नक्षत्र में बारिस होती है तो घास बहुत पैदा होता है ।)

वरसे भरणी तो
नार मेले परणी ।

(भरणी नक्षत्र में बारिस होती है तो अपनी पत्नी को भी छोड देनी पडती है (त्याग करना पडता है) ऐसा विकट दुष्काल होता है ।)

वरसे स्वांत तो
न वाते तांत ।

(स्वाति नक्षत्र में बारिस होती है तो पींजारे की तांत नहि बजती है, यानिकि कपास का पाक नष्ट हो जाता है ।)

असलेखा चगी तो चगी
ने फगी तो फगी ।

(अश्लेषा नक्षत्र में बारिस हो तो अच्छा या वर्ष बिलकुल बिगडता है ।)

रोंण दाझी

(रोहिणी नक्षत्र बारिस के बिना अकेली बीजली हो तो भयंकर अकाल पडता है उसको ''रोंण दाझी' कहते हैं ।)

रोंण सुवाडी

(कृतिका नक्षत्र में बारिस हो और रोहिणी में बारिस हो और बीजली हुई हो तो 'रोंण सुवाडी' कहा जाता है, यानिकि समृद्धि देता है । गाय-भेंस को सुवाडी कहा जाता है ।)

रोंण कुंडाळां

(कृतिका नक्षत्र में बारिस हो और फिर रोहिणी में छांटा (छींटे) और बीजली हो तो 'कुंडाळा' होते हैं । इस से पांच गाँव में अच्छा अनाज पैदा होता है और पाँच गाँव में फसलें कम पैदा होती हैं ।)

वावणी
ने घी तावणी ।

(जैसे चूले पर मक्खन को घी बनाने के लिए रखा हो, तब वहाँ से हम हट सकते नहीं है, जो वहाँ से हटे तो सब मक्खन - घी उभरकर नष्ट हो जाता है, उसी तरह बीज बोना भी बारिस के वक्त पर तत्काल कर देनी चाहिए । जो बीज नहीं बोया तो भारी नुकसान होता है ।)

भाई, मडां ढांकीने सांती जोड्यां छे ।

(बीज बोने का वक्त हो और उसी रात कोई मर गया हो तो शब को ढंक कर बीज बोने का काम करना पडता है उतना इनका महत्त्व है ।)

गियुं वरस पुरबा वाळे ।

(पुरवा नक्षत्र (श्रावण वद) में भी बारिस हो तो भी अकाल का सारा वर्ष सुधर जाता है ।)

वख पख बे वादीलां
वरसे तो वरसे, ने ठालां तो ठालां ।

(वख (पुनर्वसु) नक्षत्र और उसके बाद का पक्ष नक्षत्र दोनों में एक जैसी बारिस हो या एक जैसी बारिस न भी हो ।)

घेली चित्रा मांडे खेल
तो काळे उनाळे आणि रेल ।

(चित्रा नक्षत्र जो खेल खेले यानिकि चित्रा नक्षत्र में बारिस हो तो गर्मी के दिनों मे भी रेलमछेल हो जाती है ।)

दि'ए काढे दुवाळां
ने राते काढे तारा
आणंद के' करमाणंदा
ई छप्पनियाना चाळा ।

(दिन में आकाश में बादल के ढग दिखा दे और रात को तारे दिखा दे तो समज लेना कि अकाल की निशानी है ।)

कर कृत्तिका कल्याण
वूठी घर विदू तणे
रोयण दाझी राण
मर दाझे देवकरणतणी

(कृत्तिका नक्षत्र में बारिस हो तो फिर रोयण भले दाझे । अर्थात् रोहिणी नक्षत्र में सिर्फ बीजली होने के भयंकर कालचिह्नों हो तो फिर कोई दिक्कत नहीं होती है ।)

मागशर न वाया वावला
आदरा आदरा न वूठा मेह
भर जोबनमां नायो बेटडो
त्रणे हार्यां एह ।

(मृगशीष नक्षत्र में वायु (हवा) न हो, आर्द्रा नक्षत्र में वारिस न हो और माता-पिता के भरयौवन में जो पुत्र न हो तो ये तीनों बिना काम होते हैं ।)

आथमणी ताणे काचबी
जो ऊगमते सूर
दादा के' वाछरु वाळजो
नकर जाशे पाणीने पूर ।

(दादा कहते हैं कि जब सूर्य ऊगे तब पश्चिम दिशा में मेघधनुष्य दिखाई दे तो सचेत होकर जल्द से जल्द वाछरु (धण) खेत में से लेकर आ जाना, क्योंकि तीव्र वृष्टि होने की संभावना है ।)

आसोवदी अमासडी
जो आवे शनिवार
धन कण राखी संग्रहो
सौ जगनां नरनार
आगळ रवि पाछळ पदी
मंगळ हाल्यो जाय
ए वरसे अन्न मोकळां
हरख घणेरो थाय ।

(जे वर्ष रवि ग्रह के पीछे मंगल ग्रह चलता हो तो उस वर्ष में अनाज ज्यादा होता है ।)

स्वाति दीवा जो बळे
विशाखा खेले गाय
तो राणीजाया रणे चढे
ने पृथ्वी परले थाय ।

(जब दिवाली स्वाति नक्षत्र में आयें और जो गोधण तेरस विशाखा नक्षत्र में आयें तो वह उल्कापात के चिह्न होते हैं ।)

शनि रवि के मंगळे
जो पोढे जदुराय
तो चाक चडावे मेदनी
ने करके पाळ बंधाय ।

(देव पोढी अगियारस जब शनि, रवि या मंगलवार के दिन आती हैं तो पृथ्वी पर चक्रावात-तूफान आता है और मृत पशुओं के हाडपिंजर (अस्थिपिंजर) (करकां) इतने ज्यादा होते हैं कि उनके ढग हो जाते हैं यानि कि अकाल पडता है ।)

पहेली

''काँधे आय, काँधे जाय, नेग-नेग में मारा जाय,' जिसका उत्तर ''बाजा'' है,

राजस्थान के हाडौती क्षेत्र के विषय में ठीक इसी प्रकार का उल्लेख डॉ. चन्द्रशेखर भट्ट का है, ''हाडौती क्षेत्र में विवाहादि के अवसर पर पहेलियाँ पूछने का रिवाज है । वर के कोहवर में प्रवेश करने के पूर्व पूछी जाने वाली कुछ पहेलियाँ इस प्रकार है -

बुध भटके, मङ्गल चलअ, होवऊ ताबडतोड
असी बगत में बीन्द जो आया क्यूं घर छोड ? (जी आया)
फूल्या गेंदा गुलाब, काट्या न जाव,
उतर दयो चतर नअ तो पूरा खर । (तारे) इत्यादि
(हाडौती लोकगीत : १९६६ : १५)

लेकिन कई भाषाओं में ऐसे पहेली गीत भी मिलते हैं जो आकार में लघु गीतों जैसे होते हैं और जिनमें केवल एक विषय का विवरण रहता है ।

रुद्रट ने पहेली (प्रहेलिका) जो दो भेद किये हैं - स्पष्ट प्रच्छन्नार्था और अव्याहृतार्था (स्पष्ट प्रच्छन्नार्था प्रहेलिका व्याहृतार्था च) । स्पष्ट प्रच्छन्नार्था पहेली यह है जिसमें प्रश्न वाक्य के भीतर ही उत्तर छिपा हुआ रहता है । अव्याहृतार्था पहेली का उत्तर उसमें प्रयुक्त विशेषणों द्वारा संकेतित अर्थ के विश्वास के आधार पर दिया जाता है अर्थात् वह किसी भी रूप में उक्त नहीं रहता और स्वयं श्रोता द्वारा दिया जाता है ।

फूलमित्य गुलाब चटान नह काँह,
मूदमुन राजा वदान नह काँह,
बअथरून क्यामखाव शेरान नह काँह ।

-गुलाब के फूल खिले हैं, लेकिन उन्हें कोई काट नहीं सकता । **उत्तर-तारे ।**

-जो अपने को राजा समझता था, वही मर गया लेकिन कोई रोता नहीं ।

उत्तर- कुत्ता ।

-चाँदी के तार का बना कपडा बिछाया गया है, लेकिन उस पर कोई सो नहीं सकता ।

उत्तर- बर्फ ।

भारतीय पहेलियों में मुख्य रूप में कृषि संस्कृति की सामग्री का समावेश हुआ है । एक और मुण्डा अपनी नुतुम-कहानी या पहेली मैं यह पूछता है -

नुतुम कहानी

काठ केरो कोठरी लोह केर धार
आगे आगे बकुली सेकर पीछे चोर
लाए चीना ताना ? **(उत्तर- हल)**

तो दूसरी ओर यह नुतुम कहानी

मियाद होरो जेता
इम्ता काए दुरुमा
लाए चीना ताना ? **(उत्तर - घडी)**

मुण्डा पहेलियों में कैंची, दियासलाई, चीठी आदि नये शिल्प-तथ्य, जो आधुनिक जीवन से गृहीत हुए है, विषयों के रूप में प्रवेश पा गये हैं । यही बात दूसरी लोक भाषाओं के सम्बन्ध में भी सत्य है जिनमें साईकिल, रेल, मोटर, यहाँ तक कि स्पुतनिक पर भी पहेलियाँ बन गयी हैं ।[५१]

लोकसाहित्य को जनता का विश्वविद्यालय कहा गया है । लोकसाहित्य और संस्कृति के पारस्परिक सम्बन्धों पर विचार के क्रम में यह देखा गया है कि किस प्रकार आज भी कई आदिम जातियों में गीतों, कहानियों, कहावतों आदि का शैक्षिक उपयोग होता है ।

पहेलियों की तुलना

गुजराती साहित्य में शामळ की पहेलियों और लोकवाणी की पहेलियों की तुलना कर विक्रम की कहानी (सिंहासन बत्तीसी भाग-२, सातवी कहानीः नाई की) में परकाया प्रवेश का जो मंत्र नाई को परोपकार की भावना से सीखा दिया था वह नाई विक्रम के खाली देह में प्रवेश करके नकली विक्रम बनता है । अंतःपुर में जाने पर रानी विक्रम की कुचेष्टाओं से उस पर शंकित होती है और उसकी परीक्षा लेने के लिए ऐसी पहेलियाँ पूछती है :

सिंग सहित जे जनमियो, जोबनमां सिंग जाय;
जोबन फीरि वृद्ध थयो, सिंग फरीने थाय ।

[सिंग के साथ जो जन्मा, यौवन में उसका सिंग चला जाय । यौवन जाने पर वृद्ध हुआ, सिंग फिर से उग आय ।]

[अर्थ : चन्द्रमा]

नारी जाते उजळी, मुख नासिका नेण;
अन्न उदक निद्रा नहि, मुख नव खोले वेण ।

[जो नारी जाति की तरह उजली है, जिसके मुख, नासिका, नैन है, अन्न, पानी नींद नहीं, मुख से न बोले कोई शब्द]

[अर्थः सांप का केंचुल]

वदन श्याम ने गौर वर्ण, अमी झरंतो आप;
तेहना संग थकी मटे, शोकांतर महाताप ।

[मुख श्याम, रंग गोरा है, जिसमें से स्वयं अमृत झरता है उससे शोक का महाताप मिटता है ।]

[अर्थः स्त्री का स्तन]

सो नर लीधा सामटा, नारी भणाय जेह;
तुज रक्षाने कारणे, हाथ धरी में एह ।

[सौ नर को एकसाथ लेकर, जिन्हें नारी पढाती है । उसकी रक्षा के लिए मैंने उसे हाथों में ले रखा है ।]

[अर्थ : माला]

इन पहेलियों के लगोलग सोन हलामण की लोककथा में सोन जिस पहेली को अपने विवाह के उम्मीदवार जेठवा के राजा सियाजी को भेजती है उसे देखें :

घण विण जे घडियां, एरण आभडियां नहि ।

बस इतना ही, घण अर्थात् हथौडी के बिना जो गढा गया है और निहाई का जिसने स्पर्श भी नहीं किया, ऐसा गहना भेजिए ।

उत्तर में उस दोहे की पूर्ति हो जाती है;

सरवड स्वात तणां, भळे तो मोती नीपजे ।

[स्वाती नक्षत्र में बारिस की बूँदे गिरें तो मोती बनें]

[अर्थ : मोती]

यह पहेली समस्या पिछली दस पहेलियों से अलग पड जाती है । एक भी पहेली शामळ की पहेलियों से मेल नहीं खाती । फिर भी पिछली दोहेबद्ध पहेलियों और शामळ की पहेलियों के बीच आकार और शिल्प की साम्यता है । मात्र 'घण विण जे घडियां, एरण आभडियां नहि' अलग पडती है ।

इन दोनों कथा-प्रकारों के साथ अब स्त्रियों के रासडा की पहेलियों को देखिए :

वेंत ते जेवडी वरखडी, रे !
डाला तो जेवडां फूल वा'ला !
काचां ते उतरे कडपले रे,
पाकांनां थाय मूल वा'ला !
अंबोडे गल फूल वा'ला !
चतुर होय ते समजी रे लेजो
मूरख करे विचार वा'ला !

[वेंत भर की पीलूडी (वृक्ष) टोपली जितना फूल है । कच्चा उतारने पर ढेर- के ढेर और पकाने पर हो जाय मजबूत । उसके गले में फूल की गाँठ है, चतुर हों तो समझ जाय, मूरख करे विचार]

सासु वउवारु मां दीकरी रे
चारेनो एक भरथार वा'ला !
चतुर होय ते समजी रे लेजो
मूरख करे विचार, वा'ला !

[अर्थ : साडलो]

[सास, बहू, माँ, बेटी सभी का एक ही पति है । चतुर हो तो समझ जाय और मूरख करे विचार, हे मेरे बालम]

सासरो जमाई बाप दीकरो रे
चारेनी एक घरनार वा'ला ।
चतुर होय ते समजी रे लेजो
मूरख करे विचार वा'ला ।

[अर्थ : तलवार]

[ससुर, दामाद, बाप, बेटा, चारों की पत्नी एक ही है, चतुर हो वह समझ जाय और मूरख करे विचार, मेरे बालम जी ।]

भैंस वियाणी पाडुं पेटमां रे
दूध कचोळे जाय 'वाला !
चतुर होय तो समजी रे लेजो
मूरख करे विचार वा'ला ।

[अर्थ : पक्का आम]

[भैंस बियाई पाडा पेट में, दूध हंडिया में जाय चतुर हो वह समझ जाय, मूरख करे विचार, मेरे बालम ।]

काळो ते मार्यो कागडो रे
लीलूडो मार्यो हंस, वा'ला !
नाख्यो वाणीडाना हाटमां रे
त्राजवीए तोळाय, वा'ला !
जमे बामण, जमे वाणिया रे
जमे अढारे आलम, वा'ला !

[अर्थ : बैगन]

[काले कौए को मारा, हरे हंस को मारा मेरे बालम । उसे बनिये की दुकान में डालकर तराजू से तौलते हैं । ब्राह्मण, बनिया सब खाते हैं । खायें अट्ठारहों आलम ।]

['रढियाळी रात']

घरमां घर
तेमां रमे केसरिया वर

[घर में घर, उसमें खेले केसरिया वर]

यह है नारियल का संक्षिप्त काव्य, छिलका और नरेली रूपी दो घरों के अंदर केसरिया-वर नारियल का गोला खेलता है । सिवान में कपास के खेतों में सफेद कपास को :

रणवगडामां डोशी दांत काढे

[मरुस्थल के वीराने में बुढिया हँसे]

ऐसा रूपक देकर सजीवतापूर्ण चमत्कृति दी है ।

एक जनावर हतुं के पूंछडे पाणी पीतुं

[एक जानवर ऐसा कि पूँछ से पानी पीता]

बाती रूपी पूंछ द्वारा तेल शोख कर जलते दिये का काव्यात्मक वर्णन किया । ऐसी पहेलियाँ अपरंपार थी और वे बालकों को जीवन की नीरस होती जाती सृष्टि में कौतुकोद्दीपक काव्यरस प्राप्त करती थी । इस पहेली के अनामी शिल्पी कितने कुशल रहे होंगे !

तारी मानुं पेट फाट्युं, मारी मा सूपडुं लैने दोडी!
तारी मा वांसे मारो बाप दोड्यो जाय ।

[तेरी माँ का पेट फटा, मेरी माँ सूपडा लेकर दौडी जाय, तेरी माँ के पीछे मेरा बाप दौडा जाय ।]

ऐसे अशिष्ट जान पडते हास्यरस वाली पहेलियाँ भी थी; (पहली का अर्थ 'अनाज की कोठी' और दूसरी का अर्थ 'सूई डोरा' होगा ।) तो उसके विरुद्ध उत्तम कल्पना को उडाते -

गण्या गणाय नै, वीण्या वीणाय नै;
तोय मारी डाबलीमां माय ।

[गिने गिनाय नहीं, बिने बिनाय नहीं, फिर भी मेरी डिबिया में समाय]

ढोंगी आदमी को 'चकली नानी पण फरडको मोटो' (नन्ही चिरैया और फुदका ज्यादा) इस शब्द के आईने में बताया । बेहाल होने पर भी खुराफात न छोडनेवाली की प्रकृति 'छींदरी बळे पण वळ न मूके ! (रस्सी जल जाय पर उसका बल न जाय) इस कहावत में जिस तरह से बताया है उस पर यकीन करने के लिए रस्सी को जला कर देखना । कहावतें तो हजारों हैं । एक - एक कहावत अर्थात् अनुभवों के पुंज-पुंज से निचोडा हुआ एक एक अर्क बिन्दु । इस व्यवहार - चतुराई को पहनाया हुआ वाणी - कलेवर आप थोडा भी कमजोर नहीं पायेंगे । वर्षाऋतु में किसान बोआई करने जाते हैं उनके द्वारा सुबह बोया हुआ दाना और दुपहर के बाद बोया दाना, उन दानों की उगी हुई फसल देखेंगे तो जान पडेगा कि वह एक प्रहर की बोआई-अवधि, उस फसल का महिना कितना

स्थित्यंतर कर डालता है । बोआई के समय थोडा-सा विलम्ब और इतना बडा नुकसान । इतनी अधिक हानि । कहावत में कहा गया है कि :

वावणी घी तावणी

(बोआई घी खराई)

चूल्हे पर घी खराने रखा हो उसे थोडी देर भूल जाने पर घी कडककर नाश हो जाता है; इसी तरह से बोआई में विलम्ब भयंकर :

घरमां मडुं ढांकी मूकीनेय खेडु वावणी करे.

[किसान घर में मुरदे को ढककर भी बोआई करता है । इस कहावत में लोककल्पना, लोकानुभव और लोगों के सौंदर्य-सामंजस्य की दृष्टि से सर्जित किया हुआ काव्यतत्त्व है । जीवन की नाजुक या कटाक्षात्मक आलोचना का संग्रह करती ये कहावतें जितनी मिलें उतनी संग्रह करनी चाहिए ।]

ऋतु-वाक्य

बोआई का प्रसंग हमें लोकवाणी का एक विशिष्ट सुभाषित प्रकार 'भडली-वाक्य' पर ले आता है । ऋतु के रहस्यों को संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत करनेवाली कहावतों को भडली-वाक्य कहते हैं । उदाहरण के तौर पर, एक वाक्य है कि :

वख पख वादीलां.

इसका लाघव नमूनेदार है । वख (अर्थात् पुनर्वसु) और पख (पुष्प) इन दोनों नक्षत्रों को वादीला (वादा) कहा गया है । वादीला शब्द लाक्षणिक है । वादीला अर्थात् एक जो करे वह दूसरा भी करे ऐसी आदतवाला । अर्थात् कि यदि वख बरसे तो पख भी बरसे और एक न बरसे तो दूसरा भी खाली जाय ।

जो वरसे भरणी तो नार मेले परणी

इस ऋतु - वाक्य में कराया गया ऋतु-दर्शन, अति करुण और यथार्थ दर्शन

है । भरणी नक्षत्र की बरसात अन्न-धान्य का इतना अधिक विनाश करती है कि खुद स्वामी अपनी पत्नी को त्याग दे ऐसा दुष्काल पडता है । इस प्रकार से यह भडली-साहित्य भी यथार्थदर्शी था । इस साहित्य को उत्तर हिन्दुस्तान में घाघ और भड्डरी कहते हें । इसमें भी :

सावन सुक्ला सप्तमी
जो गरजे अधरात
तू पिय जईहो मालवा
मैं जईहुं गूजरात

[सावन शुक्ला सप्तमी, जो गरजे अधिरात, हे पिया, तुम जाओ मालवा, मैं जाऊँगी गुजरात ।]

इसमें व्यंजना द्वारा भयंकर यथार्थ को काव्यांकित किया गया है कि अमुक दिन की मध्यरात्रि को मेघ गरजे तो इतनी सख्त अनावृष्टि पडे कि पेटगुजारा के लिए पति को गुजरात जाना पडे और पत्नी को मालवा । (बंगाली साहित्य में भडली-वाक्य को 'अनार वचन' कहा जाता है ।) लोकसंघ

का लक्ष्य ऋतुओं के रूप-सौन्दर्य की बजाय ऋतुओं के गुण-दोष पर अधिक था, क्योंकि जनता का प्राणप्रश्न ही रोटी का था । रोहिणी नक्षत्र गाजे या जले (यानी कि बिजली चमके) तो उस दुष्काल का दांत किचकिचाते नक्षत्र का भरा सौन्दर्य जनता को किस तरह काव्यप्रेरक बनेगा !

अनुभव कथन :

हमारे पूर्वजों ने अपने जीवन में आये अनेकानेक अनुभवों को सहज उद्घृत करते हुए अनेक बातें सिखायी हैं । राजस्थानी लोकगीतों में उनकी अनुभव की यह बातें अनगिनत है । व्यक्तिगत और पारिवारिक के समाज की दृष्टि से ये बातें अच्छाई और बुराई का बोध कराती हैं ।

मरे कुण तीज जना
कुवत कम घुस्सा घणा
मरे कुण तीन जना
हाजमा कम भावण घणा
मेरे कुण तीन जना
कमाई कम खर्चा घणा

जिसकी औकात कम और गुस्सा अधिक, जिसकी पाचन शक्ति कम है और अधिक खाता है कमाई कम और खर्चा अधिक है ऐसे लोगों को मृत्यु जल्दी आती है ।

इसी तरह क्या अच्छा है इसकी भी जानकारी हमें लोकगीतों में मिलती है । जैसे-

बात सांची भली, पोथी बांची भली
देह सांची भली, बहू लाजी भली
प्रीत गाढी भली, भींत जाडी भली
मौत मोडी भली, मंसा थोडी भली

सिद्ध व्यक्तियों के जीवन के अनुभव इन गीतों में होते हें ।

साख में साळो
भिंत में आळो
आँख में जाळो
खेत में नाळो
नहीं रहतो

इसी तरह

जीमणो मॉरे हाथ रो हूवों भलाई जैर
रैणो भायां रा भेळ हुवों भलाइ बैर
बेठण छियां में हुवों भलाई केर
चालणु सिधो रस्तो हुवों भलाई देर ।

खायणां

खायणां के बारे में हम को राजस्थान से अनुभव कथन के सिवा कुछ मिला नहीं है लेकिन गुजराती साहित्य में हमको जो कुछ मिला है वो उदाहरण के तौर पर कई खायणां हम यहाँ निर्देशित करते हैं । देखिए :

आकाशे अर्प्यां ने धरती माए झील्यां,
माए ने बापे उछेर्यां, के परने सोंपवा ।
मारी ते माए जतन करीने जाळवी,
रतन करीने राखी, के परने सोंपवा ।

[आकाश ने दिया और धरती माँ ने ग्रहण किया, माँ-बाप ने पाला-पोषा दूसरे को सौंपने के लिए । मेरी माँ ने बड़े जतन से संभाला, रत्न की तरह रखा, दूसरे को सौंपने के लिए ।]

बापाजी बापा, मीठुं मध पीजो,
दीकरी परणाववा जजो, के मोटा शे'रमां ।
मारा ते बापे तापी-किनारा न जोया,
जोयामां ने जोयां, जमाईनां झूपडां ।

[पिताजी मीठां मधु पीना और बेटी का ब्याह करने के लिए बडे शहर में जाना । मेरे पिता ने ताप्ती का न तो किनारा देखा और न ही दामाद की झोंपडी देखी ।]

मारा ते बापे व्हाणे चडी वर जोया,
मूरख वरने मोह्या, मूळापणी वेचता ।
मूळापणी वेची लाव्यो कडबनो भारो,
ए दीकरीनो जनमारो के जावा दोह्यलो,
मारा ते बापे त्राजूडीमां तोळी,
भर्या कुटुंबमां बोळी के दादानी दीकरी ।

[मेरे पिता ने जहाज पर चढकर वर देखा । कीमती चीजों को बेचते हुए वे मूरख पर मोहित हो उठे । कीमती चीजों को बेचकर घास-पात का बोझा उठा लाये, बेटी का जन्म बडा कठिन है । मेरे पिता ने तराजू में तौला और भरे कुटुम्ब में दादा की बेटी को बोर दिया ।]

यह कन्याविक्रय, कंगालियत और कुमेल जोड़ा के विरुद्ध काव्य-बंड तो पुराना है । शहर की पुत्रियों ने इस दिल का दर्द छिपाया नहीं है, खायणे में उसे झूला पर चढकर गाया है :

मारा बापने एक ज दीकरी होजो
सारेसा वरने जोजो, के चिंता ऊगरे ।

[मेरे पिता की एक ही बेटी है, सुन्दर-सा वर खोजना ताकी चिन्ता मिटे ।]

और पानी भरना यह क्या सुख था ?

ओ पेली, ओ पेली क्या गामनी दीकरी,
पाणी भरे कूवे एकली, के कई बेन सासरे ।

[वह देखो, वह देखो कौन से गाँव की बेटी है जो अकेले पानी भरती है, उसकी कौन-सी बहन ससुराल में है ?]

'ऐसे बलात्कार के ब्याह में साड़ियों का ढेर दिखाकर फँसाई जाती पुत्री की पुकार को खायणा के एक एक दोहे में अंकित किया है -

माडी रे माडी, नव जोइए तारी साड़ी,
जनमनी ओशियाळी के हुं तारा दूधनी ।

[हे मां, मुझे नहीं चाहिये तेरी साड़ी, मैं तो जन्म से ही तेरे दूध की ऋणी हूँ ।]

उसी तरह बहन के, भाई के, भाभी के, जनेता यानि कि माता के, ससुराल के, संसार के, शोक्य के, जमाई यानि कि दामाद के, खायणां भी गुजराती लोक साहित्य में मिलते हैं । जो हमने अध्याय -५ में विगतवार दिये हैं ।

★★★

संदर्भ ग्रंथ -१

१. संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ४९
२. संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ५०
३. संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ५१
४. कीर्तन मुक्तावली-भाग-२, द्वितीय आवृत्ति-१९९५, पृ. ११६
५. संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ८४
६. संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ६०
७. संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ६१
८. संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ६२
९. संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ६३
१०. संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ६४
११. कीर्तन मुक्तावली-भाग-२, द्वितीय आवृत्ति-१९९५, पृ. १२२
१२. लोक - साहित्यनी प्रेमकथाओ - जोरावरसिंह जादव : प्रकाशन अहमदाबाद
१३. लोक - साहित्यनी प्रेमकथाओ - जोरावरसिंह जादव : प्रकाशन अहमदाबाद
१४. लोक - साहित्यनी प्रेमकथाओ - जोरावरसिंह जादव : प्रकाशन अहमदाबाद
१५. लोक - साहित्यनी प्रेमकथाओ - जोरावरसिंह जादव : प्रकाशन अहमदाबाद
१६. सौराष्ट्रनी रसधार-झवेरचंद मेघाणी, प्रकाशन - शब्दलोक प्रकाशन, अहमदाबाद, भाग-५
१७. जसमा ओडण - दासी की दास्तान, विजयदान देथा
१८. मेह-उजली : सोरठी गीत कथाएँ
१९. तेजमल-सजना : लोक साहित्य : धरतीनुं धावण : झवेरचंद मेघाणी
२०. ढोला-मारु रा दूहा : लोक संस्कृति की रूपरेखा : कृष्णदेव उपाध्याय
२१. ढोला-मारु रा दूहा : कल्लोल कवि, हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास
२२. मेह उजळीनी बारमासी
२३. ओढा-होथलना दूहा : झवेरचंद मेघाणी (सौराष्ट्रनी रसधार भाग-४)
२४. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. ९९
२५. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. १००
२६. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. १००
२७. अमृत पटेल : 'झमरख दीवडो', पृ. ४८
२८. डो. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना', पृ. ८१
२९. अमृत पटेल : 'झमरख दीवडो', पृ. ५०
३०. किर्तन मुकतावली - भाग-२, बीजी आवृत्ति- १९९५ पृ.११५
३१. संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. २०
३२. संपादक : विनायक रावल : 'गुजरातनां लग्नगीतो', प्रथम आवृत्ति-२००४, पृ. १४५र्
३३. संपादक : विनायक रावल : 'गुजरातनां लग्नगीतो', प्रथम आवृत्ति-२००४, पृ. १७८
३४. संपादक : विनायक रावल : 'गुजरातनां लग्नगीतो', प्रथम आवृत्ति-२००४, पृ. १७८

३५. संपादक : विनायक रावल : 'गुजरातनां लग्नगीतो', प्रथम आवृत्ति-२००४, पृ. १७९
३६. कीर्तन मुक्तावली-भाग-२, द्वितीय आवृत्ति-१९९५, पृ. ११५
३७. संपादक : विनायक रावल : 'गुजरातनां लग्नगीतो', प्रथम आवृत्ति-२००४, पृ. १७९
३८. संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग-१, पृ. ८०
३९. संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'रढियाळी रात' पृ. ७३, बृहद, आवृत्ति : १९९७
४०. संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'रढियाळी रात' पृ. ७३, बृहद, आवृत्ति : १९९७
४१. डो. योजना शर्मा : राजस्थानी लोकगीतों की संरचना, पृ.७६, प्रथम संस्करण :२०००
४२. संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, पृ. ८१, संयुक्त संस्करण :१९९१
४३. झवेरचंद मेघाणी : लोक साहित्य, पृ. १५२, प्रथम संस्करण अक्टूबर :२०००
४४. संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, पृ. ८३, संयुक्त संस्करण :१९९१
४५. श्री किशोरसिंह बारहठ - सौरभ पत्रिका, भाग-१, पृ. ५९
४६. श्री किशोरसिंह बाईस्पत्य - चारण खण्ड-१, पृ. १८७
४७. श्री किशोरसिंह बाईस्पत्य - चारण खण्ड-१, पृ. २१०
४८. श्री लल्लूभाई देसाई, चौहान कुल कल्पद्रुम, पृ. २२, २३
४९. श्री क्षत्री वीर भाथीजी महाराज, केशवलाल र. सायलाकर
५०. वरदा - वर्ष - २, अंक-१, पृ. ७५-७६
५१. स्पुतनिक पर पहेली के लिये दे : हाडौती लोकगीत, १९६६, पृ. १५

संदर्भ ग्रंथ - २

१) झवेरचंद मेघाणी : 'रढीयाळी रात'
२) अमृत पटेल : 'झमरख दीवडो'
३) जयमल्ल परमार : 'आपणां लोकगीतो'
४) मकरन्द दवे : 'दाम्पत्य-योग अने नवां लग्नगीतो'
५) लक्ष्मण पिंगळशी गढवी : 'सौराष्ट्रनो सांस्कृतिक वैभव'
६) सं. झवेरचंद मेघाणी : 'चूंदडी' - गुर्जर लग्नगीतो
७) सं. विनायक रावल : 'गुजरातनां लग्नगीतो'
८) सं. बळवंत जानी : 'लोकगुर्जरी' (अंक-सत्तर)
९) सं. अमृत पटेल : 'पुष्कर चंदरवाकर अने लोकसाहित्य'
१०) डॉ. चिन्तामणि उपाध्याय : 'मालवी लोकगीतो : एक विवेचात्मक अध्ययन'
११) डॉ. रामप्रसाद दाधीच : 'राजस्थान के लोकगीत'
१२) डॉ. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की सरंचना'झ
१३) रानी लक्ष्मीकुमारी चुण्डावत : 'रजवाडी लोकगीत'
१४) सं. श्री विजयदान देथा : 'गीतो की फुलवाडी'
१५) डॉ. मदनलाल शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन'
१६) झवेरचन्द मेघाणी : 'गुजराती लोक साहित्य की समालोचना'
१७) आपणां गीत अपनी रीत
१८) लोक - साहित्यनी प्रेमकथाओ - जोरावरसिंह जादव : प्रकाशन अहमदाबाद
१९) बात सयणी चारणी री (हस्तलिखित) अनूप संस्कृत लाईब्रेरी, बीकानेर, ग्रंथांक-६ (५७)
२०) राजस्थान के लोक देवता एवं लोक साहित्य - डॉ. पुष्पा भाटी
२१) राजस्थानी कहावत कोश - विजयदान देथा, प्रकाशक : राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर
२२) कहावती कथाएँ - विजयदान देथा, प्रकाशक : राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर
२३) मेह -उजली की कथा, गुजराती लोकसाहित्य की समालोचना, झवेरचंद मेघाणी अनुवाद - उर्मिला विश्वकर्मा, प्रकाशक : श्री झवेरचंद मेघाणी लोकविद्या संशोधन-भवन अहमदाबाद
२४) तेजमल वरणागियो (गुजराती लोक साहित्य माळा मणको-१) संग्राहक : माधव मो. चौधरी
२५) ढोला मारु रा दूहा, (६७४ दोहे) : सम्पादक - रामसिंह, सूर्यकरण पारीक एवं नरोत्तमदास स्वामी, प्रकाशक - नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (वि. सं. १९९१)
२६) ढोला मारु रा दूहा, (प्रथम ३०६ दोहे) : सम्पादक - शम्भूसिंह 'मनोहर', प्रकाशक - दी स्टुडेन्टस बुक कम्पनी, जयपुर (ई. सन्. १९६५) ।
२७) ढोला मारु रा दोहा, (लघु शोध निबन्ध), कृष्ण बिहारी सहल, प्रकाशक- आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली (ई. सन्. १९६५)

२८) ढोला मारु रा दूहा, (आलोचनात्मक शोध प्रबन्ध), लेखक डो. भगवतीलाल शर्मा, प्रकाशक – अर्चना प्रकाशन, अजमेर (ई. सन्. १९७०) ।

२९) ढोला मारु री वात – चारण कवि महादान महडू रचित (परम्परा, त्रैमासिक के भाग २ के अंक ६–७ में ई. सन. १९५८ में प्रकाशित) ।

३०) ढोला मारु रा दूहा – कृष्णदेव उपाध्याय, लोकसंस्कृति की रूपरेखा ।

३१) लोक साहित्य और संस्कृति
डॉ. दिनेश्वर प्रसाद, जयभारती प्रकाशन इलाहाबाद

३२) हिन्दी का प्रादेशिक लोक साहित्य शास्त्र, डॉ. नन्दलाल कल्ला, प्रकाशक : राजस्थान ग्रन्थागार जोधपुर (राजस्थान)

३३) खायणां : वसंत जोधाणी

३४) कोयडा–उखाणा : नवो हलको, संपादक : पुष्कर चंदावरकर

३५) भडली वाक्य : लोक साहित्य : धरतीनुं धावण, झवेरचंद मेघाणी

अध्याय - ७

उपसंहार

उपसंहार

इस महा संशोधन ग्रंथ में विविध भाषाकुलों में से भाषा की उत्पत्ति कैसे हुई और उसमें से राजस्थानी एवं गुजराती भाषा का भारत-युरोपीय परिवार में से कैसे विकास हुआ ये सब हमने इस महा संशोधन ग्रंथ में विगतवार दर्शाया गया है ।

भारत में आर्यों के आगमन से प्राचीन-भारतीय आर्य भाषा, मध्य भारतीय आर्य भाषा और उसमें से आधुनिक भाषाओं का कैसे उदय हुआ ये सब हमने यहाँ बताया है । हिन्दी बोलियों में से हिन्दी भाषा का उदय और उसकी पेटा बोलियाँ और भाषा-समुदाय के माध्यम से क्षेत्रिय भेदों के कारण विविध बोलियों का उदय हुआ उसका भी हमने यहाँ अध्ययन किया है । और हिन्दी भाषामें से गुजराती भाषा कैसे उत्पन्न हुई है, कैसे उदय और विकास हुआ है उनका भी विस्तृत रूप से अध्ययन किया । उतना ही नहीं गुजरात की प्रमुख बोलियों के बारेमें भी हमने विस्तारपूर्वक दर्शाया है ।

फोकलोर-लोक साहित्य का उद्‌भव कैसे हुआ, लोक शब्द का अर्थ क्या है, कई विद्वानों की परिभाषाओं के माध्यम से हमने इस महा संशोधन ग्रंथ में विस्तार से दर्शाया है । हिन्दी भाषा में लोक-साहित्य एवं लोक-संस्कृति का लोक-विश्वास, रीति-रिवाज एवं प्रथायें और लोक-साहित्य ऐसे तीन विभागों में विभाजित किया है उनका भी यहाँ विश्लेषण किया गया है ।

भारतीय जन-जीवन और ग्रामीण समाज में लोक-साहित्य की परंपरा, प्राचीन परंपरा रही है । मानव उत्पत्ति के साथसाथ ही लोक-साहित्य का उद्‌भव हुआ है यह बात स्पष्ट की गई है । मानव समाज का विकास जब जब होता गया तब तब उसकी अच्छी-बुरी मान्यताओं, परंपराओं का भी उल्लेख किया गया है । मानव जीवन में देवी-देवता, भूतप्रेत, राक्षस-अप्सरा इत्यादि एवं मंत्र-तंत्र, टोने-टोटके, झाड-फूंक, दोरा-तावीज, जादू-बान जैसी कई क्रिया-प्रक्रियाओं का भी उल्लेख किया गया है । उपरांत गीत, पर्व, उत्सव, नृत्य-नाट्य, धर्म, दर्शन, ज्योतिष, गणित, साहित्य, संगीत, कला आदि का भी उल्लेख किया गया है ।

लोक-भाषा का साहित्य जैसे कि लोक-कहानी, लोक-गीत, लोक-गाथा, लघु-वार्ता उन सब का विवरण इस महाग्रंथ में किया गया है । उपरांत लोक-साहित्य में तरह तरह के चुटकुले, मुहावरे, पहेलियाँ, कहावतों का भी समाज में उपयोग होता है उसका भी हमने बहुत बारिकी से निरीक्षण करके यहाँ दर्शाया है ।

भारत में राजस्थानी और गुजरात प्रदेश का स्थान कहाँ और उन दोनों प्रदेशों का इतिहास एवं भौगोलिक स्थिति का भी विवरण किया है । इतना ही नहीं इन दोनों प्रदेश के समाज के रीति - रिवाज संबंधी, उनकी रहन-सहन, प्रमुख उत्सव के गीत, ऋतुओं, पशु-पक्षीओं के संबंध में उनकी अच्छी-बुरी मान्यताएँ जैसे कि कौआ, कुरजां, पपैया, कोयल, मोर, सूरज, चाँद, तारे, बादल, वर्षा, बिजली, नदी, तलाब, समंदर, सांज, दिन-रात, सब की मान्यताओं का विगतपूर्ण विवरण इस महाग्रंथ में किया गया है ।

गुजरात और राजस्थान प्रदेश के लोकगीतों, लोरी, विवाह गीत, मृत्यु के गीत यानिकि जन्म से लेकर मृत्यु तक के सभी करुण, हास्य, विरह, आनंद-प्रमोद सभी पहलूओं का विगतवार विश्लेषण

किया गया है । उसमें मानव जन्म समय के हर्ष -उमंग के गीत गाये हैं । कँवारी कन्या के लिए कैसा वर चाहिए उसके गीत गाये हैं । विवाह के समय पर अपने सगे-संबंधिओं को निमंत्रण देने के वक्त पर रुठना-मनाना ये सभी का उल्लेख किया गया है ।

इन दोनों प्रदेश के विवाह गीत में पीठी पिसना, पीठी लगाना, आशीर्वाद के गीत, दुल्हन का शृंगार, मेंहदी की रसम के गीत, स्तंभ रोपन, सप्तपदी, सात वचन, कन्या बिदाई, गोद भराई के गीत, जैसी सभी रसमों के गीतों का आकलन किया गया है । इतना ही नहीं विवाह के बाद कई विरहिणीओं के विरह का, मृत पति के बाद विलाप करती हुई स्त्रियों का, विरहीजनों की विरह दशा का ये सब का विस्तृत वर्णन इस महाग्रंथ में किया गया है ।

मृत्यु वक्त के विलाप गीत, स्वजन की विरह-वेदना, बाँझ स्त्री की मनोवेदना, समाज की जटिल प्रणालियाँ, संवनन के सूर, शौर्य गाथाएँ ऐसे भिन्न भिन्न प्रकार के तत्त्वों का भी आकलन किया गया है ।

इस महाग्रंथ में गुजराती एवं राजस्थानी लोकगाथाओं की बात की गई है । उसमें कुमारी और रसियो बालम में रसिया और वालम जैसे दो प्रेमियों के बीच रचे गये कपट की बात की गई है । भेरियो गारुडी में भेरियो गारुडी और रूपसुंदरी सगई संगार अपनी अपनी विद्या में पारंगत थे । सगई संगार ने अपनी विद्या भेरिया गारुडी पर आजमाई लेकिन भेरिया की विद्या के आगे वो निष्फल रही और राजकुमारी भेरिया पर आफरिन हो गई और अपना दिल दे बैठी । अपनी एक शर्त पर भेरिया के साथ विवाह करने का प्रस्ताव रखा । और वो शर्त थी मारवाड के नाग को वश करने की । भेरिया मारवाड के नाग को वश करने में असफल रहा और नाग डसने से अपना जी खो बैठा । बाद में सगई भी उनके पीछे सती हो गई ।

पडियेल हिरलानी गांठ में मारवाडी संत बेलडी साधु हिरागर और हिरलबाई के प्रेम की कथा है । एक दूसरे को दिये गये बचन निभाने में 'हिरनी गांठे' बंधे हुए दोनों सफल रहे हैं और मारवाड से आकर गुजरात के समढियाळा गाँव में अपने प्राण त्याग करते हैं ।

ढोला मारु राजस्थानी विरह कथा है । राजस्थान के पुगलनगर की मारवणी और नरवरनगर के ढोला के बीच बचपन से हुई प्रीत की कहानी है । बडे होते ही ढोला का विवाह मालवणी के साथ हो जाता है और ढोला को अपने बचपन की प्रीत याद आती है । ढोला और मारवणी एक दूसरे को पाने के लिए कितनी कठिनाईयाँ भोगते हैं, उनके कश्मकश्म की कहानी का यहाँ विस्तृत रूप से आलेखन किया है । अंत में विरह में झुरते हुए दो प्रेमियों ढोला और मारु का सुखद मिलन होता है ।

राजस्थान के ढोला मारु जैसी ही गुजरात के गिरनार की शेणी-विजाणंद की गाथा है । विजाणंद भेंस चराने जाता था तब पनिहारी शेणी उनको दिल दे बैठती है । लेकिन शेणी के पिता को विजाणंद के साथ विवाह मंजूर नहीं है । शेणी के पिता वेदाचारण एकसौ एक नवचंदरी भेंस लाने की शर्त रखता है । विजाणंद भेंस की खोज में निकल पडता है । समय बीतता जाता है । शेणी विजाणंद के विरह में व्याकुल हो जाती है । अंत में वह विजाणंद को पाने के लिए घर से निकल जाती है । लेकिन अपना प्रियतम नहीं मिलने से वह हिमालय गलने को चली जाती है । विजाणंद हिमालय आ पहुँचता है लेकिन शेणी का शरीर गल जाता है । शेणी की अंतिम इच्छा के मुताबिक विजाणंद

जंतर बजाता है । लेकिन जंतर नीचे पटकाता है और तार तूट जाता है उसके साथ शेणी के जीवन का तार भी तूट जाता है ।

चारणी देवी आवडमाता मरुभूमि में हो गई । लुणराज भाटी को स्वर्ण की चूड प्रदान करके उसको युद्धभूमि में विजयी बनाया था । 'हाकडा समन्दर' का तीन चूल्लू में पानी पीने से हाकडा मरुभूमि में पलट गया । बाद में 'तेमडी' राक्षस का संहार करने से उस पहाडी का नाम तेमडी हो गया । उसी तरह गुजरात में नडेश्वरी माता का भी इतिहास प्रसिद्ध है । जूनागढ के राजा रा'नवघण की धर्म की बहन जाहल को सिंध का बादशाह हमीर सुमरा उठा के ले गया था । रा'नवघण नडाबेट आते हैं लेकिन सिंध जाने के लिए समंदर पार कैसे करे उसकी चिंता में थे तब चारण कन्या ने वचन दिया कि मेरे भाले पर काली चीडियाँ बैठे तब तू घोडे को समंदर में लेकर चला जाना । और ऐसा ही हुआ । बाद में रा'नवघण सिंध जाकर हमीर सुमरा को पराजित करता है और अपनी बहन जाहल को वापस लेकर लौटता है ।

लोकदेवता गोगाजी, पाबूजी ओर तेजाजी की कथाएँ प्रचलित हैं । उन्होंने गौरक्षा के लिए अपने प्राण न्यौछावर किये । उसी तरह गुजरात के डाकोर के पास आये हुए फागवेल गाँव के वीर भाथीजी महाराज यानिकि गोगा महाराज ने भी गौरक्षा के लिए विवाह मंडप में से खडे होकर म्लेच्छों का संहार करते हैं और वीरगति प्राप्त करते हैं । गुजरात में वीर भाथीजी को नागदेवता के रूप में पूजे जाते हैं ।

गुजरात और राजस्थान में जेसल जाडेजा और रूपांदे मालदे की लोकगाथा बहुत प्रचलित हैं । जेसल जाडेजा बचपन से ही लूंटफाट करता था और एक वक्त ऐसा आ गया कि वो डाकू बन गया । लेकिन परमात्मा की गति न्यारी है । जेसल जाडेजा सती तोळांदे के संसर्ग में आता है और अपने पापों का प्रायश्चित करता है । उनका जीवन परिवर्तन होता है । बाद में जेसल पीर के नाम से प्रसिद्ध होता है ।

जसमा ओडण की गाथा भी दोनों प्रदेशों में ख्यात है । जसमा ओड परिवार की खूबसूरत ओरत है । पाटन के राव खेंगार ने सरोवर बनाने के लिए गुजरात, मारवाड, मेवाड, मालवा सभी जगह से ओड परिवारों को बुलाये थे उसमें जसमा भी सामिल थी । पाटन का राजा राव खेंगार उनके रूप पर मोहित हो गया था । लेकिन जसमा की फिलासोफी के आगे वो टिक नहीं पाया । राव खेंगार के सवाल के सामने जसमा के जवाब से वह धुंधला उठा । जसमा ने सवाल के जवाबों से उनको परास्त किया । एक राजा को अनपढ जसमा ने ऐसी बुरी तरह से परास्त किया कि राजा को वहाँ से तत्काल चलती पकडनी पडी ।

सत्तर जितने दोहों में मेह-उजली की शोकान्त कथा विस्तृत है । मेह जेठवा अतिवृष्टि से भीगा हुआ निश्चेतन पडा था । उसको गर्मी देने के लिए सभी उपाय निष्फल होने से उजली ने मेह को अपने बिस्तर पर सुलाकर गर्मी दी थी । बाद में मेहकुमार नगरवासी राजकुमार और वनवासी गोपकन्या उजली के बीच प्रेमांकुर फूटते हैं लेकिन रूढिधर्म और सामाजिक धर्म से दोनों के बीच भाई-बहन के नाते से मेह-जेठवा उनके माता-पिता की आज्ञानुसार विवाह नहीं कर पाये । उजली के स्वप्न चकनाचूर हो गये । उजली बिनती के स्वर में बारहमास के दोहे गाती है । उन दोहों में उजली की विरह व्यथा का विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है ।

राजस्थानी लोकगाथा ढोला मारु की कथा में प्रमुख काव्य यह है कि सयानी होने पर मारवणी अपने बचपन के पति ढोला की बात सुनती है और विरह में व्याकुल हो जाती है । वह अपने पति ढोला का पता लगाने के लिए कई संदेशवाहकों को पिंगलगढ भेजती है लेकिन वहाँ से कोई वापस नहीं आता है । सभी संदेशवाहकों की मौत उसकी सौत मालवणी करवा देती है । मारवणी गायक ढाढी को यह जिम्मेदारी सौंपती है और ढाढी इस में सफल रहता है । ढाढी के प्रयत्नों से ढोला और मारवणी दोनों का पुनर्मिलन होता है । इस लोकगाथा में मारवणी की विरहावस्था का सचोट और हृदयद्रावक आलेखन किया गया है ।

गुजरात और राजस्थान में तेजमल और सजना की लोकगाथा बहुत चर्चित है । ठाकुर की एक छोटी सी लडकी ने पुरुष वेश धारण करके दुश्मनों का संहार किया था । लेकिन दुश्मनों का संहार करने से भी ज्यादा पराक्रम उसने अपने नारी स्वभाव को छुपाने से किया था । ठाकुर का लडका बनकर तेजमल ठाकुर ने अपनी जन्मभूमि की रक्षा की थी ।

सजना के पिता छोटे ठाकुर है और बडे राजा हाडेराव कानून के मुताबिक बारह साल की नौकरी पर हाजीर होने को बुलाते हैं । जागीर के बदले में जागीरदार ने स्वयं या अपने पुत्र को बडे राज की फौज में नौकरी उठानी पडती है । ठाकुर को पुत्र नहीं था । इसलिए सजना पुत्र रुप लेकर नौकरी जाने को तैयार हो जाती है । तब पिता-दादा की व्यथा बढ जाती है कि लडकी होकर तूं कैसे चाकरी करेगी ? तब सजना और दादा के बीच की प्रश्नोतरी- संवाद होते हैं वो बडे दिलचश्प है ।

तेजमल जन्मभूमि की रक्षा के खातिर पुरुषवेश धारण करती है और वह जन्मभूमि की रक्षा करती है । तो सजना पुरुष वेश धारण करके बारह साल की चाकरी पूरी करके वापस लौटती है । दोनों नारियाँ अपने मकसद में सफल रहती हैं । कई मुश्किलियाँ एवम् कसौटी पार करने में सफल रहती है उसका वर्णन किया गया है ।

इस महा संशोधन ग्रंथ में गुजरात और राजस्थान की कई कहावत कथाओं का भी विस्तृत रुप से वर्णन किया गया है । उसमें कई कहावतें गुजरात और राजस्थान में मिलती-जुलती है । यहाँ उदाहरण के तौर पर हमने राजस्थान में (१) हठीला हठ छोड दे तो गुजराती में रढियाळा मूके छे पण सूंढाळा क्यां मूके छे (२) राजस्थानी में लोभी पंडित तो गुजराती में लोभे लख्खण जाय । (३) राजस्थान में सूत्यां की पाडा जणै तो गुजराती में जगतानी पाडी ने ऊंघतानो पाडो जैसी कहावतों का विस्तृत उल्लेख किया है । और ऐसी तो कई समानता वाली कहावतें राजस्थान और गुजरात में मिलती जुलती है । उसके ज्यादा उदाहरण भी हमने इस महाग्रंथ में दिये हैं ।

गुजरात और राजस्थान प्रदेश में आज इक्कीसवीं सदी में भी अंधविश्वास एवं लोक मान्यताएँ प्रचलित हैं । इसका भी इस महा संशोधन ग्रंथ में विस्तार से आकलन किया गया है । अकाल, सुकाल, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, महामारियाँ, प्राकृतिक प्रकोप, कार्यसिद्धि, लाभ-हानि, सफलता-असफलता, अच्छे-बुरे आदि के परिणाम शकुन-अपशकुन पर आधारित हैं । पशु-पक्षी, वनस्पति, प्रकृति, मानव के अंग-प्रत्यंगो के कम्पन जैसा सूक्ष्मातिसूक्ष्म का अध्ययन करके फलाफल का ज्ञान प्राप्त किया जाता है ।

कौआ, कुत्ता, बिल्ली, गाय, साँढ पनिहारिन, बाँझ स्त्री या विधवा स्त्री के शकुन अपशकुन

ये सारी बातें इस महा संशोधन ग्रंथ में की गई हैं । स्त्री या पुरुष की दायीं या बायीं आँख की फुरकन एवं दायें-बायें हाथ की हथेली में खुजली आने से क्या लाभालाभ होता है इसकी बात भी यहाँ की गई है ।

गुजरात और राजस्थान ये दोनों प्रदेश में आज भी मंत्र-तंत्र, जादू-टोने-टोटके की विधि की जाती है । भूत-प्रेत, डाकिन-शाकिन, वशीकरण करना, मूठ मारना, साँप या बिच्छू काटने से मंत्र का उपयोग करना, छोटे बच्चे को नजर न लगे इसके लिए काला टीला करना, ताव, तेजरा, इक्याँतरा ताव (बुखार), पिलिया या आधाशीशी, वायवादी इत्यादि के लिये मंत्र-तंत्र या काला धागा बांधा जाता है । दुश्मन अहित के लिए मूठ मरवाना, पूतले गडवाने ये सभी अंधविश्वास आज भी गुजरात और राजस्थान में हैं ।

इसके अलावा भडली वाक्यों यानिकि अनुभव वाणी से मौसम की आगाही, ऋतुओं कैसी होगी उसका अनुमान किया जाता है उसका भी यहाँ उल्लेख किया गया है । जैसे कि रोंण दाझी, वरसे आदरा तो बारे पाधरा, वरसे उत्तरा तो धान खाय कूतरां, वावणी ने घी तावणी, घेली चित्रा मांडे खेल तो काळे उनाळे आणि रेल इत्यादि अनुभव वाणी का विस्तृत रूप से उल्लेख किया गया है ।

लोक साहित्य में आदि-अनादि से चली आयी पहेलियाँ, बुझौलियाँ का भी इस महा संशोधन ग्रंथ में समावेश किया गया है । जैसे कि - गुलाब के फूल खिले हैं लेकिन उन्हें कोई काट नहीं सकता । उत्तर : तारे । तो सासरो जमाई बाप दीकरी रे, चारेनी एक घरनार वाला । चतुर होय ते समजी रे लेजो, मूरख करे विचार वा'ला । अर्थ : तलवार । तो कहावतें और मुहावरे भी क्यों रह जाय ? उसका भी उल्लेख इस महा संशोधन ग्रंथ में किया गया है । जैसे कि, घरमां घर, तेमां रमे केसरिया वर : नारियल । रणवगडामां डोशी दांत काढे : कपास का खेत ।

उपरांत विवाह प्रसंग में गाये गये फटाणां - खायणां को भी समाविष्ट करना हम भूले नहीं । गुजरात प्रदेश में फटाणां यानिकि खायणां प्रचलित है उसका भी यहाँ उल्लेख किया गया है । विविध प्रसंगो पर विधविध फटाणां-खायणां बोले जाते हैं, जैसे कि, मारे रे माडी नव जोईए तारी साडी; जनमनी ओशियाळी के हुं तारा दूधनी । ओ पेली ओ पेली क्या गामनी दीकरी, पाणी भरे कूवे एकली, के भाई बेन सासरे । और ये खायणां विस्तृत रूप से एवं कहावतें तथा मुहावरे का भी इस महा संशोधन ग्रंथ में उल्लेख किया गया है ।

* * *

संदर्भ संकेत

हिन्दी

१. हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास – लक्ष्मीलाल बैरागी

२. हिन्दी भाषा का उद्‌गम और विकास – उदयनारायण तिवारी

२. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग – नामवर सिंह

४. लोक साहित्य की भूमिका – डॉ. रवीन्द्र भ्रमर

५. हिन्दी – उद्‌भव, विकास और रूप, डॉ. बाहरी

६. हिन्दी भाषा का इतिहास – धीरेन्द्र वर्मा

७. हिन्दी भाषा का इतिहास – वार्ष्णेय

८. हिन्दी भाषा और उसका इतिहास, डॉ. दिनेश

९. भाषा विज्ञान – डॉ. भोलानाथ तिवारी

१०. हिन्दी साहित्य का बृहत, इतिहास, षोडश भाग, काशी १९६०

११. हिन्दी भाषा का इतिहास, प्रयाग १९४९

१२. लोक शब्द की प्राचीनता के विशेष विवरण के लिए देखिए – डॉ. उपाध्याय – लोक-साहित्य की भूमिका,

१३. डॉ. द्विवेदी – 'जनपद' वर्ष-१, अंक-१,

१४. समाज पत्रिका (काशी विद्यापीठ) वर्ष-४, अंक-३, (१९५८)

१५. डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव, डॉ. रावेन्द्र कुमार साहू – 'भारतीय संस्कृति कल, आज और कल', पैसिफिक पब्लिकेशन, दिल्ली

१६. डॉ. आर्याप्रसाद त्रिपाठी – बधेली साहित्य का इतिहास, साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद – भोपाल

१७. परमानन्द श्रीवास्तव – 'सूरदास-मूल्यांकन/पुनर्मूल्यांकन' अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद

१८. शोध संक्षेपिका – 'लोकसाहित्य की प्रासंगिकता, २०, २१ जनवरी-२०१२' शासकीय विलासा कन्या स्नाकोत्तर महाविद्यालय – बिलासपुर (छ. ग.)

१९. शरीफ मोहम्मद – मध्य प्रदेश का लोक संगीत

२०. हलायुध – कोश, सं. जयशंकर जोशी

२१. हिन्दी शब्द – कल्पद्रुम, सं. राम नरेश त्रिपाठी

२२. हिन्दी-साहित्य कोश, भाग-१, सं. धीरेन्द्र वर्मा

२३. सम्मेलन, लोक-संस्कृति विशेषांक, २०१०, डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल

२४. भारतीय लोक-साहित्य, डॉ. श्याम परमार

२५. डॉ. बैरिष्टरसिंह-डॉ. संसारचन्द्र-उपोद्घात (हिन्दी लोक-साहित्य में हास्य और व्यंग्य)

२६. डॉ. शंकरलाल यादव - हरियाणा प्रदेश का लोक-साहित्य

२७. डॉ. सत्यव्रत सिन्हा - भोजपुरी लोकगाथा पृष्ठ (भूमिका)

२८. डॉ. दिनेश्वर प्रसाद - लोक-साहित्य और संस्कृति

२९. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा (सं) हिन्दी साहित्य कोश (प्रथम खण्ड)

३०. डॉ. जनपद (त्रैमासिक), खण्ड-१, अंक-२

३१. डॉ. सत्येन्द्र - लोक-साहित्य, विज्ञान

३२. डॉ. भुवनेश्वर 'अनुज' - नागपुरी लोक-साहित्य,

३३. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय - लोक-साहित्य की भूमिका

३४. डॉ. सत्यव्रत सिन्हा - भोजपुरी लोकगाथा

३५. डॉ. शंकरलाल यादव - हरियाणा प्रदेश का लोक-साहित्य

३६. डॉ. तेजनारायणलाल - मैथिली लोक गीतों का अध्ययन

३७. दृष्टव्य : हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षोडश भाग

३८. लोक संस्कृति की रूपरेखा - कृष्णदेव उपाध्याय

३९. लोक-साहित्य एवं लोक संस्कृति - परम्परा की प्रासंगिकता एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य - डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

४०. जैसलमैर के श्रृंगारिक लोकगीत - डॉ. भूराराम सुथार, प्रका : अंकुर प्रकाशन - उदयपुर (राजस्थान)

४१. हिन्दी का प्रादेशिक लोक-साहित्य शास्त्र - डॉ. नन्दलाल कल्ला

४२. लोक साहित्य की भूमिका - डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय । डॉ. धीरेन्द्र वर्मा द्वारा भूमिका में प्रस्तुत विचार ।

४३. निमाडी और उसका साहित्य - डॉ. कृष्णलाल हंस

४४. काश्मीर का लोक साहित्य - मोहन कृष्ण दर

४५. लोक साहित्य की भूमिका – डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय

४६. राजस्थानी कहावतों का अध्ययन – डॉ. कन्हैयालाल सहल

४७. टॉड कृत – राजस्थान, भाग–१ भूमिका –१

४८. राजस्थान का सामान्य ज्ञान– डॉ. एल. आर. भल्ला

४९. राजस्थान काव्य में शृंगार भावना – डॉ. दयाकृष्ण विजय

५०. राजस्थान का पिंगल साहित्य : डॉ. मोतीलाल मेनारिया

५१. राजपूताने का इतिहास : श्री जगदीशसिंह गहलोत

५२. गुजरात की लोक–संस्कृति की झलक : सुभाषिनी कपूर

५३. लोकायन – डॉ. चिंतामणि उपाध्याय

५४. राजस्थान के लोकगीत (पूर्वार्ध)

५५. कविता कौमुदी, भाग. ५, ग्रामीण गीतों का प्रकरण–परिचय

५६. आजकल (दिल्ली) संख्या ७ नवम्बर १९५१ अंक

५७. साहित्य संदेश में प्रकाशित लेख के उद्दघृत, जून १९५६

५८. धीरे बहो गंगा, भूमिका – देवन्द्रसत्यार्थी

५९. हिन्दी साहित्य सम्मेलन पत्रिका अंक–लोक संस्कृति सं. २०१०

६०. छत्तीसगढी लोकगीतों का परिचय

६१. सम्मेलन पत्रिका – लोक संस्कृति अंक

६२. लोकगीत और संगीत : परम्परा (जोघपुर) चैत्र संवत २०१३

६३. धरती गाती है – आमुख देवेन्द्र सत्यार्थी

६४. 'श्रुतिगरिमा' शीर्षक निबन्ध – नवभारती वर्ष ६ अंक. १, – बद्रीप्रसाद पंचोली

६५. लोकायन की भूमिका – डॉ. देवराज उपाध्याय

६६. रश्मि की भूमिका – महादेवी वर्मा

६७. राजस्थानी लोकगीत – डॉ. स्वर्णलता अग्रवाल (भाग–२)

६८. वरदा, राजस्थानी लोक साहित्य विशेषांक (पूर्वार्ध)

६९. साहित्य और समाज – विजयदान देथा

७० डॉ. योजना शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतो की संरचना'

७१. डॉ. रामप्रसाद दाधीच : 'राजस्थान के लोकगीत'

७२. रानी लक्ष्मीकुमारी चुण्डावत : 'रजवाडी लोकगीत'

७३.सं. श्री विजयदान देथा : 'गीतो की फुलवाडी'

७४. डॉ. मदनलाल शर्मा : 'राजस्थानी लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन'

७५. मारवाडी समाज

७६. राजस्थान का सामाजिक इतिहास

७७. राजस्थानी लोक साहित्य

७८. आपणां गीत अपनी रीत

७९. राजस्थानी लोक साहित्य एवं संस्कृति

८०. राजस्थानी काव्य में श्रृंगार भावना

८१ राजस्थानी साहित्य का इतिहास

८२. राजस्थान के लोक देवता एवं लोक साहित्य - डॉ. पुष्पा भाटी

८३. राजस्थानी कहावत कोश - विजयदान देथा, प्रकाशक : राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर

८४. कहावती कथाएँ - विजयदान देथा, प्रकाशक : राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर

८५. ढोला मारु रा दूहा - कृष्णदेव उपाध्याय, लोकसंस्कृति की रूपरेखा ।

८६. बात सयणी चारणी री (हस्तलिखित) अनूप संस्कृत लाईब्रेरी, बीकानेर, ग्रंथांक-६ (५७)

८७. श्री किशोरसिंह बारहठ - सौरभ पत्रिका, भाग-१

८८. श्री किशोरसिंह बाईस्पत्य - चारण खण्ड-१

८९. डॉ. दशरथ शर्मा - वरदा वर्ष - ३, अंक - ४

९०. श्री मनोहर शर्मा - मरुभारती, वर्ष - ७, अंक -४

९१. जसमा ओडण - दासी की दास्तान, विजयदान देथा

९२. ढोला-मारु रा दूहा : लोक संस्कृति की रूपरेखा : कृष्णदेव उपाध्याय

९३. ढोला-मारु रा दूहा : डॉ. महावीरसिंह गहलौत

९४. ढोला-मारु रा दूहा : कल्लोल कवि, हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास

९५. हाडौती लोकगीत : १९६६

९६. लोक साहित्य और संस्कृति : डॉ. दिनेश्वर प्रसाद, जयभारती प्रकाशन इलाहाबाद

९७. हिन्दी का प्रादेशिक लोक साहित्य शास्त्र, डॉ. नन्दलाल कल्ला, प्रकाशक : राजस्थान ग्रन्थागार जोधपुर (राजस्थान)

९८. राजस्थान की सांस्कृतिक विरासत – डॉ. सौ. लीला कर्वा,

गुजराती

९९. बोली विज्ञान अने गुजराती बोलीओ – डॉ. योगेन्द्र व्यास

१००. सामाजिक भाषाविज्ञान – डॉ. योगेन्द्र व्यास

१०१. बोली विज्ञान केटलाक प्रश्नो – आचार्य डॉ. शांतिभाई

१०२. हालारी बोली – आचार्य डॉ. शांतिभाई

१०३. संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'रढियाळी रात' बृहद, आवृत्ति : १९९७

१०४. संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, संयुक्त संस्करण : १९९१

१०५. झवेरचंद मेघाणी : लोक साहित्य, प्रथम संस्करण अक्टूबर : २०००

१०६. संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, संयुक्त संस्करण : १९९१

१०७. लोक साहित्य – भाग–१

१०८ संपादक : झवेरचंद मेघाणी, 'चूंदडी' गुर्जर लग्नगीतो, भाग–१

१०९. अमृत पटेल : 'झमरख दीवडो'

११०. किर्तन मुकतावली – भाग–२, बीजी आवृत्ति– १९९५

१११. संपादक : विनायक रावल : 'गुजरातनां लग्नगीतो', प्रथम आवृत्ति–२००४

११२. रंजनबेन सावलिया

११३. जीवती बरवाडिया

११४. जयमल्ल परमार : 'आपणां लोकगीतो'

११५. मकरन्द दवे : 'दाम्पत्य–योग अने नवां लग्नगीतो'

११६. लक्ष्मण पिंगळशी गढवी : 'सौराष्ट्रनो सांस्कृतिक वैभव'

११७. सं. बळवंत जानी : 'लोकगुर्जरी' (अंक–सत्तर)

११८. सं. अमृत पटेल : 'पुष्कर चंदरवाकर अने लोकसाहित्य'

११९. झवेरचन्द मेघाणी : 'गुजराती लोक साहित्य की समालोचना'

१२०. लोक – साहित्यनी प्रेमकथाओ – जोरावरसिंह जादव : प्रकाशन अहमदाबाद

१२१. सौराष्ट्रनी रसधार–झवेरचंद मेघाणी, प्रकाशन – शब्दलोक प्रकाशन, अहमदाबाद, भाग–५

१२२. श्री क्षत्री वीर भाथीजी महाराज, केशवलाल र. सायलाकर

१२३. श्री के. एम. मुंशी – जय सोमनाथ

१२४. श्री के. एम. मुंशी – ग्लोरी देट वाज गुर्जर देश (ए. डी. ५५०–१३००) भाग–१

१२५. जेसल जाडेजा अने सती तोरल : धीरसिंह व्होराभाई गोहिल

१२६. तेजमल–सजना : लोक साहित्य : धरतीनुं धावण : झवेरचंद मेघाणी

१२७. मेह उजळीनी बारमासी

१२८. ओढा–होथलना दूहा : झवेरचंद मेघाणी (सौराष्ट्रनी रसधार भाग–४)

१२९. मेह –उजली की कथा, गुजराती लोकसाहित्य की समालोचना, झवेरचंद मेघाणी अनुवाद – उर्मिला विश्वकर्मा, प्रकाशक : श्री झवेरचंद मेघाणी लोकविद्या संशोधन–भवन अहमदाबाद

१३०. तेजमल वरणागियो (गुजराती लोक साहित्य माळा मणको–१) संग्राहक : माधव मो. चौधरी

१३१. खायणां : वसंत जोधाणी

१३२. कोयडा–उखाणा : नवो हलको, संपादक : पुष्कर चंदावरकर

१३३. कुसुम पाल – काठियावाड तथा गुजरात के गरबे – सम्मेलन पत्रिका (लो.सा.सं.) दि. २०१०

१३४. भडली वाक्य : लोक साहित्य : धरतीनुं धावण, झवेरचंद मेघाणी

संस्कृत

१३५. सिद्धान्त कौमुदी, पृ. ४१७ (बेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई)

१३६. ऋग्वेद – ३/५३/१२

१३७. ऋग्वेद (पुरुषसूक्त) १०/९०/२४

१३८. लोक सर्वलोकाट्ठञ ५/१/४४ तत्र विदित: इत्यर्थे लौकिक:।

– अनुशतिकादित्वात् उभयपद वृद्धि:। सार्वलौकिक:।

१३९. बहुल छन्दसि २/४/३९ तथा २/४/७३ सूत्रों की व्याख्या देखिए।

१४०. अभ्यन्तरोडहे लोके न त्वहं लोक:। आ. १,

१४१. महाभाष्य प्रथम आह्निक।

१४२. म. भा. (आ. प.) १/८४

१४३. म. भा. (आ. प.) १/६९

१४४. गीता ३/२०

१४५. ऋग्वेद – १०/९०/१४

१४६. ऋग्वेद – ३/५३/१२

१४७. सहस्त्रशर्षा पुरुष: सहस्त्राक्ष सहस्त्रपात / यजुर्वेद. ३१

१४८. आदि–पर्व १/१०१–२

१४९. ऋग्वेद १/७/१

१५०. घाम्मपद – ब्राह्मणवग्ग ३९/११

१५१. मनुस्मृति

१५२. उत्तर रामचरितभवभूति

१५३. रामचरित मानस (अ. का.) १५८/२

१५४. विद्यापति पदावली

१५५. सूरसागर

१५६. पंडित बटुकनाथ शर्मा – पालि जातकावलि

१५७. सरस्वती कण्ठाभरण : २/१३४

अंग्रेजी

१५८. The people that live is more or less primitive conditions outside the sphere of sophisticated influences.

– डॉ. दास – ए स्टडी ओफ ओरिसन फोकलोर।

१५९. हारवित्ज, शार्ट हिस्ट्री ओव इण्डियन लिटरेचर, १९०७

१६०. चैडविक ब्रादर्स, दि ग्रोथ ओव इण्डियन लिटरेचर, दूसरा भाग, १९३६

१६१. डिक्शनरी आव वर्ल्ड लिटरेरी टर्म्स, लंदन, १९५५

१६२. बिशप पर्सी-रेलिक्स आव एशिएण्ट इंगलिश पोएट्री, भूमिका

१६३. डॉ. फ्रेजर - दि गोल्डन बाऊ, भाग ३

१६४. द इम्पीरियल गजटियर ऑफ इन्डिया, १०९८ वोल्मूम-XXI

१६५. Grimme Encyclopedia of Britanica - "A Folk Song composes itself. Primitive Spontaneous music has been called folk song." -Vol. IX

१६६. 'ए स्टडी ओफ उरिसन फोकलोर'

१६७. Encyclopedia of Britanica (Volum IX) Ralph V. willams

१६८. Cradle Songs and Nursery Rhymes Edited by Grace Rhys.

१६९. 'स्टडी ऑफ फोकसोंग्स'

१७०. डॉ. दशरथ शर्मा - अर्ली चौहान डाइनेस्टी

१७१. लेस दूहा द ढोला मारू (फ्रांसीसी भाषा में शोध प्रबन्ध और पाठ निर्धारित ३६० दोहे सटीक) : लेखिका - डॉ. शार्लोत वोदविल; प्रकाशक - फ्रांस, भारतीय संस्था, पांडिचेरी (ई. सन. १९६२)

१७२. Alan Dundes : The study of folklore

१७३. मेरिया लीच - डिक्शनरी, भाग-१